'धर्म क्या है? अहिंसा, संयम और तप' पर तथा तप के छः बाह्य अंगों : अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति-संक्षेप, रस-परित्याग, काय-क्लेश, संलीनता व तप के छः अन्तर अंगों—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य (सेवा), स्वाध्याय, ध्यान व कायोत्सर्ग के सम्बन्ध में भगवान् श्री ने तीर्थंकरों की जिन-साधना के परमगुह्य एवं दुरूहतम मान्यताओं एवं योग के रहस्यों को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त ही विस्तार से उद्घाटित, पुनर्विश्लेषित एवं स्वानुभव से आलोकित किया है।

सन् १९७२ के पर्युषण पर्व में ४ से २१ सितम्बर के बीच भगवान् श्री ने बम्बई में पुनः १८ प्रवचन व प्रश्नोत्तर दिए हैं। इनका संकलन शीघ्र ही "महावीर-सूत्र" के नाम से प्रकाशित होगा।

आगामी पर्युषण पर्व १९७३ में भगवान् श्री "महावीर-वाणी" के तीसरे अंतिम खण्ड पर पुनः १८ प्रवचन देंगे जो "महावीर-दर्शन" के नाम से पुस्तकाकार होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ "महावीर : मेरी दृष्टि में" एक सागर की तरह है—अतल, अछूता, अनुपमेय। इसके ही पूर्व "महावीर-वाणी" तथा आगामी 'महावीर-सूत्र' और "महावीर-दर्शन" भगवान् महावीर की महा उपलब्धियों, प्रतीकों एवं देशनाओं के विस्तृत एवं पुनर्जीवित रूप हैं।

ये चार ग्रन्थ साधकों एवं शोधार्थियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ की तरह काम देंगे,

यदि दूसरे अन्य ग्रन्थ व संस्थाएँ इनके आधार पर गहरी साधना में उतरें तो तीर्थंकरों की गहन व गंभीर परम्परा की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा सम्भव हो सकेगी : इसी आशा, अन्तर्दृष्टि व कामना के साथ प्रस्तुत है—"महावीर : मेरी दृष्टि में" का द्वितीय संशोधित संस्करण।

ए-१, वुडलैण्ड्स,
पेडर रोड, बम्बई-२६
२१ सितम्बर, १९७२

—स्वामी योग चिन्मय

सम्पादकीय

[illegible]

का पूर्ण ध्यान लेकर इन महापुरुषों पर उतरें तो हमारे लिए वे द्वार खुल जाते हैं जहां से सूक्ष्म उनके हमें उपलब्ध हो जाएं। ऊपर अशरीरी आत्माएं भी प्रेम-वश, करुणावश हमारी आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने को आतुर हैं, उत्सुक हैं। मन्दिरों में महापुरुषों की जो अनेक प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं, वे भी उनकी अशरीरी आत्माओं से हमारा संपर्क कराने के ही साधन हैं।

भगवान् श्री व्यक्ति को किसी से नहीं बांधना चाहते। जीवन में जो मूल्यवान् है वह स्वयं उपलब्ध करना होता है, यही उसकी मूल्यवत्ता है यदि वह दूसरे से प्राप्त किया जा सके तो वह मूल्यवान् नहीं रह जायेगा। सत्य स्वयं में निहित है जिसे उपलब्ध होना है; वह न किसी से लिया जा सकता है, न किसी को दिया जा सकता है। जो साधक पहले से आत्मा में किसी से आश्रित हो गये हैं, उनकी मुक्ति कैसे सम्भव है?

यह कृति न तो इतिहास ग्रन्थ है न शोध ग्रन्थ। इतिहास अतीत की घटनाओं का वर्णन है, शोध विशिष्ट तथ्यों का विश्लेषण है। इसके ये दोनों नहीं है। इस ग्रन्थ में भगवान् श्री ने ध्यान के क्षण पर अतीत की कुछ घटनाओं से अपना तादात्म्य स्थापित करके उन घटनाओं के तथ्यों में निहित कुछ ऐसे रहस्यों का उद्घाटन किया है जो अपरम्परागत हैं। वे अतीत की कुछ घटनाओं के माध्यम से [illegible] हैं, उनकी अनुभूति उन घटनाओं में छिपे उन रहस्यों का उद्घाटन करते हैं जिन रहस्यों के कारण वे घटनाएं मानवमात्र के लिए [illegible] हैं। महावीर के जीवन से सम्बद्ध ऐसी अनेक घटनाओं का रहस्य इस ग्रन्थ में प्रथम बार उद्घाटित हुआ है जिनके कारण उन घटनाओं की सदा [illegible] है। इन रहस्यों के बिना वे घटनाएं आज के युग में [illegible] रह गई थीं। [illegible] की व्याख्या से महावीर के जीवन की [illegible], [illegible] हमारे अपने ही जीवन की [illegible] घटनाएं बन गई हैं।

[illegible] कि [illegible] भगवान् श्री [illegible] [illegible] है। [illegible] है कि [illegible]

[illegible] है। [illegible] है।

उसमें ज्ञान और पुण्य दोनों की जोड़ी और दोनों को अंगरूप माना गया है। दूसरे सम्प्रदायों में भी दर्शन को ही महत्वपूर्ण माना है, चारित्र को दर्शन का सहज फलित माना है। यह दृष्टि भी जैन शास्त्रों की मूल दृष्टि है। जैन शास्त्रों में सम्यक् दृष्टि के अभाव में ऊपर से अच्छे कर्मों को भी निरर्थक माना गया है। सम्यक् दृष्टि के बिना, आचरण ऊपर से अच्छा हो सकता है किन्तु वह व्यर्थ है। वास्तविक आचरण सम्यक् दर्शन से स्वतः उद्भूत होता है। वस्तुतः, सम्यक् दृष्टि को पा लेने पर ही सम्यक् चारित्र है, यह कहना ठीक नहीं होगा कि सम्यक्-दृष्टि सम्यक् चारित्र का कारण बनती है। सूर्य पूर्व में उदित नहीं होता बल्कि जिधर सूर्य उदित होता है उस दिशा का नाम पूर्व दिशा पड़ता है। भगवान् बुद्ध ने इस प्रसंग में भी बड़ी महत्वपूर्ण टिप्पणी दी है कि महावीर के जीवन के सम्बन्ध में जो महत्वशालिनी घटनाएँ थीं उनका इनमें निरूपण हो गया है। जिन्होंने उन्हें देखा, उन्होंने यह जाना कि महावीर निर्ग्रन्थ और ज्ञातपुत्र हैं। किन्तु जिनकी दृष्टि बदल गई, उन्होंने जाना कि वे अहिंसाप्रिय हैं। निर्ग्रन्थ होना हुआ, यह सब जाना है, किन्तु सर्वज्ञ के कारण से जिनकी बात हम भी अविज्ञात रहे, यह सब स्वीकार करते हैं।

महावीर, निश्चित ही नग्न रहे, इसमें कोई विकल्प नहीं है। उनकी काया को देखकर लगता है कि ऐसी सुन्दर काया वाला कोई व्यक्ति नहीं हुआ। ऐसी सुन्दर काया न बुद्ध के पास थी, न जीसस के पास थी और लगता है कि इतना सुन्दर होने की वजह से वे नग्न खड़े हो सके। असल में नग्नता को छिपाना कुरूपता का छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं वस्तुओं को छिपाते हैं जो कुरूप हैं। महावीर इतने सुन्दर थे कि छिपाने को कुछ भी नहीं था।

उनकी नग्नता उनके ज्ञान का अंग थी, उनके चरित्र का अंग नहीं थी। अगर किसी व्यक्ति को [illegible] प्रकृति से, पूरे जगत् से सम्बन्धित होना है तो [illegible] बाधा है। जितने ज्यादा वस्त्र पैदा होते जा रहे हैं, उतनी ज्यादा [illegible] बढ़ती जा रही हैं। क्योंकि वस्त्र चारों तरफ के वातावरण से शरीर का [illegible] देते हैं। जिस व्यक्ति को प्रकृति से संयुक्त होना है, जड़ से भाव भी [illegible] स्थापित करना है, पशु जगत् को भी सन्देश पहुँचाना है, उसके लिए किसी प्रकार के वस्त्र बाधा बन जाएँगे।

साधारणतया यह माना जाता है कि अनुभव से महावीर [illegible] होता है। मगर [illegible] पर उतरने से लगता है कि महावीर हमारे भीतरी विस्फोट का परिणाम है। जब [illegible] पूरी की पूरी विस्फोट होती है, तब महावीर उपलब्ध होता है। वह अनुभूति से नहीं निकलता। साधारणतः कायक्लेश सम्बन्धी धारणाएँ भी भ्रान्त हैं। शरीर को सताना ही कायक्लेश समझ लिया जाता है। [illegible] शरीर को दुश्मनी से [illegible] जाता है। [illegible] आता है। एक आदमी सुबह उठ कर व्यायाम करता है, दौड़ता है, यानी स्वास्थ्य के लिए। यह भी कायक्लेश [illegible] है लेकिन शरीर के हित में, शरीर के विरोध में नहीं। महावीर की सुन्दर काया को देखकर लगता है कि उन्होंने शरीर के हित में ही कायक्लेश किया। [illegible] शरीर के हित के लिए जो [illegible], वही [illegible] है।

[illegible] के अर्थ भी देखें। [illegible] का अर्थ है आत्मा [illegible] [illegible] [illegible] कि शरीर का [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

का अनुभव ही न रहे । वास्तव में, उपवास के बिल्कुल विपरीत, आदमी भोजन भरे शरीर के पास रहता है जिसमें कि उसे आत्मा भी नहीं रहता । उसके मन में दिन भर खाना चलता रहता है । उपवास और अनशन बिल्कुल विरोधी प्रक्रियाएँ हैं ।

आत्मदर्शन की प्रक्रिया में ध्यान का बहुत स्थान है । यह आत्मानुभूति का सुन्दरतम उपाय है । ध्यान के दो चरण हैं, प्रतिक्रमण और सामायिक । प्रतिक्रमण का अर्थ है कि जहाँ-जहाँ चेतना गई, वहाँ-वहाँ से उसे वापिस लौटा लेना, मित्र के पास से, शत्रु के पास से, धन के पास से, देह के पास से, मकान से, पद से, सब ओर से उसे वापिस लौटा लेना । सामायिक का अर्थ है स्वयं में स्थिर हो जाना । प्रतिक्रमण प्रक्रिया है चेतना को भीतर लौटाने की । सामायिक प्रक्रिया है बाहर से लौटी हुई चेतना को आत्मा में ठहराने की । प्रतिक्रमण और सामायिक साथ हैं, पर निरपेक्ष हैं । सामायिक में स्थिर हो अपना आत्मा ही दर्शन करता है ।

भेद ज्ञान का अर्थ है । प्रत्येक मनुष्य में दो शरीर होते हैं, जिसका सूक्ष्म शरीर नहीं मरता । दूसरा शरीर स्थूल है जो आत्मा और शरीर को पृथक् नहीं दिखने देता । भौतिक जड़ शरीर न कभी मरता है, न जीता रहता है, न प्रतिक्रिया करता है, केवल आत्मा रह जाता है एक सूक्ष्म शरीर जिसको जानना है, जिसमें जानना है । फिर आत्मा और शरीर पृथक् दिखने लगते हैं और इतना भेद देखता है कि वह आत्मज्ञानी होता है ।

महावीर की यह देन बिल्कुल अनोखी है। इस ओर न जीसस ने, न बुद्ध ने, न ज़रथुस्त्र ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे महामानव ने कोई मार्ग बताया है। अनुभूति की पूर्णता को कोई व्यक्ति प्राप्त हुए हैं मगर अभिव्यक्ति की पूर्णता महावीर को ही उपलब्ध हुई है।

महावीर की परम्परा सूख गई है। परम्परा सब जाती हैं तो भी वृक्ष खड़ा रहता है। वह फिर से हरा हो सकता है, यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके। फिर नये अंकुर आ सकते हैं उनमें और नये अंकुर आने चाहिए। भगवान् श्री का यह प्रयत्न इस दिशा में ही एक कदम है।

— दयानन्द भार्गव

[illegible], दिल्ली।
२२–१–१९७१

अन्तर्वस्तु अनुक्रम

नहीं चला। जिसे ज्योति का पता चल जाए उसे दिये की याद भी रहेगी? उसे दिया फिर दिखाई भी पड़ेगा? जिसे ज्योति दिख जाए, वह दिये को भूल जाएगा। इसलिए जो दिये को याद रखे हैं उन्हें ज्योति नहीं दिखी है और जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह इस ज्योति को या उस ज्योति को थोड़े ही प्रेम करेगा, वह जो ज्योतिर्मय है उसे ही प्रेम करेगा। जब एक ज्योति में बंध जाएगा उसे तो वहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगी—सूरज में भी, घर में जलने वाले छोटे से दिये में भी, चांद-तारे में भी, आग में—जहां कहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगी। लेकिन अनुयायी व्यक्तियों से बंधे हैं। विरोधी भी व्यक्तियों से बंधे हैं। प्रेमी भर को व्यक्ति से बंधने की कोई जरूरत नहीं।

तो मैं प्रेमी हूं। और इसलिए मेरा कोई बंधन नहीं है महावीर से। और बंधन न हो तो ही समझ हो सकती है—अण्डरस्टैंडिंग हो सकती है।

यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि महावीर को चर्चा के लिए क्यों चुनें? बहाना है सिर्फ। जैसे खूंटी होती है। कपड़ा टांगना, प्रयोजन होता है। खूंटी कोई भी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण में, बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। किसी भी खूंटी से काम लिया जा सकता है। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दिये में भी जल सकती है। स्मरण प्रेम मांगता है, अनुकरण नहीं। और वह स्मरण भी महावीर का जब हम करते हैं, तो भी महावीर का स्मरण नहीं है वह। स्मरण है उस तत्त्व का जो महावीर में प्रकट हुआ। और उस तत्त्व का स्मरण आ जाए तो तत्काल आत्म-स्मरण बन जाता है। और वही सार्थक है जो आत्म-स्मरण की तरफ ले जाए। लेकिन महावीर की पूजा से यह नहीं होता। पूजा से आत्म-स्मरण नहीं आता। बड़े मजे की बात है।

पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है। जो अपने को भूलना चाहते हैं वे पूजा में रस लेते हैं। उनके लिए भी महावीर खूंटी का काम देते हैं, बुद्ध, कृष्ण—सब खूंटी का काम देते हैं। जिसे अपने को भूलना है वे अपने भूलने का वस्त्र खूंटी पर टांग देते हैं। अनुयायी, भक्त, अंधे अनुकरण करने वाले भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूंटियों का उपयोग कर रहे हैं, आत्म-विस्मरण के लिए। पूजा, प्रार्थना, अर्चना सब विस्मरण हैं।

स्मरण दूसरी और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर में उस सार को देखें। जो—किसी में भी, कहीं भी। वह सार हमें दिख जाए, उसकी एक

[illegible] देता भी हूं [illegible] [illegible] भी [illegible] । [illegible] भी [illegible] । [illegible] [illegible] है, [illegible] ? और [illegible] पीछे, [illegible] में [illegible] । [illegible] दिया [illegible] [illegible] हुए [illegible] नहीं था [illegible] हुए [illegible] के [illegible] है ।

[illegible] भी [illegible] [illegible] ।

व्यक्ति के देखने के ढंग में भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता में भेद है और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि में भेद है। एक सुन्दर युवति है, जरूरी नहीं सभी को सुन्दर मालूम पड़े।

मजनू को पकड़ लिया था उसके गांव के सम्राट् ने। और मजनू की पीड़ा की खबरें दूर तक पहुंची थीं। उसका रात देर तक वृक्षों के नीचे रोना और चिल्लाना उसकी आंखों से बहते हुए आंसू, गांव भर में उसकी चर्चा। तो सम्राट् ने दया करके उसे बुला लिया, बोला तू पागल हो गया है। लैला को मैंने भी देखा है। ऐसा क्या है? बहुत साधारण है। उससे सुन्दर लड़कियां तेरे लिए मैं इन्तजाम कर दूंगा। देख। लड़कियां बुला ली थीं उसने। कतार लगा दी दीवार के सामने और कहा कि देख! नगर की सुन्दरतम लड़कियां यहां पर उपस्थित थीं, राजा का निमन्त्रण था। लेकिन, मजनू ने देखा तक नहीं। और मजनू खूब हंसने लगा। उसने कहा, आप समझे नहीं। लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। वह आंख आपके पास नहीं। तो हो सकता है लैला आपको साधारण दिखे। लैला को मैं ही देख पाता हूं असाधारण। मैं मजनू हूं। मजनू की आंख लैला को पैदा करती है, आविष्कार करती है, उद्घाटन करती है—यानी लैला होने के लिए मजनू चाहिए।

एक-एक व्यक्ति में बुनियादी भेद है। इसलिए दुनिया में इतने तीर्थंकर, इतने भगवान्, इतने गुरु हैं। और इसलिए ऐसा हो सकता है कि बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही जगह में एक ही दिन ठहरे और गुजरे हों, एक ही इलाके में घर-घर घूमे हों; फिर भी, गांव में किसी को बुद्ध दिखाई पड़े हों, किसी को महावीर दिखाई पड़े हों, और किन्हीं को दोनों न दिखाई पड़े हों।

जब मैं कुछ देखता हूं तो जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, वही महत्त्वपूर्ण नहीं है। मेरे पास देखने की एक विशिष्ट दृष्टि है। और, दृष्टि प्रत्येक व्यक्ति की अलग है। किसी को महावीर में वह ज्योति दिखाई पड़ सकती है। और, तब उसकी मजबूरी है। हो सकता है कि वह कहे कि बुद्ध में कुछ भी नहीं है और क्राइस्ट में क्या है? मुहम्मद में क्या है? लेकिन, उसकी गलती नहीं है। वह ठीक बात कह रहा है। वह अनुभूतिपूर्ण नहीं मालूम हो रहा। वह स्पष्ट कह रहा है। और जब कोई उससे कहेगा कि महावीर में कुछ भी नहीं है तो वह चौंककर हैरान हो जाएगा। वह भी यह नहीं समझ पाता है। उसके कहना है कि महावीर में कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है तो हो सकता है कि किसी को महावीर में कुछ भी न दिखाई पड़े।

[illegible]

सम्बन्ध में झगड़ा करते रहते हैं। और दियों को पकड़ने वाले ज्योतियों के नाम पर पंथ और सम्प्रदाय बना लेते हैं। और ज्योति से दिये का क्या सम्बन्ध! ज्योति से दिये का सम्बन्ध ही क्या है? दिया सिर्फ एक अवसर था जहाँ ज्योति घटी। और जो ज्योति का आकार दिखा था वह भी सिर्फ एक अवसर था, जहाँ से ज्योति निराकार में गई।

वर्धमान तो दिया है, महावीर ज्योति, सिद्धार्थ तो दिया है, बुद्ध ज्योति है, जीसस तो दिया है—क्राइस्ट ज्योति है। लेकिन हम दिये को पकड़ लेते हैं। और महावीर के सम्बन्ध में सोचते-सोचते हम वर्धमान के सम्बन्ध में सोचने लगते हैं। भूल हो गई। वर्धमान को जो पकड़ लेगा, महावीर को कभी नहीं जान सकेगा। सिद्धार्थ को जो पकड़ लेगा उसे बुद्ध की कभी पहचान ही नहीं होगी। और जीसस को, मरियम के बेटे को, जिसने पहचाना, वह क्राइस्ट को, परमात्मा के बेटे को कभी नहीं पहचान पाएगा। उनमें क्या सम्बन्ध है? दोनों बात ही अलग हैं। लेकिन, हमने दोनों को इकट्ठा कर रखा है—जीसस, क्राइस्ट, वर्धमान, महावीर, गौतम बुद्ध को, दिये और ज्योति को, और ज्योति का हमें कोई पता नहीं है। दिये को हम पकड़े हैं।

मेरा दिये से कोई सम्बन्ध नहीं। कोई अर्थ ही नहीं देखता हूँ उनमें। तो फिर दिये तो हम हैं ही। इसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। दिये हम सब हैं ही। ज्योति हम हो सकते हैं, जो हम अभी नहीं हैं। ज्योति की चिन्ता करनी चाहिए। इधर महावीर को निमित्त बनाकर ज्योति पर विचार करना होगा। जिन्हें महावीर की तरफ से ज्योति पहचान में आ सकती है अच्छा है वहीं से पहचान आ जाए। जिनको नहीं आ सकती उनके लिये किसी और को निमित्त बनाया जा सकता है। सब निमित्त काम में आ सकते हैं।

बहुत विशिष्ट हैं महावीर—इसलिए सोचना भी बहुत जरूरी है उन पर। लेकिन विशिष्ट किसी दूसरे की तुलना में नहीं। आम तौर से हम ऐसा ही सोचते हैं कि कोई व्यक्ति विशिष्ट है तो हम पूछते हैं—किस से? जब मैं कहता हूँ बहुत विशिष्ट हैं महावीर तो मैं यह नहीं कहता हूँ कि बुद्ध से, कि मुहम्मद से। तुलना की बात ही नहीं कर रहा हूँ। प्रत्येक विशिष्ट है—इस अर्थ में—जो घटना कभी घटेगी। अब तक जो घटना घटी, वह भी ज्योतिर्मय होने की घटना और निर्वाण में विलीन हो जाने की घटना, उसमें विशिष्ट है। उस घटना से जीसस विशिष्ट हैं। मुहम्मद विशिष्ट हैं, मन्सूर विशिष्ट है। उस अर्थ

[illegible] है [illegible]।

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] और [illegible]। [illegible] है, क्योंकि [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। और [illegible] है, [illegible] है, [illegible] और [illegible]। [illegible]। [illegible] है। [illegible] है। और [illegible] है, [illegible] और [illegible] है।

[illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है।

ऐसी किताबें हैं, ऐसे नक्शे बनाए हैं, लोगों ने कि कौन किसके ऊपर खड़ा है। वहां भी कौन आगे है, कौन पीछे है, कौन किस खण्ड में पहुंच गया है। ये साधारण लोगों की दुनिया और साधारण लोगों के ख्याल हैं। वे वहां भी यही सोच रहे हैं। वहां कोई ऊंचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है।

असल में ऊंचा और नीचा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। बड़ा और छोटा जहां तक है, वहां तक 'दिया' है। ज्योति बड़ी और छोटी होती नहीं। ज्योति या तो ज्योति होती है या नहीं होती। 'ज्योति' बड़ी और छोटी का क्या मतलब है? और निराकार में खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है, जितनी बड़ी से बड़ी ज्योति की और निराकार में खो जाना भी असाधारण हो जाना है। तो छोटी ज्योति कौन? और बड़ी ज्योति कौन? छोटी ज्योति धीरे-धीरे खोती है, बड़ी ज्योति जल्दी खो जाती है यह ऐसी ही भूल है, इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा।

हजारों साल तक ऐसा समझा जाता था कि अगर हम एक मकान की छत पर खड़े हो जाएं और एक बड़ा पत्थर गिराएं और एक छोटा पत्थर—एक साथ, तो बड़ा पत्थर जमीन पर पहले पहुंचेगा और छोटा पत्थर पीछे। हजारों साल तक यह ख्याल था किसी ने गिराकर देखा नहीं था, क्योंकि बात इतनी साफ-सीधी मालूम पड़ती थी और उचित तर्कयुक्त कि कोई यह कहता भी कि चलो जरा छत पर गिराकर देखें तो लोग कहते पागल हो। इसमें भी कोई सोचने की बात है। बड़ा पत्थर पहले गिरेगा, बड़ा है, ज्यादा वजन है। छोटा पीछे गिरेगा। बड़ा पत्थर? बड़ा पत्थर जल्दी जाएगा। छोटा पत्थर पीछे आएगा। लेकिन, उन्हें पता नहीं था कि बड़ा पत्थर छोटे पत्थर का सवाल नहीं है गिरने में—सवाल है ग्रेविटेशन का, कशिश का जमीन की कशिश का। और यह कशिश दोनों पर बराबर काम कर रही है। छोटे और बड़े का उस कशिश में कोई भेद नहीं। तो जब पहली दफा एक आदमी ने पत्थर 'पिसा' के टावर पर गिराकर देखा, यह [illegible] आदमी रहा होगा। [illegible] दो पत्थर छोड़े और वे [illegible]। और [illegible] दोनों पत्थर साथ गिरे तो वह खुद भी चौंका। उसको भी विश्वास न हुआ होगा। बार-बार गिराकर देखा कि [illegible] हो जाए, नहीं तो लोग [illegible] और [illegible] [illegible]

[illegible] होता है [illegible]। [illegible] और [illegible] प्रकार [illegible]। [illegible], विश्वविद्यालय के [illegible]। [illegible]। [illegible] नहीं। फिर भी, [illegible] और [illegible] हैं। क्योंकि [illegible] है।

[illegible] और [illegible] में भी एक [illegible] है। [illegible] है, [illegible]। [illegible] और [illegible] है। [illegible] और [illegible]। [illegible], [illegible]। [illegible]।

लिए मैंने कहा कि अनुयायी कभी नहीं समझ पाता, समझ ही नहीं सकता। अनुयायी कुछ थोपता है अपनी तरफ से। समझने के लिए बड़ा सरल चित्त चाहिए, अनुयायी के पास सरल चित्त नहीं। विरोधी भी नहीं समझ पाता क्योंकि वह छोटा करने के आग्रह में होता है, अनुयायी से उल्टी कोशिश में लगा होता है। प्रेम ही समझ पाता है। इसलिए जिसे समझना है, उसे प्रेम करना है और प्रेम सदा बेशर्त है। अगर कृष्ण को इसलिए प्रेम किया है कि तुम मुझे स्वर्ग ले चलना तो यह प्रेम शर्तपूर्ण होगा, इसमें कन्डीशन शुरू हो गई। अगर इसलिए महावीर से प्रेम किया है कि तुम ही सहारे हो, तुम्हीं पार ले चलोगे भवसागर से, शर्त शुरू हो गई, प्रेम खत्म हो गया। प्रेम है बेशर्त। कोई शर्त ही नहीं। प्रेम यह नहीं कहता कि तुम मुझे कुछ देना। प्रेम का माग से कोई सम्बन्ध ही नहीं। जहा तक माग है, वहा तक सौदा है, जहां तक सौदा है वहा तक प्रेम नहीं है।

सब अनुयायी सौदा करते है। इसलिए कोई अनुयायी प्रेम नहीं कर पाता और विरोधी किसी और से सौदा कर रहा है, इसलिए विरोधी हो गया है। और विरोध भी इसीलिए हो गया है क्योंकि उसे सौदे का आश्वासन नहीं दिखाई पड़ रहा है कि ये कृष्ण मेरे ले जाएंगे ? तो कृष्ण को उसने छोड़ दिया है, इन्कार कर दिया है। प्रेम का मतलब है बेशर्त, प्रेम का मतलब है वह आंख जो परिपूर्ण सहानुभूति से भरी है और समझना चाहती है। माग कुछ भी नहीं है।

महावीर को समझने के लिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहूँगा कि कोई माग नहीं, कोई सौदा नहीं, कोई अनुसरण नहीं, कोई अनुयायी का भाव नहीं। एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से कि व्यक्ति हुआ जिसमें कुछ घटा—हम देखें कि क्या घटा, पहचानें क्या घटा ? खोजें कि क्या घटा ? इसलिए जैन कभी महावीर को नहीं समझ पाएगा। उसकी शर्त बंधी है। जैसे महावीर को कभी नहीं समझ पाता। बौद्ध बुद्ध को कभी नहीं समझ सकता। इसलिए महावीर के आसपास अनुयायियों का जो समूह इकट्ठा होता है, वह ज्योति को बुझाने में सहयोगी होता है, उस ज्योति को और जलाने में नहीं। अनुयायियों से बड़ा दुश्मन खोजना बहुत मुश्किल है। इन्हें पता ही नहीं कि ये दुश्मनी कर रहे हैं।

अब महावीर पर मैं तो मैं [illegible] कोई भी नहीं। महावीर को [illegible] और [illegible]

[illegible] है, जिस तरह भगवान [illegible] दुनिया के [illegible]
[illegible]
[illegible] और जिसको [illegible]
[illegible]
[illegible] क्योंकि [illegible]
[illegible] और जिस [illegible]
[illegible] नहीं है, बौद्ध नहीं है, हिन्दू नहीं, मुसलमान
नहीं, [illegible]
[illegible] क्योंकि उसका कोई [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] मनुष्य को धार्मिक बनाना [illegible]
[illegible] बिल्कुल ही [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] क्योंकि [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] कोई [illegible] नहीं।

कुछ सिद्ध करने को आतुर हैं। नासमझ इन अर्थों में कि उनमें समझने की उतनी उत्सुकता नही, जितनी कुछ सिद्ध करने की।

एक व्यक्ति हैं, वे आत्मा के पुनर्जन्म पर शोध करते हैं। मुझे किसी ने उनसे मिलाया तो उन्होंने मुझसे कहा, हिन्दुस्तान के बाहर न मालूम कितने विश्वविद्यालयों में वह बोले हैं। यहा के एक विश्वविद्यालय से सम्बन्धित हैं। एक उस विश्वविद्यालय में विभाग भी बना रहे हैं जो पुनर्जन्म के सम्बन्ध में खोज करता है। कुछ मित्र उन्हें लाए थे मेरे पास मिलाने। बीस-पचीस मित्र इकट्ठे हो गए थे। आते ही उनसे बात हुई तो मैंने उनसे पूछा आप क्या कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि आत्मा का पुनर्जन्म है। मैंने कहा कि एक बात मैं निवेदन करूँ कि अगर वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते हैं, तो ऐसा कहते ही आप अवैज्ञानिक हो गए। वैज्ञानिक होने की पहली शर्त है कि हम कुछ सिद्ध नहीं करना चाहते, जो है उसे जानना चाहते हैं। वैज्ञानिक होना है तो आपको कहना चाहिए हम जानना चाहते हैं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है या नही होता है। आप कहते हैं कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो आपने पहले ही मान लिया है कि पुनर्जन्म होता है। अब सिर्फ सिद्ध करने की बात रह गई तो आप वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर सकते हैं। तो अवैज्ञानिक आप हो ही गए। तो मैंने कहा इसमें विज्ञान का नाम जोड़ना व्यर्थ है। वैज्ञानिक बुद्धि कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहती; जो है, उसे जानना चाहती है। और शास्त्रीय बुद्धि इसलिए अवैज्ञानिक हो गई कि वह कुछ सिद्ध करना चाहती है, जो है उसे जानना नहीं चाहती।

जो है, हो सकता है हमारे मन में समझने-सोचने से बिल्कुल भिन्न हो, विपरीत हो। इसलिए शास्त्रीय बुद्धि का आदमी [illegible] से [illegible] है, [illegible] है, पता नहीं कैसा है? और जब कोई हमारे अनुकूल ही होगा, वह [illegible] नहीं। और अनुकूल ही होता तो हम [illegible] में भिन्न [illegible]। [illegible] तो यही है कि वह प्रतिकूल होगा। हम जानते हैं, वह प्रतिकूल होगा। लेकिन हम सत्य को अपने अनुकूल [illegible] चाहते हैं, तब सत्य को [illegible] पड़ता है। तब शास्त्रीय बुद्धि असत्य की तरफ ले जाती है। [illegible] न मालूम कितने [illegible] पर [illegible] [illegible]? [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] नहीं है।

सत्याग्रह का यही तो एक भेद तो यह है कि सत्याग्रही के सामने जो कष्टसाध्य है, जो सत्य है, जो स्वतः प्रतीत है, हम उन्हें पायें। और उस रास्ते पर चलना है तो सबसे पहले उसूल को छोड़ें, ऐसे हठ न करें कि कहाँ है सत्याग्रह। [illegible] यही हमारा [illegible] [illegible] सत्याग्रह के [illegible] हम [illegible] सत्याग्रह [illegible] [illegible] के द्वारा [illegible] कि [illegible] जाता है। लेकिन, मैं मानता हूँ कि इस मार्ग में कभी सफल हो नहीं सकता। क्या भी नहीं आगा जा सकता। अतः यहाँ पहुँचने पर सत्याग्रही के कोई रास्ता ही नहीं होगा। उसके सामने है। कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ना चाहिए।

ने; राग और रागिनियों को भी चित्रित किया है। लेकिन, वे भी उनकी ही समझ में आ सकती हैं, जिन्होंने संगीत सुना है। बहरे आदमी के वे भी कुछ समझ नहीं पड़ती। मेघ घिर गए हैं, वर्षा की बूंदें आ गई हैं, और मोर नाचने लगे हैं और एक लड़की है। उसकी साड़ी उड़ी जाती है और वह घर की तरफ भागी चली जाती है। उसके पैर के घुंघरू बज रहे हैं। तब किसी राग को किसी ने चित्रित किया है। लेकिन बहरे आदमी ने कभी आकाश में बादलों का गर्जन नहीं सुना। इसलिए चित्र में भी बादल बिल्कुल शान्त मालूम पड़ते हैं। उनके गर्जने का सवाल ही नहीं उठता। बहरे आदमी ने कभी पैरों में बंधे घुंघरू की आवाज नहीं सुनी। तो घुंघरू दिख सकते हैं और उसे जो दिखता है घुंघरू-घुंघरू ही नहीं। जो दिखता है, वह दिखा है, घुंघरू तो कुछ और ही है जो घटता है वह जो दिखता है वह और है। घुंघरू सुना जाता है। और जो जो दिखता है उसमें, और जो सुना जाता है उसमें, बड़ा फर्क है। एक चीज दिखाई पड़ रही है, घुंघरू पैर में बंधे। लेकिन, जिसने कभी घुंघरू नहीं सुने उसे क्या दिखाई पड़ता है? उसे एक चीज दिखाई पड़ रही है जिसका घुंघरू से कोई सम्बन्ध नहीं। वह चित्र बिल्कुल मृत है क्योंकि उस चित्र से ध्वनि का कोई अनुभव उस आदमी को नहीं हो सकता जिसने ध्वनि ही नहीं सुनी। मगर यह भी आसान है क्योंकि कान और आंख एक ही तल की इन्द्रियां हैं। यह इतना कठिन नहीं। है तो बिल्कुल कठिन फिर भी उतना कठिन नहीं है।

जब कोई व्यक्ति अतीन्द्रिय सत्य को जानता है तो सभी इन्द्रियां एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और जवाब देने में असमर्थ हो जाती हैं। बोलना पड़ता है इन्द्रिय से और वह जाना गया है वह वहां जाना गया है, जहां कोई इन्द्रिय माध्यम नहीं है। एक इन्द्रिय माध्यम हो जानने में तो दूसरी इन्द्रिय अभिव्यक्ति में माध्यम बन भी पाती। और अगर इन्द्रिय माध्यम हो न हो अनुभव की तो फिर इन्द्रिय कैसे कहे? इसलिए जो जानता है, एकदम मुश्किल में पड़ जाता है। बहुत बार तो वह मौन हो जाता है। 'मौन' भी बड़ी पीड़ा देता है क्योंकि लगता है कहे कि क्या, लगता है कि कह दे। चारों तरफ वह ऐसे लोगों को देखता है जिनको भी वह मिल सकता है। और आंसुओं से भरी हुई आंखें देखता है, उदास चेहरे देखता है, चिन्ता भरे हुए हृदय देखता है। भय, गहरा दुख, विक्षिप्त मनुष्यों को देखता है। और भीतर देखता है, वह परम आनन्द भीतर हो रहा है और ऐसा लगता है कि उन्हें भी दे सकता

है जो निरन्तर [illegible] है। कोई कारण नहीं है, कोई मार्ग नहीं है, कोई [illegible] नहीं है, [illegible] है। और इसमें से [illegible] [illegible] जा रहा है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] जाता है [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] और [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] कोई [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible]

[illegible] हो जाएँ, [illegible] है। [illegible] कोई [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] होंगे, [illegible] और [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] होगा, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

परिग्रही जो व्यक्ति होगा, वह चीज सब संग्रह करता है। चाहे धन संग्रह करे, चाहे शब्द संग्रह करे, चाहे यश संग्रह करे, इसमें कोई फर्क नही पडता। एक परिग्रह की वृत्ति है मनुष्य के अन्दर कि इकट्ठा कर लो। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके इकट्ठा करने में कुछ थोडा-बहुत अर्थ भी हो सकता है—जैसे कि कोई धन इकट्ठा करे। धन इकट्ठा करने में थोडा अर्थ हो सकता है क्योंकि धन परिग्रह की वृत्ति से ही पैदा हुआ है और परिग्रही वृत्ति का ही वाहन है, परिग्रही वृत्ति की ही विनिमय मुद्रा है। यानी परिग्रही व्यक्ति का ही धन आविष्कार है। धन का कोई व्यक्ति संग्रह करे तो सार्थक भी है क्योंकि धन परिग्रह का ही माध्यम है और परिग्रह के लिए ही है लेकिन जिस अनुभव से महावीर गुजरे हैं वह अपरिग्रह मे घटा है। और उनके शब्दो को जो इकट्ठा कर रहा है, वह परिग्रही वृत्ति का व्यक्ति है।

महावीर को उत्सुकता नही है शब्द संग्रह की, न बुद्ध को है, न क्राइस्ट को है। वैसे तो महावीर भी किताब लिख सकते थे लेकिन महावीर ने किताब नही लिखी, कृष्ण ने भी किताब नही लिखी, बुद्ध ने भी किताब नही लिखी और जीसस ने भी किताब नही लिखी। सिर्फ लाओत्से ने, इन असाधारण लोगों में से, किताब लिखी और वह भी जबरदस्ती में लिखी।

लाओत्से ने अस्सी साल की उम्र तक किताब नही लिखी। लोग कहते कि कुछ लिखो। और वह कहता कि जो लिखूंगा वह झूठ हो जाएगा। जो लिखना है वह लिखा नहीं जाता, इसलिए इस उपद्रव में मैं नही पडता। अस्सी साल तक बचा रहा लेकिन सारे मुल्क में यह भाव पैदा हो गया कि अब बूढा हुआ जाता है, अब मर जाएगा, जो जानता है वह खो जाएगा। आखिर उम्र में लाओत्से पर्वतों की तरफ चला गया, सब छोड-छाडकर, पता नहीं कि वह कब मरा। उसने कहा कि इससे पहले कि मृत्यु होने, मुझे खुद ही चला जाना चाहिए। आखिर मृत्यु की प्रतीक्षा क्यों करें, इतना परवश भी क्यों हो? जब वह चीन की सीमा छोडने लगा तो चीन के सम्राट ने उसे रुकवा दिया चुंगी-चौकी पर और कहा कि टैक्स चुकाए बिना नही जाने देंगे। लाओत्से ने कहा कैसा टैक्स? न हम कोई सामान ले जाते हैं बाहर, न कुछ लाते हैं, खाली जाते हैं। सम्राट ने कहा, सच तो यह है कि जिन्दगी भर जो जाना है। कुछ सामान ऐसा नहीं जिस पर टैक्स देना पडे। टैक्स देना है तो सम्राट ने पहरा लगवा दिया और उससे कहा कि टैक्स तो थोडा-बहुत लिख के दे दो। उसको इसलिए कभी कोई आदमी ऐसे नहीं रुका, सब कुछ

[illegible] हो तो जाते हैं। तुम बोलते नहीं हो, किन्तु तुम्हारे भीतर है। [illegible] था, [illegible] दे था, [illegible] [illegible] आत्मा के साथ था, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कोई उपाय नहीं है, इसलिए [illegible] [illegible] भी [illegible] है। [illegible]

[illegible] में [illegible] लोगों में [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

देख रहे हैं : मेरी मुसीबत भी देख रहे हैं कि कुछ है जो नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि आप थोड़ा समझ जाएं। लेकिन, एक किताब है, न आंख है, न तड़प है, न पीड़ा है। सब साफ-सुथरा सीधा है। फिर, किताब बनती है।

इनमें से किसी ने भी यह फिक्र नहीं की कि किताब बचे। इन सबकी फिक्र यह थी कि यह दें तो बात खतम हो जाए। इससे ज्यादा उसको बचाना नहीं है। लेकिन, बना ली गई। बचाने वाले लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा इसको बचाना होगा, बड़ी कीमती चीज है, इसको बचा लो। उन्होंने बचाने की कोशिश की। फिर उनकी बचाई हुई किताब पर किताबें चलती आईं, टीकाएं चलती रहीं। और वह बचाना भी महावीर के ठीक सामने नहीं हो सका। उसका कारण है कि शायद महावीर ने इन्कार किया होगा। बुद्ध ने इन्कार किया होगा कि यह सामने न हो। तुम लिखना मत। तो वह तीन-तीन सौ, चार-चार सौ, पांच-पांच सौ वर्ष बाद हुआ, यानी जो भी लिखा गया है सुनकर नहीं लिखा गया है। किसी ने सुना है. फिर किसी ने किसी से कहा है। ऐसे दो चार पीढ़ी बीत गई है और कहते-कहते वह लिखा गया है। महावीर असमर्थ हैं कहने में। फिर उनको सुननेवाले ने किसी से कहा है, फिर उसने किसी से कहा है, फिर, दो, चार पांच पीढ़ियों के बाद वह लिखा गया है। फिर उस पर टीकाएं चलती रही हैं, विवाद चलते रहे हैं। वे हमारे पास शास्त्र हैं।

अगर किसी को महावीर से चूकना हो तो इन शास्त्रों से सुगम उपाय नहीं। इन शास्त्रों में चला जाए तो वह महावीर तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। तो मैं कोई शास्त्रों से महावीर तक पहुंचने की न तो सलाह देता हूं और न मैं उन शास्त्रों से उन तक गया हूं और न मानता हूं कि कोई कभी जा सकता है। मैं बिल्कुल ही अशास्त्रीय व्यक्ति हूं। अशास्त्रीय से कहना चाहिए एकदम शास्त्र-विरोधी।

फिर, महावीर तक पहुंचने का क्या रास्ता है? शास्त्रीय रास्ता दिखाई पड़ता है तो इसलिए शास्त्र-संन्यासी शास्त्र खोले हुए हैं, खोज रहे हैं महावीर को कि क्या रास्ता है और क्या मार्ग है? अगर सारे शास्त्र खो जाएं तो [illegible], पण्डितों और पंडितों [illegible] विवाद न महावीर को जानेंगे। [illegible] है [illegible] आप [illegible] शास्त्र [illegible] को महावीर का क्या पता है? [illegible] का [illegible]। लेकिन [illegible] का [illegible] हो सकता है? क्या यह [illegible] है कि महावीर [illegible] और अस्तित्व के किसी कोने में

मुश्किल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] की ओर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] के [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] हुआ है, [illegible] [illegible] के [illegible] की [illegible] और के [illegible] की [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के और [illegible] [illegible] [illegible] में और [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] हो, [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible], [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कोई [illegible] [illegible], [illegible] रहा है। [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] और [illegible] है।

सुना करते थे और आज से दो सौ वर्ष पहले कोई मान भी नहीं सकता था कि यह भी कभी सम्भव होगा कि लंदन में कोई बोलेगा और श्रीनगर में कोई सुनेगा। कोई नहीं मान सकता था। लेकिन क्या आप समझते हैं कि उस दिन लंदन में जो बोला जा रहा था, वह श्रीनगर में नहीं सुना जा रहा था? यानी मेरा मतलब यह है कि उस दिन जो भी ध्वनि तरंगें लंदन में बोलने से पैदा हो रही थीं वे श्रीनगर की इस डल झील के पास से नहीं गुजर रही थीं? अगर नहीं तो आज आप रेडियो में कैसे पकड़ लेते? अभी भी यहां से गुजर रही हैं सब तरंगें। सारे जगत् में अभी जो बोला जा रहा है, वह भी आपके पास से गुजर रहा है। सिर्फ एक यांत्रिक तरकीब की जरूरत है जिससे वह पकड़ा जा सके। बस। यानी मेरा कहना है कि कृष्ण ने अगर कभी भी बोला है तो आज भी उसकी ध्वनि तरंगें, किन्हीं तारों के निकट से गुजर रही हैं। यह भी ध्यान रहे कि लंदन में जो बोला गया है ठीक आप उसी वक्त नहीं सुन लेते हैं उसे, क्योंकि ध्वनि तरंगों को आने में समय लगता है। तो जब लन्दन में बोला जा रहा है तब आप ठीक उसी वक्त नहीं सुनते हैं, थोड़ी देर बाद सुनते हैं। मतलब यह हुआ कि इतनी देर ध्वनि तरंगें आप तक यात्रा करती हैं।

जो कभी भी बोला गया है उसकी ध्वनि तरंगें आज भी यात्रा करती हैं, किन्हीं तारों के पास से गुजर रही हैं। और अगर उन तारों के लोगों के पास व्यवस्था होगी, यन्त्र भी हों तो वे उन्हें पकड़ लेते होंगे। यानी किसी तारे पर अभी भी महावीर के वचन सुने जा रहे होंगे। इसका क्या मतलब हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि इस अनन्त आकाश में, अनन्त है इसलिए कुछ नहीं खोता, जो भी पैदा होता है वह यात्रा करता रहता है।

यह कि ध्वनि की यात्रा चल रही है। लेकिन और भी सूक्ष्म तरंगें हैं जो आकृति की तरंगें पैदा करती हैं। जब हम बोलते हैं तब ध्वनि की तरंगें पैदा होती हैं। लेकिन जब हम [illegible] अनुभव करते हैं तब भी सूक्ष्म तरंगें पैदा होती हैं और [illegible] होती हैं और वे और भी सूक्ष्म आकाश में यात्रा करती हैं। अगर [illegible] आकाश में घूम रही हैं ध्वनि तरंगों की [illegible]। अगर कोई [illegible] व्यवस्था हो सके तो और सूक्ष्म आकाश में [illegible] की तरंगों को भी पकड़ा जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] वह आदमी [illegible] है कि वह [illegible] उनको पुनर्जीवित करे।

[illegible] यदि हम [illegible] की संस्कृति [illegible] और [illegible] सकते हैं। [illegible] कोई [illegible] हैं। [illegible] है कि [illegible] हो जाए। [illegible] हो सकता। [illegible] और [illegible] हो गई। [illegible] और [illegible] के [illegible] और [illegible] है और [illegible] की [illegible] है तो और कोई [illegible] नहीं। [illegible] की विचार को [illegible], इससे बड़ी [illegible] नहीं सकता।

इसका सारा इन्तज़ाम किया। अगर एक व्यक्ति करे तो बड़ा मुश्किल है क्योंकि उसका पक्का कैसा माना जाए कि आदमी कल्पना नहीं कर रहा है। कल्पना कर सकता है। लेकिन अलग-अलग लोगों ने इसके प्रयोग किए और निकटतम अनुमतियों पर पहुँच गए कि वह नक्शा ऐसा होगा। वैज्ञानिक तो पहले बिल्कुल इन्कार किए कि ये कभी हो ही नहीं सकता, इसका कोई रिकार्ड ही नहीं, ऐसा कोई द्वीप कभी रहा नहीं महाद्वीप पर, इसका कोई हिसाब ही नहीं कहीं। लेकिन ये लोग अपना काम करते चले गये और इन लोगों के दबाव से अन्ततः वैज्ञानिकों को भी चिन्तना करनी पड़ी कि कुछ हो सकता है। इसकी खोज-बीन वैज्ञानिक ढंगों से की गई और पता चला कि ऐसा एक महाद्वीप निश्चित ही रहा था और वह आज समुद्र के तल में पड़ा हुआ है। और जहाँ इन साधकों (मिस्टिक्स) ने कहा था कि वह है, वह करीब-करीब वहीं है। उस पर बड़ी गहराई की पानी की परतें हैं। और इनने जो कहा था कि उसमें इस तरह के पहाड़ होने चाहिए, इन-इन रेखाओं पर, वहीं पहाड़ भी हैं। इसका भी वैज्ञानिक अनुसन्धान चला और अतलांतिस पर बड़ी खोज चल रही है कि क्या वहाँ से कुछ उपलब्ध हो सकेगा? लेकिन उसकी पहली खबर देने वाले ये लोग थे जिनका कोई मतलब न था। उनकी बात ही बिल्कुल झूठ समझी गई कि अतलांतिक महासागर के नीचे अतलांतिस डूबा हुआ है।

तो मैं इसलिए यह कहता हूँ कि मेरा रास्ता शास्त्र के मार्ग से बिल्कुल नहीं है। और मेरी यह भी समझ है कि उस मार्ग जैसा कोई मार्ग भी नहीं है। इसलिए जो भी उस मार्ग पर चले गए हैं सिर्फ भटकने वाले सिद्ध हुए हैं। वह कहीं पे जाने वाले सिद्ध नहीं हुए हैं। मगर यही है। किताब पढ़ने से ज्यादा ज्ञान और क्या हो सकता है हालांकि कुछ लोगों के लिए यह भी कठिन है। किताब पढ़ने से ज्यादा ज्ञान और क्या हो सकता है? लेकिन आकाशिक रिकार्ड, जिनकी मैं बात कर रहा हूँ कि अस्तित्व की गहराइयों में अनुभूतियाँ सुरक्षित रह जाती हैं, वहाँ से उन्हें पुनः पकड़ा जा सकता है और वहाँ से उनसे पुनः जीवन्त सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

तो मैं कह रहा था महावीर के बाबत, उसकी शास्त्रानुसार जाँच-बीन मैंने की कोशिश भी नहीं करता। उसकी कोई जरूरत भी नहीं। किसी और द्वार से ही मैं देखता हूँ और उस देखने में जो कुछ मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं आपसे कहता चलूँगा। किन्तु जब तक कोई और लोग मेरे साथ उस प्रयोग को करने के लिए राजी न हों तब तक मेरी बात काल्पनिक है या नहीं कुछ

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

जीसस ने कि जो पकड़वा रहा था उसके पैर छुए, पैर धोए। गुरजिएफ कहता है कि पैर पड़ने योग्य था वह जूडास। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि जिसने इतने पर भी इन्कार न किया जब जीसस ने कहा कि तुम मुझे पकड़वा दो, मेरी फांसी लगवानी जरूरी है। अगर फांसी नहीं लगती, जो मैं कह रहा हूँ वह खो जाएगा। मेरी फांसी लगती है तो सील मोहर हो जाएगी। मेरी फांसी ही अब मेरा काम कर सकती है और कोई उपाय नहीं है। तो तुम मुझे फांसी लगवा दो। फांसी से बचाने वाला मित्र खोजना आसान है। फांसी लगवाने वाला मित्र खोजना बड़ा मुश्किल है।

इसलिए गुरजिएफ ने जब पहली दफा यह बात कही तो एक बड़ी मुश्किल का मामला हो गया। सारी ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया कि यह बकवास है। यह कहता क्या है? यह तो हमारा सारा हिसाब ही पलट गया। यह तो बात ही ठीक नहीं। लेकिन एक आदमी हिम्मत जुटाकर नहीं आया कि आकर साबित करता कि यह आदमी कहता कहाँ से है। लेकिन मैंने प्रयोग किया और मैं हैरान हुआ कि वह ठीक कहता है। जूडास दुश्मन नहीं है। जूडास मित्र है। यह फकीर ठीक कहता है। वह गलत कहता ही नहीं बिल्कुल। मगर बड़ी मुश्किल से खोज पाया होगा। तो मेरा कहना है कि शास्त्र खोज का रास्ता ही नहीं बल्कि सबसे बड़ी रुकावट है क्योंकि मन को ऐसी बातों से भर देता है जो कि हो सकता है नहीं भी हों। और तब उनसे नीचे उतरना, उनसे विपरीत जाना, भिन्न जाने मुश्किल हो जाता है, एकदम मुश्किल हो जाता है। और महावीर के सम्बन्ध में तो बहुत ज्यादा हुई है यह बात, हद की है, बहुत ही हद की है। गुरजिएफ ने जो यह कहा तो उसको उसने नाम दिया— [illegible]। उसने कहा कि [illegible] है। यह [illegible] और [illegible]। जीसस ने इस ख्याल पर अपने सिर को [illegible] और [illegible] को कहा कि जो मैं कह रहा हूँ अगर तुम्हें बहुत दूर तक पहुँचाना हो उसकी खबर, तो मेरी फांसी लगवा [illegible]। [illegible] मेरी फांसी ही [illegible] [illegible]।

[illegible] मुश्किल में डालती है। [illegible] उपाय नहीं है। [illegible] है। इसलिए इन [illegible] में बहुत ऐसी बात होगी

तो शायद आपका पहली दफा ही ध्यान में आये, पहली दफा ही सुने आप। लेकिन उस कागज पर मैं लिखता हूं कि [illegible] कि पैसे कहीं, और न कहना।' इसलिए इनकार कर देना कि [illegible] दफा [illegible] से नहीं। अगर [illegible] हूं तो और पर लिखना।"

प्रश्न : आपने कहा कि आप महावीर के स्वभाव में अनुभूति से कुछ कहना चाहते हैं, पर यदि यह जानना हो कि जो आपने कहा है वह ठीक है या गलत है, इसका कोई मापदंड जो उसी स्तर का प्रयोग करके देख ले। मुझे लगता है कि इसका भी मतलब है कि आपके कहने की प्रामाणिकता क्या हो सकती है। यह मतलब यह है कि महावीर के जीवन की कोई घटना [illegible] ऐतिहासिक [illegible] प्रमाण नहीं है, और यदि [illegible] है तो वह [illegible] कहना है कि जिस प्रकार आप इसके जीवन की कोई [illegible] [illegible] आप [illegible] उसी प्रकार आप महावीर के पिछले जीवन की अनुभूति में जान सकेंगे। क्या आप इस प्रकार बताना पसंद करेंगे?

तो मेरे लिये बाहर के जीवन का कोई अर्थ ही नहीं कि महावीर कब पैदा हुए, कब मरे, शादी की या नहीं की, बेटी पैदा हुई कि नहीं हुई। इन सबसे मुझे प्रयोजन ही नहीं, कोई अर्थ ही नहीं। हो तो ठीक, न हुआ हो तो ठीक। मैं तो यहां तक कहना चाहता हूं कि महावीर भी हुए हों तो ठीक, न हुए हों तो ठीक। यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं है। जो महत्त्वपूर्ण है वह तो अन्तर में जो गति हुई, चेतना में जो विकास हुआ, जो रूपान्तरण हुआ वह महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो किसी के अन्तर्जीवन मे उतरा जा सकता है लेकिन तब भी तुम जांच नहीं कर पाओगे क्योंकि तुम खुद ही अपने अन्तर्जीवन से परिचित न हो। अगर फिर भी मेरी बात की जांच करनी हो तो तुम्हें अपने अन्तर्जीवन मे उतरना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि तुम्हारे बहिर्जीवन के बारे में यदि कोई कुछ घटनाएं बताये तो इससे यह पता नहीं होता कि वह महावीर के बारे मे जो बताएगा वह ठीक होगा। क्योंकि तुम मौजूद हो और तुम्हारे बहिर्जीवन की घटनाओं में उतरना बड़ी साधारण-सी कला की बात है जो एक साधारण-सा टेलिपैथिस्ट भी बता सकेगा, एक साधारण सा ज्योतिषी भी बता सकेगा। वह चार आने लेकर भी बता सकेगा। तो बहिर्जीवन का कोई मूल्य नहीं, अगर कोई बता भी दे तुम्हारे बहिर्जीवन को तो उससे कुछ प्रामाणिकता नहीं होती कि वह महावीर के अन्तर्जीवन के बारे में जो कहेगा वह कोई अर्थ रखता है। असल में बहिर्जीवन का कोई ऐसा सम्बन्ध ही नहीं है अन्तर्जीवन से, और इसीलिए यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहरी जीवन एक है, महावीर का बाहरी जीवन दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है, फिर भी अन्तर्जीवन एक है और बहिर्जीवन को देखने वाले लोग इसलिए मुश्किल में पड़ जाते हैं।

जिसने महावीर के बहिर्जीवन को पकड़ लिया है, बुद्ध का जीवन समझने में वह असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि जो महावीर के बहिर्जीवन में है, वह सोचता है कि अन्तर्जीवन से अनिवार्य रूप से बंधा हुआ है। जैसे वह देखता है कि महावीर नग्न खड़े हैं तो वह सोचता है कि जो परम ज्ञान को उपलब्ध होगा वह नग्न खड़ा होगा। और यदि बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं तो वह कैसे परम ज्ञान को उपलब्ध होंगे। बहिर्जीवन की पकड़ से बाधा हो अन्तर्जीवन के सम्बन्ध में इतनी भ्रान्तियां खड़ी हो गई हैं। मुझे तो उससे प्रयोजन ही नहीं है।

इसलिए, अगर यह कि मैं ठीक कह रहा हूं महावीर के सम्बन्ध में या नहीं, इस बाबत बाहर का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ केवल यह है कि मेरे अन्त-

की तरह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कुआरी लड़की से कोई पैदा हो सकता है, जिसने पुरुष का सम्पर्क न हुआ हो। बाहर की दुनिया की यह घटना ही नहीं है। बाहर की दुनिया में किसी कुंआरी लड़की से कोई लड़का कैसे पैदा होगा। लेकिन जिन्होंने इस पर जोर दिया है, उनकी दृष्टि बड़ी गहरी है। ये भीतर की घटना का ही कह रहे हैं कि जीसस जैसा बेटा अत्यन्त कुआरी आत्मा से ही जन्म ले सकता है, अत्यन्त 'इनोसेण्ट', भोली। कुंआरा शरीर नहीं, कुंआरी आत्मा—कुआरे चित्त से। और यह भी हो सकता है कि शरीर कुंआरा हो और चित्त बिल्कुल कुआरा न हो। इससे उल्टा भी हो सकता है कि शरीर कुंआरा न हो और चित्त बिल्कुल कुआरा हो। जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म वर्जिन गर्भ से ही हो सकता है, कुंआरी लड़की से ही हो सकता है। यह इतिहास में नहीं है। लेकिन इतिहास अगर सिद्ध भी कर दे तो नुकसान हो जाएगा। मैं तो मानूंगा कि यह बात अप्रमाणित ही रहनी चाहिए कि जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म एक कुआरे मन से होता है। और यदि किसी मां को जीसस जैसे बेटे को जन्म देना हो तो उसके चित्त का अत्यन्त कुआरा होना जरूरी है और कुंआरेपन का कोई सम्बन्ध शरीर से है ही नहीं। शरीर तो यन्त्र है। कुंआरापन तो आन्तरिक मनोदशा है।

अब जैसे, महावीर के पैर को सर्प काट लेता है और दूध बहता है। इसे किसी भी ऐतिहासिक की तरह से, वैज्ञानिक की तरह से सिद्ध नहीं किया जा सकता। करने वाले करते हों, पर गलत करते हैं। वे महावीर को व्यर्थ करवा देंगे। और जो बात है, जो सत्य है, जो गाथा है, वह खो जाएगी। बात बहुत और है। इस बात में किसी चित्त भाव पर ही ख्याल है। सर्प भी काटे, जहर भी महावीर को कोई दे, मारने को भी कोई आ जाए तो भी महावीर का मन मां से भिन्न नहीं हो पाता है। दूध निकलने का कुल मतलब इतना है कि महावीर का मन मातृत्व से भरपूर है, वो से अन्यथा यह नहीं हो सकते। उनका होना ही मातृत्वमय है। उनके भीतर से कुछ और नहीं निकल सकता है सिवाय दूध के। लेकिन, न तो शारीरिक अर्थों में, न तथ्य और इतिहास के अर्थों में, इस बात का कोई मूल्य है। अब, जैसे हम, जो भी सिद्ध करने जाएंगे—और हम कभी जाकर पूछें जैन लोगों से—कोई कहेगा यह बिल्कुल सच है; कोई कहेगा यह बिल्कुल झूठ है। महावीर के पैर से दूध कैसे निकल सकता है? यह तो झूठ है। और दूसरे व्यक्ति इसे सिद्ध करने की कोशिश करेंगे किसी तर्कीब से कि पैर से दूध निकल सकता है।

निकल सकता है। लेकिन इसलिए मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यह मैं सिद्ध करने जाऊंगा ही नहीं। सिद्ध कर भी सकता हूं तो भी सिद्ध करने नहीं जाऊंगा; क्योंकि मेरी दृष्टि ही यह है कि महावीर को प्रसंग बना कर 'तुम' कैसे गति कर सकते हो। और यह तब हो सकता है कि बहुत कुछ जो कहा जाता है वह छोड़ देना पड़े, बहुत कुछ जो नहीं कहा जाता है, उसे खोज लेना पड़े। और, हम जब एक दृष्टि लेकर प्रवेश करते हैं और अन्तस् की खोज में चलते हैं? कि कठिनाई क्या है?

समझो कि मैं एक बहुत बहादुर आदमी के सम्बन्ध में कहूं कि यह बहुत कमजोर है तो शायद वह भी मुझसे पहली बार राजी न हो कि आप यह मेरे सम्बन्ध में क्या कह रहे हैं? मेरे पास प्रमाण पत्र हैं बहादुरी के, सर्टिफिकेट हैं। मैं सिद्ध कर सकता हूँ कि मुझसे बड़ा कोई बहादुर नहीं है। महावीर-चक्र है मेरे पास। युद्ध के मैदान पर कभी पीछे नहीं लौटा हूँ। लेकिन ये प्रमाण-पत्र कुछ सिद्ध नहीं करते हैं। फिर भी यह हो सकता है कि वह भीतर से एक भयभीत आदमी हो। और ऐसा हुआ है कि जो व्यक्ति अन्तस् चेतन में भयभीत होता है, वह बाहर के कृत्यों में निर्भय सिद्ध करने की कोशिश में लगा रहता है, यानी वह बाहर के कृत्यों से अपने को निर्भय सिद्ध करने के जो उपाय कर रहा है, वह उपाय कर ही इसलिए रहा है कि भीतर जो उसका भय है उसे भूल जाए और मिट जाए।

एक एक व्यक्ति मेरे पास आया जिसको कोई भी नहीं कह सकता कि वह भयभीत होगा। शरीर से बलिष्ठ है, हर तरह के साधनों से सम्पन्न है, जेलें काटी हैं, सबल है, और उसके सामने खड़ा हो जाए तो आदमी हिल जाए। उस आदमी ने मुझसे कहा कि मैं इतना डरता हूँ कि जब मैं बोलने खड़ा होता हूँ तो मेरे पैर कांपने लगते हैं और मुझे लगता है कि आज मेरे मुंह से शब्द निकलेगा, या नहीं। निकल जाता है, यह दूसरी बात है परन्तु सदा भय बना रहता है। अब इस आदमी को खुद ही ख्याल आ जाए तो ठीक है। [illegible] जाए कि [illegible] तो बहुत मुश्किल हो जाए। अब अन्तर्दृष्टि में [illegible] नहीं। और यदि मैं [illegible] आपके सम्बन्ध में यह [illegible] कि आप [illegible] इन्कार करने [illegible]। और [illegible] कि आप [illegible] [illegible] नहीं होता कि यह [illegible] [illegible]

इसलिए मेरा प्रयोजन ही भिन्न है। और एक ही उपाय है उस प्रयोजन का—क्योंकि मेरा प्रयोजन तभी सिद्ध होता है, नहीं तो सिद्ध ही नहीं होता—अगर मैं यह बता भी दूं कि तुम कब पैदा हुए, तुम्हारी कब शादी हुई, कब लड़का पैदा हुआ तो भी मेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, असिद्ध होता है क्योंकि फिर मैं तुम्हारे बहिर्जीवन पर ही जोर देता हूं और तुम्हारी दृष्टि को मैं फिर भी अन्तर्मुखी नहीं कर पाता। और तुम बहिर्मुखी जीवन दृष्टि को ही पुनः पुनः सिद्ध करोगे और फिर भीतर उतरने से रह जाओगे। मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बातचीत से तुममें बेचैनी पैदा हो जाए और ऐसा लगने लगे कि पता नहीं यह बात सच है या झूठ, तो तुम मुझसे प्रमाण मत पूछो। फिर तुम प्रमाण की तलाश में निकल जाओ खुद। अगर बात झूठ भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे जहां पहुंचना चाहिए। और बात सही भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे। और जिस दिन तुम वहां पहुंच जाओगे तो जरूरी नहीं कि तुम लौटकर मुझसे कहने आ जाओ। जैसे समझ लो कि इस कमरे में आग नहीं लगी है और मैं तुमसे चिल्लाकर कहता हूं कि इस कमरे में आग लगी हुई है और मर जाएंगे अगर हम भीतर रहते हैं, चलो बाहर! चलो! और तुम कहो कि कहीं कोई धुआं नहीं लगता, कोई लपट नहीं दिखाई पड़ती। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम एक बार बाहर चलो तो तुमको पता चल जाएगा कि मकान में आग लगी थी। [illegible] भीतर हो कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा, और तुम बाहर पहुंच जाओ और [illegible] कि मकान में आग नहीं लगी थी। लेकिन बाहर जाकर [illegible] फूल खिले [illegible], जो तुमने कभी नहीं देखा, और ऐसे फूल खिले [illegible] कभी नहीं देखे और ऐसा आनन्द है जो तुमने कभी नहीं अनुभव किया [illegible] तुम मुझे धन्यवाद दोगे, तुम मुझे कहोगे [illegible] [illegible]

[illegible] मकान में आग नहीं [illegible] यहीं तो हम

बाहर नहीं आ [illegible] थे। और जब [illegible] भगवान् के [illegible] नहीं आ [illegible]। इसलिए [illegible] है [illegible] नहीं है [illegible] से होता ही [illegible] में होता है। [illegible] नहीं [illegible] में [illegible] नहीं है [illegible] से होता [illegible] होता है, [illegible], [illegible] [illegible] हैं और [illegible] कोई [illegible] नहीं, [illegible] और [illegible]। [illegible] हैं।

कहते कि यह रास्ता कहीं नहीं जाता है। यह रास्ता भी कहीं जाता है। लेकिन जहाँ वह जाना चाहता है वहाँ नहीं जाता बल्कि उससे उल्टा जाता है। प्रज्ञा की खोज में निकले हुए व्यक्ति को शास्त्र व्यर्थ है क्योंकि शास्त्र का रास्ता प्रज्ञा को नहीं जाता, पांडित्य को जाता है। और पांडित्य प्रज्ञा से बिल्कुल उल्टी चीज है। पांडित्य है उधार और प्रज्ञा है स्वयं की। और ऐसा असम्भव है कि उधार सम्पदा को कोई कितना ही इकट्ठा कर ले तो वह स्वयं की सम्पदा बन जाए। अब मैं यह कहता हूँ कि शास्त्र से नहीं जाया जा सकता तो भूल कर भी मत सोचना कि मैं शास्त्र की निन्दा करता हूँ।

मैं तो केवल शास्त्र का स्वभाव बता रहा हूं और यदि शास्त्र का स्वभाव ऐसा है तो मेरे शब्दों को मानकर जो शास्त्र निर्मित हो जाएंगे उनका स्वभाव भी ऐसा ही होगा, यानी उनसे कभी कोई प्रज्ञा को नहीं जान सकेगा। अगर मैं ऐसा कहूं कि दूसरा के शास्त्र से कोई प्रज्ञा को नहीं जानता और मेरे शब्दों पर जो शास्त्र बन गया है उससे कोई प्रज्ञा को जानेगा तब तो गलत बात हो गई। तब तो मैं किसी भी शास्त्र की निन्दा कर रहा हूं और किसी के शास्त्र की प्रशंसा कर रहा हूं। नहीं, मैं तो शास्त्र मात्र का स्वभाव बता रहा हूं। वह चाहे महावीर का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे कृष्ण का हो, चाहे मेरा हो, चाहे मुहम्मद का हो। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी का भी शास्त्र [illegible] नहीं है। हाँ, [illegible] बात सच है कि अगर दिखाई पड़ जाए किसी को तो शास्त्र में दिखाई पड़ सकता है। लेकिन दिखाई पड़ने पर जाए। [illegible] लेकिन [illegible] दिखाई पड़ गया है [illegible] शास्त्र में भी [illegible]। लेकिन दिखाई [illegible] कहा जाता है, [illegible], दीवार, [illegible] को दिखाई पड़ता है। [illegible] शास्त्र [illegible]। जिसे दिखाई पड़ गया उसे सबमें दिखाई पड़ता है। तो इसे शास्त्र में भी दिखाई पड़ता है [illegible] नहीं दिखाई पड़ेगा [illegible] दिखाई पड़ रहा था [illegible] दिखाई नहीं पड़ रहा था, इसलिए [illegible] दिखाई [illegible] रहा था।

[illegible] कि शास्त्र में भी [illegible] दिखाई पड़ सकता [illegible], जो [illegible] नहीं दिखाई पड़ सकता। इसलिए [illegible] ज्यादा [illegible]। [illegible] किसी को [illegible]

थी, यह किताब उनको मुक्त करने की तैयारी में थी। पूरा इसका भाव यही था।

तो मेरी सारी बातें ऐसी हैं कि अगर उनको काट पीट न दिया जाए तो शास्त्र बनाना मुश्किल है—ज्यादा से ज्यादा किताब बन सकती है। लेकिन शास्त्र बनाए जा सकते हैं। शास्त्र बनाना कठिन नहीं है। क्योंकि शास्त्र कोई बोलता है कुछ, इससे नहीं बनते। कोई पकड़ता है, इससे बनते हैं। यानी शास्त्र महावीर के बोलने से नहीं बनता गया। गणधरों के पकड़ने से बना है। और पकड़ने वाले हैं तो पकड़ने वाला पकड़ ही न पाए, इसका सारा उपाय हमारी वाणी में होना चाहिए। यानी वह वाणी ऐसी कांटों वाली हो, ऐसी अंगारों से भरी हो कि पकड़ना मुश्किल हो जाए। लेकिन अंगारे भी बुझ जाते हैं, एक न एक दिन राख हो जाते हैं और पकड़ने वाले भी उन्हें मुट्ठी में पकड़ लेते हैं। इसका मतलब सिर्फ यह हुआ कि बार-बार ज्ञानी को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है। यह बड़ा उल्टा काम है। निरन्तर ज्ञानियों को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है। और यह दुश्मनी नहीं है, इससे बड़ी कोई मित्रता नहीं हो सकती क्योंकि इस भांति जो राख पकड़ ली गई है, उसको छुड़ाने का कोई रास्ता नहीं होता। तो अगर जो महावीर को प्रेम करता है उसे जैनियों के खिलाफ खड़ा होना ही पड़ेगा। अगर महावीर भी लौट आएं तो उन्हें भी खड़ा होना पड़ेगा क्योंकि जो उन्होंने दिया था वह जीवित अंगारा था, वह पकड़ा नहीं जा सकता, सिर्फ जिया जा सकता, समझा जा सकता था। फिर अब राख रह गई है। उसको लोगों ने पकड़ लिया है और उसको पकड़ कर के बैठ गए हैं।

दुनिया में [illegible] दिखाई पड़ती है, आश्चर्यजनक [illegible] कि क्यों कभी ऐसा होता है कि [illegible] महावीर खड़े [illegible] खिलाफ बुद्ध खड़े हैं कि बुद्ध के खिलाफ कोई और खड़ा है। [illegible] कि महावीर बुद्ध का समर्थन करते [illegible] महावीर का समर्थन करते हों, [illegible] होना तो यह चाहिए, लेकिन [illegible] [illegible] आती है जो दिखाई पड़ता है कि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

[illegible] है [illegible] आता है। यदि [illegible] हों तो [illegible] [illegible] लिखी है, [illegible] लिखी है, लेकिन [illegible] है। इसलिए [illegible]। इसलिए किसी [illegible] हो [illegible]। उसकी हानि और उसके सारे साथियों की [illegible], [illegible] होगा। [illegible] शरीर [illegible] है लेकिन [illegible] शरीर [illegible] होता है। [illegible] शरीर [illegible] है।

उसको पकड़ेंगे, और शास्त्र बनाएंगे और उससे छुटकारा दिलाना होगा। यानी जो व्यक्ति भी हमारे लिए मुक्तिदायी सिद्ध हो सकते हैं उन्हें हम बंधन बना लेते हैं और जब उन्हें बंधन बना लेते हैं तो उनसे भी मुक्ति दिलानी पड़ती है। और जो हमें फिर मुक्ति दिलाता है, हम उसे फिर बंधन बना लेते हैं।

लम्बी कथा है यह कि मुक्तिदायी विचार भी कैसे बंधन बन जाते हैं, कि मुक्तिदायी व्यक्ति भी कैसे बंधन बन जाते हैं, फिर कैसे उनसे छुड़ाना पड़ता है और इसलिए कोई भी विचार सदा रहने वाला नहीं हो सकता। और इसलिए किसी भी विचार की एक सीमा है प्रभाव की। जीवन्त उस प्रभाव क्षेत्र में जितने लोग आ जाते हैं और जीवन्त प्रयोग में लग जाते हैं, वे तो निकल जाते हैं। पीछे फिर केवल राख रह जाती है। इसलिए सब तीर्थंकरों, सब अवतारों, उन सब निष्ठावान लोगों के आस-पास राख का संग्रह हो जाता है। और यह जो राख का संग्रह है यह सम्प्रदाय बन जाता है। और फिर ये राख के संग्रह एक दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं, उपद्रव करते हैं। और तब जरूरत होती है कि कोई फिर पैदा हो और सारी राख को मिटा दे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि वह राख नहीं बन जाएगा। वह बनेगा। जो भी अंगारा जलेगा, वह बुझेगा। जो विचार एक दिन जीवन्त होगा एक दिन मृत हो जाएगा।

जब महावीर ही मिट जाते हैं, बुद्ध ही मिट जाते हैं तो जो कहा हुआ है, वह भी मिट जाएगा। इस जगत् में जिसमें हम जी रहे हैं कुछ भी शाश्वत नहीं है। न कोई वाणी, न कोई विचार, न कोई व्यक्ति, कुछ भी शाश्वत नहीं है। सब सभी मिट जाएगा। मिट जाने के बाद भी पकड़ने वाला आदमी लहरों को पकड़े रहेगा और तब किसी को चेतना पड़ेगा कि लहर चली गई है, हाथ तुम्हारा खाली है। तुम कुछ भी नहीं पकड़े हो। अब दूसरी लहर आ गई है, तुम पुरानी के चक्कर में पड़े हो। इसे पकड़े रहे तो नई लहर से भी चूक जाओगे। पुरानी लहर जा चुकी। यह भी हमें ख्याल में आ जाए, तो भी [illegible] की दिशा [illegible] पर गया है। यह जो वस्तुस्थिति है, वह [illegible] रहा न।

और यह जो तुम मानो तो ठीक है। मेरी दृष्टि में [illegible] शास्त्र से मिल जाएगी। इसलिए नहीं कि वह शास्त्र में है, इसलिए कि तुम मेरी बातों से समझ लोगे। अगर मेरी बातें तुम्हें समझ में आ गई तो तुम्हें शास्त्र में मिल जाएगी। क्योंकि शास्त्र में तुम्हें वही मिल जाएगा जो तुम्हारी समझ है क्योंकि हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं। [illegible] और यह हम यह समझते हैं कि शास्त्र से समझ निकलती है। निकलती नहीं। हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं।

जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आए तो पहला सम्पर्क उनका बंगालियों से हुआ। बंगालियों की मछली की बदबू और उनके शरीर का गंदापन उनको बास देता था। बास की वजह से वह उन्हें कहते थे 'बाबू'। 'बाबू' मतलब—बू सहित, जिसमें बदबू आ रही हो। और, अब बाबूजी से ज्यादा कीमती शब्द नहीं है इस वक्त, कि 'आइए बाबूजी!' बदबू की वजह से, सिर्फ गन्दगी की वजह से, कि बंगाली से बास आती है मछली की, खाने पीने और रहने का ढंग गन्दा है तो उसको 'बाबू' कहते हैं। इसलिए, बंगाली बाबू अब भी सबसे बड़ा बाबू है। अभी भी दूसरा इतना बाबू नहीं हो पाया है। बंगाली बाबू अब भी बाबू है। लेकिन, अब आदर का शब्द हो गया है। आदर का इसलिए हो गया कि अंग्रेज सत्तावान थे जिसको उन्होंने बाबू कहा आदरित हो गया। और, जब अंग्रेज ने 'बाबू' कह दिया, गवर्नर ने किसी को बाबू कहा तो बाहर अकड़ कर निकला कि हम कोई साधारण थोड़े ही हैं; हम 'बाबू' हैं। और, दूसरे लोग भी उसको बाबू कहने लगे। अब बाबू बड़ा कीमती शब्द है।

शब्दों की यात्रा है। हम उनमें क्या डालते हैं, यह हम पर निर्भर है। वैसे शब्द कुछ भी नहीं। हम उसमें डालते हैं। अर्थ हमारा है। शब्द कोरा खाली है। शब्द कन्टेनर है, डिब्बा है खाली, 'कन्टेन्ट' विषयवस्तु हम उसमें डालते हैं। और, 'कन्टेन्ट' हमारे हाथ में है। इसलिए हर पीढ़ी, हर युग, हर आदमी अपना 'कन्टेन्ट' डाल देता है। जो बहुत कुशल हैं डालने में, वे किसी भी चीज से कोई अर्थ निकाल सकते हैं। उन पर कोई शब्द का बंधन ही नहीं। इसलिए मैं कहता हूँ कि मेरी बात समझ में आ जाए तो शास्त्र से मिल जाएगी। शास्त्र की बात तुम्हारी पकड़ में हो तो मेरी बात से मिल जाएगी। लेकिन इसमें पड़ना ही मत क्योंकि यह पड़ना ही गलत दिशा में ले जाता है। जब मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूँ तो सीधा ही मुझे लेना। शास्त्र को बीच में लाना ही नहीं। सीधा ही मुझे समझने की कोशिश करना। तुलना ही मत करना। न मैं यह कहता कि यह सही है, गलत नहीं। होगा तो ठीक, नहीं होगा तो ठीक। सीधे ही समझने की कोशिश उपयोगी है, क्योंकि तभी हम ज्यादा से ज्यादा समझने की कोशिश करते हैं, और जो हमारी समझ में आ जाए, वह हमें सब तरह दिखाई पड़ने लगेगा।

प्रश्न : पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं होता तो फिर पढ़ने और सुनने की जरूरत क्या है? और इससे आप हमने इतने समय तक जो पढ़ा और जो सुना आए हैं, उसमें विरोध क्या है?

उत्तर : हाँ, जिन्दगी बहुत विरोधी चीज़ों से बनी है। और, बहुत बार ऐसा है कि पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं हो जाता है। अगर तुम बोध रखो कि पढ़ने और सुनने से ही ज्ञान नहीं हो जाता है तो पढ़ना सुनना भी तुम्हारे भीतर ज्ञान को जगाने के लिये निमित्त बन सकता है। और अगर तुम सोचते हो कि पढ़ना सुनना ही ज्ञान है ऐसा है तो तुम्हारे भीतर कभी ज्ञान नहीं जागेगा। वह निमित्त नहीं बनेगा, वह बाधा बन जायेगी। सब से बड़ी बाधा दिखती है इसमें ही। अगर तुम्हें पक्का स्पष्ट है कि क्या पढ़ने से मिलेगा तो तुम्हें पढ़ने से भी कुछ मिल सकता है; क्योंकि तब तुम पढ़ने को नहीं पकड़ोगे, क्योंकि तुम्हें यह स्पष्ट है कि पढ़ने से कुछ नहीं मिलता। तब तुम सुनने को नहीं पकड़ोगे। तब, तुम सोचोगे, समझोगे, खोजोगे, तब तुम्हारी खोज जारी रहेगी। और तब पढ़ना भी एक निमित्त बन सकता है तुम्हारी खोज का। ऐसे लोगों के भी मैं लोग वंचित रहा करते हैं, जो शास्त्रों से डरते रहे हैं, जो कि तुम खुद ही शास्त्रों से, जिन्होंने कभी भी नहीं कि शास्त्रों में ज्ञान छिपा है वे लोग, वे भी वंचित रह जाते हैं। और जो यह समझते हैं कि शास्त्र में सब लिखा है, सब मिल जायेगा वे शास्त्रों को छाती पर रख कर डूब जाते हैं, और कुछ भी नहीं कर पाते।

अब जैसे समझ लें एक मन्दिर है, वहा एक मूर्ति रखी है। यह भी एक 'कोड' है, यह भी एक शास्त्र है। उधर अक्षरो मे लिखा है, यहा इनने पत्थरों में खोदा है। सब मन्दिर 'कोड' लैंग्वेज (भाषा) में हैं। अब नए मन्दिर नहीं हैं क्योंकि नए मन्दिर का उससे कोई सम्बन्ध नही रह गया है। जितने नए मन्दिर बन गए है उनका कोई सम्बन्ध नही है। अब, क्योकि हमे पता ही नही है, कोई और ही हिसाब से बना रहे हैं। नया आर्किटेक्ट आ रहा है उसमे, नई बिल्डिंग की डिजाइन आ रही है। वह सब आ रहा है, लेकिन जितना पुराना मन्दिर है उतनी ही 'कोड' लैंग्वेज (सांकेतिक भाषा) मे है। मन्दिर की एक भाषा है। क्योंकि असल मे आदमी की कितनी करुण दशा भी है, कितनी कठिनाई भी है। जिनको एक बार कुछ पता चल गया है, वे चाहते हैं कि वह किसी तरह सुरक्षित रह जाए। 'शब्द' में भी लिखते है, पत्थर में भी खोदते हैं क्योकि किताब गल जाएगी, जल जाएगी तो पत्थर में खुदा रहेगा। मन्दिर के पत्थर मे 'कोड' खोदा हुआ है। और सारी व्यवस्था ऐसी की गई है कि जो अन्तत् खोज मे जाएगा उसके लिए मन्दिर एकदम सार्थक हो जाएगा क्योंकि तब उसे अर्थ ही दूसरे दिखाई पड़ने शुरू हो जाएगे।

तुम अगर मन्दिर की बनावट देखो तो चौकोन मन्दिर होगा। लेकिन उसके ऊपर का गुम्बद गोल होगा। यानी दो हिस्सो मे मन्दिर बटा हुआ है, नीचे का चौकोन हिस्सा है, ऊपर का गोल हिस्सा है। भीतर तुम जाओगे तो जहा मूर्ति स्थापित की गई है उसे कहते है गर्भगृह। अब उसे क्यों गर्भगृह कहते हैं। वहां मूर्ति रखी है। उस मूर्ति की तुम्हें परिक्रमा करनी होती है। वह जितनी करनी है वह भी सब निर्धारित है। मन्दिर चौकोन है, परिक्रमा गोल है। उस गोल परिक्रमा के बीच मे एक ठीक केन्द्र पर मूर्ति है। ऊपर भी मन्दिर गोल है। अब यह 'कोड' लैंग्वेज है। इन्द्रियां हमारे कोने है, और एक इन्द्रिय में हम चले जाएं तो हम एक दिशा मे चले जाएंगे। सब इन्द्रियों के ऊपर, कहीं न जाने वाली एक गोल स्थिति है जिससे कोई दिशा नही जाती, जिसमे अन्दर घूमना पड़ता है। कोना तो एक दिशा की तरफ इंगित करता है। पूरब—तो पूरब की तरफ कहीं चले गए तो तुम पूरब चले जाओगे अनन्त तक। लेकिन गोल घेरे से किसी तरफ इंगित नही है। वहां तो तुम्हें अन्दर गोल घूमना पड़ता है। यह जो हमारा शरीर है, जिसमें दिशाएं है, जिसमे से तुमने कोई दिशा पकड़ ली तो अन्तहीन चल सकते हो। और शरीर के अन्दर हमारा एक गोल परिभ्रमण है जिसका अर्थ कि तुम कहीं जा नहीं सकते, केवल गोल घूम सकते हो।

मूर्ति पारस की हो सकती है, पारस की नेमि की हो सकती है। सिर्फ नीचे का एक चिन्ह भर है। उसको तुम अलग कर दो तो किसी भी मूर्ति में कोई फर्क नहीं है। क्या ये चौबीस आदमी एक जैसे रहे होंगे? क्या यह ऐतिहासिक हो सकता है मामला कि इन चौबीस आदमियों की एक जैसी आँख, एक जैसी नाक, एक जैसे चेहरे, एक जैसे बाल रहे हो? यह तो असम्भव है। दो आदमियों का एक जैसा खोजना मुश्किल है। और ये चौबीस बिल्कुल एक जैसे रहे हों, इनमें भेद ही नहीं कोई? नहीं, यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। यह तथ्य ज्यादा आन्तरिक है। क्योंकि जैसे ही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, सब भेद विलीन हो जाते हैं, और अभेद शुरू हो जाता है। वहाँ सब एक सा चेहरा है, एक सी नाक है और एक सी आँख है। मतलब केवल इतना है कि हमारे भीतर एक ऐसी जगह है जहाँ नाक चेहरे आदि मिल जाते हैं, बिल्कुल एक सा ही रह जाता है। जो लोग एक जैसे हो गए हैं उनको हम कैसे बताएँ? तो हमने मूर्तियाँ एक जैसी बना दी हैं—बिल्कुल एक जैसी। उनमें कोई फर्क ही नहीं दिया है। मूर्तियाँ कभी एक जैसी नहीं रहीं, हो नहीं सकतीं। इसलिए मूर्तियों की चिन्ता ही नहीं करनी पड़ी। महावीर का चेहरा कैसा रहा हो, यह सवाल ही नहीं रहा है। उस चेहरे की हमने बात ही छोड़ दी। अगर फोटोग्राफ लिया होता तो महावीर की मूर्ति से यह कभी मेल ही नहीं खा सकती थी। क्योंकि फोटोग्राफ सिर्फ बाहर को पकड़ता है। मूर्ति में हमने भीतर को पकड़ने की कोशिश की है। भीतर आदमी एक से हो गए हैं। इसलिए अब उनकी बाहर की मूर्तियों को अलग-अलग रखना गलत सूचना हो जाएगी। अब यह बड़े मजे की बात है कि भीतर को हमने बाहर पर जिता दिया है। फोटोग्राफ में बाहर भीतर पर जीत जाता है। फोटोग्राफ अलग-अलग होगा है। परन्तु ये चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अलग नहीं। ये बिल्कुल एक हैं। उनका भीतर एक हो गया। जैसे ही चेतना एक तल पर पहुँच गई है, सब एक हो गया है। सारे उनके चेहरे एक हो गए, चेहरों में फर्क नहीं रहा। कभी अलग-अलग रहे भी होंगे लेकिन जो उनमें झाँकने लगा, देखने वाला था, वह एक हो गया। ठीक अलग-अलग रहे होंगे लेकिन जो वाणी निकलने लगी, वह एक हो गई। भीतर सब एक हो गए।

जो एक गोल परिक्रमा है जिसका हम चक्कर अनन्त बार लगाते रहें तो भी हम गर्भगृह में प्रवेश नहीं कर पाएँगे। परिक्रमा से उतरना पड़ेगा। तो हम वहाँ आएँगे, जहाँ भगवान् को प्रतिष्ठित किया है। भगवान् को अगर

इस शरीर के [illegible] में: सब [illegible] है, सब [illegible] है। [illegible] है, [illegible] है और यहाँ कोई [illegible] ही नहीं, कोई [illegible] नहीं। इसलिए, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हमारे पास [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] हुई [illegible] की [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] नहीं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

जोर से अंधे की तरह कुछ पकड़ लिया तो तुम कभी भी कुछ नहीं खोज पाओगे। इसलिए पकड़ना मत।

जो मैं निरन्तर कह रहा हूँ उसका कुल मतलब इतना है कि शास्त्र को पकड़ना मत। पढ़ना, पकड़ना मत, सुनना किसी को लेकिन बहरे मत हो जाना, पढ़ो, अंधे मत हो जाना! सुनना और पूरी तरह जानते हुए सुनना कि सुनने से क्या हो सकता है। और, मैं कहता हूँ कि अगर इस तरह सुना तो सुनने से भी हो सकता है। पढ़ने से क्या हो सकता है? अगर ऐसा जानते हुए पढ़ा तो पढ़ने से भी हो सकता है। हो सकने का मतलब यह कि यह भी निमित्त बन सकता है तुम्हारी भीतर की यात्रा का। कोई भी चीज निमित्त बन सकती है। लेकिन अंधे होकर पकड़ लेने से सब बाधा हो जाती है। पढ़ो, सुनो! लेकिन प्रत्येक क्षण यह जानते रहो कि खोज मेरी है और मुझे करनी होगी। इसमें बाधा और उधार सत्य नहीं ले सकता हूँ। यह अगर स्मरण रहे तो मैं जो कह रहा हूँ वह तुम्हारे लिए बाधा नहीं बनेगा। नहीं तो यह भी बाधा बन जाएगा।

अब तुमने देखा खजुराहो का मन्दिर। जिनकी समझ में बात आई उन्होंने कितनी मेहनत से खोदने की कोशिश की है। मन्दिर के बाहर की दीवार पर सारी सेक्स, सारी काम और योनि सब खोद डाला है। बड़ी अद्भुत बात खोदी है पत्थर पर। लेकिन भीतर मन्दिर में नहीं है सेक्स का कोई चित्र। सब बाहर की परिधि पर खोदा गया है। और मतलब यह है सिर्फ कि जीवन की बाहर की परिधि 'सेक्स' से बनी है, काम से बनी है। और अगर मन्दिर के भीतर जाना है तो इस परिधि को छोड़ना पड़ेगा। मन्दिर के बाहर ही रहना हो तो ठीक है, यही चलेगा। 'काम' जीवन की बाहर की दीवार है और 'राम' भीतर मन्दिर में प्रतिष्ठित है। जब तक काम में उलझे हो तब तक भीतर नहीं जा सकोगे। लेकिन अगर सारे मैथुन चित्रों को कोई घूमता हुआ देखता रहे तो कितनी देर देखता है। फिर थक जाता है, फिर ऊब जाता है, फिर सोचता है कि अब मन्दिर के अन्दर चलो। और अन्दर जाकर बड़ा विश्राम पाता है क्योंकि वहाँ पर एक दूसरी दुनिया शुरू होती है। जब जीवन की बाहरी यात्राओं से थक जाएँगे हम, सेक्स के जीवन से बाहर घूम-घूमकर, तब एक दिन मन होगा कि अब बहुत हुआ, अब बहुत देखा, अब बहुत घूमा, अब भीतर चलें। इस सत्य को पत्थर में खोद कर छोड़ दिया जिन्होंने, जिन्होंने इतना उन्होंने छोड़ दिया। अनुभव में यह बात उनको दिखाई पड़ी कि जो भी बाहर भा

जिसको भी ज्ञात हो गया है वह कोशिश करेगा तुम्हें खबर देने की। लेकिन फिर भी जरूरी नहीं। अगर तुमने खबर को भी पकड़ लिया, जैसे किसी ने कहा कि यही सत्य है कि खजुराहो के मन्दिर में बाहर 'काम' है, अन्दर 'राम' है, तो हम इसी मन्दिर में ठहर जाते हैं, झंझट छोड़ें, जब यही सत्य है और सब सत्य इसमें खोदा हुआ है तो हम इसी मन्दिर के पुजारी हो जाते हैं। तो हो जाओ तुम पुजारी! चूक गए तुम बात। अगर तुम समझ जाते तो इस मन्दिर से कुछ लेना देना ही नहीं था। बात खत्म हो गई थी। अगर इशारा समझ में आ गया होता तो इस मन्दिर में न भीतर था, न बाहर था कुछ। बात खत्म हो गई थी और तुम कहते कि ठीक है। और तुम लोगों से कहते कि देखना मन्दिर में मत उलझ जाना; मन्दिर से कुछ न मिलेगा और अगर ध्यान रहा कि मन्दिर से कुछ न मिला तो शायद खोज हो और मन्दिर से भी कुछ मिल जाए। मेरी कोई शत्रुता नहीं मन्दिर से, शत्रुता होने का कोई सवाल ही नहीं, न कोई निन्दा है। क्योंकि निन्दा करने का क्या अर्थ हो सकता है? जो मैं कह रहा हूँ, वह फिर लिखा जाएगा, तो लिखे हुए का क्या अर्थ हो सकता है लेकिन इतनी चेतावनी जरूरी है कि न निन्दा करना, न प्रशंसा करना। समझना, समझ तो वह मुक्ति की तरफ ले जाता है।

प्रश्न : तो सिर्फ तीर्थंकरों की ही क्यों, बुद्ध और महावीर में भी यही रूप की समानता है। क्राइस्ट, राम और कृष्ण—इनमें यही समानता है। लेकिन वे अलग-अलग समय में हुए इसलिए इनकी बात छोड़ें हम। केवल बुद्ध और महावीर की बात करें। दोनों समकालीन हैं। दोनों में से महावीर ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं, वही बुद्ध है, जो मेरा रूप है वही बुद्ध का रूप है। और बुद्ध ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं वही महावीर का रूप है?

उत्तर : विचारणीय बात है। चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां एक जैसी हैं। तो क्यों क्राइस्ट की, क्यों बुद्ध की भी ऐसी नहीं है? और [illegible] के साथ, क्रम से एक बुद्ध तो महावीर के साथ ही थे, एक ही समय में थे। इन दोनों की मूर्तियां एक जैसी हो सकती थीं। लेकिन नहीं। और नहीं हो सकती थी। कारण कि वे जो चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है उस धारा ने एक [illegible] निश्चित किया है अभिव्यक्ति की एक 'कोड' [illegible] निश्चित की है उस धारा ने। जैन धारा बाहर कोई तीर्थंकर नहीं मानती। उस धारा तीर्थंकरों का [illegible] निश्चित होती है। वह बहुत निश्चित होती है। एक भाषा, एक ढंग, एक [illegible] की व्यवस्था निश्चित हुई है [illegible] की अभिव्यक्ति और ढंग निश्चित

खण्डन नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने बहुत बार महावीर का खण्डन किया और बहुत कठोर शब्द कहे। इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर वृद्ध थे, बुद्ध जवान थे महावीर विदा हो रहे थे और बुद्ध आ रहे थे। बुद्ध को एकदम जरूरी था यह डिस्टिंक्शन बनाना, यह भेद बनाना, बिल्कुल साफ। उस व्यवस्था से हमें कुछ लेना देना नहीं। वह बिल्कुल गलत है, क्योंकि लोक मानस में वह विदा होती हुई व्यवस्था हुई जा रही है और अगर उससे कोई भी सम्बन्ध जोड़ा तो नई व्यवस्था के जन्मने में बाधा बनने वाली है, और कुछ नहीं होने वाला है।

फिर और भी बात है। चाहे कोई व्यवस्था विचार की, चिन्तन की, दर्शन की कितनी ही गहरी क्यों न हो वह केवल एक विशेष तरह के व्यक्तियों को ही प्रभावित करती है। कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जो सब तरह के व्यक्तियों के काम आ सके। अब तक नहीं है और न हो सकती है। अब तो यह पक्का माना जा सकता है कि वह नहीं हो सकती। महावीर के व्यक्तित्व को जो प्रभावित करती है बात, वह पारस वाली, नेमि वाली, आदिनाथ वाली बात उन्हें प्रभावित करती है। वह उस टाइप के व्यक्ति हैं, और इस टाइप के बनने में भी अनन्त जन्म लगते हैं। एक खास टाइप के बनने में उनको वह खास तरह की धारा ही प्रभावित कर सकती है। बुद्ध बिल्कुल भिन्न तरह के व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की अपनी धारा है। उन्हें उसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। लेकिन मैं मानता हूँ कि बुद्ध की चितना ने बहुत से लोगों को, जो महावीर से कभी कोई लाभ नहीं ले सकते थे, लाभ दिया। और वे बुद्ध से लाभ ले सके। लेकिन बुद्ध और महावीर की एक धारा है, मीरा की अपनी चिन्तना, अपनी धारा है। महावीर और मीरा का व्यक्तित्व बिल्कुल उल्टा है। अगर महावीर की अकेली चिन्तना दुनिया में हो तो बहुत थोड़े से लोग ही सत्य के अन्तिम मार्ग तक पहुँच पायेंगे क्योंकि मीरा के टाइप के लोग वंचित रह जायेंगे, उनसे उसका मेल ही नहीं हो पाता। अनन्त धाराएं चाहिए इसलिए कि अनन्त प्रकार के व्यक्ति हैं और चेष्टा यही है कि ऐसा एक व्यक्ति भी न रह जाए जिसके योग्य और जिसके अनुकूल पड़ने वाली धारा न मिल सके। इसलिए अनन्त धाराएं हैं और रहेंगी। दुनिया जितनी विकसित होती जाएगी उतनी धाराएं ज्यादा होती जाएंगी। धाराएं ज्यादा होना चाहिए।

महावीर की जो जीवनधारा है वह एकदम पुरुष की है, उसमें स्त्री का स्थान ही नहीं है। पुरुष और स्त्री के मानस में बुनियादी भेद है। स्त्री के पास जो मन है वह निष्क्रिय (पैसिव) मन है। पुरुष के पास जो मन है वह

हारे होंगे, जिन्दगी में, किसी मौके पर।' लाओत्से कहता है, 'बिल्कुल नहीं। कभी मैं हारा ही नहीं! तो उसका रहस्य क्या था, राज क्या था? लाओत्से कहता है, 'राज यह था कि मैं सदा हारा हुआ ही था। मैं पहले से ही हारा हुआ था। कोई मेरी छाती पर चढ़ने आता तो मैं जल्दी से लेट जाता और उसको बिठा लेता। वह समझता कि मैं जीत गया, मैं समझता कि जीत हुआ क्योंकि मैं पहले से हारा हुआ था। जीते क्या तुम? तो मुझे कोई हरा ही नहीं सकता क्योंकि मैं सदा हारा हुआ हूँ।"

अब यह जो लाओत्से है, यह स्त्री के मार्ग का अग्रणी व्यक्ति है। यह हराई नहीं जाएगी। यह पूरी तरह हार जाएगी और आपको मुश्किल में डाल देगी। स्त्री किसी को हराने नहीं जाएगी और हारने के लिए जाकर मुश्किल में पड़ जाएगी। वह पूरी तरह हार जाएगी, पूर्ण आत्म-समर्पण कर देगी। वह कहेगी 'मैं तुम्हारी दासी हूँ, तुम्हारे चरणों की धूल हूँ। और तुम हैरान हो जाओगे कि कब वह तुम्हारे सिर पर बैठ गई, तुम्हें पता नहीं चलेगा। उसके जीतने का रास्ता हार जाना है, पूरी तरह हार जाना, सम्पूर्ण समर्पण। और जो स्त्री सम्पूर्ण समर्पण नहीं कर पाती, वह कभी नहीं जीत पाती, वह जीत ही नहीं सकती। इसलिए इस युग में स्त्रियाँ दुखी होती चली जाती हैं क्योंकि उनका समर्पण खत्म हुआ जा रहा है और वे भूल कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि पुरुष जैसा हम भी करें। वे उसमें हार जाने वाली हैं। पुरुष का करना और ढंग का है। पुरुष के जीतने का मतलब है जीतना। स्त्री के जीतने का मतलब है हारना। उनका पूरा का पूरा मानस ही भिन्न है। इसलिए जो स्त्री जीतने की कोशिश करेगी वह कभी नहीं जीत पायेगी। उसका जीवन नष्ट हो जायेगा क्योंकि वह पुरुष की कोशिश में लगी है जो कि उसके व्यक्तित्व की सम्भावना ही नहीं। और इसीलिए, पश्चिम में स्त्रियाँ बुरी तरह हार रही हैं क्योंकि वे पुरुष को जीतने की कोशिश में लगी हैं। वह बात ही उन्होंने छोड़ दी है कि 'हम समर्पण करेंगे, हम जीतेंगे। पुरुष को जीतने का एक ही उपाय था कि हार जाओ। इस तरह मिट जाओ कि पता ही न लगे कि तुम हो, और तुम जीत गए। पुरुष बच ही नहीं सकता, तुमसे और ही नहीं सकता।

लाओत्से कहता है कि हम मार्ग से ही हारे हुए थे, इसलिए हमें कभी कोई हरा नहीं सकता। लाओत्से और महावीर का मार्ग बिल्कुल उल्टा है। एक तरफ ही उल्टा है, इसमें कोई समानता भी नहीं है। लाओत्से का मार्ग उन लोगों के लिए उपयोगी है जो हारने में समर्थ हैं, महावीर का मार्ग उनके लिए

है और पूरी तरह मिट जाती है। इसमें जो सवाल है किसी के ऊपर-नीचे होने का नहीं है। सवाल टाइप ऑफ माइन्ड का है। वह जो हमारे मस्तिष्क का टाइप है उसका।

तो महावीर का एक है मार्ग, एक है ढंग; बुद्ध का ढंग दूसरा है। बुद्ध की एक नई भाषा खड़ी हो रही है अब, नए प्रतीक खड़े हो रहे हैं। बुद्ध को समझना होगा तो उन्हीं प्रतीकों से समझना होगा। बुद्ध की एक नई मूर्ति निर्मित हो रही है। क्राइस्ट का बिल्कुल और है मार्ग—तीसरा है। क्राइस्ट जैसा तो कोई आदमी नहीं है इनमें से। क्राइस्ट तो बिना सूली पर चढ़े हुए सार्थक ही नहीं। और महावीर अगर सूली पर चढ़े तो हमारे लिए व्यर्थ हो जाएँगे। जो महावीर को एक धारा में सोचते हैं उनके लिए बिल्कुल व्यर्थ हो जाएंगे। लेकिन क्राइस्ट का बिना सूली पर चढ़े अर्थ ही नहीं है। क्राइस्ट का और तरह का व्यक्तित्व है। कृष्ण का और ही तरह का, उनका कोई हिसाब ही नहीं। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि कृष्ण और महावीर में कैसे मेल बिठाएँ, कोई मेल ही नहीं।

और यह सब सार्थक है, सब सार्थक इन अर्थों में कि पता नहीं कौन सा व्यक्तित्व ज्योति की अनुभूति कराए; किस व्यक्तित्व में आपको ज्योति दिखे। आपको उसमें ही ज्योति दिखेगी, जिस व्यक्तित्व का आपका टाइप होगा। नहीं तो आपको नहीं दिखेगी। मैं मानता हूँ कि यह बड़ा हितकर है कि यह सब भिन्न-भिन्न टाइप हैं, यह भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं, इन-इन भिन्न भिन्न ज्योतियों से भिन्न-भिन्न तरह के लोगों को दर्शन हो सकते हैं। और हो सकता है, अभी भी बहुत सम्भावना शेष है। और हो सकता है उन्हीं सम्भावनाओं के शेष होने की वजह से बहुत बड़ी मानव जाति अब तक धार्मिक नहीं हो पाई। उसका कारण है कि उस टाइप का आदमी अब तक ज्योति को उपलब्ध नहीं हुआ। मेरा मतलब आपने समझा न? यानी जिसको वह समझ सकता था उस आदमी को पहुँच ही नहीं उस जगह जहाँ से उसको ज्योति दिखाई पड़ जाए।

मेरी अपनी दृष्टि है, मेरा अपना प्रयोग रहा और [illegible] समझता हूँ कि किसी ने ऐसा प्रयोग अब तक किया है। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं अपने व्यक्तित्व का टाइप मिटा दूं। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं सिर्फ व्यक्ति रह जाऊँ अत्यन्त [illegible], जिसका कोई टाइप नहीं। और समझता हूँ कि [illegible] हूँ। एक तरह से हम देखें तो एक दूसरा [illegible] रहेगा। हमारी

अलग है इसलिए भी दूसरा दुःख दिखाई पड़ेगा। और दोनों दुःख एक ही घर के दुःख के हिस्से हैं। जिन्दगी में दुःख जिन्दगी की बात क्यों? पर, दूसरे की जिन्दगी पर [illegible] है, [illegible] हूं। [illegible] के [illegible] लोग [illegible] हैं [illegible] है। [illegible] जिन्दगी [illegible] हूं। [illegible] हूं, [illegible] हूं, [illegible] है। और, [illegible] कि [illegible] के [illegible] कहीं [illegible] है। और [illegible] दूसरे की जिन्दगी पर [illegible] बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरे की जिन्दगी पर [illegible] है। और कोई [illegible] नहीं। [illegible] जिन्दगी पर [illegible] हो जायें। यह हो नहीं सकता, [illegible] बहुत मुश्किल मालूम है।

खिड़की के बाहर खड़े होकर देखेंगे। तो मुझे बुद्ध और महावीर में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन मकान के बाहर खड़े हों तो ही, नहीं तो फर्क है क्योंकि फर्क खिड़की से निर्मित होता है जिससे वह कूदे। वह खिड़की हमारी नजर में रह गई, वह बिल्कुल अलग है। महावीर का ढंग है—अत्यन्त संकल्प का। यानी महावीर कहते हैं कि अगर किसी भी चीज में पूर्ण संकल्प हो गया है तो उपलब्धि हो जाएगी। बुद्ध की बिल्कुल और ही बात है। बुद्ध कहते हैं : संकल्प तो संघर्ष है। संघर्ष से कैसे सत्य मिलेगा ? संकल्प छोड़ो, शान्त हो जाओ। संकल्प ही मत करो तो उस शान्ति में ही सत्य मिलेगा। यह भी ठीक है। यह भी एक खिड़की है। ऐसे भी मिल सकता है। और महावीर भी कहते हैं, वह भी ठीक है। वैसे भी मिल सकता है।

हम इस तरह विचार करें कि अलग-अलग मूर्तियाँ जो बनीं, अलग-अलग मन्दिर बने, मस्जिदें खड़ी हुईं, उनके अलग-अलग प्रतीक हुए, अलग भाषा बनी, अलग कोड बना तो वह बिल्कुल स्वाभाविक था। और फिर भी कोई अलग नहीं है। यानी कभी न कभी एक मन्दिर दुनिया में बन सकता है जिसमें हम क्राइस्ट की, बुद्ध की, महावीर की एक सी मूर्तियाँ ढालें। इसमें कोई कठिनाई नहीं। लेकिन बड़ी कठिनाई यही मैं कह रहा हूँ आपसे कि यदि आप महावीर से प्रेम करते हैं तो आप क्राइस्ट की मूर्ति महावीर जैसी ढालेंगे और अगर आप क्राइस्ट से प्रेम करते हैं तो आप महावीर की मूर्ति क्राइस्ट जैसी ढालेंगे। तब फिर बात गड़बड़ हो गई। अगर क्राइस्ट को प्रेम करने वाला आदमी महावीर की मूर्ति ढालेगा तो सूली पर लटका देगा। क्योंकि अभी वह 'कोड' और लैंग्वेज (भाषा) पैदा नहीं हो सकी जो सारी मूर्तियों में काम आ सके। लेकिन यह भी हो सकता है।

बहुत दिनों तक, बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध की मूर्ति नहीं बनी क्योंकि बुद्ध ने इन्कार किया है कि मूर्ति बनाना मत। और मूर्ति की जगह केवल प्रतीक बना—बोधिवृक्ष। सात-आठ सौ वर्ष बाद धीरे-धीरे अकेला वृक्ष-प्रतीक रखना मुश्किल हो गया। और बुद्ध की मूर्ति वापस आ गई। अगर हम आपका नहीं सबके भीतर, समाज के लिए, तो हमें मूर्ति मिटा देनी पड़ेगी। फिर हमें एक नया कोड विकसित करना होगा।

जैसे मुहम्मद की कोई मूर्ति नहीं है। और इस कोड पे विचार करने में एक प्रयोग है यह, और बड़ा हिम्मत का है। बुद्ध की मूर्ति नहीं थी परन्तु पाँच-छः सौ साल में हिम्मत टूट गई और मूर्ति आ गई। मुसलमानों ने बड़ी

[illegible]

जितना बुद्ध ने इतने बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित किया। उसका कारण है कि महावीर के पास जो प्रतीक थे, वे अतीत के थे और बुद्ध के पास जो प्रतीक थे वे भविष्य के थे। महावीर के पास जो प्रतीक थे उनके पीछे तेईस तीर्थंकरों की धारा थी। प्रतीक घिस चुके थे, प्रतीक प्रचलित हो चुके थे, प्रतीक परिचित हो गए थे। इसीलिए महावीर का बहुत क्रान्तिकारी व्यक्तित्व भी क्रान्तिकारी नहीं मालूम पड़ता था क्योंकि प्रतीक, जो उन्होंने प्रयोग किए, पीछे से आये थे। और बुद्ध का उतना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व नहीं था जितना महावीर का। किन्तु वह ज्यादा क्रान्तिकारी मालूम हो सका।

बुद्ध के प्रतीक भविष्य के हैं। यानी बहुत फर्क पड़ता है। भाषा जो बुद्ध ने चुनी वह भविष्य की थी। सच तो यह है कि अभी बुद्ध का प्रभाव और बढ़ेगा। आने वाले सौ वर्षों में बुद्ध के प्रभाव के निरन्तर बढ़ जाने की भविष्यवाणी की जा सकती है क्योंकि बुद्ध ने जो प्रतीक चुने वे आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य के और निकट आ जाने वाले हैं, एक दम निकट आ जाने वाले हैं। यानी मनुष्य अभी भी इन प्रतीकों से पूरी तरह चुक नहीं गये हैं, बल्कि करीब आ रहे हैं। इसलिए, पश्चिम में इस समय बुद्ध का प्रभाव एकदम बढ़ता जा रहा है। बुद्ध ने सारे प्रतीक नए चुने हैं, सारी भाषा नई चुनी है। जैसे कि महावीर ने आत्मा की बात की है, बुद्ध ने आत्मा को इन्कार कर दिया है। बुद्ध ने कहा कि आत्मा वगैरह कोई भी नहीं है। महावीर ने इन्कार किया परमात्मा को, परमात्मा नहीं है, मैं ही हूँ। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की, इन्कार करने योग्य भी नहीं माना। बात ही फिजूल है, चर्चा के योग्य नहीं। और 'मैं हूँ' इसको भी इन्कार कर दिया और कहा कि जो अपने 'मैं' के पूर्ण इन्कार को उपलब्ध हो जाता है, उसका निर्वाण हो जाता है।

यह जो आने वाली सदी है, धीरे-धीरे उस जगह पहुँच रही है जहाँ व्यक्ति अनुभव कर रहा है कि व्यक्ति होना भी एक बोझ है। इसको भी इसलिए विदा हो जाना चाहिए, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं। अहंकार 'ईगो' भी एक बोझ है इसे भी विदा हो जाना चाहिए। फिर भी महावीर ने जो आत्मा की उसमें मोक्ष पाने का ध्यान है, मोक्ष मिल जाए। उसमें एक उद्देश्य, एक लक्ष्य है, ऐसा मालूम पड़ता है। जो प्रतीक उन्होंने चुने हैं सारी भाषा में ऐसा मालूम पड़ता है कि मोक्ष एक लक्ष्य है। उसके लिए साधना करो, तपश्चर्या करो तो मोक्ष मिलेगा। बुद्ध ने कहा कि कोई लक्ष्य नहीं क्योंकि सब लक्ष्य की भाषा ही एक तरह इच्छा है, वासना है, तृष्णा है। लक्ष्य भी और

जाएगा, शिथिल हो जाएगा। ले जाते हैं वे भी विश्राम की ओर लेकिन उनका मार्ग है पूर्ण तनाव से भरा। और बुद्ध कहते हैं कि तनाव कष्टपूर्ण होगा। जितना तनाव है वह भी छोड़ दो।

अब ऐसा हुआ कि बीच में हम खड़े हैं आधे तनाव में। महावीर कहते हैं 'पूर्ण तनाव' ताकि तनाव से बाहर निकल आओ। बुद्ध कहते हैं जितना तनाव है उससे भी पीछे लौट आओ। तनाव ही छोड़ दो। तभी विश्राम आता है। महावीर की भाषा को अब इस सदी में समझना मुश्किल पड़ जाएगा। क्योंकि कोई तनाव पसंद नहीं करता। तनाव वैसे ही बहुत ज्यादा है। आदमी इतना तना हुआ है इसीलिए मैं कहता हूँ कि भविष्य की जो भाषा है वह बुद्ध के पास है। पश्चिम में महावीर की बात कोई नहीं मानेगा कि और संकल्प करो और तपश्चर्या करो। हम मरे जा रहे हैं वैसे ही। अब हम पर कृपा करो। हमको कुछ विश्राम भी चाहिए। बुद्ध कहते हैं विश्राम का यह रहा रास्ता कि जितना तनाव है वह भी छोड़ दो, पूर्ण विश्रान्त हो जाओ। यह जँचेगा। तनावों से भरा हुआ आदमी जचेगा नहीं।

महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकरों के लम्बे काल में प्रकृति में परम विश्राम में आदमी जी रहा था। कोई तनाव न था। विश्राम ही था जीवन में। उस विश्राम में महावीर की भाषा सार्थक बन गई क्योंकि विश्राम की बात सार्थक होती ही नहीं इस दुनिया में। उस दुनिया में आदमी से विश्राम की बात करना बिल्कुल फिजूल था। जैसे बम्बई के आदमी से कहो : चलो इस झील पर वहाँ बड़ी शान्ति है, तो उसको समझ में आता है। इस झील के पास एक गरीब आदमी अपनी बकरियाँ चरा रहा है। उससे कहो तुम कितनी परम शान्ति में हो। वह कहता है कभी बम्बई के दर्शन करने का मन होता है। उसके मन में बम्बई बसी है। कभी बम्बई वह जाए स्वाभाविक है। जो जहाँ है वहाँ से भिन्न जाना चाहता है।

जब सारा जगत् प्रकृति की गोद में बसा हुआ था, न कोई तनाव था, न कोई चिन्ता थी उस स्थिति में संकल्प को बढ़ाकर तनाव को पूर्ण करने की बात ही स्वीकार कर सकती थी। वह भाषा ही काम कर सकती थी। तो वह भाषा। फिर एक संक्रमण आया। उस संक्रमण में महावीर बहुत प्रभावी नहीं हो सके और जो लोग उनके पीछे भी गए वे भी उनकी बात नहीं समझे। [illegible] की बात हो गई। और अब लोगों को वह उस दिशा में [illegible] क्योंकि ऐसा आदमी उसके लिए राजी नहीं हुआ। [illegible] होता गया।

जाएगा। जैसे मैं कहता हूँ कि आज अगर महावीर की नही है कोई अपील सारे जगत् में तो उसका कारण है कि उनकी भाषा बिल्कुल ही पिटी-पिटाई हो गई। लेकिन अब भी हो सकती है अपील। भाषा इस युग के अनुकूल आज हो तो आज अपील हो जाए। अपील आप क्या कहते हैं इसकी नही है, अपील इस बात की है कि आप उसको कैसे कहते हैं; वह युग के मन के अनुकूल है या नही। नही तो वह खो गई अपील। एक तो वह इसलिए पिछड़ गए क्योंकि उन्होंने अतीत की भाषा का उपयोग किया। महावीर एक अर्थ में अतीत के प्रति अनुगत हैं। बुद्ध अतीत के प्रति बिल्कुल नही, भविष्य के प्रति अनुगत हैं। अतीत इन्कार ही कर दिया है। इसलिए अपने से पहले किसी परम्परा को उन्होंने नही जोड़ा। नई परम्परा को सूत्रबद्ध किया। और भी बहुत से कारण है जिनकी वजह से परिणाम नही हो सका जितना हो सकता था।

परम्परा पुनरुज्जीवित की जा सकती है। भाषा में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अनुयायी कभी उसकी हिम्मत नही जुटा पाता क्योंकि उसे लगता है कि सब खो जाएगा। भाषा ही उसकी सम्पत्ति है। अगर उसको बदला तो सब खो गया। जबकि भाषा सम्पत्ति नही है, भाषा सिर्फ कन्टेनर है, डिब्बा है, विषयवस्तु (कन्टेन्ट) की बात है असल में। इसमें पता नही कितना फर्क पड़ता है। अभी मैंने पढ़ा कि एक अमेरिकी लेखक ने एक लाख किताबें छपाईं लेकिन नही बिक सकीं। तीन वर्ष परेशान रहा। तो उसने जानकर विज्ञापन-कुशल-कारों से सलाह की। उन्होंने कहा तुमने जो किताबों का नाम रखा है यह पिटा-पिटाया है। किताबों का जो कव्हर (मुखपृष्ठ) है वह गलत है। यह आधुनिक मन के अनुकूल नही। इसलिए यह किताबों में रखा रहेगा, कभी इस पर नजर ही नही पड़ने वाली किसी खरीदने वाले की। किताब पीछे देखी जाती है, किताब का कव्हर पहले देखा जाता है। तो उसने कव्हर बदल दिये। नए रंग, नई डिजाइन। आधुनिक कला से सम्बन्धित कर दिया, नाम बदल दिये। वे किताबें दस महीनों में ही बिक गईं। और भारी प्रशंसा हुई उन किताबों की। हमेशा ऐसा होता है। महावीर के ऊपर बहुत पुराना कव्हर है। अब नया कव्हर होना चाहिए, और यह जरूरी है। क्योंकि महावीर की भाषा का इतना अद्भुत अर्थ है कि वह खो जाए तो नुकसान होगा, सारी मानव जाति का नुकसान होगा। जैनियों का ही नुकसान [illegible] कव्हर बदलने से। सारी जाति का नुकसान होगा महावीर की भाषा का अर्थ खो जाने से। इसलिए [illegible] के कव्हर की चिन्ता करनी चाहिए।

को छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं अंगों को छिपाते हैं जो कुरूप हैं। इतने परम सुन्दर हैं वह कि छिपाने को कुछ भी नहीं, नग्न खड़े हो सके हैं। नग्न होने में भी परम सुन्दर हैं। और उनकी परम्परा को न पकड़ने वाला, शब्द पकड़ने वाला जो आदमी काया-क्लेश करता है वह शरीर को सता रहा है, वह बिल्कुल पागल है। सताया हुआ शरीर ऐसा नहीं होता जैसा महावीर का है। हाँ, दिगम्बर मुनि को देखने से पता चलता है कि वह शरीर को सता रहा है। कोई भी दिगम्बर मुनि अब तक महावीर जैसा शरीर खड़ा करके नहीं बता सका है। कहीं भूल हो गई है।

महावीर कायाक्लेश किसी और ही बात को कहते हैं। एक आदमी जो सुबह घण्टे भर व्यायाम करता है वह भी काया-क्लेश कर रहा है। वह पसीने-पसीने हो जाता है, शरीर को थका डालता है। और एक वह भी काया-क्लेश कर रहा है जो एक कोने में बिना खाए, पिए, नहाए, धोए पड़ा है। लेकिन पहला आदमी काया के लिए ही काया-क्लेश कर रहा है। दूसरा आदमी काया की दुश्मनी में क्लेश कर रहा है। दोनों का दस वर्ष ऐसा ही क्रम चला तो दोनों को जब खड़ा करेंगे तो नम्बर एक का एक अद्भुत सुन्दर शरीर वाला व्यक्ति निकल आएगा और दूसरा एक दीन हीन, मरा हुआ व्यक्ति हो जाएगा। काया-क्लेश किसलिए? महावीर कहते हैं काया का क्लेश काया के लिए ही है। काया कभी भी वैसी नहीं बन सकती। जैसी बन सकती है उसके लिए श्रम उठाना पड़ेगा। तो क्लेश जो शब्द है वह अब घातक और दुश्मनीपूर्ण मालूम पड़ता है। वह महावीर के लिए नहीं है घातक और दुश्मनीपूर्ण। उस शब्द को पकड़ कर हम महावीर की पूरी वृत्ति को नष्ट कर देंगे। उस शब्द को बदलना पड़ेगा।

अब महावीर के अनुसार उपवास का मतलब होता है अपने पास रहना, आत्मा के पास रहना। जैसे उपनिषद्—गुरु के पास बैठना, वैसे उपवास—अपने पास होना। लेकिन उपवास का अनशन 'न खाना' अर्थ हो गया है। अब उपवास—[illegible] [illegible], नहीं [illegible] —न खाने वाला। न खाने पर और [illegible] [illegible] [illegible] और काया-क्लेश वाली बात है। चार-चार महीने तक कोई आदमी बिना [illegible] नहीं रह सकता है लेकिन उपवास में रह सकता है। उपवास का मतलब [illegible] और है। उपवास का मतलब है कि एक व्यक्ति अपनी चेतना में इतना लीन हो गया है कि शरीर का [illegible] पता ही [illegible] भी भोजन की याद नहीं करता है। क्योंकि शरीर का पता ही हो भोजन करे, अगर भीतर इतना लीन हो गया है

भीतर चली जाए कि बाहर का उसको ख्याल ही न रहे। इसका शरीर तो स्वांस छोड़ देगा फौरन। लेकिन शब्दों में ध्यान ही नहीं है।

मैंने उस संन्यासी को कहा कि तुम भी जिस दिन ध्यान करो, ध्यान में इतना डूब जाओ कि उठने का मन न करे तो उठना ही मत तुम। जब उठने का मन हो उठना, न हो तो मत उठना। तो उन्होंने तीन महीने ध्यान किया था। उनके साथ एक युवक रहता था। उसने एक दिन सुबह आकर खबर दी कि आज चार बजे से वह ध्यान में गए हैं तो नौ बज गया है। अभी तक उठे नहीं हैं और उन्होंने कह दिया है कि यदि न उठे तो उठाना मत लेकिन मुझे बहुत डर लग रहा है। वह पड़े हैं। मैंने कहा उन्हें पड़े रहने दो। दो बजे गए फिर दोपहर में आया फिर जरा घबराहट होने लगी क्योंकि वह पड़े ही हैं, न करवट लेते हैं, न हाथ चलाते हैं, कहीं कुछ नुकसान न हो जाए। मैंने कहा तुम मत डरो। आज उपवास हो गया तो हो जाने दो। रात नौ बजे वह फिर आया और कहा अब तो मेरी हिम्मत से बाहर हो गया है और आप चलिए। मैंने कहा कोई जाने की जरूरत नहीं है। ग्यारह बजे रात वह आदमी उठा और भागा हुआ मेरे पास आया। उसने कहा कि आज समझा कि उपवास और अनशन का क्या अर्थ है, कितना भेद है। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा भी उपवास का अर्थ हो सकता है।

जब आप भीतर चले जाते हैं तो बाहर का स्मरण ही छूट जाता है। उस स्मरण के छूटने में पानी भी छूट जाता है। और शरीर इतना अद्भुत यन्त्र है कि जब आप भीतर रहते हैं तो शरीर सावधान हो जाता है, अपनी व्यवस्था पूरी कर लेता है। आपको कोई चिन्ता की जरूरत नहीं। और शरीर की साधना का मतलब है कि शरीर ऐसा हो कि जब आप भीतर चले जाएं तो उसे आपकी कोई जरूरत न हो, वह अपनी व्यवस्था कर ले। वह स्वचालित यन्त्र की तरह अपना काम करता है, आपकी प्रतीक्षा करता है कि जब आप बाहर आयेंगे तो वह आपको खबर देगा कि मुझे भूख लगी है, कि मुझे प्यास लगी है, नहीं तो वह नुकसान ले लेगा, आपको खबर भी नहीं देगा। अनशन का सम्बन्ध है ज्यादा भी ऐसी भावना कि खाना न खा जाए, भोजन न लिया जाए, भोगी बन जाए। लेकिन शब्द बड़े खतरनाक हैं इसलिए इसको खाना छोड़ना मत कहो, इसको काया-साधना कहो। इसको अनशन कहा तो ठीक नहीं है कि उसमें ऐसा लगता है कि खाना नहीं है। उपवास को 'अनशन' मत कहो, अनशन मत कहो, उपवास की यही आत्मा के निकट होना। आत्मा के निकट

महावीर के जन्म से लेकर उनकी साधना के काल के शुरू होने तक कोई स्पष्ट घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। जीसस के जीवन में भी पहले तीस वर्षों के जीवन का कोई उल्लेख नहीं है। इनके पीछे बड़ा महत्त्वपूर्ण कारण है। महावीर जैसी आत्माएं अपनी यात्रा पूरी कर चुकी होती हैं पिछले जन्म में ही, घटनाओं का जो जगत् है, वह समाप्त हो चुका होता है। इस जन्म में उनके आने की जो प्रेरणा है उनकी स्वयं की कोई वासना उसमें कारण नहीं है। सिर्फ करुणा कारण है। जो उन्होंने जाना है, जो उन्होंने पाया है उसे बांटने के अतिरिक्त इस जन्म मे उनका अब कोई काम नहीं। ठीक से समझें तो तीर्थंकर होने का अर्थ है ऐसी आत्मा जो अब सिर्फ मार्ग दिखाने को पैदा हुई हो। और जो अभी स्वयं ही मार्ग खोज रहा हो वह मार्ग नहीं दिखा सकता। जो खुद ही अभी मार्ग खोज रहा है उसके अभी मार्ग बनाने का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि मार्ग क्या है, यह मार्ग पर चलने से नहीं, मंजिल पर पहुंच जाने से पता चलता है। चलते समय तो सभी मार्ग ठीक मालूम होते हैं जिन पर हम चलते हैं, वहां मार्ग ठीक मालूम पड़ते हैं। और चलते समय कसौटी भी कहां है कि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, वह ठीक होगा। क्योंकि मार्ग का ठीक होना निर्भर करेगा मंजिल जाने पर। मार्ग के ठीक होने का एक ही अर्थ है कि जो मंजिल मिला दे। लेकिन यह पता कैसा चलेगा मंजिल मिलाने के पहले कि इस मार्ग से मंजिल मिलेगी। यह तो उसे ही पता चल सकता है जो मंजिल पर पहुंच गया है। लेकिन जो मंजिल पर पहुंच गया है, उसका मार्ग समाप्त हो गया है। और मंजिल पर पहुंच जाना इतना कठिन नहीं है जितना मंजिल पर पहुंच कर मार्ग पर लौटना। साधारणतः कोई भी कारण नहीं मालूम देता कि जो मंजिल पर

पहुँच गया हो वह मंज़िल पर विश्राम न करे। दुनिया में मुक्त आत्माएं तो बहुत होती हैं क्योंकि मुक्ति के मंज़िल पर पहुँचते ही वह खो जाती हैं निराकार में। लेकिन थोड़ी सी आत्माएं फिर अंधेरे पथों पर वापस लौट आती हैं। ऐसी आत्माएं जो मंज़िल पर पहुँच कर वापस लौटती हैं तीर्थंकर कहलाती हैं। कोई परम्परा उन्हें तीर्थंकर कहती है, कोई परम्परा अवतार कहती है, कोई परम्परा उन्हें ईश्वरपुत्र कहती है, कोई परम्परा पैगम्बर कहती है। लेकिन पैगम्बर, तीर्थंकर, अवतार का जो अर्थ है, वह इतना है सिर्फ, ऐसी चेतना जिसका काम पूरा हो चुका और लौटने का कोई कारण नहीं रह गया है।

मंज़िल खोजना कठिन है; मंज़िल पर पहुँच कर जब परम विश्राम का क्षण आ गया तब लौटना उन रास्तों में बहुत मुश्किल है, अत्यन्त कठिन है। इसलिए इन थोड़ी सी आत्माओं को परम सम्मान उपलब्ध हुआ है जो मंज़िल पाकर वापस रास्ते पर लौट आती हैं। और यही आत्माएं मार्गदर्शक हो सकती हैं। तीर्थंकर का मतलब है जिस घाट से पार हुआ जा सके। तीर्थ कहते हैं उस घाट को जहाँ से पार हुआ जा सके। और तीर्थंकर कहते हैं उस घाट के मल्लाह को जो पार करने का रास्ता बता दे।

महावीर का इस जन्म में और कोई प्रयोजन नहीं है स्वयं। इसलिए बचपन का सारा जीवन घटनाओं से शून्य है। घटनाएं घटने का कोई अर्थ नहीं है। वह बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। इसलिए कोई घटनाएं उल्लिखित नहीं हैं, उल्लिखित होने का कोई कारण नहीं है। उनका प्रारम्भिक जीवन बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। पर यह बड़ी हैरानी की बात है कि आम तौर से जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं, उनके बचपन में विशिष्ट घटनाएं नहीं घटती हैं। जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं उनका प्रारम्भिक जीवन बिल्कुल घटनाशून्य होता है। इस अर्थ में घटनाशून्य होता है कि वह आया है किसी और काम से, उसका अब कोई काम नहीं रहा। बस यह व्यवहार [illegible] है। बाकी [illegible] होती हैं, वह [illegible] [illegible] मेरी दृष्टि में तो महावीर [illegible] इसलिए [illegible] [illegible]

कलियाँ फूल बनती हैं और कभी पता नहीं चलता, कहीं कोई शोर गुल नहीं होता, कहीं कोई आवाज नहीं होती। ऐसे चुपचाप बड़ा होने लगा। मैं तो उसमें यही अर्थ देख पाता हूँ कि चुपचाप बढ़ने लगा। और यह चुपचाप बढ़ना दिखाई पड़ने लगा होगा क्योंकि घटनाएँ न घटना बहुत बड़ी घटना है। छोटे से छोटे भी आदमी के जीवन में घटनाएँ घटती हैं, चाहे वे छोटी हों। बड़े आदमी के जीवन में बड़ी घटनाएँ घटती हैं, चाहे कैसी भी हों। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति हो जिसके जीवन में कोई घटना न घटी हो, जो इतना चुपचाप बढ़ने लगा हो कि चारों तरफ कोई वर्तुल पैदा न होता हो गगन में, क्षेत्र में। तो यह अनूठा दिखाई पड़ा होगा कि यह कुछ विशिष्ट ही है। इसलिए शिक्षक उसे पढ़ाने आए होंगे, उसने इन्कार कर दिया होगा क्योंकि वह पढ़ेगा नहीं। वह पढ़ा हुआ ही है। शिक्षक पढ़ाने आए हैं तो वर्धमान ने मना कर दिया है। क्योंकि शिक्षकों ने पढ़ा है जो उसे पढ़ा सकते हैं, वह पहले से ही जानता है। इसलिए कोई शिक्षा नहीं हुई। शिक्षा का कोई कारण भी न था, कोई अर्थ भी न था। कोई घटना न घटी। वह चुपचाप बड़े हो गये। और हो सकता है कि यह बात भी अनुभव में आई होगी लोगों को। इतने चुपचाप कोई भी बड़ा नहीं हो सकता। ऐसा ही जीसस का भी जीवन है। वे चुपचाप बड़े हो गए हैं।

दूसरी बात ध्यान में रख लेनी जरूरी है महावीर के जन्म के सम्बन्ध में, जो अर्थपूर्ण है। जो गाथा (मिथ) है, जो कहानी है वह यह है कि वह ब्राह्मणी के गर्भ में आए और देवताओं ने गर्भ बदल दिया। और क्षत्रियों के गर्भ में पहुँचा दिया। यह बात तथ्य नहीं है। यह कोई तथ्य नहीं है कि किसी एक स्त्री का गर्भ निकाला और दूसरी स्त्री में रख दिया। लेकिन यह बड़ी गहरी बात है और गहरी बात कई चीजों की सूचना है वह हमें समझनी चाहिए। पहली सूचना तो यह है कि महावीर का जो पथ है वह पुरुष का, आक्रमण का, क्षत्रिय का है। महावीर का जो व्यक्तित्व है और उनकी खोज का पथ है वह क्षत्रिय का है। क्षत्रिय का इन अर्थों में कि वह जीतने वाले का है। और इसीलिए महावीर जिन कहलाए। जिन का मतलब है जीतने वाला, जिसका और कोई पथ नहीं सिवाय जीतने के। जीतेगा तो ही उसका मार्ग है। और इसलिए पूरी परम्परा जैन हो गई। तो यह बड़ी मीठी कहानी चुनी है। ब्राह्मणी के गर्भ में था किन्तु देवताओं को उसे उठाकर क्षत्रिया के गर्भ में कर देना पड़ा। क्योंकि वह बच्चा ब्राह्मण होने को न था।

अब ब्राह्मण भी समझने जैसी बात है। ब्राह्मण का अपना मार्ग है। जैसे मैंने कहा पुरुष का एक मार्ग है आक्रमण का, स्त्री का एक मार्ग है समर्पण का। ब्राह्मण का एक मार्ग है भिक्षा माँग लेने का। मानो ब्राह्मण यह कह रहा है कि परमात्मा से लड़ोगे? असंभव है। समर्पण करोगे किसके प्रति? उसका अभी कोई पता नहीं है। लेकिन अज्ञात घेरे हुए है चारों तरफ और हम अत्यन्त क्षुद्र और दीन-हीन हैं। हम जीत नहीं सकते और हम समर्पण भी क्या करेंगे? हमारे पास समर्पण को भी क्या है? दीनता, हीनता इतनी है, अज्ञान हम इतने हैं तो देंगे क्या हम? देने को क्या है? और छीनेंगे कैसे? एक ही मार्ग है कि हाथ फैला दें विनम्रता से। और भिक्षा में हम ले लें। तो ब्राह्मण का जो मार्ग है, ब्राह्मण की जो वृत्ति है वह भिक्षुक की है।

कहानी कहती है कि महावीर जैसा व्यक्ति अगर ब्राह्मण के गर्भ में आ जाएगा तो देवताओं को उसे हटा कर क्षत्रिय के गर्भ में रख देना पड़ेगा। वह व्यक्तित्व ब्राह्मण का नहीं है। और क्षत्रिय गर्भ से आते हैं। वह क्षत्रिय ही हो सकता है। जो लड़ेगा, माँग नहीं सकता है। महावीर ऐसे हाथ नहीं फैला सकते, परमात्मा के सामने भी नहीं, किसी के भी सामने नहीं, ना लेंगे। और यह ही ढंग है उनकी जिन्दगी का। और इस ढंग से जो परमात्मा को, उन अर्थों में जो परमात्मा था, [illegible] थी। वह असहाय, माँगने वाले की थी। अद्भुत है यह बात। इसकी [illegible] नहीं जितना कोई सोचता हो। क्योंकि [illegible] शान्ति है, बिल्कुल असहाय हो जाना। यह भी एक मार्ग है, लेकिन यह मार्ग पूरा [illegible] था, [illegible] था। जो अद्भुत घटना घट गई [illegible]। क्योंकि मार्ग जो था [illegible] [illegible]

गई थी। अब क्षत्रिय की धारा है। इसलिए जो संघर्ष था उस दिन वह बहुत गहरे में ब्राह्मण और क्षत्रिय के मार्ग का संघर्ष था। और यह सोचने की बात है कि जैनों के चौबीसों तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। असल में यह मार्ग ही क्षत्रिय का है। कोई पूछता है कभी कि क्या क्षत्रिय के अलावा और कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता? नहीं हो सकता। चाहे वह बेटा ब्राह्मणी के ही गर्भ से क्यों न पैदा हो वह होगा क्षत्रिय ही, तो ही उस मार्ग पर जा सकता है। यह मार्ग आक्रमण का है, यह मार्ग विजय का है। वहां भाषा विजय की और जीत की है।

दूसरी बात लोग निरन्तर पूछते हैं कि क्या गरीब का बेटा तीर्थंकर नहीं हो सकता? वह सब राजपुत्र थे—क्षत्रिय और राजकुल के। यह भी बहुत अर्थपूर्ण है कि जो अभी इस संसार को ही नहीं जीत पाया है, वह उस संसार को कैसे जीतेगा? आक्रमण का मार्ग है न? तो अभी जब इस संसार में ही नहीं जीत पाए तो वहां कैसे जीत लोगे? यह इतनी छोटी सी जीत नहीं तय कर पाए तो उस बड़ी जीत पर कैसे जाओगे? इसलिए चौबीसों बेटे राजपुत्र हुए हैं। राजपुत्र इस अर्थ के सूचक हैं कि जीतने वाला जो है वह कुछ भी जीतेगा। और जब वह इसको जीत लेगा तब उसकी तरफ उसकी नजर उठेगी। जब वह इस लोक को जीत लेगा तब उस लोक को जीतेगा। जीत के मार्ग पर पहले यही लोक पड़ने वाला है। ब्राह्मण इस लोक में भी भिक्षा मांगेगा, उस लोक में भी। वह मानता ही यह है कि प्रसाद से ही मिलेगा जो मिलना है। आक्रमण की बात ही नहीं है कोई। प्रेम से, प्रभु की कृपा से मिलेगा। जो इतिहास के क्षेत्र में शोध करने वालों ने ब्राह्मणजाति के विरुद्ध क्षत्रिय जाति के संघर्ष की चर्चा की है वह निराधार है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसी दो जातियों का कोई संघर्ष नहीं, संघर्ष है ऐसी दो परम्पराओं का, ऐसे दो मार्गों का जो सत्य की खोज में निकले हों। और तब एक मार्ग कुण्ठित हो जाता है,—और सब मार्ग कुण्ठित हो जाते हैं सीमा पर जाकर क्योंकि सब मार्ग अहमन्य हो जाते हैं। ब्राह्मण का मार्ग प्राचीनतम मार्ग है। वह कुण्ठित हो गया है। उसके विरोध में बगावत जरूरी थी। वह बगावत क्षत्रिय से आनी स्वाभाविक थी क्योंकि हमेशा बगावत ठीक विपरीत से आती है, विद्रोह जो है ठीक विपरीत से आता है। ब्राह्मण है मांगने वाला, क्षत्रिय है जीतने वाला। एक दान और दया से लेगा, दूसरा दुश्मन को समाप्त करके लेगा। ठीक बगावत विपरीत वर्ग से आने वाली थी, इसलिए वह क्षत्रिय थे। इसलिए वह जन्म की कथा बड़ी मीठी है। यानी वह यह बताती है कि

ब्राह्मण की जो कौम थी, वह बांझ हो गई है। अब उसमें महावीर जैसा व्यक्ति पैदा नहीं हो सकता। वह परम्परा क्षीण हो गई थी, मर गई थी। ब्राह्मण उस युग में महावीर या बुद्ध की हैसियत का एक भी आदमी पैदा नहीं कर पाया। वह मार्ग सूख गया था। उसने पैदा किया आगे लेकिन वक्त लग गया डेढ़ हजार वर्ष का। फिर आया संघर्ष। डेढ़ हजार वर्ष में महावीर और बुद्ध ने जो परम्परा छोड़ी थी वह सूख गई और जड़ हो गई। तब ठीक विपरीत विद्रोह फिर काम कर गया। ये जो प्रतीक इस तरह चुने हैं बड़े अर्थपूर्ण हैं। और इन प्रतीकों को जो जड़ता से तथ्यों की भाँति पकड़ लेता है वह बिल्कुल भटक ही जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि क्या अर्थ हो सकता है। महावीर के जीवन में मैं कहता हूँ कोई घटना नहीं घटी।

लेकिन कुछ बातें सोचने जैसी हैं। जैसे दिगम्बर कहते हैं कि महावीर अविवाहित रहे। मजेदार घटना है। और श्वेताम्बर कहते हैं कि वे न केवल विवाहित हैं बल्कि उनकी बेटी भी हुई। कितनी ही चीजें विकृत हो जाएँ, लेकिन यह असम्भव है कि एक अविवाहित व्यक्ति के साथ एक पत्नी और लड़की भी जुड़ जाएँ। यह करीब-करीब असम्भव है। लेकिन यह भी असम्भव है कि एक विवाहित व्यक्ति और उसकी एक लड़की और दामाद के होते हुए एक परम्परा उसे अविवाहित घोषित करे। यह दोनों बातें असम्भव हैं। ये बातें कैसे सम्भव हो सकती हैं? अगर विवाह हुआ हो, लड़की हुई हो, दामाद हो और ये सब बातें तथ्य हों तो कोई कैसे इन्कार करेगा इस बात को कि यह हुआ ही नहीं। यहाँ सिर्फ यह बात समझ लेनी है कि तथ्य जरूरी नहीं सदा सत्य हो। बहुत बार तथ्यों में बुनियादी हेर-फेर हो जाती है। और जो सत्य को नहीं देख पाते वे सिर्फ मृत तथ्यों को संगृहीत कर लेते हैं। मेरा मानना है कि महावीर का विवाह जरूर हुआ होगा लेकिन वे बिल्कुल अविवाहित की भाँति रहे होंगे। जिन्होंने यह तथ्य देखा उन्होंने कहा कि विवाह जरूर हुआ। और जिन्होंने सत्य देखा उन्होंने कहा कि यह आदमी अविवाहित था। अविवाहित होना एक सत्य है और विवाहित होना एक तथ्य है।

कोई व्यक्ति बिना विवाहित हुए विवाहित हो सकता है, मन से, चित्त से, वासना से। और विवाहित होने की वासना क्या है, इसे हम समझ लें। विवाहित होने की वासना है कि मैं अकेला काफी नहीं, पर्याप्त नहीं। दूसरा भी चाहिए जो आए और मुझे पूरा करे। विवाहित होने का मतलब क्या है? विवाहित होने का स्पष्ट मतलब है कि मैं अपने में पर्याप्त नहीं हूँ। जब तक कि

कोई मुझे मिले, जोड़े और पूरा न करे, पुरुष अधूरा है अपने में, आधा है, स्त्री जोड़े वह विवाहित होने की कामना है। यह विवाहित होने का निरा है। स्त्री अधूरी है अपने में। पुरुष के बिना आधी है। पुरुष आए और उसे भरे और पूरा करे। यह विवाहित होने की कामना है। तो दिगम्बरों को मैं कहता हूँ उन्होंने ठीक ही कहा कि महावीर अविवाहित थे। क्योंकि उस व्यक्ति में किसी से पूरे होने की कोई कामना न बची थी। वह पूरा था। ऐसी कोई जगह खाली न था जो किसी और से उसे पूरा करना है। इसलिए मैं मानता हूँ कि श्वेताम्बरों से दिगम्बरों की आँख गहरी पड़ी, बहुत गहरी पड़ी। बहुत गहरा देखा उन्होंने कि यह आदमी अविवाहित है। इस साधारण तथ्य के लिए कि स्त्री से उसका विवाह हुआ है, उसको विवाहित कहना एकदम अन्याय हो जाएगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं? एकदम अन्याय हो जाएगा इस आदमी को विवाहित कहना क्योंकि यह आदमी बिल्कुल अविवाहित है। और इसलिए सम्भव हो सका कि जिन्होंने गहरे देखा उन्हें वह अविवाहित दिखाई पड़े और जिन्होंने तथ्य देखा उनके लिए वह विवाहित होने का तथ्य ठीक था। विवाह तो हुआ था। और यह आदमी अपने में इतना पूरा था कि दूसरा इसके पास हो सकता है, दूसरा इसके निकट हो सकता है, दूसरा चाहे तो इसमें अपने को भर सकता है लेकिन इस आदमी को दूसरे की अपेक्षा नहीं। इसलिए यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो लेकिन महावीर ने पत्नी नहीं पाई। इसलिए उन दिगम्बरों की आँख गहरी गई। वे कहते हैं कि पत्नी नहीं थी इस आदमी के पास। यह हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो। यह भी हो सकता है कि पत्नी ने इससे सन्तान पाई हो। लेकिन महावीर पिता नहीं थे और न पति थे। यह घटना घटी भी हो तो अत्यन्त बाह्य तल पर घटी। लेकिन भीतर यह आदमी पूरा था। इस पर जोर देने के लिए दिगम्बरों ने कहा कि इस आदमी ने कभी शादी नहीं की। मगर उनसे भी जैसे-जैसे बात आगे बढ़ी, भूल होती चली गई। वह तथ्य से इन्कार करने लगे। उनको भी ख्याल न रहा इस बात का कि तथ्य यह था कि शादी की थी। और मैं मानता हूँ कि यह बात भी अर्थपूर्ण है कि महावीर ने इन्कार नहीं किया शादी के लिए। असल में जो शादी के लिए आतुर हो वह, और जो शादी के लिए इन्कार करता है वह, दोनों स्त्रियों को अर्थ देते हैं। इन्कार करने वाला भी अर्थ देता है, इन्कार करने वाला भी भय प्रकट करता है, इन्कार करने वाला भी पलायन करता है। इन्कार करने वाला भी मानता है कि स्त्री कुछ है जो पास होगी, तो मैं कुछ और हो जाऊँगा। महावीर ने ना भी न की होगी इसलिए शादी हो गई होगी। ना कर

देते तो शादी रुक सकती थी। लेकिन ना तक भी न की होगी। आदमी इतना पूरा था कि ना करने तक का उपाय न था। ठीक है, स्त्री आती है तो आए, न आती है तो न आए। ये दोनों बातें अर्थहीन हैं। अन्य घटनाओं से भी लगता है कि यह बात सच रही होगी।

महावीर ने आज्ञा चाही है पिता से कि मैं संन्यासी हो जाऊं। पिता ने कहा—मेरे रहते नहीं। मैं जब तक जीवित हूं तब तक तुम बात ही मत करना दुबारा। और महावीर चुप हो गए। अद्‌भुत आदमी रहा होगा। जिसको संन्यास लेना हो वह ऐसा काम करे कि आज्ञा मांगे। पहली बात यह कि जिसको संन्यास लेना हो वह आज्ञा क्यों मांगे? संन्यास का मतलब ही यह है कि मोह-बंधन तोड़ रहा है। संन्यास की भी आज्ञा मांगनी पड़ती है? जैसे कोई आत्महत्या करने की आज्ञा मांगे कि मैं आत्महत्या करना चाहता हूं, आप आज्ञा देते हो? तो कौन आज्ञा देगा? संन्यास की कभी आज्ञाएं दी गई हैं, संन्यास लिया जाता है। और महावीर ने आज्ञा मांगी संन्यास की, कि मैं संन्यास ले लूं। कौन पिता राजी होगा और महावीर जैसे बेटे का? ऐसे बेटे हैं उनके, और पिता संन्यास के लिए राजी हो जाए? महावीर जैसे बेटे का कोई पिता राजी होगा संन्यास के लिए? इन्कार किया होगा और कहा होगा कि मैं मर जाऊं तब यह बात करना, यह बात ही मत करना मुझसे। और मजा यह है, घटना यह है कि यह लड़का तो बहुत अद्‌भुत है, यह चुप हो गया और फिर उसने बात ही न की। निश्चित ही संन्यास लेने या न लेने से कोई बुनियादी फर्क न पड़ता होगा इसको। इसलिए जोर भी नहीं है कोई कि ठीक है, नहीं भी हुआ तो भी चलेगा। पिता मर गए तो मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे आज्ञा दे दें। अब तो पिता चल बसे, मैं संन्यासी हो जाऊं। बड़े भाई ने कहा तुम पागल हो गए हो। एक तो पिता के मरने का दुख और तुम अभी मुझे छोड़कर चले जाओगे। और घर भी नहीं पहुंचे, यह भी अभी रास्ते पर। मुझसे यह बात कभी मत करना। तो बड़ी मजेदार घटना है कि महावीर ने फिर यह बात ही नहीं की। फिर वह घर में ही रहने लगे। लेकिन थोड़े ही दिनों में घर के लोगों को पता चला कि महावीर जैसे नहीं हैं। हैं घर में, और नहीं हैं। उनका होना न होने के बराबर है। न वे किसी मार्ग में आड़े आते हैं, न वे किसी की तरफ देखते हैं, न, कोई उन्हें देखे, इसकी आतुरता रहती है। वे ऐसे हैं जैसे उस घर में अकेले हैं, जैसे कोई है ही नहीं। कोई उनसे पूछे, 'हां और ना' में जवाब मांगे तो भी नहीं देते। किसी का

और विपक्ष में नहीं पड़ते। किसी वाद-विवाद में रस नहीं लेते। घर में क्या हो रहा है, नहीं हो रहा है, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं। अतिथि हो गए हैं। तो घर के लोगों को लगने लगा कि वह तो गए ही। सिर्फ शरीर रह गया है। तब घर के लोगों ने कहा कि शरीर को रोकना उचित नहीं। जो जा ही चुका है—हम इसे भी रोकने के भागीदार क्यों बनें? तब घर के लोगों ने प्रार्थना की कि अब आपकी मर्जी हो तो आप संन्यास ले लें क्योंकि हमारी तरफ से तो लगता है संन्यास पूरा हो ही गया। आप घर में हैं या नहीं, बराबर हो गया। हम क्यों इस पाप के भागीदार हों कि आपको रोक लें? और महावीर चल पड़े। ऐसा जो व्यक्ति है उसने शादी के वक्त यह भी नहीं कहा होगा कि नहीं करूंगा है। क्योंकि नहीं करने में भी तो स्त्री को हम मूल्य देते हैं, दूसरे को मूल्य देते हैं, डरते हैं कि नहीं करना है। शादी के बाद भी ऐसे रहा होगा जैसे कि शादी के पहले रहता था। कुछ फर्क ही न पड़ा होगा। इसलिए जिन्होंने पहले देखा उन्होंने माना कि वह अविवाहित है। जैसा कि मैंने कहा कि जीसस की माँ कुँवारी है और बेटे को जन्म दिया क्योंकि उसके कुँवारेपन में ही पैदा हो सकता है जीसस जैसा बेटा। महावीर जैसा व्यक्ति पति हो, कैसे हो सकता है? यानी पति होने की जो धारणा है, उसे हम थोड़ा सोचें और समझें कि महावीर जैसा व्यक्ति पति कैसे हो सकता है?

पति में पहले तो स्वामित्व है और जो व्यक्ति जड़ वस्तु पर भी स्वामित्व नहीं रखना चाहता वह किसी जीवित व्यक्ति पर स्वामित्व रखेगा, यह असम्भव है। यह कल्पना ही असम्भव है। यानी जो धन को भी नहीं कह सकता कि मैं इसका मालिक हूँ, वस्तु के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं कर सकता मालिक होने का, वह किसी जीवित स्त्री के साथ मालिक होने का दुर्व्यवहार कैसे करेगा? पति होना एक तरह का दुर्व्यवहार है, एक प्रभुत्व है, एक स्वामित्व है। महावीर पति नहीं हो सकते और महावीर पिता भी कैसे हो सकते हैं? हां, लड़की जन्मी हो, यह हो सकता है। पिता की कामना क्या है, यह भी हम ठीक से समझ लें।

पिता की कामना है, स्वयं को, स्वयं की देह को, स्वयं के अस्तित्व को दूसरे के माध्यम से आगे जारी रखना। पिता की कामना का अर्थ क्या है? आखिर कोई पिता होना क्यों चाहता है? कामना यह है कि मैं तो नहीं रहूँगा, कोई फिक्र नहीं। लेकिन मेरा अंश रहेगा, रहेगा और रहेगा। इसलिए बाँझ पिता दुखी है, बाँझ माँ दुखी है। दुख क्या है? दुख है खतम हो गई एक रेखा—जहाँ हम समाप्त हो रहे हैं, जहाँ से हम में से कुछ भी नहीं बचेगा जीवित। जैसे एक

जाना जिसमें आगे पत्ते आना बन्द हो गए। पिता की आकांक्षा क्या है? पिता की आकांक्षा है कि चाहे यह शरीर मर जाए लेकिन इस शरीर का एक अंश फिर शरीर निर्मित कर देगा और रहेगा। मैं जीऊँगा दूसरों में। इसलिए बाप बेटे को बनाने के लिए इतना आतुर है। बेटे में बाप की महत्वाकांक्षा और अहंकार जीना चाहते हैं। बेटे के रूप में वे बने रहना चाहते हैं।

महावीर जैसे व्यक्ति को बने रहने की आकांक्षा का सवाल ही नहीं। न अहंकार है, न होने की तृष्णा। न होने का अनुभव करके लौटा हुआ आदमी है। जहाँ सब खो जाता है, वहाँ से लौटा हुआ आदमी है। तो इसको ख्याल हो सकता है कि पिता बनो? हाँ यह हो सकता है लड़की पैदा हुई हो। इस बात को ठीक से समझे बिना गड़बड़ हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। जब लड़की पैदा हुई तो महावीर पिता है। ऐसा तथ्य पकड़ने वाले को दिखेगा। मगर जो सत्य को पकड़ने जाता है उसके लिए लड़की का होना न होना अप्रासंगिक है। हो सकता है महावीर की पत्नी, जो अपने को पत्नी मानती रही हो माँ भी बनना चाही हो, और माँ बन गई हो। लेकिन महावीर पिता नहीं बन पाए। और इसलिए एक धारा में जिन्होंने देखा, उन्होंने बिल्कुल इन्कार कर दिया और कहा कि आदमी ऐसा था ही नहीं, यह बात ही झूठ है। लेकिन उन्होंने तथ्य को इन्कार किया और दूसरों ने तथ्य को पकड़ लिया। और सत्य को देखना बहुत मुश्किल होता है। तथ्य आवरण बन जाता है।

एक छोटी कहानी मुझे याद आती है। एक गाँव के बाहर एक नग्न मुनि ठहरा हुआ है। सम्राट् की पत्नियाँ उसे भोजन कराने गाँव के बाहर जा रही हैं। नदी दूर पर है, कोई पुल नहीं, कोई नाव नहीं। वे अपने पति से, सम्राट् से पूछती हैं कि हम क्या करें? कैसे पार जाएँ? तो वे कहते हैं कि तुम नदी से जाकर कहना कि यदि मुनि जीवन भर के उपवासे हों तो मार्ग मिल जाए। नदी मार्ग दे देगी अगर उस पार ठहरा हुआ वह मुनि जीवन भर का उपवास किया हुआ है। तो उन्होंने जाकर कहा है। और कहानी है कि नदी ने मार्ग दे दिया। वे बहुत बहुमूल्य भोजन बनाकर, स्वादिष्ट मिष्टान्न बनाकर ले गईं—मुनि के सामने रखती हैं। मुनि उनकी सारी थालियाँ साफ कर गए हैं, कुछ भी नहीं बचा है। तब वे लौटने को हुईं तब उन्हें फिर याद हुई कि अभी तो नदी को जाकर हम बोल आईं थीं कि मुनि अगर जीवन भर के उपवासे हों तो—अब क्या करेंगी? मुनि से पूछती हैं कि अब हम क्या करें? अभी तो हम यह कह आई थीं कि आप जीवन भर के उपवासे हैं, लेकिन

अब तो यह नहीं कर सकती हैं। सामने ही भोजन कर लिया है। तो मुनि ने कहा कि इसमें क्या फर्क पड़ता है। तुम जाओ और नदी से कहो कि अगर मुनि जीवन भर के उपासे हैं तो नदी राह दे दे। उन स्त्रियों को बड़ी मुश्किल हो गई क्योंकि भोजन थोड़ा भी नहीं, बहुत ज्यादा, पूरा ही मुनि कर गए हैं, कुछ छोड़ा भी नहीं है पीछे और फिर भी कहते हैं उपासे हैं। बड़ी शंका में, बड़े सन्देह में उन्होंने नदी से जाकर कहा। शक पर हंसी आती है कि यह कैसे सम्भव है। लेकिन नदी ने फिर मार्ग दे दिया। तो वे लौटकर अपने पति से पूछती हैं। जाते वक्त जो घटा वह बहुत छोटा चमत्कार था। लौटते वक्त जो घटा है, उस चमत्कार का मुकाबला ही नहीं। जाते वक्त भी चमत्कार हुआ था कि नदी ने मार्ग दिया। लेकिन वह बहुत छोटा हो गया अब। यह मुनि जो कि सब खा गए और फिर उपवासे हैं! उनके पति ने कहा जो उपवास स्वाभाविक ही है उसी के करने वाले को हम मुनि कहते हैं। भोजन से उपवास का कोई सम्बन्ध नहीं है। असल में भोजन करने की तृष्णा एक बात है और भोजन करने की जरूरत बिलकुल दूसरी बात है। भोजन की तृष्णा भोजन न करो तो भी हो सकती है। भोजन करना और उसकी जरूरत बिलकुल दूसरी बात है। भोजन करो तो भी हो सकता है तृष्णा न हो। जब तृष्णा छूट जाती है और सिर्फ जरूरत रह जाती है शरीर की तो आदमी उपवासी है। जैसा मैंने सुबह कहा वह भीतर वास किए चला जाता है। शरीर की जरूरत है—चुन लेता है, कर देता है। इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं है। खुद कभी भी उसने भोजन नहीं किया है। तो अगर यह हो सकता है तो फिर महावीर पिता नहीं होंगे, लड़की हो तो भी, पति नहीं होंगे अगर पत्नी हो तो भी। तथ्य अक्सर सत्य को ढांक लेते हैं और हम सब तथ्यों को ही देख पाते हैं और हमारा ख्याल होता है कि तथ्य बड़े कीमती हैं। और तथ्य के बहुत पहलू हो सकते हैं।

मैंने सुना है एक अदालत में एक मुकदमा चला। एक आदमी ने एक हत्या कर दी है। आंखों देखे गवाह ने कहा कि खुले आकाश के नीचे यह हत्या की गई है। जब हत्या की गई, मैं मौजूद था। और आकाश में तारे थे। दूसरे आदमी ने कहा कि यह हत्या मकान के भीतर की गई है, मैं मौजूद था। चारों तरफ दीवार से बन्द परकोटा था। द्वार पर मैं खड़ा था। चारों तरफ दीवार थी, मकान था जिसके भीतर हत्या की गई है। उस न्यायाधीश ने कहा कि मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया है तुमने क्योंकि एक कहता है

खुले आकाश के नीचे और दूसरा कहता है मकान के भीतर। एक तीसरे आंख वाले गवाह ने जिसने खुद देखा था कहा कि दोनों ही ठीक कहते हैं। मकान अधूरा बना था। अभी सिर्फ दीवार ही उठी थी ऊपर आकाश में तारे थे—छप्पर नहीं था मकान पर। और ये दोनों ही ठीक कहते हैं। आकाश में तारे थे और खुले आकाश के नीचे ही हत्या हुई। चारों तरफ दीवार थी और मकान था, वह भी सच है। जीवन बहुत जटिल है और एक ही तथ्य को हम बहुत तरह से देख सकते हैं और फिर दूसरी गहराई यह कि तथ्य जरूरी नहीं कि सत्य हो। सत्य कुछ और भी हो सकता है, तथ्य से विपरीत भी हो सकता है। लेकिन चूंकि हम तथ्यों को ही जानते हैं और सत्यों से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए अक्सर हम तथ्यों को पकड़ लेते हैं और तब मुश्किल में पड़ जाते हैं और बहुत कठिनाई पैदा हो जाती है।

जैनियों के एक तीर्थंकर हैं। श्वेताम्बर मानते हैं कि वह स्त्री है, दिगम्बर मानते हैं कि वह पुरुष है। ऐसा झगड़ा हो सकता है एक व्यक्ति के सम्बन्ध में। यह झगड़ा भी हो सकता है दो परम्पराओं में कि वह स्त्री है या पुरुष। अब यह तो बड़ी सीधी तथ्य की बातें हैं। इनमें भी झगड़ा हो सकता है। लेकिन तथ्य बड़ा झूठा बोल सकते हैं, और जब कभी सत्य के विपरीत होता है तो कठिनाई पैदा हो जाती है। हो सकता है कि जिस तीर्थंकर के बारे में यह ख्याल है, वह स्त्री हो शरीर से। लेकिन तीर्थंकर तो हो नहीं सकता कोई व्यक्ति जब तक आक्रामक न हो, जब तक कि पुरुष-वृत्ति न हो, जब तक कि संघर्ष और संकल्प न हो। यह भी हो सकता है कि संघर्ष, संकल्प और आक्रमण ने पूरे व्यक्तित्व को बदल दिया हो। यह भी हो सकता है जब उसने संन्यास लिया हो, स्त्री रहा हो, तो पुरुष हो गया हो। यानी मेरा मतलब समझ लेना कि यह पूरा परिवर्तन भी सम्भव है।

ऐसा अभी रामकृष्ण के वक्त हुआ है। रामकृष्ण ने सारी साधनाएं कीं, सब मार्गों से जाना चाहा कि वह मार्ग से जा सकता है कि नहीं। तो उन्होंने ईसाइयों की, सूफियों की, वैष्णवों की, भक्ति-मार्गियों की, योगियों की, हठयोगियों की, सब तरह की साधनाएं कीं, उनमें उन्होंने एक सखी सम्प्रदाय की भी साधना की जिसमें व्यक्ति अपने को कृष्ण की स्त्री मान लेता है, परिपूर्ण भाव से सखी हो जाता है, गोपी बन जाता है, पुरुष भी हो तो भी। वह रात को कृष्ण की मूर्ति साथ लेकर सोता है पति की तरह, पत्नी होकर। रामकृष्ण ने सम्प्रदाय को स्वीकार कर लिया और कुछ महीनों तक उन्होंने सखीभाव की साधना की।

बड़ी अद्भुत घटना घटी उनके साधना-काल में। उनकी आवाज बदल गई, स्त्री की सी आवाज हो गई। चाल बदल गई। वह स्त्रियों जैसे चलने लगे। उनके स्तन उभर आए और तब घबराहट हुई कि कहीं उनका पूरा शरीर तो रूपान्तरित नहीं हो जाएगा। कहीं उनका पूरा का पूरा दैहिक रूपान्तरण न हो जाए। और उन्हें रोका उनके मित्रों ने, भक्तों ने। लेकिन वह उतर जा चुके थे। वह कहते थे कैसा पुरुष? कौन पुरुष? कौन रामकृष्ण? वह तो अब नहीं रहा। साधना पूरी हो जाने पर भी ८ महीने तक उन पर स्त्री के चिह्न रहे। छः महीने तक उनको देखकर लोग हैरान हो जाते थे कि इनको क्या हो गया? अगर यह सम्भव है तो फिर अगर किसी ने उन्हें उन दिनों में देखा होगा तो वह लिख सकता है कि वह स्त्री थे।

अब मेरे जाने ज्ञान में ऐसा है कि वह व्यक्ति स्त्री ही रही होगी जब वह साधना के जगत् में प्रविष्ट हुई लेकिन जो साधना चुनी वह पुरुष की साधना है। और उस साधना ने पूरा का पूरा रूपान्तरण किया होगा, न केवल व्यक्तित्व का बल्कि देह का भी। अब तो हम जानते हैं वैज्ञानिक ढंग से कि तीव्र मनोभावों से पूरी देह बदल सकती है। जिन्होंने तथ्य पकड़ा होगा उन्होंने देखा होगा कि वह स्त्री थी, तो स्त्री रही उनकी किताब में और जिन्होंने रूपान्तरण देखा होगा उनके लिए पुरुष हो गए। तथ्य को एकदम अन्धों की तरह पकड़ लेना खतरनाक है। सत्य पर नजर होनी चाहिए। तथ्य रोज बदल जाते हैं। यह तथ्य है कि आप पुरुष या स्त्री हैं किन्तु यह सत्य नहीं है। बिल्कुल सत्य नहीं है। सत्य वह है जो नहीं बदलता। पुरुष-स्त्री हो सकते हैं और स्त्री पुरुष हो सकती है। बहुत गहरे में कोई आदमी अलग-अलग नहीं होता। स्त्री भी होती है, भीतर पुरुष भी होता है, मात्रा में फर्क होता है। जिनको हम पुरुष कहते हैं, उनमें ६० प्रतिशत पुरुष और ४० प्रतिशत स्त्री होती है। इसको हम स्त्री कहते हैं वह ६० प्रतिशत स्त्री और ४० प्रतिशत पुरुष होता है। यह मात्रा बहुत कम भी हो सकती है। यह बहुत सीमान्त पर भी हो सकती है। यह ५१ प्रतिशत जैसी स्थिति में भी हो सकती है। और अब जरा फर्क भिन्न का, और रूपान्तरण हो जाएगा। दो प्रतिशत की बदलाहट और पूरा व्यक्ति बदल जाएगा। लेकिन मनुष्य जाति को हमेशा बाधा पड़ी है इस बात में कि उसने तथ्यों को एकदम बिल्कुल अन्धों की तरह जकड़ कर पकड़ लिया है। और तथ्य बड़ा झूठ बोल सकते हैं।

महावीर के सम्बन्ध में भी बातें कही जाती हैं। जब जैसे एक वर्ग मानता है कि वह वस्त्र पहने हुए थे, चाहे वह देवताओं का दिया हुआ वस्त्र हो, चाहे वह आँखों में न दिखाई पड़ने वाला वस्त्र हो। लेकिन वह वस्त्र पहने हुए हैं, नग्न नहीं हैं। और एक वर्ग मानता है कि वह बिलकुल नग्न हैं, वस्त्र उन्होंने छोड़ दिए हैं। किसी प्रकार का वस्त्र उनके शरीर पर नहीं है। और ये दोनों बातें एक साथ सच हैं। वह बिलकुल सच है कि महावीर ने वस्त्र छोड़ दिये थे। वह बिलकुल नग्न हो गए लेकिन उनकी नग्नता भी ऐसी थी कि उसे ढाँकने के लिए वस्त्रों की जरूरत नहीं थी। अब हमें थोड़ा समझना जरूरी होगा। एक आदमी इस भाँति वस्त्र पहन सकता है कि वह नंगा हो। एक आदमी इस भाँति वस्त्र पहन सकता है कि वह नग्नता को प्रकट करे। सच तो यह कि नंगा नहीं होगा जितना वस्त्र हमें नंगा कर सकते हैं। जानवरों को देखकर हमें शायद ही ख्याल आता हो कि वे नंगे हैं। लेकिन आदमी और स्त्रियाँ इस तरह के वस्त्र पहन सकते हैं कि उनके वस्त्र पहनने से तत्काल ख्याल आए उनके नंगेपन का। और आदमी ने ऐसे वस्त्र विकसित कर लिए हैं कि वह उनके शरीर को उघाड़ते हैं, ढाँकते नहीं। जो वस्त्र ढाँकता है उसे कौन पसन्द करता है? जो व्यक्ति वस्त्र उघाड़ता है, इतना उघाड़ता है कि और उघाड़ने की इच्छा जगे, इतना नहीं उघाड़ता कि उघाड़ने की इच्छा मिट जाए, उघाड़ता है और उघाड़ने की इच्छा जगाता है ऐसा व्यक्ति वस्त्र पहने हुए भी नंगा है। ठीक इससे उल्टा भी हो सकता है कि व्यक्ति नंगा खड़ा हो गया है और इतना उघाड़ा हुआ है कि उघाड़ने को कुछ नहीं बचा है, उघाड़ने की कोई इच्छा भी नहीं है उसको, उघाड़ने की कोई कामना भी नहीं है, कोई उघाड़ कर देखे यह आमन्त्रण भी नहीं है तो उसकी नग्नता भी वस्त्र बन जाती है। जब कोई वस्त्रों में नंगा हो सकता है तो कोई नग्नता में वस्त्रों में क्यों नहीं हो सकता? महावीर बिलकुल नग्न थे लेकिन उनकी नग्नता किसी को भी नग्नता जैसी नहीं लगी। इसलिए यह स्वाभाविक था कहानी का बन जाना कि जरूर वे कोई ऐसे वस्त्र भी पहने हुए हैं जो दिखाई नहीं पड़ते, जो देवताओं के दिए हैं, देवदूत के दिए हैं। देवताओं ने ऐसे वस्त्र दे दिए हैं उनको जो दिखाई भी नहीं पड़ते और फिर भी उनकी नग्नता दिखाई नहीं पड़ती। तो यहाँ कोई दिव्य वस्त्र उनको छिपाए हुए हैं। यह धारणा पैदा हो जाना बिलकुल स्वाभाविक है। पर महावीर निपट नग्न हैं।

नग्नता में छिपा नग्न आदमी ही नग्नता से मुक्त हो सकता है। वस्त्रों में ढके हुए आदमी की नग्नता से छूट जाना बड़ा मुश्किल है क्योंकि वस्त्रों में छिपे रह

ढांकता है वहां उसके ढांकने की चेतना स्पष्ट है। और जिसे हम ढांकते हैं सचेतन, वह उघड़ जाता है। जिसे हम चेतन रूप से ढांकते हैं, हमारी चेतना उस अंग को उघड़ा हुआ अंग बना देती है। क्योंकि जब हम चेतन होकर ढांकते हैं तो चेतन होकर दूसरा उसे उघड़ा हुआ देखना चाहता है।

सिर्फ नग्न आदमी ही नंगेपन से मुक्त हो सकता है। यह बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ेगी। वस्त्र से ढंका हुआ आदमी कैसे नंगेपन से मुक्त होगा? यह कठिन भी है किन्तु हो भी सकता है। क्योंकि बुद्ध और क्राइस्ट कपड़े पहने हुए हैं। सम्भव तो है पर बहुत कठिन है, एकदम कठिन है। सम्भव इसलिए है कि जब मैं वस्त्र पहनता हूं तो मैं दो कारणों से पहन सकता हूं। कारण मेरे आन्तरिक हो सकते हैं कि कुछ है जो मैं छिपाना चाहता हूं, कुछ है जो मैं नहीं दिखाना चाहता, या कुछ है जो मैं भयभीत हूं कि दिख न जाए। मेरे वस्त्र पहनने के कारण बाह्य भी हो सकते हैं, एकदम बाह्य भी हो सकते हैं। तब एक अर्थ में मैं वस्त्र नहीं पहने हुए हूं। तुम्हीं ने वस्त्र पहना दिए हैं। बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग जो वस्त्र पहने हुए हैं वे भी नग्न होने की उतनी ही हैसियत रखते हैं जितनी महावीर। इनके भीतर भी कुछ छिपाने को नहीं है। लेकिन हो सकता है, दूसरा नग्नता न देखना चाहे। तो दूसरे पर आक्रमण क्यों करना! दूसरे की आंख पर हमने वस्त्र डाला हुआ है, अपने शरीर पर नहीं। और दूसरे की आंख पर जो वस्त्र डालने का सबसे सरल उपाय यही है कि अपने शरीर पर डाल दो।

मैंने सुना है कि जब सबसे पहले जमीन पर कांटों ने तकलीफ दी तो एक सम्राट् ने बुद्धिमान् लोगों को बुला कर पूछा कि क्या करें? कैसे करें? बुद्धिमानों ने कहा एक काम करें, सारी पृथ्वी को चमड़े से ढक दें जिससे कि हम चमड़े पर चलें, कांटे न गड़ें। सम्राट् ने कहा इतना चमड़ा कहां से लाओगे? पृथ्वी बहुत बड़ी है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए बुद्धिमान् लोग। बहुत सोचा। बुद्धिमानों को बड़ी चीजें जल्दी सूझ जाती हैं, छोटी चीजें उनसे चूक जाती हैं, तब राजा से एक नौकर ने कहा कि आप भी कैसी पागलपन की बातों में पड़े हैं। और इतने बड़े-बड़े बुद्धिमानों को बैठ कर सोचना है। मैं तो बोलता नहीं इस डर से कि मैं गवार हूं, कैसे बोलूं। लेकिन यह पागलपन की बात है। अपने पैरों को क्यों नहीं चमड़े से ढका जा रहा है। अपने पैरों को चमड़े से ढक लें, सारी पृथ्वी पर आप जहां जाओगे वहां चमड़ा होगा। पचायत में क्यों पड़ते हैं कि सारी पृथ्वी को ढको। आपकी आंख पर वस्त्र डालने की सबसे अच्छी तरकीब यही है कि अपने शरीर पर वस्त्र डाल लो। और सरल उपाय क्या हो सकता है? सबकी आंख

पर डालने जाओ तो बहुत बड़ी पृथ्वी है और बड़ी मुश्किल पड़ जाए। तो कुछ इसलिए वस्त्र पहन सकते हैं कि वे आपकी आँख पर वस्त्र डाल देना चाहते हैं क्योंकि अभी आपकी आँख नग्न को देखने की हिम्मत नहीं जुटा सकती। लेकिन यह कठिन है। महावीर की नग्नता पर इसीलिए दो मत खड़े हो गए। महावीर निश्चित ही नग्न थे, इसमें कोई दूसरा विकल्प नही है। लेकिन बहुत लोगो को महावीर अत्यन्त वस्त्र वाले मालूम पड़े होंगे।

मेरे एक मित्र हैं। वह विन्ध्यप्रदेश के शिक्षामन्त्री थे। एक अमेरिकन मूर्तिकार खुजराहो देखने आया। भारतीय सरकार ने उन मेरे मित्र को लिखा कि आप विशिष्ट रूप से ले जाएँ मूर्तिकार को। उन्हें ठीक रूप से खुजराहो दिखाएँ। मेरे मित्र बड़े परेशान हुए। वह खुजराहो के पास के ही रहने वाले हैं, निकट ही दस-बीस मील दूर रहते हैं। खुजराहो को बचपन से ही जानते हैं। वह बहुत भयभीत हुए कि वह अमेरिकन मूर्तिकार क्या विचार लेकर वापस जाएगा? और वह सिर्फ खुजराहो देख कर सीधा वापस लौट जाने को है, सीधा दिल्ली से खुजराहो और वापस। वह भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में क्या सोचेगा कि ऐसे मन्दिर! ऐसी नग्न मूर्तियाँ! एसे अश्लील दृश्य! वह बहुत डरे हुए है, बड़े भयभीत हैं, और बड़ी तैयारी करके गए हैं कि यह जवाब दूँगा, यह जवाब दूँगा पूछेगा तो इस तरह से समझाएँगे। बता देंगे कि यह कोई भारतीय धारा की मूल शाखा नही है। यह किनारे से कुछ विक्षिप्त लोगों की, कुछ पागलों की, कुछ भोगियो की, कुछ तांत्रिकों की, कुछ वाममार्गियो की चेष्टायें हैं। यह कोई ऐसा मन्दिर नही है कि भारत का मन्दिर है। भारत का मन्दिर ही नहीं है एक अर्थ में यह। पुरुषोत्तमदास टंडन कहते थे मिट्टी से ढांक दो खजुराहो को, उसको उघाड़ो ही मत। गांधी जी तक राजी थे कि उसको ढंकवा दो। रवीन्द्रनाथ बीच में न कूद पड़ते तो अवश्य ही ढंक जाता यह मन्दिर। मूलधारा तो गांधी और पुरुषोत्तमदास टंडन की है—वही ठीक कह रहे हैं। तो यह मन्त्री सब समझ-बूझ कर गए हैं, बड़ी तैयारी करके गए हैं लेकिन वह आदमी कुछ पूछता ही नहीं। एक-एक मूर्ति को देखता जाता है, एकदम नग्न मूर्तियाँ, एकदम नग्न चित्र! और वह तैयारी में जुटे हैं कि वह कुछ पूछे। लेकिन वह कुछ पूछता ही नहीं। वह मन्त्रमुग्ध देखता है और आगे बढ़ जाता है। वह पूरे मन्दिर में घूम कर निकल आया। वह सीढ़ियाँ उतर आया, वह गाड़ी में बैठ गया, उसने कुछ कहा ही नहीं कि अश्लील हैं, भद्दी हैं। वह तो ऐसा भाव विभोर हो गया है कि कहीं खो गया है। लेकिन मित्र ने सोचा कि फिर भी वह ख्याल तो ले ही

जाएगा। शायद, शिष्टाचार के कारण न कहना होगा। तो उन्होंने कहा कि सुनिए आप, यह मत सोचिए कि अश्लील मूर्तियाँ कोई भारत की प्रतीक हैं। मूर्तिकार ने कहा, अश्लील, तो मुझे फिर से देखना पड़ेगा क्योंकि इतनी सुन्दर मूर्तियाँ मैंने कभी देखी ही नहीं। उनके सौन्दर्य से मैं ऐसा अभिभूत हो गया कि मैं नहीं देख पाया कि वह अश्लील भी थी। फिर मुझे वापस ले चलो। अब मैं गौर से देखूंगा कि अश्लील वे कहाँ हैं क्योंकि मैं तो अभिभूत था, इतना अभिभूत था उनके सौन्दर्य से, उनकी नग्नता से और उनके चेहरों पर प्रकट ज्योति से कि मैं नहीं देख पाया कि वे नंगी हैं। मेरे मित्र बहुत घबराए कि मूर्तियाँ नंगी आप नहीं देख पाए।

हो सकता है कि महावीर के पास बहुत से लोग आए होंगे और महावीर के चेहरे में और महावीर की आँखों में ऐसे डूबे होंगे। हो सकता है कि लौट गए हों, पता न चला हो कि महावीर नंगे थे। क्योंकि मनुष्य में हमें वही दिखाई पड़ता है जो उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर किसी व्यक्ति में तुम्हें उसका सेक्स दिखाई पड़ता है तो वह उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर उससे बड़ी घटनाएँ उसके जीवन में घट गई हों और उससे बड़ी रोशनी उसमें निकलने लगी हो तो हो सकता है कि सैकड़ों लोग महावीर को देख कर गए हों और उन्होंने गाँव में जाकर खबर दी हो कि कौन कहता है कि महावीर नंगे हैं, फिर से देखना पड़ेगा? जरूर कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे हैं। ख्याल तो आता है कि कुछ नंगे थे, देह पर कुछ था नहीं। फिर भी नंगे थे ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे होंगे। कोई देवताओं के वस्त्र उन्हें घेरे हैं कि वे नग्न हैं फिर भी नग्न नहीं मालूम पड़ते। नग्नता छिपी है और तब कहानियाँ बनती हैं और सत्य देखना मुश्किल हो जाता है।

ये सब बाते इसलिए कह रहा हूँ कि हमारे मस्तिष्क में एक बात बहुत साफ हो जाए कि तथ्यो पर जोर सिर्फ नासमझ देते हैं। समझदार का जोर सदा सत्य पर होता है। और सत्य कुछ ऐसी चीज है कि तथ्य के भीतर से आप देख सकते हैं लेकिन तथ्य को पकडने से कभी नही देख सकते, फिर आप वहीं रुक जाते हैं। दरवाजा इस कमरे के भीतर लाता है लेकिन छोड दे उसे तब। और पकड लें तो आप द्वार पर रह जाते हैं, आप कमरे के भीतर नही जाते। तथ्य के सब द्वार सत्य में जाते है लेकिन जो तथ्य को पकड लेता है वही अटक कर रह जाता है और द्वार मकान नही है, सिर्फ मकान में जाने को खाली जगह है। तथ्य सत्य नही, सिर्फ सत्य की सम्भावना है जहाँ से आप जा

सकते हैं लेकिन अगर वहो रुक गए तो सदा के लिए वही अटक सकते हैं। और हमारी आँखें तथ्यो को ही देखती हैं। असल में मैं पदार्थवादी उसको कहता हूँ जो तथ्यो को ही देखता है।

मेरी दृष्टि में भौतिकवाद का कोई मतलब नही है—जो तथ्यो को ही देखता है, जो कहता है इतना रहा तथ्य, वाकी सब झूठ है। यह तथ्य को गिना लेता है और कहता है कि इसके आगे कुछ भी नही है। लेकिन मजे की वात यह है कि तथ्य सत्य की सबसे बाहरी परिधि है, सबसे बाहरी परकोटा है। जो भी है उसके भीतर और जितने हम गहरे भीतर जाएँगे उतना तथ्य छूटता चला जाएगा और सत्य निकट आता जाएगा। इसीलिए सत्य को कहने की भाषा तथ्य की नहीं हो पाएगी। सत्य को कहने के लिए नई भाषा खोजनी पडेगी जो प्रतीकात्मक है। सत्य को तथ्य की भाषा में नहीं कहा जा सकता, कहें तो इतिहास बन जाता है। अब जैसे कि यह वात है कि महावीर कभी बूढे नहीं हुए, न कोई दूसरा तीर्थंकर कभी बूढा हुआ। न बुद्ध कभी बूढे हुए। न राम, न कृष्ण। इनकी कोई बुढापे की मूर्ति आपने कभी देखी कि ये बूढे हो गए हैं ? तो क्या मामला है ? क्या ये लोग जवान ही रह गए ? जवानी के आगे नही गए ? गए तो जरूर होगे। यह तो असम्भव है कि न गए हो। तथ्य यही होगा कि महावीर को बूढा होना पडेगा, बूढ़े हुए होगें। जब मरना पडता है तो बूढा होना पडेगा। लेकिन सत्य यह कहता है कि वह आदमी कभी बूढा नही हुआ होगा। जो उसने पा लिया है, वह इतना युवा है, वह इतना सदा यौवन है कि वहाँ कैसा बुढापा ? जिन लोगो ने तथ्य पर जोर दिया होगा वे महावीर की बूढी मूर्ति अंकन भी करते। लेकिन सत्य पर जिन्होंने आँख रखी तो फिर गाथा (मिथ) बनानी पडी कि महावीर कभी बूढे नही होते।

अब कभी आपने ध्यान दिया कि ये कोई भी तीर्थंकर कभी बूढे नहीं हुए। यह युवा होने की सम्भावना कहाँ है ? तथ्य में तो नहीं है, इतिहास में तो नही है लेकिन गाथा (मिथ) में है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इतिहास से ज्यादा गहरी घुस जाती है माइथोलॉजी (गाथाशास्त्र)। उसकी पकड ज्यादा गहरी है। लेकिन उसको कहने के लिए तथ्य छोड देने पडते है और कहानी गढनी पड़ती है कि नही, नही, कृष्ण कभी बूढे नहीं होते। बच्चे होते, जवान होते हैं, बस फिर ठहर जाते हैं, फिर बूढे नही होते। असल में जो चित्त सदा नया है और जो चित्त सत्य को जान गया है, वह कैसे वृद्ध होगा ? वह कैसे क्षीण होगा ? वह क्षीण होता ही नही। वह सदा के लिए उस हरियाली को पा गया है जो अब

रही नहीं मिलती। इसलिए युवा होने तक तो बात है उनकी। जब तक कि वह मत्त पाकर युवा नहीं हो गया तब तक वह बच्चा होता है, बड़ा होता है। जैसे वह पहुँच गया उस बिन्दु पर जहाँ जवान पा लिया जाता है, जो सदा जवान है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता वैसे ही फिर उसकी यात्रा रुक जाती है। शरीर की तो नहीं रुक सकती, शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा। लेकिन हम उस तथ्य को इन्कार कर देते हैं और कह देते हैं कि वह तथ्य गौण है, उसका कोई मतलब नहीं। वह आदमी भीतर जवान है, वह जवान ही रह गया है। वह अब कभी बूढ़ा नहीं होगा।

इसलिए बहुत से इन अद्भुत लोगों की मृत्यु का कोई उल्लेख नहीं है कि वे मरे कब। वह उल्लेख इसलिए नहीं है कि जन्म तक तो बात ठीक है; मरना उनका होता नहीं। तथ्य में तो वे मरे। इसलिए जैसे-जैसे दुनिया ज्यादा तथ्य होती गई वैसे-वैसे हमारे पास रिकार्ड उपलब्ध होने लगा। जैसे महावीर का रिकार्ड है हमारे पास कि वह कब मरे। लेकिन ऋषभ का नहीं है रिकार्ड उपलब्ध। दुनिया और भी मिथ के ज्यादा करीब थी। अभी लोग तथ्य पर जोर ही नहीं दे रहे थे। राम का कोई रिकार्ड नहीं है कि वह कब मरे। इसका कारण यह नहीं कि वह नहीं मरे होंगे। जिन्होंने सारी जिन्दगी की कहानी लिखी, वे एक बात पर चूक गए जो कि बड़ी भारी घटना रही होगी मरने की। यानी जन्म का सब ब्योरा लिखते हैं, बचपन का ब्योरा लिखते हैं, विवाह है, लड़ाई है, झगड़ा है, सब आता है, सब जाता है। सिर्फ एक बात चूक जाती है कि आदमी गए कब? नहीं, मिथ उसको इन्कार कर देते हैं। वह कहते हैं ऐसा आदमी मरता नहीं। ऐसा आदमी परम जीवन को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए मृत्यु की बात ही मत लिखो। इसलिए इस मुल्क में हम जन्मदिन मनाते हैं। पश्चिम में मृत्युदिन। पश्चिम में जो मरने का दिन है वह बड़ी कीमत रखता है। और उसका कारण है क्योंकि हम जन्म को स्वीकार करते हैं। हम मृत्यु को इन्कार ही कर देते हैं। पश्चिम में जन्म जितना स्वीकृत है, मृत्यु उससे ज्यादा स्वीकृत है क्योंकि जन्म तो पहले हो चुका है, मृत्यु तो बाद में हुई है। जो बाद में हुआ है ज्यादा ताजा है, ज्यादा कीमती है। जन्मदिन की ही बात किए चले जाते हैं और उसका कारण है कि हम जन्म को तो मानते हैं मृत्यु को नहीं। जीवन है, मृत्यु नहीं।

ये सारे तथ्य अगर तथ्य की तरह पकड़े जाएँ तो कठिनाई हो जाती है। लेकिन अगर हम इनकी गहराई में उतर जाएँ और इनके मिथ की जो गुप्त

भाषा है उसे खोल दें तो बड़े रहस्य के पर्दे उठने लगते हैं। जैसे अब गांधी की हमने मरणतिथि मनानी शुरू की है। वह पश्चिम की नकल है। अगर महावीर जैसे व्यक्ति का हम मृत्युदिन मनाते भी हैं तो उसे मृत्यु दिवस हम नही कहते हैं। उसे निर्वाण दिवस कहते है। मरता नही, वह सिर्फ निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है। उसको भी मृत्युदिवस नही कहते हैं। उसको भी कहेंगे निर्वाणदिवस।

तथ्यों ने ऐसी व्यर्थ की बातो में उलझा दिया है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है और उनके समक्ष वे लोग जो निरतर सत्य पर जोर देते रहे हैं आज इस तरह हारे हुए खड़े हैं और वे हारे इसलिए खड़े हैं कि वे खुद ही तथ्य से हार गए हैं और उनको भी लग रहा है कि कोई बड़ी भूल-चूक हो गई है। मेरी दृष्टि मे तथ्यों का भी मूल्य है अगर वे सत्यो को बता पाएँ, अन्यथा उनका कोई मूल्य नही है। शाश्वत की तरफ इनसे इशारा हो जाए तो ठीक है अन्यथा कोई भी मूल्य नही है। मील के पत्थर हैं जो हमें कहते हैं आगे चलो लेकिन कुछ नासमझ लोग मील के पत्थरो को पकड़कर रुक जाते हैं। मील के पत्थरो का क्या मूल्य है सिवाय कि वे कहें कि और आगे और आगे। तथ्य भी मील के पत्थर हैं सत्य की यात्रा में और इसलिए अगर महावीर के जीवन की प्रारंभिक सारी घटनाओं को उनकी गहराई में—उनकी खाल को छोड़कर उनके सार को पकड़ लिया जाए तो ही महावीर का उद्घाटन होगा और तो ही बाद में महावीर क्या हो पाते हैं यह समझ पायेंगे, और उसको समझने की दृष्टि मिल सकती है।

प्रश्न : यदि तीर्थङ्कर पहले जन्म मे ही कृतकृत्य हो चुके हैं और केवल करुणावश संसार में आते हैं तो फिर वे केवल एक ही बार क्यो आते हैं ? बारम्बार क्यो नहीं आते ? इस प्रकार तो उन्हें अब भी संसार मे ही होना चाहिए था। और जो वे करुणावश आते हैं तो क्या अपनी इच्छा से आते हैं या उनका यह आना स्वाभाविक होता है ?

उत्तर यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है मेरी दृष्टि में। जिसके जीवन का कार्य पूरा हो चुका है वह ज्यादा से ज्यादा एक ही बार वापिस लौट सकता है। वापिस लौटने का कारण है जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैडल चलाना बन्द करदे तो पिछले वेग से साइकिल थोडी देर बिना पैडल चलाए आगे जा सकती है। लेकिन बहुत देर तक नही। इसी तरह जब एक व्यक्ति का जीवन-कार्य पूरा हो चुका है तो उसके अनेक जीवन की वासनाओं ने जो वेग दिया है, गति दी है वह ज्यादा से ज्यादा उसे एक बार और लौटने का अवसर दे सकती है। इससे ज्यादा नही। जैसे पैडल बन्द कर दिए हैं तो भी साइकिल थोडी दूर तक चलती जा सकती है लेकिन बहुत दूर तक नही। और यह भिन्न-भिन्न समय की अवधि होगी क्योंकि पिछले जीवन की कितनी गति और कितनी शक्ति चलाने की शेष रह गई है, प्रत्येक का अलग-अलग होगा। इसलिए बहुत बार ऐसा हो सकता है कि कोई करुणा से लौटना चाहे और न लौट सके।

दूसरा प्रश्न भी विचारणीय है। क्या तीर्थंकर अपनी मर्जी से लौटते है ? हाँ, लौटते तो वे अपनी मर्जी से हैं लेकिन ऐसा जरूरी नही है कि सिर्फ मर्जी से ही लौटें। अगर थोडी शक्ति शेष रह गई है तो मर्जी सार्थक हो जाएगी। अगर शक्ति शेष नही रह गई है तो मर्जी निरर्थक हो जाएगी। उस स्थिति में करुणा

दूसरा रूप ले सकती है लेकिन लौट नही सकती है। और यह भी समझ लेना उचित है जैसा कि मैंने कहा कि साइकिल चलाते वक्त पैंडल बन्द हो जाए, जिस दिन वासना क्षीण हो गई उस दिन पैंडल चलना बन्द हो गए। लेकिन, चाक थोडी दूर और चल जाएँगे, अपनी ही मर्जी से। अगर वह व्यक्ति साइकिल से नीचे उतर जाना चाहे तो उसे कोई रोकने वाला नही है। वह अपनी ही मर्जी से अब भी बैठा हुआ है। पैंडल चलाना बंद कर दिया है, वासना क्षीण हो गई है। लेकिन अब भी देह के वाहन का वह उपयोग करता है थोडी दूर तक। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि अब देह के वाहन को चलाने की कोई शक्ति शेष ही न बची हो। अक्सर इसलिए ऐसा हो जाता है कि इस तरह की आत्माओ का दूसरे जन्मो का जीवन अति क्षीण होता है। शंकराचार्य जैसे व्यक्ति जो तीस-पैंतीस साल ही जी पाते हैं, इसका कोई और कारण नही है। वेग बहुत कम है। अक्सर इस तरह की आत्माओ का जीवन अत्यल्प होता है। जैसे जीसस क्राइस्ट हैं—अत्यल्प जीवन मालूम होता है। यह जो अत्यल्प जीवन है वह इसी कारण है। और कोई कारण नही। वेग ही इतना है। अपनी ही मर्जी से लौट सकते हैं, न लौटना चाहे तो कोई लौटाने वाला नही है। लेकिन लौटना चाहें तो अगर शक्ति शेप है तो ही लौट सकते हैं। फिर मैंने कहा कि करुणा से कोई नही रोक सकता है। शरीर नही उपलब्ध होगा। तब दोहरी बातें हो सकती हैं। या तो वैसा व्यक्ति किसी दूसरे के शरीर का उपयोग करे जैसा कि मखली गोसाल ने किया।

यह बात भी महावीर के सन्दर्भ में है, इसलिए समझ लेना उचित है। कहानियाँ कहती हैं—मखली गोशाल बहुत वर्षो तक महावीर के साथ रहा। फिर उसने साथ छोड दिया। फिर वह महावीर के विरोध में स्वतन्त्र विचारक की हैसियत से खडा हुआ। लेकिन जब महावीर ने शिष्यो को कहा कि मखली गोसाल तो मेरा शिष्य रह चुका है, मेरे साथ रहा है तो उसने स्पष्ट इन्कार किया। उसने कहा वह मखली गोसाल जो आपके साथ था मर चुका है। यह तो मैं एक बिल्कुल ही दूसरी आत्मा हूँ, उसके शरीर का उपयोग कर रहा हूँ। मैं वह व्यक्ति नही हूँ। साधारणतया महावीर के अनुयायी समझते रहे हैं कि यह झूठा है। पर यह झूठा नही है। यह बात बिल्कुल ही सच है। मखली गोसाल नाम का जो व्यक्ति महावीर के साथ रहा था, वह अतिसाधारण व्यक्ति था। किन्हीं कारणो से असमय में उसकी मृत्यु हुई और उसकी देह का उपयोग दूसरी स्वतन्त्र चेतना ने किया जो तीर्थंकर की ही हैसीयत की थी। लेकिन अपना

शरीर उपलब्ध करने में असमर्थ थी तो उसने मक्खली गोसाल के शरीर का उपयोग किया। और इसीलिए इस व्यक्ति का, जो अभी नया व्यक्ति बना, पुराने शरीर में मक्खली गोसाल के, महावीर से कोई मेल नहीं हो सका। यह एक बिल्कुल स्वतन्त्र चेतना थी जिसका अलग अपना काम था और अपना काम किया उसने। इसलिए मक्खली गोशाल भी तीर्थंकर होने का एक दावेदार था।

उस युग में अकेले महावीर या बुद्ध ही नहीं थे, मक्खली गोसाल था, अजित-केश कम्बल था, संजय वेलट्ठिपुत्त था, प्रबुद्ध कात्यायन था, पूर्ण काश्यप था— ये सबके सब तीर्थंकर की हैसियत के लोग थे। लेकिन सब अलग-अलग परम्पराओं के तीर्थंकर थे। उनमें से सिर्फ दो की परम्पराएँ पीछे शेष रह गईं, एक महावीर की, एक बुद्ध की। बाकी सब परम्पराएँ खो गईं। एक रास्ता तो यह है कि वैसा व्यक्ति प्रतीक्षा करे असमय में किसी के शरीर छूट जाने की और उसमें प्रवेश कर जाए। एक यह उपाय है जिसका कई बार प्रयोग किया गया है। दूसरा उपाय यह है कि वह व्यक्ति अशरीर ही रहकर पीछे से सम्बन्ध स्थापित करे और अपनी करुणा का उपयोग करे। उसका भी उपयोग किया गया है। कुछ चेतनाओं ने अशरीर हालत से संदेश भेजे हैं, सम्बन्ध स्थापित किए हैं।

और जो कल बात छूट गई थी वह यह कि मूर्तियों का सबसे पहला प्रयोग पूजा के लिए नहीं किया गया है। उसका तो पूरा विज्ञान है। मूर्ति का सबसे पहला प्रयोग अशरीरी आत्माओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए किया गया है। जैसे महावीर की मूर्ति है। इस मूर्ति पर अगर कोई बहुत देर तक चित्त एकाग्र करे और फिर आँख बंद कर ले तो मूर्ति का निगेटिव आँख में रह जाएगा। जैसे कि हम दरवाजे पर बहुत देर तक देखते रहें और आँख बंद कर लें तो दरवाजे का एक निगेटिव, जैसा कि कैमरे की फिल्म पर जाता है, आँख पर रह जाएगा। उस निगेटिव पर भी अगर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो उसके बहुत गहरे परिणाम हैं। महावीर की मूर्ति, बुद्ध की मूर्ति का जो पहला प्रयोग है, वह उन लोगों ने किया है जो अशरीर आत्माओं से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। महावीर की मूर्ति पर अगर ध्यान एकाग्र किया और फिर आँख बंद कर ली और निरन्तर अभ्यास से निगेटिव स्पष्ट बनने लगा तो वह जो निगेटिव है, महावीर की अशरीरी आत्मा से सम्बन्धित होने का मार्ग बन जाता है और उस द्वार से अशरीरी आत्माएँ भी सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। यह अनन्त काल तक हो सकता है, इसमें कोई बाधा नहीं है। तो मूर्ति, पूजा के लिए नहीं है, एक डिवाइस है, बड़ी गहरी डिवाइस जिसके माध्यम से, जिनके शरीर खो गए हैं

और जो शरीर ग्रहण नहीं कर सकते है, उनमें एक खिडकी खोली जा सकती है, उनसे एक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। फिर रास्ता यह है कि अशरीरी आत्माओं से कोई सम्बन्ध खोजा जा सके। अशरीरी आत्माएँ भी सम्बन्ध खोजने की कोशिश करती है। करुणा फिर यह मार्ग ले सकती है और आज भी जगत् में ऐसी चेतनाएँ हैं जो इन मार्गों का उपयोग कर रही है। थियोसॉफी का सारा का सारा जो विकास हुआ है वह अशरीरी आत्माओं के द्वारा भेजे गए संदेशों पर निर्भर है। थियोसॉफी का पूरा केन्द्र इस जगत् में पहली बार बहुत व्यवस्थित रूप से ब्लावेट्स्की अल्काट, ऐनीबीसेन्ट, लीडबीटर इन चार लोगो को पहली दफा अशरीरी आत्माओं से सदेश उपलब्ध करने की अद्भुत चेष्टा पर आधारित है। और जो सदेश उपलब्ध हुए है, वे बहुत हैरानी के है। सदेश कभी भी उपलब्ध हो सकते है। क्योंकि अशरीरी चेतना कभी भी नही खोती। लेकिन शरीरी आत्मा तब तक आसानी से उस अशरीरी चेतना से सम्बन्ध स्थापित कर लेगी जब तक करुणावश वह भी सम्बन्ध स्थापित करने को उत्सुक है। धीरे-धीरे करुणा भी क्षीण हो जाती है। करुणा अन्तिम वासना है। जब सब वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं, करुणा ही सिर्फ रह जाती है। लेकिन अन्त मे करुणा भी क्षीण हो जाती है। इसलिए पुराने शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते हैं। करुणा भी जब क्षीण हो जाती है तब उनमे सम्बन्ध स्थापित करना अति कठिन हो जाता है। उनकी करुणा शेष रहे तब तक सम्बन्ध स्थापित करना सरल है। क्योंकि वे भी आतुर थे। जब उनकी करुणा क्षीण हो गई, अन्तिम वासना गिर गई तब फिर सम्बन्ध स्थापित करना निरन्तर कठिन होता चला जाता है। जैसे कुछ शिक्षको से अब सम्बन्ध स्थापित करना करीब-करीब कठिन हो गया है। महावीर से सम्बन्ध स्थापित करना अब भी सम्भव है। लेकिन उसके पहले के तेईस तीर्थंकरो में से किसी से भी सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता और इसलिए महावीर कीमती हो गए और तेईस एकदम से गैर कीमती हो गए। इसका बुनियादी कारण यह है कि अब उन तेईस तीर्थंकरो से कोई सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता है, किसी तरह का भी।

प्रश्न : इसका अर्थ यह हुआ कि ये जो मोक्ष के बारे मे कहा जाता है, आत्मा चली गई है और सारे जगत् मे लीन हो गई है, फिर उस आत्मा से कैसे सम्बन्ध स्थापित हो ?

उत्तर : इसको थोडा समझना पडेगा—इसे थोडा समझना पडेगा। मैं पूरी बात कह लूँ फिर आप समझ जाएँगे। तेईस तीर्थंकर एकदम गैर ऐतिहासिक हो

गए मालूम पड़ते हैं। उनके गैर ऐतिहासिक हो जाने का और कोई कारण नहीं है। वे बिल्कुल ऐतिहासिक व्यक्ति थे, लेकिन आध्यात्मिक लोक में उनके अन्तिम सम्बन्ध का सूत्र भी खो जाने के कारण अब उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। महावीर से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और इसीलिए महावीर अन्तिम होते हुए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गए उस धारा में। बुद्ध से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। जीसस से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। कृष्ण से अभी भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। हमें अढ़ाई हजार वर्ष बहुत लम्बे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि हमारा कालमान बहुत छोटा है। शरीर से छूट जाने पर अढ़ाई हजार वर्ष ऐसे हैं जैसे क्षण गुजरा हो। मुहम्मद से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

इसलिए जिन परम्पराओं के शिक्षकों से अभी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, वे फलती-फूलती हैं। जिन परम्पराओं के शिक्षकों से अब कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता वह एकदम सूखकर नष्ट हो जाती है। किन्तु उनका मूल स्रोत से सम्बन्ध नहीं टूट जाता। और इसलिए नए शिक्षक जीतते हुए मालूम पड़ते हैं पुराने शिक्षक हारते हुए मालूम पड़ते हैं। अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर से पहले तेईसवें तीर्थंकर को ज्यादा वक्त नहीं हुआ, अढ़ाई सौ वर्ष का ही फासला है लेकिन उस तीर्थंकर से भी सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल हो गया है। इसलिए उस तीर्थंकर के निकट जाने वालों को महावीर के पास आ जाना पड़ा। लेकिन एक बुनियादी विरोध भीतर छूट गया जिसने पीछे परम्पराओं को दो खण्डों में तोड़ने में हाथ बटाया। क्योंकि मूलतः जो शिक्षक पार्श्व से सम्बन्धित थे उनका प्रेम, उनका समर्पण और उनका द्वार पार्श्व के प्रति खुला था। लेकिन, चूँकि पार्श्व खो गए बहुत जल्दी और उनसे कोई सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव न हुआ इसलिए महावीर के पास ये आए। लेकिन उनका मन, उनका वन, उनका व्यक्तित्व पार्श्व के अनुकूल था। इसलिए दो धाराएँ फौरन टूटनी शुरू हो गईं। वह आ गए पास लेकिन भेद रहे।

किसी ने पूछा है कि एक ही समय में दो तीर्थंकर क्यों नहीं होते। एक परम्परा में, एक ही समय में दो तीर्थंकर नहीं होते। इसका कारण यह है कि अगर एक तीर्थंकर काम कर रहा है उस परम्परा का तो दूसरा तत्काल विलीन हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं होती। जैसे एक ही कक्षा में, एक ही समय में दो शिक्षकों की कोई जरूरत नहीं होती। उसमें सिर्फ बाधा ही पैदा होगी और कुछ भी न होगा। एक उपद्रव ही होगा कि एक ही कक्षा में दो चार शिक्षक एक ही पीरियड में उपस्थित हो जाएँ। उसकी वजह से सिर्फ संघर्ष

फैलेगा। एक शिक्षक पर्याप्त होता है। एक शिक्षक यदि काम कर रहा है तो दूसरा शिक्षक अगर होने की स्थिति में भी है तो भी नही होता। उसकी कोई जरूरत नही होती। करुणा पीछे भी काम कर सकती है। और पीछे भी सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं।

चीन के हाथ में तिब्वत के चले जाने से जो बडे से बड़ा नुकसान हुआ वह भौतिक अर्थों में नही नापा जा सकता। सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ है कि बुद्ध से तिब्बत के लामाओं का प्रति वर्ष एक दिन निकट सम्पर्क स्थापित होता रहा था। उस परम्परा को घात पहुँच गया। प्रतिवर्ष बुद्धपूर्णिमा के दिन पाँच सौ विशिष्ट भिक्षु और लामा एक विशेष पर्वत पर मानसरोवर के निकट उपस्थित होते थे। यह अत्यन्त गुप्त व्यवस्था थी। ठीक पूर्णिमा की रात, ठीक समय पर बुद्ध का साक्षात्कार पाँच सौ व्यक्तियों को निरन्तर हजारों वर्षों से होता रहा। और इसलिए तिब्बत का बौद्ध भिक्षु जितना जीवन्त, जितना गहरा था उतना दुनिया का कोई बौद्ध भिक्षु नही था क्योंकि और किसी के जीवित सम्पर्क नही थे बुद्ध से। एक वर्ष की शर्त पूरी होती रही थी निरन्तर बुद्ध पूर्णिमा के दिन और इन दिनों को मनाने का कारण भी यह है कि इन दिनो का सम्पर्क आसानी से स्थापित हो सकता है। वे दिन उस चेतना की स्मृति में भी महत्त्वपूर्ण दिन हैं। और उन महत्त्वपूर्ण दिनो मे ज्यादा करुणा विगलित हो सकती है और वह भी आतुर हो सकती है कि किसी धारा से सम्बन्धित हो जाए। ऐसा नहीं कि ठीक पाँच सौ भिक्षुओं के समक्ष बुद्ध अपने पूरे रूप में ही प्रकट होते रहे। किन्तु यह भी सम्भव है। क्योंकि हमारा यह शरीर गिर जाता है इससे ही ऐसा मत मान लेना कि हमारे सब शरीर होने की सम्भावना मिट जाती है। सूक्ष्म शरीर कभी भी रूपाकार ले सकता है। और अगर बहुत से लोग आकाक्षा करें तो सूक्ष्म शरीर के रूपाकार लेने में कोई कठिनाई नही। ऐसा होगा सूक्ष्म शरीर कि अगर तलवार उसमें से निकालो तो तलवार निकल जाएगी कुछ कटेगा नही। अत्यन्त सूक्ष्म अणुओं का बना हुआ शरीर होगा। मनो-अणुओं का ही कहना चाहिए। अब तक विज्ञान पहुँच सका है जिन अणुओ तक वे भौतिक अणु हैं। लेकिन जिन्होने सूक्ष्म आन्तरिक जीवन में खोज की है उन्होने उन अणुओ की भी खबर दी है जिन्हें मनो-अणु कहना चाहिए—'मनो अणुओं' की भी एक देह है। यह मनोकाया जैसी चीज भी है। अगर बहुत लोग आकांक्षा मे और एकाग्रचित्त होकर प्रार्थना करें और करुणा शेष रह गई हो किसी चेतना में जो शरीर नही पकड़ सकती है तो वह 'मनोदेह' में प्रकट हो सकती है।

सब मूर्तियाँ बहुत गहरे में उस 'मनोवेग' को प्रकट करने की एक उपाय मात्र है। सब प्रार्थनाएँ, सब आकांक्षाएँ उस चेतना को विगलित करने के उपाय मात्र हैं कि उनसे किसी तरह का सम्बन्ध स्थापित हो सके। और यह बहुत रहस्यवादी प्रयोग की बात है। इसलिए मन्दिर, मस्जिद में जो अब हो रहा है वह तो सब कचरा लेकिन जो व्यवस्था है पीछे वह बड़ी अर्थपूर्ण है। उस अर्थपूर्ण व्यवस्था का उपयोग जो जानते हैं वे करते ही रहे हैं और आज भी करते हैं। क्षीण होती जाती है निरन्तर यह सम्भावना, यानी ख्याल ही मिटते जाते हैं कि हम क्या करें? ऐसा ही है जैसे कि समझें कि तीसरा महायुद्ध हो जाए, दुनिया खत्म हो जाए, कुछ लोग बच जाएँ और हमारा यह बिजली का पंखा उनको मिल जाए। तो वे अतीत संस्मरण की तरह उसे रखे रहेंगे कि पता नहीं यह किस काम का था। लेकिन यह कुछ भी समझ में न आ सके कि यह हवा करता रहा होगा। क्योंकि न उसके पास बिजली का ज्ञान रह जाए, न उसके पास प्लग का ज्ञान रह जाए, न इस पंखे की आन्तरिक व्यवस्था को समझने की उनकी अक्ल रह जाए, तो हो सकता है, वह अपने म्यूजियम में इन पंखों को रख लें, तार को रख लें, रेल के इंजन को सम्भाल कर रख लें, हो सकता है कि पूजा भी करने लगें, अतीत के स्मृतिशेष चिन्हों के स्मरण की तरह। लेकिन यह कोई पता न होगा कि रेल का इंजन हजारों लोगों को खींच कर भी ले जाता रहा होगा क्योंकि न पटरियाँ बचें, न इंजिनियरिंग शास्त्र बचें, न कोई खबर देने वाला बचे कि कैसे चलता होगा? कैसे क्या होता होगा? क्योंकि कोई भी व्यवस्था हजारों विशेषज्ञों पर निर्भर करती है। हो भी सकता है कि एक आदमी ऐसा बच जाए जो कहे कि मैं रेल में बैठा था और यह इंजन रेल के डिब्बे खींचने का काम करता था। लेकिन, लोग उससे कहें कि तुम चलाकर बता दो तो वह कहे मैं सिर्फ बैठा था, मैं चलाकर नहीं बता सकता। बाकी मुझे इतना पक्का स्मरण है कि मैं इस गाड़ी में बैठा था, इसमें हजारों लोग बैठते थे और यह गाड़ी एक गाँव से दूसरे गाँव जाती थी। मगर मैं चलाकर नहीं बता सकता, लेकिन मैं बैठा था इतना पक्का है। और यह बैठने वाला चिल्लाता रहे और किताबें भी लिखे कि यह रेल का इंजन है, इसमें लोग बैठते थे, चलाते थे लेकिन कोई उसकी सुनेगा नहीं क्योंकि यह चलाकर नहीं बता सकेगा। तो हर दिशा में, बाह्य या आन्तरिक हजारों उपाय खोजे जाते हैं। लेकिन कभी-कभी आमूल सभ्यताएँ नष्ट हो जाती हैं, खो जाती हैं अन्धकार में अगर उनके विशेषज्ञ खो जाएँ। हजार कारण होते हैं खो जाने के। आज

मन्दिर और मस्जिद बने हुए है। तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र सब बचे हुए हैं बहुत, बहुत रूपो में लेकिन कुछ उनका मतलब नही है। क्योंकि उनसे क्या हो सकता था इसका कुछ पता नही। वह कैसे हो सकता था इसका भी कुछ पता नही। और तब जैसे रेल के इंजन की पूजा करे कोई आगे भविष्य में जाकर, ऐसा हम मूर्नियो की पूजा कर रहे है। हां, कुछ लोगो की स्मृति रह गई थी कि कुछ होता था, उनके पीछेवालो को भी वह कह गए हैं कि कुछ होता था, वह आज भी मन्दिर के घेरे में उनकी सुरक्षा के लिए खडे हुए है। क्योकि उनके पास कुछ भी बताने को नही है कि क्या होता था, क्या हो सकता था— वह करके कुछ भी नही बता सकते।

चेतनाएँ जैसे ही मुक्त होती हैं, मुक्ति के पहले सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं। इसको थोड़ा ठीक से समझ लेना चाहिए। मुक्ति होती ही उस चेतना की है जिसकी सारी वासनाएँ समाप्त हो गई हैं। लेकिन अगर सारी वासनाएँ समाप्त हो जाएँ तो अमुक्त स्थिनि और मुक्त स्थिति के बीच सेतु क्या होगा? दोनों को जोडता कौन होगा? वह आत्मा तो अपने को पहचान ही नहीं सकेगी क्योकि उसने अपने को वासना में ही जाना था। और अगर सारी वासनाएँ एक क्षण में समाप्त हो जाएँ और दूसरे क्षण कोई वासना न रह जाए तब वह आत्मा अपने को पहचान ही नही सकेगी कि मैं वही हूँ। इसलिए जब सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती है तब सिर्फ सेतु की तरह एक वासना शेष रह जाती है जिसको मैं करुणा कह रहा हूँ, वही शेष रह जाती है। यही उसका पुराने जगत् से एक मात्र सेतु होता है। अमुक्त आत्मा और मुक्त आत्मा के बीच जो एक सेतु है, वह करुणा का है। लेकिन अन्तत सेतु के पार हो जाता है सब और करुणा भी चली जाती है। तो तीर्थंकर का होना करुणा की वासना से होता है। और एक जन्म से ज्यादा असम्भव है इस मोमन्टम में जाना, इस गति में जाना। इसलिए एक जन्म से ज्यादा नही हो सकता, और जैसा कि मैंने कहा है कि सभी ज्ञानियो को ऐसा हो जाता है ऐसा भी नहीं है। इसलिए महावीर की स्थिति में अनेको पहुँचते है लेकिन सभी तीर्थंकर नही हो जाते क्योकि मुक्ति का आकर्षण इतना तीव्र है, मुक्ति का आनन्द इतना तीव्र है कि बहुत बलशाली लोग ही वापस लौट सकते है, एक जन्म के लिए ही। और यह बलशाली लोग एक जन्म में लौटकर इतना इन्तजाम कर जाते है, पूर्ण इन्तजाम कर जाते हैं, यानी उनके लौटने का प्रयोजन ही यह होना है असल में कि यह पूरा इंतजाम कर जाते हैं कि जब वह शरीर नहीं ग्रहण कर सकेंगे तब उनसे कैसे सम्बन्ध स्थापित किया जा सकेगा। वह इसकी बहुत गहरी व्यवस्था है।

समझ लें कि एक पिता है, उसके छोटे छोटे बच्चे हैं और वह लम्बी यात्रा पर जा रहा है, जहाँ से वह कभी नहीं लौटेगा। वह अपने बच्चों के लिए इन्तजाम कर जाता है सब तरह का। उन्हें कह जाता है कि इस पते पर चिट्ठी लिखना तो मुझे मिल जाएगी। वह घर में अपना चित्र भी छोड़ जाता है कि जब तुम बड़े हो जाओ तो तुम पहचानना कि मैं ऐसा था। वह उन बच्चों के लिए स्मृति भी छोड़ जाता है कि तुम जब बड़े हो जाओ तो मैं तुमसे कहना चाहता था, वह इसमें लिखा है, यह तुम समझ लेना। और जब भी मुझसे सम्बन्ध स्थापित करना चाहो तो यह मेरा फोन नम्बर होगा। इस विशेष फोन नम्बर पर तुम मुझसे सम्पर्क स्थापित कर सकोगे। मैं नहीं लौट सकूँगा अब। अब लौटना असम्भव है। तो प्रत्येक करुणापूर्ण शिक्षक एक बार लौटकर सारा इन्तजाम कर जाता है कि पीछे उससे कैसे सम्बन्ध स्थापित किए जा सकेंगे। जब शरीर खो जाएगा तो उसका कोड नम्बर क्या होगा, जिस विशेष मन स्थिति मे, जिस विशेष कोड नम्बर पर उससे सम्पर्क स्थापित हो जाएगा। सारे धर्मों के विशेष मंत्र कोड नम्बर हैं। जिन मन्त्रो मे निरन्तर उच्चारण से ध्यानपूर्वक चित्त एक विशिष्ट ट्यूनिंग को उपलब्ध होता है और उस ट्यूनिंग मे विशिष्ट शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं। वह बिलकुल टेलिफोनिक नम्बर है कि चित्त अगर उसी ध्वनि में अपने को गतिमान करे तो एक विशिष्ट ट्यूनिंग को उपलब्ध हो जाता है। और वह कोड नम्बर किसी एक शिक्षक का ही है, वह दूसरे के लिए काम में नही आ सकता। दूसरे के लिए वह उपयोगी नही है। इसलिए इन कोड नम्बरो को अत्यन्त गुप्त रखने की व्यवस्था की गई है। इसलिए चुपचाप अत्यन्त गुप्तता में ही ये किए जाते है।

सम्बन्ध स्थापित हो सके इसलिए बहुत उपाय छोड जाते हैं, चिन्ह छोड जाते है, मूर्तियां छोड जाते हैं, शब्द छोड जाते हैं, मंत्र छोड जाते हैं, विशेष आकृतियाँ जिनको तंत्र कहे वह छोड जाते हैं, यंत्र छोड जाते हैं। जिन आकृतियो पर चित्त एकाग्र करने से विशिष्ट दशा उपलब्ध होगी उस दशा में उनसे संबंध स्थापित हो सकेगा। लेकिन वह सब खो जाता है। और, धीरे-धीरे उनसे सम्पर्क स्थापित होना बन्द होता चला जाता है। जब उनसे पूरा सम्पर्क टूट जाता है तब उनके पास कोई उपाय नही रह जाता। तब वैसे शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं। ऐसे अनन्त शिक्षक मनुष्य जाति मे पैदा हुए हैं। सभी शिक्षको का अपना काम था वह उन्होने पूरा किया और पूरी मेहनत भी की है।

कुछ जीवन्त परम्पराएँ हैं जिनमें कि वह चलता है। जैसे कि तिब्बत का लामा है, दलाई लामा है। बडी अद्भुत वात है लेकिन वडी कीमत की है। जव एक दलाई लामा मरता है, तो वह सव चिन्ह छोड जाता है कि मेरा अगला जन्म जो होगा उसमें तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे ? वह सारे चिन्ह छोड जाता है। मेरा अगला जन्म होगा तो ये मेरे चिन्ह होगे। और ये सवाल तुम मुझसे पूछना तो ये जवाव मैं तुम्हें दूँगा। तव तुम पक्का मान लेना कि मैं वही आदमी हूँ। नहीं तो तुम पहचानोगे कैसे, मानोगे कैसे कि मैं वही हूँ जो पिछला दलाई लामा मरा था। जो अभी दलाई लामा है इसका पहला गुरु जव मरा यह वही आत्मा है। वह चिन्ह छोडकर गया था कि पूरे तिब्वत में खोज वीन करना इतने वर्षों वाद। और जो लडका इन चीजों का यह जवाव दे दे, समझना कि वह मैं हूँ। वातें अत्यन्त गुप्त थीं। वे सील वन्द मोहर उत्तर हैं उनके। वह कोई खवर किसी को नही मिल सकती। सारे तिव्वत में खोज शुरू हुई। और सारे तिव्वत में सैकडों, हजारों वच्चो से पूछे गए वही सवाल। लेकिन कोई वच्चा कैसे जवाव देता ? इस वच्चे ने सारे जवाव दे दिए तो स्वीकृत कर लिया गया कि पुरानी आत्मा उसमें उतर आई है। तव उसको फिर गद्दी पर विठा दिया गया। सिर्फ शरीर नया हो गया, आत्मा वही है। शिक्षक यह भी करते रहे ताकि वे अनन्त जन्मों तक निरंतर उपयोगी हो सकें। जब खो जाएँ वे जन्मों से तव भी वे उपयोगी हो सकें।

एक जन्म से ज्यादा तो नही हो सकता यह। लेकिन जन्म वन्द हो जाने के वाद वहुत समय तक सम्वन्ध स्थापित रह सकते हैं। सम्वन्ध स्थापित रहने के दो सूत्र रहेंगे। उस शिक्षक की करुणा की वासना शेष रह गई हो जितनी दूर तक, और जितने दूर तक उससे सम्वन्ध होने के सूत्र साफ और स्मरण में रह गए हों। इसीलिए जैसा मैंने कल कहा कि कई वर्षों तक तो जरूरत नही पडती है लिखने की कि क्या कहा था क्योंकि वारवार सम्वन्ध स्थापित करके जाँच की जा सकती है कि यही कहा था। लेकिन जव वे सूत्र क्षीण होने लगते हैं और सम्वन्ध स्थापित करना मुश्किल होने लगता है तव लिखने की वारी आती है। इसलिए पुराना कोई भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सैकडो वर्षों तक नहीं लिखा गया क्योंकि तव तक वे सूत्र थे जिससे कि सम्वन्ध जोड कर हम पूछ सकते थे, जान सकते थे कि यही कहा है। लिखने की कोई जरूरत न थी। लेकिन जव सम्वन्ध क्षीण होने लगे और अन्तिम शिक्षक मरने लगे जिनका सम्वन्ध हो सकता था तो फिर उनसे कहा कि अव लिख दिया जाए। अव पूरी वात लिख

दी जाए। जैसा कि सिक्खों के मामले में हुआ। दसवें गुरु के बाद कोई व्यक्ति नजर नहीं आया जो कि ग्यारहवां गुरु हो सकेगा। जरूरी हुआ कि ग्रन्थ लिख दिया जाए क्योंकि अब सम्भावना नहीं है कि सम्पर्क हो सकेगा। बाकी दस गुरुओं की जो परम्परा है उसमें निरन्तर सम्पर्क स्थापित है। वह नानक से टूटती नहीं है। उसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती है। नानक निरन्तर उपलब्ध हैं, सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। गद्दी पर बिठाने की जो बात थी वह धीरे-धीरे पीछे तो बड़ी स्वार्थ की बात हो गई। मगर यही अर्थ की थी। बहुत अर्थ की थी। लेकिन हम सभी अर्थ की बातों को व्यर्थ कर सकते हैं।

अब जैसे कि शंकराचार्य की गद्दी पर जो शंकराचार्य बैठे हैं उन्हें कुछ भी पता नहीं, कुछ भी मतलब नहीं। अब उनका गद्दी पर बैठना बिल्कुल राजनीतिक चुनाव जैसा मामला है। लेकिन प्राथमिक रूप से शंकराचार्य अपनी जगह उस आदमी को बिठाल गया है, जिससे वह सम्बन्ध स्थापित रख सकेगा। और कोई मतलब नहीं है उसका। अपनी जगह उस आदमी को बिठाल दिया जा रहा है जिससे कि अब वह सम्बन्ध स्थापित रख सके। मर कर भी वह मरेगा नहीं इस जगत् में। उसका एक सम्बन्ध सूत्र कायम रहेगा। एक व्यक्ति मौजूद रहेगा जिससे वह काम जारी रखेगा। और उस व्यक्ति को वह कह कर जाएगा, समझा कर जाएगा कि वह कैसे व्यक्ति को चुन कर बिठा जाएगा ताकि इस व्यक्ति के खो जाने पर भी सम्बन्ध सूत्र जारी रहे। और, वह सम्बन्ध सूत्र खतम हो गए। अब शंकराचार्य से किसी शंकराचार्य को कोई सम्बन्ध सूत्र नहीं है। सम्पर्क टूट गया है। इसलिए अब सब फिजूल बात हो गई। अब उसमें कोई मूल्य नहीं रह गया। अब वह मामला सिर्फ धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा का है कि कौन आदमी बैठे। तो झगड़े हैं, अदालत में मुकदमें भी चलते हैं, और सब निर्णय अदालत करती है कि कौन आदमी हकदार है। यह निर्णय करने की बात ही नहीं है। यह प्रश्न ही नहीं है निर्णय करने का क्योंकि निर्णय कौन करेगा? यह निर्णय पुराना शिक्षक कर सकता था, पिछला शिक्षक कर सकता था और तब कई बार ऐसा हुआ है कि बिल्कुल ऐसे लोगों के हाथ में गद्दी सौंप दी गई है जिनके बाबत किसी को कोई ख्याल ही नहीं था।

एक शिक्षक मर रहा था चीन में। पाँच सौ उसके भिक्षु थे। उसने खबर भेजी की जो भिक्षु चार पंक्तियों में मेरे दरवाजे पर आकर लिख जाए धर्म का सार उसको मैं अपनी गद्दी पर बिठा जाऊँगा क्योंकि मेरा वक्त विदा का आ गया है, अब मैं जाता हूँ। तो पाँच सौ थे भिक्षु। बड़े ज्ञानी, पण्डित थे उनमें।

और सबको पता था कि कौन जीतेगा क्योकि जो सबसे बडा पण्डित था, वही जीतेगा। उस पण्डित ने जाकर द्वार पर लिख दिया शिक्षक के धर्म को चार सूत्रो में। लिख दिया कि मनुष्य की आत्मा एक दर्पण की भाँति है, उस पर विकार की, विचार की धूल मच जाती है। उस धूल को पोछ डालने का जो साधन है, वह धर्म है। सारे लोग पढ गए और कहा कि अद्भुत है; बात तो पूरी हो गई। और तो कुछ होता ही नही आत्मा में। सिर्फ धूल जम जाती है, उसको झाड देने का जो साधन है वह धर्म है। लेकिन गुरु सुबह उठा है, बूढा गुरु अस्सी वर्ष का। उसने देखा। उसने कहा कि यह किस नासमझ ने दीवार खराब की है। उसको पकड कर लाया जाए इसी वक्त। तो वह पडित एकदम भाग गया क्योकि उसने कहा कि वह गुरु पकड लेगा फौरन क्योकि यह सब किताबों से पढ कर उसने लिखा है। सारे आश्रम में चर्चा हुई। वह दस्तखत भी नही कर गया था उसके नीचे। इसी डर से अगर गुरु पसन्द करेगा तो जा कर कह दूँगा मैंने लिखा है और अगर नापसन्द कर देगा तो झंझट के बाहर हो जाएँगे। सारे आश्रम में चर्चा चल पडी कि क्या हो गया।

एक आदमी आज से कोई बारह साल पहले आया था और बारह साल पहले इस बुड्ढे के पैर को पकड कर कहा था कि संन्यासी होना है मुझे। इस बुड्ढे आदमी ने पूछा था : तुझे सन्यासी दीखना है या कि होना है। उसने कहा था कि दीख कर क्या करेंगे? और दीखना होता तो आपसे पूछने की क्या जरूरत थी। हम दीख जाते। तो उसने कहा होना बहुत मुश्किल है। होना है तो फिर एक काम कर। आश्रम में पाँच सौ भिक्षु हैं। उनका जो चौका है, जहाँ चावल बनता है, खाना बनता है वहाँ तू चावल कूटने का काम कर और दुबारा मेरे पास मत आना, आना ही मत। जरूरत होगी तो मैं तेरे पास आऊँगा। न किसी से बात करना, न कपडे बदलना, चुपचाप जैसा तू है, उस आश्रम के चौके के पीछे चावल कूटने का काम कर और दुबारा आना मत, भूल कर भी मेरे पास। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊँगा। नही होगी तो बात खत्म हो गई। वह युवक बारह साल पहले से आश्रम के पीछे जाकर चावल कूटता रहा। लोग धीरे-धीरे उसको भूल भी गए क्योंकि वह और कोई काम ही नहीं करता था। वह आश्रम के पीछे चावल कूटता रहता था। न किसी से बोलता था। सुबह उठता था, चावल कूटता था। शाम को थक जाता था, सो जाता था। बारह साल हो गए। न कभी गुरु उसके पास गया। न कभी वह दुबारा पूछने आया।

आज, सारे आश्रम में एक ही चर्चा थी, भोजनालय में भी भिक्षु चर्चा कर रहे थे। वह चावल कूट रहा था। उसके पास से दो तीन भिक्षु चर्चा करते निकले कि बड़ी हद कर दी गुरु ने। इतने सुन्दर वचनों को, इतने श्रेष्ठ वचनों को कह दिया कचरा है। वह चावल कूटने वाला जो बारह साल से चुपचाप चावल कूटता रहा था, लोग उसको भूल ही गए थे। उसके पास से निकलते थे, तो कौन ध्यान देता था, फिर वे सब बड़े भिक्षु थे, ज्ञानी थे। वह साधारण चावल कूटने वाला चावल कूटते-कूटते हँसने लगा। उन भिक्षुओं ने रुक कर उसको देखा कि तुम भी हँसते हो, किस बात से हँसते हो? उसने कहा कि ठीक ही गुरु ने कहा है कि क्या कचरा लिखा है। उन्होंने कहा अरे! तू एक चावल कूटने वाला। बारह साल से सिवाय चावल के तूने कुछ और कूटा नहीं और तू भी वक्तव्य दे रहा है इस पर। तुझको पता है कि धर्म क्या है। उसने कहा मुझको पता तो है पर लिखना भूल गया। पता तो मुझे हो गया लेकिन लिखना भूल गया, लिखें कैसे! और धर्म क्या लिखा जा सकता है? इसलिए मैं अपना चावल ही कूटता रहता हूँ। खबर तो मुझे भी मिल गई थी कि वह दरवाजे पर लिखने के लिए कहा था। लेकिन एक तो यह कि कौन गद्दी की झंझट में पड़े। दूसरा यह कि लिखें कैसे। उन भिक्षुओं ने सिर्फ मजाक में कहा—अच्छा, चलो हम लिख देंगे, तू बोल दे। तो उसने कहा—'यह हो सकता है।' धर्म के साथ अक्सर यह हुआ है। बोला किसी ने, लिखा किसी ने। यह हो सकता है क्योंकि हम जिम्मेदार न रहे। इससे कोई न कह सकेगा कि तुमने लिखा। हम सिर्फ बोलें। चल कर उसने कहा, मैं बोल देता हूँ। उसने बोल दिया और उन भिक्षुओं ने दीवाल पर लिख दिया। वे जो चार लिखी पंक्तियाँ काट दी थीं गुरु ने, उनकी बगल में उसने दूसरी चार पंक्तियाँ लिखीं। उसने कहा: 'कौन कहता है कि आत्मा दर्पण की भाँति है। जो दर्पण की भाँति है उस पर तो धूल जम ही जाएगी। आत्मा का कोई दर्पण ही नहीं है, धूल जमेगी कहाँ?' जो इस सत्य को जान लेता है, वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है।

गुरु भागा हुआ आया और उसको पकड़ लिया और कहा कि 'तू भाग मत जाना क्योंकि ऐसे लोग निकल कर भाग जाते हैं। तूने ठीक बात लिख दी है।' उसने कहा कि लेकिन मुझसे गलती हो गई है। मैं अपना चावल ही कूटना चाहता हूँ। मैं किसी का गुरु वगैरह नहीं होना चाहता। लेकिन उससे गुरु ने कहा कि तेरे बिना कोई चारा नहीं। तुझसे मेरा सम्बन्ध हो सकेगा पीछे भी। उसको अपनी गद्दी पर बिठाया और उसने कहा: मैं जानता था अगर कोई लिख

सकेगा तो वह चावल कूटने वाला, जो बारह साल से लौटा नही, चावल ही कूट रहा है। और, जिसने शिकायत भी नही की एक बार की गुरु अब तक नही आया; अब मर जाएँगे तब आएगा। मैं जानता था कि उसको मिल ही गया है, इसलिए नहीं लौटा। उसने कहा कि सब मिल गया था इसलिए आपके आने की जरूरत भी न थी क्योंकि चावल कूटता रहा, कूटता रहा। कुछ दिन तक विचार चले पुराने क्योंकि नए विचारो का कोई उपाय ही न था। न किसी से बात करता, न कुछ पढ़ना। चावल ही कूटता। और चावल कूटने से विचार कही पैदा होते हैं ? धीरे-धीरे सब विचार मर गए। चावल कूटना ही रह गया। जब सब विचार मर गए और सिर्फ चावल कूटना रह गया तो मैं इतनी तेजी से जागा जिसका कोई हिसाब नही। सारी चेतना मुक्त हो गई।

यह जो खो गया शिक्षक है, वह करुणावश कुछ रास्ते ऐसे छोड जाता है पीछे। लेकिन सभी चीजें क्षीण हो जाती हैं। सभी सम्पर्क सूत्र शिथिल पड जाते हैं और खो जाते हैं।

प्रश्न : आपने जो बातें कहीं, उनमें से कुछ विचित्र भी लगीं। आपने उपवास की जो तुलना की—भोजन कर लिया पर भोजन न करने के समान, विवाह कर लिया पर विवाह न करने के समान—इतने तक समझ मे आया। पर सन्तान उत्पन्न कर दी और सन्तान उत्पत्ति न करने के समान; मैथुन किया पर न करने के समान—यह प्रक्रिया तो ऐसी नजर आती है कि बिना वासना और तृष्णा के हो ही न पाए।

उत्तर : अगर भोजन की बात समझ में आती है तो मैथुन की क्यो नही ? यदि भोजन द्रष्टा ज्ञाता के रूप में किया जा सकता है तो मैथुन क्यों नही ? अगर किसी भी क्रिया को करते समय पीछे साक्षी खडा है और देख रहा है तो कोई भी क्रिया बंधनकारी नही होती। भोजन करते समय अगर साक्षी पीछे देख रहा है कि भोजन किया जा रहा है और मैं अलग खड़ा हूँ तो भोजन सिर्फ शरीर में जा रहा है। पीछे अछूता कोई खडा है जिसको कुछ भी नही छू सकता, जो सिर्फ देख रहा है, जो सिर्फ द्रष्टा है भोजन किए जाने का। अब ध्यान रखिए भोजन शरीर में जा रहा है और मैथुन में शरीर से कुछ बाहर जा रहा है। उसका भी साक्षी हुआ जा सकता है। साक्षी तो किसी भी क्रिया का हुआ जा सकता है, चाहे वह अन्तर्गामी हो चाहे बहिर्गामी। असल में जो भोजन शरीर में जा रहा है, वही मैथुन में शरीर से बाहर जा रहा है। भोजन में क्या जा रहा है भीतर ? उसी का सारभूत फिर मैथुन से बाहर जा रहा है। लेकिन यह

जा रहा है शरीर में, वह आ रहा है शरीर से। अगर चेतना साक्षी हो सके तो बात समाप्त हो गई है। तब नदी से गुजर सकते हो ऐसे कि पांव न भीगें। नदी से गुजरोगे तो पांव भीग ही जाएंगे। लेकिन बिल्कुल ऐसे जैसे पांव न भीगे अगर पीछे कोई साक्षी रह गया है तो बात खत्म हो गई है। गहरे में प्रश्न साक्षिभाव का है। सिर्फ और कुछ नहीं। फिर कौन सी क्रिया है, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। जैसे ही क्रिया का साक्षी हुए, कर्ता मिट गया। कर्ता मिटा कि कर्म मिट गया। क्रिया रह गई सिर्फ। अब यह क्रिया हजारों कारणों से उद्भूत हो सकती है।

वह जो तुम कहते हो सन्तति हो उसके पैदा करने में कोई वासना न हो। सच तो यह है कि जब ऐसी सन्तति पैदा हो जिसमें कोई वासना न हो तब केवल शरीर एक उपकरण बना है एक क्रिया का। उससे ज्यादा कुछ भी नहीं हुआ है। चेतना उपकरण नहीं बन सकती। लेकिन साधारणतः आदमी मैथुन में बिल्कुल खो जाता है। होश रह ही नहीं पाता। बेहोश हो जाता है। तब केवल शरीर ही उपकरण नहीं बनता, भीतर आत्मा सो गई होती है, मूर्च्छित हो गई होती है। और मैथुन का जो विरोध है वह केवल इसीलिए है कि आत्मा की मूर्च्छा सर्वाधिक मैथुन में होती है। अगर वहां आत्मा अमूर्च्छित रह जाए तो बात खत्म हो गई। कोई बात न रही। और प्रश्न भोजन का नहीं। वह भी एक क्रिया है। किसी भी क्रिया में, जैसे अभी तुम मुझे सुन रहे हो, सुनना भी एक क्रिया है, अगर तुम साक्षी हो जाओ तो तुम पाओगे कि सुना भी जा रहा है और तुम दूर खड़े होकर सुनने को देख भी रहे हो।

जैसे मैं बोल रहा हूं और मैं साक्षी हूं। मैं बोल भी रहा हूं और पूरे वक्त मैं जानता हूं कि मेरे भीतर अबोला भी कोई खड़ा हुआ है। और असल में जो अबोला खड़ा है वही मैं हूं। जो बोला जा रहा है, वह उपकरण है वह साधन है। वह मैं नहीं हूं। चल रहे हो रास्ते पर और अगर जाग जाओ तो तुम पाओगे कि चल भी रहे हो, कुछ भीतर अचल भी खड़ा है जो नहीं चल रहा है, जो कभी चला ही नहीं, जो चल ही नहीं सकता है। और अगर चलने की क्रिया में तुम पूरे जाग गए हो तो तुम पाते हो कि चलने की क्रिया हो रही है और भीतर कोई अचल भी खड़ा है। और इस अचल का बोध हो जाए तो तुम किसी दिन कह सकते हो कि मैं कभी चला ही नहीं। और हजारों लोगों ने तुम्हें चलते देखा होगा और रिकार्ड होंगे तुम्हारे चलने के और फोटोग्राफ होंगे तुम्हारे चलने के कि तुम चले थे, यह रहा फोटोग्राफ, और अदालत निर्णय देगी

कि हाँ तुम चले थे। लेकिन, इससे कोई फर्क नही पड़ता। तुम कहोगे कि वह सिर्फ दिखाई पडा था तुम्हें कि हम चले थे। लेकिन भीतर में अचल था। कोई नही चला था।

कौन सी क्रिया है यह सवाल नही है महत्त्वपूर्ण। यदि क्रिया के भीतर तुम जागे हुए हो तो तुम क्रिया से भिन्न हो गए। और तब क्रिया जगत् के इस जाल का एक हिस्सा हो गई। जैसे स्वाँस चल रही है और अगर तुम देख रहे हो तो स्वाँस का चलना या न चलना जगत् की विराट् व्यवस्था का हिस्सा हो गया और तुम बिल्कुल बाहर होकर देखने लगे कि स्वाँस चल रही है। जैसे तुमने सूरज को उगते डूबते देखा। सूरज दूर है। फर्क इतना ही है स्वाँस जरा पास चलती है। एक पक्षी मैथुन कर रहा है। वह देह तुमसे थोडी दूर है। लेकिन उसको मैथुन करते देखकर यह तो नही कहते कि मैं मैथुन कर रहा हूँ। तुम कहते हो ' मैं देख रहा हूँ। पक्षी मैथुन करता है। तुम बाहर हो गए। एक तल पर जिस दिन चेतना सम्पूर्ण रूप से साक्षी हो जाती है, यह शरीर दूर खडे पक्षी से ज्यादा अर्थ का नही रह जाता। उतना ही फासला हो जाता है। और तुम कह सकते हो—शरीर से हो रहा है। समझना कठिन मालूम पडता है हमें। कठिन इसलिए कि हम मैथुन में निरन्तर मूच्छित हुए हैं, भोजन में मूच्छित हुए हैं, सब चीजों में मूच्छित हुए है।

गुरजीएफ एक फकीर था। उसका काम था कि लोग उसके पास आएँ। बहुत अद्भुत था वह व्यक्ति। इसी सदी में थोडे से जानने वाले दो चार लोग जो हैं, उनमें से एक आदमी था वह। लोगो को ऐसी चीजें सिखाता कि तुम सोच ही नही सकते। लोगो से कहता तुम क्रोध करो। वह ऐसा अवसर पैदा कर देता कि उसको क्रोध आ जाए। जैसे कि आप आए हो तो वह ऐसे उपद्रव खड़े करवा देगा आपके चारो तरफ कि आप क्रोधित हो जाओ और आप चिल्लाने लगो, आग-बबूला हो जाओ, सारा इन्तजाम होगा कि आप को आग-बबूला किया जाए। और फिर वह एकदम से कहेगा—देखो, क्या हो रहा है और तुम चौंक गए हो। आँखें लाल हैं, हाथ काँप रहे हैं। और तुम हँसने लगे हो। तुम्हारा हाथ अब भी काप रहा है और आँखें लाल हैं। तुम्हारे होंठ फडक रहे हैं, तुम्हारा मन किसी की गर्दन दबा देने को है। और उसने कहा कि देखो। और तुम्हें याद आ गया कि उसने क्रोध का इन्तजाम करवाया था पूरा का पूरा। अब तुमने देखा और तुम एक क्षण में अलग हो गए, क्रोध अलग हो गया और तुम एक क्षण में अलग खड़े हो गए। तब सब शान्त हो गया है भीतर। मगर

शरीर अब भी काँप रहा है। जैसे अभी तुमने रात सपना देखा हो, डर गए हो, नींद खुल गई, और सपना टूट गया और अब तुम जागते हो, अब तुम हँसते हो कि वह सपना था। फिर भी हाथ काँप रहे हैं, फिर भी श्वास धड़क रही है और अभी डर मौजूद है। और तुम जानते हो कि अब तुम जग गए हो और वह सपना था सिर्फ। लेकिन सपने का प्रभाव इतनी जल्दी थोड़े ही चला जाएगा। शरीर को वक्त लगेगा शांत होने में। वह सब तरह के उपाय करता और लोगों को उन उपायों के बीच में कहता कि जागो! और अगर उस क्षण सुनाई पड़ जाए बात तो अभी आदमी जाग जाए।

तन्त्र ने इसके उपाय किए बहुत। नग्न स्त्री को सामने बिठाया हुआ है। साधक उसको देख रहा है और गोता खाता जा रहा है। आँखों में उसके सम्मोहन आता चला जा रहा है, वह भूला चला जाता है, कभी कोई चिल्लाता है कि जागो और वह एक क्षण में जाग कर देखता है और सब शिथिल हो गया। नग्न स्त्री सामने रहती है चित्रवत्। उसका भागता हुआ मन और शरीर रह गया है। दूर और भीतर कोई जाग गया है और देख रहा है। वह हँसता है कि क्या पागलपन था? यह सारी व्यवस्था किसी भी क्षण जागने में उपयोगी हो सकती है। ऐसी कोई क्रिया नहीं है जिसमें न जागा जा सके। हाँ मैथुन सर्वाधिक कठिन है। उसका कारण है कि मैथुन ऐसी क्रिया है जो मनुष्य के ऊपर प्रकृति ने नहीं छोड़ी। अगर छोड़ दी जाए तो शायद कोई पुरुष कोई स्त्री कभी मैथुन करने को राजी न हो। अगर मनुष्य पर छोड़ दी जाए तो कोई कभी भी राजी न हो क्योंकि ऐसी एब्सर्ड, ऐसी व्यर्थ, ऐसी बेमानी क्रिया है। तो प्रकृति ने उसके लिए बहुत गहरी हिप्नोसिस डाली है भीतर। इतना गहरा सम्मोहन और इतनी गहरी मूर्च्छा डाली है कि उसी प्रभाव में ही कोई कर सकता है, नहीं तो कर नहीं सकता। मुश्किल पड़ जाय। वह मूर्च्छा बहुत गहरी है।

मैं इस पर बहुत प्रयोग करता रहा और बड़े हैरानी के अनुभव हुए। एक युवक मेरे पास था जिससे मैंने वर्षों सम्मोहन के प्रयोग किए। उसको मैंने संमोहित करके बेहोश किया है। पास में एक तकिया पड़ा है। और उससे मैं बेहोशी में कहता हूँ कि उठने के पन्द्रह मिनट बाद तू इस तकिए को चूमना चाहेगा। कोई उपाय नहीं कि तू इसको चूमने से रुक जाए। तुझे इसे चूमना ही पड़ेगा। अब उसे होश वापस लौटा दिया है। वह होश में आ गया है। अब

वह बैठा है। और सब लोगों को पता है। पन्द्रह लोग वहाँ बैठे हैं, सबको पता है। अब वह लडका बार-बार चोरी से उस तकिए को देखता है जैसे कोई किसी स्त्री को देखता है। अब वे पन्द्रह लोग जाकर उसको देख रहे हैं कि क्या मामला है ? वह कभी मौका मिल जाए तो चुपचाप उसे छू लेता है। उसके मन मे इतनी गहरी हिप्नोसिस, सम्मोहन है कि तकिए ने एक कामुकता का अर्थ ले लिया है। वह खुद भी संकोच कर रहा है कि यह क्या पागलपन है कि वह तकिए को देखे। लेकिन अब उसका भीतर पूरा मन तकिए की तरफ डोला चला जा रहा है। अब तकिया यहाँ रखा है और वह वहाँ बैठा है। वह किसी भी बहाने यहाँ पास आकर बैठ गया है। बहाना बिल्कुल दूसरा है। क्योंकि तकिए के पास आकर बैठने के लिए वह कैसे कह सकता है ? वह कहता है कि मुझे वहाँ से सुनाई नही पडता है तो मैं ठीक से आप के पास आकर बैठ जाता हूँ। मैंने तकिया उठा कर इस तरफ रख लिया है वह इधर तकिए के पास आकर बैठ गया है। अब वह बडा बेचैन है। वह कहता है कि अब वहाँ जरा दीवार से टिक कर बैठना मुझे ठीक होगा। वह आकर दीवार से टिक कर बैठ गया है। वह तकिए की तलाश में है। मैंने तकिया उठा कर आलमारी में बंद कर दिया है। पन्द्रह मिनट अब पूरे हुए जाते हैं और वह बेचैन है, बिल्कुल तड़फ रहा है। और कहता है चाबी दीजिए उस आलमारी में मेरा फाउन्टेनपेन रखा हुआ है। तकिए के लिए अब वह कैसे कहे ? वह खुद भी नही सोच पा रहा है कि तकिए के लिए मैं कैसे कहूँ। हम सब बैठे है। उसको चाबी दे दी गई है। उसने जाकर ताला खोला है। वह सब तरफ देख रहा है। फाउन्टेनपेन उठाता है और झुक कर तकिए को चूम लेता है। और एकदम मुक्त हो जाता है। अब उससे पूछते है तुम यह क्या करते हो। वह एकदम रोने लगता है और कहता है कि मेरी समझ के बाहर है कि मैं क्या कर रहा हूं लेकिन वह परेशान है। उस तकिए से मेरा क्या हो गया है। लेकिन मैं उसको चूम कर बडा हल्का हो गया हूं। तकिए के प्रति एक यह हालत पैदा की जा सकती है। किसी भी चीज के प्रति हिप्नोसिस की जा सकती है।

प्रकृति ने मैथुन के साथ एक हिप्नोसिस डाली हुई है, एक सम्मोहन डाला हुआ है उसी सम्मोहन के प्रभाव में सारा खेल चलता है। इसलिए आदमी बिल्कुल अपने को विवश पाता है। जब एक सुन्दर चेहरा उसे खींचता है तो वह अपनी सामर्थ्य में, होश में नहीं है, बिल्कुल बेहोश है। इस सम्मोहन (हिप्नोसिस) को तोडा जाए और इसको तोडने की विधियां है। और उनमें बडी

कैसा है ? विरागी को लगता है कि यह सब तोड़े जा रहा है, सब नष्ट किए जा रहा है।

महावीर को दो तरह के दुश्मन मिलते रहे हैं। एक जो रागी हैं, सता रहे हैं, पत्थर मार रहे हैं। वे कह रहे हैं यह आदमी विरागी ही नहीं है। एक विरागी भी सता रहा है। यह कह रहा है यह आदमी कैसा विरागी है। वीतरागी को पहचानना ही मुश्किल है। द्वन्द्व को हम पहचान सकते हैं, निर्द्वन्द्व को नहीं। द्वैत को हम पहचान सकते हैं, अद्वैत को नहीं। और महावीर की पूरी वृत्ति वीतराग की है, पूरा भाव वीतराग का है। और प्रत्येक स्थिति में, क्योंकि वीतरागी के लिए स्थिति का सवाल नहीं है। स्थिति को रागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए और विरागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए। रागी कहता है—स्त्री हो, धन हो, पैसा हो, यह सब होना चाहिए। इसके बिना मैं जी नहीं सकता। विरागी कहता है—स्त्री न हो, धन न हो, पैसा न हो, इसके साथ मैं जी नहीं सकता। यानी जीने की दोनों की कन्डीशन हैं, शर्त है। एक की शर्त ऐसी है, एक की शर्त वैसी है। लेकिन दोनों का जीना कन्डीशन है, बाशर्त है। वीतरागी कहता है—जो हो सो हो! उसे कुछ लेना-देना नहीं है। यह अछूता खड़ा है।

जो आदमी अछूता होगा वह बेशर्त होगा और बेशर्त आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए महावीर का जमाना महावीर को बिल्कुल नहीं पहचान पाया। बहुत मुश्किल था पहचानना। निरन्तर यातना दी जा रही है, निरन्तर सताया जा रहा है। उस आदमी को हम सतायेंगे ही जो हमारे सब मापदण्डों से अलग खड़ा हो जाए, जिसमें हम तोल न कर सकें, लेबिल न लगा सकें कि यह है कौन! लेबिल लगा देने से हमें सुविधा हो जाती है। एक लेबिल लगा दिया है कि यह आदमी फलां है। फिर हम लेबिल के साथ व्यवहार करते हैं, आदमी के साथ नहीं। पक्का पता लगा लिया कि यह आदमी सन्यासी है, लिख दिया सन्यासी है। फिर सन्यासी के साथ जो करना है, वह हम इसके साथ करते हैं। लिख दिया रागी है तो जो रागी के साथ करना है, वह हम इसके साथ करते हैं। लेकिन एक आदमी ऐसा है जिस पर लेबिल लगाना मुश्किल है कि यह कौन है।

महावीर वर्षों तक इस हालत में घूमे हैं कि लोग पूछ रहे हैं कि यह है कौन, यह आदमी कैसा है और महावीर कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं। महावीर

करो। सेक्स सर्वाधिक गहरी है क्योंकि बाइलोजी (जीवविज्ञान) और पूरी प्रकृति उसमे उत्सुक है। लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसके लिए स्त्री ही मिट गई है, चुपचाप खडा आदमी, हमें समझ में बहुत मुश्किल से आता है। न, भागता है, न उत्सुक है, न स्त्री के प्रति उन्मुख है, न स्त्री से विमुख है। न राग में है, न विराग में है इसलिए महावीर के लिए जो शब्द इस्तेमाल हुआ है वीतराग, बडा अद्भुत है। वीतराग का मतलब है—राग से मुक्त। न विराग है न राग।

राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू है कि एक व्यक्ति राग की दुश्मनी में विरागी हो जाए, विराग की दुश्मनी में रागी हो जाए। लेकिन वीतरागी का मतलब है जिसका राग-विराग गया, जो सहज खडा रह गया; न भागता है, न आता है, न बुलाता है, न भयभीत है। वीतराग का मतलब ही यह है कि जहाँ न राग है, न विराग है, और महावीर के पीछे चलने वाला जो साधक है वह राग से विराग को पकडता है। राग को बदलता है विराग में। विरागी सिर्फ उलटा रागी है—शीर्षासन करता हुआ रागी। सिर्फ सिर के बल पर खडा हो गया है। रागी कहता है—स्पर्श करूँगा, प्रेम करूँगा, जिऊँगा। विरागी कहता है—स्पर्श नही करूँगा, प्रेम नही करूँगा, जिऊँगा भी नही। भय है, खतरा है बध जाने का। एक बधने को आतुर है, एक बधने से भयभीत है। लेकिन, बंधन दोनो के केन्द्र में हैं। दोनो की नजरों में बंधन है। इसलिए रागी विरागी की पूजा करने निकल जाएँगे।

वीतरागी को पहचानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि, वीतरागी, जो हमारी कैटेगरीज हैं—नाप जोख हैं—उनके बाहर पड जाता है एकदम। तराजू के इस पल्लू पर रखो तब भी तोल हो जाती है, तराजू के उस पल्ले पर रखो तब भी तोल हो जाती है। तराजू से उतर जाओ तो तोल कहाँ ? राग एक पलडा है, विराग दूसरा पलडा है। दोनो पर तोल हो सकती हैं। लेकिन वीतराग की तोल क्या होगी ? वीतराग को कैसे तोलोगे ? महावीर को सताए जाने का जो लम्बा उपक्रम है उसमें वीतरागता कारण है ? विरागी को इस मुल्क ने कभी नही सताया, यह ध्यान में रहे। महावीर के जमाने में कोई विरागियो की कमी नही रही। विरागी का सदा आदर रहा है। विरागी को कभी नही सताया किसी ने क्योंकि रागी विरागी को कभी सता ही नही सकते—रागी सदा विरागी को पूजते है क्योंकि रागी को लगता है कि मैं कैसी गदगी में उलझा हूँ लेकिन विरागी कैसा मुक्त हो गया है सारी गदगी से। लेकिन वीतरागी को दोनों सताते है—रागी भी और विरागी भी, क्योंकि रागी को लगता है कि यह आदमी

कैसा है ? विरागी को लगता है कि यह सब छोड़े जा रहा है, सब नष्ट किए जा रहा है ।

महावीर को दो तरह के दुश्मन सता रहे हैं । एक जो रागी है, सता रहे हैं, पत्थर मार रहे हैं । ये कह रहे हैं यह आदमी विरागी ही नहीं है । एक विरागी भी सता रहा है । वह कह रहा है यह आदमी कैसा विरागी है । वीतरागी को पहचानना ही मुश्किल है । द्वन्द्व को हम पहचान सकते हैं, निर्द्वन्द्व को नहीं । द्वैत को हम पहचान सकते हैं, अद्वैत को नहीं । और महावीर की पूरी वृत्ति वीतराग की है, पूरा भाव वीतराग का है । और प्रत्येक स्थिति में, क्योंकि वीतरागी के लिए स्थिति का सवाल नहीं है । स्थिति को रागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए और विरागी कहता है—ऐसी स्थिति चाहिए । रागी कहता है—स्त्री हो, धन हो, पैसा हो, यह सब होना चाहिए । इसके बिना मैं जी नहीं सकता । विरागी कहता है—स्त्री न हो, धन न हो, पैसा न हो, इसके साथ मैं जी नहीं सकता । यानी जीने की दोनों की कन्डीशन है, शर्त है । एक की शर्त ऐसी है, एक की शर्त वैसी है । लेकिन दोनों का जीना कन्डीशन्ड है, बाशर्त है । वीतरागी कहता है—जो हो सो हो ! उसे कुछ लेना-देना नहीं है । वह अछूता खड़ा है ।

जो आदमी अछूता होगा वह बेशर्त होगा और बेशर्त आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा । इसलिए महावीर का जमाना महावीर को बिल्कुल नहीं पहचान पाया । बहुत मुश्किल था पहचानना । निरन्तर यातना दी जा रही है, निरन्तर सताया जा रहा है । उस आदमी को हम सतायेंगे ही जो हमारे सब मापदण्डों से अलग खड़ा हो जाए, जिससे हम तोल न कर सकें, लेबिल न लगा सकें कि यह है कौन ! लेबिल लगा देने से हमें सुविधा हो जाती है । एक लेबिल लगा दिया है कि यह आदमी फलां है । फिर हम लेबिल के साथ व्यवहार करते हैं, आदमी के साथ नहीं । पक्का पता लगा लिया कि यह आदमी सन्यासी है, लिख दिया सन्यासी है । फिर सन्यासी के साथ जो करना है, वह हम इसके साथ करते हैं । लिख दिया रागी है तो जो रागी के साथ करना है, वह हम इसके साथ करते हैं । लेकिन एक आदमी ऐसा है जिस पर लेबिल लगाना मुश्किल है कि यह कौन है ।

महावीर वर्षों तक इस हालत में घूमे हैं कि लोग पूछ रहे हैं कि यह है कौन, यह आदमी कैसा है और महावीर कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं । महावीर

मौन है। क्योंकि है कौन, इसका क्या उत्तर देना ? कोई लेबिल होता तो उत्तर दे देते। महावीर निरन्तर मौन है। लोग जो कहते हैं वह चुपचाप खड़े हैं, सब सह लेते हैं। गाँव के पास खड़े हैं। गाय चराने वाला अपनी गाय और बैल को उनके पास छोड़ जाता है और कहता है—जरा देखना, मैं अभी लौटकर आता हूँ। मेरी कोई गाय खो गई है। वह यह भी नही कहते कि मैं नही देखूँगा। इतना कह दें तो मामला खत्म हो जाए। वह यह भी नही कहते कि मैं देखूँगा। इतना कह दें तो बात खत्म हो जाए। वह आदमी एक लेबिल लगा ले, झंझट के बाहर हो जाए। महावीर खड़े रहते हैं जैसे कि सुना अनसुना किया, जैसे प्रश्न पूछा नही गया। ऐसे खड़े रहते हैं। वह आदमी चला गया है खोजने। वह शाम होते-होते खोजकर लौट आता है। गाय और बैल जो पीछे महावीर के पास छोड गया था, उठकर जंगल में चले गए है। उस आदमी ने पूछा कि गाय-बैल कहाँ हैं ? तब भी वह वैसे ही खड़े हैं क्योंकि आने-जाने का हिसाब ही नही रखते वह कुछ। वह वैसे ही खड़े हैं। वह कहता है कि तुमने उसी वक्त क्यो नही कह दिया था तब भी वह वैसे ही खड़े हैं। तब वह आदमी समझता है कि इसने चुरा लिये है, इसने कही छुपा दिए हैं। यह आदमी बेईमान है। वह मारपीट करता है। वह मारपीट को भी सह रहे है फिर भी वैसे खड़े हैं। लेकिन थोडी देर में वह गाय बैल लौट आए हैं जगल के बाहर। सांझ होने लगी है, धूप दब गई तो वापस लौट पडे। वह आदमी बहुत दुखी होता है। वह क्षमा माँगता है। तब भी वह वैसे ही खड़े हैं। यह आदमी कोई शर्त में नही, कोई लेबिल में नहो, जो हो रहा है, उसमें वैसा ही खड़ा है, अजेय है। अद्भुत घटना है। जो भी हो रहा है, कुछ भी हो रहा है जैसे इसे मतलब ही नही कि क्या हो रहा है। यह हर हालत में वैसा ही खड़ा है और सब चीजों को देख रहा है। इस व्यक्ति को समझने में बड़ी कठिनाई है।

पीछे, जिन्होंने शास्त्र लिखे, उन्होने कहा : महावीर बड़े क्षमावान् हैं; उन्होंने क्षमा कर दिया है। कोई मारता है तो उसे क्षमा कर देते है। मगर समझ ही नही पाए लोग। क्षमा वही करता है जो क्रोधित होता है। क्षमा, क्रोध के बाद का हिस्सा है। जो महावीर को क्षमावान् कहता है, वह महावीर को समझता ही नहीं। महावीर को क्रोध ही नही उठता, क्षमा कौन करेगा, किसको करेगा ? महावीर देख रहे हैं। वे ऐसा ही देख रहे हैं कि इस आदमी ने ऐसा-ऐसा किया है। पहले मारा; फिर क्षमा मागी। देख रहे हैं, ऐसा-ऐसा हुआ। और खड़े है चुपचाप और सब देख रहे हैं। उसमें कोई चुनाव भी नही

कर रहे हैं कि ऐसा होना था और ऐसा नहीं होना था। ऐसे निर्णय कि वह राग और विराग के बाहर हो गए हैं, चुनाव के बाहर हो गए हैं, अच्छे-बुरे के बाहर हो गए हैं, कौन क्या कहता है, इसके बाहर हो गए हैं। यह वीत-रागता परम उपलब्धि है जो जीवन मे सम्भव है। जीवन की यात्रा मे जो परम बिन्दु है वह वीतरागता है। वह जीवन का अन्तिम बिन्दु है क्योंकि उसके बाद फिर मुक्ति की यात्रा शुरू हो जाती है। वीतराग हुए बिना कोई मुक्त नही होता। रागी मुक्त नही हो सकता। विरागी मुक्त नही हो सकता। दोनो बधे हैं। लेकिन हम जो समझते नही हैं, वीतराग का मतलब विरागी कहते हैं जो कि राग से छूट गया है। नही, विराग राग ही है, सिर्फ उल्टा राग है जो राग से छूट गया है।

राग शब्द बड़ा अच्छा है। राग का मतलब होता है रंग। विराग का मतलब होता है उससे उल्टा। हमारी आँखे हमेशा रगी हैं, कुछ रग है आँख पर। उस रंग से ही हम देखते हैं। चीजें हमे वैसी दिखाई पड़ती हैं, जो हमारा रंग होता है आँख का। चीजें वैसी नही दिखाई पड़ती जैसी वे हैं। रगी आँख कभी सत्य को नही देख सकती है। अब एक रागी है। उसे राह से एक स्त्री जाती दिखाई पड़ती है तो लगता है स्वर्ग है। स्त्री सिर्फ स्त्री है। रागी को लगता है स्वर्ग है। विरागी बैठा है वही पर। उसको लगता है नरक जा रहा है, आँख बन्द करो। स्त्री सिर्फ स्त्री है। विरागी को दिखता है नरक जा रहा है। आँख बन्द करो। इसलिए लिखता है अपनी किताबो में—स्त्री नरक का द्वार है, और रागी लिखता है कि स्त्री स्वर्ग है, वही मुक्ति है, वही आनन्द है। स्त्रियाँ सोचेंगी कि यह ऐसे ही लिख रहे हैं। रागी स्त्री को स्वर्ग बना लेता है, एक रग है उसकी आँख पर। विरागी स्त्री को नरक बना लेता है, एक रग है उसकी आँख पर। वीतरागी खड़ा रह जाता है। स्त्री—स्त्री है। वह अपने रास्ते जाती है, मैं अपनी जगह खड़ा हूँ। न वह स्वर्ग है, न वह नरक है। वह उसके बाबत कोई निष्कर्ष नही लेता क्योंकि उसकी आँखो में कोई रग नही है, रगमुक्त है वह। इसलिए जो-जो जैसा-जैसा है, वैसा-वैसा उसे दिखाई पड़ता है। बात खत्म हो जाती है। वह कुछ भी अपनी तरफ से नही डालता। न वह कहता है सुन्दर किसी को, न वह कहता है असुन्दर। क्योकि सुन्दर और असुन्दर हमारे रग हैं, जो हम थोपते है। चीजें सिर्फ चीजें है। न तो कुछ सुन्दर है, न कुछ असुन्दर है। हमारा भाव है जो हम उसमें डाल देते हैं।

अब जैसे देखिए कि आज सुशिक्षित और सुरुचिपूर्ण घर में कैक्टस लगा हुआ है। हाँ, काँटे वाले पौधे हैं, मरुस्थल में उगने वाले। गाँव के बाहर लगते थे धतूरा, नागफनी। ये आज के घर के बैठक खाने में लगे हुए हैं। आज से सौ साल पहले अगर उन्हें कोई बैठकखाने में ले आता तो उस आदमी को हम पागलखाने ले गए होते कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। क्या नागफनी घर में लगाने की चीज है? लेकिन गुलाब एकदम बहिष्कृत हो गया है। नागफनी आ गई है उसकी जगह। सुशिक्षित आदमी के घर में नागफनी लगी हुई है, क्या हो गया? नागफनी एकदम सुन्दर हो गई। जो कभी सुन्दर न थी, जो कुरूपता का साकार रूप थी सदा, वह आजकल एकदम सौन्दर्य की अनुभूति बन गई। क्या हो गया? रंग बदल गए, एकदम रंग बदल गए। और हर बार हम रंग से ऊब जाते हैं, तो बदल देते हैं क्योंकि एक ही रंग को देखते-देखते ऊब हो जाती है। गुलाब को हजार साल तक सुन्दर-सुन्दर कहते हुए ऊब हो गई। तो छोड़ो। इसको बाहर करो। इसको घर से बाहर करो। ब्राह्मण को आदर देते बहुत ऊब हो गई तो अब शूद्र को बिठाओ। नागफनी शूद्र थी बहुत दिनों तक, अब एकदम ब्राह्मण हो गई। नागफनी गाँव के बाहर रहती थी जैसे शूद्र रहता था अब वह एकदम से अभिजात्य हो गई, घर के भीतर आ गई।

ऊब सदा अति पर ले जाती है। जब हम एक चीज से ऊबते हैं तो ठीक उससे उल्टी चीज पर चले जाते हैं। जो आदमी नाच-गाने से ऊब जाएगा, खाने से ऊब जाएगा, उपवास करने लगेगा। कपड़ों से ऊब जाएगा, त्याग करने लगेगा। धन से ऊब जाएगा, धर्म की तरफ चला जाएगा। मधुशाला से ऊबेगा, मन्दिर जाएगा। मन्दिर से ऊबा आदमी मधुशाला की खोज में निकलता है। जहाँ से हम ऊबते हैं, उल्टे हो जाते हैं। राग से ऊबते हैं तो विराग पकड़ लेता है। विराग से ऊब जाते हैं तो राग पकड़ने लगता है। और अगर हम रागियों और विरागियों के मस्तिष्क को खोलकर देखें तो हमें बड़ी हैरानी होगी कि उसके भीतर हमें उल्टे आदमी मिलेंगे। रागी के भीतर निरन्तर विरागी होने का भाव मिलेगा, बुरी से बुरी स्थिति में भी। इसलिए रागी विरागी की पूजा करते हैं। वह उनका गहरा भाव है। वह भी होना चाहते हैं यही। और विरागी के भीतर अगर हम झांकें तो रागी के प्रति ईर्ष्या मिलेगी। जैसे रागी के मन में विरागी के प्रति आदर मिलेगा। इसलिए विरागी निरन्तर रागियों को गाली दे रहा है। वह गाली ईर्ष्याजन्य है। उसके भी मन में यही कामना है। जो-जो उसकी कामना है, उस-उसके लिए वह रागी को गाली दे रहा है कि तुम यह-यह पाप

पार नहीं हो। नरक में सड़ोगे। वह डर रहा है, समझा रहा है। लेकिन भीतर उसकी कामना नहीं है।

मुझे बड़े-से-बड़े साधु मिलते हैं जो सामने आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं। एकान्त में सिवाय सेक्स के दूसरी बात ही उनके चित्त में नहीं होती। और वे पूछते हैं कैसे इससे छुटकारा हो और कहते हैं कि हम यहाँ घेरे हुए हैं। चौबीस घंटे परमात्मा की और मोक्ष की चर्चा चल रही है। लेकिन भीतर वासना का दौर चल रहा है पूरे वक्त। और यह हो सकता है कि मधुशाला, वेश्या के घर में बैठा हुआ एक आदमी कई बार संन्यासी हो जाता है मन में कि छोड़ो सब बेकार है। उल्टा घटता रहता है। रागी विरागी हो जाता है और विरागी रागी हो जाता है। जो इस जन्म में रागी है, अगले जन्म में विरागी हो जाए, जो इस जन्म में विरागी है वह अगले जन्म में रागी हो जाए। यह जानकर मैं बहुत हैरान हुआ हूँ। इधर कुछ बहुत से गहरे प्रयोगों ने कुछ अजीब से नतीजे दिए हैं जो चौंकाने वाले हैं। जैसे कि एक आदमी है जो बिल्कुल ही राग-रंग में पड़ा हुआ है, उसके पिछले जन्म में उतरने की कोशिश करो तो तुम दंग रह जाओगे कि वह संन्यासी रह चुका है। और संन्यासी रहते वक्त उसने इतना विरोध पाल लिया है संन्यासी होने से कि यह जन्म उसका रागी का हो गया है।

एक स्त्री मेरे पास आती थी और उसे बड़ी आतुरता थी कि किसी तरह पिछले जन्म में वह उतर जाए। मैंने उससे बहुत कहा कि यह आतुरता छोड़ दो क्योंकि इसमें कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं। उसको बड़ा सती-साध्वी होने का ख्याल था। और उसे उसका इतना भाव पकड़ा कि मुझे शक हो था कि पिछले जन्म में वह वेश्या रह चुकी होनी चाहिए। नहीं तो इतने जोर से सती-साध्वी होने का भाव नहीं पकड़ता है। वह जिससे ऊब गई है, वह नए जन्म की शुरुआत बन जाती है। फिर भी वह नहीं माना। मैंने कहा कि ठीक है, तू प्रयोग कर। वह छ महीने तक पिछले जीवन में उतरने का, जातिस्मरण का प्रयोग करती रही। एक दिन आकर एकदम चिल्लाने-रोने लगी कि मुझे किसी तरह भुलाओ क्योंकि मैं दक्खिन के किसी मन्दिर मे देवदासी थी, वेश्या थी। और मैं इसको भूलना चाहती हूँ। मैं इसे याद ही नहीं करना चाहती कि ऐसा कभी हुआ। मैंने कहा जो याद आ गया उसको भूलना मुश्किल है। इसलिए प्रकृति ने सारी व्यवस्था की है कि पिछला जन्म आपको याद न आए क्योंकि पिछले जन्म में आप निरन्तर रूप से उल्टे रहे होंगे। आम तौर से लोग सोचते हैं इस जन्म

में जो सन्यासी है, उसने पिछले जन्म मे संन्यासी होने का अर्जन किया होगा। ऐसा मामला नहीं है। इस जन्म में जो विरागी है, वह पिछले जन्म में राग के चक्कर में घूमता रहा है। यह फिक्र न करे कि हमें क्या होना है, रागी कि विरागी। फिक्र इसकी करे कि हम जो भी हो, उसमें हम जागें। हम कुछ होने की चिन्ता छोड़ दे। वह जो जागना है, वीतरागता में ले जाएगा। और वह वीतरागता बिल्कुल ही भिन्न बात है।

इसी सन्दर्भ में यह भी, जैसा कि मैंने जातिस्मरण की बात की, पिछले जन्म के स्मरण की—महावीर की बडी देनों मे एक देन है। ये उस तरह की ध्यान-पद्धतियां हैं जिनसे व्यक्ति अपने पिछले जन्मो में उतर जाए। और अगर एक व्यक्ति अपने पिछले जन्मो में उतर जाए और दो चार जन्म भी जान ले तो बहुत हैरान हो जाए। फिर वही वह आदमी नही हो सकता जो अभी था क्योकि वह पाएगा कि यह सब तो मै बहुत बार कर चुका, इससे उल्टा भी कर चुका मगर कुछ भी नही पाया। हर बार जैसे चाक के स्पोक घूम कर फिर अपनी जगह पर आ जाते हैं, ऐसे ही मैं घूमा और अपनी जगह पर आ गया। कई बार लगा चाक को कि ऊपर पहुँच गया हूं लेकिन जब उसे लग रहा था कि ऊपर पहुँच रहा हूँ तभी नीचे आना शुरू हो गया था। कई बार चाक को लगा बिल्कुल गिर गया हूँ नरक मे तभी ऊपर चढना शुरू हो गया। बहुत बार स्वर्ग छुआ, बहुत बार नरक छुआ, बहुत बार सुख छुआ, बहुत बार दुख छुआ, बहुत बार राग छुआ, बहुत बार विराग छुआ। सब द्वन्द्वो में चक्र घूम चुका है। अगर दस-पाच जीवन स्मरण आ जाएँ तो यह सब इतनी बार हो चुका है कि अब इसमें चुनाव का कोई मतलब नही है।

जातिस्मरण का मतलब यही है कि यह द्वन्द्व हम बहुत बार भोग चुके हैं, इन दोनो से हम जाग सके हैं। इन दोनों में चुनाव का कोई उपाय नहीं है। लेकिन, मन का नियम यह है कि जो वह करता है उसमे उल्टे को चुनता है। इसलिए संन्यासियों के पास रागियों की भीड होती है। जो वह चुनता है, अभी कर रहा है, उसके अनकॉन्शस में, अचेतन में उल्टे का इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब वह सेक्स में होता है, तब उसको ब्रह्मचर्य की बातें ख्याल में आती है। और जब वह ब्रह्मचर्य साधता है तो सेक्स की बाते ध्यान में आती हैं; जब वह भोजन कर रहा होता है तब वह सोचता है भोजन-त्याग कैसे करूं और जब वह भोजन त्याग करता है, तब भोजन का स्मरण आने लगता है। इतनी अद्भुत है हमारे द्वन्द्व में घूमने की व्यवस्था। और हम एक बार एक ही

जगह होते हैं इसलिए दूसरा हमें आकर्षित करता रहता है उलटा । अगर दो चार जन्मों का यह स्मरण आ जाए कि हम दोनों तरफ घूम चुके हैं तो फिर तीसरा उपाय है । और यह जो तीसरा उपाय है यही महावीर का उपाय है— वीतरागता का ।

इन दोनों में कोई अर्थ नहीं तो अब क्या करें ? अगर भोग नहीं, अगर योग नहीं, तो तीसरा क्या रास्ता है ? तीसरा रास्ता सिर्फ यह है कि दोनों के प्रति जाग जाऊं । तो त्रिकोण बन जाता है । उस त्रिकोण की, त्रिभुज की नीचे की एक रेखा है जिस पर दो द्वन्द्व हैं । इधर राग है, उधर विराग है ? जो इधर होता है वह उधर आ जाता है, जो उधर होता है, वह इधर आना चाहता है । और इन्हीं दोनों के बीच हम घूमते रहते हैं । जो इन दोनों से जागता है, वह जो त्रिभुज का ऊपर का छोर है वहाँ पहुँच जाता है । वह वीतराग है । वह दोनों से पार हो गया है । वह न राग में है, न विराग में है । लेकिन जो राग में खड़ा है, जो विराग में खड़ा है, उन दोनों के लिए बेबूझ हो जाता है कि यह आदमी कहाँ है ? क्योंकि हमारे होने की परिभाषा में दो ही बिन्दु हैं राग और विराग । यह आदमी कहाँ है ? तो इस आदमी को समझना मुश्किल हो जाता है । लेकिन समझने का प्रश्न नहीं है । यह आदमी हम दोनों को समझ पाता है और हम दोनों इस आदमी को बिल्कुल नहीं समझ पाते ।

जाति-स्मरण का प्रयोग महावीर की बड़ी से बड़ी देन है । और मैं समझता हूँ उस पर कोई काम नहीं हो सका । असली बात वही है । उस साधना से गुजर करके किसी व्यक्ति को वीतरागता में लाया जा सकता है, किसी भी व्यक्ति को । और जब तक उस साधन से नहीं गुजरता तब तक वह यही होगा कि रागी है तो विरागी हो जाएगा और विरागी है तो रागी हो जाएगा । और यह दोनों एक-से मूढ़तापूर्ण हैं । इन दोनों को कोई चुनाव का सवाल नहीं है । और हमें रोज दिखाई पड़ता है कि हम विरोधी को अनजाने चुनने लगते हैं । महलों में जो आदमी बैठा हुआ है वह निरन्तर यही कहता है कि झोपड़ी का मजा यहाँ कहाँ है । और ईर्ष्या करता है झोपड़ी के आदमी से, और उसकी नींद और उसकी मौज से । झोपड़ी में जो बैठा है वह पूरे वक्त महल के लिए ईर्ष्यालु है कि जो महल में हो रहा है, वह यहाँ कहाँ, झोपड़ी में मरे जा रहे हैं । झोपड़ी वाला महल की तरफ जा रहा है, महल वाला झोपड़ी की तरफ आ रहा है । बड़े शहर वाला छोटे गाँव की तरफ भाग रहा है, छोटे गाँव वाला बड़े शहर की तरफ भाग रहा है । पूरे समय जहाँ हम हैं, उससे विपरीत की तरफ हम

जा रहे हैं क्योंकि जहाँ हम हैं वहाँ हम ऊब जाते हैं, वहाँ हम बोरडम से भर जाते हैं। और जिससे हम ऊब गए हैं उससे उल्टे की तरफ हम जाते हैं। जैसे पूरब भौतिक की तरफ जाएगा क्योंकि वह अध्यात्म से ऊब गया है और पश्चिम अध्यात्म की तरफ आएगा क्योकि वह भौतिकवाद से ऊब गया है। पश्चिम में इस समय जो चिन्तना है कि क्या है अध्यात्म में, कैसे हम आध्यात्मिक हो जाएँ और पूरब की जो कामना है पूरी की पूरी कि कैसे हम वैज्ञानिक हो जाएँ, कैसे धन आए, कैसे समृद्धि आए, कैसे अच्छे मकान, कैसे अच्छी मशीन। पूरब का व्यक्तित्व भौतिकवाद की तरफ जा रहा है। पश्चिम का व्यक्तित्व अध्यात्म की तरफ आ रहा है। व्यक्ति में भी वही होता है, समाज में भी वही होता है, राष्ट्र में भी वही होता है। 'अति'—दूसरी 'अति' हमें पकड लेती है।

महावीर कहते हैं कि दोनो 'अतियों' में हम बहुत घूम चुके हैं, दोनो विरोधो में हम बहुत बार घूम चुके हैं। क्या कभी हम जागेंगे और उस जगह खडे हो जाएँगे, जहाँ कोई 'अति' नही है, कोई विरोध नही है, कोई द्वन्द्व नहीं है। इस स्थिति का नाम वीतरागता है। और यह सभी में है। ध्यान रखिए यह सभी में है। जैसे एक आदमी क्रोध कर रहा है। क्रोध करके आपने कभी ख्याल किया है कि क्रोध करने के बाद आप क्या करते है? आप पछतावा करते है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो क्रोध के बाद पछतावा न करता हो। और अगर मिल जाए तो अद्भुत है। क्रोध करके आदमी पछताता है। पछतावा दूसरी 'अति' है। क्रोध किया कि पछतावा आया। पछतावे के वक्त आदमी सोचता है कि हम बडे भले आदमी है देखो! हमने क्रोध कर लिया और हम पछतावा भी कर रहे हैं। क्रोध किया कि क्षमा पीछे आई। विपरीत आता रहेगा सारे जीवन के सब तलो पर। यह कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आप प्रेम करेंगे उसके प्रति उसकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। फ्रायड ने पहली दफा इस तथ्य की तरफ सूचना दी कि जिसको आप प्रेम करते हैं, उसके प्रति आपकी घृणा इकट्ठी होने लगती है। क्योंकि प्रेम तो आप कर लेते हैं। जब प्रेम से ऊबने लगते हैं तब करेंगे क्या? और जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हैं पूरी, बहुत सम्भावना है कि उसके प्रति आपका प्रेम इकट्ठा होने लगे।

(एक यहूदी फकीर था। उसने एक किताब लिखी और किताब बडी क्रातिकारी थी। यहूदियों का जो सबसे बडा धर्मगुरु था, जो रब्बी था उसके पास उसने वह किताब अपने एक मित्र के हाथ भेंट भेजी कि जाकर रब्बी को मेरी किताब भेंट कर आओ। और उस यहूदी फकीर ने—वह बगावती फकीर था—

कहा कि सिर्फ इतना ही ख्याल रखना कि जब तुम रब्बी को किताब दो तो रब्बी क्या कहते हैं, क्या करते हैं, उसे जरा ध्यान से देख लेना। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम सिर्फ नोट कर लाना कि उन्होंने क्या कहा, क्या किया, गुस्से में आए, नाराज हुए, किताब फेंकी, कैसा चेहरा था, सब खबर ले आना। वह आदमी गया, उसने किताब दी। उसने कहा कि यह फलां-फलां फकीर ने किताब दी है। रब्बी ने किताब को तो देखा भी नहीं। हाथ में उठाकर दरवाजे के बाहर फेंक दिया और कहा कि भागो यहाँ से। इस तरह की किताबों को छूना भी अधर्म और पाप है। रब्बी की औरत पास में बैठी थी। उसने कहा ऐसा क्यों करते हैं। फेंकना ही हो तो वह आदमी चला जाए तो पीछे फेंक सकते हैं। और फिर इतनी हजारों किताबें घर में हैं, एक कोने में उसको भी रख दें। न पढ़ना हो, न पढ़ें। लेकिन ऐसा क्यों करते हैं? पर रब्बी आग-बबूला हो गया, लाल हो गया। उस आदमी ने नमस्कार किया, वापस आया। उस फकीर ने पूछा—क्या हुआ? कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। रब्बी बड़ा खतरनाक है। उसकी पत्नी बहुत भली है। रब्बी ने किताब बाहर फेंक दी और कहा कि हटो यहाँ से, भाग जाओ यहाँ से—यह आग हो गया एकदम। उस फकीर ने पूछा उसकी पत्नी ने जिसको तुम बहुत भली कहते हो क्या किया? उसने कहा कि किताब को उठा लाओ। उसने नौकर से किताब मँगवा ली और कहा घर में इतनी किताबें हैं, यह भी रखी रहेगी, ऐसा भी क्या? और फेंकना हो तो पीछे फेंक देना। लेकिन सामने ऐसा क्यों करते हो? तो उस फकीर ने कहा कि रब्बी से अपना कभी मेल हो सकता है। लेकिन उसकी पत्नी से कभी नहीं। 'रब्बी' से अपना मेल हो ही जाएगा। रब्बी को किताब पढ़नी ही पड़ेगी। वह किताब पढ़ेगा ही। मगर उसकी पत्नी कभी नहीं पढ़ेगी। तब उस आदमी ने पूछा—आप तो उल्टी बात कर रहे हैं। रब्बी बड़ा नाराज था, एकदम आगबबूला हो गया था। फकीर ने कहा वह नाराज हुआ था तो थोड़ी देर में नाराजगी शिथिल होगी, नाराज कोई कितनी देर रहेगा और जब कोई आग में चढ़ जाता है ऊपर तो वापस उसे शांति में लौटना पड़ता है, जब कोई श्रम करता है तब उसे विश्राम करना पड़ता है, जब कोई जागता है उसे सोना पड़ता है। उल्टा जाना ही पड़ता है। रब्बी कितनी देर क्रोध में रहेगा? आखिर डिग्री नीचे आएगी। शांत होगा, किताब उठाकर लाकर पढ़ेगा। लेकिन उसकी पत्नी? उससे कोई आशा नहीं। क्योंकि उसकी कोई डिग्री नहीं। क्रोध में नहीं गई तो क्षमा में भी नहीं लौटेगी। उसने चीजों को जिस तटस्थता से

लिया है उससे अपना कोई सम्बन्ध नही बन सकता है। जब हम क्रोध कर रहे हैं तभी क्षमा इकट्ठी होनी शुरू हो जाती है; जब हम क्षमा कर रहे हैं तभी क्रोध इकट्ठा होना शुरू हो जाता है, जब हम प्रेम कर रहे है तभी घृणा इकट्ठी होने लगती है; जब हम घृणा कर रहे हैं, तभी प्रेम इकट्ठा होने लगता है।

यही द्वन्द्व है आदमी का कि जिसको प्रेम करता है, उसको घृणा करता है; जिसको घृणा करता है उसको प्रेम करता है। मित्र सिर्फ मित्र ही नही होते, शत्रु भी होते है। शत्रु सिर्फ शत्रु ही नही होते, मित्र भी होते है। इसलिए निरन्तर यह होता रहता है। जब मैं निरन्तर अनुभव करता हूँ कि अगर मुझे कोई आदमी बहुत जोर से प्रेम करने लगे तो मैं जानता हूँ कि यह आदमी जल्दी जाएगा क्योकि उसकी घृणा इकट्ठी होने लगी है। और मैं इसलिए चिन्तित हो जाता हूँ कि यह आदमी जाएगा और अब इसके बिना जाए लौटने का कोई उपाय नही होगा। और अगर कोई आदमी जोर से मुझे घृणा करने लगे, क्रोध करने लगे तो मैं जानता हूँ कि वह आएगा। क्योकि इतनी घृणा मे वह कैसे जियेगा, उसे लौटना पड़ेगा।

महावीर कहते है कि सब द्वन्द्व बाधता है दूसरे से, उल्टे से बाध देता है। इसलिए द्वन्द्व के प्रति जागने से वीतरागता उपलब्ध होती है। न काम, न ब्रह्मचर्य—तब सच में ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। न क्रोध, न क्षमा—तब सच में ही क्षमा उपलब्ध होती है क्योंकि उससे विपरीत फिर होता ही नही। न हिंसा न अहिंसा—तब सच्ची अहिंसा उपलब्ध होती है क्योकि तब उसके विपरीत कुछ होता ही नही। इसलिए बहुत भूल हो जाती है। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल हो जाता है क्योकि महावीर की अहिंसा वह अहिंसा नही है जो हिंसा के विपरीत है। हिंसा के विपरीत जो अहिंसा है, वह आज नही तो कल हिंसक हो ही जाएगी। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल है क्योकि वह हिंसा के विपरीत नही है। जहाँ न हिंसा रह गई, न अहिंसा रह गई, वहाँ जो रह गया उसको महावीर अहिंसा कह रहे है।

ऐसा लगता है कि हम राग और विराग के बीच अनेक जन्मो में घूम चुके है। ऐसा नही है कि राग ही राग में ही घूमते रहे है। बहुत बार राग हुआ है, बहुत बार विराग हुआ है। वीतराग कभी नही हो सका और वह होगा भी नही क्योंकि एक 'अति' पर जाकर फिर पेन्डुलम दूसरे अति पर जाना शुरू हो जाता है। इसलिए मैं कहता हूँ इसकी चिन्ता मत करें कि हमें क्या होना है—राग या विराग।

प्रश्न : जीवन के रहस्य को जानने के लिए, जीवन और मृत्यु से अभय प्राप्त करने के लिए बुद्ध ने इतनी साधना की थी। लेकिन वही बुद्ध, दलाई लामा के रूप में केवल अपने जीवन को बचाने के लिए ही चीनियों के चंगुल से भागकर यहाँ आता है। वही बुद्ध जिसने 'अभयो भव', 'असमर्थो भव' कहा, वही बुद्ध दलाई लामा के रूप में, एक कायर के रूप में हमारे सामने आ जाता है। यह ऐसी चीजें हैं जिनसे लगता है कि या वह बुद्ध झूठ थे या यह दलाई लामा जो बुद्ध रूप में आए हैं झूठ हैं।

उत्तर : असल में, चीजें जैसी हमें दिखाई पड़ती हैं वैसी ही नहीं होतीं। दलाई लामा को समझना बहुत मुश्किल है क्योंकि जिस भाषा में हम सोचने के आदी हैं उस भाषा में निश्चय ही वह भागा अपने को बचाने के लिए। कायर मालूम पड़ता है। लड़ना था, जूझना था। भागना क्या था? ऐसा ही हमें दिखाई पड़ता है, बिल्कुल सीधा और साफ। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि दलाई लामा के भागने में बहुत और अर्थ हैं। ऊपर से यही दिखाई पड़ता है कि दलाई भागा, बचाया अपने को—बड़ा कायर है। सचाई इतनी नहीं है। सचाई ऊपर से ही इतनी दिखाई पड़ रही है। दलाई लामा का भागना अत्यन्त करुणापूर्ण, महत्त्वपूर्ण है। दलाई अगर वहाँ लड़ता तो हमारी नजरों में वह बहुत बहादुर हो जाता। लेकिन दलाई लामा को कुछ और बचाकर लाना था जो हमें दिखाई ही नहीं पड़ रहा है, जो कि लड़ने में नष्ट हो जाता था। समझ लें एक मन्दिर है और एक पुजारी है। और वह पुजारी किन्हीं गहरी सम्पत्तियों का अधिकारी भी है जो उसके मरते ही एकदम खो जा सकती हैं इन अर्थों में कि उनसे सम्बन्ध का फिर कोई सूत्र नहीं रह जाएगा और जरूरी है कि इसके पहले कि वह मरे, वह सारे सूत्र और वह सारी सम्पत्तियों की खबर किन्हीं को दे दे। दलाई लामा के पास बहुत रहस्यमय सूत्र हैं जिन्हें इस समय जमीन पर मुश्किल से चार-पाँच लोग समझ सके हैं। दलाई लामा का भाग आना अत्यन्त जरूरी था।

तिब्बत का उतना मूल्य नहीं जितना मूल्य दलाई लामा की जान का है और जो वह किसी को दे सकता है उसका है। और, तिब्बत की हार निश्चित थी। तिब्बत का चीन में डूबना निश्चित था। यह भी दलाई लामा को दिखाई पड़ सकता है जो दूसरे को दिखाई नहीं पड़ सकता। और अगर ऐसा साफ दिखाई पड़ता हो तो लड़ना उचित नहीं है, चुपचाप हट जाना उचित है। उस मंत्र को लेकर बचाना ज्यादा कीमती है। तिब्बत तो बचेगा नहीं और वह सूत्र बच सकता

है भागने से। और आज, दलाई बैठकर वह सारे प्रयोग कर रहा है दस-पच्चीस लोगों को साथ लेकर, जिनके साथ वह भागकर आया है। कीमती लोगों को वह सारी सम्पदा दे रहा है। उसके मरने का कोई सवाल ही नही। वह तिब्बत में भी मर सकता था और यहाँ भी मरेगा। मरने से बचने का प्रश्न ही नही है।

बहुत बार ऐसा हुआ है। यह पहली बार नही हुआ हिन्दुस्तान में। बौद्ध भिक्षुओं को भागना पड़ा हिन्दुस्तान से। एक वक्त आया जब हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षुओ को भागना पडा। भागना इसलिए जरूरी हो गया कि यहाँ भूमि बिल्कुल बंजर हो गई उनके लिए। उनको ग्रहण करने के लिए, जो उनके पास था, कोई नही बचा। अपनी जान का सवाल न था, लेकिन सवाल था उसका जो वे जानते थे, जो बीज उनके पास थे, जो किसी भूमि में अंकुरित हो सकते थे। उनको भागकर सारी एशिया में खोज करनी पडी कि कही और हो सकता है कुछ। उन्होने बड़ी कृपा की कि चीन चले गए, तिब्बत चले गए, बर्मा चले गए, थाई चले गए और जाकर उन्होंने बीज आरोपित कर दिए। फिर उनके बीजो से आज फिर बीज लौटने की सभावना बन सकती है। लेकिन यह हो सकता था कि उस समय वे भी भिक्षु, जो भागे इस मुल्क से, कायर मालूम पडे होगे। लडना था यहाँ, जाना कहाँ था? लेकिन जिनके पास कुछ है, वह लड़ने से ज्यादा उसको बचाने की फिक्र करेंगे। बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठे और 'बोधि' को प्राप्त हुए, वह मूल वृक्ष नष्ट हो गया। लेकिन उसकी एक शाखा अशोक ने लंका भेज दी थी। वह लंका में सुरक्षित है। अब उस वृक्ष की एक शाखा वापस आ गई है। मूल वृक्ष नष्ट हो गया। नष्ट किया ही गया होगा क्योंकि जब बौद्धों के पैर उखड़ गए तो सब नष्ट कर दिया गया। आप हैरान होंगे जान कर कि बुद्ध का जो मन्दिर है उसका पुजारी ब्राह्मण है। वह बौद्ध नही है। वह सम्पत्ति भी एक ब्राह्मण पुजारी की है—मन्दिर और उसकी व्यवस्था भी। वह सब नष्ट हो गया। लेकिन अशोक के द्वारा भेजी गई उस वृक्ष की एक शाखा लंका में पल्लवित हो गई। और उस शाखा की एक शाखा लाकर फिर हम जगा सके। उस वृक्ष का एक बच्चा मौजूद है। यह वृक्ष की चर्चा मैंने इसलिए की कि प्रतीक की तरह ख्याल में आ जाए।

तिब्बत में फिर वह हालत आ गई—तिब्बत चीन के हाथ में जाएगा और कम्युनिज्म जितनी जोर से दुनिया से रहस्य विज्ञान को खत्म कर सकता है उतना कोई चीज खत्म नहीं कर सकती। जो भी आन्तरिक सत्य हैं और उनके जो

भी मूल हैं, कम्युनिज्म उनको जड़-मूल से काटने में उत्सुक है। और जहाँ भी जाएगा वहाँ सबसे पहले जो उस मुल्क की आन्तरिक सम्पदा है उसको वह बिल्कुल तोड़ डालेगा। तिब्बत के कम्युनिस्टों के हाथ में जाने के बाद वहाँ जो सबसे पहली चोट होने वाली थी, वह चोट थी उसकी आन्तरिक सम्पदा पर। तिब्बत बहुत अद्भुत था इन अर्थों में कि दुनिया मे तिब्बत के पास सर्वाधिक बहुमूल्य सम्पत्ति थी आन्तरिक सत्यो की। क्योंकि वह दुनिया से कटा हुआ जिया, दुनिया को उसे कोई खबर न थी, दुनिया का कोई सम्बन्ध न था उससे। दुनिया का कोई ताल-मेल न था उससे। वह दूर अकेले मे, एकान्त में चुपचाप पड़ा था। अतीत की जो भी सम्पदा थी जानने की वह सब उसने सुरक्षित कर ली थी। दलाई का भागना बहुत जरूरी था। लेकिन मुश्किल है कि कोई आदमी उसकी तारीफ कर सके। लेकिन मैं कहता हूँ कि दलाई वहाँ लड़ता तो दो कौड़ी की बात थी वहाँ लड़ना। कायर नहीं है वह आदमी। मगर जो बचा कर ले आया है उसे आरोपित कर देना जरूरी है। लेकिन इस मुल्क में लोगों को ख्याल भी नहीं है कि दलाई के साथ एक बहुत बड़ी मूल धारा वापस लौटी है जिससे यह मुल्क फायदा उठा सकता है। लेकिन मुल्क को कोई मतलब ही नहीं है, कोई सम्बन्ध ही नहीं लगा इससे। वह आपके मुल्क मे है, यह घटना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह आसान न था, उसको ले आना आसान न था। यह बिल्कुल अवसर है, वक्त है, समय है कि उसको यहाँ आ जाना पड़ा है। और उसका हम फायदा ले सकते हैं। बहुत से एसोटेरिक, बहुत से गुह्य सत्य हैं जो उससे पता चल सकते हैं। लेकिन हमें कोई मतलब नहीं है, हमें कोई प्रयोजन नहीं है। और हम को दिखता ऊपर से यही है, लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता।

अगर सोच लीजिए कि यहाँ मैं हूँ और मुझे लगे कि इस देश में उस बात से कोई मतलब नहीं हल होने वाला, नहीं हैं वे लोग जो उस बात को समझ सकें। अब मैं आप को कहूँगा कि जिन लोगो से मेरे इस जीवन मे सम्बन्ध बन रहे हैं, उनमें से मैं बहुतों को पहचानता हूँ जिनसे मेरे पिछले जीवन में सम्बन्ध थे। चालीस-पचास करोड़ के मुल्क से मुझे कोई मतलब नहीं है। मतलब दो चार सौ लोगो से है चालीस-पचास करोड़ लोगो में से। मैं मेहनत कर रहा हूँ इन दो चार सौ लोगों को अपने पास ले आऊँ इसके लिए। और कल मुझे ऐसा लगे कि मुल्क कम्युनिस्टों के हाथ में जाता है या ऐसे लोगो के हाथ में जाता है जो जड़ काट देंगे, तो मैं दो चार सौ लोगो को लेकर कहीं

भी भाग जाना पसद करूँगा। आप मेरा मतलब समझ रहे है न ? मैं उन दो चार सौ लोगो को लेकर भाग जाना पसंद करूँगा। पचास करोड से, मुझे कोई प्रयोजन ही नही। मैं उन दो चार सौ लोगो को लेकर भाग जाऊँगा कही भी जंगल मे। दुनिया को यही लगेगा कि यह आदमी भाग गया, कुछ लडा नही, वक्त पर काम नही आया। लेकिन मैं जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए।

वह दलाई लामा थोडे से लोगो को लेकर भाग आया है और उन लोगो में से थोडे से कीमती लोगो को बचा लाया है, जो आगे शाखाएँ सिद्ध हो सकें। और हो सकता है, दो सौ वर्ष बाद, एक सौ वर्ष बाद, पचास वर्ष बाद, तिब्बत की हवाएँ ठीक हो जाएँ और दलाई लामा जो बचा ले वह वापस तिब्बत मे आरोपित हो सके। इसकी आशा मे लगा हुआ है। सारी आशा और आकाक्षा है, जिसके पीछे इतना कष्ट झेलता है कोई। वह आशा और आकाक्षा यह है कि चीज बच जाए और अगर पचास साल बाद, या सौ साल बाद, क्योंकि जिन्दगी एक सी थोड़ी चलती रहती हैं, पचास सौ साल में सारी चीजे बदल जाएँगी तो तिब्बत में वापस लौट आया जा सकता है। वे चीजें फिर वापस तिब्बत में पहुँच सकती हैं। लेकिन वे सत्य हमें दिखाई नही पडते हैं। वह सम्पदा हमारी आँखो की सम्पदा नही है। वे सारे बहुमूल्य ग्रन्थ अपने साथ ले आया है जो सिर्फ तिब्बत में ही सुरक्षित रहे हैं। संस्कृत मे नष्ट हो गए हैं। अब दलाई की सम्पदा है। और उनको किसी भी हालत मे बचाना जरूरी है। बौद्धो के सारे सूत्र ग्रन्थ हिन्दुस्तान में नष्ट किए गए। जो लोग यहाँ से भाग गए ग्रन्थो को लेकर वे ग्रन्थ आज चीनी में, तिब्बती मे, वर्मी में सुरक्षित है। और वे फिर वापस लौटाए जा सकते है। अब ऐसे-ऐसे अद्भुत ग्रन्थ हमने खो दिए जिनका कोई हिसाब नही। हमने ही इनको जला डाला। उस दिन तो ऐसा ही लगा होगा कि बोधिधर्म चीन क्यो जा रहा है ? भागता है जिन्दगी से। लेकिन बोधिधर्म ने ध्यान की जो मूल शाखा थी बुद्ध की उसको नष्ट नहीं होने दिया। उस एक आदमी पर निर्भर था वह मामला सब। वह एक आदमी मर जाए रास्ते मे तो इतनी बडी सम्पदा नष्ट होती थी कि जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल था।

(बुद्ध के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना हो चुकी है। एक दिन सुबह बुद्ध एक फूल लेकर आए। ऐसा कभी नहीं होता है। किसी ने रास्ते में एक फूल दे दिया है, वह उसको लेकर मच पर बैठ गए है। वह चुप बैठे हैं; बडी देर हो गई है। फिर भिक्षु राह देखते-देखते थक गए हैं कि वह बोलें। फिर बेचैनी

सुन्न हो गई है कि यह बुद्ध क्या करते हैं, लोग देखते रहे हैं। फिर वह हँसने लगे हैं। उनकी हँसी सुन कर एक महाकाश्यप नाम का भिक्षु ज़ोर से हँसा है। यह आदमी कभी बोला नहीं था इसके पहले। यह चुप ही रहता था। यह कभी पहचाना भी नहीं था। यह ज़ोर से हँसा है। बुद्ध ने उसे बुलाया और उसके हाथ में वह फूल दे दिया। और भिक्षुओं से कहा 'जो मैं बोल कर दे सकता था वह मैंने तुम्हें दिया, जो मैं बोल कर नहीं दे सकता, वह मैं महाकाश्यप को देता हूँ। कोई बात ट्रांसफर की गई जो दिखाई नहीं पड़ती। बुद्ध ने कहा जो मैं नहीं दे सकता था शब्द से, वह मैं महाकाश्यप को दिए देता हूँ।'

हजारों साल से यह पूछा जाता रहा है कि महाकाश्यप को दिया क्या? कौन सी चीज ट्रांसफर (हस्तांतरित) की गई था? लेकिन अगर शब्द में बुद्ध कह सकते तो खुद ही कह दिए होते। अब कौन कहे क्या हुआ? महाकाश्यप बुद्ध की आन्तरिक सम्पदा का, एसोटेरिक सम्पदा का अधिकारी बना। और महाकाश्यप का कोई नाम नहीं होगा क्योंकि उसने कोई किताब नहीं लिखी, महाकाश्यप का बौद्ध ग्रन्थों में नाम खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि उसके नाम का कोई कार्य नहीं है। लेकिन यह अद्भुत घटना है और महाकाश्यप के पास जो था, वह खोज-खोजकर किन्हीं व्यक्तियों को देना रहा। वह मामला देने का था, समझने का नहीं था। महाकाश्यप की परम्परा में एक भिक्षु था बोधिधर्म। वह हिन्दुस्तान से भागा क्योंकि हिन्दुस्तान में कोई आदमी उसे नहीं मिला जिसको ट्रांसफर कर दे जो उसके पास था। वह भागा और चीन में एक आदमी को ट्रांसफर किया। तो चीन में वह परम्परा कुछ पीढ़ियों तक चली अन्ततः उसको जापान ट्रांसफर करना पड़ा क्योंकि कोई आदमी चीन में उपलब्ध नहीं हुआ। अब वह जापान में जिन्दा है। वे जो झेन हैं महाकाश्यप पहला गुरु है उनका। अब वह जापान में है। सुजूकी उसका आखिरी गुरु है अभी। लेकिन अब ऐसा डर हो गया है कि उसे कोई जापान में भी ले सकता है या नहीं। तो सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप और अमेरिका में मेहनत कर रहा है, किसी को ट्रांसफर करने के लिए। ग्राहक मन (रिसेप्टिव माइन्ड) चाहिए न! जापान में आशा नहीं बचती है क्योंकि अब जापान एकदम भौतिकवादी हो गया है। सारी चेतना जड़ता से भर गई है। एक तरफ विकास होता है, दूसरी तरफ पतन होता है कई बार। अब जापान एकदम आधुनिक है, अत्याधुनिक, तो किसको वह दिया जाए? अब वह बूढ़ा आदमी, हद से बूढ़ा आदमी सुजूकी पूरी जिन्दगी से यूरोप में भटक रहा है। लेकिन दो-तीन आदमी

उसको मिल गए हैं। एक फ्रांस में ह्यूबर्ट बेनॉएट। एक अमेरिका में एलन वॉट। उसने उनको दे दिया है। अब उसका छुटकारा हो गया है। अब वे जानेंगे, समझेंगे। महाकाश्यप के पास जो था वह ह्यूबर्ट बेनॉएट के पास है, एलन वॉट के पास है।

कुछ चीजे इतनी गहरी है कि उनको ग्रहण करने के लिए आदमी चाहिए न। पर वह सब हमें दिखाई पडता नही। वह सब कैसे चलता है, कैसे जाता है, हमें दिखाई नही पडता है। और जिसके पास है वह जानता है उसकी तकलीफ को कि क्या करे। उसको कैसे पहुंचा दे कि वह बच जाए; मैं तो मर जाऊ लेकिन कुछ मेरे पास है, वह बच जाए। वह मुझसे ज्यादा कीमती है। वह बचना चाहिए। वही कही किसी के काम आता रहेगा पीढियो तक। इसलिए उसे ऐसा मत लें। ऐसा नही है मामला।

प्रश्न . मैथुन एक अनुभूति है। जब मूर्च्छा होती है अनुभूति पैदा होती है। जब साक्षी होती है तब मूर्च्छा हो ही नहीं सकती। जब अनुभूति हो ही नहीं सकती तब मैथुन कैसे हो सकता है ?

उत्तर : साधारणत. ठीक कह रहे हो। लेकिन कोई भी क्रिया दो तरह से हो सकती है या तो उस क्रिया मे डूबो या उस क्रिया से बाहर खडे रह जाओ। जब डूबोगे तुम उस क्रिया मे तब तुम मूर्च्छित हो जाओगे। जब तुम क्रिया के बाहर खडे रहोगे तब तुम साक्षी रहोगे। पहली हालत में मैथुन तुम्हारी जरूरत होगी, दूसरी हालत में और तरह की जरूरत हो सकती है और बहुत तरह की जरूरत है। जैसे मैंने अभी कहा कि ज्ञान के ट्रांसफर करने की बात है। अब यह तुम हैरान होगे कि कुछ लोग इस स्थिति में पहुँच जाएँ जहां मैथुन बिल्कुल अनावश्यक हो गया है, फिर भी जिस शरीर की सम्भावना उनके पास हो, उसको वे ट्रांसफर करना चाहेंगे। वे उस शाखा को भी तोडना नही चाहेंगे। वह शाखा भी कीमत की है। जैसे—बुद्ध जैसा व्यक्ति, या महावीर जैसा व्यक्ति—एक आत्मा को पाया है लेकिन एक शरीर भी चाहिए जो उतनी कीमती आत्मा को पकडता हो। वैसे व्यक्ति यह भी न चाहें कि वैसा शरीर न रहे क्योकि महावीर तक आते-आते जो वीर्य अणु विकसित हुआ है, वह साधारण नही है। आत्मा असाधारण है सो तो है ही। लेकिन जो वीर्य अणु महावीर तक आते-आते विकसित हुआ है वह भी साधारण नहीं है। वे उसको भी ट्रांसफर करना चाहेंगे।

मैथुन उसका रस नहीं है। मैथुन एक भोजन, स्नान, सोना, उठना या बैठना जैसी एक बाह्य जरूरत की चीज है जो उपयोगी हो सकती है बल्कि हो सकता है कि हजार दो हजार वर्ष बाद जबकि हमारा ज्ञान प्रजननविज्ञान (जेनेटिक्स) की ओर बढ़ जाएगा तो शायद हम नाराज हों जीसस पर कि वह वीर्य अणु की लम्बी यात्रा जो जीसस पर आकर इस भाँति फलीभूत हुई, वह जारी क्यों नहीं रखी। हम नाराज हो सकते हैं क्योंकि वह दुबारा सम्भव नहीं है। वह लाखों करोड़ों वर्षों की यात्रा के बाद उस तरह का वीर्य अणु, वह विशिष्ट वीर्य अणु, जीसस के शरीर में है। और जीसस के शरीर के साथ खो जाती है वह धारा। मेरा मतलब समझे न तुम? यानी यह हो सकता है—अभी तो सम्भव नहीं था पहले; लेकिन आज से हजार साल बाद, बल्कि पाँच सौ साल बाद, बल्कि शायद पचास साल बाद यह सम्भव हो जाएगा कि बहुत महत्वपूर्ण व्यक्तियों के वीर्य अणु को हम सुरक्षित रख सकेंगे। आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक के वीर्य अणु को सुरक्षित रखने की जरूरत है क्योंकि यह सम्भावना मुश्किल से फलीभूत होती है। अगर आइंस्टीन जैसी स्त्री उपलब्ध हो जाए, आइंस्टीन के मरने के दो सौ साल बाद तो वीर्य अणु सुरक्षित रह सकता है। तो उस स्त्री के अणु से, इस वीर्य अणु के संयोग से जो व्यक्ति पैदा किया जा सके वह ऐसा अनूठा होगा जैसा आइंस्टीन भी नहीं था।

जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे हम श्रेष्ठ व्यक्तियों के वीर्य अणुओं को नष्ट नहीं होने देंगे। उनको हम बचा कर रखेंगे। उस वक्त तो कोई उपाय नहीं था। अब तो उपाय है। अब तो मैथुन अनिवार्य नहीं है। वीर्य अणु सुरक्षित किया जा सकता है, बिना मैथुन के वीर्य अणु सक्रिय हो सकता है और उससे सन्तति हो सकती है लेकिन उस वक्त यह उपाय नहीं था। तो मेरा मानना है कि यह भी ध्यान में हो सकता है। बुद्ध ने भी एक बेटे को जन्म दिया था। महावीर की भी एक बेटी थी। समझे आप? मैं यह कह रहा हूँ कि मैथुन में जब रस है तब आप डूबते हैं, जब रस नहीं है तब कोई बात नहीं है। तब वह बिलकुल एक यान्त्रिक क्रिया है।

प्रश्न : यह बायोलोजिकल मामला कैसे हो सकता है? मूर्च्छित होने से पीछे अनुभूति होती है। बिना अनुभूति के मामला बायोलोजिकल कैसे हो सकता है?

उत्तर : अनुभूति वगैरह कुछ नहीं होती आपको। जो होना है कुल इतना होना है कि आपके चित्त का तनाव शरीर से बाहर निकल जाने से मुक्त हो

जाता है। और कुछ नहीं होता आपको। उस तनावमुक्ति को आप बड़ी अनुभूति समझ लेते है। अनुभूति वगैरह कुछ नही होती। जो तनाव इकट्ठा हो जाता है वह जब वीर्य सख्ती से बाहर निकल जाता है, मुक्त हो जाता है। अनुभूति क्या खाक होती है आपको ? अनुभूति हुई क्या है कभी ? अनुभूति हो सकती है लेकिन उसके उपाय दूसरे हैं। वह मामला फिर सेक्स का नही है। बायोलोजिकली वह सिर्फ आपका तनाव सिर्फ दूर कर देता है। इसलिए बहुत अधिक तनावमुक्त लोगो के लिए उसकी जरूरत भी नही रह जाती। लेकिन बहुत तनावयुक्त लोगो के लिए उसकी जरूरत बढ जाती है। जितना तनाव बढता है उतना सेक्स बढ़ता है।

पश्चिम में जो इतनी कामुकता है उसका कोई और कारण नही। चित्त तनावग्रस्त हो गया है और तनाव को शिथिल करने का एक ही उपाय है। वह यह कि शरीर से शक्ति बाहर हो जाए। और कुछ नही इससे ज्यादा। हम जिसको कहते हैं 'घनीभूत शक्ति' वह एकदम से बाहर हो जाती है, सारे शरीर के स्नायु शिथिल हो जाते हैं। उतनी शक्ति के निकलने पर शिथिल होना ही पड़ेगा। और यह जो शिथिलता आपको मालूम पड़ती है, आप समझते है कि यह आपको अनुभव हो रहा है सेक्स का। यह सिर्फ तनाव दूर होने का अनुभव है। दो दिन बाद आप फिर तनाव मे हो जाते है। दस दिन बाद फिर आप तनाव में हो जाते हैं। फिर मुक्त होने की जरूरत पड जाती है जैसे कि आपके हीटर में, कुकर में वाल्व लगा हुआ है। ज्यादा गर्मी होगी तो उस वाल्व से निकल जाती है। वैसे वाल्व है सिर्फ, और प्राणि-विज्ञान उसका उपयोग करता है। अनुभूति कुछ भी नही होती। लेकिन जब तनाव घट जाता है तो फिर जरूरत नही रहती। जो लोग शिथिल शान्ति मे जीते हैं उनके लिए उतनी ही अनावश्यक हो जाती है वह बात। उस स्थिति में भी उन्हें दूसरे कारण प्रभावित कर सकते हैं और वे मैथुन को भी एक क्रिया की तरह उपयोग कर सकते हैं। वह जो मैं कह रहा हू उनके लिए कोई अनुभव वगैरह की बात नही है।

प्रश्न : एक जो बात आपने आज कही वह शायद ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। और बहुत दिनो से, जो भी जैन धर्म पर सोचते हैं, उनके मन मे चक्कर काटती है। आपने कहा महावीर वीतराग है न रागी है न वैरागी। लोग इसे दूसरी तरह कहते हैं ' वह राग-द्वेष दोनों से मुक्त हैं। पर प्रश्न यह है कि मान लीजिए स्त्री का आकर्षण—वह भी व्यर्थ है, स्त्री का विकर्षण—यह भी व्यर्थ है। समाज की व्यवस्था के लिए, आपकी वीतरागता का उपदेश

सामान्य स्तर पर उतरता जा सके, इसकी बहुत कम आशा है। यानी चालीस करोड़ के चालीस करोड़ लोग वीतराग हो जाएंगे, इसकी आशा बहुत कम है। पर जो समाज का नियंत्रण है उसके लिए संयम, चाहे वह ऊपरी भी क्यों न हो, आवश्यक सा प्रतीत होता है। महावीर ने या आपने स्वयं इसके लिए क्या सोचा है? समाज की व्यवस्था के लिए वह नियंत्रण जो ऊपरी है, और आध्यात्म की दृष्टि से व्यर्थ सा भी है, समाज की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। उस नियंत्रण के बारे में क्या महावीर कहना चाहते थे और क्या आप कहना चाहेंगे?

उत्तर : पहली बात यह कि वीतरागता करोड़ों लोगों के लिए कठिन तो है, पर असम्भव नहीं। और कठिन होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि कठिन मान ली गई है। यदि हमारी धारणा ही किन्हीं चीजों को कठिन और किन्हीं को सरल बनाती है। जब मैं कहता हूँ कि कठिन है, असम्भव नहीं, तो मेरा मतलब यह है कि कठिन भी इसलिए नहीं है कि उसकी प्रक्रिया कठिन है बल्कि इसलिए कि हमारे राग और विराग की पकड़ कठिन है, तो इसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। यानी जैसे एक आदमी पहाड़ पर चढ़ रहा है और बड़ा बोझ लिए हुए है गट्ठर बांधे हुए है, पत्थर बांधे हुए है। कहता है : पहाड़ पर चढ़ना बहुत कठिन है। तो हम उससे कहें : पहाड़ पर चढ़ना उतना कठिन नहीं जितना कठिन तुम्हारा बोझ है। तुम इसे छोड़ सको तो पहाड़ पर बड़ी सरलता से चढ़ सकते हो। असली सवाल पहाड़ पर चढ़ने की कठिनाई का नहीं है जितना कि तुम बोझ बांधे हुए हो और जिसके साथ तुम नहीं चढ़ सकते। और, उसे तुम छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए कठिन हुआ जा रहा है। मेरा मतलब समझे न।

एक-एक आदमी जिस-जिस तरह से मानसिक बोझ को पकड़े हुए हैं उसकी वजह से वीतरागता कठिन हो गई है। अगर वह यह मान भी लें कि कठिन है तो भी बोझ को तो छोड़ता ही नहीं है। बल्कि बोझ को और पकड़ लेता है ताकि सिद्ध हो जाए कि बिल्कुल कठिन है वह, सरल है ही नहीं मामला। सच्चाई में तो यह है हालत कि राग और विराग बहुत ही कठिन हैं, असम्भव हैं। न तुम राग से कुछ उपलब्ध कर पाते हो कभी भी, न विराग से उपलब्ध कर पाते हो। सिर्फ राग से तुम विराग को प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो और विराग से राग को प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो। यानी राग की उपलब्धि ही क्या है? सिर्फ विराग को पकड़ा देना और विराग की उपलब्धि है राग

को पकड़ा देना। और यह एक अनन्त वृत्त है। इसकी उपलब्धि कुछ है नही। तुम स्वयं को तो कभी उपलब्ध कर ही नही सकते दोनों हालतो में। तुम व्यक्ति ही नही बन पाते अगर राग और विराग में पड़े हुए हो तुम।

और वह जो कहते हैं कि राग और द्वेष से छूट जाना वीतरागता है, वह बडी गलत व्याख्या कर रहे हैं। वे विराग को बचा जाते हैं। राग और द्वेष से मुक्त हो जाना अगर वीतरागता का अर्थ उन्होने किया तो वे विराग को बचा जाते हैं, और वह तरकीब है बहुत शरारतपूर्ण। राग का ठीक विरोधी विराग है, द्वेष नही। द्वेष तो राग का ही हिस्सा है, विरोध नही। विरोधी तो विराग है। द्वन्द्व विराग का है राग से, द्वेष से नही। तो वे तरकीब से बनाए गए हैं। उन्होंने विरागी को बचा लिया है, विरागी और वीतरागी को सीढी बना दिया है। वे कहते हैं कि वैराग्य से वीतराग की सीढी जाती है। मैं कह रहा हूँ चाहे राग से जाओ, चाहे विराग से, वीतराग होने का फासला दोनो से बराबर है। इसे हम समझे।

दूसरी बात यह कि यह कठिन नही है, क्योकि जो स्वभाव है वह अन्ततः कठिन नहीं हो सकता, विभाग ही कठिन हो सकता है। और, जो स्वभाव इतना आनन्दपूर्ण है कि उसकी एक झलक मिलनी शुरू हो जाए तो हम कितने ही पहाड उसके लिए चढ जाते हैं। बस झलक जब तक नही मिलती तब तक कठिनाई है। और झलक राग और विराग मिलने नही देते। यह जरा सा भी हटे तो उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। जैसे आकाश में बादल घिरे हुए हैं और सूरज की किरण भी दिखाई नही पडती। जरा सा बादल सरके और किरण झाँकने, पडने लगती हैं। राग और विराग के द्वन्द्व की जरा सी टूट जाए खिड़की तो वीतरागता का आनन्द बहने लगता है। और वह बहने लगे तो कितनी ही यात्रा पर जाना सम्भव है, कठिन नही। लेकिन हम क्या करते है. हम राग से विराग में जाते हैं, विराग से राग में आते हैं। ये दोनो ही एक से घेरने वाले बादल हैं। इसलिए कभी सन्धि भी नही मिलती उसको जाने की। राग और विराग में डोलते हुए मनुष्यो का जो समाज है, वह नियम बनायेगा ही। क्योकि राग विराग में डोलता हुआ आदमी बहुत खतरनाक है। इसलिए नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम कौन बनायेगा ? वही राग विराग में डोलते हुए आदमी नियम बनायेंगे। राग विराग में डोलते हुए लोग खतरनाक हैं। राग विराग मे डोलते हुए नियम बनाने वाले लोग और भी खतरनाक हैं।

[illegible]

[illegible] व्यक्तियों को [illegible] हुए हैं। और [illegible]

व्यवहार की जो सारी बातचीत है, और ऐसा दो हिस्से करना, कि यह भी एक दृष्टि है और इसकी भी जरूरत है—यह सिर्फ अन्धे अपने को तृप्ति देने की कोशिश कर रहे है। यानी अंधा यह मानने को भी राजी नही कि मैं अन्धा हूँ। वह कहता है कि मेरा अन्धा होना भी बहुत जरूरी है। आँख की तरफ जाने के लिए मेरा अन्धा होने की बडी आवश्यकता है। वह यह कह रहा है। कोई दृष्टि नही हैं दो। दृष्टि तो एक ही है। व्यवहार-दृष्टि सिर्फ समझौता है और अन्धो के विचार हैं अपने। अन्धों के भी विचार होते हैं। आख मिल गई वहा से दर्शन शुरू होता है, विचार खत्म होता है। वहाँ कोई सोचता नही, वहा देखता है।

और ये जो दो टुकडे हुए इन दो टुकडों ने बडा नुकसान किया है। क्योकि वह व्यवहार दृष्टि वाला कहता है कि यह भी जरूरी है। पहले तो इसको पूरा करना पडेगा। फिर, इसके बाद दूसरी बात उठेगी—साधते-साधते निश्चय दृष्टि उपलब्ध होगी, इससे ज्यादा गलत बात नही हो सकती। वास्तव में बात यह है कि व्यवहार दृष्टि छोडते-छोडते निश्चय-दृष्टि उपलब्ध होगी। साधने का सवाल ही नही, छोडने का सवाल है। यानी अन्धे को साधते-साधते आँख मिलेगी, ऐसा नही है। अंधेपन को छोड़ते-छोडते आँख मिलेगी। व्यवहार दृष्टि छोडनी है क्योकि वह दृष्टि नहीं, दृष्टि का धोखा है। उपलब्ध तो निश्चय दृष्टि करनी है। इसलिए मैं ये दो शब्द भी लगाना पसन्द नही करता क्योकि वह' निश्चय' लगाना बेईमानी है वह तो व्यवहार के खिलाफ लगाना पडता है। इसलिए मैं कहता हूँ अंधापन छोडना है, दृष्टि उपलब्ध करनी है, निश्चय का क्या सवाल है? ऐसी भी कोई दृष्टि होती है, जो अनिश्चित हो। फिर उसको दृष्टि कहना फिजूल है। और व्यवहार की कोई दृष्टि नही होती। जैसे कि एक अन्धा आदमी है। वह अपनी लकडी टेक-टेक कर रास्ता बना लेता है, दरवाजा खोज लेता है और कहता है कि मुझे लकडी की बडी जरूरत है। ठीक ही कहता है क्योकि वह अन्धा है। लेकिन उसे ध्यान रखना चाहिए। अगर वह कहे कि आँख मिल जाए तो भी लकडी की जरूरत है तब हम उससे कहेंगे कि तुम फिर पागल हो। तुम्हें पता ही नही कि आँख मिलने से क्या होता है। व्यवहार दृष्टि हमारी स्थिति है अन्धेपन का। निश्चय दृष्टि हमारी सम्भावना है आँख की। हमे व्यवहार दृष्टि को तोडना है ताकि निश्चय दृष्टि यानी सम्यक् दृष्टि हमें उपलब्ध हो सके।

५

प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक १९ सितम्बर, १९६८

हो सकती। लेकिन महावीर जैसी चेतना कुछ भी छोड़ती नहीं है क्योंकि उस तल पर कुछ भी पकड़ने का भाव नहीं रह जाता है। जो पकड़ते हैं, वे छोड भी सकते हैं। जो पकड़ते ही नही, जिनकी कोई पकड नही है, उनके छोडने का कोई सवाल ही नही।

महावीर ने कुछ भी नही त्यागा है, जो व्यर्थ है उसके बीच से वह आगे बढ गए हैं। लेकिन हम सबको दिखाई पडेगा कि बहुत बडा त्याग हुआ है। और, ऐसा दिखाई पडने में हम पकडने वाले चित्त के परिग्रही लोग हैं, यही सिद्ध होगा, और कुछ सिद्ध न होगा। महावीर त्यागी थे, ऐसा तो नही है। लेकिन महावीर को जिन लोगो ने देखा वह भोगी थे—इतना सुनिश्चित है। भोगी के मन में त्याग का बडा मूल्य है। उल्टी चीजो का ही मूल्य होता है। बीमार आदमी के मन में स्वास्थ्य का बडा मूल्य है। स्वस्थ आदमी को पता भी नही चलता। बुद्धिहीन के मन में बुद्धिमत्ता मूल्यवान् है, लेकिन बुद्धिमान् को कभी पता भी नही चलता। जो हमारे पास नही है उसका ही हमें बोध होता है। और जो हम पकडना चाहते हैं, उसे कोई दूसरा छोडता हो तो भी हम आश्चर्य से चकित रह जाते हैं। लेकिन यहाँ मैं महावीर के भीतर से चीजों को कहना चाहता हूँ। महावीर कुछ भी नही छोड गए हैं। और, जो व्यक्ति कुछ छोडता है, छोडने के बाद उसके पीछे छोडने की पकड शेष रह जाती है। जैसे एक आदमी लाख रुपये छोड दे। लाख रुपये छोड देगा; लेकिन लाख रुपये मैंने छोडे, यह पकड़ पीछे शेष रह जाएगी। यानी भोगी चित्त त्याग को भी भोग का ही उपकरण बनाता है। भोगी चित्त धन को ही नही पकडता, त्याग को भी पकड लेता है। असल सवाल तो पकडने वाले चित्त का है। वह अगर सब कुछ त्याग कर दे तो वह इस सबका हिसाब-किताब रख लेगा अपने मन में कि क्या-क्या मैंने त्यागा है, कितना मैंने त्यागा है। ऐसे त्याग का कोई मूल्य नही। यह भोग का ही दूसरा रूप है, परिग्रह का ही दूसरा रूप है। लेकिन एक और तरह का त्याग है जहाँ चीजें छूट जाती हैं क्योंकि चीजो को पकडने से हमारे भीतर की कोई तृप्ति नहीं होती, बल्कि चीजों को पकडने से हमारे भीतर का विकास अवरुद्ध होता है।

हम चीजे पकडते क्यो है? चीजो को पकडने का कारण क्या है? हम चीजो को पकडते हैं क्योकि चीजो के बिना एक असुरक्षा मालूम पड़ती है। अगर मेरा कोई भी मकान नहीं है तो मैं असुरक्षित हूँ, किसी दिन सडक पर

खाते-वही हैं और धर्म भी सिक्का है जो कही और चलता है। और पुण्य भी मोहरें है जो कही काम पडती हैं। और वह उनको पकडेगा। इसलिए ध्यान देने की यह वात है कि जो व्यक्ति पकडने के चित्त से भरा है, वह अगर त्याग करेगा तो वह भी नही होने वाला है। इसलिए सवाल त्याग करने का नही, सवाल पकडने वाले चित्त की वस्तुस्थिति को समझ लेने का है। अगर हमारी समझ में आ गया कि यह है चित्त पकडने वाला और पकडना व्यर्थ हो गया तो पकड विलीन हो जाएगी, त्याग नही होगा। पकड विलीन हो जाएगी और चीजे ऐसी दूर हो जाएँगी, जैसे वह दूर हैं ही।

कौन सा मकान किसका है ? एक पागलपन तो यह है कि पहले मैं यह मानूँ कि यह मकान मेरा है। और फिर दूसरा पागलपन यह है कि मैं इसका त्याग करूँ। लेकिन यह ध्यान रहे कि अगर यह मकान मेरा नही है तो मैं त्याग करने वाला कौन हूँ ? त्याग में भी मेरा स्वामित्व शेष है। मैं कहता हूँ यह मकान मैं त्याग करता हूँ। मैं ही त्याग करता हू न ? और क्या त्याग मैं कर सकता हूँ उसका जो मेरा ही नही ? तो त्याग करने वाला यह मानकर ही चलता है कि मकान मेरा है। और वस्तुत जो त्याग की घटना घटती है वह इस सत्य से घटती है कि किसी को पता चलता है कि यह मकान मेरा है ही नही। तो त्याग कैसा ? मेरा नहीं है, यह बोध पर्याप्त है, कुछ छोडना नहीं पड़ता। जो मेरा नही है, वह छूट गया। और चीजे थोडे ही हमें वांधे हुई है। चीजें और हमारे वीच में 'मेरे' का एक भाव है, जो बांधे हुए है।

एक मकान है जिसमें आग लग गई है। तव घर का मालिक रो रहा है, चिल्ला रहा है और इसी भीड़ में से एक कहता है आप क्यो परेशान हो रहे है ? आपको पता है कि आपके वेटे ने मकान वेच दिया है और पैसे मिल गए हैं। वेटे ने खवर नही दी आपको। और वह आदमी एकदम हँसने लगा और उसने कहा . ऐसा है क्या ? अव भी वह मकान जल रहा है, अव भी आदमी वही है, सव भीड भी वही है। लेकिन अव वह उसका मकान नही रह गया है। मकान वेचा जा चुका है। अव वह मेरा नहीं। वह हंस रहा है और वह सव ऐसी हल्की वाते कर रहा है जैसी कि और सारे लोग कर रहे हैं कि वहुत बुरा हो गया कि मकान जल गया है। लेकिन तभी उसका वेटा भागा हुआ आता है। वह कहता है, वह आदमी वदल गया है। रुपए अभी मिले नहीं हैं। सिर्फ वेचा था। असल में वह आदमी वदल गया है और वह आदमी फिर चिल्लाने लगा है कि मैं मर गया, मैं लुट गया। अव क्या होगा ? एक क्षण मे 'मेरा' फिर जुड गया

है। मकान मेरा ही है और जल रहा है तो मकान के जलने की पीडा है या 'मेरे' के जलने की। और अगर 'मेरे' के जलने की पीडा है, तो जो आदमी कहता है 'मेरा मकान', उसकी भी पकड है, जो आदमी कहता है 'मेरा मकान' मैं त्याग करता हूँ, उसकी भी पकड है। लेकिन जो आदमी कहता है 'कौन सा मकान? मेरा है कोई मकान? मुझे पता नही चलता मेरा कौन सा मकान है? मेरा कोई मकान ही नहीं है, मैं बिलकुल बिना मकान के हूँ' अगृही है वह। अगृही का मतलब यही है। अगृही का मतलब यह नही कि जिसने घर छोड दिया है। अगृही का मतलब यह है जिसने पाया कि कोई घर है ही नहीं। इसे ठीक से समझ लेना।

सन्यासी को हम कहते हैं अगृही, गृहस्थ नही। लेकिन कौन है अगृही? जिसने घर छोड दिया। मगर उसका घर बाकी है, वह चाहे पहाडो में, चाहे हिमालय में चला जाए, जिस घर को छोडा, वह अभी उसका घर है। अगृही का मतलब है जिसने पाया कि घर तो कही है ही नहीं, कोई घर ऐसा नही है। सन्यासी का मतलब यह नही जिसने पत्नी का त्याग किया। संन्यासी का मतलब है कि जिसने पाया कि पत्नी कहाँ है? सन्यासी का मतलब यह नही कि जिसने साथी छोड दिये हैं। संन्यासी का मतलब है जिसने पाया कि साथी कहाँ हैं? खोजा और पाया कि साथी तो कहीं भी नहीं है कोई, बिलकुल अकेला है। इन दोनों बातों मे बुनियादी भेद है। पहले में हम कुछ पकड कर छोडने की कोशिश कर रहे हैं। दूसरे में हम पाते हैं कि पकड का उपाय ही नहीं है, किसको पकडें, कहाँ पकडने जाएँ।

तो महावीर कुछ त्याग नही रहे हैं। जो उनका नही है, वह दिखाई पड गया है। इसलिए कोई पकड नही है। इसलिए यह कहना बिलकुल व्यर्थ है कि वह सब छोड कर जा रहे हैं। वह जानकर जा रहे हैं कि कुछ भी उनका नही है। और अगर हम इस बात को समझ लें तो महावीर के बाबत समस्त त्याग के बाबत हमारी दृष्टि ही दूसरी हो जाएगी। तब हम लोगों को यह न समझाएँगे कि तुम छोडो, तुम त्याग करो। हम लोगों को समझाएँगे कि तुम देखो, तुम्हारा क्या है? तुम्हारा है कुछ?

एक सम्राट् का दरवाजा है। उसके द्वार पर एक संन्यासी खड़ा है और शोर गुल मचा रहा है। और पहरेदार से कहता है : मुझे भीतर जाने दो, मैं इस

सराय मे ठहरना चाहता हू । और पहरेदार कहता है : तुम पागल हो गए हो, सन्यासी हो कि पागल हो । यह सराय नही, सम्राट् का महल है, उनका निवास-स्थान है । तो वह कहता है कि फिर मुझे उसी सम्राट् से बात करनी है । क्योकि हम तो सराय समझ कर यहाँ आए हैं और ठहरना चाहते है । वह धक्का देकर भी चला जाता है । सम्राट् भी आवाज सुन रहा है, सब बातें सुन रहा है और उससे कहता है . तुम कैसे आदमी हो, यह मेरा निजी महल है । मेरा निवास-स्थान है । यह सराय नही, सराय दूसरी जगह है । वह सन्यासी कहता है : मैं समझा कि पहरेदार ही नासमझ है, आप भी नासमझ हैं । पहरेदार क्षमा के योग्य है । आखिर वह पहरेदार ही है । आपको भी यही ख्याल है कि यह आपका निवास-स्थान है, यह आपका घर है । सम्राट् ने कहा ' ख्याल ? यह मेरा है । ख्याल नही है यह मेरा । यह मेरा है ही । सन्यासी ने कहा बडी मुश्किल मे पड गया मैं । कुछ दो बार दस साल पहले मैं आया था । तब भी झंझट हो गई थी । और मैंने कहा था कि इस सराय में ठहर जाऊँ । तब तुम्हारी जगह एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था और वह कहता था ' यह मेरा ही महल है । यह मकान मेरा है । तो उस इब्राहिम ने कहा : वह मेरे पिता थे । उनका अब देहावसान हो गया । उस फकीर ने कहा मैं उनके पहले भी आया था, तब एक और बूढे को पाया था । वह भी इसी जिद् में था कि यह मेरा महल है । जब यहाँ कई बार मकान के मालिक बदल जाते हैं तो इसको सराय कहना चाहिए या निवास ? और मैं फिर आऊँगा कभी । पक्का है कि तुम मिलोगे ? वायदा करते हो ? तुम न मिले तो फिर बडी दिक्कत हो जाएगी । फिर कोई मिलेगा कहेगा मेरा है । तो फिर मुझे ठहर ही जाने दो । यह सराय ही है, किसी का नही है । जैसे तुम ठहरे हो वैसे मैं भी ठहर सकता हूँ । इब्राहीम उठा सिंहासन से, उस फकीर के पैर छुए और कहा, तुम ठहरो लेकिन अब मैं जाता हूँ । उसने कहा कहाँ जाते हो ? सम्राट् ने कहा कि मैं तो इस भ्रम मे ठहरा हुआ था कि यह मेरा मकान है । अगर सराय हो गया तो बात खत्म हो गई । जो मैं ठहरा था इस वजह से कि यह मेरा है महल । अगर तुम कहते हो कि यह सराय है तो ठीक है, तुम ठहरो । मैं जाता हूँ । और वह सम्राट् छोडकर चला गया । उस सम्राट् ने त्याग किया क्या ? नही । मकान नही था, सराय थी, यह दिखाई पड गया । बात खत्म हो गई । सराय का कोई त्याग करता है ? नही, सराय मे ठहरता है और विदा हो जाता है ।

ऐसा बोध महावीर जन्म के साथ लेकर पैदा हुए थे। ऐसा बोध हम चाहें तो हमें भी हो सकता है। और ऐसे बोध के लिए जो जरूरी है, वह सम्पत्ति का त्याग नहीं, सम्पत्ति के सत्य का अनुभव है। सम्पत्ति का त्याग, हो सकता है, उतना ही अज्ञानपूर्ण हो जितना सम्पत्ति का संग्रह था। इसलिए प्रश्न संग्रह और त्याग का नहीं, प्रश्न सत्य के अनुभव का है।

सम्पत्ति क्या है ? है कुछ मेरा, यह बोध त्याग बनता है, ऐसा त्याग किया नहीं जाता। इसलिए ऐसे त्याग के पीछे कर्त्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता और जिस कर्म के पीछे कर्त्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता उस कर्म से कोई बन्धन पैदा नहीं होता। और जिस कर्म से कर्त्ता का भाव पैदा होता है वह कर्म बन्धन का कारण हो जाता है। यानी कर्म कभी नहीं बांधता। कर्म के साथ कर्त्ता का भाव जुड़ा हो तो वह बांधता है। और कर्त्ता का जो भाव है वही हमारा कारागृह, अहंकार है। महावीर से अगर कोई कहे कि यह तुमने त्याग किया तो वह हंसेंगे, कहेंगे किसका त्याग ? जो मेरा नहीं था, वह नहीं था। यह मैंने जान लिया। त्याग कैसे करूँ ? त्याग दोहरी भूल है—भोग की दोहरी भूल। भोग पीछा नहीं छोड़ रहा है।

तो पहली बात यह समझ लें कि महावीर जैसे व्यक्ति को त्यागी समझने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। सिर्फ अज्ञानी त्यागी हो सकते हैं, ज्ञानी कभी त्यागी नहीं होते। ज्ञानी इसलिए त्यागी नहीं होते कि ज्ञान ही त्याग है। उसे त्यागी होना ही नहीं पड़ता। उसके लिए कोई प्रयास, कोई श्रम नहीं उठाना पड़ता। अज्ञानी को त्याग करना पड़ता है, श्रम लेना पड़ता है, संकल्प बांधना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। अज्ञानी के लिए त्याग एक कर्म है। और इसलिए अज्ञानी का जब त्याग होता है तो अज्ञानी 'त्याग किया' ऐसे कर्त्ता का निर्माण कर लेता है। यह कर्त्ता उसका पीछा करता है। और यही कर्त्ता गहरे में हमारा परिग्रह है। सम्पत्ति हमारा परिग्रह नहीं है। जो कहता है 'मैंने किया' वही हमारा परिग्रह है।

कभी आपने सोचा ? रात आप सपना देखते हैं कि नींद में आप एक आदमी की हत्या कर रहे हैं। सुबह आप उठे और जागकर पाया कि आपने सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है। फिर क्या आप ऐसा कहते हैं कि यह हत्या मैंने की ? नहीं, ऐसा नहीं कहते, इसलिए कोई पश्चात्ताप भी नहीं। आप कहते हैं सपना था। एक आदमी की हत्या की है रात और सुबह जाग गए हैं।

क्योंकि स्वप्न में आप दृष्टा रहे हैं, कर्त्ता नही हो पाए। सुबह आप जानते हैं सपना देखा था। इसलिए रात हत्या कर दी है, तब से सुबह से हाथ पैर नही धो रहे हैं, पछता नही रहे हैं और घबरा भी नही रहे हैं कि पाप हो गया। आप जानते हैं कि देखा था सपना ही। हो सकता है सपने में आप सन्यासी हो गए हो, सब त्याग कर दिया हो लेकिन सुबह आप हँसते हैं क्योंकि आप द्रष्टा हो गए हैं। हो सकता है सपने में जब सो रहे हों तो हत्या करके भागे हो, छाती धड़क गई हो, पसीना छूट गया हो, छिप गए हों कि अब फँसे; अब फँसे। और हो सकता है कि सपने में जब त्याग किया हो तो अकड़ कर चले हो, फूल-मालाएँ पहनी हो रास्ते पर जुलूस निकले हो, स्वागत-सत्कार हुआ हो और अकड़ कर समझा हो कि हाँ, मैंने सब कुछ त्याग कर दिया लेकिन सुबह जाग कर आप कहते हैं कि सपना था, मतलब कि मैं द्रष्टा था।

अब इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिस चीज के हम द्रष्टा हो जाते हैं, वह सपना हो जाती है। और जिस चीज के हम कर्ता हो जाते हैं वह सत्य हो जाती है चाहे वह सपना ही हो। जब हम कर्त्ता हो जाते हैं सपने में तो वह सत्य हो जाता है सपना। और चाहे जीवन सत्य ही क्यों न हो जब हम द्रष्टा हो जाते हैं तो वह सपना हो जाता है। यानी सपने को अगर सत्य बनाना हो तो प्रक्रिया यह है कि आप द्रष्टा भर मत हो, आप कर्त्ता हों तब सपना बिल्कुल सत्य हो जाएगा। और ठीक इससे उल्टी प्रक्रिया यह है कि आप जिसको सत्य कहते हैं, उसके द्रष्टा होना, कर्ता भर मत बनना, तब सत्य एकदम सपना हो जाएगा।

तो महावीर छोड़ कर इसलिए नही जा रहे हैं कि सपना था और छोड़ना है और छोड़ रहे हैं। नही, एक सपना टूट गया है, और द्रष्टा हो गए हैं और बाहर हो गए हैं। अब कोई लौट कर उनसे कहे कि कितनी सम्पदा थी जो छोड़ी थी तो वह कहेंगे कि सपने की भी कोई सम्पदा होती है, सपने में कोई त्याग होता है। भोग भी सपना है, त्याग भी सपना है क्योंकि दोनों हालत में कर्त्ता मौजूद है। इसलिए ज्ञानी न त्यागी है, न भोगी है, सिर्फ द्रष्टा रह गया है। और इसलिए जो भी द्रष्टा रह जाए उसके जीवन से भोग और त्याग दोनों एक साथ विदा हो जाते हैं। ऐसा नही कि त्याग बच रहा है और भोग विदा हो जाता है। भोग और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू थे, वह दीख जाता है। दूसरी दृष्टि से देखें तो इसी का अर्थ ही वीतरागता हुआ। अगर मैं कर्ता नहीं हूँ तो वीतरागता फलित हो जाएगी। और अगर मैं कर्ता हूँ तो राग फलित

होगा या विराग फलित होगा, भोग होगा या त्याग होगा, दुःख होगा, या सुख होगा। द्वन्द्व में सब कुछ होगा लेकिन निर्द्वन्द्व कुछ भी नहीं हो पाएगा।

महावीर त्याग करते हैं, ऐसी धारणा है। जो उनको मानते हैं, उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे चलते हैं उन सबकी ऐसी धारणा है कि वह त्याग करते हैं, महात्यागी हैं, और मुझे लगता है इसमें वे केवल अपनी भोगवृत्ति की खबर दे रहे हैं। महावीर का उन्हें कुछ भी पता नहीं। और यह सवाल महावीर का नहीं। दुनिया में जब भी किसी व्यक्ति से त्याग हुआ है तो वैसे ही हुआ है।

मैंने सुना है एक फकीर थे। रात एक सपना देखा उन्होंने और सुबह जब उठे तब उनका एक शिष्य उनके पास से गुजरा। तब उन्होंने कहा—सुनो जरा! मैंने एक सपना देखा है। क्या तुम उसकी व्याख्या कर सकोगे? उसने कहा, ठहरिए मैं अभी व्याख्या किए देता हूँ। वह शिष्य गया और पानी का भरा हुआ घड़ा उठा लाया और कहा: जरा अपना मुँह धो डालिए। तो गुरु खूब हँसने लगे। तब एक दूसरा शिष्य गुजरा। उसने कहा: सुनो एक मैंने बहुत अद्भुत सपना देखा है। और इस नासमझ को कहा कि तुम व्याख्या करो तो यह पानी का घड़ा ले आया है और कहता है कि मुँह धो डालिए। तुम व्याख्या करोगे? उसने कहा: एक दो क्षण रुकिए। मैं अभी आया। वह एक कप में चाय ले आया और कहा अगर मुँह धो लिया हो तो थोड़ी चाय पी लीजिए। तो गुरु खूब हँसे और वह कहता है कि अगर आज यह घड़ा न लाया होता तो मैंने इसको कान पकड़ कर बाहर कर दिया होता। और अगर यह चाय लेकर न आ गया होता तो इस आश्रम में ठहरने का उपाय न था। सपने की कहाँ व्याख्या करनी होती है? सपना-सपना दिख गया, बात खत्म हो गई। सपने की कहाँ व्याख्या करनी होती है? तो ठीक ही किया। पानी ले आया। उससे हाथ, मुँह धो लिया। बात खत्म हो गई। अब क्या मामला है? अब हाथ मुँह धो डालना ही काफी है। अब और कोई व्याख्या की जरूरत नहीं है। सपने की कोई व्याख्या नहीं करनी होती। व्याख्या सदा सत्य की होती है, सपने की नहीं। सपने की क्या व्याख्या? सपने का बोध काफी है। सपने का बोध—जो जीवन हम जी रहे हैं वह एक सपने की भांति है—इस बात का बोध। फिर क्या, कुछ पकड़ना है?

मैंने सुना है एक सम्राट् का बेटा मर रहा है। वह उसकी खाट के पास बैठा है। तीन दिन, चार दिन, रात दिन बीत गए हैं। और बेटा गहरे डूबता जा रहा है। और एक ही लड़का है और बचने की कोई उम्मीद नहीं। वहीं

आशा थी बुढ़ापे की, वही भविष्य था। वह सम्राट् न सो पाता है, न जग पाता है, बेचैन है, परेशान है। और चिकित्सकों ने कह दिया है कि आज रात बेटे के बचने की कोई उम्मीद नहीं। सम्राट् उसी के पास कुर्सी रखे बैठा है। कब श्वास छूट जाए कुछ पता नहीं। जितनी देर श्वास रह जाए उतना ही अच्छा है। कई दिन का जगा है। उस रात दो बजे सम्राट् की नींद लग गई है। और उसने सपना देखा है कि उसके बारह बेटे हैं। इतने सुन्दर, इतने स्वस्थ जैसे कभी देखे नहीं थे, जैसे कभी किसी के हुए नहीं। बड़ा चक्रवर्ती सम्राट् है; सारी पृथ्वी का राजा है। अद्भुत स्फटिक के महल हैं, स्वर्ण पथ है, सुन्दर नारियाँ हैं, सुन्दर पत्नियाँ हैं। सब सुख है। कोई कमी नहीं। और तभी वह बेटा जो बीमार पड़ा है, मर गया है। राजा की पत्नी चिल्ला कर रोई है, राजा चुपचाप बैठा रह गया है। थोड़ी देर चुप रहा है, फिर हँसने लगा है, फिर रोने लगा है, फिर हँसने लगा है। उसकी पत्नी ने कहा : आपको क्या हो गया है। आप पागल तो नहीं हो गए। उसने कहा पागल ? कह नहीं सकता। पहले पागल था कि अब पागल हो गया हूँ। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। रानी ने कहा— मुश्किल की क्या बात है। बेटा मर गया है, यह बड़ी मुश्किल है। राजा ने कहा—अब यह सवाल नहीं रहा। अब मैं बड़ी दिक्कत में हूँ कि मेरे बारह बेटे मर गए, उनके लिए रोऊँ कि मेरा एक बेटा मर गया, उसके लिए रोऊँ ? मैं रोऊँ किसके लिए ? या तेरह के लिए इकट्ठा रोऊँ ? तेरह के लिए इकट्ठा रोना बड़ा मुश्किल है क्योंकि तेरह होते नहीं। वे बारह एक सपने के थे और जब मैं उस सपने में था तब यह था ही नहीं लड़का। कहाँ गया था मुझे पता नहीं। खो गया था। और जब जग गया हूँ तो यह एक ही बचा है और वे बारह खो गए हैं। और जैसे उन बारह के साथ यह एक भूल गया था, वैसे इस एक के साथ वे बारह भूल गए हैं। [illegible] है, क्या [illegible] मुश्किल में पड़ गया हूँ। रोऊँ तो किसके [illegible] १२ के [illegible] इस एक के लिए या तेरह के लिए ? [illegible] ट नहीं [illegible] किसी के लिए न रोऊँ [illegible] एक सप [illegible] छूट [illegible] बनता है। दूसरा [illegible] रा [illegible] टू जा। अब पाग [illegible]

तो [illegible] ने [illegible]
नहीं, [illegible] गर [illegible] न
गया, [illegible]

ही कहेंगे कि बेटा सत्य न रहा। निर्मोही या मोही होने के लिए भी बेटे का सत्य होना जरूरी है। अब हम इतना ही कहेंगे कि बेटा एक सपना हो गया। बात खत्म हो गई। अब यह राजा को बेटे का मोह छूट गया—ऐसा नहीं। बेटा सत्य ही न रहा। और, अगर बेटा सत्य न रहे तो क्या बाप सत्य रह जाएगा। इससे हम और थोड़ा भीतर जाएँगे तो पता चल जाएगा कि जब बेटा असत्य हो गया तो बाप की क्या सत्यता रह जाएगी। उन बारह बेटों के साथ वह बाप भी तो मर गया जो सपने में था। वह अब कहाँ है? इस बेटे के साथ इसका बाप भी मर गया वह अब कहाँ है?

अगर जीवन का एक कोना भी सपना हो जाए तो आप फिर पूरे जीवन को सपना होने से न बचा सकेंगे क्योंकि सब परस्पर सम्बन्धित हैं। अगर बेटा असत्य है तो बाप भी असत्य हो गया है। फिर सत्य क्या बचेगा? सब सम्बन्ध असत्य हो गए। अगर जीवन का एक कोना भी दिखने लगे कि सपना है तो वह सपना पूरे जीवन पर फैल जाएगा। और सपने का एक कोना दिखने लगे कि यह सत्य है तो वह सारे जीवन पर फैल जाएगा। यहाँ जिन्दगी के जो अनुभव हैं सम्य हैं, खण्ड-खण्ड नहीं हैं। ऐसा नहीं कह सकता कोई आदमी कि एक चीज भर मेरे लिए जीवन में सपना होगी, बाकी सब सत्य है। अगर ऐसा कोई आदमी कहता है तो वह गल्ती में पड़ा हुआ है। उसे कुछ सपना भी नहीं हुआ है। सपना होगा कुछ तो पूरा सपना हो जाता है। और सत्य होगा कुछ तो पूरा सत्य रहता है। सपने और सत्य के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता। बारह बेटे और एक बेटे को जोड़ा नहीं जा सकता, तेरह नहीं हो सकते।

महावीर को ऐसा जो बोध है, वह बोध उनका त्याग बन गया है। हमें ऐसा दिखा है क्योंकि हम भोगी हैं और सिर्फ त्याग की भाषा समझ सकते हैं। इसलिए हैरानी होगी कि त्यागियों के पास भोगी इकट्ठे हो जाते हैं क्योंकि सिर्फ भोगी ही त्याग को पकड़ पाते हैं। और यह अद्भुत बात है कि महावीर जैसे अपरिग्रही के लिए, अगृही के लिए, महावीर जैसे सब कुछ त्याग में खड़े व्यक्ति के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ है वह अत्यन्त भोगी, अत्यन्त परिग्रही है। महावीर के पीछे जो जैनों की परम्परा खड़ी हुई वह जैनों से ज्यादा कोई परिग्रही, धन इकट्ठा करने वाले लोग इस मुल्क में दूसरे नहीं। यह बड़ा विरोधाभास है। इसके पीछे कारण है कि त्याग की भाषा भोगी को बहुत पकड़ती है। और भोगी आस-पास इकट्ठा खड़ा हो जाता है, और एक बड़ा जाल बन जाता है और, यह सदा हुआ है। अब जीवन ऐसे आदमी के पीछे, जो कहता है कि जो तुम्हारे

एक गाल पर चाँटा मारे, दूसरा कर देना, जो कहता है कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी दे देना, उस आदमी के पीछे जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने जितनी तलवार चलाई इस जमीन पर, और जितना खून किया उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

असल में जो बहुत घृणा से भरे हैं, उन्हें प्रेम की भाषा एकदम पकड लेती है। वह उनकी कमी है। वह उसे पूरा कर लेना चाहते हैं। भोगी त्याग से अपने को पूरा कर लेता है। खुद नहीं त्याग कर सकता, कोई बात नहीं, त्यागी को पकड लेता है। प्रेम की जिनके मन में कमी है वे कुछ नही कह सकते खुद, वे एक प्रेम का संदेश देने वाले को पकड लेते हैं। सारी दुनिया में सदा ऐसा हुआ है। अनुयायी अक्सर गुरु से उल्टे होते हैं क्योकि उल्टी चीजें लोगो को आकर्षित करती हैं, पास बुला लेती हैं। और वे जो उल्टे लोग हैं ये जो भी रेकार्ड स्थापित करते हैं, वह एकदम गलत होता है क्योंकि वह इनका सूचक होता है।

मन का जो द्वन्द्व है, और उल्टा होना है, उसमें एक दो बातें और समझ लेनी जरूरी हैं। हम सब के मन दो खण्डों में बँटे हुए हैं। चेतन और अचेतन में बँटे हुए हैं—एक मन जिसे हम जानते हैं, एक मन जिसे हम खुद भी नही जानते। और, मन के रहस्यो में सबसे कीमती रहस्य यह है कि जो हमारे चेतन मन में होता है उससे ठीक उल्टा हमारे अचेतन मन में होता है। अगर चेतन मन में कोई आदमी बहुत विनम्र है तो अचेतन मन में बहुत अहंकारी होगा। यानी चेतन मन से ठीक उल्टा उसका अचेतन होगा। अचेतन उल्टा ही होता है, और हमें कोई पता नही होता कि हमारा ही मन का बड़ा हिस्सा पीछे छिपा हुआ हमसे उल्टा है। और वह अचेतन ही इसलिए हो जाता है कि हम उल्टे हिस्से को दबाते हैं और वह पीछे अँधेरे में छिपता चला जाता है। जो हमें प्रीतिकर है उसे हम चेतन में बचा लेते हैं, जो अप्रीतिकर है उसे पीछे हटा देते हैं। यह जो पीछे हमारे मन बैठा हुआ है, यह ठीक उल्टा होता है जैसे हम ऊपर से दिखाई पड़ते हैं उससे। ऊपर से जो आदमी त्याग की प्रशंसा कर रहा हो, उसके अचेतन में भोग की आकांक्षा होगी। अगर किसी आदमी ने जानकर त्याग किया, चेष्टा करके त्याग किया तो त्याग करने से ही वह भोग की आकांक्षा में लीन हो जाएगा क्योंकि वह पीछे छिपा हुआ मन अपनी मांग शुरू कर देगा। और इसलिए आप कोई भी काम करके देखें, हमेशा मन उल्टी बातें करता रहेगा। अगर कोई आपको गाली दे आप झगडा करके लड़ लें तो फिर लौट कर पाएँगे कि

पश्चाताप हो रहा है 'ठीक नही किया, यह बुरा किया कि गाली का जवाब गाली से दिया, और क्रोध किया।' लेकिन आप ऐसा मत सोचना कि आपने इससे उल्टा किया होता तो कोई फर्क पडने वाला था। अगर किसी ने गाली दी होती आप बिना गाली दिए चुपचाप घर लौट आए होते तो भी मन कहता कि बहुत बुरा किया, ऐसे चुपचाप लौट आना ठीक नही किया, जब उसने गाली दी है तो अन्याय को सहना उचित है क्या ? आप जो करके आएँगे, मन उल्टे का सुझाव पीछे से देना शुरू करेगा। आप जो निर्णय लेंगे उससे उल्टा निर्णय भी आपके मन में सगृहीत होगा।

गुरजिएफ एक फकीर था। जब भी कोई साधक उसके पास आता वह आठ दिन उसको खिलाता-पिलाता। वह इतनी शराब पिलाता जिसका कोई हिसाब नही। उसकी बडी बदनामी हो गई इसलिए कि कोई उसके पास जाए तो वह पहले उसे शराब पिलाएगा। उसका यह नियम था कि जो शराब पीने से इन्कार करे उसे वह सीमा के भीतर न घुसने देता, न अपने पास आने देता। आठ दस दिन रात दो-दो बज जाते, तीन-तीन बज जाते। वह शराब पर शराब पिलाता अपने हाथ से। आठ-दस दिन में जब वह आदमी बार-बार बेहोश हो जाता तब गुरजिएफ उसका अध्ययन करता कि वह आदमी है कैसा ? क्योंकि वह जो ऊपर से दिख रहा है, उससे ठीक उल्टा भीतर बैठा हुआ है। वह कहता है कि मैं तुम्हारे झूठे चेहरे के साथ मेहनत नही करूँगा। तुम्हारे भीतर क्या है उसे मुझे जान लेना जरूरी है। अब जो आदमी ऊपर से बडी अच्छी अच्छी बाते करता था, शराब पीकर एकदम गालियाँ बक रहा है। यह गालियाँ बकने वाला आदमी भीतर बैठा है। कभी आपने सोचा कि शराब गालियाँ बना सकती है। शराब के पास कोई ताकत नही कि गालियों को निर्मित कर ले। गालियाँ भीतर दबा ली और सद्वचन ऊपर इकट्ठे कर लिए है। जब शराब पीते है तब चेतन मन बेहोश हो जाता है। अब वह जो भीतर है निकलना शुरू हो जाता है।

यह बडे आश्चर्य की बात है। अगर साधु-सन्तो को शराब पिलाई जाए तो उसके भीतर से हत्यारे, व्यभिचारी निकलेंगे और अगर व्यभिचारियों को शराब पिलाई जाए तो उसके भीतर से साधु-सन्तो की झलक भी मिल सकती है। जो आदमी पाप कर रहा है, वह निरन्तर आकाक्षा कर रहा है कब छुटकारा होगा ? कैसे इससे बाहर निकलूँगा। यह सब क्या हो रहा है ? इन सबमे मैं कैसे बाहर जाऊँ ?

यह जो बात है कि हम अपने से उल्टा अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं, अगर यह हमारे ख्याल में हो तो हम महावीर को भूल कर भी त्यागी नही कहेंगे क्योकि महावीर जैसा व्यक्तित्व अविभाज्य होता है। उसके भीतर दो खण्ड नही होते। एक ही खण्ड होता है। अगर त्याग करेगा तो पूरा। उसमें दो हिस्से नहीं होते। वह जो भी करेगा, उसमें पूरा मौजूद होगा। जैसे हम समुद्र को कही से भी चखें वह खारा होगा। ऐसे महावीर जैसे व्यक्ति को हम कही से भी पकडे वह होगा जैसा है। हम ऐसे नही हैं। हमें अलग-अलग कोणो से पकड़ा जाए तो हममें से अलग-अलग आदमी निकलेंगे। मन्दिर में हममें से एक आदमी निकलता है, शराबखाने से हममें से दूसरा आदमी निकलता है, मित्र के साथ तीसरा निकलता है, दुश्मन के साथ चौथा निकलता है; दुकान पर पाँचवाँ निकलता है, ताश खेलने के वक्त छठवाँ निकलता है। आदमी के भीतर का हिसाब नही। हमारे कितने चेहरे हैं जो हम वक्त-वक्त पर निकाल देते हैं ?

ठीक अर्थो में त्याग उसी व्यक्ति से फलित हो सकता है जिसका व्यक्तित्व पूरा अखण्ड हो गया हो। ऐसे व्यक्ति का भोग भी त्याग ही है क्योंकि ऐसे व्यक्ति में दो हिस्से नहीं है, उल्टे हिस्से नही हैं इस व्यक्ति के भीतर। इसलिए उसमें दूसरे व्यक्तित्व के उदय होने की कभी कोई सम्भावना नही है। लेकिन हमने तो द्वन्द्व की भाषा में सब सोचा है। दो में तोड़े बिना हम सोच नही सकते। तब हम कहेंगे कि महावीर त्यागी हैं, भोगी नहीं; हम कहेंगे क्षमावान् है, क्रोधी नही, हम कहेंगे अहिंसक हैं, हिंसक नही, हम कहेंगे दयालु है, क्रूर नही। हम दो हिस्सो में तोड़-तोड़ कर चलेंगे। और तब हम महावीर जैसे व्यक्ति को कभी भी नहीं समझ पाएँगे।

अखण्ड व्यक्ति में द्वन्द्व विलीन हो जाता है, न वहाँ त्याग है, न वहाँ भोग। वहाँ एक नई घटना घटी है जिसके लिए शब्द खोजना कठिन है। यह तो हम उसे त्यागपूर्ण भोग कहें या भोगपूर्ण त्याग कहें। एक ऐसी घटना घटी है जिसे एक शब्द से चुनकर नही पकडा जा सकता। या तो हम उसे क्रोधपूर्ण क्षमा कहें या क्षमापूर्ण क्रोध कहें। दो टुकडो को अलग करके नही कहा जा सकता। और क्रोधपूर्ण क्षमा का क्या मतलब है ? क्षमापूर्ण क्रोध का क्या मतलब है ? कोई मतलब नही होता, वह अर्थहीन है। जिसे हम कहे मित्रता पूर्ण शत्रु अथवा शत्रुतापूर्ण मित्र—इनका क्या मतलब होता है ? इसका कोई मतलब नही होगा। या शत्रु का मतलब होता है या मित्र का मतलब होता है इन दोनो को मिला देने से कोई मतलब नहीं होता। इसलिए ठीक रास्ता

यही है कि हम दोनो का निपेध कर दें। वहाँ दोनो।नही हैं। न वहाँ त्याग है, न भोग। लेकिन हमारा मन जानना चाहता है कि वहाँ है क्या? वहाँ कुछ तो होना चाहिए। वहाँ है क्या? न वहाँ घृणा है, न प्रेम, न वहाँ हिंसा है, न अहिंसा। फिर वहाँ है क्या? चूँकि हम समझाने में मुश्किल हो जाएँगे कि वहाँ क्या है इसलिए हमने यह ठीक समझा है कि जो बुरा है, उसे इन्कार कर दो, जो भला है उसे स्थापित कर दो। कह दो महावीर भोगी नही है, त्यागी हैं, हिंसक नही, अहिंसक हैं, क्रोधी नही, क्षमावान् हैं। लेकिन द्वन्द्व को बचा लो। मगर हमने कभी सोचा ही नही कि जो आदमी क्रोधी नही है वह क्षमा कैसे करेगा? जिसे कभी क्रोध नही हुआ वह क्षमा कैसे करेगा? किस को क्षमा करेगा? क्षमा के पहले क्रोध अनिवार्य है। और जो आदमी भोगी नही है, वह त्यागी कैसे हो सकता है? भोगी ही त्यागी हो सकता है क्योंकि ये दोनों जुडे हैं साथ-साथ इकट्ठे। लेकिन चूकि हमारी कल्पना में यह नही आता, इसलिए हम एक खण्ड को हटाकर दूसरे को बचा लेना चाहते हैं। असल में वह हमारी आकाक्षा का सबूत है, महावीर के सत्य का नही। हम चाहते हैं कि हमारे भीतर क्रोध न हो, क्षमा हो, हिंसा न हो, अहिंसा हो, परिग्रह न हो, अपरिग्रह हो, बन्धन न हो, मोक्ष हो। यह हमारी चाहना है और हमारी चाहना बताती है कि क्या है? घृणा है—चाहते है हम प्रेम हो, हिंसा है—चाहते हैं अहिंसा हो। बन्धन है, चाहते हैं मुक्ति हो। हमारी चाह दो बातें बताती हैं। हमारी चाह का मतलब ही यही है। जो नही है, उसकी ही चाह होती है। हम हैं कुछ और चाहते ठीक उल्टे को ही है। इसी को हम थोप लेते है। जिन्हें हम आदर्श पुरुष बना लेते हैं, उन्ही पर थोप देते हैं। और उस व्यक्ति को समझना मुश्किल हो जाता है। क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति में दोनो न हो। इसमें कठिनाई क्या है कि एक व्यक्ति में न प्रेम हो, न घृणा हो; न भोग हो न त्याग हो। यह जरूरी क्यों कि इनमें दो में से कोई एक हो ही। लेकिन हमारी धारणा में आना मुश्किल हो जाएगा कि ऐसा आदमी कैसा होगा जिसमें दोनो नही हैं। और जिसमें दोनो नही है वही अखड हो सकता है, नहीं तो खड-खड होगा। और जिसमें दोनो नही हैं वही मुक्त हो सकता है क्योंकि द्वन्द्व में कोई मुक्ति कभी सम्भव नही। इसलिए महावीर जैसा व्यक्ति वेबूझ हो जाता है, हमारी पकड़ के बाहर हो जाता है।

चीन में दस चित्र है जो किसी अद्भुत चित्रकार ने बनाये है। पहले चित्र में घोड़े पर सवार एक आदमी जगल की ओर जा रहा है। लेकिन कुछ दान

ऐसी है कि आदमी कही और जाना चाहता है, घोडा कही और जाना चाहता है। इसलिए बडा तनाव है। पर घोडा वहाँ कैसे जाना चाहे जहाँ आदमी जाना चाहे। घोडा, घोडा है, आदमी आदमी है। और आदमी को घोडा कैसे समझे और घोडे को आदमी कैसे समझे ? घोडा किसी और रास्ते पर जाना चाहता है और आदमी किसी और रास्ते पर जाना चाहता है। तो वडी तनाव मे दोनो इस चित्र में हैं। दूसरे चित्र मे घोडा आदमी को पटक कर भाग गया है। असल में आदमी ने घोडे पर चढने की कोशिश की तो घोडा आदमी को पटकेगा। यानी जिस पर हम चढेंगे वह हमको पटकेगा। आदमी को पटककर घोडा भाग गया है। आदमी पडा है परेशान और घोडा भाग गया है। तीसरे चित्र में आदमी घोडे को खोजने निकला है। घोडे का कही पता नही चल रहा। जगल ही जंगल है। चौथे चित्र मे घोड़े की पूँछ एक वृक्ष के पास दिखाई पडती है, सिर्फ पूँछ। पाँचवें चित्र में आदमी पास पहुँच गया है, पूरा का पूरा घोडा दिखाई पडता है। घोडे की पूँछ पकड ली है। और सातवें चित्र मे आदमी फिर घोडे पर सवार हो गया है और आठवें चित्र में वह घोडे पर सवार होकर घर की ओर वापस लौट रहा है। नौवे चित्र में घोडे को बांध दिया है। आदमी उसके पास बैठा है। घोडा बिल्कुल शान्त है, आदमी बिल्कुल शान्त है। दसवें चित्र में दोनो खो गए हैं, सिर्फ जंगल रह गया है, न घोडा है न आदमी। ये दस पूरी साधना के चित्र हैं। लेकिन आखिरी चित्र में दोनो खो गए हैं। लडाई भी खो गई है, द्वन्द्व खो गया है। नौ चित्रो में बहुत तरह से लडाई चलती रही है। जब तक दोनो हैं लडाई चलती रही है, कुछ न कुछ उपद्रव होता रहा है। लेकिन, आखिरी चित्र में दोनो ही खो गए हैं। अब न घोड़ा है, न घोड़े का मालिक, कोई भी नही है। खाली चित्र रह गया है।

इसी प्रकार जिन्दगी में द्वन्द्व की लडाई है। क्रोध से हम लड रहे है, घृणा से हम लड़ रहे हैं, हिंसा से हम लड रहे हैं, भोग से हम लड रहे हैं। जिससे हम लड रहे हैं, उस पर सवार होने की कोशिश कर रहे हैं। और जिस पर हम सवार होने की कोशिश कर रहे हैं, वह हमें पटके दे रहा है, बार-बार पटक रहा है। भोगी त्यागी होने की कोशिश करता है, रोज-रोज पटके खा जाता है, फिर गिर जाता है, फिर परेशान होता है।

एक घर में मैं मेहमान था कलकत्ता मे। उस घर के बूढे आदमी ने कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य की जीवन में तीन बार प्रतिज्ञा की। बहुत व्यंग्यपूर्ण बात थी क्योंकि ब्रह्मचर्य की तीन बार प्रतिज्ञा लेनी पडे तो ब्रह्मचर्य है कैसा

क्योकि एक बार लेनी चाहिए प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की। मैं खूब हँसने लगा लेकिन मेरे बगल का आदमी नही समझ सका जो वहाँ पास बैठा था। उसने कहा : आपने बडी साधना की। वह बूढा भी हँसने लगा। उस आदमी ने पूछा : फिर तीन बार ही ली, चौथी बार नही ली। उस बूढे आदमी ने कहा कि तुम यह मत सोचना कि मैं तीसरी बार सफल हो गया। नही, तीन बार असफल होकर फिर मैंने हिम्मत ही छोड दी। जब मैंने बिल्कुल ही छोड दिया ख्याल कि लडना ही नहीं है क्योकि तीन दफा हार चुका, बहुत हो चुका तो मैं एकदम हैरान हुआ कि मुझ पर सेक्स की इतनी कम पकड कभी भी नही थी जिस दिन मैंने यह तय किया कि अब लडना नहीं, जो है सो ठीक है। और मेरी पकड एकदम ढीली हो गई। और, मेरी पकड बडी जोर से थी क्योकि मैं सकल्प कर रहा था, व्रत कर रहा था।

असल मे व्रत, सयम, त्याग, सघर्ष—किससे कर रहे हैं हम ? जिससे हम कर रहे हैं, उसको हमने मान लिया। जिससे हम लडने लगे, उसको हमने स्वीकृति दे दी। और, हम उस पर कभी बेमौके चढ भी जायेंगे तो कितनी देर चढे रहेगे ? अगर आप एक दुश्मन की छाती पर बैठ भी जाएँ, जिन्दगी भर तो नही बैठे रहेंगे। कभी तो उसकी छाती छोडेंगे ? और दुश्मन अगर कोई दूसरा होता तो अपने घर चला जाता। यह दुश्मन ऐसा नही कि दूसरा है, अपना ही हिस्सा है। जिस दिन आप छोडेंगे, वह वापस लौट कर खडा हो जाएगा। और एक अजीब बात है। किसको आप दबाते है ? आपके ही दो हिस्से—आप ही दबाने वाले, आप ही दबने वाले। जिसे आप दबाते हैं वह तो विश्राम कर लेता है हिस्सा। और जो दबाता है वह थक जाता है। थोडी देर में उल्टा सिलसिला शुरू हो जाता है। इसलिए जिस चीज को आप दबायेंगे थोडे दिन में आप पायेंगे कि आप उससे दबे हुए है। क्योकि जो हिस्सा दब गया है वह विश्राम कर रहा है। और जो दबा रहा है उसको श्रम करना पड रहा है। श्रम करने वाला थकेगा, विश्राम करने वाला सबल हो जाएगा। इसलिए रोज उल्टा परिवर्तन होता है। लडेंगे तो हारेंगे, दबाएँगे तो गिरेंगे। लेकिन खोज बिल्कुल दूसरी बात है।

पहले चित्र मे वह आदमी जबरदस्ती घोडे पर सवार हो रहा है। दूसरे चित्र में वह खोज पर निकला है। खोज लडाई नही है। एक आदमी क्रोध मे लड रहा है यह बात, और एक आदमी क्रोध की खोज में निकला है कि क्रोध

गया है यह बिल्कुल दूसरी बात है। और जब वह खोज पर निकला है तब उसे पूँछ दिखाई पड गई है। थोडा सा दिखा है। फिर पूँछ के करीब और चला गया है। पूरा घोडा दिखाई पड गया है। फिर उसने घोड़े को पकड़ लिया है क्योंकि जिसे हम समझ लेते हैं फिर उससे लडना नही पडता है। उसे हम ऐसे ही सहज पकड लेते हैं क्योंकि वह आपका ही हिस्सा है। उससे लडना क्या है? वह अपना ही हाथ है। बाएँ को दाएँ हाथ से लडाएँ तो क्या फायदा होगा? वह घोडे को लेकर घर की तरफ चल पडा है। उसने घोडे को लाकर घोडे को जगह बाँध दिया है। उसके पास चुपचाप बैठ गया है। वह लड नही रहा है, न सवार हो रहा है। अब कोई संघर्ष ही नही है। घोडा अपनी जगह है। चुपचाप दोनों अपनी जगह पर हैं। दसवें चित्र में दोनो विलीन हो गए हैं। क्रोध भी विलीन हो गया है, क्रोध से लडने वाला भी विलीन हो गया है। तब क्या रह गया है? एक खाली चित्र रह गया है। दसवाँ चित्र बहुत अद्भुत है। वह कोरा चित्र जब किसी को भेंट किए किसी ने तो उसने कहा : नौ तो ठीक है। दसवे चित्र की क्या जरूरत है? क्योंकि वह बिल्कुल खाली कैनवास का टुकडा है। तब उससे कहा गया कि दसवाँ ही सार्थक है। बाकी नौ तो सिर्फ तैयारी है। उसमें कुछ नही है। जो है इस दसवें में है। तब आदमी पूछता है लेकिन इसमें तो कुछ भी नही है। उस चेतना में कुछ भी नही है, सब खो गया। रिक्तता रह गई है; खाली आकाश रह गया है, शून्य रह गया है। कोई द्वन्द्व नही है, सब अखण्ड हो गया है। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही देने में समर्थ है। खण्डित व्यक्ति देने में समर्थ नही है। ऐसा अखंड व्यक्ति ही तीर्थंकर जैसी स्थिति में हो सकता है।

मेरा कहना है कि यह महावीर लेकर ही पैदा हुए थे और जो हमें दिखाई पड रहा है वह हमारी भ्रान्तियों का गट्ठर है। हम कभी चीजों के बहुत पास जाकर नही देखते, सदा दूर से देखते हैं, बहुत फासले से देखते हैं। हम चीजों को पास से देख भी नही सकते क्योंकि पास से देखना हो तो खुद ही गुजरना पडे उनमे। इसके पहले देख भी नही सकते। यानी महावीर घर से कैसे गए, इसे हम कैसे देख सकते हैं? क्योंकि हम कभी अपने घर से गए ही नही। यह हमारे लिए देखना मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है सिर्फ क्योंकि हम कभी पास से गुजरे ही नही किसी चीज के कि हम भी देख लेते। बहुत फासला है। कोई गुजरता है और हम देखते हैं, भूल हो जाती है। क्योंकि जब कोई गुजरता है तो केवल उसकी बाह्य व्यवस्था भर दिखाई पड़ती है। उसका भीतरी अनुभव

दिखाई नही पडता। और सब कथाएँ, जो भी लिखा गया है, वे एकदम बाहर से खोंचे गए चित्र हैं। और बाहर से यही दिखाई पडता है कि महल था, महल छोड दिया, धन था, धन छोड दिया, पत्नी छोड दी, प्रियजन थे, निकट के रिश्तेदार थे, सब छोड दिये। यही दीखता है। यही दिख सकता है। तब त्याग की एक व्यवस्था हम खडी करेंगे और उस त्याग की व्यवस्था में बहुत से लोग छोडने की कोशिश करेंगे, मर जाएँगे और दिक्कत में पड जाएँगे। बहुत लोग यही कोशिश करेंगे कि छोड दें मकान को लेकिन मकान पीछा करेगा।

एक जैन मुनि थे। वे बीस वर्ष पहले अपनी पत्नी को छोडकर गए थे। उनकी जीवन-कथा किसी ने लिखी तो वह उसे मेरे पास लाया। मैंने उल्टा पुल्टा कर उसे देखा तो उसमें मुझे एक बात पढने को मिली—'बीस साल हो गए हैं, पत्नी को छोडे, काशी में रहते हैं। पत्नी मरी है, तार आया है। उन्होंने तार पढकर कहा—'चलो झंझट छूटी।' उस जीवनकथा लिखने वाले ने लिखा है—'कैसा परमत्यागी व्यक्ति कि पत्नी मरी तो केवल एक वाक्य मुख से निकला कि 'चलो झंझट छूटी' और कुछ भी न निकला।' वह लेखक खुद किताब लेकर आए थे, मैंने उनसे कहा, 'किताब बन्द करो, किसी को पता न दो।' उन्होंने कहा, 'क्यों ?' मैंने कहा तुमको पता नही—क्या लिखा है इसमें ? अगर ऐसा ही हुआ है तो बीस साल पहले जिस पत्नी को छोडकर तुम्हारा मुनि चला गया था उसकी झंझट बाकी थी। अब उसके मरने से कहता है कि 'झंझट छूटी'—तो झंझट बाकी थी। किसी न किसी चित्त के तल पर झंझट रही होगी। यह पत्नी के मरने की प्रतिक्रिया नही है। यह प्रतिक्रिया चित्त के भीतर झंझट चलने की है। झंझट खत्म हुई पत्नी के मरने से। पत्नी को छोडने से भी पूरी न हुई वह झंझट, क्योंकि वह पत्नी है यह भी न मिटा, क्योंकि उस पत्नी को छोडा है यह भी न मिटा, क्योंकि उस पत्नी को क्या-क्या होता होगा यह भी न मिटा। यह कुछ भी न मिटा। और अब वह मर गई तो झंझट छूट गयी।" और मैंने कहा कि यह भी हो सकता है कि तुम्हारे इस मुनि ने कई दफा चाहा हो कि पत्नी मर जाए क्योंकि इसका यह कहना इसकी भीतरी आकांक्षा का सबूत भी हो सकता है। इसने कई बार चाहा हो कि वह मर जाए। शायद छोडने के पहले चाहा हो कि यह मर जाए। वह नही मरी। उसने शायद बाद में भी कभी सोचा हो कि यह मर जाए। क्योंकि यह शब्द बडा अद्भुत है और उसके पूरे अचेतन की खबर लाता है।

एक दूसरी घटना सुनाता हूँ। एक फकीर गुजर गया है। उसका एक शिष्य है जिसकी बड़ी ख्याति है, इतनी ख्याति है कि गुरु से भी ज्यादा। और लोग कहते हैं कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं—गुरु मर गया है। शिष्य मन्दिर के द्वार पर बैठा छाती पीट-पीट कर रो रहा है। लोग बड़े चौंके हैं क्योंकि ज्ञानी और रोए! दो चार जो निकट हैं, उन्होंने कहा : यह आप क्या कर रहे हैं? सब जिन्दगी की इज्जत पर पानी फिर जाएगा। आप—और रोते हैं? ज्ञानी और रोए। तो उस आदमी ने आँखें ऊपर उठाई और कहा—मैं ऐसे ज्ञानी से छुटकारा चाहता हूँ जो रो भी न सके। नमस्कार! इतनी भी आजादी न बचे तो ऐसा ज्ञानी मुझे नहीं होना। क्योंकि ज्ञान की खोज हम आजादी के लिए किए हैं। ज्ञान एक नया बन्धन बन जाए और मुझे सोचना पड़े कि क्या कर सकता हूँ, क्या नहीं कर सकता हूँ तो मैं क्षमा चाहता हूँ। तुमसे कहा किसने कि मैं ज्ञानी हूँ? फिर भी उन लोगों ने पूछा : भई ठीक तो है लेकिन आप ही तो समझाते थे कि आत्मा अमर है अब काहे के लिए रो रहे हैं? उसने कहा : आत्मा के लिए कौन पागल रो रहा है? वह शरीर भी बहुत प्यारा था। और वैसा शरीर अब दुबारा नहीं हो सकेगा। अद्वितीय था वह। आत्मा के लिए रो कौन रहा है? शरीर कुछ कम था क्या? तुम मेरी चिन्ता मत करो क्योंकि मैंने अपनी चिन्ता छोड़ दी है। अब जो होना है, सो होता है। हँसी आती है तो हँसता हूँ, रोना आता है तो रोता हूँ। अब मैं रोकता ही नहीं कुछ। क्योंकि अब रोकने वाला ही कोई नहीं है। कौन रोके? किसको रोके? क्या रोकना है? क्या बुरा है? क्या भला है? क्या पकड़ना है? क्या छोड़ना है—सब जा चुका है। जो होता है, होता है। जैसे हवा चलती है, वृक्ष हिलते हैं, वर्षा आती है, बादल आते हैं, सूरज निकलता है, फूल खिलते हैं। बस ऐसा ही है। न तुम फूल से जाकर कहते हो कि क्या खिले हो तुम। न तुम बदलियों से जाकर कहते हो कि क्यों आई हो तुम। न तुम सूरज से पूछते हो कि क्यों निकले हो तुम। मुझसे क्यों पूछ रहे हो कि क्यों रो रहे हो। कोई मैं रो रहा हूँ? रोना आ रहा है। कोई रोने वाला नहीं है। यह तो बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। और किसी एक ने कहा कि "आप कहते हो सब माया है, सब सपना है।" वह कहता है अभी मैं कब कह रहा हूँ कि सब माया नहीं है, सब सपना नहीं है। मेरा कहना है कि अगर इतनी ठोस देह भी सत्य साबित न हुई, मेरे ये तरल आँसू कितने सत्य हो सकते हैं? इसे समझना हमें मुश्किल हो जाएगा। उस मुनि को समझना

बहुत आसान है जिसने कहा, "झंझट छूटी।" क्योंकि हमारा चित्त भी वैसा है। वह द्वन्द्व में ही जीता है।

इतना निर्द्वन्द्व होना बहुत मुश्किल है कि जहाँ रहना भी क्रिया न रह जाए, जहाँ उसके भी हम कर्त्ता न रह जाएँ, जहाँ उसके भी हम द्रष्टा हो जाएँ, जहाँ उस पर कभी भी हम रुकें न, कुछ बन्धन न डालें, कुछ व्यवस्था न डाले, जो होता हो, होता रहे। जैसे वृक्षों में पत्ते आते हैं, जैसे आकाश में तारे निकलते हैं, ऐसा ही सब हो जाए। ऐसा अखण्ड व्यक्ति ही सत्य को उपलब्ध होता है और ऐसे अखंड व्यक्ति से ही सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन इतना अखंड हो जाना ही सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काफी नहीं है। अखंड व्यक्ति भी, हो सकता है, बिना सत्य को अभिव्यक्त किए ही मर जाए और बहुत से अखंड व्यक्ति बिना सत्य को प्रकट किए ही समाप्त हो जाते हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि सौन्दर्य को जान लेना सौन्दर्य को निर्मित करना नहीं है। एक आदमी सुबह के उगते सूरज को देखता है और अभिभूत हो जाता है सौन्दर्य में। लेकिन यह अभिभूत हो जाना पर्याप्त नहीं है कि वह एक चित्र बना दे सुबह के उगते सूरज का, अभिव्यक्त कर दे उसको, जरूरी नहीं है। तुम सुबह बैठे हो वृक्ष के नीचे और पक्षी ने गीत गाया और तुम डूब गए संगीत में। तुमने अनुभव किया है संगीत लेकिन जरूरी नहीं कि वीणा उठाकर तुम गीत को पुनर्जन्म दे दो। यानी सत्य की अनुभूति एक बात है और उसकी अभिव्यक्ति बिलकुल दूसरी बात। बहुत से अनुभूतिसम्पन्न लोग बिना अभिव्यक्ति दिए समाप्त हो जाते हैं। दुनिया में कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को अनुभव नहीं करते, लेकिन कितने कम लोग हैं जो सौन्दर्य को चित्रित कर पाते हैं, कितने कम लोग हैं जिनके प्राणों को आन्दोलित नहीं कर देता संगीत लेकिन कितने कम लोग हैं जो संगीत को अभिव्यक्त कर पाते हैं, कितने कम लोग हैं जिन्होंने प्रेम नहीं किया है, लेकिन प्रेम की दो कड़ी लिख पाना बिलकुल दूसरी बात है।

यहाँ दो-तीन बातें कहूँ ताकि आगे का सिलसिला ख्याल में रह सके। पहली बात—अखंड की अनुभूति हो जाना पर्याप्त नहीं है। अभिव्यक्ति के लिए कुछ और करना पड़ता है अनुभूति के अतिरिक्त। अगर वह और न किया जाए तो अनुभूति होगी मगर व्यक्ति खो जाएगा। तीर्थंकर वैसा अनुभवी है। वह जो कुछ करता है—अभिव्यक्ति के लिए। इसलिए महावीर की जो बारह वर्ष की साधना है वह मेरी दृष्टि में सत्य-उपलब्धि के लिए नहीं है। सत्य को उपलब्ध है। सिर्फ उसकी अभिव्यक्ति के सारे माध्यम खोजे जा रहे हैं उन बारह वर्षों

मे। और, ध्यान रहे सत्य को जानना तो कठिन है ही, सत्य को प्रकट करना और भी कठिन है। महावीर की अपनी शक्ति है। अगर महावीर को सब मिल गया है तो यह तपश्चर्या, यह साधना, यह उपवास, यह बारह वर्षों का लम्बा काल—यह क्यों हो रहा है ? यह क्या कर रहे हैं ? अगर मैं कहता हूँ कि वह पाकर लौटे हैं तो यह क्या कर रहे हैं ?

तो जितना गहरा देखने की मैंने कोशिश की उतना मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यह अभिव्यक्ति के सब उपकरण खोजे जा रहे हैं और बहुत तरहो पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जा रही है जिसकी कम शिक्षको ने फिक्र की है, कभी भी। यानी जीवन के जितने तल हैं और जितने रूप हैं, उन सब रूपों तक सत्य की खबर पहुँचाने की अद्‌भुत तपश्चर्या की है उन्होंने। यानी सिर्फ मनुष्य से ही यह नही बोल देना है—क्योकि मनुष्य तो सिर्फ जीवन की एक छोटी सी घटना है; मनुष्य जीवन-यात्रा की केवल एक सीढी है—एक ही सीढी पर सत्य नही पहुँचा देना है, मनुष्य से पीछे की सीढियो पर भी उसे पहुँचा देना है, मनुष्य से भिन्न सीढियो पर भी उसे पहुँचा देना है। यानी पत्थर से लेकर देवता तक सुन सकें, इसकी सारी व्यवस्था उन्होने की है। जो चेष्टा है वह यह कि जीवन के सब रूपो से सवाद हो सके और सब रूपो पर सत्य को अभिव्यक्त किया जा सके। वह तपश्चर्या सत्य की उपलब्धि के लिए नही है, सत्य की अभिव्यक्ति खोजने के लिए है। और तुम हैरान होगे कि सुबह सूरज को देखकर सौन्दर्य को अनुभव कर लेना बहुत सरल है, लेकिन उगते हुए सूरज को चित्रित करने में हो सकता है कि जीवन लग जाए, तब आप समर्थ हो पाएँ।

विन्सेन्ट वानगॉग ने जो अन्तिम चित्र चित्रित किया है, वह है सूर्यास्त का। यह इधर मनुष्य जाति में हुए दो चार बडे चित्रकारो मे एक है वानगॉग। और अन्तिम चित्र उसने सूर्यास्त का चित्रित किया जिसे पूरा करते ही उसने आत्म-हत्या कर ली। और लिखा गया कि जिसे चित्रित करने के लिए जीवन भर से कोशिश कर रहा था वह काम पूरा हो गया। और अब सूर्यास्त ही चित्रित हो गया। अब और रहने का अर्थ क्या है और इतनी आनन्दपूर्ण घडी से मरने के लिए और अच्छी घडी न मिल सकेगी। सूर्यास्त चित्रित हो गया है, और वह मर गया है। आप हैरान हो जाएँगे कि इस चित्र को चित्रित करने के लिए उसने कैसी मुश्किलें उठाई, उसने सूर्य को कितने रूपो में देखा। सुबह से भूखा खेतो में पड रहा; जगलो में पड़ा रहा; पहाडो पर पडा रहा। सूरज की पूरी यात्राएँ, उसके भिन्न-भिन्न चेहरे, उसकी भिन्न-भिन्न स्थितियाँ, उसके भिन्न-भिन्न

रंग, उसका भिन्न-भिन्न रूप, वह जो प्रतिपल भिन्न होता चला जा रहा है, उगने से लेकर डूबने तक, उसकी सारी यात्रा 'और लीज' में जहाँ सूरज सबसे ज्यादा तपता है एक वर्ष तक, थोडा नही देखता रहा। पागल हो गया क्योकि इतनी गर्मी सहना सम्भव नही था। एक वर्ष तक निरन्तर आँखें सूरज पर टिकी रही, आँखों ने जवाब दे दिया और सिर घूम गया। एक साल पागलखाने में रहा। जब पागलखाने से वापस हुआ तब कहा : अब चित्रित कर सकूँगा क्योंकि जब जिया ही न था, उसे देखा ही न था, उसके साथ ही न रहा था उसे कैसे चित्रित करता ?

एक सूर्यास्त को चित्रित करने के लिए एक आदमी एक वर्ष तक सूरज को देखे, पागल हो जाए, तब चित्रित कर पाए तो सत्य को, जिसका कोई प्रकट रूप दिखाई नही पडता, उसे कोई जाने, फिर शब्द में, और माध्यमो से उसे पहुँचाने की कोशिश करे तो उसके लिए लम्बी साधना की जरूरत पडेगी। महावीर की जो साधना है वह अभिव्यक्ति के उपकरण खोजने की साधना है। कठिन है, बहुत ही कठिन है। उसे समझने की हम कोशिश करेंगे कि वह साधना में कैसे अभिव्यक्ति के लिए एक-एक सीढी खोज रहे हैं, एक-एक मार्ग खोज रहे हैं, कैसे वह सम्बन्ध बना रहे हैं अलग-अलग जीवन की स्थितियो से, योनियो से। वह हमारे ख्याल में आ जाएगा तो पूरी दृष्टि और हो जाएगी, सोचने की बात ही और हो जाएगी।

६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

श्रीनगर, प्रातः, दिनांक २० सितम्बर, १९६९

प्रश्न यदि जो कुछ महावीर ने पिछले जन्म मे प्राप्त किया था, उसमे विश्व के सभी तलो को लाभ हो, इसलिए अभिव्यक्ति के माध्यमो की खोज उन्होने इस जन्म मे की तो फिर उनके पिछले जन्मो की साधना क्या थी जिससे उनके बन्धन कट कर उन्हे सत्य की उपलब्धि हो सकी ?

उत्तर . इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात यह समझ लेनी जरूरी है कि तप या सयम से बन्धनो की समाप्ति नही होती, बन्धन नही कटते। तप और सयम कुरूप बन्धनो की जगह सुन्दर बन्धनो का निर्माण भर कर सकते हैं। लोहे की जजीर की जगह सोने की जजीर आ सकती है। जजीर मात्र नही कट सकती है क्योंकि तप और संयम करने वाला व्यक्ति वही है जो अतप असयम कर रहा था। उस व्यक्ति में कोई फर्क नही पड़ा है। एक आदमी व्यभिचार कर रहा है। इसके पास जो चेतना है, इसी चेतना को लेकर अगर कल वह ब्रह्मचर्य की साधना करने लगे तो व्यभिचार बदल कर ब्रह्मचर्य हो जाएगा। इस व्यक्ति के भीतर की चेतना जो व्यभिचार करती है ब्रह्मचर्य लावेगी। व्यभिचार जैसे एक बन्धन था, ब्रह्मचर्य भी एक बन्धन ही सिद्ध होने वाला है। इसलिए सवाल तप और संयम का नही है। सवाल है चेतना के रूपान्तरण का, चेतना के बदल जाने का। और चेतना को बदलने के लिए बाहर के कर्मों का कोई भी अर्थ नही है, चेतना को बदलने के लिए भीतर की मूर्च्छा के टूटने का प्रश्न है। चेतना के दो ही रूप है, मूर्च्छित और अमूर्च्छित, जैसे कर्म के दो रूप हैं—संयम और असयम। अगर कर्म में बदलाहट की गई तो सयम आ सकता है असयम की जगह, मगर चेतना इससे अमूर्च्छित दशा में नही पहुँच जाएगी। मूर्च्छित के भीतर व्यक्ति सोया हुआ है, प्रमाद में है। वह अप्रमाद में कैसे पहुँचेगा?

महावीर की पिछले जन्मों की साधना अप्रमाद की साधना है। हमारे भीतर जो जीवन चेतना है वह कैसे परिपूर्ण रूप से जागृत हो ? इस विषय में महावीर कहते हैं : 'हम विवेक से उठें, विवेक से बैठें, विवेक से चलें, विवेक से भोजन करें, विवेक से सोएँ भी।' अर्थ यह है कि उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते प्रत्येक स्थिति में चेतना जागृत हो, मूर्च्छित नही। थोडे गहरे में समझना उपयोगी होगा। हम रास्ते पर चलते हो तो शायद ही हमने कभी ख्याल किया हो कि चलने की जो क्रिया हो रही है, उसके प्रति हम जागृत हैं। हम भोजन कर रहे हैं तो शायद ही हमें यह स्मरण रहा हो कि भोजन करते वक्त जो भी हो रहा है उसके प्रति हम सचेत हैं। चीजें यन्त्रवत् हो रही हैं। रास्ते के किनारे खडे हो जाएँ और लोगो को रास्ते से देखें तो ऐसे लगेगा कि मशीनों की तरह वे चले जा रहे हैं। ऐसे भी लोग दिखाई पडेंगे जो हाथ हिलाकर किसी से बातें कर रहे हैं और साथ में कोई भी नही है। ऐसे लोग भी मिलेंगे जिनके होठ हिल रहे हैं और बात चल रही है लेकिन साथ में कोई भी नही है। किसी स्वप्न में खोए हुए, निद्रा में डूबे हुए ये लोग मालूम पडेंगे। दूसरे के लिए ही नही है ऐसा। हम अपने में भी देखे, अपना भी ख्याल करे तो यही प्रतीत होगा। जीवन में हम ऐसे जीते हैं जैसे किसी गहरी मूर्च्छा में पडे हो। हमने जिन्हें प्रेम किया है, वह मूर्च्छा में, हमें पता नही क्यो ? हम नही बता सकते कोई कारण। हमने जिनसे घृणा की है, वह मूर्च्छा में, हम जब क्रोध किए हैं तब मूर्च्छा में, हम जैसे भी जिए हैं उस जीने को एक सजग व्यक्ति का जीना तो नही कहा जा सकता। वह एक सोए हुए व्यक्ति का जीना है। कुछ लोग हैं जो रात में भी नीद में उठ आते हैं। एक बीमारी है निद्रा में चलने की—नीद में उठते हैं, खाना खा लेते हैं, घूम लेते हैं, किताब पढ लेते हैं, फिर सो जाते है। सुबह उनसे पूछिए वे कहेंगे—कौन उठा ? कोई भी नही उठा। अमेरिका में एक आदमी था जो रात निद्रा में उठकर अपनी छत से पडोसी की छत पर पहुँच जाता था। आठ-नौ मंजिल के मकानो की छत पर से कूदना और बीच में फासला दस-बारह फुट का। यह रोज चल रहा था। धीरे-धीरे पडोसियो को पता चला कि वह रोज रात यह करता है। एक दिन सौ-पचास लोग नीचे इकट्ठे हुए देखने के लिए। वह तो नीद में करता था। होश में तो वह छलाग भी नही लगा सकता था। जैसे ही छलांग लगाने को हुआ नीचे लोगो ने जोर से आवाज दी और उसकी नींद टूट गई। वह बीच खड्ड में गिर गया और प्राणान्त हो गया। यह वह वर्षो से कर रहा था लेकिन वह मानता नही था कि मैं यह करता हूँ। \

निद्रा में हम बहुत से काम करते हैं। लेकिन जागे हुए भी किसी सूक्ष्म निद्रा मे हम जीते हैं, इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जागे हुए भी, होश से भरे हुए भी हमारे भीतर एक धीमी सी तन्द्रा का जाल फैला हुआ है। जैसे एक आदमी ने आपको धक्का दिया है और आप क्रोध से भर गए हैं। कभी आपने सोचा कि यह क्रोध आपने जानकर किया है या कि हो गया है। जैसे बिजली का बटन दबाएँ तो पखा चल पड़ता है। हम पखा को नही कह सकते कि पखा चल रहा है। पखा सिर्फ चलाया गया है। और एक आदमी ने आपको धक्का दिया फिर आपके भीतर क्रोध चल पड़ा। हम यह नही कह सकते है कि आपने क्रोध किया है। हम इतना ही कह सकते है कि बटन किसी ने दबाया और क्रोध चल पड़ा। आप भी नही कह सकते कि मैं क्रोध कर रहा हूँ क्योंकि जो आदमी यह कह सकता है कि मैं क्रोध कर रहा हूँ उस आदमी को कभी क्रोध करना सम्भव नही है। क्योंकि अगर वह मालिक है तो करेगा ही नही। अगर मालिक नही है तो ही कर सकता है।

हमारी सारी जीवन क्रिया सोई-सोई है। हम सब नींद में चल रहे हैं। इसे महावीर ने कहा है प्रमाद। यह है मूर्च्छा। और साधना एक ही है कि कैसे हम क्रिया मात्र मे जागे हुए हो जाएँ? क्योंकि जैसे ही हम जागेंगे वैसे ही चेतना का रूपान्तरण शुरू हो जाएगा। आपने कभी ख्याल किया कि रात जब आप सोते हैं तब आपकी चेतना बिल्कुल दूसरी हो जाती है। वही नही रहती जो जागने में थी। सुबह जब आप जागते हैं तो चेतना वही नही रहती जो जागने में थी। सुबह जब आप जागते है तो चेतना वही नही रहती जो सोने मे थी। चेतना मूल रूप से दूसरे तलों पर पहुँच जाती है। जो आपने कभी सोचा नही था वह आप कर सकते हैं रात में। जो आप कल्पना नही कर सकते थे कि पिता को मार डालूँ वह आप रात में हत्या कर सकते हैं। और ज़रा भी दहशत नही होगा मन को। दिन मे जो जो आप थे, जो आपके सम्बन्ध थे, वे सब खो गए निद्रा में। एक धनी वैसा ही साधारण हो गया है निद्रा मे जैसा एक दरिद्र भिखमगा सडक पर सोया हो।

एक फकीर था। उसके गाँव का सम्राट् एक दिन उसके पास से निकल रहा था। सम्राट् ने उससे पूछा कि हममें तुममें क्या फर्क है? फर्क तो निश्चित है। तुम भिखारी हो एक गाव के सडक पर भीख मागने वाले। मैं सम्राट् हूँ। उस आदमी ने कहा, फर्क जरूर है लेकिन जहाँ तक जागने का सम्बन्ध है वहीं तक। सोने के बाद हममें तुममें कोई फर्क नही। क्योंकि सोने के बाद न तुम्हें ख्याल

मेरे एक मित्र थे, वह पागल हो गए। पागल हो गए १९३६ के करीव। वे घर से भाग गए और एक अदालत मे पकडे गए। कुछ उन पर मुकदमें चले। मजिस्ट्रेट ने कहा—"वह पागल है, उन्हें छ. माह की सजा दी जाय लेकिन सजा उनकी पागलखाने में कटे।" और लाहौर के पागलखाने में भेज दिए गए। वह मुझे कहते है कि दो महीने मेरे वडे आनन्द से कटे क्योकि मैं पागल था और सव वहाँ पागल थे। कोई तीन सौ पागलों का जमाव था। वडा आनन्द ही आनन्द था। वाहर मै कष्ट में ही था। चूकि मेरा ताल-मेल ही नही बैठता था किसी से, चूकि सव ठीक थे मैं पागल था, मैं जो करता उनको न जँचता वह जो करते, मुझको न जँचता था। पागलखाने मे पहुँच कर तो मैं जैसे स्वर्ग में पहुँच गया। जाकर जो मैंने पहला काम किया—वह परमात्मा को, उस मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया जिसने मुझे पागलखाने में भेजा था। सव अपने-जैसे लोग थे। वहुत ही वढिया था सव। लेकिन दो महीने वाद वडी मुश्किल हो गई। छ महीने की सजा हुई थी और दो महीने वाद, पागलखाने में कही एक डिब्बा मिल गया रखा हुआ फिनायल का; और वह उसको उठा कर पी गए। पागल आदमी थे। वह फिनायल पी गए। इस फिनायल पीने से उनको पन्द्रह दिन तक इतने कै-दस्त हुए कि सारी सफाई हो गई और सव गर्मी निकल गई; वह विल्कुल ठीक हो गए। यानी उस पागलखाने मे वह गैर पागल हो गए। और वह डाक्टरो को कहने लगे कि अव मैं विल्कुल ठीक हो गया हूँ। और अव मेरी वडी मुसीवत हो गई है। लेकिन वहाँ कौन मानता था क्योकि डाक्टरो ने कहा यहाँ सभी पागल यही कहते हैं कि हम ठीक हैं। यह कोई वात है। कोई पागल कभी मानता है कि मैं पागल हूँ। उन्होने जितनी समझाने की कोशिश की, कोई समझने को राजी न था। छ महीने की सज़ा पूरी करनी पडी। वह मुझसे कहते थे कि चार महीने मेरे इतने कष्ट में कटे कि ऐसा नरक में कोई किसी को न डाले। क्योंकि सव थे पागल और मैं हो गया था ठीक। कोई मेरी टाँग खीच रहा है, कोई मेरा कान घुमा रहा है, कोई धक्का ही मार देता है, कोई पानी ही डाल देता है ऊपर आकर, सो रहा हूँ तो कोई घसीट कर दो कदम आगे कर जाता है। यह मैं भी करता रहा होऊँगा दो महीने पहले। लेकिन तव हम सव साथी थे। तव कभी ख्याल न आया था कि यह गलत कर रहा हूँ। अव वड़ी मुश्किल हो गई। और अव मैं असमर्थ हो गया कि मै भी यही करूँ। अव मै न किसी की टाँग खीच सकता, और न किसी पर पानी डाल सकता। मैं विल्कुल ठीक था और वे सव पागल थे। उनको जो

मर्जी आती वे करते। कोई चलते चपत मार जाता, कोई बाल खींच जाता, कोई आकर कंधे पर बैठ जाता, कोई गोदी में बैठ जाता। चार महीने निरन्तर यही भगवान् से प्रार्थना रही कि या तो जल्दी बाहर कर या फिर पागल कर दे। क्योंकि यह तो फिर बड़ा असुविधापूर्ण हो गया।

पागलखाने में किसी आदमी के ठीक हो जाने की जो तकलीफ है, वही सोए हुए जगत् के बीच जागने की तकलीफ है। क्योंकि वह आदमी फिर सोए हुए आदमी के ढंग से व्यवहार नहीं कर सकता और सोया हुआ आदमी तो अपना ढंग जारी रखता है। तो महावीर जैसे लोग जिस कष्ट में पड़ जाते हैं, उस कष्ट का हम हिसाब नहीं लगा सकते क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि वह कष्ट कैसा है? क्योंकि हम सोए हुए लोगों के बीच में एक आदमी जाग गया, उसकी भाषा बदल गई, उसकी चेतना बदल गई, वह एकदम अजनबी हो गया।

अगर एक तिब्बती भारत में आ जाए या आप तिब्बत में चले जाएँ तो जो अजनबीपन है वह सिर्फ भाषा के शब्दों का है, बहुत ऊपर का अजनबीपन है, भीतर आदमी एक जैसे हैं। क्रोध उसको आता है, क्रोध आपको आता है। घृणा उसको आती है, घृणा आपको आती है। ईर्ष्या में वह जीता है, ईर्ष्या में आप जीते हैं। फर्क है तो इतना कि ईर्ष्या का शब्द आपका अलग है, उसका अलग। थोड़े दिनों में पहचान हो जाएगी और 'ईर्ष्या' के शब्द मेल खा जाएँगे तब अजनबीपन मिट जाएगा। यानी साधारणतः पृथ्वी के अलग-अलग कोनों पर रहने वाले को हम अजनबीपन कहते हैं। लेकिन वह अजनबीपन बड़ा छोटा है, सिर्फ भाषा का है। आदमी-आदमी एक जैसे हैं। लेकिन जब कोई आदमी सोई हुई पृथ्वी पर जागा हुआ हो जाता है तो जो अजनबीपन शुरू होता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है, क्योंकि अब भाषा का भेद नहीं, अब तो सारी चेतना का भेद पड़ गया है। सब आमूल बदल गया है। अगर हमें कोई गाली देता है तो हमारे भीतर क्रोध उठता है। उसे कोई गाली देता है तो उसके भीतर करुणा उठती है। इतनी चेतना का फर्क हो गया है क्योंकि उसे दिखाई पड़ता है कि एक आदमी बेचारा गाली देने की स्थिति में आया है, कितनी तकलीफ में होगा। और उसके भीतर से करुणा बहनी शुरू हो जाती है और हमारे लिए समझना आसान है—अगर आप मुझे गाली दें, और मैं भी आपको गाली दूँ। तो, आपका मैं मित्र हूँ क्योंकि आपकी दुनिया का ही निवासी हूँ। आप मुझे गाली दें और मैं आपको प्रेम करूँ तो आप जितना क्रोध से भरेंगे मेरे प्रति उतना गाली देने वाले के प्रति शायद न भरें।

एक आदमी तुम्हारे गाल पर चाँटा मारे और तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे तो इससे ज्यादा अपमानजनक स्थिति दूसरे आदमी के लिए क्या हो सकती है ? तुमने तो उसको कीड़ा-मकोडा बना दिया। यानी तुमने उसकी आदमियत भी स्वीकार न की। तुमने इतना भी न कहा कि ठीक है, तुमने एक चाँटा मारा, एक चाँटा हम भी मारेंगे। तो तुम बराबर हो गए होते। तुम तो एकदम आसमान पर चले गए और वह एकदम जमीन पर रेंगता हुआ कीडा हो गया। यह अपमान बरदाश्त नहीं किया जा सकता। नीत्से ने लिखा है— यह अपमान बरदाश्त के बाहर है। तुमने तो उस आदमी को बिल्कुल मिटा दिया। आदमी भी स्वीकार न किया तुमने। और तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया उसके साथ कि जिसका कोई हिसाब नही। यह सद्व्यवहार न हुआ। नीत्से कहता है, यह तो बहुत दुर्व्यवहार हो गया। सद्व्यवहार यही था कि समानता के हेतु एक चाँटा तुमने भी मारा होता तो हम दोनो बराबर हो गए होते, हम एक ही तल पर होते। तुम पहाड़ पर खडे हो गए, हम खाईं में पड गए। वह ठीक कहता है। गाली देने वाला उत्तर में आई गाली से इतना नाराज न होगा क्योंकि यह उसकी अपनी भाषा है। गाली आनी चाहिए। गाली दी ही इसलिए गई है। लेकिन अगर उत्तर में करुणा लौटे तो उसके क्रोध का हिसाब नही रह जाएगा। उसके अपमान और उसकी पीड़ा को नही समझ सकते हम। वह फिर इसका बदला लेगा। तो सोए हुए आदमियो के भीतर एक अनजानी स्वीकृति है इस बात की कि अगर जीना है सबके साथ तो चुपचाप सोए रहो। पागलो के साथ रहना है तो पागल बने रहो। और भीतर भी हमें डर है क्योंकि सब बदल जाएगा। सब बदलने की हम हिम्मत नही जुटा पाते।

इसलिए साधक का पहला लक्षण है—अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना। उसके लिए हम हिम्मत नही जुटा पाते, साहस ही नहीं जुटा पाते। हम कहते भी है कि हमको शान्ति चाहिए, सत्य चाहिए लेकिन हम ये सब बातें इस तरह करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे में ही सब मिल जाए। हमें बदलना न पडे। हमने जो व्यवस्था कर रखी है, जो मकान बना रखा है, जो सम्बन्ध बना रखे हैं, उनमें कोई हेर-फेर न करना पडे। सब जैसा है वैसा रहे, और कुछ मिल जाए। लेकिन हमें यह पता ही नही है कि अंधे आदमी को आँख मिलेगी तो उसके सब सम्बन्ध बदल जाएँगे। क्योंकि कल के सम्बन्ध अंधे आदमी के सम्बन्ध थे। कल वह जिस आदमी का हाथ पकड़ कर रास्ता चलता था, अब हाथ पकडने से इन्कार कर देगा। और हो सकता है जिसका हाथ

पकड कर वह चला था, उसे हमेशा यह ख्याल रहा हो कि मैं उसका सहारा हूँ। कल वह हाथ पकडने से इन्कार कर देगा कि क्षमा करो अब मेरे पास आँख है। मैं चल सकता हूँ। तो यह आदमी भी नाराज होगा जिसका उसने सदा हाथ पकडा था क्योंकि अब वह सहारा नही मांगता है। सहारा देने का भी सुख है, सहारा देने का भी अहंकार है। तो अबे आदमी ने एक तरह सम्बन्ध बनाए थे, आँख वाला आदमी दूसरे तरह के सम्बन्ध बनाएगा। सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है, जागा हुआ आदमी इस दुनिया को बिल्कुल ही अस्त-व्यस्त कर देगा। तो वह भी डर है हमारे भीतर। वह साहस भी नही है। लेकिन अगर थोडा सा साहस हम जुटा पाएँ तो जागना कठिन नही है। क्योंकि जो सो सकता है वह जाग सकता है, चाहे कितनी ही गहरी नीद में सोया है। जो सोया है उसमें जागने की क्षमता शेप है।

एक आदमी यहाँ कितनी ही गहरी नीद में सोया हुआ है। हम यहाँ उसके पास जागे हुए बैठे हैं। हम दोनों बिल्कुल भिन्न हालत में हैं। अगर दूसरे सोए हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसको पता नही चलेगा। अगर जागे हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसे पता चलेगा। मकान मे आग लग गई तो सोए हुए आदमी को कोई पता नही चलेगा जब तक कि वह जाग न जाएँ। लेकिन जागे हुए आदमी को फौरन पता चल जाता है कि इस मकान में आग लग गई है। ये दोनो आदमी इस मकान में हैं। एक सोया है, एक जागा। सोया हुआ आदमी सोया हुआ है निश्चित। जागे हुए आदमी को चिन्ता पकड़ गई। लेकिन फिर भी इन दोनों आदमियो में बुनियादी भेद नही क्योंकि सोया हुआ आदमी एक क्षण में जाग सकता है और जागा हुआ आदमी एक क्षण में सो सकता है। यह तो साधारण तल पर जागना और सोना है ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति जाग गया है वह जानता है कि जो सोए हैं, वह जाग सकते हैं। लेकिन वहाँ एक फर्क है। एक साधारण तल पर जागने और सोने में बुनियादी फर्क नही है क्योंकि जिसे हम जागना कह रहे हैं, वह थोडी कम डिग्री में सोना ही है और जिसको हम सोना कह रहे हैं, वह थोडी कम डिग्री में जागना ही है। उन दोनों में डिग्री का ही भेद है। लेकिन उस तल पर, परम जागरण के तल पर, निद्रा और जागने में डिग्री का भेद नही है, मौलिक रूपान्तरण का भेद है। इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है लेकिन जागा हुआ आदमी सो नही सकता। उस तल पर कोई जागा हुआ आदमी फिर कभी नही सो सकता।

एक आदमी तुम्हारे गाल पर चांटा मारे और तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे तो इससे ज्यादा अपमानजनक स्थिति दूसरे आदमी के लिए क्या हो सकती है ? तुमने तो उसको कीडा-मकोडा बना दिया। यानी तुमने उसकी आदमियत भी स्वीकार न की। तुमने इतना भी न कहा कि ठीक है, तुमने एक चांटा मारा, एक चांटा हम भी मारेंगे। तो तुम बराबर हो गए होते। तुम तो एकदम आसमान पर चले गए और वह एकदम जमीन पर रेंगता हुआ कीडा हो गया। यह अपमान बरदाश्त नही किया जा सकता। नीत्से ने लिखा है—यह अपमान बरदाश्त के बाहर है। तुमने तो उस आदमी को बिल्कुल मिटा दिया। आदमी भी स्वीकार न किया तुमने। और तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया उसके साथ कि जिसका कोई हिसाब नही। यह सद्व्यवहार न हुआ। नीत्से कहता है, यह तो बहुत दुर्व्यवहार हो गया। सद्व्यवहार यही था कि समानता के हेतु एक चांटा तुमने भी मारा होता तो हम दोनों बराबर हो गए होते; हम एक ही तल पर होते। तुम पहाड पर खडे हो गए, हम खाई में पड गए। वह ठीक कहता है। गाली देने वाला उत्तर में आई गाली से इतना नाराज न होगा क्योंकि यह उसकी अपनी भाषा है। गाली आनी चाहिए। गाली दी ही इसलिए गई है। लेकिन अगर उत्तर में करुणा लौटे तो उसके क्रोध का हिसाब नही रह जाएगा। उसके अपमान और उसकी पीड़ा को नही समझ सकते हम। वह फिर इसका बदला लेगा। तो सोए हुए आदमियो के भीतर एक अनजानी स्वीकृति है इस बात की कि अगर जीना है सबके साथ तो चुपचाप सोए रहो। पागलो के साथ रहना है तो पागल बने रहो। और भीतर भी हमें डर है क्योंकि सब बदल जाएगा। सब बदलने की हम हिम्मत नही जुटा पाते।

इसलिए साधक का पहला लक्षण है—अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना। उसके लिए हम हिम्मत नही जुटा पाते, साहस ही नही जुटा पाते। हम कहते भी हैं कि हमको शान्ति चाहिए, सत्य चाहिए लेकिन हम ये सब बातें इस तरह करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे में ही सब मिल जाए। हमें बदलना न पडे। हमने जो व्यवस्था कर रखी है, जो मकान बना रखा है, जो सम्बन्ध बना रखे हैं, उनमें कोई हेर-फेर न करना पड़े। सब जैसा है वैसा रहे, और कुछ मिल जाए। लेकिन हमें यह पता ही नही है कि अंधे आदमी को आंख मिलेगी तो उसके सब सम्बन्ध बदल जाएंगे। क्योंकि कल के सम्बन्ध अंधे आदमी के सम्बन्ध थे। कल वह जिस आदमी का हाथ पकड कर रास्ता चलता था, अब हाथ पकडने से इन्कार कर देगा। और हो सकता है जिसका हाथ

पकड कर वह चला था, उसे हमेशा यह ख्याल रहा हो कि मैं उसका सहारा हूँ। कल वह हाथ पकडने से इन्कार कर देगा कि क्षमा करो अब मेरे पास आँख है। मैं चल सकता हूँ। तो यह आदमी भी नाराज होगा जिसका उसने सदा हाथ पकडा था क्योंकि अब वह सहारा नहीं मांगता है। सहारा देने का भी सुख है, सहारा देने का भी अहकार है। तो अबे आदमी ने एक तरह सम्बन्ध बनाए थे, आँख वाला आदमी दूसरे तरह के सम्बन्ध बनाएगा। सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है, जागा हुआ आदमी इस दुनिया को बिल्कुल ही अस्त-व्यस्त कर देगा। तो वह भी डर है हमारे भीतर। वह साहस भी नही है। लेकिन अगर थोडा सा साहस हम जुटा पाएँ तो जागना कठिन नही है। क्योकि जो सो सकता है वह जाग सकता है, चाहे कितनी ही गहरी नीद में सोया है। जो सोया है उसमें जागने की क्षमता शेष है।

एक आदमी यहाँ कितनी ही गहरी नीद में सोया हुआ है। हम यहाँ उसके पास जागे हुए बैठे हैं। हम दोनों बिल्कुल भिन्न हालत में हैं। अगर दूसरे सोए हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसको पता नही चलेगा। अगर जागे हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसे पता चलेगा। मकान में आग लग गई तो सोए हुए आदमी को कोई पता नही चलेगा जब तक कि वह जाग न जाएँ। लेकिन जागे हुए आदमी को फौरन पता चल जाता है कि इस मकान में आग लग गई है। ये दोनो आदमी इस मकान में है। एक सोया है, एक जागा। सोया हुआ आदमी सोया हुआ है निश्चित। जागे हुए आदमी को चिन्ता पकड गई। लेकिन फिर भी इन दोनो आदमियो में बुनियादी भेद नही क्योकि सोया हुआ आदमी एक क्षण में जाग सकता है और जागा हुआ आदमी एक क्षण में सो सकता है। यह तो साधारण तल पर जागना और सोना है ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति जाग गया है वह जानता है कि जो सोए हैं, वह जाग सकते है। लेकिन वहाँ एक फर्क है। एक साधारण तल पर जागने और सोने में बुनियादी फर्क नही है क्योंकि जिसे हम जागना कह रहे हैं, वह थोडी कम डिग्री में सोना ही है और जिसको हम सोना कह रहे हैं, वह थोडी कम डिग्री में जागना हो है। उन दोनो में डिग्री का ही भेद है। लेकिन उस तल पर, परम जागरण के तल पर, निद्रा और जागने में डिग्री का भेद नही है, मौलिक रूपान्तरण का भेद है। इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है लेकिन जागा हुआ आदमी सो नही सकता। उस तल पर कोई जागा हुआ आदमी फिर कभी नही सो सकता।

ये रूपान्तरण ऐसे हैं जैसे कि हम दूध को चाहें तो दही बना सकते हैं। फिर दही से वापस दूध नही बना सकते। लेकिन पानी को हम बर्फ बना सकते हैं। बर्फ को हम फिर पानी बना सकते हैं क्योकि बर्फ और पानी में गर्मी के क्रम का भेद है। रूपान्तरण नही हो गया है। जो बर्फ है, वह कल पानी था। वह कल फिर पानी हो सकता है। सिर्फ गर्मी का फर्क पड जाए जो अभी पानी है वह कल बर्फ हो सकता है, भाप हो सकती है। वे सब एक ही चीज की क्रमिक अवस्थाएँ हैं। लेकिन दूध अगर दही हो जाए तो फिर वापस दूध बनाने का कोई उपाय नही। क्योकि दही सिर्फ दूध की एक अवस्था नही है, मौलिक रूपान्तरण है। वह चीज ही नई हो गई है। सब बदल गया है। लेकिन दूध दही हो सकता है। दही दूध नही हो सकती। निद्रा से जागरण आ सकता है लेकिन जागरण से फिर निद्रा का कोई उपाय नही।

जागरण की एकमात्र विधि है कि हम जागने की कोशिश करें। जो भी हम कर रहे हैं उसमें हम जागे हुए होने की कोशिश करें। जैसे अभी आप मुझे सुन रहे हैं। तो आप दो तरह से सुन सकते हैं। बिल्कुल सोए हुए सुन सकते हैं। सोए हुए सुनने में मैं बोल रहा हूँ, आपके कानो पर चोट पड रही है, आप मौजूद नही हैं। सोए हुए सुनने का मतलब है—मैं बोलूँगा, सुनेंगे भी आप और नही भी सुनेंगे। सुनेंगे इन अर्थों में कि आपके पास कान हैं तो कानों पर आवाज की चोट पडती रहेगी, भीतर ध्वनि गूँजती रहेगी। कान समझेंगे कि सुनाई पड रहा है। लेकिन आप अगर मौजूद नही है, भीतर से अनुपस्थित हैं, कही और हैं तो आप सो गए हैं। एक युवक हाकी खेल रहा है, पैर में चोट लग गई है, खेलने में मस्त है, पैर से खून बह रहा है, सारे दर्शको को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून टपक रहा है, जगह-जगह बिन्दुओ की कतार बन गई है लेकिन उसे कोई पता नही। उसका ही पैर है, उसे पता नही। बात क्या है? वह पैर के पास अनुपस्थित है। वह खेल में उपस्थित है। जहाँ ध्यान है, जहाँ उपस्थिति है, वहाँ वह है। जहाँ ध्यान नही है, जहाँ उपस्थिति नही, वहाँ निद्रा है। खेल खत्म हुआ और एकदम से उसने पैर पकड लिया। ओफ! मैं तो मर गया, कितनी चोट लग गई, कितना खून बह गया। इतनी देर मुझे पता क्यों नही चला? पता हमें केवल उसका चलता है जहाँ हम उपस्थित होते हैं। अगर ठीक से समझें तो ध्यान की अनुपस्थिति ही निद्रा है। जो हम कर रहे हैं अगर ध्यान वहाँ अनुपस्थित है तो निद्रा है। और अगर ध्यान वहाँ उपस्थित है तो जागरण है। प्रत्येक क्रिया में ध्यान उपस्थित हो जाए तो जागरण शुरू हो

गया। महावीर जिसको विवेक कहते हैं, उसका यही अर्थ है। क्रिया मे ध्यान की उपस्थिति का नाम विवेक है और क्रिया मे ध्यान की अनुपस्थिति का नाम प्रमाद है।

महावीर का एक भक्त सम्राट् उनसे मिलने आया। रास्ते में ही उस सम्राट् के बचपन का एक साथी महावीर से दीक्षित होकर तपश्चर्या कर रहा है। सम्राट् ने सोचा कि अपने मित्र को भी देखते चले। जब वह मित्र के पास गया तो उसने देखा कि वह जो कि कभी एक राजा था नग्न खडा है, आँखे बंद हैं, एकदम शान्त है। सम्राट् ने उसे नमस्कार किया और मन में कामना की कि कब ऐसी शान्ति मुझे भी उपलब्ध होगी। फिर वह महावीर से मिलने गया और पूछा . मैंने प्रसन्नचन्द्र को देखा खडे हुए। वह अत्यन्त शान्त है, कितना अद्‌भुत हो गया है वह। ईर्ष्या होती है मन मे। मैं पूँछता हूँ आप से कि इस शान्त अवस्था में अगर उसकी देह छूट जाए तो वह कहाँ जाएगा?' महावीर ने कहा कि जिस वक्त तुम वहाँ से गुजर रहे थे, अगर उस वक्त प्रसन्नचन्द्र की देह छूट जाती तो वह सातवे नरक में गिरता। सम्राट एकदम हैरान हो गया। उसने कहा . क्या कहते हैं आप? सातवें नरक में? तो हमारा क्या होगा? सातवे नरक के नीचे और भी नरक हैं क्या? अगर वह शान्त मुद्रा में खडा हुआ सातवें नरक में गिरेगा तो हमारा क्या होगा? महावीर ने कहा नही, तुम समझे नही मेरा मतलब। जब तुम आए, तब वह ऊपर से शान्त दिखाई पड रहा था। भीतर बडी कठिनाई में पडा था। तुमसे पहले ही तुम्हारे वजीर निकले थे, तुम्हारे सैनिक निकले थे। और उन्होंने भी खडे होकर उसे देखा था और एक वजीर ने कहा था, देखो! मूर्ख सब छोड-छाड कर यहाँ खडा है। छोटे-छोटे बच्चे हैं इसके। दूसरो के हाथ में सब छोड आया है। वे सब हडपे जा रहे हैं। जब तक बच्चे बडे होंगे तब तक सब समाप्त हो जाएगा। इसने किया है विश्वास और उधर विश्वासघात हो रहा है। और यह मूर्ख बना यहाँ खडा है। ऐसा उसके सामने कहा था। ऐसा जैसे उसने सुना उसका हाथ तलवार पर चला गया जो अब नहीं था। लेकिन सदा थी तलवार उसके बगल में। हाथ तलवार पर चला गया। तलवार उसने बाहर निकाल ली। उसने कहा वे क्या समझते है अपने को, अभी मैं जिन्दा हूँ, अभी मैं मर नही गया, एक-एक की गरदन उतार दूंगा। और जब तुम उसके पास आए तब वह गरदनें उतार रहा था उस वक्त। अगर वह मर जाता तो सातवे नरक में पड जाता। क्योंकि वह जहाँ था वहाँ नही था। वह गहरी निद्रा में चला गया था। वह

सपना देख रहा था। क्योंकि न तलवार थी हाथ में, न वजीर थे सामने लेकिन सपने में गर्दन काट रहा था। तुम जब निकले वहाँ से अगर वह उस समय मर जाता तब वह सातवें नरक में गिर जाता। लेकिन अब अगर पूछते हो इस वक्त तो वह श्रेष्ठतम स्वर्ग पाने का हकदार हो गया है। लेकिन सम्राट् ने कहा : अभी घडी भर भी नही हुआ हमें वहाँ से गुजरे। महावीर ने कहा कि जब उसने तलवार रख दी नीचे तो जैसी उसकी सदा आदत थी युद्धो के बाद अपने मुकुट को सभालने की, वह सिर पर हाथ ले गया। लेकिन सिर पर तो घुटी हुई खोपड़ी थी। वहाँ कोई मुकुट न था। तब एक सेकेन्ड में वह जाग गया—सारी निद्रा से वापस आ गया। सब स्वप्न खड-खड हो गए। और उसने कहा कि 'मैं यह क्या कर रहा हूँ? और मैं वह प्रसन्नचन्द्र नही हूं अब जो तलवार उठा सके। उसके उठाने का तो मैं ख्याल छोड कर आया हूँ।' और क्षण में वह लौट आया है। इस समय वह बिल्कुल वही खडा है। अभी वह स्वर्ग का हकदार है।

हम सोए है तो हम नरक में हो जाते है, हम जागे हैं तो स्वर्ग में हो जाते हैं। यह जागने की चेष्टा हमें सतत करनी पडेगी। जन्म-जन्म भी लग सकते है। एक क्षण में भी हो सकता है। कितनी तीव्र हमारी प्यास है, कितना तीव्र संकल्प है—इस पर निर्भर करेगा। तो महावीर ने अपने पिछले जन्मो में अगर कुछ भी साधा है तो साधा है विवेक, साधा है जागरण। और इस जागरण की जितनी गहराई बढती चली जाती है उतने ही हम मुक्त होते चले जाते हैं क्योंकि बंधने का कोई कारण नही रह जाता। उतने ही हम पुण्य में जीने लगते हैं क्योंकि पाप का कोई कारण नही रह जाता। उतने ही हम अपने में जीने लगते हैं क्योंकि दूसरे में जीना भ्रामक हो जाता है। उतना ही व्यक्ति शान्त है, उतना ही अनन्दित है, जितना जागा हुआ है। जिस दिन पूर्ण जागरण की घटना घट जाती है, चेतना के कण-कण जागृत हो उठते हैं, कोने-कोने से निद्रा विलीन हो जाती है। उस दिन के बाद फिर लौटना नही। उस दिन के बाद फिर परिपूर्ण जागना। ऐसी परिपूर्ण जागी हुई चेतना ही मुक्त चेतना है। सोई हुई चेतना, बधी हुई चेतना है। इसलिए ध्यान से समझ ले कि पाप नही बाधता है कि हम पुण्य से उसको मिटा सकें। मूर्च्छा बाँधती है। मूर्च्छित पाप भी बाँधता है, मूर्च्छित पुण्य भी बांधता है। मूर्च्छित असंयम भी बाँधता है, मूर्च्छित सयम भी बाँधता है। और इसलिए यह बहुत समझ लेने जैसा है कि अगर कोई असंयम से संयम बनाने में लग गया है तो कुछ भी न होगा, पाप को पुण्य बनाने

में लग गया है तो कुछ न होगा; क्रूरता को दया बनाने में लग गया है तो भी कुछ न होगा; क्योंकि वह व्यक्ति केवल क्रिया को बदल रहा है और उसके भीतर की चेतना वैसी की वैसी अमूर्च्छित बनी है और कई बार उल्टा भी हो जाता है। उल्टे का मतलब यह कि कई बार लोहे की जंजीर ही ठीक है क्योंकि उसे तोड़ने का मन भी करता है। और सोने की जंजीर गलत है क्योंकि उसे सभालने का मन करता है, क्योंकि सोने की जंजीर को जंजीर समझना मुश्किल है। सोने की जंजीर को आभूषण समझना आसान है। इसलिए पापी भी कई बार जागने के लिए आतुर हो जाता है। और जिसे हम साधु कहते है, वह जागने के लिए आतुर नही होता। फर्क ऐसा ही है जैसे कोई आदमी दुखद स्वप्न देख रहा है और एक आदमी सुखद स्वप्न देख रहा है लेकिन सुखद स्वप्न देखने वाला जागना नही चाहता। वह चाहता है कि थोडी देर और सो लूँ। सपना बहुत सुखद है, कोई तोड न दे। और थोडी देर सो लूँ। लेकिन दुखद स्वप्नवाला, (दु स्वप्न) वाला, एकदम जाग जाता है हडबडा कर। पापी दुखद स्वप्न देख रहा है। पुण्यात्मा सुखद स्वप्न देख रहा है। इसलिए बहुत बार डर है कि पापी जाग जाए, पुण्यात्मा रह जाए। मैं यह कहता हूँ कि इसकी फिक्र ही मत करना कि पाप को कैसा पुण्य बनाएँ, असयम को कैसे संयम बनाएँ, हिंसा को कैसे अहिंसा बनाएँ, कठोरता को कैसे दया बनाएँ। इस चक्कर में ही मत पडना। सवाल यह है ही नही कि हम क्रिया को कैसे बदलें। सवाल यह है कि कर्त्ता कैसे बदले ? अगर कर्त्ता बदल जाता है तो क्रिया भी बदल जाती है। क्योंकि तब व्यक्ति किसी क्रिया के करने में असमर्थ और किसी क्रिया के करने में समर्थ हो जाता है। भीतर से कर्त्ता बदला, चेतना बदली।

तो मैं कहता हूँ कि पाप वह है जो सजग व्यक्ति नही कर सकता है और पुण्य वह है जो जागे हुए व्यक्ति को करना ही पड़ता है। इसलिए ऐसे भी पुण्य हैं जो किए हुए पाप हैं क्योकि आदमी ही सोया हुआ है। दिखता पुण्य है, वह होगा पाप ही क्योकि आदमी ही सोया हुआ है। सोया हुआ आदमी कैसे पुण्य कर सकता है ? इसलिए पुण्य दिखाई पडेगा, भीतर पाप छिपा होगा। और ऐसा भी सम्भव है कि जागा हुआ व्यक्ति कुछ ऐसे काम करे जो आपको पाप लगें मगर वे पाप न हो। क्योकि जागा हुआ व्यक्ति पाप कर ही नहीं सकता। इसलिए दोनो तरह की भूलें सम्भव है।

कबीर को एक रात ऐसा हुआ। कबीर थोडे से जागे हुए लोगो में से एक है। रोज लोग आते है कबीर के घर सुबह, भजन-कीर्तन चलता है, कबीर के

पास वैठते हैं, फिर जाने लगते हैं। कवीर कहता है खाना तो खा जाओ। कभी दो सौ, कभी चार सौ गरीव आदमी। कबीर का वेटा और पत्नी परेशान हो गए। और उन्होंने कहा—हमारी वरदाश्त के वाहर है। हम कैसे सम्भाल पाएँ, कैसे इन्तजाम करें ? आपने इतना कह दिया कि 'भोजन कर जाओ।' यह भोजन हम कहाँ से लाएँ ? कबीर ने कहा कि भोजन लाने की व्यवस्था इतनी कठिन नहीं है जितनी घर आए आदमी को खाने के लिए न कहें, यह कठिन है। यह हो नही सकता कि कोई घर में आए और मैं उसको कहूँ कि खाना मत खाओ। तो आप कुछ इन्तजाम करो। आखिर कव तक इन्तजाम चलता। उधारी भी ले ली गई। उधारी भी चढ गई। फिर एक दिन साँझ लड़के ने कहा कि अव वरदश्त के वाहर हो गया है। कोई हम चोरी करने लगें ? कवीर ने कहा . अरे यह तुम्हें ख्याल क्यो नही आया अव तक ? लडके ने क्रोध में कहा था लेकिन यह सुनकर लड़का हैरान हुआ कि कवीर कहते हैं कि तुम्हें चोरी करने का ख्याल क्यों नही आया ? तव लडके ने वात को जाँचने के लिए कहा ' तो क्या मैं चोरी करने जाऊँ ? कवीर ने कहा : हाँ ! अगर मेरी जरूरत हो तो मैं भी चलूँ। लडके ने और जाँचने के लिए कहा अच्छा ठीक है, मैं चलता हूँ। उठो आप। पर उसकी समझ के वाहर हो गई यह वात कि कबीर और चोरी करें। समझ रहे हैं कवीर कि नहीं समझ रहे हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ। फिर जाकर उस लडके ने एक दीवाल खोद डाली, सेंध लगा दी। कवीर से कहता है : जाऊँ भीतर ! कवीर कहते हैं : विल्कुल चला जा। वह भीतर गया। वह वहाँ से एक वोरा गेहूँ खिसका कर लाया वाहर। वाहर वोरा निकल आया। कवीर उसे उठाने लगे और फिर उस लडके से पूछा घर के लोगों को कह आया है कि नही कि हम एक वोरा ले जाते हैं। तब लड़के ने कहा कि चोरी है यह। कोई दान में तो नही ले जा रहे, किसी ने भेंट तो नही की। तव कवीर ने कहा : यह नही हो सकता। तुम जा कर कह आ घर में कि हम चोरी करके एक वोरा ले जा रहे हैं। घर के मालिक को खवर तो कर देनी चाहिए।

वडी अद्भुत वात है। दूसरे दिन लोगो ने कवीर से पूछा तो कवीर ने कहा : वडी गलती हो गई। गलती इसलिए कि यह भाव ही चला गया कि क्या मेरा है, क्या उसका है। तव वाद में ख्याल आया कि चोरी तो उसी भाव का हिस्सा था कि वह उसकी चीज है, यह मेरी। जव मेरी कोई चीज न रही तो किसी की कोई चीज न रही। पर इतनी वात जरूर थी कि घर

से लाये थे, सुबह ढूढेगा, परेशान होगा, इतनी खबर कर देनी चाहिए कि एक बोरा ले जाते हैं।

अब इस आदमी को समझना हमें बडा मुश्किल हो जाएगा। इसके चोरी करने में भी इतना अद्‌भुत पुण्य है क्योकि उसे यह भाव ही खो गया है कि क्या दूसरे का है, क्या अपना ? कबीर जैसा व्यक्ति अगर चोरी करने भी चला जाए तो भी पुण्य है। और हम जैसा व्यक्ति अगर दान भी करता हो तो भी चोरी है। क्योकि दान में भी हमारी जो वृत्ति और मूर्च्छा होगी, वह चोरी की है। दान में भी हमे लगता है कि यह मेरा है और इसे मैं दे रहा हूँ। और कबीर को चोरी में भी नहीं लगता कि वह दूसरे का है और मैं ले रहा हूँ। यह जो फर्क हमें ख्याल में आ जाए तो वह दान हमारा पाप है क्योंकि उसमें 'मेरा' मौजूद है। और कबीर की चोरी को कोई परमात्मा कही बैठा हो तो पाप नही कह सकता क्योकि वहाँ 'मेरा' नही है। हाँ इतनी बात थी कि घर के लोगो को खबर कर देनी थी, नही तो सुबह बेचारे ढूढेगे। वह जो खबर करवाने भेजी है, वह इसलिए नही कि चोरी बुरी चीज है, बल्कि इसलिए कि सुबह घर के लोग व्यर्थ में ही धूप में परेशान होगे, खोजेंगे कि कहाँ चला गया बोरा। इतना जगाकर तू खबर कर आ, मैं घर चलता हूँ।

यह जो ऐसा बहुत बार हुआ है हमें समझना मुश्किल हो जाता है। अब जैसे कृष्ण ही हैं। अर्जुन समझ नही पाया कृष्ण को। अर्जुन समझ लेता तो बात ही और होती। अर्जुन भाग रहा है कि "ये मेरे प्रिय जन हैं, मर जाएँगे।" कृष्ण उसे कहते हैं : "पागल, कभी न कोई मरता है न कोई मारता है।" अब कृष्ण किस तल पर खडे होकर कह रहे है, अर्जुन को कुछ खबर नही। अर्जुन जिस तल पर खडा है, वही समझेगा न ? अर्जुन समझ रहा था—'मेरे हैं।' कृष्ण कहते हैं—'कौन किसका है', यह दो बिल्कुल अलग तलो पर बात हो रही है। और मैं समझता हूँ कि गीता को पढने वाले निरन्तर इस भूल में पडे हैं। क्योकि बिल्कुल, भिन्न तलो पर यह बात हो रही है। अर्जुन कहता है—"ये मेरे प्रिय जन हैं, मेरे गुरु है। मेरे रिश्तेदार हैं।" कृष्ण कहते हैं : "कौन किसका है ? कोई किसी का नहीं है। अपने ही तुम नही हो।" अर्जुन समझ लेता तो फिर ठीक था। मगर उसने गलत समझा। उसने समझा कि जब कोई अपना नही है तो मारा जा सकता है। पीडा तो अपने की होती है। अर्जुन कहता है कि मर जाएँगे तो पाप लगेगा। कृष्ण कहते है कि न कभी कोई मरा और न कभी किसी ने मारा। शरीर के मारने से कही वह मरता है,

जो भीतर है। यह बिल्कुल और तल से कही जा रही है बात। अर्जुन सोचता है कि जब कोई मरता ही नही तो मारने में हर्ज ही क्या है ? मारो। और यह भूल निरन्तर चलती रही है। यानी मैं मानता हूँ कि अगर अर्जुन कृष्ण को ठीक समझ जाता तो महाभारत का युद्ध कभी नहीं हो सकता था। लेकिन अर्जुन समझा ही नही। और समझने की कठिनाई जो थी वह भी मैं मानता हूँ। कठिनाई यही है कि कृष्ण जिस चेतना में खडे होकर कह रहे हैं, वह अर्जुन की चेतना नही है। सवाल अर्जुन की चेतना को बदलने का है। जो अर्जुन ने समझा, वह उसने किया। अब अगर कबीर का बेटा—कल कबीर मर जाए, और कल उसके घर में खाना न हो तो चोरी कर लाएगा क्योंकि वह कहेगा कि चोरी में पाप ही क्या है ? क्योंकि खुद कबीर ने साथ दिया था चोरी में। लेकिन कबीर जिस चोरी को गया था, वह बात और थी। और कमाल उसका बेटा जिस चोरी को चला जाए वह बात और है। यह दो तल की बातें थी जिनमें भूल हो जानी सम्भव है। और ऐसी ही भूल कृष्ण और अर्जुन के बीच हो गई है और वह भूल अब तक नहीं मिट सकी। और हजार-हजार टीकाएँ लिखी गई हैं गीता पर। लेकिन किसी को भूल ख्याल में नही। भूल बुनियादी हो गई है। दो अलग चेतनाओं के बीच में हुई बात में निरन्तर भूल हो गई है। क्योंकि जो कहा गया वह समझा नही गया। जो समझा गया वह कहा नही गया। इसलिए मेरा जोर निरन्तर यह है कि हम कर्म को बदलने के विचार में न पडे, हम चेतना को बदलने के विचार में पडें क्योंकि चेतना से कर्म आता है। चेतना बदल जाती है तो कर्म बदल जाते हैं।

महावीर की पूरी साधना विवेक की साधना है, संयम की साधना नही। क्योंकि विवेक से संयम छाया की तरह आता है। लेकिन निरन्तर यह समझा गया है कि महावीर संयम की साधना कर रहे हैं। और वह बुनियादी भूल है।

प्रश्न : मुक्त आत्माओ में करुणा शेष रह जाती है और करुणा भी वासना का ही एक सूक्ष्म रूप है—ऐसा आपने कहा। वासना में सदा द्वन्द्व रहता है। सदा दो रहते हैं—परस्पर विरोधी दो। ऐसी स्थिति मे करुणा का विरोधी कौन सा तत्त्व है, जो मुक्त आत्माओ मे शेष रह जाता है ?

उत्तर : पहली बात यह है कि करुणा वासना का सूक्ष्म रूप है—ऐसा नही। करुणा वासना का अन्तिम रूप है। इन दोनो में भेद है। अन्तिम रूप से मेरा

मतलव है कि वासना और निर्वासना के वीच जो सेतु है—चाहे हम करुणा को वासना का अन्तिम रूप कहें, चाहे करुणा को निर्वासन का प्रथम रूप कहें, यह वीच की कडी है, जहाँ वासना समाप्त होती है और निर्वासना शुरू होती है। करुणा सूक्ष्म रूप नही है वासना का। अगर सूक्ष्म रूप हो तो करुणा में भी द्वन्द्व रहता ही है। इसलिए वासना में दु ख है क्योकि जहाँ द्वन्द्व हैं, वहाँ दु ख है। वासना चाहे कितनी ही सुखद हो, उसके पीछे उसका दुखद रूप खड़ा ही रहेगा। सव वासनाएँ एक सीमा पर अपने से विपरीत में बदल जाती हैं। प्रत्येक वासना का विरोवी तत्क्षण मौजूद ही रहता है। वह कभी अलग होता ही नही। जव हम प्रेम की वात करते हैं, तभी घृणा खडी हो जाती है। जव हम क्षमा की वात करते हैं, तभी क्रोध खडा हो जाता है। जव हम दया की वात करते हैं, तभी कठोरता आ जाती है। यानी अगर ठीक से समझें तो दया कठोरता का ही अत्यन्त कम कठोर रूप है। यानी जो फर्क वह वह इस तरह का जैसे (ठडे और गरम में। गरम ठडे में फर्क क्या है? गरम-ठंडी दो चीजें नही हैं। ये एक ही तापमान के दो तल हैं। हम ऐसा समझे तो ठीक समझ में आ जाएगा। एक वर्तन में गरम पानी रखा है। दूसरे वर्तन में विल्कुल ठढा पानी रखा है। आप दोनो में अपने दोनो हाथ डाल दें। एक आइसकोल्ड ठडे पानी में, एक उवलते हुए गरम पानी में। फिर दोनो हाथों को निकालकर एक ही वाल्टी में डाल दें, जिसमें साधारण पानी रखा है। और तव आप हैरान रह जाएँगे। आपका एक हाथ कहेगा कि पानी वहुत ठंडा है। और आपका दूसरा हाथ कहेगा कि पानी वहुत गरम है। और पानी विल्कुल एक वाल्टी में है। आपके हाथ की ठडक और गर्मी पर निर्भर करेगा कि आप इस पानी को क्या कहते हैं। और आप वडी मुश्किल में पड जाएँगे कि इस पानी को क्या कहें? क्योकि एक हाथ खवर दे रहा है कि पानी ठडा है, दूसरा हाथ खवर दे रहा है कि पानी गरम है।)

कठोरता और दया इसी तरह की चीजे हैं। इनमें जो भेद है, वह भेद अनुपात का है। तव यह भी हो सकता है कि एक वहुत कठोर आदमी को जो चीज वहुत दयापूर्ण मालूम पडे, एक वहुत दयापूर्ण आदमी को वह चीज वहुत कठोर मालूम पडे। वह तो सापेक्ष होगा। तैमूरलग जैसे आदमी को जो वात वहुत दयापूर्ण मालूम पडे वह गांधी जैसे आदमी को अत्यन्त कठोर मालूम पड सकती है। दोनो हाथ हैं लेकिन एक ठडा, एक गरम। तो पानी की खवर वे वैसी देंगे। नैतिक पुरुष इसी द्वन्द्व में जीता है, इसके वाहर नही जाता। वह

कहता है—कठोरता छोड़ो, दया पकड़ो; शोषण छोडो, दान पकडो, हिंसा छोड़ो, अहिंसा पकडो। नैतिक व्यक्ति कहता है कि जो बुरा है, उसे छोडो, जो अच्छा है उसे पकडो। लेकिन, वह यह भूल जाता है कि जिसे वह अच्छा कह रहा है, वह उसी बुरे की अत्यन्त छोटी, कम विकसित अवस्था है। वह उससे भिन्न और विरोधी नही है। लेकिन जैसे ही व्यक्ति वासना से निर्वासना के जगत् में प्रवेश करता है तो बीच की एक बफर स्टेज, जिसको कहना चाहिए दो अवस्थाओं के बीच का रिक्त स्थान, उसमें भी करुणा सेतु है। करुणा कठोरता का उल्टा नही है। करुणा और दया समानार्थक नही हैं। दया कठोरता की प्रहरी है इस फर्क को ठीक से समझ लेना उपयोगी होगा। जब मैं किसी व्यक्ति पर दया करता हूँ तब ध्यान में दूसरा व्यक्ति होता है जिस पर मैं दया कर रहा हूँ। भूखा है, दयायोग्य है। दया दूसरे की दीनता पर, दुख पर, दरिद्रता पर निर्भर करती है। दूसरा केन्द्र में होता है। और जब मैं कठोर होता हूँ तब भी दूसरा केन्द्र में होता है। यह दूसरा दुश्मन है, बुरा है, उसे मिटाना जरूरी है। दया और अदया—दोनो में दृष्टि बिन्दु दूसरे पर होती है। करुणा का दूसरे से कोई सम्बन्ध नही। दूसरा कैसा है, करुणा का इससे प्रयोजन नहीं। मैं कैसा हूँ, यह प्रयोजन है। मैं करुणापूर्ण हूँ।

जैसे एक दिया जल रहा है और उससे रोशनी बरस रही है। पास से कोई निकलता है, इससे दिया रोशनी कम और ज्यादा नही करता। कौन पास से निकलता है—अच्छा या बुरा आदमी, दीन, दरिद्र, या धनवान्, हारा हुआ कि जीता हुआ, दिया जलता रहता है। कोई नही निकलता तब भी जलता रहता है। क्योंकि दिए का जलना दूसरे पर निर्भर नहीं करता। दिए का जलना उसकी अन्तर अवस्था है। एक भिखारी सडक पर निकला तो आप दयापूर्ण हो गये। लेकिन अगर एक सम्राट् निकला तो फिर आप कैसे दयापूर्ण होंगे ? भिखारी निकला तो आप दयापूर्ण होंगे और सम्राट् निकला तो आप दया की आकाक्षा करेंगे। क्योंकि दया दूसरे से बंधी थी, आप पर निर्भर नही थी। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति के पास से कोई निकले—दीन, भिखारी या सम्राट्—इससे कोई फर्क नही पड़ता। करुणा बरसती रहेगी, सम्राट् पर भी उतनी ही, भिखारी पर भी उतनी ही क्योंकि करुणा दूसरे पर निर्भर नहीं करती है। महावीर का दिया है जो जल रहा है, जिससे रोशनी बरस रही है। इसलिए करुणा को कोश शब्द में जो दया का पर्यायवाची बताया जाता है वह बुनियादी भूल है। एकदम भूल है। दया बात ही और है। दया कोई अच्छी चीज नही। हाँ, बुरी चीजों में अच्छी है।

करुणा बात ही और है। करुणा से विपरीत कुछ भी नही है। करुणा मे द्वन्द्व नहीं है। दया मे द्वन्द्व है क्योकि दया सकारणा है। वह आदमी दोन है, इसलिए दया करो, वह आदमी भूखा है, इसलिए रोटी दो, वह आदमी प्यासा है, इसलिए पानी दो। उसमें दूसरे आदमी की शर्त है। करुणा है बिना शर्त। दूसरा कैसा है इससे इसका कोई सम्बन्ध नही। मैं करुणा दे सकता हूँ। इससे कोई फर्क नही पडता कि वह कैसा है, कौन है, क्या है? अगर कोई भी नही तो भी करुणापूर्ण व्यक्ति अकेले में खडा है। अगर महावीर एक वृक्ष के नीचे अकेले खडे है, कई दिन बीत जाते हैं और कोई नही निकलता वहाँ से तो भी करुणा झरती रहती है। जैसे एक फूल खिला है निर्जन में और उसकी सुगन्ध फैल रही है। रास्ते से कोई निकलता है तो उसे मिल जाती है, अगर कोई नही निकला तो भी झरती रहती है। सुगध देना फूल का स्वभाव है। राहगीर को देखकर नही कि कौन निकल रहा है। इसको जरूरत है कि नही यह सवाल ही नही। यह फूल का आनन्द है। करुणा एक अन्तर अवस्था है, दया अन्तः सम्बन्ध है, अन्तर अवस्था नही। मैं किससे जुडा हूँ, दया इस पर निर्भर करती है। मैं इधर से भी ले सकता हूँ, उधर से भी ले सकता हूँ। मैं किससे जुड़ा हूँ इस पर निर्भर करेगी यह बात। मगर करुणा अन्तर अवस्था है और वासना का अन्तिम छोर है अन्तिम छोर इन अर्थों में कि उसके बाद फिर निर्वासना का जगत शुरू हो जाता है या निर्वासना का प्रथम छोर है क्योकि उसके बाद निर्वासना शुरू हो जाती है।

वासना का जगत् द्वन्द्व का जगत् है। यह थोड़ा समझने जैसा होगा। वासना द्वैत का जगत् है—जहाँ दो के बिना काम नही चलता। सब चीजें विरोधी होगी। अंधेरा प्रकाश, जन्म मृत्यु—ऐसा जहाँ विरोध होगा। वासना और निर्वासना के बीच में अद्वैत का सेतु है। वासना है द्वैत—जहाँ हम स्पष्ट कहेंगे दो है। और बीच का सेतु है अद्वैत—जहाँ हम कहेंगे : दो नही है। अभी हम दो का उपयोग करेंगे। पहले कहते थे, दो हैं, अब हम कहेंगे—'दो नहीं है।' निर्वासना का जो जगत् है वहाँ तो हम यह भी नही कह सकते कि अद्वैत है। क्योंकि वहाँ 'दो' का शब्द भी उठाना गलत है। वासना में संख्या का सवाल है, निर्वासना में संख्या का सवाल ही नही। यानी यह भी कहना गलत है वहाँ कि 'दो नही है।' बीच का जो सेतु है, वहाँ हम कह सकते हैं कि 'दो नही है' क्योंकि वासना छूट गई है और निर्वासना अभी आ रही है। बीच के अन्तराल में करुणा है। करुणा अद्वैत है। अद्वैत के भी ऊपर एक लोक है,

जहाँ से यह भी कहना गलत है कि 'अद्वैत' अर्थात् जहाँ हम कहें 'दो नहीं'। पहले 'दो हैं' ऐसी एक सार्थकता थी; फिर दो नही ऐसी एक सार्थकता थी, अब कुछ भी कहना मुश्किल है। मौन हो जाना ही ठीक है। अब 'एक', 'दो' या 'तीन' का कोई सवाल ही नही उठता। वह है निर्वासना। लेकिन, इसके पहले कि हम संख्या से असंख्या में पहुँचे, सीमा से असीमा में पहुँचे, बीच में निषेध का एक क्षण, निषेध की एक यात्रा है। वह है करुणा जिसका कोई विरोधी हो नहो है। दया का विरोधी है, करुणा का विरोधी नही है। (बुद्ध ने करुणा कहा है महावीर उसे अहिंसा कहते हैं; जीसस उसे प्रेम कहते है। ये शब्दो की पसंदगियाँ हैं।) ये सभी शब्द सेतु पर इंगित करते है करुणा से गुजरना पडेगा, बुद्ध कहते है। अहिंसा से गुजरना पडेगा, महावीर कहते हैं। प्रेम से गुजरना पडेगा, जीसस कहते हैं। यह सिर्फ शब्द भेद है, सेतु एक ही है जहाँ से हम द्वन्द्व से छूटते हैं और द्वन्द्व-मुक्त में जाते हैं। बीच में एक जगह है जिसे मैंने कहा है करुणा, अहिंसा, प्रेम। इसका विरोधी कोई भी नही। कुछ चीजो के विरोधी होते हैं, कुछ चीजों के विरोधी नही होते। जिनके विरोधी नही होते, वे सेतु बनते है। और फिर आगे तो न पक्ष है, न विपक्ष है, विरोधी का सवाल ही नही है क्योकि वह ही नही है जिसका विरोधी हुआ जा सके।

प्रश्न : द्रष्टा-भाव मे संसार स्वप्न है, ऐसा आपका कहना है। किन्तु यह व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की बात हुई। वस्तुपरक दृष्टि से संसार क्या स्वप्न ही है ? इस सम्बन्ध मे महावीर की दृष्टि शंकराचार्य के मायावाद से कहाँ भिन्न है ?

उत्तर . मैंने कल रात कहा था कि अगर स्वप्न में कर्त्ता भाव आ जाए तो स्वप्न सत्य हो जाता है। इससे ठीक उल्टे, अगर सत्य में, यथार्थ में कर्ता भाव आ जाए तो वह सत्य भी स्वप्न हो जाता है। इसमें अहंकार ही सूत्र है। चाहे तो स्वप्न को सत्य बना लो, और चाहो तो सत्य को स्वप्न कर दो। यह मैंने कल कहा था। उसी सम्बन्ध में यह प्रश्न है। इसका यह मतलब हुआ कि अगर हम समझ ले कि जगत् स्वप्न है तो क्या सचमुच ही जगत् नही है या कि यह स्वप्न होने का भाव सिर्फ मेरा आत्मपरक ही है। मुझे ऐसा लग रहा है कि यह मकान नहीं है, सपना है तो क्या इसका यह मतलब मान लिया जाए कि सच में ही मकान नही है, खाली जगह है यह। जैसा कि रात सपने का मकान खो जाता है ऐसे ही यह मकान भी क्या इतना ही असत्य है ? तो फिर

शकर के मायावाद में कि सब जगत् माया है, और महावीर के द्वैतवाद में—क्योंकि महावीर जगत् को माया नही कहते हैं—क्या फर्क है ?

इसमें वहुत वातें समझनी होंगी। पहली बात यह कि स्वप्न भी असत्य नही है। स्वप्न का भी अस्तित्व है। जब आप सपना देखते हैं तो आप सुबह जाग कर कहते हैं कि 'सब सपना था, कुछ भी न था।' लेकिन जो न हो तो सपने तक भी नही हो सकता है। स्वप्न के बावत वडी भ्रान्ति है। स्वप्न असत्य नही है। स्वप्न की अपनी तरह की सत्ता है, अपने तरह का सत्य है उसमें। वह सूक्ष्म मानस परमाणुओ का लोक है; तरल परमाणुओ का लोक है। असत्य नही है। असत्य का मतलव होता है जो है ही नही। तो तीन चीजे हैं। असत्य, जो है ही नही। सत्य, जो है। और इन दोनों के वीच में एक स्वप्न है जो न तो इन अर्थों में नही है जिन अर्थों में खरगोश के सीग या वांझ मां का बेटा। और न इन अर्थों में है जैसे पहाड। जो दोनों के वीच है, जो हो भी किसी सूक्ष्म अर्थ में, और जो न भी हो किसी सूक्ष्म अर्थ में। शकर का भी 'माया' से यही मतलव है। शंकर कहते हैं तीन यथार्थ हैं—सत्, असत् और माया। माया को मिथ्या कहिए तो भी कोई फर्क नही पड़ता। लेकिन मिथ्या से लोगो को ख्याल होता है कि जो नही है। एक तो ऐसी चीज है जो है हो नही और एक ऐसी चीज है, जो विल्कुल है। और, एक ऐसी चीज है, जो दोनो के वीच में है, जिसमें दोनो के गुण मिलते हैं।

स्वप्न असत्य नही है। हां, जागरण-जैसा वह सत्य नही है। स्वप्न का अपना सत्य है। और अगर स्वप्न के सत्य की खोज में कोई जाए तो जितना सत्य उसे वाहर की दुनिया में मिल सकता है, उतना ही सत्य वहाँ भी मिल सकता है। लेकिन हम तो वाहर की दुनिया में ही नही जा पाते, स्वप्न की दुनिया में जाना तो वहुत मुश्किल है। क्योकि विल्कुल छायाओ का लोक है वह जहाँ अत्यन्त तरल चीजें हैं जिनको मुट्ठी में वांधना मुश्किल है। स्वप्न में भी खोज की जा सकती है, और होती रही है। जो लोग स्वप्न-लोक की गहराइयो मे गए हैं वे वहुत हैरान हो गए हैं कि जिसको हम स्वप्न कहते हैं वह वहुत गहरे अर्थों मे हमारे सत्य लोक से जुडा है। वहुत से स्वप्न हमारे पिछले जन्मो की स्मृतियाँ है, वहुत से स्वप्न हमारे भविष्य की झलक हैं वहुत से स्वप्न हमारी अन्तर्यात्राएँ हैं मनोजगत् में, जिनका हमें पता नही चलता क्योकि इस देह से वे यात्राएँ नही होती, सूक्ष्म देहो से होती हैं।

तो मै स्वप्न को असत्य नही कहता हूँ। फर्क इतना ही कर रहा हूँ कि स्वप्न में जो सत्य दिखाई पडता है, वह स्वप्न के सत्य होने से नहीं आता। वह हमारे कर्त्ता होने से आता है। और हमारा कर्त्तापन मिट जाए तो हमारे लिए स्वप्न मिट जाएगा, स्वप्न का सत्य तो वना ही रहेगा। अगर हमारा कर्त्तापन का भाव मिट जाए, अगर मैं नीद में जाग जाऊँ और मुझे ख्याल आ जाए कि यह स्वप्न है और मैं तो सिर्फ स्वप्न देख रहा हूँ तो एकदम विलीन हो जाएगा। इसका यह मतलव नही कि स्वप्न के सत्य नष्ट हो गए। स्वप्न के सत्य अपने वल पर वने रहेंगे।

कर्त्ताभाव से स्वप्न में सत्य प्रकट हुआ था। अब वह अप्रकट हो गया। ठीक ऐसे ही जागने में जो चीजें हमें दिखाई पड रही हैं वे हैं। उनकी अपनी सत्ता है। महावीर को भी निकलना हो, शंकर को भी निकलना हो तो दरवाजे से निकलेंगे, दीवाल से नही निकलेंगे। माया या स्वप्नवत् कहने का मतलव वहुत दूसरा है। वह यह है कि दीवाल यानी वस्तु का अपना एक सत्य है। लेकिन वह सत्य एक वात है और हम कर्त्ता होकर, मोहग्रस्त, अहंग्रस्त होकर उस पर और सत्य प्रोजेक्ट कर रहे हैं जो कही भी नहीं है। जैसे एक मकान है, उसका अपना सत्य है। लेकिन यह मकान मेरा है यह विल्कुल ही सत्य नही है। 'यह मेरा', विल्कुल मेरे प्रक्षेप (प्रोजैक्शन) की वात है। मकान को पता भी नहीं होगा कि मैं किसका था और कई वार इसकी भ्रान्तियाँ गहरी हैं। जैसे कि हम कहते हैं कि यह देह मेरी है। आपको ख्याल होना चाहिए कि इस देह में करोडो कीटाणु जी रहे हैं और वे समझ रहे है कि यह देह उनकी है। और उनमें से किसी को पता नही कि आप भी इसमें हैं एक। आपका विल्कुल पता नही। जव आपको कैंसर हो गया, घाव हो गया, नासूर हो गया और दस कीडे उसमें पल रहे हैं तो आप सोच रहे हैं कि यह मेरी देह को खाए जा रहे हैं। कीडों को ख्याल भी नही हो सकता। कीडो को अपनी देह है, वह उसमें जी रहे हैं। जव आप उन्हें हटाते हैं, तो उनको स्वत्व से वंचित कर रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि आपकी देह मे कितने लोग देह वनाए हुए हैं। और वह अरवों, खरवों कीटाणु देह वनाए हुए हैं और सव यह मान रहे हैं कि उनकी देह है। जव हम यह कह रहे हैं कि वस्तु की अपनी सत्ता है, इस देह की अपनी सत्ता है तो 'मेरा है', यह धारणा विल्कुल स्वप्नवत् हो जाती है। जिस दिन आप जागेंगे, देह रह जाएगी और अगर 'मेरा' न रह जाए तो 'देह' वहुत और अर्थों में प्रकट होगी, जिन अर्थो में वह कभी प्रकट नही हुई थी। 'मेरे' की

वजह से ही उसने दूसरा रूप ले लिया था। जब मैं कह रहा हूँ कि अगर हम जाग जाएँ, और कर्त्ता मिट जाए, साक्षी रह जाए तो भी वस्तुओ का सत्य रहेगा। लेकिन तब वह वस्तु सत्य रह जाएगी। और मैं उसमें कुछ प्रक्षेप (प्रोजेक्ट) नही करूँगा। और तब एक बहुत बडी दुनिया मिट जाएगी एकदम जिसको आप अपना बेटा कह रहे हैं, उसको आप अपना बेटा नही कहेंगे। अगर आप बिल्कुल 'साक्षी' हो गए तो आप सिर्फ पैसिव (निष्क्रिय) रह जाएँगे, एक द्वार रह जाएँगे जिससे वह व्यक्ति आया। लेकिन आप पिता नही रह जाएँगे। और बहुत गहरे में देखेंगे तो पता चलेगा कि आपने अपने शरीर का मैल छोड दिया है। इस मैल के आप पिता नही कहलाते और आप अपने वीर्य अणुओ के पिता कैसे हो सकते हैं। यह मैल भी शरीर में उसी तरह पैदा होता है जिस तरह वीर्य अणु पैदा होते हैं। यह नाखून आप काटकर फेंक देते हैं और यह बाल आप काटकर फेंक देते हैं, कभी नही कहते कि मैं इनका पिता हूँ। कभी लौट कर भी नही देखते इन्हें। जिस शरीर ने ये सब पैदा किए हैं उसी शरीर ने वीर्य अणु भी पैदा किए हैं। आप कौन हैं? आप कहाँ हैं? यानी मैं यह कह रहा हूँ कि अगर आप ठीक से साक्षी हो जाएँ तो कौन पिता है? कौन बेटा है? क्या मेरा है? यह सब एकदम विदा हो जाएगा। और ये अगर सारे अन्ब' सम्बन्ध एकदम विदा हो जाएँ तो जगत् बिल्कुल दूसरे अर्थों में प्रकट होगा। तब जगत् होगा, आप होंगे लेकिन बीच में कोई सम्बन्ध नही होगा। जो हम बाँधते हैं, वह सब विदा हो जाएगा।

जब मैं यह कहता हूँ कि आप अगर जाग जाएँगे तो जगत् स्वप्नवत् हो जाएगा मेरा मतलब यह नही कि जगत् झूठा हो जाएगा। जगत् और अर्थो में रहेगा। जिन अर्थों में आज है, उन अर्थों में नहीं रह जाएगा। स्वप्न भी बचता है, वह कही खो नही जाता। उसकी भी सार्थकता है। और आप हैरान होंगे कि थोडी भी चेष्टा करें तो एक ही स्वप्न में हजार बार प्रवेश कर सकते हैं। हमको क्यो स्वप्न मिथ्या मालूम पडता है? उसका कारण है कि आप स्वप्न में दुबारा प्रवेश नही कर पाते। और एक ही मकान में दुबारा जग जाते हैं तो मकान सच्चा मालूम होने लगता है क्योकि बार-बार इसी मकान में आप जगते है रोज सुबह। यही मकान, यही दूकान, यही मित्र, यही पत्नी, यही बेटा—तो यह बार-बार घूमता है। अगर हर बार सुबह आप जागें और मकान दूसरा हो जाए तो आपको मकान का सत्य भी उतना ही झूठा लगेगा जितना स्वप्न का। क्या भरोसा कि कल सुबह क्या हो जाए? सपने में आप एक ही बार जा पाते

हैं, दुवारा उस सपने को आप चालू नही कर पाते। क्योकि आप जागने में ही अपने मालिक नही है, सोने की मालकियत तो वहुत दूर की वात है। आप सपने में कैसे जा सकते हैं? लेकिन इस तरह की पद्धतियाँ और व्यवस्थाएँ है कि एक ही स्वप्न में वार-बार जाया जा सकता है। तब आप हैरान रह जाएँगे कि स्वप्न इतना ही सत्य मालूम होगा जितना यह मकान। क्योंकि आज स्वप्न में एक स्त्री आपकी पत्नी थी तो कल वह नहीं रह जाएगी। कल आप खोजें कितना भी तो भी पता नही चलेगा कि वह कहाँ गई। लेकिन अगर ऐसा हो सके, और ऐसा हो सकता है कि रोज रात आप सोएँ और एक निश्चित स्त्री रोज रात सपने में आपकी पत्नी होने लगे, ऐसा दस वर्ष तक चले तो आप ग्यारहवें वर्ष पर यह कह सकेंगे कि रात झूठ है? आप कहेंगे जैसा दिन सच्चा है, वैसी रात भी सच्ची है। स्वप्न को स्थिर करने के भी उपाय हैं। उसी स्वप्न में रोज-रोज प्रवेश किया जा सकता है। तव वह सच्चा मालूम होने लगेगा। और अगर हम गौर से देखें तो रोज-रोज हम उसी मकान में सुवह जागते भी नही जिसमें हम कल सोए थे। क्योंकि मकान वुनियादी रूप से बदल जाता है। अगर हमारी दृष्टि उतनी भी गहरी हो जाए कि हम वदलाहट को देख सकें तो जिस पत्नी को आपने कल रात सोते वक्त छोडा था, सुवह आपको वही पत्नी उपलब्ध नही होती। उसका शरीर वदल गया, उसका मन बदल गया, उसकी चेतना वदल गई। उसका सब वदल गया। लेकिन उतनी सूक्ष्म दृष्टि भी नही है हमारी कि हम उतनी गहरी दृष्टि से जाँच कर सकें कि सव वदल गया है, यह तो दूसरा व्यक्ति है। इसलिए आप कल की अपेक्षा करके झंझट में पड जाते हैं। कल वह वड़ी शान्त थी। वडी प्रसन्न थी। आज सुवह से वह नाराज हो गई। आप कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। क्योकि आप अपेक्षा कल की लिए वैठे हैं। कल उसने वहुत प्रेम किया था और आज विल्कुल पीठ किए हुए है। आपको लगता है कि यह कुछ गडवड हो रहा है। लेकिन आपको ख्याल नही है कि सव चीजें वदल गई है। जिस दिन हम वहुत गहरे में इत्तर घुम जाएँ यानी अगर गहरे स्वप्न में चले जाएँ तो स्वप्न भी मालूम होगा वही है। और अगर गहरे सत्य में चले जाएँ तो पता चलेगा कि वही कहाँ है? रोज वदलता चला जा रहा है।

मेरा कहने का प्रयोजन यह है कि इन सारी स्थितियों में, चाहे स्वप्न, चाहे जागरण, अगर 'साक्षी' जग जाए तो विल्कुल ही एक नई चेतना का जागरण होता है। लेकिन उससे कोई मिथ्या जगत् हो जाता है ऐसा नही। उससे सिर्फ

इतना हो जाता है कि जो कल तक जगत् हमने बनाया था वह विदा हो जाता है और एक बिल्कुल नया वस्तुपरक सत्य सामने आता है। जो हमने बनाया था, वह विदा हो जाता है।

महावीर उसके लिए 'माया' का प्रयोग नही करते क्योंकि 'माया' के प्रयोग से लगता है जैसे कि सब झूठ है। वे कहते है कि वह भी सत्य है। यह भी सत्य है। लेकिन दोनो सत्यो के बीच हमने बहुत से झूठ गढ रखे हैं, वे विदा हो जाने चाहिएँ। तब पदार्थ भी अपने में सत्य है और परमात्मा भी अपने में सत्य है। और बहुत गहरे में दोनो एक ही सत्य के दो छोर हैं। शकर उसके लिए 'माया' का प्रयोग करते हैं, उसमें भी कोई हर्ज नही है क्योंकि जिसमें हम जी रहे है वह बिल्कुल माया जैसी बात है। एक आदमी रुपए गिन रहा है, ढेर लगाता जा रहा है, तिजोरी में बन्द करता जा रहा है। रोज गिनता है और रोज बन्द करता है। अगर हम उसके मनोजगत् में उतरे तो वह रुपयो की गिनती में जी रहा है। और बडे मजे की बात है कि रुपयो मे क्या है जिसकी गिनती मे कोई जिए। कल सरकार बदल जाए और कहे कि पुराने सिक्के खत्म तो उस आदमी का पूरा का पूरा मनोलोक एकदम तिरोहित हो जाएगा। वह एकदम नगा खडा हो गया। अब कोई गिनती नही है उसके पास। तो हम स्वप्न के जगत् मे जी रहे हैं और ऐसे ही सिक्के हमने सब तरफ बना रखे हैं—परिवार के, प्रेम के, मित्रता के, जो कल सुबह एकदम बदल जाएँगे नियम बदल जाने से।

मुझे एक मित्र ने एक पत्र लिखा। बहुत बढिया पत्र था। कुछ लोग मेरे साथ थे, साथ नही रह गए। उन्होंने मुझे पत्र लिखा। और हम सबको यह भ्रान्ति होती है कि जो साथ है, वह सदा साथ है, यह बिल्कुल पागलपन है। जितनी देर साथ है, बहुत है। जिस दिन अलग हो गए, अलग हो गए। जैसे साथ होना एक सत्य था, वैसे अलग होना एक सत्य है। साथ ही बना रहे तो फिर हम एक माया के जगत् में जीना शुरु कर देते है। आप मेरे मित्र हैं, तो बात काफी है इतनी। आप कल भी मेरे मित्र हो, तो फिर मैंने एक कल्पना जगत् में जीना शुरू कर दिया। फिर मैं दुःख भी पाऊँगा, पीडा भी पाऊँगा। अपेक्षा मैंने बना ली। कल कौन कह सकता है क्या हो जाए? रास्ते कभी हमारे पास आ जाते हैं, कभी चले जाते हैं। कभी एक दूसरे का रास्ता कटता भी है। कभी बडे फासले हो जाते हैं तो कुछ मित्र मुझे छोडकर चले गए हैं। एक मित्र ने मुझे एक कहानी लिखी। उसने लिखा कि यूनान में एक बार ऐसा हुआ कि एक

साधु था एथेन्स नगर में। उस साधु पर मुकदमा चला। उसकी बातो को एथेन्स नगर के न्यायाधीशो ने कहा कि लोगो को बिगाड देने वाली हैं। इसलिए हम तुम्हें नगर निकाला देते हैं, नगर से बाहर किए देते है। साधु नगर से निकाल दिया गया। वह एथेन्स छोडकर दूसरे नगर में चला गया। दूसरे नगर के लोगो ने उसका बडा स्वागत किया क्योकि उस साधु की जो मान्यताएँ थी उस नगर के लोगों से मेल खा गईं। उस नगर का एक नियम था कि जो भी नया आदमी उस नगर में मेहमान बने, सारा नगर मिलकर उसका मकान बना दे। तो राज ने ईंटे जोड दी, ईंटें बनाने वाले ने ईंटें ला दी। पत्थर वाला पत्थर लाया, बढई लकडी लाया। खपरा लाने वाला खपरा लाया। सारे ग्राम के लोगो ने श्रम किया। जल्दो ही उसका एक मकान बन गया। प्रवेश होने क तैयारी हो रही है। साधु द्वार पर आया। तभी गाँव एकदम मकान पर टूट पडा। छप्पर वाला छप्पर ले गया, ईंट वाला ईंट ले गया, दरवाजे वाला दरवाजा निकालने लगा। सब चीजे एकदम अस्त-व्यस्त होने लगो। सारा मकान एकदम टूटने लगा। तब साधु ने खड़े होकर पूछा कि यह क्या बात है ? मुझसे कोई गलती हो गई क्या ? तो जो लोग सामान ले जा रहे थे उन्होंने कहा नही, तुम्हारी गल्ती का सवाल नहो। हमारा सविधान बदल गया। कल तक हमारे विधान में यह बात थी कि जो भी नया आदमी गाँव मे आए और रहे उसका हम मकान बनाएँ। रात की धारासभा में वह हमने खत्म कर दिया। हमारा विधान बदल गया। इसलिए हम अपना-अपना सामान लिए जा रहे हैं। बात खत्म हो गई। अब तुम्हारा प्रवेश हो जाता तो मुश्किल हो जाता। इसलिए हमें जल्दी करनी पड रही है। तुम्हारे प्रवेश के बाद पुराना संविधान लागू हो जाता। अभी तुम्हारा प्रवेश नही हुआ, इसलिए हम इसे लिए जा रहे हैं। मित्र ने मुझे यह कहानी लिखी और यह पूछा : क्या साधु की कोई भूल थी। मैंने उत्तर दिया कि साधु की एक ही भूल थी। उसने आदमियो के बनाए हुए नियम को ज्यादा मूल्य दिया था। जो आदमी नियम बनाते है वे कभी भी तोड सकते है। साधु की भूल इतनी ही थी कि उसने यह भी क्यो पूछा कि क्या मुझसे कोई भूल हो गई है ? यह भी नही पूछना था। उसे जानना चाहिए था कि जो मकान बनाते हैं, वे गिरा सकते हैं। नियम बदल गया था। साधु ने नियम को अपना सम्मान समझ लिया था यह भूल हो गई थी उससे। यह उसका सम्मान नही था, यह सिर्फ नियम का सम्मान था। नियम बदल गया, सारी बात खत्म हो गई।

हम एक जिन्दगी में जीते हैं, जो हमारे बनाए हुए नियमो, बनाई हुई मान्यताओ, बनाई हुई व्यवस्थाओ की है। उन्हें जैसे ही हम जानेंगे, एकदम झूठी मालूम पड़ेंगी। पत्नी एकदम झूठी मालूम पड़ेगी। स्त्री सत्य रह जाएगी। वह हमारी बनाई हुई व्यवस्था है। युवक रह जाएगा लेकिन उसका बेटा होना खो जाएगा। मकान रह जाएगा लेकिन 'मेरा होना' चला जाएगा। धन का ढेर रह जाएगा लेकिन गिनती का रस खो जाएगा। जगत् होगा वस्तुपरक लेकिन उसकी आत्मपरकता कि वह यहाँ है, वहाँ है, तिरोहित हो जाएगी जैसे कोई जादू की दुनिया है एकदम जग गया हो और सब खो जाए। जैसे वृक्ष हो, वृक्ष में लगें फल और राग विदा हो जाएँ और चीजें जैसी हैं वैसी रह जाएँ। वस्तु रह जाएगी लेकिन हमारी कल्पित वस्तु एकदम विदा हो जाएगी। इस अर्थ में मैंने कहा कि स्वप्न भी सत्य बन जाता है, अगर हम उसमें लीन हो जाते हैं और जिसे हम सत्य कहते हैं, वह भी स्वप्नवत् हो जाएगा अगर हम अपनी लीनता को तोड लेते हैं।

प्रश्न : महावीर पूर्व जन्म मे ही पूर्ण हो गए यह आपका कहना है। किन्तु वर्तमान जगत् मे अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए उन्हे तपश्चर्या करनी पड़ी। पूर्ण में यह अपूर्णता कैसी ? क्या पूर्णता मे अभिव्यक्ति के साधनों की उपलब्धि शामिल नहीं ?

उत्तर : ठीक है। नही, पूर्णता की उपलब्धि मे अभिव्यक्ति के साधन सम्मिलित नहीं हैं। अभिव्यक्ति की पूर्णता उपलब्धि की पूर्णता से बिल्कुल अलग है। असल में पूर्णता भी एक नही है, अनन्त पूर्णताएँ हैं। इससे हमें बडी कठिनाई होती है। एक दिशा में एक आदमी पूर्ण हो जाता है, इसका मतलब यह नही कि वह सब दिशाओं में पूर्ण हो जाता है। एक आदमी चित्र बनाता है। वह चित्र बनाने में पूर्ण हो गया है। इसका यह मतलब नही कि वह सगीत में भी पूर्ण हो जाएगा यानी कि वह वीणा बजा सकेगा। वीणा की अपनी पूर्णता है, अपनी दिशा है। अगर कोई आदमी वीणा बजाने में पूर्ण हो गया तो उसका यह मतलब नही है कि वह नाचने में भी पूर्ण हो जाए। नाचने की अपनी पूर्णता है। बहुत आयाम हैं पूर्णता के। क्या सर्वतोमुखी पूर्णता किसी को मिली है ? नही, कोई व्यक्ति समस्त पूर्णताओ में पूर्ण नही हुआ। कई पूर्णताएँ ऐसी हैं कि एक मे होगे तो फिर दूसरे में हो ही नही सकते। वे विरोधी पूर्णताएँ हैं। एक व्यक्ति पुण्य मे पूर्ण हो जाए तो फिर वह पाप की पूर्णता में पूर्ण नही हो सकता। पाप की भी अपनी पूर्णता है। और अगर वह पाप में पूर्ण हो

जाए तो वह पुण्य में पूर्ण नही होगा। न केवल पूर्णताएँ अनन्त हैं बल्कि विरोधी भी है। कोई यह सोच ही नही सकता कि कोई व्यक्ति समस्त दृष्टि से पूर्ण हो जाए। परमात्मा के बारे में जो हमारी धारणा है वह इस लिहाज से कीमती है। इस धारणा का मतलब है, कि सिर्फ परमात्मा ही सब दिशाओ में पूर्ण है क्योकि वह कोई व्यक्ति नही है। वह सब व्यक्तियो में अनन्त दिशाओ में पूर्णता प्राप्त कर रहा है। परमात्मा अगर कोई व्यक्ति हो तो वह भी पूर्ण नही हो सकता सब दिशाओ में। लेकिन पापी से वह एक तरह की पूर्णता पा रहा है, पुण्यात्मा से वह दूसरी तरह की पूर्णता पा रहा है। परमात्मा के जो अनन्त हाथ हम चित्रो में देखते हैं, उसका कारण कुल इतना है कि अनन्त हाथो से वह पूर्ण हो रहा है। हम दो हाथो से कैसे पूर्ण होगे ? सब हाथ उसके ही हों, तब तो ठीक है। फिर कोई कठिनाई नही। फिर अगर महावीर एक दिशा में पूर्ण हो जाएँ तो परमात्मा को कोई कठिनाई नही पडती क्योकि हिटलर के हाथ भी उसके हैं, महावीर के हाथ भी उसके हैं। परमात्मा को छोड कर कोई सब दिशाओ में पूर्ण नही हो सकता और परमात्मा व्यक्ति नही है। इसलिए वह शक्ति है; सबकी ही शक्ति का समग्रीभूत नाम है। उसको तो छोड दें। लेकिन कोई भी व्यक्ति कभी भी इस अर्थ में पूर्ण नही होता। उसकी अपनी दिशा होती है, उसमें वह पूर्ण हो जाता है।

अनुभूति की एक दिशा है, अभिव्यक्ति की बिल्कुल दूसरी। और अनुभूति के लिए जो करना पडता है, अभिव्यक्ति के लिए करीब-करीब उससे उल्टा करना पडता है। इसलिए दोनो साधी जा सकती हैं, लेकिन एक साथ नहीं। एक सध जाए तो फिर दूसरी साधी जा सकती है। इसलिए कभी भी अनुभूति की पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति की पूर्णता नहीं होती। क्योकि अनुभूति में जाना पडता है भीतर और अभिव्यक्ति में आना पड़ता है बाहर। और यह बिल्कुल ही उल्टा आयाम है। अनुभूति में छोडना पडता है सबको और हो जाना पडता है बिल्कुल 'स्व', सब छोडकर बिल्कुल एक बिन्दु। अभिव्यक्ति में फैलना पडता है, सबको जोडना पडता है। अभिव्यक्ति में 'दूसरा' महत्त्वपूर्ण है, अनुभूति में 'स्वयं' ही महत्त्वपूर्ण है। उल्टी दिशाएँ हैं बिल्कुल। जानना मौन में है और बताना वाणी में है। तो जो जानेगा उसको मौन होना पडेगा और जब बताने जाएगा तो फिर शब्द की साधना करनी पडेगी। इसलिए जरूरी नहीं कि जो अभिव्यक्ति कर रहा हो वह जानता भी हो। हो सकता है कि वह सिर्फ अभिव्यक्ति किए चला जा रहा है। इसलिए बहुत बार ऐसा होगा

है कि अकेली अभिव्यक्ति वाला आदमी भी बहुत ज्ञानी मालूम पडता है। उसके पास अनुभूति कोई भी नही है। सिर्फ उसने उधार अनुभूतियाँ बटोर ली हैं। ऐसे ही आदमी को मैं पंडित कहता हूँ जिसके पास अभिव्यक्ति है, अनुभूति नही। ऐसे भी लोग है जिनके पास अनुभूति है, अभिव्यक्ति नहीं।

बुद्ध से एक दिन जाकर किसी ने पूछा कि आप इतने वर्षों से समझाते आ रहे है कितने ऐसे लोग हैं जो उस सत्य को उपलब्ध हो गए हो। बुद्ध ने कहा—बहुत, यही बैठे हुए हैं। उस आदमी ने पूछा, लेकिन आप जैसा महिमाशाली तो इनमें से कोई भी नही दिखाई पडता। बुद्ध ने कहा कि थोडा सा ही फर्क हैं। मैंने अभिव्यक्ति भी साधी है। अनुभूति में तो वे मेरी जगह पहुँच गए है, लेकिन अभिव्यक्ति? जब तक अभिव्यक्ति न साधें, तुम्हें उनका पता भी न चलेगा। क्योकि जब वे तुमसे कहेंगे तभी तो जानोगे। उन्हें अनुभूत हो गया है, इससे थोडे ही जानोगे। केवल-ज्ञानी और तीर्थंकर में यही फर्क है। तीर्थंकर भी केवल-ज्ञानी से ज्यादा नही है। सिर्फ अभिव्यक्ति और ह उसके पास केवल-ज्ञान तीर्थंकर से इंच भर कम नही है। अनुभूति में वही है जहाँ वह है। सिर्फ अभिव्यक्ति नही है उसके पास। अभिव्यक्ति साध ले तो वह भी शिक्षक हो जाता है। अभिव्यक्ति न साधे, अनुभूति तो होती है। सिद्ध होता है लेकिन बन्द हो जाता है। सब तरफ फैल नही पाता जो उसने जाना है।

तो अनुभूति की पूर्णता महावीर को पिछले जन्म मे हुई है, अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए उन्हें साधना करनी पडी। और मैं कहता हूँ कि अनुभूति की पूर्णता उतनी कठिन नही है जितनी अभिव्यक्ति की पूर्णता कठिन है। क्योकि अनुभूति में मैं अकेला हूँ। जो मुझे करना है, अपने से ही करना है। अभिव्यक्ति में दूसरा सम्मिलित हो जाएगा। इसलिए दूसरे को जानना, दूसरे को समझना दूसरे तक पहुँचाना दूसरे की भाषा है, दूसरे का अनुभव है, दूसरे का व्यक्तित्व है। करोड-करोड तरह के व्यक्तित्व है। करोड़-करोड़ योनियो में बँटा हुआ प्राण है। उन सब पर प्रतिध्वनि हो सके, उन सब तक खबर पहुँच सके, पत्थर भी सुन ले और देवता भी सुन ले—उस सबकी फिर साधना बहुत बडी बात है। इसलिए केवल-ज्ञान तो बहुत लोगो को उपलब्ध होता है लेकिन तीर्थंकर बहुत कम लोग बन पाते है। क्योंकि केवल-ज्ञान अनन्त-अनन्त लोगो को उपलब्ध होता है। परिपूर्ण ज्ञान की अनुभूति करोडो लोगो को होती है परन्तु जिसको हम शिक्षक कह सकें जो बता भी सके कि ऐसे हुआ है, ऐसा मुश्किल से कभी होता है। इसलिए मैंने कल कहा' अभिव्यक्ति के लिए

महावीर का यह पहला जन्म है। पर हमारा क्या होता है ? हम पूर्णता को वड़े व्यापक अर्थ में लेते हैं। कोई व्यक्ति अनुभूति में पूर्ण हो सकता है, और अभिव्यक्ति बिल्कुल न हो। अनेक लोग जाने हैं और मौन रह गए हैं। फिर कहा ही नही उन्होंने। खोज ही नही सके वे मार्ग कहने का।

जैसे कि आप अभी जाएँगे डल झील पर और सौन्दर्य को देखेंगे। हो सकता है कि आपको सौन्दर्य का पूर्ण अनुभव हो जाए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आप आकर डल झील को पेंट कर दें। यह भी हो सकता है कि आप से कम अनुभव किसी को हो और वह आकर पेंट कर दे। क्योंकि पेंटिंग की कुशलता अलग बात है अनुभूति की कुशलता से। अनुभूति आपको हो सकती है डल झील पर जाकर सौन्दर्य की। सारा प्राण भीग जाए। लेकिन आपसे कोई कहे कि रंग उठाकर और ब्रुश उठाकर जरा पेंट कर दें तो आप कहेंगे यह मुझसे नही हो सकता। और भी दिशाएँ हैं। जब आप डल झील पर गए थे तो आपने सोचा होगा कि आप सिर्फ देख रहे हैं। वह सौन्दर्य केवल देखने को नही था। अगर आप बहरे होते तो इतना सौन्दर्य आपको दिखाई न पड़ता। उसमें भेड़ों की आवाज भी छिपी थी। उसमें लहरों की छम-छम भी छिपी थी। उसमें सब था जुड़ा हुआ। आप बहरे होते, आप देख तो लेते लेकिन आपके देखने में कमी रह गई होती। उसमें आस-पास जो सुगंध आ रही थी, वह भी सौन्दर्य का हिस्सा था।

जब कोई आदमी किसी स्त्री को प्रेम करता है तो वह कभी नही सोचता कि उसके शरीर की गंध भी उसमें तीस प्रतिशत हिस्सा लेती है। यानी वह कितनी ही सुन्दर हो अगर उसकी गंध उसको मेल नही खाती है तो बिल्कुल ही ताल-मेल नही बैठ सकता, उसके शरीर की एक गंध है, जो भीतर से उसे आकर्षित करती है और यह गंध विशेष विशेष लोगो को आकर्षित करती है। यानी वह कितनी ही सुन्दर हो, जरा सी गंध उसको विपरीत हो तो कभी तालमेल नही होगा। विरोध ही रहेगा, झंझट खड़ी रहेगी। और आप कभी सोच भी नही पाएँगे कि उसके शरीर की गंध बाधा दे रही है। तो जैसे कि सौन्दर्य बड़ी चीज है, उसमें गंध भी सम्मिलित है, उसमें ध्वनि भी सम्मिलित है, उसमे सब सम्मिलित है। वह एक पूर्ण, समग्र अनुभूति है। आप अगर पेंट भी कर लो और मैं आपसे कहूं. इस झील पर जो संगीत का अनुभव हुआ था, वह बजाओ। आप कहोगे कि वह मैं नही कर सकता। आप पेंट करके सिर्फ आँख से जो देखा गया था वही पेंट कर पा रहे हो; जो कान से जाना गया था, वह

नही कर पा रहे हो, नाक से जो जाना गया था वह नही कर पा रहे हो। अभी पूर्णता सम्पूर्णता नही है।

तव मेरा कहना है कि अगर हम सम्पूर्णता के लिए रुकेंगे तो शायद ही कोई आदमी कभी पृथ्वी पर सम्पूर्ण रहा हो। असम्भव है और उसके कई कारण हैं जो हमें दिखाई नही पडते। जैसे जिस आदमी की आँख रंगो को देखने लगेगी वहुत गहराई में, उस आदमी के कान धीमे-धीमे शक्ति खो देंगे। इसलिए अन्धो के पास कान की जो शक्ति होती है, आँख वालो के पास कभी नही होती। इसलिए अन्धा जैसा संगीतज्ञ हो सकता है आंख वाला कभी नही हो सकता। उसका कारण है कि भीतर शक्ति की सीमा है। अगर वह पूरी आँख या कान से वहने लगती है तो दूसरी इन्द्रियों से खीच लेती है। अन्धे के पास कान की ताकत ज्यादा होती है क्योंकि आँख की जो शक्ति वच गई है वह कानों से वह जाती है। अगर कोई व्यक्ति संगीत में वहुत कुशल हो जाए, उसका कान तो शिक्षित हो जाएगा लेकिन आँखें मन्द हो जाएँगी, स्पर्श क्षीण हो जाएगा। वह व्यक्ति और दिशाओं में एकदम सिकुड जाएगा। शक्ति सीमित है; अनुभूति अनन्त है। इसलिए, सिर्फ परमात्मा को छोड कर जो कि सभी शक्तियों का जोड है, कोई शक्ति कभी सम्पूर्ण नही होगी। हाँ, एक-एक दिशा में पूर्णता पा लेने से वह परमात्मा में लीन हो जाता है। परमात्मा में लीन हो जाने से वह समग्र में पूर्ण हो जाता है। जैसे कोई भी नदी कभी पूर्ण नही होती, सागर में खोकर पूर्ण होती है। नदी रहते हुए पूर्ण नही होती क्योंकि उसके किनारे होंगे, तट होंगे। सागर में जाकर वह पूर्ण हो जाती है।

तो व्यक्ति एक दो या तीन दिशा में ही पूर्ण हो सकता है, समस्त पूर्णताओ को नही पकड सकता। लेकिन एक दिशा मे भी कोई पूर्ण हो जाए तो वह उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, जहाँ से परमात्मा में प्रवेश होना सम्भव है। यानी पूर्णता किसी भी दिशा से लाई गई हो, परमात्मा के द्वार पर खडा कर देती है। अगर वह वहाँ से अपने को जोड दे और खो जाए तो वह परमात्मा के साथ एक हो गया। उस अर्थ में वह अव सम्पूर्ण हो गया। लेकिन अव वह रहा ही नहीं। जैसे नदी रही ही नही, वह सागर हो गई।

अनन्त-अनन्त पूर्णताओ की दृष्टि अगर हमारे ख्याल में हो तव हम समझ सकेंगे कि सर्वज्ञ का क्या मतलव होगा। तव हम पागलपन में नही पडेंगे। तव हम इतना ही कहेंगे कि महावीर ने स्वयं को जानने में जो भी जाना जा सकता था, जान लिया। सर्वज्ञ का यह मतलव होगा। न कि साइकिल का टायर फट

जाए तो वह उसे जोडना भी जानते है, आदमी को टी० वी० हो जाए तो वह उसकी दवाई भी जानते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलव नहीं होता। लेकिन महावीर को पकडने वालो ने सर्वज्ञ का कुछ ऐसा मतलव लिया है कि महावीर जो भी जाना जा सकता है, वह सव जानते हैं। यह बिल्कुल फिजूल वात है। सर्वज्ञ का इतना ही मतलव है कि जिस पूर्णता की एक दिशा को उन्होने पकडा है, उसमें वे सर्वज्ञ हो गए हैं। आत्मज्ञान की दिशा मे वह सर्वज्ञ हैं। उनके सर्वज्ञ होने का यह मतलव नही कि वह आपकी वीमारी को भी जानते हैं, भविष्य में क्या होगा, यह भी जानते हैं, कल क्या हुआ था, यह भी जानते हैं। इन सव वातो से उन्हें कोई मतलव नही है। इस तरह वहुत लोग सर्वज्ञ हो सकते हैं चूंकि अनन्तताएँ अनन्त हैं, पूर्णताएँ अनन्त हैं। 'केवल-ज्ञान' का मतलव यह है कि जहाँ ज्ञेय न रहा, ज्ञाता न रहा, वस ज्ञान रह गया। न कुछ जानने को शेष रहा, न कोई जानने वाला शेष रहा, वस ज्ञान ही शेष रहा। जानने की क्षमता ही सिर्फ शेष रह गई।

प्रश्न : हर चीज की ?

उत्तर : नही ? बिल्कुल नही। वह 'हर चीज' से हम जोड़ करके ही दिक्कत में पड जाते हैं। जानने की शुद्ध क्षमता शेष रह गई है उनमें। यह क्षमता पूर्ण है, पूर्ण इस अर्थ में नही कि वह सब जानते हैं, पूर्ण इस अर्थ में कि जैसे समझ लें कि एक आदमी गीत गाने की पूर्ण क्षमता को उपलव्ध होता है इसका यह मतलव नही कि उसने सव गीत गाए। क्योकि गीत अनन्त हैं। इसका यह मतलव नही कि वह इस वक्त गा रहा है। इसका मतलव यह है कि वह गीत गाने की पूर्णता को उपलव्ध हो गया है, जो भी गीत गाना चाहेगा गा सकता है। लेकिन जव वह एक गीत गाएगा तो दूसरा गीत न गा पाएगा। सिर्फ क्षमता है उनमें सभी गीत गाने की। वह कुछ भी जान सकता है। जैसे कि एक आइना है। उसके पास क्षमता है कि वह दर्पण हो सकता है। जरूरी नहीं कि इस वक्त उसमें छाया वन रही है, किसी आदमी का चेहरा वन रहा है। वह खाली पड़ा है इस वक्त। लेकिन कोई भी चेहरा सामने आए तो जाना जा सकता है। वह पूर्ण जाने जा सकने की क्षमता रखता है। वह उसका सामर्थ्य है। कोई भी खड़ा हो जाए तो वह जानेगा। लेकिन एक खडा हो जाए तो दूसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। दो खडे हो जाएँ तो तीसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। और दस आदमी उसको घेर लें, पीछे करोडों को

भीड हो, तो उनको जानना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन इनमें से कोई भी सामने खडा हो तो वह जान सकेगा।

केवल-ज्ञान का मतलब है कि ज्ञान की शुद्धता उपलब्ध हो गई है। हाँ, जानने की क्षमता उपलब्ध हो गई है। वह जिस दिशा में भी लगा देगा उसी दिशा में पूर्णता को जान लेगा। लेकिन एक दिशा में लगाएगा तो दूसरी दिशाओ से तत्काल वचित हो जाएगा। और सत्य यह है कि शुद्ध ज्ञान की क्षमता में जीना इतना अनन्दपूर्ण है फिर उसे कोई दूसरी दिशा में लगाता नही। शुद्ध दर्पण होना इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन प्रतिबिम्ब बनाए। इसलिए केवल ज्ञानी को जैसे ही शुद्धता उपलब्ध होती है वह जानना छोड देता है। क्योंकि अब सब जानना उसकी जानने को क्षमता पर छा जाएगा और उसकी जानने की क्षमता को अशुद्ध कर देगा आवरण बन कर। इसलिए केवल-ज्ञानी, जो कि जान सकता है किसी भी चीज को जानना छोड देता है, जानने की क्षमता में ही रम जाता है। वह इतना आनन्दपूर्ण है कि कौन सी बाधा ले वह। जानने की क्षमता ही इतनी आनन्दपूर्ण है कि वह क्यो जानने जाए किसी को। अज्ञान जानने जाता है, ज्ञान ठहर जाता है। क्योकि अज्ञान में 'जिज्ञासा है कि जान लो। और जब ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होती है तो ज्ञान ठहर जाता है। वह जानने जाता ही नही है क्योकि जानने का कोई सवाल भी नही रह जाता। अज्ञान भटकाता है, यात्रा करवाता है। ज्ञान ठहरा देता है। इसलिए अज्ञानी जानते हुए मिल जाएँगे, लेकिन केवल-ज्ञानी नही। क्योकि अज्ञानी चेष्टा कर रहा है निरन्तर—यह जानूँ।

केवल-ज्ञान की धारणा बहुत अद्‌भुत है। लेकिन उसको इस तरह विकृत किया हुआ है लोगो ने कि जिसका कोई हिसाब नही। जो सब जानता है, जो सब जान सकता है—इन दोनों में भिन्नता है। जो जान सकता है, वह जानेगा यह जरूरी नही। आमतौर से तो यही जरूरी है कि वह जानेगा ही नही, अब वह इस झझट में नही पडेगा। इसलिए अगर मैं आपसे कहूँ कि केवल-ज्ञानी सब जान सकता है, और कुछ भी नही जानता है तो आप इसमें विरोध मत समझना। सब जान सकता है मगर कुछ भी नही जानता है। अब वह किसी दिशा में जाता ही नही। वह चुप खडा है। अगर वह किसी भी दिशा में गया तो परमात्मा में नही जा सकेगा। किसी भी दिशा में गया हुआ व्यक्ति परमात्मा में नही जा सकता क्योकि परमात्मा सब दिशाओं का जोड है। और एक दिशा में गया हुआ व्यक्ति अन्य दिशाओं के विपरीत पड जाता है। यानी जिस व्यक्ति

को परिपूर्ण ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होगी वह तत्काल सब दिशाएँ छोड़ देगा और परमात्मा में लीन हो जाएगा। जो इस पूर्ण स्थिति में पहुँचता है, जहाँ सिर्फ जानना ही शेष रह जाता है, वह एकदम डूब जाता है, सर्वव्यापक हो जाता है, हो ही गया, जैसे कि एक बूँद सागर में गिरी और सर्वव्यापी हो गई। क्योंकि वह सागर से एक ही हो गई। और जब तक वह दिशा पकडे रहता है, तब तक वह सर्वव्यापी नहीं होता।

जीसस ने कहा कि जो अपने को बचाएँगे, वे नष्ट हो जाएँगे। जो अपने को खो देंगे, वे सब पा लेंगे। बचाओ मत, अपने को खो दो। लेकिन खो वही सकता है जिसका कोई विकास नही। किनारा खोने की हिम्मत होनी चाहिए। अगर किनारा पकडे रहें तो सागर में कैसे जाएँगे। दिशाओ के किनारे होते हैं, आयाम होता है मगर परमात्मा अनन्त और आयामशून्य है। वहाँ कोई किनारा नही है। उसमें खोने की क्षमता का ही अर्थ केवल-ज्ञान है जहाँ आदमी डूब जाता है फिर जानने की कोशिश में नही पडता। यहाँ दो सम्भावनाएँ हैं . या तो वह डूब जाए परमात्मा में जो सामान्यतया होता है, या एक जीवन के लिए वह लौट आए और जहाँ पहुँचा है उस क्षमता की खबर दे। उसी को मैं करुणा कहता हूँ : और वह करुणा है तो उसे अभिव्यक्ति की पूर्णता पानी होगी। उपाय करना होगा दूसरे से कहने का। गूँगा भी जान सकता है सत्य को लेकिन वह कह नही सकता। गूँगा भी प्रेम कर सकता है लेकिन वह कह नही सकता। अगर गूँगे को कहना हो अपनी प्रेयसी से कि मैं तुझे प्रेम करता हूँ तो उसे वाणी सीखनी पड़ेगी। प्रेम करने के लिए वाणी सीखने की जरूरत नही है। प्रेम करना एक और बात है। वह गूँगा भी कर सकता है। गूँगा हजारो से कुछ बातें कर सकता है। लेकिन अगर उसे कहना हो, क्या जाना उसने प्रेम में, तो फिर उसे और दूसरी तरह की, यानी अभिव्यक्ति की, पूर्णता प्राप्त करनी होगी। महावीर इस जन्म मे उस दूसरी तरह की पूर्णता की साधना मे लगे हैं।

७

प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक २० सितम्बर, १९६९

सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति कैसे मिले, यही बडे से बडा सवाल महावीर के सामने इस जन्म में था। महावीर ही पहले शिक्षक नही थे जिनके सामने अभिव्यक्ति की बात उठी हो। जिन्होंने सत्य जाना है उन सभी के सामने यह सवाल है लेकिन महावीर के सामने सवाल कुछ बहुत गहरे रूप में उपस्थित हुआ था। महावीर के व्यक्तित्व की विशेषताओं में एक विशेषता यह थी कि उन्हे सत्य की जो अनुभूति हुई, उसकी अभिव्यक्ति को उन्होंने जीवन के समस्त तलो पर प्रकट करने की कोशिश की। मनुष्य तक कुछ बात कहनी है, कठिन तो है फिर भी बहुत कठिन नही। लेकिन महावीर की चेष्टा अनूठी है। उन्होंने चेष्टा की कि पौधे पशु-पक्षी, देवी-देवता सब तक, जीवन के जितने तल है—उन सब तक उन्हें जो मिला है, उसकी खबर पहुँचे। महावीर के बाद ऐसी कोशिश करने वाला दूसरा आदमी नही हुआ। यूरोप में फ्रांसिस ने थोड़ी सी कोशिश की है पक्षियों और पशुओं से बात करने की। अभी-अभी श्री अरविन्द ने कोशिश की है पदार्थ तत्त्व पर चेतना के स्पन्दन पहुँचाने की। लेकिन महावीर जैसा प्रयास न पहले कभी हुआ, न बाद में हुआ। वे जो बारह वर्ष आम तौर पर सत्य की साधना के लिए समझे जाते हैं, वे सत्य की जो उपलब्धि हुई है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए साधन खोजने के हैं। और इसीलिए ठीक बारह वर्षों बाद महावीर सारी साधना का त्याग कर देते है। नही तो साधना का कभी त्याग नही किया जा सकता। सत्य की उपलब्धि की जो साधना है, उसका कभी त्याग किया ही नही जा सकता क्योंकि वह ऐसी नही है कि सत्य उपलब्ध हो जाने पर व्यर्थ हो जाए। जैसा कि मैंने सुबह कहा सत्य की उपलब्धि का मार्ग है—अमूर्च्छित चेतना, अप्रमाद, विवेक, जागरण। तो ऐसा नही है कि जिसको सत्य उपलब्ध हो जाए वह जागरण, विवेक, अप्रमाद

का त्याग कर दे। यह असम्भव है, क्योकि जो सत्य उपलब्ध होगा, उसमें जागरण अनिवार्य होगा। यानी वह सत्य भी जागी हुई चेतना का एक रूप ही होगा। इसलिए फिर ऐसा नही है कि जागरण छोड दिया जाए। सिर्फ वही साधना छोडी जा सकती है जो परम उपलब्धि की तरफ न हो बल्कि साधना की तरह उपयोग की हुई हो। जैसे कि आप यहाँ एक बैलगाड़ी में बैठकर आए हैं। आप उतर कर बैलगाडी को छोड़ देंगे। क्योकि बैलगाड़ी पहुँचाने का साधन थी; इसके बाद व्यर्थ हो जाती है। जो साधन कही जाकर व्यर्थ हो जाते है, वे साधन के हिस्से नही होते इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन जो साधन अनिवार्यत' साधन में विकसित होते हैं, वे कभी व्यर्थ नही होते। विवेक कभी व्यर्थ नही होता। लेकिन महावीर, बारह वर्ष की साधना के बाद सब छोड़ देते हैं। और उनके पीछे चलने वाले चिन्तक कभी यह विचार नहीं कर पाए कि यह कैसी बात है। इसका कोई उत्तर भी नही दे पाए। न दे पाने का कारण है कि वे समझ ही न सके कि यह केवल अनुभूति को अभिव्यक्त करने के साधन खोजने का इन्तजाम था, आयोजन था। वे माध्यम मिल गए है और आयोजन व्यर्थ हो गया। यानी आयोजन शाश्वत नही था, सामयिक था, जरूरत का था। इससे ज्यादा उसका मूल्य नही है।

क्या किया जाए जीवन के समस्त तलो तक अपनी अनुभूति प्रतिध्वनि की तरंग पैदा करने के लिए ? तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो अस्तित्व का मूक अंग है। जैसे पत्थर है, पौधा है, पक्षी है, पशु है। ये अस्तित्व के मूक अंग हैं। फर्क है पत्थर और पशु में बहुत। लेकिन यह विभाग मूक है। अगर इस मूक अंग से सम्बन्धित होना हो किसी व्यक्ति को और अपने अनुभव को इस तक पहुँचाना हो तो उसे परम जड अवस्था, परम मूक अवस्था में उतरना पडेगा। तभी उसका ताल-मेल, सामंजस्य हो सकेगा। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति वृक्ष के पास बैठकर पूर्णतया मूक हो जाए ऐसा जैसे कि जड हो गया, जैसे कि उसका शरीर कोई जीवित वस्तु नही है, और उसकी चेतना परिपूर्ण शान्त होती चली जाए और उस जगह पहुँच जाए, जहाँ एक शब्द नही है तो इस परिपूर्ण मूक अवस्था मे वृक्ष से संवाद होना सम्भव है। राम कृष्ण निरन्तर ऐसी अवस्था में उतरते रहे, जिसे मैं रामकृष्ण की जड-समाधि कहता हूँ।

महावीर ने इस दशा मे मनुष्य जाति के इतिहास मे सबसे गहरे प्रयोग किए हैं। आप जानकर हैरान होंगे कि महावीर की जो अहिंसा की बात है,

वह किसी तत्त्व विचार से नही निकली है। वह अहिंसा की बात नीचे के जगत् के तादात्म्य से निकली है। उस तादात्म्य में उन्होंने जो पीडा अनुभव की नीचे के जगत् की, उस पीडा की वजह से, अहिंसा उनके जीवन का परम तत्त्व बन गया है। इसमें दो बाते समझने जैसी हैं। आम तौर से यह समझा जाता है कि जो अहिंसक हैं, वह मोक्ष की साधना कर रहा है, अहिंसा से जिएगा तो मोक्ष में चला जाएगा। लेकिन ऐसे लोग भी मोक्ष में चले गए हैं, जो अहिंसा से नही जिए हैं। न तो क्राइस्ट अहिंसक है, न रामकृष्ण, न मुहम्मद। ऐसे लोग मोक्ष में चले गए हैं जो अहिंसा से नहीं जिए हैं।

इसलिए जिनको यह ख्याल है कि अहिंसा से जीने से मोक्ष में जाएँगे वे महावीर को नही समझ पाए। बात बिल्कुल ही दूसरी है। महावीर ने मनुष्य से नीचे का जो मूक जगत् है, उससे जो तादात्म्य स्थापित किया है और उसकी जो पीडा अनुभव की है, वह इतनी सघन है कि अब उसे और पीडा देने की कल्पना भी असम्भव है। इतनी असम्भव किसी के लिए भी नही रही कभी भी, जितनी महावीर के लिए असम्भव हो गई। और यह जिस अनुभव से आया है, वह उस जगत् को अपने प्राणों मे विस्तीर्ण करने का प्रयोग था। इस प्रयोग करने में अहिंसा निर्मित होने में दो बाते हुई। एक यह कि जो पीडा अनुभव की, उन्होंने नीचे के जगत् की, वह इतनी ज्यादा है कि उसमें जरा भी कोई बढती करे किसी भी कारण से तो वह असह्य है। दूसरी बात उन्होंने यह अनुभव की कि अगर व्यक्ति पूर्ण अहिंसक न हो जाए तो नीचे के जगत् से तादात्म्य स्थापित करना बहुत मुश्किल है। यानी हम तादात्म्य उसी से स्थापित कर सकते हैं जिसके प्रति हमारा समस्त हिंसक भाव, आक्रामक भाव विलीन हो गया हो और प्रेमभाव उदय हो गया हो। तादात्म्य सिर्फ उसी से सम्भव है। अगर मूक जगत् से तादात्म्य स्थापित करना है तो अहिंसा शर्त भी है। नही तो वह तादात्म्य स्थापित नही हो सकता।

जैसे मैंने सत फ्रासिस का नाम लिया। इस आदमी ने पशुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में बेजोड काम किया है। इस बात की आँखो देखी गवाहियाँ है कि जब सत फ्रासिस नदी के किनारे खडा हो जाता तो सारी मछलियाँ तट पर इकट्ठी हो जातीं, सारी नदी खाली हो जाती। न केवल वे इकट्ठी हो जाती बल्कि छलाग लगाती फ्रासिस को देखने के लिए। जिस वृक्ष के नीचे वह बैठ जाता उस जगत् के सारे पक्षी उस वृक्ष पर आ जाते। न केवल

वृक्ष पर आ जाते वल्कि उसकी गोद में उतरने लगते, उसके सिर पर बैठ जाते, उसके कंधो को घेर लेते। सत फ्रासिस से जब भी किसी ने पूछा कि यह कैसे सम्भव हुआ है तो वह कहते : और कोई कारण नही हैं। वे भली भाँति जानते हैं कि मेरे द्वारा उसके लिए कोई भी नुकसान कभी भी नही पहुँच सकता।

पक्षियों के पास अन्तःप्रज्ञा है जो हमने वहुत पहले खो दी है। जापान में एक ऐसी साधारण चिड़िया है जो गाँवों में आम तौर पर होती है और दिन भर गाँव में दिखाई पडती है, भूकम्प आने पर चौवीस घंटे पहले वह गाँव छोड़ देती है। अभी हमने भूकम्प की जाँच पडताल के कितने भी उपाय किए हैं, वे भी दो, ढाई घंटे से पहले खबर नही दे सकते और वह खवर भी विश्वसनीय नही होती। लेकिन वह चिड़िया चौवीस घंटे पहले एकदम गाँव छोड देती है। उस चिड़िया का गाँव में न दिखाई पडना पक्का है कि चौवीस घंटे के भीतर भूकम्प आ जाएगा। वडी कठिनाई की वात रही कि वह चिड़िया कैसे जान पाती है क्योकि चिड़िया के पास जानने के कोई यन्त्र नही हैं, कोई शास्त्र नही है, कोई विधि नही है। ऊपर उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले सैकडो पक्षी हैं, जो प्रति वर्ष सर्दी के दिनो में, जव वर्फ पडती है तो यूरोप के समुद्री तटो पर चले जाते हैं। वर्फ पडनी शुरू हो जाए अगर तव वे यात्रा शुरू करें तो उनका आना वहुत मुश्किल है। इसलिए वर्फ गिरने के महीने भर पहले वे उडान शुरू कर देते हैं। और यह वडे आश्चर्य की वात है कि वे जिस दिन उडान शुरू करते हैं उसके ठीक एक महीने वाद वर्फ गिरनी शुरू हो जाती है। फिर वे हजारो मील का फासला तय करके यूरोप के समुद्र तटो पर आ जाते हैं और वर्फ गिरना वन्द होने के महीने भर पहले वे वापस यात्रा शुरू कर देते हैं। वे कभी भटकते नही। हजारों मील के रास्ते पर कभी नही भटकते। ये जहाँ से आते हैं ठीक वहाँ अपनी जगह वापस लौट जाते हैं। पक्षियों और पशुओं के जगत् में जिन लोगो ने प्रवेश किया है वे हैरान हुए हैं कि उनके पास एक प्रज्ञा है जो विना वुद्धि के उन्हे चीजों को साफ कर देती है। यह जो हमारे हृदय में भाव की धारा उठती है—प्रेम की या घृणा की, उसके स्पन्दन काफी हैं। वे उन्हें स्पर्श कर लेते हैं और वे हमसे सचेत हो जाते हैं।

महावीर ने अहिंसा के तत्त्व पर जो इतना वल दिया है, उस वल का और कोई कारण नहीं है। एक कारण यह है कि नीचे के मूक जगत् से पूर्ण अहिंसक वृत्ति के विना सम्वन्धित होना असम्भव है। और दूसरा कारण यह है कि जव सम्वन्धित हो जाएँ तो उस मूक जगत् की इतनी पीडाओं का वोध होता है—

उतनी अन्तहीन अनन्त पीड़ाएँ हैं उसको, कि उसमें हम किसी भी भाँति थोड़ा भार हल्का कर सकें कि भार न बढ़े इसकी भावना पैदा हो जाना भी स्वाभाविक है। बुद्ध भी इस बात को नही समझे हैं। गौतम बुद्ध का भी सत्य के अनुभव को सवाहित करने का जो प्रयोग है, वह मनुष्यो से ज्यादा गहराई पर नही गया है। सच बात यह है कि न जीसस ने, न बुद्ध ने, न जरथुस्त्र ने, न मुहम्मद ने, न किसी दूसरे ने मनुष्य तल से नीचे जो एक मूक जगत् का फैलाव है जहाँ से हम आ रहे हैं, जहाँ हम कभी थे, जिससे हम पार हो गए हैं—वहाँ पहुँचने का कोई मार्ग बताया है। उस जगत् के प्रति भी हमारा एक अनिवार्य कर्त्तव्य है कि हम उसे पार होने का रास्ता बता दें और खबर कर दें कि वह कैसे पार हो सकता है।

मेरी समझ यह है कि महावीर ने जितने पशुओ और जितने पौधों की आत्माओ को विकसित किया है, उतना इस जगत् में किसी दूसरे आदमी ने नही किया। यानी आज पृथ्वी पर जो मनुष्य है, उनमे से बहुत से मनुष्य सिर्फ इसलिए मनुष्य हैं कि उनको पशुयोनि या उनकी पौधे की योनि में या उनके पत्थर होने में महावीर ने संदेश भेजे थे और उन्हें बुलावा भेजा था। इस बात की भी खोज बीन की जा सकती है कि कितने लोगो को उस तरह की प्रेरणा उपलब्ध हुई और वे आगे आए। यह इतना अद्भुत कार्य है कि अकेले इस कार्य की वजह से महावीर मनुष्य मानस के बड़े से बड़े ज्ञाता बन जाते हैं। यानी अगर उन्होने अकेले सिर्फ एक ही यह काम किया होता तो भी वे मनुष्य जाति के मुक्तिदाताओ मे ही नही, बल्कि जीवन शक्ति के मुक्तिदाताओं में चिरस्मरणीय हो जाते। यह काम बहुत कठिन है क्योंकि नीचे के तल पर तादात्म्य स्थापित करना अत्यन्त दुरूह बात है। उसके कारण हैं। हमसे जो ऊपर है, उनसे तादात्म्य स्थापित करना हमेशा सरल है क्योकि हमारे अहकार को तृप्ति मिलती है, उसके तादात्म्य से। यह कहना बहुत सरल है कि 'मैं परमात्मा हूँ' लेकिन यह कहना बहुत कठिन है कि 'मैं पशु हूँ।'

चूंकि नीचे अहकार को चोट लगती है, ऊपर अहंकार को तृप्ति मिलती है, इसलिए हम सब ऊपर जाना चाहते है, हमारी गहरी आकाक्षा ऊपर जाने की है, हमारा चित्त ऊपर की तरफ उन्मुक्त होता है। जैसे नदी है, समुद्र की तरफ भाग रही है। समुद्र की तरफ भागना बहुत आसान है क्योकि ढाल उस तरफ है, उन्मुक्तता उस तरफ है। लेकिन कोई गंगोत्री की तरफ जाने का विचार

करे तो वडी मुश्किल में पड जाए क्योंकि वहाँ चढाव है, और वहाँ सागर भी नही है ।

महावीर की यह चेष्टा है कि पीछे के लोगो को पीछे की स्थितियों की तरफ लौटाकर वहाँ जो जाग गया है उसको आगे वढाया जाये । यह वहुत कठिन है । एक तो पीछे जाने का कभी ख्याल ही नही आता । हमें आगे जाने का ख्याल आता है । जो हम रह चुके होते हैं वह हम भूल चुके होते हैं । उससे कोई सम्वन्ध ही नही रह जाता । और भूलने का भी कारण है । क्योकि जो अपमानजनक है, उसे हम स्मरण नही रखना चाहते । असल में अतीत जन्मों को भूल जाने का जो कारण है, गहरे से गहरा, वह यह है कि हम उन्हें याद रखना नही चाहते । जो कि हम नीचे से नीचे से आ रहे हैं उसको हम भूल जाना चाहते हैं । एक गरीव आदमी है, वह अमीर हो जाए तो सबसे पहला काम वह स्मृति के चिह्न मिटा देना चाहता है, जो उसकी गरीवी को कभी भी वता सके कि वह कभी गरीव था । यहाँ तक कि गरीवी के दिनो में जिनसे उसकी दोस्ती रही उनसे मिलने से वह कतराने लगता है क्योकि उनकी दोस्ती, उनकी पहचान, सवको खवर देती है कि आदमी कभी गरीव था । वह अव नया सम्वन्ध वनाता है, नई दोस्तियाँ कायम करता है । वह नीचे को भूल जाता है । तो जव अमीर आदमी गरीव मित्रो तक को छोड सकता है तो पीछे की पशु योनियाँ, पक्षियो की योनियाँ, पौधो की योनियाँ, पत्थरो की योनियाँ जो रही हो उन्हें आकर भूल जाना चाहे, तो आश्चर्य नही । फिर उनसे तादात्म्य स्थापित करने की कौन फिक्र करे ? महावीर ने पहली वार चेष्टा की है और इस चेष्टा को करने की जो विधि है उसको भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है ।

अगर किसी भी व्यक्ति को पीछे की अविकसित स्थितियो से तादात्म्य बनाना है तो उसे अपनी चेतना को, अपने व्यक्तित्व को उन्ही तलो पर लाना पडता है जिन तलो पर वे चेतनाएँ हैं । यह जानकर आप हैरान होगे कि महावीर का चिन्ह है सिह और उसका कारण शायद आपको कभी भी ख्याल में न आया होगा और न आ सकता है । उसका कारण यह है कि पिछली चेतनाओं से तादात्म्य स्थापित करने में महावीर को सबसे ज्यादा सरलता 'सिह' से तादात्म्य स्थापित करने में मिली । कोई और कारण नहीं है । उनका व्यक्तित्व भी 'सिह' जैसा है । वह पिछले जन्मो में 'सिह' रह चुके है और लौटकर उससे तादात्म्य वनाना उनके लिए एकदम सरल हो गया है । सच तो ऐसा है कि जव

उनका सिंह से तादात्म्य हुआ तो उन्होंने पूरी तरह जाना होगा कि 'मैं सिंह हूँ' और यह उनका प्रतीक बन गया, चिह्न बन गया। और उनके व्यक्तित्व में यह बातें भी हैं जो सिंह में हो। जैसे 'सिंह' झुण्ड में नही चलेगा, भीड में नही चलेगा। एकदम अकेला खडा रहेगा महावीर में वैसा गुण है। सिंह में जो आक्रमण है, जीत की विजय का जो अदम्य भाव है, वह महावीर में है, सिंह में जैसा अभय है वह महावीर की साधना का प्रथम सूत्र है। यह चिह्न आकस्मिक नही है। कोई चिह्न कभी आकस्मिक नही होता, उस चिह्न के पीछे बहुत वैज्ञानिक मामला है।

जुग ने बहुत काम किया है। इस सम्बन्ध में कई परीक्षण किए उसने। और इस बात की खोज की कि प्रत्येक व्यक्ति के मानस मे कुछ चिह्न हैं जो उसके व्यक्तित्व के चिन्ह हैं। अगर उन चिह्नों को समझा जा सके तो हम उसके व्यक्ति को उघाड़ने मे सफल हो सकते हैं। यह जो महावीर के नीचे 'सिंह' बना हुआ है, यह उसके व्यक्तित्व की पहचान की कुंजी है। पीछे उतर कर तादात्म्य स्थापित करना इसके लिए चेतना को निरन्तर शिथिल करना होगा और चेतना को उस स्थिति में ले आना होगा जहाँ चेतना में कोई गति नही रहती, जहाँ चेतना बिल्कुल, शिथिल, शान्त और विराम को उपलब्ध हो जाती है और शरीर बिल्कुल जड अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। शरीर जब जड हो और चेतना शिथिल और शून्य हो तब किसी भी वृक्ष, पशु, पौधे से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। और एक मजे की बात है कि अगर वृक्षो से तादात्म्य स्थापित करना हो तो किसी खास वृक्ष से तादात्म्य स्थापित करने की जरूरत नही। वृक्षो की पूरी जाति के साथ एकदम तादात्म्य स्थापित हो सकता है क्योंकि वृक्षो के पास व्यक्तित्व अभी पैदा नही हुआ। अभी वे एक जाति की तरह जीते हैं। जैसे कि गुलाब के पौधे से तादात्म्य स्थापित करने का मतलब है समस्त गुलाबो से तादात्म्य स्थापित हो जाना क्योंकि किसी पौधे के पास अभी व्यक्ति का भाव नही है, अभी अहंकार और अस्मिता नही हैं। लेकिन मनुष्यो से अगर तादात्म्य स्थापित करना हो तो बहुत कठिन बात है। हाँ, आदिवासी जातियो से इकट्ठा तादात्म्य अभी भी स्थापित हो सकता है क्योंकि वे कबीले की तरह जीते हैं। उनका कोई व्यक्तित्व नही है लेकिन जितना समाज सभ्य होगा, जितना सुसस्कृत होगा उतना मुश्किल हो जाएगा। जैसे अगर बर्टेंड रसल से तादात्म्य स्थापित करना हो तो सीधा व्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करना होगा। अग्रेज जाति से तादात्म्य स्थापित करने में और किसी

से भी तादात्म्य स्थापित हो जाए, बर्टेंड रसल छूट जाएगा बाहर। उसके पास अपना व्यक्तित्व है। जितने नीचे हम उतरते हैं, उतना वहाँ व्यक्तित्व नही है। इसलिए इस वर्ग में तादात्म्य पूरी जाति से होता है। इस तादात्म्य की स्थिति में जो भी भाव-सकल्प किया जाए वह प्रतिध्वनित होकर उन सारे जीवो तक व्याप्त हो जाता है। जैसे गुलाब के पौधे की जाति से तादात्म्य स्थापित किया गया हो तो उस क्षण में जो भी भाव-तरग पैदा की जाए वह समस्त गुलाबों तक सक्रमित हो जाती है।

ऐसी अवस्था में महावीर ने बहुत समय गुजारा। और ऐसी अवस्था को उपलब्ध करने में उनको बहुत सी बातें करनी पड़ी जो पीछे समझाने वाले को मुश्किल होती चली गई। जैसे महावीर खडे हैं, कोई उनके कानो में कीलें ठोक दे, महावीर को पता नही चलता। कारण कि पत्थर में कील ठोक दो तो पत्थर को क्या पता चलता है क्योंकि सब करीब-करीब अचेतन है। महावीर के कान मे कीलें ठोके जा रहे है तो उनको पता नही चलता। कारण कि उस समय वे ऐसी चीजो से तादात्म्य कर रहे हैं जिनको पता नही चलता कीले ठोके जाने से। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न ? जिस प्राणी जगत् से वह सम्बन्ध स्थापित किए खडे हैं, उस प्राणी को कान में कीला ठोके जाने से पता नही चलेगा। इसलिए महावीर को भी कभी पता नही चल सकता है। अगर महावीर का कोई हाथ भी काट लेगा तो भी उन्हे पता नही चलेगा, जैसे कोई वृक्ष की एक शाखा काट ले। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका तादात्म्य क्या है। हम सब जानते हैं कि लोग अंगारो पर कूद सकते हैं। तादात्म्य किससे है, इस पर सब बात निर्भर करती है। अगर उस व्यक्ति ने किसी देवता से तादात्म्य किया है तो वह अंगारों पर कूद जाएगा, जलेगा नही क्योकि वह देवता नही जल सकता है। जो रहस्य है वह कुल इतना है। आदमी तो फौरन जल जाएगा लेकिन अगर उसने अपना तादात्म्य किसी देवता से किया हुआ है, उसके साथ अपने को एक मान लिया है, उसकी धुन में नाचता हुआ चला जा रहा है तो उसके नीचे अगारो के ढेर लगा देने पर भी उसके पावों पर फफोला नही आएगा क्योकि जिससे उसका तादात्म्य है, चेतना उस वक्त वैसा ही व्यवहार करना शुरू कर देती है। हमारे तादात्म्य पर निर्भर करता है कि हम कैसा व्यवहार करेंगे। यह जो हम मनुष्य है अभी यह भी गहरे में हमारा तादात्म्य ही है। इसलिए मनुष्य को कैसे व्यवहार करना चाहिए, वैसा हम

व्यवहार करते हैं। गहरे में यह भी हमारी मनोभूमी की पकड है कि "हम मनुष्य हैं", तो फिर हम मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं।

इस सम्बन्ध में वहुत सी घटनाएँ मुझे ख्याल में आती हैं। महावीर के जीवन में वहुत जगह है जहाँ समझना मुश्किल हो जाता है। न समझने की वजह से हम कहते हैं कि आदमी क्षमावान् है, अक्रोधी है। यानी क्रोध नही करता है। यह सब ठीक है। क्रोध न करे, क्षमा करे लेकिन कान में कीले ठुकें और पता न चले। यह अकेले अक्रोधी और क्षमावान् को नही होने वाला है। कितना ही अक्रोधी हो, अक्रोध और बात है लेकिन कान में कीलें ठुके और पता न चले, यह विल्कुल अलग बात है। यह तभी हो सकता है जब महावीर विल्कुल चट्टान की तरह हो उस हालत में।

सुकरात एक रात खो गया। घर के लोग रात भर परेशान रहे। सुवह मित्र खोजने निकले तो एक वृक्ष के नीचे जहाँ वर्फ पडी है, सब वर्फ से ढका हुआ है, वह घुटने-घुटने तक वर्फ में डूबा हुआ है। वह वृक्ष से टिका हुआ खडा है। उसकी आँख वद है और वह विल्कुल ठडा है। सिर्फ धीमी सी स्वास चल रही है। उसे हिलाया है, बमुश्किल वह होश में आया है, उसके हाथ पैर पर मालिश की है, उसे गर्म किया है, कपड़े पहनाए हैं। फिर जब वह थोडा होश में आया है, उससे पूछा है कि तुम क्या कर रहे थे। तो कहा कि वड़ी मुश्किल हो गई। रात जब मैं खडा हुआ तो सामने कुछ तारे थे, मैं उनको देख रहा था। और कब मेरा तारो से तादात्म्य हो गया मुझे याद नही। और कब मैंने ऐसा जाना कि मैं तारा हूँ, मुझे पता नही, और तारे तो ठंडे होते हैं, इसलिए मैं ठडा होता चला गया। और चूंकि मैं तारा समझ रहा था अपने को इसलिए कोई वात ही नही उठी, घर लौटने का ख्याल ही नहीं था। वह तो तुमने जब मुझे हिलाया तब मैं जैसे एक दूसरे लोक से वापस लौटा हूँ।

हम जहाँ तादात्म्य कर लेते है, वही हो जाते है। तादात्म्य की कला वहुत अद्भुत वात है। और जरा सी चूक हो जाए तादात्म्य में तो सब गडबड हो जाएगा। महावीर जो अभिव्यक्ति का उपाय खोज रहे हैं, वह है भूत, जड, मूक जगत् उस सब में तरगें पहुँचाने का। और ये तरंगें अब तो वैज्ञानिक ढग से भी अनुभव की जा सकती हैं।

तीर्थ और मन्दिर जिस दिन पहली बार खड़े हुए, उनके खड़े होने का कारण बहुत ही अद्भुत था। वह यही था। अगर महावीर जैसा व्यक्ति इस कमरे में रह जाए कुछ दिन तो इस कमरे से उसका तादात्म्य हो जाता है। और इस कमरे के रग-रग पर, कण-कण पर उसकी तरंगें अंकित हो जाती हैं। फिर इस कमरे में बैठना किसी दूसरे के लिए बड़ा सार्थक हो सकता है, बड़ा सहयोगी हो सकता है। इस कमरे में अगर एक आदमी ने किसी की हत्या कर दी हो, या आत्महत्या कर ली हो तो आत्महत्या के क्षण में इतनी तीव्र तरंगों का विस्फोट होता है—क्योंकि आदमी मरता है, टूटता है—कि सैकड़ों वर्षों तक इस कमरे की दीवारों पर उसकी प्रतिध्वनियां अंकित हो जाती हैं और यह हो सकता है कि एक रात आप इस कमरे में आकर सोएँ और रात आप एक सपना देखें आत्महत्या करने का। वह आपका सपना नहीं है। वह सपना केवल इस कमरे की प्रतिध्वनियों का आप के चित्त पर प्रभाव है। और यह भी हो सकता है, इस कमरे में रहते हुए आप किसी दिन आत्महत्या कर गुजरें—यह भी बहुत कठिन नहीं है। इससे उल्टा भी हो सकता है। लेकिन महावीर और मीरा जैसा कोई व्यक्ति इस कमरे में बैठकर एक तरंगों में जिया हो तो यह कमरा उसकी तरंगों से भर जाएगा। इसके कण-कण में—क्योंकि उधर जो हमें कण दिखाई पड़ रहा है मिट्टी का, और यह जो हम में कण हैं उनमें—कोई बुनियादी भेद नहीं है। वह सब एक से ही बहुत विद्युत् के कण हैं और सब विद्युत् के कण तरंगों को पकड़ सकते हैं, तरंगों को देख सकते हैं। कमजोर आदमी को तरंगें दे देते हैं और शक्तिशाली आदमियों से उनको तरंगें लेनी पड़ती हैं।

मैंने परसों बोधिवृक्ष की बात की थी। इस वृक्ष को इतना आदर देने का और तो कोई कारण नहीं है। वह वृक्ष ही है। बुद्ध उसके नीचे बैठकर अगर निर्वाण को भी उपलब्ध हुए तो क्या मतलब है? लेकिन मतलब निश्चित है। इस वृक्ष के नीचे निर्वाण की घटना घटी तो उस क्षण में इतनी तरंगें बुद्ध के चारों तरफ विस्फोट की तरह फैलीं कि यह वृक्ष उसका सबसे बड़ा गवाह है और इस वृक्ष के कण-कण से उसकी तरंगों का अंकन है। और आज भी जो रहस्य को जानता है वह उस वृक्ष के नीचे बैठकर उन तरंगों को वापस अपने में बुला सकता है। आकस्मिक नहीं था कि हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार मील तक बौद्ध भिक्षु चक्कर लगाएँ, दो क्षण उस वृक्ष के पैरों में पड़े रहने के लिए आते रहें। आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे सारी की सारी विज्ञान की बात है।

सम्मेद शिखर है, गिरनार है, काबा है, काशी है, जेरुसलम है—इन सब के साथ कुछ संकेत और कुछ गहरी लिपियों मे कुछ जुड़ा है। उनकी तरगे धीरे-धीरे नष्ट हो गई हैं। करीब-करीब इस समय पृथ्वी पर कोई भी जीवित तीर्थ नहीं है, सब तीर्थ मर गए हैं। उनकी तरगें नष्ट हो गई हैं। इतनी तरगो का उनके ऊपर और आघात हो गया है इतने लोगों के आने जाने का कि वे करीब-करीब कट गई हैं और समाप्त हो गई हैं। लेकिन इस बात में तो अर्थ था ही, इस बात में तो अर्थ है ही। जड से जड वस्तु पर भी तरगें क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती हैं।

अभी एक नवीनतम प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह प्रयोग यह है कि जैसे-जैसे हम अणु को तोड कर और परमाणुओं को तोडकर इलैक्ट्रोन की दुनिया में पहुँचे हैं, वहां जाकर एक नया अनुभव आया है जो बहुत घबडाने वाला है और जिसने विज्ञान की सारी व्यवस्था उलट दी है। वह अनुभव यह है कि अगर इलेक्ट्रान को बहुत खुर्दबीनो से निरीक्षण किया जाए तो जैसा वह अनिरीक्षित व्यवहार करता है, निरीक्षण करने पर उनका व्यवहार बदल जाता है। कोई उसे नही देख रहा है तो वह एक ढग से गति करता है और खुर्दबीन से देखने पर वह डगमगा जाता है और गति बदल देता है। यह बडी हैरानी की बात है कि पदार्थ का अन्तिम अणु भी मनुष्य की आंख और निरीक्षण से प्रभावित होता है। ऐसे जैसे आप अकेले सडक पर चले जा रहे है, कोई नही है सडक पर, फिर अचानक किसी खिडकी मे से कोई झाकता है और आप बदल गए। आप दूसरी तरह चलने लगे। अभी जिस शान से आप चल रहे थे वैसा नही चल रहे। अभी गुनगुना रहे थे, अब गुनगुनाना बद हो गया। अपने बाथरूम में आप स्नान कर रहे हैं, गुनगुना रहे हैं, नाच रहे हैं, या आइने के सामने मुह बना रहे हैं और अचानक आपको पता लगे कि बगल के छेद से कोई आदमी झाकता है, आप दूसरे आदमी हो गए। निरीक्षण आदमी में फर्क लाये, यह समझ में आता है। लेकिन अणु भी, परमाणु भी, निरीक्षण मे डगमगा जाए तो बडी हैरानी की बात है। और यह सब इस बात की खबर देते है कि हम कुछ गलती में हैं। वहाँ भी प्राण, वहाँ भी आत्मा, वहाँ भी देखने से भयभीत होने वाला, देखने से सचेत होने वाला, देखने से बदलने वाला मौजूद है।

इन परमाणुओ तक भी महावीर ने खबर पहुँचाने की कोशिश की है। इन खबर पहुँचाने के लिए ही, जैसा मैंने कहा, पहले तो यह अनेक बार ऐसी

अवस्था में पाए गए, जहाँ वह जीवित हैं या मृत है कहना मुश्किल है। और यह अवस्थाएँ लाने के लिए उन्हें कुछ और प्रयोग करने पड़े वे भी हमें समझ लेने चाहिए।

महावीर का चार-चार महीने तक, पाँच-पाँच महीने तक भूखा रह जाना बड़ा असाधारण है। कुछ न खाना और शरीर को कोई क्षीणता न हो, शरीर को कोई नुकसान न पहुँचे, शरीर वैसा का वैसा ही बना रहे शायद ही आपने कभी सोचा हो। या जो जैन मुनि और साधु सन्यासी निरन्तर उपवास की बात करते है, उनमें से, अढाई हजार वर्ष होते हुए महावीर के हुए, एक भी यह नही बता सकता है कि तुम चार-पाँच महीने का उपवास करो तो तुम्हारी क्या गति होगी। महावीर को क्यों नही हो रहा है ऐसा। यह आदमी चार-चार पाँच-पाँच महीनों तक नहीं खा रहा है। बारह वर्ष में मुश्किल से जोड-तोड़ कर एक आध वर्ष भोजन किया है यानी बारह दिन के बाद एक दिन तो निश्चित हो, कभी दो दिन, कभी दो महीने बाद, कभी-कभी तीन महीने बाद, इस तरह चलता है लेकिन इसके शरीर को कोई क्षीणता उपलब्ध नही हुई है। इसका शरीर पूर्ण स्वस्थ है, असाधारण रूप से स्वस्थ है, असाधारण रूप से सुन्दर है—क्या कारण है ? अब मेरी अपनी जो दृष्टि है, जैसा मैं देख पाता हूँ, वह यह है कि जो व्यक्ति नीचे के तल पर, पदार्थ के परमाणुओ, पौधो के परमाणुओं, पक्षियो के परमाणुओ को इतना बड़ा दान दे रहा है अगर ये परमाणु उसे प्रत्युत्तर देते हो तो आश्चर्य नही। यह परमाणु जगत् का प्रत्युत्तर है। जो आदमी पास में पडे हुए पत्थर की आत्मा को भी जगाने का उपाय कर रहा है, जो पास में लगे हुए वृक्ष की चेतना को जगाने के लिए भी कम्पन भेज रहा है अगर ऐसे व्यक्ति को सारे पदार्थ-जगत् में प्रत्युत्तर मे बहुत सी शक्तियाँ मिलती हों तो आश्चर्य नही। और उसे वे शक्तियाँ मिल रही है। (आखिर वृक्ष को हम भोजन बनाकर लेते हैं, काटते है, पीटते हैं, आग पर पकाते हैं, फिर वह जो वृक्ष है, वृक्ष का पत्ता है, या फल है, इस योग्य होता है कि हम उसे पचा सकें और वह हमारा खून और हड्डी बन जाए। बनता तो वृक्ष ही है। और वृक्ष क्या है, मिट्टी ही है, मिट्टी क्या है, सूरज की किरणें ही हैं। वह सब चीजें मिल कर एक फल में आती हैं। फल हम लेते है। हमारे शरीर में पचता है और पहुँच जाता है। आज नही कल, विज्ञान इस बात को खोज लेगा कि जो किरणो को पीसकर वृक्ष का फल 'D' विटामिन लेता है, क्या जरूरत है कि इतनी लम्बी यात्रा की जाए कि हम फल को लें और फिर 'डी' विटामिन हमें

मिले। सूरज की किरण से सीधा क्यो न मिले ? यह सूरज की किरण को हम एक छोटे केपस्यूल में क्यों न बद करें और वह आदमी को दें ताकि वह पचास फल खाने में जितना 'डी' विटामिन इकट्ठा कर पाए, एक कैपस्यूल उसको पहुँचा दे। आज नही कल, विज्ञान उस दिशा में गति करेगा ही। लेकिन विज्ञान की गति और तरह की है। वह छीन-झपट की गति है। महावीर की भी एक तरह की गति है और वह गति भी किसी दिन स्पष्ट हो सकेगी कि क्या यह सम्भव नही है। आखिर पानी ही तो हमें बचाता है, हवा बचाती है, सूरज बचाता है यही सब तो हमारा भोजन बनते हैं। क्या यह सभव नही है कि बहुत गहरे प्रतिदान में जो आदमी इन सबके लिए एकात्म्य साध रहा हो उसको इनमे भी प्रत्युत्तर में कुछ मिलता हो जो हमें कभी नहीं मिलता, या मिलता है तो बहुत श्रम से मिलता है।)

इस तरह की दो घटनाएँ और घटी हैं। अभी यूरोप में एक औरत जिन्दा है जिसने तीस साल से भोजन नही किया और पूर्ण स्वस्थ है और वैसी ही सुन्दर है, वैसी ही स्वस्थ है जैसे महावीर रहे होगे। और तीस साल से उसने कुछ भी नही लिया है। उसके शरीर में कुछ भी नही गया है। उसके सब एक्स-रे हो चुके है, जांच-पडताल हो चुकी है। उसका पेट सदा से खाली है। तीस साल से उसने कुछ भी नहीं खाया है। लेकिन उसका एक छटांक वजन भी नहीं गिरता है नीचे। वह पूर्ण स्वस्थ है। न केवल वजन नही गिरता है बल्कि एक और दुर्घटना है जो उसके साथ चलती है। ईसाइयो मे, ईसाई फकीरों में एक तादात्म्य का प्रयोग है जो स्टिगमेटा कहलाता है। जैसे जीसस को जिस शुक्रवार को शूली लगी, उनके दोनो हाथो पर कीले ठोके गए तो जो ईसाई फकीर, ईसाई साधक जीसस से तादात्म्य कर लेते है, शुक्रवार को ऐसा हाथ फैला कर बैठ जाते है और हजारों लोगो के सामने उनके हाथो में अचानक छेद हो जाते है और खून बहने लगता है वह जीसस से तादात्म्य के आधार पर—यानी उस क्षण वह भूल गए है कि मैं हूँ, वह जीसस है। शुक्रवार का दिन आ गया और वह शूली पर लटका दिए गए है। उनके हाथ फैल जाते है। हजारो लोग देख रहे है। उनकी हथेली फटती है और खून बहना शुरू हो जाता है। इस औरत ने तीस साल से खाना तो लिया नही और तीस साल से प्रति शुक्रवार तेरो खून इसके हाथ से बह रहा है। दूसरे दिन हाथ ठीक हो जाते है और सब घाव मिट जाते हैं और उसके वजन में कमी नही आती। पश्चिम में घटना घटे, वहाँ तो वैज्ञानिक चिन्तन चलता है किसी भी

बात पर। लेकिन उनकी पकड़ में अब तक नही आ सका कि बात क्या हो सकती है।

बंगाल में एक औरत थी। उसे मरे अभी कुछ वर्ष हुए। पैंतालिस वर्ष तक उसने कोई भोजन नहीं किया। वह बहुत स्वस्थ नही थी किन्तु साधारण स्वस्थ थी। इतने वर्ष भोजन न करने से कोई असुविधा नहीं आई थी, चलती फिरती थी। बूढी औरत थी। सब ठीक था। उसका पति जिस दिन मरा उस दिन से भोजन नही लिया। घर के लोगों ने समझाया-बुझाया कि भोजन ले लो। उसने कहा मैं पति के मरने के बाद भोजन कैसे ले सकती हूँ। घर के लोगो ने, मित्रों ने कहा कि ठीक है, रहने दो, ठीक ही कहती है, वह कैसे ले सकती है। दो दिन बीत गए तब फिर लोगों ने कहा तो उसने कहा कि अब तो पति के मरने के बाद ही सब दिन हैं। अब इससे क्या फर्क पडता है कि एक दिन, दो दिन, तीन दिन। अब तो बाद मे ही सब कुछ है। और जब उस दिन तुम राजी हो गए तो अब तुम राजी ही रहो। अब मैं बाद में कैसे भोजन ले सकती हूँ। अब बात खत्म हो गई। वह पैंतालीस साल जिन्दा रही। उसने भोजन नहीं लिया। लेकिन वैज्ञानिक उसकी भी चिन्तना करते रहे, विचार करते रहे। उनको साफ नही हो सका कि बात क्या है। मेरी अपनी समझ यह है, और महावीर से ही वह समझ मेरे ख्याल में आती है कि हो सकता है किसी न किसी तरह से परमाणुओं का सूक्ष्म जगत् सीधा भोजन देता हो। इसके अतिरिक्त और कोई बात नही है। वह कैसे देता हो, किस ढग से देता हो यह हमारी बातें हैं। लेकिन, सूक्ष्म जगत् से सीधा भोजन मिलता हो, और बीच में माध्यम न बनाना पड़ता हो।

महावीर को ऐसा भोजन मिला है। इसलिए महावीर के पीछे जो भूखो मर रहे हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वे निपट शरीर को गला रहे हैं और नासमझी कर रहे हैं। इसलिए महावीर के उपवास को मैं कहता हूँ 'उपवास' है और बाकी पीछे लोग अनशन कर रहे हैं वे सिर्फ मासाहारी हैं—अपना ही मास पचा जाते हैं। एक दिन के उपवास मे एक पौंड मास पच जाता है। तो चाहे हम दूसरे का मास खाएँ या अपना खाएँ, इसमें कोई फर्क नही पडता है। वह मासाहारी ही है क्योंकि शरीर को जरूरत है उतने की। जितनी गर्मी चाहिए, जितनी शक्ति चाहिए वह शरीर लेगा। अगर आप बाहर से नहीं देते हैं तो वह शरीर से पचा लेगा। तो इतनी चर्बी पचा जाएगा और उस पचाने में आप उपवास समझेंगे। वह उपवास नहीं है। शरीर में कोई फर्क न आए, शरीर जैसा

या वैसा रहे तब तो जानना चाहिए कि भोजन के सूक्ष्म मार्ग उपलब्ध हो गए हैं, सिर्फ भोजन बंद नही किया गया है।

महावीर जो तीन-चार महीने के बाद एक आध दिन भोजन कर लेते हैं, वह इसलिए नही लेते कि एक दिन के भोजन लेने से कोई फर्क पड जाएगा क्योकि जब चार महीने भोजन के बिना एक आदमी रह सकता है तो आठ महीने क्यो नही ? वह सिर्फ इस रहस्य को प्रकट न करने के लिए है कि अगर साल दो साल भूखा रह जाए आदमी तो लोग पूछेंगे कि यह हुआ कैसे ? और यह हर किसी को बताना खतरनाक भी हो सकता है। सभी बातें सभी को बताने के लिए नहीं भी हैं। जो वे एक दिन खाना ले लेते हैं वह सिर्फ इसलिए कि लोगो को सात्वना हो जाए कि वे खाना ले लेते है। एक दिन खाना ले लेते है तो दो चार-महीने बात खत्म हो जाती है। इसलिए, जो बातें अभी मैं कह रहा हूँ उसमे कुछ सूत्र छोडे जा रहा हूँ। इसलिए अभी इनका प्रयोग नही किया जा सकता। आप इनका प्रयोग नही कर सकते।

महावीर पाखाना नहीं जाते, पेशाब नहीं जाते। बडी चिन्तना की बात है कि यह कैसे हो सकता है ? महावीर को पसीना नहीं बहता, यह कैसे हो सकता है ? अगर भोजन ले लें तो यह सब होगा क्योकि यह भोजन से जुडा हुआ हिस्सा है। अगर आप भीतर डालेंगे तो बाहर निकालना पडेगा। लेकिन अगर सूक्ष्म तल से भोजन मिलने लगे तो इसका कोई मतलब ही नही रह जाता है। निकालने को कुछ है ही नही। इतना सूक्ष्म है भोजन कि निकालने लायक कुछ भी उसमें से बचता नही। वह सीधा शरीर में लीन हो जाता है।

महावीर की अहिंसा को भी इस तरह से समझने की कोशिश करना जरूरी है। और तरफ से भी हम समझने की कोशिश करेंगे। महावीर के लम्बे उपवास समझ लेने जरूरी हैं कि सूक्ष्म भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया उन्हें उपलब्ध है।

काशी में एक सन्यासी था विशुद्धानन्द और उसने एक अति प्राचीन विज्ञान को जो एकदम खो गया था फिर से उज्जीवित किया। वह है सूर्य किरण विज्ञान। उस आदमी ने इस तरह लेंस बनाए थे कि एक मरी हुई चिडिया को ले जाकर आप रख दें तो वह लेंस से सूरज की किरणों को पकडेगा और उस चिडिया पर डालेगा। थोड़ी देर कुछ करता रहेगा बैठा हुआ। और आपके सामने चिडिया जिन्दा हो जाएगी। और यह प्रयोग पश्चिम के डाक्टरों के सामने भी किए गए और यूरोप से आने वाले न जाने कितने लोगो ने ये

प्रयोग अपनी आँखो से देखे। जिन्दा चिडिया को बिठा दें। वह फिर लेंस को रखेगा। फिर कुछ और ढंग से किरणें डालेगा, कुछ करेगा और चिडिया मर जाएगी। उसका कहना था कि सूर्य की किरण से सीधा जीवन और मृत्यु आ सकती है। बीच में कुछ और लेने की जरूरत नही। सीधा जीवन आ सकता है। सीधी मृत्यु आ सकती है और बात में गहरी सच्चाई है। सारा जीवन जो हमें पृथ्वी पर दिखाई पड़ रहा है, वह सूरज की किरण से बँधा हुआ है। सूरज अस्त हो जाए, सारा जीवन अस्त हो जाएगा। न पौधे होगे, न फूल होगे, न पक्षी होगे, न आदमी होगा। कोई भी नही होगा। प्राणी हो सकते हैं, सूरज न हो तब भी, लेकिन देह नही होगी। देह और प्राण का सम्बन्ध सूरज की किरण से ही जुड़ा है। अदेही हो सकेंगे। लेकिन देह नही होगी।

अभी चाँद से लौटते वक्त जो एक घटना घटी है, वह विचारणीय है, बहुत ज्यादा विचारणीय है। चाँद से वे लौट आए हैं और चाँद पर कोई नही पाया गया है। कोई पाने को है भी नही ऐसे। लेकिन लौटते वक्त उनके नीचे के जो ट्रासमिटर्स हैं, और जो रेडियो स्टेशन हैं, जहाँ वह पकड रहे हैं, वहाँ इतने जोर की चीखें-पुकार, इतना कोलाहल, इतना हँसना सुना गया है कि जैसे करोडो भूत-प्रेत एकदम से चिल्ला रहे हो। ये तीन आदमी अगर कोशिश भी करें चिल्लाने की, रोने की तो भी किसी स्थिति में ये करोडो भूत-प्रेतो की आवाजो का भ्रम पैदा नही कर सकते। और उनसे लौटने पर पूछा गया तो उन्होंने कहा हमको तो कुछ भी पता नही, हम तो विश्राम करते चले आ रहे हैं। यह इस बात की गहरी सूचना है और खबर है कि चाँद पर कोई देहधारी तो नही है क्योकि चाँद पर अभी वह स्थिति नही पैदा हुई जहाँ पर देह प्रकट हो सके। लेकिन चाँद पर अदेही आत्माओ की पूरी स्थिति है। इस पृथ्वी पर सूर्य की किरणों ने देह और प्राण को जोडने में बड़ा उपाय किया है। सूर्य की किरणो से सीधा भी कुछ हो सकता है। आँख से भी सूरज की किरणे पी जा सकती हैं, और जीवनदायी हो सकती हैं। त्राटक के बहुत से प्रयोग सीधे सूरज से जीवन खींचने के प्रयोग हैं। वह सिर्फ एकाग्रता के प्रयोग नही हैं। सीधा सूरज से जीवन खीचने के प्रयोग हैं। और एक दफा वह उतर जाए ख्याल में तो सूरज से कही से भी जीवन खीचा जा सकता है।

तिब्बत में एक विशेष प्रकार का योग होता है जिसको सूर्य योग ही कहते हैं। तिब्बत में तो भयंकर सर्दी है। सूरज कभी दिखता है, कभी नहीं दिखता है। बर्फ ही बर्फ जमी है। नगा फकीर भी उस बर्फ पर बैठा रहेगा

और आप पाएँगे उसके शरीर से पसीना चू रहा है। नगा बैठा हुआ है, सारे तरफ से पसीना झर रहा है। बर्फ पर ही नगा बैठा हुआ है। रात, सूरज का कोई पता नही और पसीना टपक रहा है। उसकी प्रक्रिया है कि सूर्य कही भी हो हम उसका ताप पकड सकते हैं।

यह जो मैं कह रहा हूँ वह इस ख्याल से कह रहा हूं ताकि आपके ख्याल में आ सके कि महावीर ने नीचे के जगत् से सम्बन्ध स्थापित किए तो नीचे जगत् ने भी उत्तर दिए हैं। फिर कहानियों में हमने इन उत्तरो को लिखा है जो कविताएँ बन जाती हैं। कहानी है, कविता है जो यह कहती है कि जब महावीर चलते हैं अगर काँटा सीधा पडा हो तो महावीर को देख कर तत्काल उल्टा हो जाता है। ये हमारी कहानियाँ हैं। और एक बहुत गहरी बात उसमें कहने की कोशिश की गई कि प्रकृति भी महावीर के प्रतिकूल होने की कोशिश नही करती, बल्कि अनुकूल होने की कोशिश करती है क्योंकि जिसने इतना प्रकृति से प्रेम किया हो, इतना तादात्म्य किया हो, वह प्रकृति कैसे उसके प्रतिकूल होने की कोशिश करेगी। मुहम्मद के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब वे चलते हैं तो एक बदली उनके ऊपर छाया की तरह चलती है। ऐसी कोई बदली चले, यह जरूरी नही है। चल भी सकती है। लेकिन बात यह है कि जरूर जो लोग जहाँ से सम्बन्ध बनाते हैं वहाँ से कुछ हो सकता है। उत्तर जरूर मिलेंगे। सडक के किनारे पडा हुआ पत्थर भी आपके प्रेम का उत्तर देता ही है। उत्तर चारों तरफ से आते हैं और ध्यान रहे उत्तर वही होते हैं जो हम फेंकते हैं, वही गूँजते हैं, प्रतिध्वनित होते हैं, लौट आते हैं। तो महावीर को अहिंसा का उत्तर अगर अहिंसा की तरफ से लौटे तो आश्चर्य की बात नही है।

पहली बात यह है कि महावीर ने नीचे के तल से सम्बन्ध स्थापित किए, मूक जगत् से। नीचे मूक जगत् है, फिर बीच में मनुष्य का जगत् है जो शब्द का जगत् है। फिर मनुष्य के ऊपर देवताओं का जगत् है। ये तीन जगत् हैं। मूक का मतलब, जहाँ वाणी अभी प्रकट नही हुई। शब्द का जगत्, जहाँ प्रकट हो गई। मौन का जगत्, जहाँ वाणी वापस खो गई है। देवताओं के पास कोई वाणी नहीं है।

प्रश्न शरीर है ?

उत्तर : शरीर भी नही है। पशुओं के पास भी कोई वाणी नहीं है लेकिन शरीर है, वाणी प्रकट नही हुई है। यन्त्र है पशुओं के पास, वाणी प्रकट हो सकती है।

प्रश्न : पशुओं की अपनी भाषा है ?

उत्तर : कहने मात्रा को। भाषा नहीं है सिर्फ सकेत हैं। सकेत काम चलाऊ हैं। और बडे सीमित है। जैसे मधुमक्खियो के कोई चार सकेत हैं उनके पास। वे चार सकेत दे सकती हैं।

प्रश्न : पक्षियों की आवाजो के लिए ग्रन्थ हैं ?

उत्तर : हाँ, हाँ, पक्षियो से बात की जा सकती है लेकिन पक्षियो के पास अपनी वाणी नही है। आप सम्बन्ध जोड सकते हैं। पक्षी आपसे कुछ कह नही सकता है लेकिन पक्षी कुछ अनुभव कर सकता है। और अगर आप अनुभव के तल पर उससे सम्बन्ध जोड़ लें तो आप जान सकते हैं कि वह क्या अनुभव कर रहा है। वह आपसे कुछ कहती नही; सिर्फ आप उसके अनुभव को जान सकते है कि वह क्या कर रहा है। जैसे एक कुत्ता रो रहा है। वह आपसे कुछ कह नही रहा है। उसके भीतर कुछ हो रहा है जिससे वह रो रहा है। लेकिन अगर आप सम्बन्ध जोड़ सके उसके भीतर से तो शायद आप पता लगा सकते हैं कि पडोस में कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है लेकिन कुत्ते को यह पता नही कि पडोस में कोई मरने वाला है इसलिए वह रो रहा है। उसके चित्त में इस तरह की तरंगे उठ रही हैं पास से आकर कि कही मृत्यु होने वाली है। यह उसका मूक अनुभव है। इस मूक अनुभव में वह रो रहा है, चिल्ला रहा है। आपसे कुछ कह सकता नही है वह। कहने का उपाय नही है उसके पास और आप भी उसके चिल्लाने से कुछ नही समझ सकते हैं। जब हम कहते हैं कि पशुओ-पक्षियों की भाषा सीखने के सम्बन्ध में बहुत से प्रयोग किए गए हैं और बहुत दूर तक सफलता भी पाई गई है लेकिन उनमें उनकी कोई वाणी नही पकडता है। उनके पास कोई शब्द, वर्ण, अक्षर से निर्मित वाणी नही है। अनुभूति के तल जरूर हैं, अनुभूति की तरंगे हैं। उन्हें अगर पकड लें तो आप उस कोड को खोज सकते है। आप खोज सकते है कि उनको क्या एहसास हो रहा होगा।

तीन तल में मैं बांट देता हूँ जीवन को एक मूक जहाँ वाणी प्रकट हो सकती है, मगर प्रकट नहीं हुई, जहाँ सिर्फ अनुभव है, भाव हैं, शब्द नही हैं। दूसरा, मनुष्य का जगत्, जहाँ शब्द प्रकट हो गया है जहाँ हम शब्द के द्वारा काम करने लगे है, बात करने लगे है, विचार करने लगे है, संवाद करने लगे हैं। तीसरा, मनुष्य से ऊपर देवताओ का जगत्, जहाँ वाणी खो गई है, व्यर्थ

हो गई है, अब उसकी कोई जरूरत नही रही, अब बिना शब्द के ही बातचीत हो सकती है, मौन ही सम्भाषण बन सकता है। इनमें सर्वाधिक कठिन पशुओ का जगत् मालूम पडता है—पौधो का, पक्षियों का, पत्थरो का। लेकिन सर्वाधिक कठिन वह नही है। इनमें कठिन देवताओ का जगत् भी मालूम पड सकता है क्योंकि जहाँ शब्द नही हैं वहाँ अभिव्यक्ति कैसे होती होगी। मगर वह भी इतना कठिन नही है। सबसे ज्यादा कठिन सम्भाषण का जगत् है, मनुष्य का जगत् है जिसने सवाद के लिए शब्द ईजाद कर लिए हैं और इस तरह कि शब्दो के कारण ही सवाद होना ही मुश्किल हो गया है। सबसे सरल देवताओ का जगत् है, जहाँ मौन विचार हो सकता है। इसलिए यह जो कहा जाता है कि महावीर के समवसरण में पहली उपस्थिति देवताओं की है, उसका अर्थ सिर्फ इतना ही है। सबसे सरल सम्भाषण उनसे हो सकता है। शब्द बीच में बाधा नही है, शब्द बीच में माध्यम नही है। सीधा जो भाव उठे, वह सम्प्रेषित हो जाता है। बीच में किसी को कोई यात्रा करने की जरूरत नही रह जाती। जैसे हम देखते हैं, कि टेलीफोन है। उसमें एक तार की व्यवस्था है। फिर वायरलेस है, जिसमें बीच में कोई तार नही है, सीधा सबंध है। बीच में तार लाने की जरूरत नही है। सीधा, सम्प्रेषण हो जाता है। ऐसे ही एक सम्भाषण शब्द के द्वारा हो जाता है। जहाँ शब्द 'मुझे' और 'आपको' जोडता है और एक सम्भाषण ऐसा भी है जहाँ शब्द भी बीच में नही है। सिर्फ मौन है। और मौन में जो अनुभव होता है वह सम्प्रेषित हो जाता है। तो देवताओ के साथ सत्य की वार्ता सबसे ज्यादा सरल है। इसलिए पहली उपस्थिति उनकी रही हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। यह स्वाभाविक है।

प्रश्न : ये देवी-देवता सच हुए हैं?

उत्तर : हुए हैं नही। हैं ही। उसकी हम धीरे-धीरे बात कर सकेंगे कि वह क्या है। उस सम्बन्ध में भी थोड़ी बात जान लेनी उचित होगी। पशु, पक्षी भी महावीर के समवसरण में उपस्थित हैं, उन्हें सुनने को उपस्थित हैं। यह भी हैरानी की बात मालूम पडती है कि पशु पक्षी सुनने को उपस्थित हो! मनुष्य भी उपस्थित हैं। पशु-पक्षियों को जो कहा गया है शायद उन्होंने भी सुना है। देवताओं को जो कहा गया है शायद उन्होंने भी सुना है। मनुष्य को जो कहा गया है शायद उन्होंने नही सुना है। क्योकि उनके पास शब्द हैं और समझदारी का ख्याल है जो बडा खतरनाक है। मनुष्य को यह ख्याल है कि 'मैं

सब समझ लेता हूँ।' यह बडी भारी बाधा है। और मनुष्य शब्द सुनता है और शब्द को पकड़ने का, संग्रह करने का उपाय ईजाद कर लिया है उसने—भाषा को वह सब संग्रहीत कर लेता है। वह कहता है 'यह सब लिखा हुआ है।' वह शब्द पकड लेता है फिर शब्दों की व्याख्या करता है और भटक जाता है। इसलिए मनुष्य के साथ बडी कठिनाई है। क्योंकि मनुष्य पशु है लेकिन वह पशु नही रह गया है। मनुष्य देवता हो सकता है लेकिन अभी हो नही गया है। वह बीच की कडी है। अगर ठीक से हम समझें तो वह प्राणी नही है, सिर्फ कडी है। पशु से चला आया है वह आगे। लेकिन पशु बिल्कुल खो नहीं गया है। इसलिए जो जरूरी चीजें हैं, वह अब भी भाषा के बिना करता है। जैसे क्रोध आ जाए तो वह चाटा मारता है, प्रेम आ जाए तो वह गले लगाता है। जो जरूरी चीजें हैं, वह अभी भी भाषा के साथ नही करता है। भाषा अलग कर देता है फौरन। उसका पशु होना एकदम प्रकट हो जाता है। पशु के पास कोई भाषा नही है। प्रेम है तो वह गले लगा लेता है, क्रोध है तो चाटा मार देता है। वह नीचे उतर रहा है। वह भाषा छोड रहा है। वह जानता है कि भाषा समर्थ नही है। इसलिए जो बहुत जरूरी चीज है उसमें वह गैर भाषा के काम करता है। या फिर जो बहुत जरूरी चीजें हैं जिनमें भाषा बिल्कुल बेकार हो जाती है तो वह मौन से काम करता है। मनुष्य पशु नही रह गया है और देवता भी नही हो गया है। वह बीच मे खडा है। एक तरफ का क्रास रोड है, एक तरह का चौरास्ता है जो सब तरफ से बीच मे पडता है। कही भी जाना है तो मनुष्य से हुए बिना जाने का उपाय नही है।

इस मनुष्य को समझाने की चेष्टा ही सबसे ज्यादा कठिन चेष्टा है। देवता समझ लेते हैं जो कहा जाता है वैसा ही क्योंकि बीच में कोई शब्द नही होता। व्याख्या करने का कोई सवाल नहीं है वहाँ। पशु समझ लेते हैं क्योंकि उनसे कहा ही नहीं जाता। व्याख्या की कोई बात ही नही होती। सिर्फ तरंगें प्रेषित की जाती हैं। तरंगें पकड ली जाती हैं। जैसा कि अब यह टेप रिकार्डर मुझे सुन रहा है। आप भी मुझे सुन रहे हैं। इस कमरे में कोई देवता भी उपस्थित हो सकता है। यह टेप रिकार्डर कोई व्याख्या नही करता है। यह सिर्फ रिसीव कर लेता है, सिर्फ तरंगो को पकड लेता है। इसलिए कल इसको बजाएँगे तो जो इसने पकडा है, वह दुहरा देगा पदार्थ के तल पर, और पशु के तल पर जो ग्रहण शक्ति है वह इसी तरह की सीधी है। सिर्फ तरंगें सम्प्रेषित हो जाती हैं। देवता तल पर अर्थ सीधे प्रकट हो जाते हैं। मनुष्य के तल पर तरंगें पहुँचती

हैं, अर्थ वह खुद खोजता है। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब उसकी सब व्याख्याएँ खड़ी हो जाती हैं। व्याख्याओं पर व्याख्याएँ खड़ी हो जाती हैं।

जैसा मैंने कहा कि महावीर शायद अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने न मालूम कितने पशुओ, न मालूम कितने पक्षियों, न मालूम कितने पौधो को आमन्त्रित किया है मनुष्य की तरफ। दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। वही शायद ऐसे अकेले व्यक्ति हैं और लोगो ने भी शायद चेष्टा की है, बहुत लोगो ने सफलता पाई है जिन्होंने देवताओ को भी मनुष्य की तरफ आकर्षित किया है। इस पर हम पीछे बात करेंगे। मनुष्यो से कैसे सम्प्रेषण हुआ है, देवताओ से कैसे सम्प्रेषण हो सकता है, वह हम फिर बात करेंगे। बारह वर्ष की पूरी साधना अभिव्यक्ति, सप्रेषण की साधना है। कैसे पहुँचाया जा सके जो पहुँचाना है? और जैसे ही उसकी साधना पूरी हो गई है, उन्होने छोड दी है और वह पहुँचाने के काम में लग गए हैं। दो छोटे सूत्र ख्याल में रख लेने चाहिए। पशु के पास सप्रेषण करना है तो मूक होना पडेगा। मूक का मतलब यह कि वाणी खो देनी पडेगी; वह रह ही नही जाएगी भीतर। करीब-करीब मूच्छित और जड जैसा मालूम पडने लगेगा व्यक्ति। लेकिन शरीर जड होगा, मन जड होगा, मगर भीतर चेतना पूरी जागी होगी। अगर मनुष्य से संबन्ध जोडना है तो दो उपाय हैं जो मनुष्य साधना से गुजरे उसके साथ बिना शब्द के सबध जोडा जा सकता है क्योंकि साधना से गुजर कर उसे उस हालत में लाया जा सकता है जहाँ देवता होते हैं। तब वह मौन मे समझ सकता है। जैसे मैंने कल कहा कि महाकाश्यप को बुद्ध ने कहा कि वह मैंने तुझे दे दिया है जो मैं शब्दो से दूसरे को नही दे सका हूँ। या फिर वाणी है जो सीधी उनसे कही जाय। वह उसे सुने, समझे। लेकिन, वह नही समझ पाता है। इसलिए महावीर की कथा यह है कि महावीर कहते हैं, गणधर सुनते हैं, गणधर लोगो को समझाते हैं। यह बडा खतरनाक मामला है महावीर किसी को कहते हैं, वह सुनता है। फिर वह जैसा समझता है, व्याख्या करके लोगो को समझाता है। बीच में एक मध्यस्थ खडा होता है और महावीर है सीधा संबध नही हो पाता क्योंकि हम शब्दों को समझ सकते हैं, अनुभूतियो को नही और या फिर हम अनुभूतियो में प्रवेश करें, ध्यान में जाएँ, समाधि में उतरें और उस जगह खड़े हो जाएँ जहाँ शब्द के बिना तरगें पकडी जा सकती हों। एक रास्ता वह है, नही तो फिर मध्यस्थ होंगे, व्याख्याएँ होंगी, शब्द होंगे—सब बदल जाएगा, सब खो जाएगा।

जो भी शास्त्र निर्मित हैं, वे आदमियो के बोले गए शब्दों द्वारा निर्मित हैं। वे शब्द भी सीधे महावीर के नही हैं। वे शब्द भी टीकाकारों के हैं। और फिर हमने अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार उसको संगृहीत किया है, अपनी व्याख्या की है। और इसलिए सब लड़ाई झगड़ा है, सब उपद्रव है। महावीर ने मौन में क्या कहा है उसे पकड़ने की जरूरत है। या उन्होंने जिनसे मौन से बोला जा सकता था, उन देवताओ से क्या कहा है, उसे पकड़ने की जरूरत है या जिनके साथ शब्द का उपयोग असम्भव था, उन पक्षियो, पौधों, पत्थरो को क्या कहा, उसे पकड़ना जरूरी है। और जो मैंने पहले दिन कहा वह सब किसी गहनतम अस्तित्व की गहराइयो से सुरक्षित है। वह सब वापिस पकड़ा जा सकता है। सिर्फ मन की एक अवस्था में हमें उतरना पड़ेगा जहाँ हम फिर उसे पकड़ सकते हैं।

८

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

श्रीनगर, प्रातः, दिनांक २१ सितम्बर, १९६९

प्रश्न : महावीर सब कुछ अपना मौलिक कहते हैं। वे किसी के अनुयायी नहीं थे। उनका अपना कुटुम्ब रहा होगा। उन्होंने अपना पंथ स्वतः निर्माण किया। फिर वह पार्श्वनाथ के पथ से कैसे मेल खा गया? और जैन नाम का जो सम्प्रदाय महावीर के साथ जुड़ा वे कौन लोग थे और वे क्या कहलाते थे?

उत्तर : इसमें दो तीन बातें समझने की हैं। पहली बात यह कि महावीर के साथ ही पहली बार विचार की एक धारा सम्प्रदाय बनी। महावीर के पहले जो विचारधारा थी उसका आर्यपरम्परा से पृथक् अस्तित्व नहीं था। वह आर्य-परंपरा के भीतर पैदा हुई एक धारा थी। उसका नाम 'श्रमण' था। वह जैन नहीं कहला रही थी तब तक। और 'श्रमण' कहलाने का कारण यह था कि ब्राह्मणधारा इस बात पर श्रद्धा नहीं रखती है कि श्रम, साधना और तप के माध्यम से परमात्मा को पाया जा सकता है। ब्राह्मण धारा का विश्वास है कि परमात्मा को पाया जा सकता है विनम्र भाव में, प्रार्थना में, शास्त्रविधि में, दीन-भाव में, जहाँ हम बिल्कुल असहाय हैं, जहाँ हम कुछ भी नहीं कर सकते, जहाँ करने वाला वही है। इस पूर्ण दीनता को जीसस ने 'पावर्टी ऑफ स्पिरिट' कहा है, जहाँ मनुष्य कहता है कि मैं दीन और दरिद्र हूँ, मैं कर ही क्या सकता हूँ, मैं सिर्फ माँग सकता हूँ, मैं अपने को हाथ जोड़कर समर्पण कर सकता हूँ।' ऐसी एक धारा थी जो परमात्मा को या सत्य को दीन और विनम्र भाव से माँगती थी। उसने ठीक भिन्न और विपरीत एक धारा चलनी शुरू हुई जिसका आधार श्रम था, प्रार्थना नहीं, जिस का आधार यह नहीं था कि हम प्रार्थना करेंगे, पूजा करेंगे और मिल जाएगा किन्तु जिसका आधार यह था कि हम श्रम करेंगे, संकल्प करेंगे, श्रम और संकल्प से जीता जाएगा।

यह आर्य जीवन-दर्शन बडी बात है। इसमें श्रमण सम्मिलित है, ब्राह्मण सम्मिलित है। महावीर पर आकर इस धारा ने अपना पृथक् अस्तित्व घोषित किया। महावीर के पहले तक वह धारा पृथक् नहीं है। इसलिए आदिनाथ का नाम तो वेद में मिल जाएगा लेकिन महावीर का नाम किसी हिन्दू ग्रंथ में नही मिलेगा। पहले तीर्थंकर का नाम तो वेद में उपलब्ध होगा पूरे समादर के साथ। लेकिन महावीर का नाम उपलब्ध नही होगा। महावीर पर आकर विचार की धारा सम्प्रदाय बन गई और उसने आर्य जीवन पथ में अलग पगडंडी तोड ली। तब तक वह उसी पथ पर थी। अलग चलती थी, अलग धारा थी चिन्तना की लेकिन थी उसी पथ पर। उस पथ से भेद नही खडा हो गया था और एकदम से भेद खड़ा होता भी नही है। वक्त लग जाता है। जैसे जीसस पैदा हुए तो जीसस के वक्त में ही इसकी धारा अलग नही हो गई। जीसस के मर जाने पर भी दो तीन सौ वर्ष तक यहूदी के अन्तर्गत ही जीसस के विचारक चलते रहे। लेकिन जैसे-जैसे भेद साफ होते गए और दृष्टि में विरोध पडता गया—जीसस के तीन सौ, चार सौ, पाँच सौ साल बाद—क्रिश्चियन धारा अलग खडी हो गई। जीसस तो यहूदी ही पैदा हुए और यहूदी ही मरे। जीसस ईसाई कभी नही थे।

जैनो के पहले तेईस तीर्थंकर आर्य ही थे, आर्य ही पैदा हुए और आर्य ही मरे। वे जैन नही थे। लेकिन महावीर पर आकर धारा बिल्कुल पृथक् हो गई, बलशाली हो गई, उसकी अपनी दृष्टि हो गई और इसलिए फिर वह 'श्रमण' न कहलाकर जैन कहलाने लगी। 'जैन' कहलाने का और भी एक कारण था क्योंकि श्रमणो की एक बडी धारा थी। सभी श्रमण 'जैन' नही हो गये। श्रम और संकल्प पर आस्था रखने वाले आजीवक भी थे, बौद्ध भी थे और दूसरे विचारक भी थे। जब महावीर ने अलग पूरा दर्शन दे दिया तब फिर इस श्रमणधारा की भी एक धारा रह गई। बौद्ध धारा भी श्रमण धारा है। पर वह अलग हो गई। इसलिए फिर इसको एक नया नाम देना जरूरी हो गया। और यह महावीर के साथ जुड गया। क्योकि जैसे बुद्ध को हम कहते है : गौतम बुद्ध, जाग्रत पुरुष वैसे महावीर को हम कहते हैं महावीर जिन : महावीर विजेता, जिसने जीता और पाया। असल में जिन बहुत पुराना शब्द है। वह बुद्ध के लिए भी उपयुक्त हुआ है। जिन का मतलब जीतना ही है। लेकिन फिर भेदक रेखा खींचने के लिए जरूरी हो गया कि जब गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध कहलाने लगे तो महावीर के अनुयायी जैन कहलाने लगे। 'जिन'

और 'जैन' शब्द महावीर के साथ प्रकट हुए और दो स्थितियाँ हुईं—एक तो आर्यमूलधारा से श्रमणधारा टूट गई और श्रमणधारा में भी नए पंथ हो गए जिनमें जैन एक पंथ बना। इसलिए महावीर के पहले तीर्थंकर हिन्दू संघ के भीतर हैं। महावीर पहले तीर्थंकर हैं जो हिन्दू संघ के बाहर खड़े होते हैं। समय लगता है किसी विचार को पूर्ण स्वतन्त्रता उपलब्ध करने में। वह समय लगा।

दूसरी बात यह कि महावीर निश्चित ही किसी के अनुयायी नहीं हैं। उनका कोई गुरु नहीं है। पर उन्होंने जो कहा, उनसे जो प्रकट हुआ, उन्होंने जो संवादित किया वह जो तेईस तीर्थंकरों के अनुयायी चले आते थे, उनसे बहुत दूर तक मेल खा गया। महावीर को चिन्ता भी नहीं है कि वह मेल खाए। वह मेल खा गया यह संयोग की बात है। नहीं मेल खाता तो कोई चिन्ता की बात न थी। वह मेल खा गया। और वे अनुयायी धीरे-धीरे महावीर के पास आ गए। और दूसरे लोग, जो पार्श्व की परंपरा के जीवित थे, महावीर के करीब आ गए। बहुत बार ऐसा होता है। ऐसा भी नहीं है कि महावीर सब वही कह रहे हैं जो पिछले तेईस तीर्थंकरों ने कहा हो। बहुत कुछ नया भी कह रहे हैं। जैसे किसी पिछले तीर्थंकर ने ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं की है। और पार्श्वनाथ का जो धर्म है वह चतुर्याम है; उसमें ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं है। महावीर पहली बार ब्रह्मचर्य की बात कर रहे हैं। और बहुत सी बातें हैं जो महावीर पहली बार कर रहे हैं। लेकिन वे बातें पिछले तेईस तीर्थंकरों के विरोध में नहीं हैं, चाहे वे उनको आगे बढ़ाती हों, कुछ जोड़ती हों, उनसे भिन्न हों, उनसे ज्यादा हों लेकिन उनके विरोध में नहीं हैं। इसलिए स्वभावतः उस धारा से संबद्ध लोग महावीर के निकट इकट्ठे हो गए हैं। और महावीर जैसा बलशाली व्यक्ति किसी धारा को मिल जाए तो वह धारा अनुगृहीत ही होगी। सच तो यह है कि महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर बड़े साधक थे, सिद्ध थे लेकिन जो एक दर्शन निर्मित करता है ऐसा उनमें कोई भी न था। वह महावीर ही व्यक्ति हैं जो उसको उपलब्ध हुआ। इसलिए चौबीसवाँ होते हुए भी वह करीब-करीब प्रथम हो गए। सबसे अन्तिम होते हुए भी उनको स्थिति प्रथम हो गई। अगर आज उस विचारधारा का कुछ भी जीवन्त अंश शेष है तो सारा श्रेय महावीर को उपलब्ध होता है। व्यवस्था और दर्शन बनाने वाला एक बिल्कुल अलग बात है। बहुत तरह के विचारक होते हैं। कुछ विचारक ऐसे होते हैं जो खण्ड-खण्ड में सोचते हैं, जो कभी सारे टुकड़ों को इकट्ठा जोड़कर समग्र दर्शन स्थापित नहीं

कर पाते। इस तेईस तीर्थंकरो की हजारो वर्षों की यात्रा में, जो सारे खण्ड थे, उन सारे खण्डो को महावीर ने एक सम्बद्ध रूप दिया। इसलिए जैन दर्शन पैदा हो सका।

निश्चित ही, जैसा आप पूछते हैं, महावीर के परिवार के लोग किसी पथ को, किसी विचार को मानते रहे होगे। लेकिन कोई भी पंथ और कोई भी विचार आर्य जीवन-पथ के ही हिस्से थे। उनमें कोई भिन्नता नही थी। इसलिए सम्भव है कि कृष्ण का चचेरा भाई तीर्थंकर हो सके और कृष्ण हिन्दुओ के परम औतार हो सके। इसमें कोई वाधा न थी। विचार पद्धतियां थी किन्तु वे अभी सम्प्रदाय न वन पायी थी। जैसे कि आज कोई कम्यूनिस्ट है, सोशलिस्ट है, फासिस्ट है। एक ही घर में एक आदमी सोशलिस्ट हो सकता है, एक आदमी फासिस्ट हो सकता है, एक आदमी कम्युनिस्ट हो सकता है। लेकिन कभी ऐसा हो सकता है कि जव ये सम्प्रदाय बन जाए तो कम्युनिस्ट का वेटा कम्युनिस्ट हो, सोशलिस्ट का वेटा सोशलिस्ट हो। तव विचार पद्धतियाँ न रही। तब जन्म से वधे हुए संप्रदाय हो गए। महावीर के पहले भारत में विचारपद्धतियाँ थी और आर्य जीवन-दृष्टि सवको घेरती थी। उनमें वेद के क्रियाकाण्डी लोग थे और ठीक उनके विरोध में उपनिषद् के विचारक थे। लेकिन इससे वह कोई अलग वात नहीं हो जाती थी।

अव मजा है कि वेदान्त शब्द का मतलव है कि जहाँ वेद का अन्त हो जाता है, सत्य का प्रारम्भ होता है। यानी वेद तक तो सत्य ही नहीं। जहाँ वेद समाप्त हुआ, वहाँ से सत्य शुरू होता है। अव ये वेदान्त की दृष्टि वाले लोग भी आर्य जीवन-दृष्टि के हिस्से थे। उपनिषद् इतना ही विरोधी है वेद का जितना कि वौद्ध विचारक या जैन विचारक, महावीर या बुद्ध। उपनिषद् के ऋषि वेद के विरोध में हैं और इतनी सख्त वातें कही हैं कि हैरानी होती है। ऐसी सख्त वातें कही हैं वैदिक क्रियाकाण्डी ब्राह्मणों के लिए उपनिषद् तक ने कि आश्चर्य होता है। लेकिन तव तक कोई सम्प्रदाय नही है। तव तक सभी एक परिवार के, सभी तरह के विचारक है। वह सभी एक ही परिवार की शाखाएँ है। वह लड़ते भी हैं, झगड़ते भी हैं, विरोध भी करते है लेकिन अभी कोई जन्मत ऐसा भेद नही पड गया है कि आदमी जन्म से किसी सम्प्रदाय का हिस्सा हो गया हो। महावीर के साथ पहली दफा आर्य जीवन-पद्धति में एक अलग रास्ता टूट गया। फिर श्रमण जीवन पद्धति में भी बुद्ध के साथ अलग रास्ता टूट गया। ऐसे ही जैसे एक वृक्ष होता है, नीचे पीड होती है, वह तो एक ही होती है।

फिर पीड एक जगह से दो शाखाओ में टूट जाती है। अव हम जो शाखाओ पर बैठे हो, पूछ सकते हैं कि पीड के समय में हमारी शाखा कहाँ थी। शाखा थी ज्ञान की पर पीड में इकट्ठी एक ही जगह थी।

भारत में जो विचार का विकास हुआ है, वह वृक्ष की भाति है। उसमें पीड तो आर्य जीवन-पद्धति है। उसमें दो शाखाएँ टूटी है—एक हिन्दू, एक श्रमण। श्रमण में भी दो शाखाएँ टूटी हैं—बौद्ध और जैन। हिन्दुओ में भी कई शाखाएँ टूटी हैं—साख्य, वैशेषिक, योग, मीमासा, वेदान्त।

प्रश्न पहले सम्प्रदाय जो आपने कहा वह तो महावीर के बाद का मालूम होता है।

उत्तर : हाँ, हाँ वही तो मैं कह रहा हूँ।

प्रश्न . महावीर के समय मे नहीं ?

उत्तर : नही, नही, वह महावीर के साथ ही टूट गया। अनुभव बहुत बाद में होता है हमें। महावीर पहला सुसवम्बद्ध चिन्तक है जैन तीर्थकरों की धारा में। महावीर के समय में भी भारी विवाद था कि चौवीसवाँ तीर्थंकर कौन है ? इसके लिए गोशालक भी दावेदार था कि चौवीसवाँ तीर्थकर मैं हूँ। क्योकि तेईस तीर्थंकर हो गए थे और चौवीसवें की तलाश थी कि चौवीसवाँ कौन ? और जो भी व्यक्ति चौवीसवाँ सिद्ध हो सकता था वह निर्णायक होने वाला था क्योकि वह अन्तिम होने वाला था। दूसरा, उसके वचन सदा के लिए आप्त हो जाने वाले थे क्योकि पच्चीसवे तीर्थंकर के होने की वात नही थी। भारी विवाद था महावीर के समय मे। अजित केश कम्बल और मखली गोशाल दावेदार थे चौवीसवे तीर्थंकर होने के। परम्परा अपना अन्तिम सुसगति देने वाला व्यक्ति खोज रही थी। वुद्ध और महावीर के समय मे कोई आठ व्यक्ति तीर्थंकर होने के दावेदार थे। इनमें महावीर विजेता हो गए क्योकि परम्परा ने उनमें वह सव पा लिया जो उसे पाने जैसा लगता था और वह सील-मोहर वन गई।

सम्प्रदाय तो फिर धीरे-धीरे वना है। महावीर के मन मे सम्प्रदाय का सवाल ही नही था लेकिन महावीर ने जितनी सुसम्बद्ध रूप रेखा दे दी श्रमण जीवन-दृष्टि को उतनी ही वह धारा वँध गई, सम्प्रदाय वन गया। सम्प्रदाय शब्द वहुत पीछे जाकर वदनाम हो गया है। गन्दगी की कोई वात न थी इसके साथ। सम्प्रदाय का मतलव इतना था कि जहाँ से जीवन-दृष्टि मिलती हो, जहाँ से

मार्ग मिलता हो, जहाँ से प्रकाश मिलता हो, वहाँ प्रत्येक को हक है उस प्रकाश की धारा में बहने का और चलने का। जो सत्य दिखाई पड़ता है, उसे मानने का हक है प्रत्येक को। फिर महावीर की बात तो बहुत अद्भुत है। महावीर से ज्यादा गैर-साम्प्रदायिक चित्त खोजना कठिन है। लेकिन सप्रदाय के जन्मदाता वही हैं। तो भी वे गैर-साप्रदायिक हैं क्योंकि शायद सारी पृथ्वी पर ऐसा दूसरा आदमी ही नहीं हुआ जिसके पास इतना गैर-सांप्रदायिक चित्त हो। क्योंकि जो किसी की बात को सापेक्ष दृष्टि से सोचता हो उसकी दृष्टि में साप्रदायिकता नही हो सकती। बहुत बाद में आइंस्टीन ने सापेक्षवाद की बात कही है। विज्ञान के जगत् में सापेक्ष की बात आइंस्टीन ने अब कही, धर्म के जगत् में महावीर ने अढाई हजार साल पहले कही। बहुत कठिन था उस वक्त यह कहना क्योंकि उस वक्त आर्यधारा बहुत टुकड़ों में टूट रही थी और प्रत्येक टुकड़ा पूर्ण सत्य का दावा कर रहा था। असल में साम्प्रदायिक चित्त का मतलब यह है कि जो यह कहता हो कि मूल्य यहीं है और कही नही। साम्प्रदायिक चित्त का मतलब है कि सत्य का ठेका मेरे पास है और किसी के पास नही। और सब असत्य है, सत्य मैं हूँ। ऐसा जहाँ आग्रह हो, वहाँ साम्प्रदायिक चित्त है। लेकिन जहाँ इतना विनम्र निवेदन हो कि मैं जो कह रहा हूँ वह भी सत्य हो सकता है, उससे भी सत्य तक पहुँचा जा सकता है तो सम्प्रदाय निर्मित होगा पर साम्प्रदायिक चित्त नही होगा वहाँ। सम्प्रदाय निर्मित होगा इन अर्थों में कि कुछ लोग जाएँगे उस दिशा में, खोज करेंगे, पाएँगे, चलेंगे, अनुगृहीत होंगे उस पथ की तरफ, उस विचार की तरफ।

महावीर एकदम ही गैर-साम्प्रदायिक चित्त हैं। बहुत ही अद्भुत है उनकी दृष्टि। वह जहाँ बिल्कुल ही कुछ न दिखाई पड़ता हो वहाँ भी कहते हैं कि कुछ न कुछ होगा। चाहे दिखाई न पड़ता हो तो भी कुछ न कुछ सत्य होगा क्योंकि पूर्ण सत्य भी नही होता, पूर्ण असत्य भी नहीं होता। असत्य में भी सत्य का अंश होता है, सत्य में भी असत्य का अंश होता है। वह कहते हैं कि इस पृथ्वी पर पूर्ण जैसी कोई चीज नही होती, सब चीजें अपूर्ण होती हैं। अगर कोई उनसे पूछे कि ऐसा है तो कहेंगे 'हाँ' है।' और साथ यह भी कहेंगे कि 'नही भी हो सकता है' महावीर की सापेक्षता भी एक कारण बनी महावीर के अनुयायियो की संख्या न बढ़ने में। क्योंकि संख्या बढ़ने में अन्धदृढ़ता का होना जरूरी है संख्या तब बढ़ती है जब दावा पक्का और मजबूत हो कि जो हम कह रहे हैं, वह सही है, और जो दूसरे लोग कह रहे हैं, सब ठीक नही। तब पागल इकट्ठे

होते हैं क्योकि इस दावे में उनको रस मालूम होता है। लेकिन एक आदमी कहे, 'यह भी सही, वह भी सही, तुम जो कहते हो वह भी ठीक, हम जो कहते हैं वह भी ठीक। तीसरा जो कहता है वह भी ठीक—तो ऐसे आदमी के पास पागल इकट्ठे नही हो सकते। क्योकि वे कहेंगे कि इस आदमी की वातो में क्या मतलव है यानी यह तो सभी को ठीक कहता है। यह कहता है नास्तिक भी ठीक है, आस्तिक भी ठीक है क्योकि दोनो में ठीक का कोई अश है। तो इसके पास पागल समूह इकट्ठा नही हो सकता।

अन्धविश्वासी इकट्ठे करने हो तो दावा इतना पक्का मजबूत होना चाहिए कि उसमें सशय की जग भी रेखा न हो। क्योकि महावीर की वातो में सशय की रेखा मालूम पडती है, वह संशय नही है, सम्भावना है लेकिन साधारण आदमी को समझना मुश्किल होता है कि सम्भावना और संशय में क्या फर्क है? महावीर से कोई कहे 'ईश्वर है।' तो महावीर कहेंगे 'हो भी सकता है, नही भी हो सकता। किसी अर्थ में हो सकता है, किसी अर्थ में नही हो सकता है।' यह महावीर सिर्फ सब सत्यो की सम्भावना की वात कर रहे हैं। वह यह नही कह रहे कि मुझे सशय है कि ईश्वर है, या नही। वह यह नही कह रहे कि मैं सशय करता हूं कि ईश्वर है, या नही। वह यह कह रहे हैं कि सम्भावना है ईश्वर के होने की भी, न होने की भी। अगर कोई ऐसा मानता हो कि आत्मा परम शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है तो ठीक हो कहता है। अगर कोई ऐसा मानता है कि परमात्मा कही पर वैठा हुआ हम सवको खिलौनो की तरह नचा रहा है तो ऐसा नही है। जव वह कहते हैं कि ईश्वर है और ईश्वर नही है—दोनों एक साथ—तो वह ईश्वर के अर्थों में भेद करते हैं। लेकिन महावीर की इतनी सूक्ष्म दृष्टि अन्धविश्वास नही वनाई जा सकती क्योकि दूसरे को गलत एकदम से नही कहा जा सकता। और जहां दूसरे को एकदम गलत न कहा जा सकता हो वहां अनुयायी इकट्ठे करना वहुत मुश्किल है, एकदम असम्भव है। क्योंकि अनुयायी पक्का मानकर आना चाहता है। अनुयायी पूरी सुरक्षा चाहता है। मगर जव वह देखता है कि यह आदमी खुद ही सदिग्ध दिखता है, सुबह कुछ कहता है, दोपहर कुछ कहता है, सांझ कुछ कहता है, कभी इसका खुद का ही ठिकाना नहीं हो पाया है तो हम इसके पीछे कैसे जाएं? जव एक आदमी जोर से टेविल पर घूंसा मार कर कहता है कि जो मैं कहता हूं, परम सत्य है और सवके सव गलत हैं तो जितने कमजोर वुद्धि के लोग हैं वे सव उससे एकदम प्रभावित हो जाते हैं।

कमजोर बुद्धि के लिए दावा चाहिए मजबूत। वह बुद्धिमान् आदमी से चौंक जाता है। उधर अगर कोई दावे से कहे कि यही ठीक है तो बुद्धिमान् आदमी जरा चौंक जाएगा कि यह आदमी कुछ गलत होना चाहिए क्योकि ठीक का इतना दावा बुद्धिमान् आदमी नही करता। बुद्धिमान् आदमी झिझक जाता है क्योंकि जिन्दगी बडी जटिल है। वह इतनी सरल नही कि हमने कह दिया कि 'सब ऐसा है।' जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमें विरोधो के सच होने की भी सम्भावना बनी रहती है। इसलिए जो आदमी जितना बुद्धिमान् होता चला जाता है, उतना ही उसके वक्तव्य 'स्यात्' होते चले जाते हैं। वह कहता है 'स्यात् ऐसा हो', फिर वह एकदम से नही कह देता . 'ऐसा है ही।' लेकिन बुद्धिमान् की जो यह बात है उसे समझने के लिए भी बुद्धिमान् ही चाहिए। जितने ज्यादा बुद्धिमान् दावे होंगे उतनी बुद्धिहीनों की संख्या ज्यादा होगी। एकदम दावा होना चाहिए आम आदमी के लिए जैसे कि एक ही अल्लाह है, और उसके सिवाय दूसरा कोई अल्लाह नहीं। तो फिर आदमी की समझ में आता है कि यह पक्का जानने वाला आदमी है जो साफ दावा कर रहा है और जिसके हाथ में तलवार भी है कि अगर तुमने गलत कहा तो हम सिद्ध कर देंगे तलवार से कि तुम गलत हो। कमजोर बुद्धि के लोगो को तलवार भी सिद्ध करती है। बुद्धिमान् आदमी जिसके हाथ में तलवार देखेगा, उसको गलत ही मानेगा। तलवार से कही सिद्ध होता है कि क्या सही है, क्या गलत ?

दुनिया में जितने दावेदार पैदा हुए हैं उतनी ज्यादा उन्होंने संख्या इकट्ठी कर ली है। महावीर संख्या इकट्ठी नही कर सके है। संख्या इकट्ठी करना बहुत मुश्किल था, एकदक असम्भव था। क्योंकि महावीर किसको प्रभावित करेंगे ? आदमी आता है गुरु के पास इसलिए कि उसे पक्का आश्वासन मिल जाए। जो गुरु उसे कहता है कि लिख कर चिट्ठी देते है कि स्वर्ग में तुम्हारी जगह निश्चित रहेगी, वह गुरु समझ में आता है। जो गुरु कहता है कि पक्का रहा मैं तुझे बचाने वाला रहूँगा, जब सब नरक में जा रहे होंगे तब तुझे जो मानता है वह बचा लिया जाएगा। तब वह मानता है कि यह आदमी ठीक है, इसके साथ चलने में कोई अर्थ है। महावीर का कोई भी दावा नहीं है। इतना गैर-दावेदार आदमी ही नहीं हुआ इस जगत् मे। उसने सत्य को इतने कोनो से देखा है जितना किसी ने कभी नही देखा।

दुनिया में तीन सम्भावनाओं की स्वीकृति महावीर के पहले से चली आती थी। जैसे कोई कहे यह घडा है। तो इस का मतलब यह था कि (१) 'घडा

है, (२) घडा नही है, क्योकि मिट्टी ही तो है, और (३) घड़ा है भी, नही भी है। घडे का अर्थ में घडा है, मिट्टी के अर्थ में नही भी है'। एक आदमी कह सकता है· 'यह तो मिट्टी ही है, घडा कहाँ ?' तो इसको गलत कैसे कहोगे ? मिट्टी ही तो है। लेकिन एक आदमी कहे कि 'नही, मिट्टी है ही नही, यह तो घडा है। क्योंकि मिट्टी तो पड़ी है बाहर, उसमें और इसमें भेद है' तो उसे भी सही मानना पडेगा। सत्य के तीन कोण हो सकते हैं—(१) है, (२) नही है, (३) दोनो, नही भी और है भी। 'यह त्रिभंगी महावीर के पहले भी थी। लेकिन महावीर ने इसे सप्तभंगी किया है। और कहा कि तीन से काम नही चलेना। सत्य और भी जटिल है। इसमें चार 'स्यात्' और भी जोडने पडेंगे। तो बहुत ही अद्भुत बात कही लेकिन बात कठिन होती चली गई, उलझ गई और साधारण आदमी की पकड के बाहर हो गई। ये तीन बातें ही पकड के बाहर है लेकिन फिर भी समझ में आती हैं। घडा सामने रखा है। कोई कहता है—घडा है। हम कहते हैं· हाँ, घड़ा है। लेकिन, हम एकदम ऐसा नही कहते कि 'हाँ, घडा है।' हम कहते है,—'स्यात् घडा है।' क्योकि दूसरी संभावना बाकी है कि कोई कहे कि मिट्टी ही है, घडा कहाँ, तो हम सिद्ध न कर पाएँगे कि घडा कहा है। तो हम कहते है : 'स्यात् घडा है।' 'स्यात् घडा नही है', 'स्यात् घडा है भी और नही भी है।' महावीर ने इसमें चौथी भगी 'जोडी' और कहा· 'स्यात् अनिर्वचनीय है', शायद कुछ ऐसा भी है जो नही कहा जा सकता यानी इतने से काम नही चलता है। मिट्टी है, घडा है, यह भी ठीक है। लेकिन कुछ बात ऐसी भी है जो नहीं कही जा सकती। इसे कहना मुश्किल है। क्योंकि घड़ा अणु भी है, परमाणु भी है, इलेक्ट्रोन भी है, प्रोट्रोन भी है, विद्युत भी है—सब है और इस सबको इकट्ठा करना मुश्किल है। घड़ा जैसी छोटी सी चीज भी इतनी ज्यादा है कि इसको अनिर्वचनीय कहना पडेगा। और एक बात तो पक्की है कि घडे में जो है-पन है, एग्जिस्टेंन्स है, जो होना है, यह तो अनिर्वचनीय है ही क्योकि 'है' की क्या परिभाषा ? क्या अर्थ ? अस्तित्व का क्या अर्थ ? घडे का भी अस्तित्व है और अस्तित्व अनिर्वचनीय है। अस्तित्व तो ब्रह्म है। महावीर ने चौथा जोडा। 'शायद घड़ा अनिर्वचनीय है।' पांचवा, जोड़ा कि 'स्यात् है और अनिर्वचनीय है।' छठवा जोडा कि 'स्यात् नही है और अनिर्वचनीय है' और सातवा जोड़ा कि 'स्यात् है भी, और नही भी है और अनिर्वचनीय है।' अब यह जटिल होती चली गई इसलिए अनुयायी खोजना मुश्किल है।'

इस प्रकार सत्य को सात कोणों से देखा जा सकता है, यह महावीर का कहना है और बड़ी अद्भुत बात है। आठवें कोण से नही देखा जा सकता। सात सन्तिम कोण हैं इसलिए सप्त भंग की सात दृष्टियों से सत्य को देखा जा सकता है। ओर जो एक ही दृष्टि का दावा करता है, वह छः अर्थो में असत्य का दावा करता है क्योकि छ दृष्टियाँ वह नही कह रहा है। और जो एक ही दृष्टि को कहता है कि यही पूर्ण सत्य है वह जरा अतिशय कर रहा है, सीमा के बाहर जा रहा है। वह इतना ही कहे कि यह एक दृष्टि से सत्य है तो महावीर को किसी से झगड़ा ही नहीं। अगर वह विचार इतना रहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हूँ' तो महावीर कहेंगे कि 'इस दृष्टि से यह सत्य है।' लेकिन इससे उल्टा आदमी आ जाए और वह कहे कि 'इस दृष्टि से मैं यह कहता हूँ कि वह असत्य है' तो महावीर उससे कहेंगे तुम भी ठीक कहते हो—इस दृष्टि से यह असत्य है। लेकिन तीन की दृष्टि बहुत पुरानी थी। साफ था कि तीन तरह से सोचा जा सकता है। है, नही है, दोनो है—है, नही भी है। महावीर ने उसमें चार और दृष्टिया जोड़ी। चौथी दृष्टि ही कीमती है। फिर बाकी तो उसी के ही रूपान्तरण हैं। वह है अनिर्वचनीय की दृष्टि कि कुछ है जो नही कहा जा सकता; कुछ है जिसे समझाया नही जा सकता, कुछ है जो अव्याख्या है, कुछ है जिसकी कोई व्याख्या नही हो सकती है, छोटे से छोटे में और बड़े से बडे में भी है, यह है कुछ भव्य अस्तित्व जो कि बिल्कुल ही व्याख्या के बाहर है। उसकी हम क्या व्याख्या करें।

अब यह मजे की बात है। उपनिषद् कहते हैं : ब्रह्म की व्याख्या नही हो सकती। बाइबिल कहती है : ईश्वर की व्याख्या नही हो सकती। लेकिन महावीर कहते हैं ईश्वर ब्रह्म तो बड़ी बातें हैं, घड़े की ही व्याख्या नहीं हो सकती। ईश्वर और ब्रह्म को तो छोड़ दो, घडे में भी एक तत्त्व है ऐसा 'अस्तित्व' जो उतना ही अव्याख्येय है, जितना ब्रह्म। छोटी सी छोटी चीज में वह मौजूद है और अनिर्वचनीय है। इसलिए वह चौथी भंग जोडते है कि 'स्यात् अनिर्वचनीय है।' लेकिन उसमें भी वह 'स्यात्' लगाते हैं। जो खूबी है महावीर की वह बहुत अद्भुत है। वह ऐसा भी नहीं कहते कि 'अनिर्वचनीय है' क्योंकि वह कहते है कि यह भी दावा ज्यादा हो जायगा। इसलिए ऐसा कहो 'स्यात्'। वह जो भी कहते हैं, 'स्यात्' पहले लगा देते हैं। लेकिन 'स्यात्' का मतलब 'शायद' नही है। शायद में सन्देह है। महावीर जब कहते कि 'स्यात्' तो उनका मतलब है . 'ऐसा भी हो सकता है,' इससे अन्यथा भी हो सकता है। 'स्यात्' शब्द में

दो वातें जुडी हैं ऐसा है, इससे अन्यथा भी है, इसलिए कोई दावा नही है। तब है वह अनिर्वचनीय पर फिर वे तीन 'भंगियो' को वापस दोहरा देते हैं। वह कहते हैं : है, और अनिर्वचनीय है। कोई चीज है और अनिर्वचनीय है। लेकिन ऐसा भी हो सकता है : कोई चीज नही है और अनिर्वचनीय है। जैसे शून्य। शून्य है तो नही। शून्य का मतलव ही है, जो नही है। लेकिन, 'शून्य' अनिर्वचनीय है। 'न होते हुए भी' वह अव्याख्येय है। और सातवां वह जोडते हैं "है भी, नही भी है, और अनिर्वचनीय भी है।' यानी इन सात कोणो से सत्य को देखा जाने पर इन सातों ही कोणो से जो व्यक्ति विना किसी दृष्टि से वंधे, देखने में समर्थ है, वह पूरे सत्य को जानने में समर्थ हो जाएगा लेकिन बोलने मे समर्थ नही होगा।

पूरा सत्य जव भी बोला जाएगा तभी इन्ही भगियो मे वोलना पडेगा। इसलिए महावीर से आप पूछते जाएँ . कि 'ईश्वर है।' वह सात उत्तर देते हैं। तब आप चुपचाप घर चले आते हैं कि इस आदमी से क्या लेना देना है। हम साफ उत्तर चाहते है, हम पूछने गए हैं कि 'ईश्वर है' तो हम चाहते हैं कि या कहे हैं, या कहे नही हैं, वात खत्म करे। आप महावीर से पूछने जाते हैं। वह कहते हैं : "(१) स्यात्—है भी, (२) स्यात्—नही भी है, (३) स्यात् है भी, नही भी; (४) स्यात् अनिर्वचनीय है, (५) स्यात् है और अनिर्वचनीय है, (६) स्यात् नही है और अनिर्वचनीय है, (७) स्यात् है भी, नही भी है और अनिर्वचनीय भी है।" आप घर लौट आते हैं कि इस आदमी से कुछ लेना देना नही हैं क्योंकि इस आदमी से हम उतने ही उलझे लौटे जितने हम गए थे। क्योंकि इस आदमी से हम उत्तर लेने गए थे और इस आदमी ने उत्तर दिया है लेकिन इतना पूरा उत्तर देने की कोशिश की है कि कम बुद्धि को वह उत्तर पकड में नही आ सकता। इसलिए महावीर का अनुगमन नही वढ सका। महावीर के अनुयायी वढे ही नही। महावीर के जीवन-काल में जो लोग महावीर के जीवन से प्रभावित हुए थे फिर उनकी सन्तति भले ही महावीर के पीछे चलती रही अन्धे की तरह, किन्तु नए लोग नही आ सके, क्योंकि महावीर जैसा व्यक्ति ही पैदा नही कर सकी वह परम्परा फिर, क्योकि उसके लिए वडा अद्भुत व्यक्ति चाहिए जो इतने भिन्न कोणों से लोगो को आकर्षित कर सके। सीधी-सीधी बात से आकर्षित करना बहुत सरल है। इतनी जटिल बात से आकर्षित करना बहुत कठिन है। इसलिए महावीर के सीधे सम्पर्क मे जो लोग आए थे, फिर उनके बच्चे ही पीछे खडे होते चले गए। मगर जन्म से कोई धर्म का सम्बन्ध नही है इस-

लिए 'जैन' जैसे कोई चीज नही है दुनिया में। वह महावीर के साथ ही खत्म हो गई। जन्म से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए इस समय पृथ्वी पर 'जैन' जैसी कोई जाति नही है। ये जो सब जन्म से जैन लोग हैं इनको कुछ पता ही नहीं है और बडे मजे की बात यह है कि यह जो जन्म से जैन लोग हैं, ये ऐसे दावे करते हैं जो महावीर सुन लें तो बहुत हँसे। इनके दावे सब ऐसे हैं कि जो महावीर के उल्टे हैं क्योकि यह कहेंगे कि महावीर तीर्थंकर हैं। खुद महावीर कहेगा : 'स्यात् हो भी सकता है, स्यात् नही भी हो सकता है।'

प्रश्न : स्यात् क्या हर धर्म मे होगा ?

उत्तर : हाँ, हर धर्म में है। जैनो में बहुत ज्यादा। लेकिन बात इतनी जटिल है कि उसे सिर्फ जन्म से ही नही पकडा जा सकता किसी भी हालत में। जैसे मैं यह मानता हूँ कि एक आदमी जन्म से मुसलमान हो सकता है क्योकि बात बहुत सरल है, बहुत गहरी नही है। जन्म से कोई सूफी नही हो सकता क्योकि बात बहुत गहरी है। सूफी मुसलमान फकीरों का ही हिस्सा है लेकिन जन्म से कोई सूफी नही हो सकता। सूफी होने के लिए तो स्वय होना ही पड़ेगा। कोई यह कहे कि 'मेरे बाप सूफी थे, इसलिए मैं सूफी हूँ' तो कोई नहीं मानेगा। मुसलमान हो सकता है। कोई दम नही है उसमें। जन्म से जैन होना बिल्कुल ही असम्भव है। कारण कि वह मामला ही सूफियों जैसा है। वह बिल्कुल साधन से उपलब्ध हो सकता है। जिन बन जाओ, तो ही जैन बन सकते हो। यानी वह जीत न ले जब तक, बनने का उपाय नही है कुछ, और बात इतनी जटिल है जिसका कोई हिसाब नही है क्योकि जीवन ही जटिल है। महावीर कहते हैं कि जीवन ही इतना जटिल है कि हम उसको सरल करें तो झूठ हो जाता है। जैसे कि अरस्तू का तर्क है।

दुनिया में दो ही तर्क हैं। एक अरस्तू का तर्क है, एक महावीर का। दुनिया में तीसरा तर्क नही है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। महावीर के तर्क को कोई मानता नही क्योकि अरस्तू का तर्क सीधा है, यद्यपि झूठ है। और, अरस्तू का तर्क यह है कि अ अ है और 'अ' कभी 'ब' नहीं हो सकता। 'ब' 'ब' है। 'ब' कभी 'अ' नही हो सकता। यह अरस्तू कहता है। दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है। पुरुष स्त्री नही हो सकता, स्त्री पुरुष नही हो सकती। 'काला' 'काला' है, 'सफेद' 'सफेद' है। 'सफेद' काला नही, 'काला' 'सफेद' नही। अंधेरा अंधेरा है, 'उजाला' उजाला है। ऐसा साफ है तर्क अरस्तू का। वह चीजो को तोडकर अलग-अलग कर

देता है। तर्क का मतलब है कि सचाई पैदा हो। महावीर कहते हैं 'अ' 'अ' भी हो सकता है, 'अ' 'ब' भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि 'अ' भी न हो, 'ब' भी न हो। और 'अ' अनिर्वचनीय है। महावीर कहते हैं 'स्त्री' स्त्री भी है, 'पुरुष' भी है। 'पुरुष' 'पुरुष' भी है, 'स्त्री' भी है। पुरुष 'स्त्री भी हो सकती है। स्त्री पुरुष भी हो सकता है और अनिर्वचनीय भी है। हो भी सकते हैं, नही भी हो सकते हैं। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल मामला है। लेकिन सच महावीर ही है।

जिन्दगी इतनी सरल नहीं जैसा अरस्तू समझता है। जिन्दगी में न कोई चीज काली है, न सफेद। काले और सफेद का भेद काफी नही है। कोई स्थान ऐसा नही है जो बिलकुल अंधेरा है। और कोई स्थान ऐसा नही है जो बिलकुल प्रकाशित है। असल में गहरे प्रकाश में भी अंधकार की मौजूदगी है और अंधकार से अंधकार जगह में भी प्रकाश की मौजूदगी है। ठीक तोड़ा नही जा सकता। जिन्दगी बिलकुल घुली-मिली है। कौन-सी चीज ऐसी है जो बिलकुल ठंडी है और गरम नही है। और कौन सी चीज ऐसी है जो बिलकुल गरम है और ठंडी नही है। बिलकुल सापेक्ष बातें हैं। ऐसा कुछ भी नही है साफ टूटा हुआ। तो महावीर कहते हैं कि जिन्दगी बिलकुल जुड़ी हुई है—एकदम जुड़ी हुई है। एक पैर जिन्दगी है और दूसरा पैर मौत है और दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। ऐसा नही है कि एक आदमी जिन्दा है और एक आदमी मरा है। मरना और जीना बिलकुल साथ-साथ चलता है। अंधेरा और प्रकाश बिलकुल एक ही चीज के हिस्से हैं। अरस्तू के तर्क से गणित निकलता है क्योंकि गणित सफाई चाहता है कि दो-दो चार होने चाहिएँ। महावीर के गणित मे दो-दो चार नही होते, कभी पाँच भी हो सकते हैं, कभी तीन भी हो सकते हैं। ऐसा पक्का नहीं कि दो-दो चार ही होंगे। जिन्दगी इतनी तरल है, इतनी ठोस नही है। ऐसी मुर्दा भी नहीं है तो वहाँ दो-दो कभी पाँच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो तीन भी रह जाते हैं। तो महावीर के तर्क से निकलता है रहस्य। और अरस्तू के तर्क से निकलती है गणित। क्योंकि रहस्य का मतलब यह है कि जहाँ हम साफ-साफ न बाँट सकें कि ऐसा है। महावीर की इस गहरी दृष्टि में उतरने के लिए केवल उसी के घर में जन्म लेना बिलकुल ही व्यर्थ है। उससे कोई मतलब ही नही जुड़ता है। इतनी गहरी दृष्टि के लिए तो इतनी गहरी दृष्टि में उतरने की ही जरूरत है। कोई उतरे तो ही ख्याल में आ सके।

महावीर के पीछे जो वर्ग खड़ा हुआ है, महावीर के सीधे सम्पर्क में जो लोग आए थे, वे लोग महावीर से प्रभावित हुए होंगे। अब उनके बच्चों

और उनके बच्चों के बच्चों का कोई सम्बन्ध नहीं है इस बात से और इसलिए वे यह भी भूल जाते हैं कि वे क्या कह रहे हैं। जैसे कि अगर कोई जैन मुनि कहता है कि जैन दर्शन ही सत्य है तो वह भूल रहा है। उसे पता ही नहीं है कि यह तो महावीर कभी नहीं कहते। यानी अगर कोई जैन अनुयायी यह कहता है कि महावीर जो कहते हैं, वही ठीक है, तो उसे पता नहीं कि खुद महावीर इससे इन्कार कर देंगे। यानी इतना अद्भुत मामला है कि कोई अगर महावीर से यह भी पूछे कि जिस स्याद्वाद की आप बात कर रहे हैं, क्या वह पूर्ण सत्य है। तो वे कहेंगे 'स्यात्'। इसमें भी वह 'स्यात्' का ही उपयोग करेंगे। वह यह नहीं कहेंगे कि जो स्याद्वाद (थ्यूरी आफ प्रोबेबिलेटी) मैंने कहा वही एकमात्र सत्य है। हर चीजों के सात कोण हैं और उन्हें सात तरह से देखा जा सकता है। कोई अगर पूछे कि यह परम सत्य है तो महावीर कहेंगे "स्यात्!" हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। अनिर्वचनीय है।" यह जो जटिलता है, इसकी वजह से अनुयायी का आना बहुत कठिन हो गया है।

फिर, महावीर की और भी बातें हैं जो अनुयायी के आने मे एकदम बाधक हैं। जैसे महावीर नहीं कहते कि मैं तुम्हारा कल्याण कर सकूंगा। वह कहते हैं कि : तुम ही अपना कल्याण कर लो तो काफी है मैं कैसे कर सकूँगा? कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता। अपना कल्याण आप ही करना होगा। अनुयायी आता है इसलिए कि कोई उसका कल्याण कर दे। तो जब कोई कहता है कि 'मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें मोक्ष में पहुँचा दूँगा तो अनुयायी आता है। मगर महावीर कहते हैं कि "मेरी शरण में तुम मोक्ष में नहीं पहुँच सकोगे। कोई किसी की शरण मे कभी मोक्ष में नहीं पहुँचा है।" हम पूछते हैं तो कौन इसके पास आए—प्रयोजन क्या है? स्वार्थ क्या है? लाभ क्या है? हित कैसे सिद्ध होगा? यह आदमी कैसा है कि अपने सिवाय और किसी का हित सिद्ध नहीं कर सकता है?

महावीर ने गुरु नहीं बनाया, यह बड़ी मूल्यवान् बात है। महावीर खुद भी किसी के गुरु बनना नहीं चाहते। गुरु का कोई प्रयोजन नहीं है। महावीर की दृष्टि ज्यादा से ज्यादा कल्याण मित्र बनने की है। बस इससे ज्यादा कोई किसी का गुरु नहीं बन सकता क्योंकि गुरु चलता है आगे, शिष्य चलता है पीछे, मित्र चलता है साथ। यानी ज्यादा से ज्यादा मेरे साथ चल सकते

हो। मैं तुम्हारे आगे नही चल सकता, तुम मेरे पीछे नही चल सकते। और यह अपमान भी कोई किसी का कैसे करे कि किसी को पीछे चलाना।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत कहानी है। उन्हे गाँव के कुछ लडको ने आकर कहा कि हमें स्कूल में आपका प्रवचन करवाना है, आप चलें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा 'हम बिल्कुल तैयार हैं। वे अपने गधे पर चढकर चलने को तैयार हुए तो लडके बडे हैरान हुए कि मुल्ला गधे पर उल्टा बैठ गया कि गधे का मुंह इस तरफ और मुल्ला का मुह उस तरफ और पीछे लडकों को कर लिया। रास्ते में सब दुकानों के लोग झाक-झाक कर देखने लगे कि मुल्ला का दिमाग खराब हो गया है क्योंकि वह गधे पर उल्टा बैठा हुआ है। लडके भी बडे पशोपेश में पडने लगे क्योंकि उसके साथ वे भी बुद्धू बन रहे हैं। तो एक लडके ने कहा कि मुल्ला, अगर सीधे बैठ जाओगे तो बडा अच्छा होगा क्योंकि आगे बडा बाजार आता है। सब लोग देखेंगे और हम भी आपके साथ मुश्किल में पड गए हैं। मुल्ला ने कहा कि तुम समझते नही हो। कारण है इसका। अगर मैं तुम्हारे तरफ पीठ करके बैठू तो तुम्हारा अपमान हो जाएगा। और अगर तुम मेरे आगे चलो तो तुम्हें सकोच लगेगा कि वृद्ध के आगे कैसे चलें। तो फिर मैंने सोचा यही तरकीब उचित है कि मैं गधे पर उल्टा बैठ जाऊँ। आमने-सामने होना अच्छा है। कोई किसी का अपमान नही करेगा। यह जो मुल्ला है, यह बहुत अद्भुत आदमी है। इसकी छोटी से छोटी मजाक में भी बडे गहरे सत्य हैं। जैसे वह बहुत सीधा मजाक कर रहा है। लेकिन वह यह कह रहा है कि जो तुम्हारे आगे चलता है वह भी अपमान करता है। और अगर तुम आगे चलते हो तो तुम उसका अपमान करते हो।

महावीर को बिल्कुल पसद नही है। न तो अपने आगे किसी को रखना पसद है, इसलिए कोई गुरु नहीं बनाया; न अपने पीछे किसी को रखना पसद है, इसलिए किसी को अनुयायी नहीं बनाया। वह कहते हैं, कोई किसी का कल्याण नही कर सकता, कोई किसी को स्वर्ग नही ले जा सकता, कोई किसी का मुक्तिदाता नही है। प्रत्येक को स्वय होना पडेगा। इसलिए अनुयायी होने के सारे रास्ते तोडे जा रहे हैं। वे साथ हो सकते हैं। अनुगमन नहीं हो सकता, सहगमन हो सकता है। इसलिए जो महावीर का अनुयायी है वह तो समझ ही नही पाएगा क्योंकि अनुयायी होकर ही उसने सब गल्ती कर दी है। और महावीर के साथ होना बडी हिम्मत की बात है। पीछे होना बडी सरल बात है। साथ होने का मतलब है उन मार्गों से गुजरना पडेगा जिनसे

महावीर गुजरते है । हम पीछे ही होना चाहते हैं । इसमें कुछ नही करना पड़ता । महावीर को चलना पड़ता है, हम पीछे होते हैं । और पीछे होने की वजह से हम पर कभी कोई इलजाम भी नही हो सकता क्योंकि हम सिर्फ अनुयायी हैं ।

इसलिए महावीर के आस-पास बडी संख्या उपस्थित नही हो सकी । छोटी संख्या उपस्थित हुई और वह निरन्तर छोटी होती चली गई । और अब करीब-करीब शाखा सूख गई है । अब उसमें कोई प्राण नही रहा है । जैसे बहुत दिन तक, पत्ते गिर जाते है, शाखा सूख जाती है फिर भी वृक्ष खडा रहता है—ऐसा हो गया है । फिर से फूट सकता है यदि महावीर को ठीक से समझा जा सके । फिर इसमें नए अंकुर आ सकते हैं । और मैं मानता हूँ कि नए अंकुर आने चाहिए । मैं किसी का अनुयायी नही, फिर भी चाहता हूँ कि इस शाखा मे नए अंकुर आने चाहिए । जैसे मैं चाहता हूँ कि लाओत्से की शाखा में नए अंकुर आएँ, जीसस की शाखा में आएँ क्योकि यह सब वृक्ष बडे अद्‌भुत थे और इन सब वृक्षो के पीछे, नीचे न जाने कितने लोगो को छाया मिल सकती है । ये सूख जाते हैं तो वह छाया मिलनी बन्द हो जाती है । लेकिन मजा यह है कि जो इन वृक्षो के नीचे ठहर गए हैं, वही इनको सुखाने के कारण बने हैं । क्योकि वे पानी नहीं देते वृक्ष को, पूजा करते हैं । और पूजा से कही वृक्ष बढ़ते हैं कभी ? पूजा से वृक्ष सूखते हैं । पानी देने से वृच वढ़ते हैं । पानी वे देते नही । सब वृच सूख गए है ।

चूंकि इन प्रसंग में महावीर की वात चलती है इसलिए मैं कहता हूँ कि कोई 'जैन' नही है । एक सूखा हुआ वृच है, एक स्मृति में । उसके नीचे खडे हुए लोग हैं जो पूजा कर रहे हैं । और वे जो भी कर रहे हैं उसका महावीर से कोई ताल-मेल नही है क्योकि महावीर जैसे व्यक्ति से ताल-मेल बिठाना बहुत मुश्किल वात है । और अगर महावीर की 'स्यात् की दृष्टि' को हम समझ लें और अगर इसको ठीक से प्रकट किया जा सके तो भविष्य में महावीर के वृक्ष के नीचे वहुत से लोगो को छाया मिल सकती है । क्योकि 'स्यात्' की भाषा रोज-रोज महत्वपूर्ण होती चली जाएगी । विज्ञान ने उहे एकदम स्वीकार कर लिया है । आइंस्टीन की स्वीकृति बहुत अद्‌भुत है । और इतने अद्‌भुत मामलों में स्वीकार किया है कि हमारी कल्पना के बाहर है । जैसे अब तक समझा जाता था कि जो अणु है, जो अन्तिम अणु है, परमाणु है वह एक बिन्दु है जिसमें लम्बाई-चौड़ाई नही । लेकिन प्रयोगो से पता चला है कि कभी तो

वह अणु विन्दु की तरह व्यवहार करता है और कभी वह लहर की तरह व्यवहार करता है। तो बडी मुश्किल हो गई। उसका क्या कहें हम ? स्यात् अणु है, स्यात् लहर है तो एक नया शब्द बनाना पडा 'क्वाण्टा'। अर्थात् जो दोनो है—विन्दु भी और लहर भी। यह हो नही सकता। अगर हम कहें कि एक चीज 'विन्दु' भी है और लकीर भी तो व्यामोह हो जाएगा। तुम क्या कह रहे हो ? 'विन्दु' विन्दु होता है, 'लकीर' लकीर होती है। 'विन्दु' लकीर कैसे हो सकती है ? 'लकीर' विन्दु कैसे हो सकती है ? लेकिन, 'क्वाण्टा' का मतलब है कि जो परम अणु है, वह विन्दु भी है, लकीर भी है। वह कण भी है, लहर भी है। यह दोनो बातें कैसे हो सकती हैं ? कण कैसे लहर हो सकता है और लहर कैसे कण हो सकती है। लेकिन, आइंस्टीन ने कहा कि दोनो सम्भावनाएँ एक साथ हैं। इसलिए ऐसा मत कहो कि विन्दु ही है, कण ही है। ऐसा कहो . "स्यात् विन्दु है, स्यात् लहर है।"

आइंस्टीन ने रिलेटिविटी को इतना स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि सब चीजें डगमगा गई हैं। जो कल तक निरपेक्ष सत्य का दावा करती थी, वह सब डगमगा गई हैं। विज्ञान अब सापेक्ष के भवन पर खडा हो गया है। और इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर की 'स्यात्' की भाषा को अगर प्रकट किया जा सके तो भविष्य में महावीर ने जो कहा है, वह परम सार्थकता ले लेगा जो उसने कभी नही ली थी। यानी आने वाले पांच सौ, हजार वर्षों में महावीर की विचार दृष्टि बहुत ही प्रभावी हो सकती है लेकिन उसके 'स्यात्' को प्रकट करना पडेगा तब जैन ही खुद डरेगा क्योकि अनुयायी हमेशा 'स्यात्' से डरता है क्योकि 'स्यात्' शब्द डगमगा देता है। यानी उसका मतलब यह हुआ कि मधुशाला के लिए अगर कोई पूछे कि मधुशाला बुरी है और कहना पडे कि 'स्यात् बुरी है, स्यात् अच्छी है।' जाने वाले पर निर्भर है कि वह क्या करता है। कोई पूछे, "मन्दिर अच्छा है।" तो कहना पडे : 'स्यात् अच्छा है, स्यात् बुरा है।' जाने वाले पर निर्भर करता है कि वह मन्दिर में क्या करता है।

महावीर तो ऐसा बोलेंगे लेकिन अनुयायी ऐसा कैसे बोले। वह तो मधुशाला और मन्दिर में फर्क करेगा और उसे तो पक्का कहना पडेगा कि मधुशाला बुरी है और मन्दिर अच्छा है। लेकिन तब वह 'स्यात्' से मुक्त हो गया और निश्चय पर आ गया, और बात खत्म हो गई। महावीर के साथ

चलना मुश्किल है। और इसलिए अनुयायी खड़े हो जाते हैं। और अनुयायी कभी भी किसी अर्थ के नहीं होते।

प्रश्न : जो कुछ आपने आज तक कहा वह सब एक ही प्रश्न को विशेष रूप से जन्म देता है। वह प्रश्न है : क्या आप जो कुछ कह रहे हैं, वह जैन परिभाषा में सम्यक् दर्शन के नाम से कहा गया है और आप आन्तरिक विवेक और जागरूकता पर पूरा बल दे रहे हैं ? पर एक सम्यक् चरित्र भी उसका अंग है और वह चरित्र बाह्य रूप मे भी प्रकट होता है, चाहे वह आता दर्शन मे से ही है, पर उसका स्वयं का स्वरूप कुछ बाह्य मे भी होता है। जैसे आप अगर अपरिग्रह को लें तो एक असम्पत्ति का भाव उसका मूल हैं, मूर्च्छा का अभाव उसका मूल है। पर बाह्य मे वह, बाह्य पदार्थों की सीमा बंधती चली जाए, इस रूप मे प्रकट होना ही चाहिए। ऐसी जैन दर्शन की मुझे भावना लगती है। इसी आधार पर तो अणुव्रत और महाव्रत का भेद हुआ। आज मेरी मूर्च्छा टूट गई पर सब पदार्थ मुझसे आज ही छूट नहीं जाते अचानक, क्योंकि मेरी आवश्यकताएँ धीरे-धीरे हो छूटने वाली हैं। वही आज आचरण के रूप मे अणुव्रत से प्रारम्भ होगा, कल महाव्रत मे समाप्त होगा। आज अगर यह भेद ही न मानें, केवल मूर्च्छा टूटना ही अगर ग्रहण कर लें तो अणुव्रत महाव्रत का कोई भेद, कोई क्रम नहीं रहेगा। और चारित्र नहीं केवल दर्शन ही रह जाएगा ?

उत्तर : इसमें भी दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक तो अणुव्रत से कोई कभी महाव्रत तक नही जाता। महाव्रत की उपलब्धि से अनेक अणुव्रत पैदा होते हैं।

प्रश्न : (दोनों शब्दों का अर्थ) ?

उत्तर हाँ, मैं बताता हूँ। महाव्रत का अर्थ है जैसे पूर्ण अहिंसा। पूरे अहिंसक ढग से जीने का अर्थ है महाव्रत—पूर्ण अपरिग्रह, पूर्ण अनासक्ति। अणुव्रत का मतलब है जितनी सामर्थ्य हो। एक आदमी कहता है कि मैं पाँच रुपये का परिग्रह रखूँगा। वह अणुव्रत है। एक आदमी कहता है : मैं नग्न रहूँगा। यह महाव्रत है। साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि अणुव्रत से महाव्रत की यात्रा होती है कि पहले पाँच रुपए का रखो, फिर चार का, फिर तीन का, फिर दो का, फिर एक का। फिर बिल्कुल मत रखो। साधारणत· ऐसा समझा जाता है। हम छोटे से छोटे का अभ्यास करते-करते बड़े की तरफ जाएँगे

किन्तु यह बात ही गलत है। हो सकता है कि एक आदमी दस रुपए की जगह पाँच रुपए का रखने का अभ्यास करे। यह अभ्यास होगा। मूर्च्छा नहीं टूटेगी। क्योंकि अगर मूर्च्छा टूट गई होती तो महाव्रत उपलब्ध होता। मूर्च्छा के टूटते ही महाव्रत उपलब्ध होता है। महाव्रत का जीवन व्यवहार में अणुव्रत दिखाई पड सकता है। लेकिन मूर्च्छा टूटते ही अणुव्रत उपलब्ध नहीं होता, महाव्रत उपलब्ध होता है। और अगर एक आदमी के पास दस रुपए थे और उसने अभ्यास कर पांच का अणुव्रत साध लिया, कल अभ्यास करके चार का साध लिया, परसो तीन का, फिर दो का, फिर एक का और आखिर में उसने अपरिग्रह भी साध लिया तो भी मूर्च्छा नही टूट सकती क्योंकि हमें साधना उसे पड़ता है जिसकी हमारी मूर्च्छा नही टूटती है। जिसकी मूर्च्छा टूट जाती है वह साधना नहीं पड़ता है। वह सहज आता है। मूर्च्छा टूटी या नही, इसका एक ही सबूत है कि जो आपसे हो रहा है साधना पडा है, या कि आया है। अगर आया है तो मूर्च्छा टूटी और अगर साधना पड़ा तो मूर्च्छा नहीं टूटी क्योंकि साधना उसके खिलाफ करनी पड़ती है, अपने ही मन के खिलाफ। मेरा मन कहता है कि मैं दस रुपए रखूं। मेरा व्रत कहता है कि मैं पांच रुपए रखूं। तो मैं लडता किससे हूँ? अपने मन से लडता हूं जो कहता है दस रखो। मन तो दस का है, और व्रत पांच का है। तो मैं लड़ता अपने से हूँ। मूर्च्छा टूट जाए तो मन ही टूट जाता है। दस का नही, पांच का नहीं, दो का नही, एक का नही। मन परिग्रह का ही टूट जाता है। उस हालत में भी वह पांच रुपए रख सकता है। लेकिन तब वह सिर्फ जरूरत होगी उसकी मूर्च्छा नही क्योंकि जीवन-व्यवहार में, जीवन में जहाँ हम जी रहे हैं, मूर्च्छा टूट जाने पर भी एक आदमी मकान में सो सकता है। लेकिन मकान उसका परिग्रह नही है। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह नही कि चीजें छूट जाएँगी। मूर्च्छा टूटने का मतलब यह है कि चीजो से जो हमारा लगाव है वह छूट जाएगा। एक आदमी मकान में सो रहा है। यह मकान 'मेरा' है। मूर्च्छा इस 'मेरे' में है। मूर्च्छा मकान मे सोने मे नहीं है। तुम्हारे खीसे में पांच रुपए हैं, इसमें मूर्च्छा नही है।

मैंने सुना है एक नदी के किनारे दो फकीर हैं। उनमें विवाद हो रहा है। एक फकीर कहता है कुछ भी रखना ठीक नही है। वह एक पैसा भी पास नही रखता है। दूसरा फकीर कहता है: 'कुछ न कुछ पास होना जरूरी है।' नही तो बड़ी मुश्किल पड जाएगी। फिर वे दोनों नदी के तट पर आए। सांझ हो गई है। सूरज ढल रहा है। नाव वाला है। नाव वाला उनसे कहता है, एक

रुपया लेंगे हम पार कर देंगे। नही, अब मैं जाता नही। मेरा गाँव इसी तरफ है। मैं नाव बाँधकर अब घर जा रहा हूँ। अब रात हो गई। दिन भर काम से थक गया हूँ। उन फकीरो को उस तरफ जाना जरूरी है। उस तरफ लोग प्रतीक्षा करते होगे, हैरान होगे। इस तरफ घना जगल है, कहाँ पडे रहेंगे। वह फकीर एक रुपया निकालता है जो कहता है : कुछ रखना जरूरी है। एक देता है। नाव में दोनो सवार होकर उस तरफ पहुँच जाते हैं। वह फकीर कूदता है कि देखो मैंने कहा था कुछ जरूरी है। नही तो हम उसी पार रह गए होते। वह जो फकीर कहता था : कुछ भी रखना जरूरी नही, छोडना जरूरी है वह कहता है कि तुम रखने की वजह से इस पार नही पहुँचे। तुम एक रुपया छोड सके, इसलिए पार पहुँचे सिर्फ रखने से इस पार नही पहुँचे। फिर विवाद शुरू हो जाता है। वडी मुश्किल हो गई। जिसने एक रुपया दिया था उसने सोचा था, विवाद जीत गए। उस पार नदी के फिर विवाद चलने लगा है और इस बात का कोई अन्त नही हो सकता क्योंकि दूसरा फकीर यह कहता है कि हम इस पार आए ही इसलिए कि तुम एक रुपया छोड सके। छोडने से हम इस पार आए। वह फकीर कहता है हम आते ही नही अगर एक रुपया हमारे पास न होता। और मेरा मानना यह है कि कोई तीसरे फकीर की वहाँ जरूरत है जो कहे कि हाँ, हो तभी छोडा जा सकता है, न हो तो छोडा भी नही जा सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि चीजें हो और तुममे सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो। बस इतनी ही बात है। चीजें न हो, यह सवाल नही है। सवाल यह है कि तुम में सतत छोडने की सामर्थ्य हो।

एक सम्राट् एक संन्यासी से बहुत प्रभावित था। संन्यासी नग्न पडा रहता था एक नीम वृक्ष के नीचे। उस सम्राट् पर असर बढता गया और एक दिन उसने कहा . यहाँ नही, मेरे पास इतने बड़े महल हैं, आप वहाँ चलें। सोचा था उसने कि संन्यासी इन्कार करेगा कि महल में नही जा सकता, मैं अपरिग्रही हूँ। संन्यासी ने कहा . जैसी आपकी मर्जी। वह डंडा उठाकर खडा हो गया। सम्राट् के मन में बड़ी मुश्किल हुई। सोचा था कि अपरिग्रही है, इन्कार करेगा। सम्राट् को बडी शंका आने लगी मन में, सन्देह आने लगा कि कुछ भूल हो गई मुझसे। आदमी, दिखता है, कि महल की प्रतीक्षा ही कर रहा है। सिर्फ नीम के नीचे शायद इसीलिए पडा हो कि कोई महल में ले जाने वाला मिल जाए। इसलिए एक दफा इन्कार भी नहीं किया। यह कैसा अपरिग्रही है? अपरिग्रही को तो कहना चाहिए : कभी नहीं जा सकता महल में। महल? पाप है। वहाँ

मैं कैसे जा सकता हूँ ? फिर भी, सम्राट् ने कहा, देखें, कोशिश करें, जांच-पड़ताल करें। तो जो उसका अपना कमरा था, जहाँ बहुमूल्य सामान था, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गद्दियां थी, मखमलें थी, कीमती कालीन थी, उसने कहा कि आप तो यहाँ ठहर सकेंगे न ? उसने कहा बिल्कुल मजे से। वह जैसा नीम के नीचे सोया था, वैसे ही मखमली गद्दे पर सो गया। सम्राट् ने अपना सिर ठोका और कहा : कुछ गलती एकदम हो गई है। हम एकदम गलत आदमी को ले आए हैं क्योंकि परिग्रही को अपरिग्रही तब समझ में आता है जब वह परिग्रह की दुश्मनी में हो। परिग्रही को, जिसकी चीजो से पकड है, सिर्फ वही समझ में आता है जो चीजो को पकडने से ऐसा डर कर हाथ फैला दे कि 'नही' मैं छू नही सकता। ये चीजें पाप हैं। जिसको रुपए से मोह है, वह रुपए लात मारने वाले को ही आदर देता है। परिग्रही सिर्फ उसको ही समझ सकता है जो ठीक उससे उल्टा करे।

सम्राट् बहुत मुश्किल में पड गया। वह फकीर ऐसे रहने लगा जैसे सम्राट् रहता है। छ महीने बीत गए तो एक सुबह अपने बगीचे में टहलते हुए सम्राट् ने उससे पूछा कि अब तो मुझ में और आप में कोई भेद नही मालूम पडता। बल्कि शायद आप ही ज्यादा सम्राट् हैं। मुझे चिन्ता, फिक्र और सब इन्तजाम भी करना पडता है। तब तो एक फर्क था जब आप नीम के नीचे पडे थे, मैं सम्राट् था। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि कोई फर्क बाकी है। सन्यासी ने कहा : 'फर्क पूछते तो। चलो, थोडा आगे चलें चलें, थोडा आगे बताएँगे।' बगीचा पार हो गया। गांव निकल गया। सम्राट् ने कहा : बता दे। उसने कहा : थोडा और आगे चलें। गांव की नदी आ गई। वे नदी के पार हो गए। सम्राट् ने कहा, 'कब बताएँगे। धूप चढी जाती है।' उसने कहा : 'चले चलो अभी, अपने आप पता चल जाएगा।' सम्राट् ने कहा : 'क्या मतलब।' फकीर ने कहा : अब मैं लौटूँगा नही। अब तुम चले ही चलो मेरे साथ। सम्राट् ने कहा : मैं कैसे चल सकता हूँ! मेरा मकान, मेरा राज्य!' उस फकीर ने कहा तो तुम लौट जाओ। लेकिन अब हम जाते हैं। अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए। मगर यह मत समझना कि हम कोई तुम्हारे महल से डर गए। तुम अगर कहो कि 'लौट चलो' तो हम लौट जाएँ। लेकिन तुम्हारी शका फिर पैदा हो जाएगी। इसलिए अब हम जाते हैं। अब तुम अपना महल संभालो। इसमें फर्क तुम्हें दिखता है कि हम जा सकते है किसी भी क्षण।

अपरिग्रह का मतलब यह नही है कि चीजें न हों। क्योकि चीजें न होने पर जो जोर है, वह चीजें होने पर जो जोर था उसका ही प्रतिरूप है। चीजें

रुपया लेंगे हम पार कर देंगे। नहीं, अब मैं जाता नहीं। मेरा गाँव इसी तरफ है। मैं नाव बाँधकर अब घर जा रहा हूँ। अब रात हो गई। दिन भर काम से थक गया हूँ। उन फकीरों को उस तरफ जाना जरूरी है। उस तरफ लोग प्रतीक्षा करते होंगे, हैरान होंगे। इस तरफ घना जंगल है, कहाँ पड़े रहेंगे। वह फकीर एक रुपया निकालता है जो कहता है : कुछ रखना जरूरी है। एक देता है। नाव में दोनो सवार होकर उस तरफ पहुँच जाते हैं। वह फकीर कूदता है कि देखो मैंने कहा था कुछ जरूरी है। नहीं तो हम उसी पार रह गए होते। वह जो फकीर कहता था : कुछ भी रखना जरूरी नहीं, छोड़ना जरूरी है वह कहता है कि तुम रखने की वजह से इस पार नहीं पहुँचे। तुम एक रुपया छोड़ सके, इसलिए पार पहुँचे सिर्फ रखने से इस पार नहीं पहुँचे। फिर विवाद शुरू हो जाता है। बड़ी मुश्किल हो गई। जिसने एक रुपया दिया था उसने सोचा था, विवाद जीत गए। उस पार नदी के फिर विवाद चलने लगा है और इस बात का कोई अन्त नहीं हो सकता क्योंकि दूसरा फकीर यह कहता है कि हम इस पार आए ही इसलिए कि तुम एक रुपया छोड़ सके। छोड़ने से हम इस पार आए। वह फकीर कहता है हम आते ही नहीं अगर एक रुपया हमारे पास न होता। और मेरा मानना यह है कि कोई तीसरे फकीर की वहाँ जरूरत है जो कहे कि हाँ, हो तभी छोड़ा जा सकता है, न हो तो छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि चीजें हों और तुममें सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो। बस इतनी ही बात है। चीजें न हों, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि तुम में सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो।

एक सम्राट् एक सन्यासी से बहुत प्रभावित था। संन्यासी नग्न पड़ा रहता था एक नीम वृक्ष के नीचे। उस सम्राट् पर असर बढ़ता गया और एक दिन उसने कहा ' यहाँ नहीं, मेरे पास इतने बड़े महल हैं, आप वहाँ चलें। सोचा था उसने कि संन्यासी इन्कार करेगा कि महल में नहीं जा सकता, मैं अपरिग्रही हूँ। संन्यासी ने कहा : जैसी आपकी मर्जी। वह डंडा उठाकर खड़ा हो गया। सम्राट् के मन में बड़ी मुश्किल हुई। सोचा था कि अपरिग्रही है, इन्कार करेगा। सम्राट् को बड़ी शंका आने लगी मन में, सन्देह आने लगा कि कुछ भूल हो गई मुझसे। आदमी, दिखता है, कि महल की प्रतीक्षा ही कर रहा है। सिर्फ नीम के नीचे शायद इसीलिए पड़ा हो कि कोई महल में ले जाने वाला मिल जाए। इसलिए एक दफा इन्कार भी नहीं किया। यह कैसा अपरिग्रही है ? अपरिग्रही को तो कहना चाहिए : कभी नहीं जा सकता महल में। महल ? पाप है। वहाँ

मैं कैसे जा सकता हूं ? फिर भी, सम्राट् ने कहा, देखें, कोशिश करें, जांच-पडताल करें। तो जो उसका अपना कमरा था, जहां बहुमूल्य सामान था, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गद्दियां थी, मखमलें थीं, कीमती कालीन थी, उसने कहा कि आप तो यहां ठहर सकेंगे न ? उसने कहा बिल्कुल मजे से। वह जैसा नीम के नीचे सोया था, वैसे ही मखमली गद्दे पर सो गया। सम्राट् ने अपना सिर ठोका और कहा : कुछ गलती एकदम हो गई है। हम एकदम गलत आदमी को ले आए है क्योकि परिग्रही को अपरिग्रही तब समझ में आता है जब वह परिग्रह की दुश्मनी में हो। परिग्रही को, जिसको चीजो से पकड है, सिर्फ वही समझ में आता है जो चीजो को पकडने से ऐसा डर कर हाथ फैला दे कि 'नही' मैं छू नही सकता। ये चीजें पाप हैं। जिसको रुपए से मोह है, वह रुपए लात मारने वाले को ही आदर देता है। परिग्रही सिर्फ उसको ही समझ सकता है जो ठीक उससे उल्टा करे।

सम्राट् बहुत मुश्किल में पड गया। वह फकीर ऐसे रहने लगा जैसे सम्राट् रहता है। छ. महीने बीत गए तो एक सुबह अपने बगीचे में टहलते हुए सम्राट् ने उससे पूछा कि अब तो मुझ में और आप में कोई भेद नही मालूम पडता। बल्कि शायद आप ही ज्यादा सम्राट् हैं। मुझे चिन्ता, फिक्र और सब इन्तजाम भी करना पडता है। तब तो एक फर्क था जब आप नीम के नीचे पडे थे, मैं सम्राट् था। क्या मैं पूछ सकता हूं कि कोई फर्क बाकी है। सन्यासी ने कहा : 'फर्क पूछते तो। चलो, थोडा आगे चले चले, थोडा आगे बताएंगे।' बगीचा पार हो गया। गांव निकल गया। सम्राट् ने कहा . बता दे। उसने कहा . थोडा और आगे चलें। गांव की नदी आ गई। वे नदी के पार हो गए। सम्राट् ने कहा, 'कब बताएंगे। धूप चढी जाती है।' उसने कहा · 'चले चलो अभी, अपने आप पता चल जाएगा।' सम्राट् ने कहा : 'क्या मतलब।' फकीर ने कहा : अब मैं लौटूंगा नही। अब तुम चले ही चलो मेरे साथ। सम्राट् ने कहा . मैं कैसे चल सकता हूं ! मेरा मकान, मेरा राज्य !' उस फकीर ने कहा तो तुम लौट जाओ। लेकिन अब हम जाते हैं। अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए। मगर यह मत समझना कि हम कोई तुम्हारे महल से डर गए। तुम अगर कहो कि 'लौट चलो' तो हम लौट जाएँ। लेकिन तुम्हारी शका फिर पैदा हो जाएगी। इसलिए अब हम जाते हैं। अब तुम अपना महल संभालो। इसमें फर्क तुम्हें दिखता है कि हम जा सकते हैं किसी भी क्षण।

अपरिग्रह का मतलब यह नही है कि चीजें न हो। क्योकि चीजें न होने पर जो जोर है, वह चीजें होने पर जो जोर था उसका ही प्रतिरूप है। चीजें

हो या न हों यह सवाल नही है अपरिग्रह का। अपरिग्रह क सवाल है कि व्यक्ति चीजों के सदा बाहर है। उसके भीतर कोई चीज नही है। उस फकीर ने कहा कि हम तुम्हारे महल में थे लेकिन तुम्हारा महल हम में नहीं है। बस इतना ही फर्क है। तुम महल में कम हो, महल तुममें ज्यादा है। हम छोड कर कही भी जा सकते हैं। हमारे भीतर नही है कोई मामला। हम उसके भीतर से निकल सकते हैं। कोई महल हमको पकड नहीं सकता और जैसे हम नीम के नीचे सोते थे वैसे तुम्हारे महल में भी सोए। वही आदमी है, वैसे ही सोया है।

तो महाव्रत के अणुव्रत फलित हो सकते हैं लेकिन अणुव्रतों के जोर से कभी महाव्रत नही निकलता है क्योंकि अणुव्रत की कोशिश मूर्च्छित चित्त की कोशिश है। और महाव्रत की तुम कोशिश ही नही कर सकते। वह तो अमूर्च्छा लाओ तभी उपलब्ध होगा। महाव्रत अभ्यास से नही आ सकता। तुम्हारी मूर्च्छा टूट जाए तभी फलित होता है, तुम्हारा चित्त महाव्रती हो जाता है। लेकिन जीवन में हजार तरह से अणुओं में प्रकट होगा वह महाव्रत—हजार-हजार अणुओं में। लेकिन जिसको हम साधक कहते हैं आम तौर पर वह अणुव्रत से चलता है महाव्रत तक पहुँचने की कोशिश में। मगर वह कभी नही पहुँच पाता। वह अणुओं के जोड पर पहुँच जाएगा, महाव्रत पर नही। महाव्रत अणुओं का जोड़ नहीं है। महाव्रत विस्फोट है और जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है तब उपलब्ध होता है। महावीर महाव्रती है। जीवन तो अणुव्रती होगा क्योंकि कहीं जाकर भिक्षा माग लेंगे। विश्राम के लिए किसी छाया के तले रुकेंगे, फिर चलेंगे, फिरेंगे, बात करेंगे। इस सब में अणु होंगे लेकिन भीतर जो विस्फोट हो गया, वहाँ महान् होगा।

फिर जो दूसरी बात पूछी गई वह इसी से सम्बन्धित है। तीन शब्द हैं महावीर के . सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र। लेकिन अनुयायियो ने बिल्कुल उल्टा किया हुआ है। वे कहते हैं सम्यक् चारित्र, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन। वे कहते हैं पहले चरित्र साधो, फिर ज्ञान स्थिर होगा। जब ज्ञान स्थिर होगा तब दर्शन होगा। पहले चारित्र को बनाओ, जब चरित्र शुद्ध होगा तो मन स्थिर होगा, स्थिर मन से ज्ञान होगा। जानोगे तुम, जानने से दर्शन उपलब्ध होगा तो मुक्त हो जाओगे। स्थिति बिल्कुल उल्टी है। सम्यक् दर्शन पहले है। जिसका हमें दर्शन होता है, उसका हमें ज्ञान होता है। दर्शन है शुद्ध दृष्टि। जैसा तुम एक फूल के पास से निकले, और तुम खड़े हो गए और

तुम्हें दर्शन हुआ फूल का, अभी ज्ञान नही हुआ। जब दर्शन को तुम समझने की कोशिश करोगे तुम कहोगे गुलाब का फूल है ! बडा सुन्दर है। यह ज्ञान हुआ। जब दर्शन को तुम बाँधते हो तब वह ज्ञान बन जाता है। और फिर तुमने फूल तोडा और उसकी सुगन्ध ली। यह चरित्र हुआ। दर्शन जब बँधता है तब ज्ञान बन जाता है। ज्ञान जब प्रकट होता है तब चारित्र हो जाता है। चरित्र अन्तिम है—प्रथम नही। दर्शन प्रथम है। जीवन का सत्य क्या है इसका दर्शन चाहिए। वह ध्यान से होगा, समाधि से होगा। इसलिए साधना ध्यान और समाधि की है। दर्शन उसका फल है। जब दर्शन हो जाएगा और तुम सचेत हो जाओगे दर्शन के प्रति तब ज्ञान निर्मित होगा। जब तुम उससे अन्यथा आचरण नही कर सकते हो तब तुम्हारा आचरण सम्यक् हो जाएगा।

प्रश्न : वह आचरण किस रूप मे होगा ?

उत्तर : वह कई रूपो में हो सकता है क्योकि आचरण बहुत सी चीजो पर निर्भर है। वह सिर्फ तुम पर निर्भर नही है। जीसस में एक तरह का होगा, कृष्ण में एक तरह का होगा, महावीर में एक तरह का होगा। दर्शन बिल्कुल एक होगा। ज्ञान मे भेद पड़ जाएगा क्योकि उस दर्शन को ज्ञान बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है। जगत् के जितने अनुभूति-उपलब्ध व्यक्ति हैं सबका दर्शन एक है। लेकिन ज्ञान सबका अलग होगा। मतलब यह कि उनकी भाषा, उनके सोचने का ढंग, उनकी शब्दावली, वह सबकी सब ज्ञान बनेगी। फिर ज्ञान आचरण बनेगा। आचरण भी भिन्न होगा। जैसे समझ लें कि अगर आज महावीर न्यूयार्क में पैदा हो तो वह नगे नहीं खडे होगे क्योकि न्यूयार्क में नगे खडा होने का एक ही परिणाम होगा कि पागल खाने में बन्द करके उनका इलाज किया जाए। इस स्थिति में उनका आचरण नग्न होने का नही होगा। जिस स्थिति में वे भारत में थे, उस दिन नग्नता पागलपन का पर्याय नही थी, सन्यास का पर्याय थी।

प्रश्न उत्तरी ध्रुव मे वह मांस भी खा सकते हैं, अगर ऐसा हो ?

उत्तर : सम्भव है। लेकिन मैंने कल रात को बात कही अगर आपने सुनी है तो उत्तरी ध्रुव में मांस नही खाएँगे—अगर उन्हे मूक जगत् से सम्बन्ध स्थापित करना है तो वह मांस नहीं खा सकते। और अगर सम्बन्ध स्थापित न करना हो तो वे मांस खा सकते हैं और मोक्ष हो सकता है। मांस खाने से मोक्ष का कोई विरोध नही है। लेकिन तब वह मनुष्य से ही सम्बन्ध स्थापित

कर सकेंगे ज्यादा से ज्यादा। और वह सम्बन्ध भी बहुत शुद्ध सम्बन्ध नही होगा। उसमें थोडी बाधाएँ होंगी। अगर पूर्ण शुद्ध सम्बन्ध स्थापित करना है तो इस जगत् के प्रति किसी तरह की चोट जाने-अनजाने नहीं होनी चाहिए। तब सम्बन्ध पूर्ण स्थापित होगा। मुझे अगर तुमसे सम्बन्ध स्थापित करने है तो मुझे तुम्हारे प्रति पूर्ण अवैर साधना होगा। जितना मेरा वैर होगा, जितना मैं तुम्हें चोट पहुँचा सकता हूँ, जितना तुम्हारा शोषण कर सकता हूँ, जितनी तुम्हारी हिंसा कर सकता हूँ, उसी मात्रा में मैं तुम्हें जो पहुँचाना चाहूँगा, नही पहुँचा सकूँगा। प्रेम को पहुचाने के लिए सत्य के अतिरिक्त कोई और द्वार नही है। इसलिए महावीर अगर उत्तरी ध्रुव में पैदा हों और उनको अपने नीचे के मूक पशु जगत् और पदार्थ जगत् से सम्बन्ध स्थापित करना हो तो वह मासाहार नही करेंगे लेकिन अगर करना हो तो यहाँ भी कर सकते हैं कोई कठिनाई नही है। इसलिए अहिंसा की जो मेरी दृष्टि है वह बात ही और है। अहिंसा को मैं अनिवार्य तत्त्व नहीं मानता हूँ मोक्ष प्राप्ति का। अहिंसा को मैं अनिवार्य तत्त्व मान रहा हूँ मनुष्य के नीचे की योनियो से सम्बन्ध स्थापित करने का।

तो ज्ञान-भेद होंगे, दर्शन एक होगा, ज्ञान-भेद हो जाएगा तो फिर चरित्र-भेद भी हो जाएगा। क्यो ? क्योंकि दर्शन है शुद्ध स्थिति। न वहाँ मै हूँ, न वहाँ कोई और है। दर्शन में कोई विकार नही है। फिर ज्ञान में भाषा आ गई, शब्द आ गए। जो भाषा मैं जानता हूँ, वही आएगी। जो तुम जानते हो, वही आएगी। अब जीसस को पालि, प्राकृत नही आ सकती। जब उन्हें ज्ञान बनेगा वह पालि, प्राकृत या सस्कृत में नही बन सकता। वह आरमेक मे बनेगा। जब कनफ्यूसियस को दर्शन होगा क्योकि वह पुरुष मुक्त है इसलिए वह दर्शन वही होगा जो बुद्ध को होगा, महावीर को होगा। लेकिन जब ज्ञान बनेगा तो चीनी में बनेगा जिस शब्दावली में वह जिया है और पला है। महावीर को जब मुक्ति अनुभव होगी तो वह उसे मोक्ष कहेंगे, उसे निर्वाण नही कहेगे क्योंकि वह निर्वाण शब्द में पले ही नही हैं। शंकर को जब अनुभूति होगी तो वह कहेंगे 'ब्रह्म उपलब्धि।' वह 'ब्रह्म उपलब्धि' शब्द है मगर बात वही है। जो महावीर को मोक्ष में होती है, बुद्ध को निर्वाण में होती है, शंकर को ब्रह्म-उपलब्धि में होती है। शब्द अलग-अलग हैं। ज्ञान में शब्द आ जाएगा। विशुद्धि गई, अशुद्धि आनी शुरू हुई। जो परम अनुभव था वह अब शाखाओं में बँटना शुरू हुआ। फिर भी ज्ञान तो सिर्फ शब्दो की वजह से अशुद्ध है। चरित्र तो और भी नीचे उतरता है। चरित्र तो समाज, लोक व्यवहार, स्थिति, युग, नीति, व्यवस्था,

राज्य—इन सब पर निर्भर होगा क्योकि जब मैं शुद्ध दर्शन में हूँ तब न 'मैं' हूँ, न कोई और है—सिर्फ दर्शन है ।

जब मैं ज्ञान में आया तो 'दर्शन' और 'मैं' भी आया वापिस । और जब मैं चरित्र में आया तो समाज भी आया । चरित्र जो है वह समाज के साथ है । समाज की एक नीति है तो चरित्र में प्रकट होनी शुरू होगी । अगर दूसरी नीति है तो दूसरी तरह से प्रकट होनी शुरू होगी । उनमें कोई भी मिथ्या नही है क्योंकि लोक परिस्थिति सारी जगह अलग-अलग है । चरित्र मुझसे दूसरे का सम्बन्ध है । चरित्र में मैं अकेला नही हूँ, आप भी है । इसलिए चरित्र प्राथमिक नही है । वह सबसे आखिरी प्रतिध्वनि है दर्शन की । लेकिन, हाँ चरित्र में कुछ बाते प्रकट होंगी । उसको दर्शन होगा । वह कुछ बातें हमारे ख्याल में ले सकते है । लेकिन उनको बहुत बाँधकर मत लेना, बाँध लेने से मुश्किल हो जाती है । क्योकि वह किसी न किसी परिस्थिति में ही प्रकट होंगी । जैसे समझ लें कि सूरज की किरणें आ रही है और यह जो खिडकी लगी है, नीले काँच की है । और यह जो खिडकी लगी है, पीले काँच की है । तो पीले काँच की खिडकी जो से किरणें भीतर भेजेगी, वे पीली दिखाई पडेगी, नीले काँच की किरणें नीली दिखाई पड़ेंगी । अगर तुमने यह मान लिया कि सूरज नीले या पीले रंग का होता है तो तुम गलती में पड जाओगे । तुम इतना ही मानना जो ज्यादा आवश्यक है कि जब सूरज निकला है वह अनेक रूपो में प्रकट होता है लेकिन प्रकाश होता है । तुम पीले और नीले में भी ताल-मेल बिठा पाओगे । महावीर में वह एक तरह से निकलता है क्योकि महावीर का व्यक्तित्व एक तरह का है । बुद्ध मे दूसरी तरह से निकलता है, क्राइस्ट में तीसरी तरह से निकलता है, कृष्ण में चौथे तरह से निकलता है । हजार तरह से वह निकलता है । यह सब काँच है—व्यक्तित्व । प्रकाश तो एक है । फिर इनसे निकलता है । फिर तुम देखने वालों के बीच जिस समाज में वह आदमी जी रहा है, वे देखने वाले भी सम्बन्धित हो जाते है । और सम्बन्ध तो तुमसे करना है उसे । प्रत्येक युग में नीति बदल जाती है, व्यवस्था बदल जाती है, राज्य बदल जाता है ।

प्रश्न क्या बेसिक मोरेलिटी जैसी कोई चीज है ?

उत्तर । बिल्कुल नही है, बिल्कुल नही है ।

प्रश्न · सत्य भी बेसिक मोरेलिटी नहीं है ?

उत्तर : सत्य मोरेलिटी का हिस्सा ही नही है । सत्य तो अनुभूति का, दर्शन का हिस्सा है, चरित्र का नही ।

प्रश्न : ब्रह्मचर्य ?

उत्तर : नही, वह भी वेसिक नही है ।

अरब को लें। वहाँ औरतें चार पांच गुना ज्यादा है पुरुषों से। पुरुष एक है तो स्त्रियां छ. है या पांच हैं। फिर भी वह लड़ाकू कबीला है, दिन-रात लड़ता है। पुरुष कट जाते है, स्त्रियां बच जाती है। समाज अनैतिक हुआ जा रहा है। क्योंकि जहाँ स्त्रियां पांच हो, पुरुष एक हो, वहाँ अगर मुहम्मद ब्रह्मचर्य का उपदेश दें तो वह मुल्क सड जाएगा बिल्कुल। मर ही जाएगा मुल्क क्योकि ऐसी कठिनाई खड़ी हो गई कि चार स्त्रियो को पति ही नही मिल रहे हैं। और वे मजबूरी से व्यभिचार मे उतर रही है। इन चार स्त्रियों के व्यभिचार में उतरने से पुरुष भी व्यभिचारी हो रहे हैं। इन चार स्त्रियो के लिए कोई व्यवस्था करनी जरूरी हैं; नही तो समाज बिल्कुल अनैतिक हो जाएगा।)अगर महावीर भी वहाँ हो मुहम्मद की जगह, तो मैं मानता हूँ कि वह विवाह करेंगे। क्योंकि उस स्थिति में उसके सिवाय कोई नैतिक तथ्य नही हो सकता।(मुहम्मद कहते है कि चार विवाह प्रत्येक के लिए धर्म है, नीति है। चार तो प्रत्येक करे ही ताकि कोई स्त्री बिना पति के न रह जाए और कोई स्त्री बिना पति के पीड़ा न उठाए ? और बिना पति की स्त्री व्यभिचार को मजबूर न हो जाए, वह समाज को कुत्सित रोगो में न फेर दे। मुहम्मद इसके लिए उदाहरण बनते हैं। वह नौ विवाह कर लेते हैं।)

प्रश्न : चरित्र समाज से आएगा या सम्यक् दर्शन से ?

उत्तर : चरित्र आएगा सम्यक् दर्शन से लेकिन प्रकट होगा समाज में। सम्यक् दर्शन जिसको प्राप्त हुआ है, उसे दृष्टि प्राप्त हुई है करुणा की, प्रेम की, दया की। उस दृष्टि को प्रकट होने के लिए जैसा समाज है वैसे उपकरण खोजे गए। जैसे मुहम्मद के लिए यही करुणा है कि वह चार विवाह का इन्तजाम कर दे। और चार विवाह का इन्तजाम करता है, अगर वह नौ विवाह खुद करके न बता सके तो चार का इन्तजाम करेगा कैसे ? मुहम्मद के लिए जो करुणा पूर्ण है, वह यही है। महावीर के लिए यह सवाल नही है। जिस युग में वह है, जहां वह है, वहां की यह परिस्थिति नही है। यह कल्पना में भी आना मुश्किल है महावीर को। मुहम्मद के लिए ब्रह्मचर्य की कल्पना बहुत मुश्किल है क्योंकि मुहम्मद अगर ब्रह्मचर्य की बात करें तो आप यह समझ लीजिए कि अरब मुल्क सदा के लिए नष्ट हो जाए, बुरी तरह नष्ट हो जाए।

सम्यक् दर्शन से करुणा आ जाएगी ही। वह क्या-क्या रूप लेगी यह बिल्कुल अलग बात है। अब यह हो सकता है कि करुणा यह रूप ले कि एक आदमी की टाँग सड रही है तो उसको काट दे। और दूसरा आदमी कहे कि तुमने टाँग काट दी इस आदमी की, तुम्हारी कैसी करुणा ?

गाधी जी के आश्रम में एक बछडा बीमार है और वह तडफ रहा है, परेशान है। डाक्टर कहते है कि बचेगा नही, दो-तीन दिन में वह मर जायेगा, उसको कैंसर हो गया है। गाधी जी कहते हैं, उसे जहर का इन्जेक्शन दे दें। इन्जेक्शन दे दिया गया है। सारे आश्रम के लोग सदिग्ध हो गए हैं। उन्होने कहा कि यह आप क्या करते हैं ? बडे-बडे पडित गाधी जी के पास इकट्ठे हुए। उन्होने कहा कि यह तो हद हो गई। यह तो गो-हत्या हो गई। गाधी जी ने कहा कि उस गो-हत्या का पाप मैं झेल लूँगा। लेकिन इस बछडे को कष्ट में नही देख सकता। अब गो-हत्या नही होनी चाहिए, ऐसा मानने वाला जो जड़-बुद्धि आदमी है वह कभी नही बर्दाश्त कर सकता क्योकि उसके पास अपनी कोई दृष्टि नही, सिर्फ बना हुआ नियम है। लेकिन जिसके पास अपनी बनी हुई दृष्टि है, वह उसका उपयोग करेगा, चाहे वह नियम के प्रतिकूल जाती हो। लेकिन यह विशेष परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। गाधी जी किसी अच्छे बछडे को ज़हर नही पीला सकते। मेरा कहना है कि दृष्टि आपको होगी, परिस्थिति बाहर होगी। बछडा बीमार पडा है, कैंसर से पीडित है, आपको जहर पिलाना पड़ रहा है। करुणा आपसे आ रही है। करुणा क्या रूप लेगी यह कहना कठिन है। करुणा कभी तलवार उठा सकती है, कभी तलवार का निषेध कर सकती है। मुहम्मद की तलवार पर मुहम्मद ने लिखा हुआ है कि मैं शाति के लिए लड रहा हूँ। इस्लाम का मतलब है शाति। लेकिन मुहम्मद की परिस्थितियो में और जिन लोगों से वे घिरे हैं, तलवार के सिवाय कोई दूसरी भाषा ही नही है।

प्रश्न : क्राइस्ट ने कोड़े मारे, वह करुणा है ?

उत्तर : बिल्कुल ही करुणा है। क्राइस्ट जब पहली दफा यहूदियों के बडे त्योहार पर गए तो वह जो बडा मन्दिर था यहूदियो का, वहाँ सारा देश इकट्ठा होता था, देश के बडे ब्याजखोर इकट्ठे होते थे, ब्याज पर पैसा देते थे और लेते थे। वह बडा खर्चीला त्योहार था। गरीब आदमी भी उधार लेकर रुपए खर्च करता था और वह कई जन्मो तक भी न चुका पाता उन ब्याजो को। ब्याज की दूकानें मन्दिर के सामने लगी रहती। तख्तों पर लोग बैठे

रहते उधार देने वाले यात्रियो को। मन्दिर के सामने दिया गया उधार कोई साधारण उधार नही था। वह चुकाना ही पडेगा, नही तो नरक में जाओगे। जीसस वहां गए और उन्होने यह सब देखा कि करोडो लोगो का शोषण चल रहा है, मन्दिर के पुजारी के एजेंट उन तख्तो पर बैठे हुए हैं जो व्याज पर पैसा दे रहे हैं और वह पैसा सब मन्दिर में चढाया जा रहा है और वह पैसा फिर व्याज से दिया जा रहा है। यह जो चक्कर देखा तो उन्होंने उठाया कोडा, तख्ते उलट दिए और मारे कोडे लोगो को। और कहा : भाग जाओ। इस मन्दिर को खाली करो। शत्रु को लगेगा कि यह आदमी कैसा है ? जो कहता है कि एक गाल पर कोई चाटा मारो तो दूसरा गाल सामने कर दो। यह कोडा उठा सकता है ? हाँ उठा सकता है, उठाने का हकदार है क्योकि इसको निजी क्रोध का कोई कारण नही है। लेकिन महावीर को कोई ऐसा मौका नही, इसलिए कोडा नही उठाते।

मैं जो कह रहा हूँ वह यह कि दर्शन तो एक ही होगा, ज्ञान भिन्न होगा क्योकि शब्द आ जाएगा, और चरित्र भिन्न होगा क्योकि समाज आ जाएगा, परिस्थिति आ जाएगी। उसकी अभिव्यक्ति बदलती चली जाएगी, एकदम बदलती चली जाएगी। मगर उसमें भी काम तो दर्शन ही करेगा। असल में जिनके पास दर्शन नही है उनका चरित्र जड होता है, नियमबद्ध होता है। परिस्थिति भी बदल जाती तो भी वह नियमबद्ध चलता रहता है क्योकि उसे कोई मतलब ही नही। उसकी कोई अपनी दृष्टि ही नही। वह तो नियमबद्ध है।

लेकिन चरित्र तीसरे वर्तुल पर आता है। इसलिए मैं चरित्र को केन्द्र नहीं मानता, परिधि मानता हूं। दर्शन को केन्द्र मानता हूँ। तो दर्शन ज्ञान ही चरित्र है। मगर आपका साधु क्या कर रहा है ? वह चरित्र साध रहा है और सोच रहा है कि जब चरित्र पूरा हो जाएगा तब फिर ज्ञान होगा, जब ज्ञान पूरा हुआ तो दर्शन होगा। वह उल्टा चल पडा है। उससे कुछ नहीं होगा। वह सिर्फ उसकी आत्मवचना है।

प्रश्न : महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर का दर्शन आज भी उपयोगी है। दर्शन बदलता नहीं है देश काल के साथ, सम्यक् दर्शन बदलता नहीं। पर महावीर का चरित्र आज जिस रूप मे प्रकट हो सकता है, क्या अभिव्यक्ति ले सकता है आज की परिस्थिति मे ?

उत्तर : असल में ऐसा सोचना नही चाहिए कि आज अगर महावीर होते तो उनका आचरण क्या होता ? यह इसलिए नही सोचना चाहिए कि महावीर

से कोई किसी का बन्धन थोड़े ही है कि उनका जैसा आचरण होता है वैसा हमारा हो, जैसा महावीर का आचरण होता, वैसा हमारा हो ही सकता। जैसा हमारा हो सकता है, महावीर लाख उपाय करें तो वैसा उनका नही हो सकता। इसके कई कारण हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। यही अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के आत्मवान् होने का। किसी के आचरण का हिसाब ही मत रखो। वह सम्यक् दृष्टि नही है। आचरण से प्रयोजन मत रखो; दर्शन कैसे उपलब्ध हो इसकी फिक्र करो। आचरण तो पीछे से आएगा। जैसे तुम यहाँ आए तो तुम फिक्र नही करते कि तुम्हारे पीछे तुम्हारी लम्बी छाया आ रही है। दुपहर में आते तो कैसी छाया आती, साझ में आते तो कैसी छाया आती, सुबह आते तो कैसी छाया आती, तुम यह फिक्र नही करते। तुम आते हो, छाया तुम्हारे पीछे आती है। वह लम्बी हो जाती है, छोटी हो जाती है, चौडी हो जाती है, जैसी होती रहे, तुम्हें फिक्र नही उसकी। सवाल तो गहरे दर्शन का है, चरित्र तो उसकी छाया है, जैसी धूप होगी वैसी होती रहेगी। उससे कोई सम्बन्ध नही है, कोई प्रयोजन नही है यानी उसको सोचना ही नही है।

मेरा कहना यह है कि चरित्र बिल्कुल ही अविचारणीय है। क्योंकि दर्शन का हमे ख्याल नहीं रह गया इसलिए हम चरित्र की फिक्र करते हैं। विचारणीय है दर्शन। और दर्शन, काल एव परिस्थिति से आबद्ध नही है। दर्शन कालातीत, क्षेत्रातीत है। जब भी तुम्हे दर्शन होगा तो वही होगा जो किसी दूसरे को हुआ हो। महावीर से कुछ लेना-देना नही। किसी को भी हुआ हो, वह वही होगा। क्योंकि दर्शन तभी होगा, जब न तुम होगे, न कुछ और होगा, सब मिट गया होगा, और जब वह दर्शन होगा तो अपने आप अपने को रूपान्तरित करेगा ज्ञान में। ज्ञान अपने आप रूपान्तरित होगा चरित्र मे। उसकी चिन्ता ही नहीं करनी है। नही तो फिर दूसरा बन्धन शुरू हो जाता है। जैसा कि अगर मैं तुम्हें कहूं कि महावीर ऐसा करते तो तुम शायद सोचो कि ऐसा हमें करना चाहिए। नही, तुम्हें करने का सवाल ही नही है क्योंकि तुम्हें वह दर्शन नही है। वही तो जैन साधु और जैन मुनि कह रहा है बेचारा। वह कहता है कि वे ऐसा करते थे, हम भी ऐसा करते है।

मैं एक गाँव में गया। वह गाँव था ब्यावर। वहाँ का कलेक्टर आया और मुझसे कहा कि मैं एकान्त में बात करना चाहता हूँ। उसने दरवाजा बन्द कर दिया बिल्कुल, साकल लगा दी। अन्दर बैठकर मुझसे पूछा कि मुझे दो चार बातें पूछनी है। पहली तो यह कि आप जैसा चादर लपेटते है, ऐसा लपेटने

से मुझे कुछ लाभ होगा ? वह बिल्कुल ठीक पूछ रहा था। हम उस पर हंसते हैं। लेकिन हमारा साधु क्या कर रहा है। महावीर कैसे खडे हैं, कैसे बैठे हैं, कैसी पिच्छी लिए, कैसा कमण्डल लिए, मुंह पर पट्टी बांधे, वह पक्का कर लेता है, फिर वैसा करना शुरू कर देता है। चूक गया वह बुनियादी बात। मैंने उससे कहा कि चादर से क्या सम्बन्ध है ? मेरी मौज आए तो मैं कोट-टाई पहन लूं, उसमे क्या दिक्कत है। उससे 'मैं' मैं ही रहूगा, उससे क्या फर्क पडने वाला है। हाँ, तुम्हें फर्क पड सकता है मुझे देखकर। फिर तुम समझोगे कि इस आदमी के पास क्या होगा, यह तो कोट-टाई बाधे हुए है। लेकिन मुझे क्या फर्क पडने वाला है। मैं जैसे हू वैसा रहूँगा और तुम जैसे हो वैसे रहोगे। चाहे चादर लपेटो, चाहे नग्न हो जाओ। इससे कुछ फर्क नही पडता। वह बुनियादी भूल है जो हम सोचते हैं कि बाहर से भीतर की तरफ जाता है जीवन। वास्तव में जीवन सदा भीतर से बाहर की तरफ आता है। और अगर बाहर मे किसी ने भीतर को बदलने की कोशिश की तो भीतर वही रह जाएगा, बाहर बदल जाएगा। और उस आदमी के भीतर द्वन्द्व पैदा होगा। जो आदमी आचरण से शुरू करेगा वह पाखण्डी हो जाएगा।

प्रश्न क्या आज का ज्ञान भी पुराने ज्ञान से अलग होगा ?

उत्तर : दर्शन भर अलग नही होगा। वह अशुद्धतम है। ज्ञान अलग होगा क्योंकि आज की भाषा बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं। इसलिए मुश्किल हो जाती है पहचानने में। पुराने को पकड लेने वाले के लिए नए को पहचानना मुश्किल हो जाता है। अगर मुझे दर्शन है तो भी मेरी भाषा वह नही हो सकती जो 'महावीर की होगी। महावीर को मानने वाला कहेगा कि इस आदमी से अपना कोई तालमेल नही। क्योंकि यह आदमी न मालूम क्या कह रहा है। हमारे महावीर कहते नही। वह कह नही सकते क्योंकि अढाई हजार साल का फासला हो गया है। अढाई हजार साल मे सब चीजो ने स्थिति बदल ली है। वह कही और पहुँच गई है। सारी बात बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं, भाषा बदल गई है। सबके बदल जाने पर ज्ञान भिन्न होगा। पर दर्शन कभी भिन्न नही होगा क्योंकि दर्शन होता ही तब है जब हम सब छोडकर अन्दर जाते हैं। भाषा, समाज, धर्म, शास्त्र, शब्द, विचार सब छोड़ देते है। जहाँ सब छूट जाता है, वहाँ दर्शन होता है। इसलिए दर्शन तो हमेशा वही रहेगा क्योंकि कुछ भी छोड़े कोई, सब छोडना पडेगा। मुझे कुछ और छोडना पडेगा, महावीर को कुछ और छोड़ना पडेगा। महा-

चीर ने डारविन को नही पढा था तो डारविन को नहीं छोडना पड़ा होगा। महावीर ने वेद छोडे होंगे, उपनिषद् छोड़े होंगे। मैंने डारविन को पढा तो मुझे डारविन को, मैंने मार्क्स को पढा तो मुझे मार्क्स को छोडना पडेगा। यह फर्क पडेगा। लेकिन जो भी मेरे पास हो वह छोडना पडेगा। छोडकर दर्शन उपलब्ध होता है कभी भी। इसलिए दर्शन हर काल में छोडकर ही होगा क्योंकि उसका जोर उस पर है कि तुम जो भी जानते हो, तुमने जो भी सीखा है, जो भी पकडा है, उस सब को लीन कर दो। लेकिन, जब दर्शन हो जाएगा और जब आप ज्ञान बनाएँगे उससे, तब आपको सब विद्वत्ता आजाएगी। अरविंद जब बोलेंगे तो उसमें डारविन मौजूद रहेगा। इससे अरविंद की सारी भाषा बदल जाएगी। महावीर की वह भाषा नही हो सकती क्योंकि महावीर को डारविन का कोई पता नही है। महावीर डारविन की भाषा नही बोल सकते। अरविन्द बोलेगा तो डारविन की भाषा में बोलेगा। जैसे महावीर मार्क्स की भाषा में नही बोल सकते लेकिन अगर मैं बोलूँगा तो मार्क्स की भाषा बीच मे आएगी। मैं कहूँगा शोषण पाप है, महावीर नही कह सकते यह। क्योंकि महावीर के युग में शोषण के पाप होने की धारणा ही नहीं थी। उस वक्त जिसके पास धन था वह पुण्य था। धन शोषण है और चोरी है यह धारणा तीन सौ वर्षो में पैदा हुई है। यह धारणा जब इतनी स्पष्ट हो गई तो आज अगर कोई कहेगा कि धन पुण्य है तो इस जगत् में उसका कोई अर्थ नही यानी वह अज्ञानी सिद्ध होने वाला है। इसलिए अक्सर यह दिक्कत हो जाती है।

न तो हमें पीछे की तरफ लौटकर सोचना चाहिए और ना ही नई शब्दावलियों को पुराने पर थोपना चाहिए। महावीर को हम इसलिए कमजोर नही कह सकते कि उन्हें विकास की भाषा का पता नही था। वह भाषा थी ही नही। यह भाषा नई विकसित हुई है। आज से हजार साल बाद जो लोग दर्शन को उपलब्ध होंगे, जो भाषा बोलेंगे उसकी हम कल्पना भी नही कर सकते क्योंकि एक हजार साल मे वह सब कुछ बदल जाएगा। इसी बदली हुई भाषा में फिर ज्ञान प्रकट होगा। नव अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जाएँगे। समझ लें कि आज से दो हजार, तीन हजार साल पहले भाषा नही थी, उसे सिवाय स्मृति में रखने के कोई अन्य उपाय नहीं था। सारा ज्ञान स्मृति में ही संचित होता था। ज्ञान को इस ढंग से बताना पड़ता था कि वह स्मृति में हो जाए। इसलिए जो पुराने ग्रन्थ हैं, वे सब काव्य में हैं क्योंकि काव्य का स्मरण रखा जा सकता है, गद्य को स्मरण रखना मुश्किल है। कविता स्मरण रखी जा सकती है, सुविधा से,

गद्य को नहीं रखा जा सकता। इसलिए जब कि स्मृति के सिवाय दूसरा उपकरण न था संरक्षित करने का तो सारे ज्ञान को पद्य में ही बोलना पड़ता था। उसको गद्य में बोलना बेकार था। क्योंकि गद्य में बोला तो उसको याद रखना ही बहुत मुश्किल था। उसको पद्य में बोलने से स्मरण रखने में सुविधा हो जाती थी। आप एक कविता स्मरण रख सकते हैं सरलता से बजाय एक निबन्ध के क्योंकि उसमें एक तुकबन्दी है जो कि आपको गाने की सुविधा देती है। वह स्मृति में जल्दी बैठ जाती है। इसलिए पुराने ग्रन्थ पद्य में हैं। गद्य बिल्कुल नई खोज है। जब लिखा जाने लगा तब पद्य की जरूरत न रही। तुकबन्दी जोड़ने में जो नहीं कहना वह भी मिलाना पड़ता था। सीधा गद्य में लिखा जा सकता है तो फिर नए शब्द आए। इसलिए नई भाषाएँ काव्यात्मक नहीं हैं। पुरानी भाषाएँ ही काव्यात्मक हैं जैसे संस्कृत। आजकल की भाषा वैज्ञानिक है। आप कविता भी बोलो तो गणित का सवाल मालूम पड़े। सारा फर्क पड़ता चला जाता है। जो उपकरण उपलब्ध होंगे उनमें ज्ञान प्रकट हो जाएगा। नई कविता बिल्कुल गद्य है क्योंकि उसे पद्य होने की जरूरत नहीं। पुराना गद्य भी पद्य है। नया पद्य भी गद्य है। और यह सब बदलते चले जाते हैं रोज-रोज।

जो ज्ञान बनेगा, वह दर्शन से उतरेगा नीचे। दूसरी सीढ़ी पर खड़ा होगा और जो उस युग की ज्ञान-व्यवस्था है, उसका अंग होगा तभी वह सार्थक होगा। फिर वह नीचे उतरेगा तभी चरित्र बनेगा। तो हमारे समाज का जो भीतरी सम्बन्ध है, वह उस पर निर्भर करेगा। आएगा दर्शन से, उतरेगा चरित्र तक। चरित्र सब से ज्यादा अशुद्ध रूप होगा क्योंकि उसमें दूसरे सब आ गए। ज्ञान और कम अशुद्ध होगा। दर्शन पूर्ण शुद्ध होगा। और दर्शन की उपलब्धि के रास्ते अलग होंगे। चरित्र उसकी उपलब्धि का रास्ता नहीं है।

प्रश्न महावीर की नग्नता चरित्र का अंग था, या दर्शन का ?

उत्तर · बहुत सी बातें है। असल में महावीर को, जैसा मैंने कल रात को कहा, बहुत सी बातें करनी पड रही हैं जो हमारे ख्याल में नहीं है। वह ख्याल में आ जाएँ तो हमें पता चल जाएगा कि वह किस बात का अंग था। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का अंग है, चरित्र का नहीं। ज्ञान का अंग इसलिए है कि अगर किसी को विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड से, सूक्ष्म जगत् से सम्बन्धित होना है तो वस्त्र एक बाधा है। जितने वस्त्र पैदा होते जा रहे हैं, उतनी ज्यादा बाधाएँ हैं। नवीनतम वस्त्र चारों तरफ के वातावरण से आपके शरीर को तोड़ देते हैं। उनमें से बहुत कम भीतर जाता है, बहुत कम बाहर आता है। अलग-अलग

वस्त्र अलग-अलग तरह से काम करता है। सूती वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, रेशमी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, ऊनी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है। जिनमें प्लास्टिक मिला हुआ है या कांच मिला हुआ है, वे वस्त्र और तरह से तोड़ते हैं। जिस व्यक्ति को ब्रह्माण्ड से संयुक्त होना है, उसके लिए किसी तरह के भी वस्त्र बाधा बन जाएँगे। महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का हिस्सा नहीं है। उनको यह साफ समझ में पड़ रहा है कि उन्हें जो कुछ अभिव्यक्त करना है वह ब्रह्माण्ड से एक होकर ही किया जा सकता है।

जैसे हम जानते हैं कि कितनी छोटी-छोटी चीजों से फर्क पड़ता है। आप एक रेडियो लगाए हुए हैं। सब दरवाजे बन्द कर दें, हवा बिल्कुल न आए, एयर कण्डीशन कमरा हो तो आपका रेडियो बहुत मुश्किल से पकड़ने लगेगा क्योंकि जो लहरें आ रही हैं उन पर बाधा पड़ रही है। एयर कण्डीशन कमरे में उसको काम करना मुश्किल हो जाएगा क्योंकि हवा बाहर से नहीं आ रही है, सब बन्द है। सम्पर्क बाहर की तरंगों से टूट गया है। जितने खुले में आप रख रहे हैं उतना उसका सम्पर्क बन रहा है। या तो उसे खुले में रखें या एक एरियल बाहर खुले में लगाएँ ताकि एरियल पकड़े और भीतर तक खबर पहुँचा दे। समझ लो कि हमें कोई ज्ञान न हो रेडियो शास्त्र का तो हम कहेंगे कि यह क्या बात है? रेडियो को बाहर रखने की क्या जरूरत है, एरियल को बाहर लटकाने की क्या जरूरत है? अपने घर में रखो, अपने घर में अन्दर एरियल लगा लो, सब तरफ द्वार दरवाजे बन्द कर लो।

मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण कम्पन बाहर जा रहे हैं और प्रतिक्षण कम्पन भीतर आ रहे हैं। महावीर नग्न होकर एक तरह का तादात्म्य साध रहे हैं उस सारे जगत् से जहाँ वस्त्र भी बाधा बन सकता है। वस्त्र बाधा बनता है और प्रत्येक वस्त्र अलग तरह की बाधा और सुविधा देता है। जैसे रेशमी वस्त्र है। अब आपको यह जानकर हैरानी होगी कि यह जो रेशमी वस्त्र है, वह जल्दी आपके शरीर में कामवासना को पहुँचाता है बजाय सूती वस्त्र के। रेशमी वस्त्र पहने हुए स्त्री ज्यादा काम को उत्तेजित करेगी। उसी स्त्री को सूती या खादी पहना दो तो वह काम को कम उत्तेजित करेगी। रेशमी वस्त्र उसके शरीर से और शरीर के चारों तरफ से जो कामवासना की लहरें चल रही हैं, उनको जल्दी से जल्दी पकड़ रहा है। यह स्त्रियों को बहुत पहले समझ में आ गया है कि रेशमी वस्त्र किस तरह उपयोगी है।

ऊनी वस्त्र बहुत अद्‌भुत हैं। आप देखते हैं कि सूफी फकीर ऊन का वस्त्र ही पहनते हैं। सूफ का मतलब ऊन होता है। जो ऊन के कपड़े पहनते हैं उन्हें सूफी कहते हैं। गरमी में भी, सर्दी में भी लपेटे हैं कम्बल को क्योंकि ऊनी वस्त्र सब तरह की लहरों से संरक्षित करता है। वह ठंड में उपयोगी होता है। वह गरम नही है। वह सिर्फ आपके शरीर की गर्मी को बाहर नही जाने देता। ऊनी वस्त्र में गर्मी जैसी कोई चीज नही है। सिर्फ आपका शरीर जो गर्मी को प्रवाहित करता है प्रतिपल, वह उसको बाहर नही निकलने देता। गर्मी उसके बाहर नही हो पाती, वह भीतर ही रुक जाती है। बस वह भीतर रुकी हुई गर्मी ऊनी वस्त्र को गर्म बना देती है। ऊनी वस्त्र में गर्म होने जैसा कुछ भी नही है। सिर्फ आपके ही शरीर की गर्मी को बाहर नही होने देता और रोक देता है। सूफी सैकड़ो वर्षों से ऊनी वस्त्र का उपयोग कर रहे हैं। अनुभव यह है कि न केवल गर्मी को बल्कि और तरह के सूक्ष्म अनुभवों को भी ऊनी वस्त्र रोकने में सहयोगी होता है। जिन लोगो को किसी गुह्य (एसोटेरिक) विज्ञान में काम करना हो उनके लिए ऊनी वस्त्र बहुत उपयोगी है। वह कुछ चीजो को बिल्कुल भीतर रोक सकता है, जिनको वह प्रकट न करना चाहे।

महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का नही। लेकिन जो लोग चरित्र का हिस्सा समझकर नग्न खडे हो जाते हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वे तो कुछ लहरें हैं जिसे पहुँचाना चाहते हैं सारे लोक में। वह नग्न स्थिति मे ही पहुँचाई जा सकती है। अगर शरीर में उनकी तरगें पैदा होती हैं तो नग्न स्थिति में पूरी की पूरी हवाएँ उन लहरों को लेकर यात्रा कर जाती हैं। कपडो में वे लहरें भीतर रह जाती हैं। ऊनी वस्त्रों में बिल्कुल भीतर रह जाती है। सूफी यह सब जानकर कह रहे है; महावीर भी जानकर नग्न खड़े हुए हैं। लेकिन उस युग की चरित्र-व्यवस्था नग्न खड़े होने की सुविधा देती थी। हर युग में महावीर नग्न खड़े नहीं हो सकते क्योकि जिस काम के लिए खड़े हो रहे हैं अगर उस काम में बाधा पड जाए नग्न खडे होने से तो नग्न होना व्यर्थ हो जाएगा। जैसे आज अगर न्यूयार्क में पैदा हों तो वे नग्न खडे नहीं हो सकते। बम्बई में भी नग्न खडे होना मुश्किल है। नग्न आदमी को सड़क पर निकलने के लिए गवर्नर की अनुमति चाहिए। या फिर उसके भक्त उसको घेर कर चलें। वह बीच में रहे। चारों तरफ भक्त घेरे रहें ताकि जिनको नग्न नहीं देखना, वे न देख पाए। न्यूयार्क में नग्न व्यक्ति बिल्कुल पकड लिया जाएगा, बंद कर दिया जाएगा। काम की बात अलग रही, काम में बाधा पड़ जाएगी।

तो कुछ और रास्ते खोजने पड़ेंगे। नई परिस्थिति में नए रास्ते खोजने पड़ेंगे। पुराने रास्ते काम नही देंगे।

उस वक्त हिन्दुस्तान मे नग्नता बडी सरल बात थी। एक तो ऐसे ही आम आदमी अर्द्धनग्न था, एक लगोटी लगाए हुए था। नग्नता में कुछ बहुत ज्यादा नही छोडना पडता था जैसा हम सोचते है अक्सर। वह तो राजपुत्र थे इसलिए सब कपडे थे। वाकी आदमी के पास कपड़े कहाँ थे? एक लंगोटी बहुत थी। आम आदमी भी लगोटी उतार कर स्नान कर लेता था। नग्नता बडी सरल, एकदम सहज बात थी। उसमें कुछ असहज जैसा नही था कि कोई बात नई हो रही है। हिस्सा तो ज्ञान का था, परिस्थिति मौका देती थी। और ज्ञानवान् आदमी वह है, जो ठीक परिस्थिति के मौके का पूरा से पूरा, ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर सके। वही ज्ञानवान् है, नही तो नासमझ है। यानी सिर्फ नगे की जिद् कर ले और सब काम में रुकावट पड जाए, कोई मतलब नही है उसका। काम के लिए कोई और रास्ते खोजने पड़ेंगे।

प्रश्न: कल आपने कहा था कि महावीर पिछले जन्म मे सिंह थे और उन्हें पिछले जन्म मे अनुभूति हुई। तो क्या प्राणिमात्र को उस अवस्था की अनुभूति हो सकती है? या उनको अनुभूति उनके मनुष्य जन्म मे हुई?

उत्तर: हाँ, मैंने 'पिछले जन्म' जो कहा, सीधे उसका यह मतलब नही कि उसके पहले जन्म में। अनुभूति होना बहुत मुश्किल है दूसरे प्राणिजगत् में। हो सकता है किन्तु बहुत कठिन है। कठिन तो मनुष्य योनि में भी है, सम्भव तो दूसरी योनि में भी है। लेकिन अत्यधिक कठिन है, असम्भव के करीब है। मनुष्य योनि में असम्भव के करीब है। कभी ही किसी को हो पाती है। पिछले जन्मो से मेरा मतलब अतीत जन्मो से है। महावीर को सत्य का जो अनुभव हुआ है वह तो मनुष्य जन्म में ही हुआ होगा। लेकिन सम्भावना का निषेध नही है। आज तक ऐसा ज्ञात भी नही है कि कोई पशु योनि में मुक्त हुआ हो। लेकिन निषेध फिर भी नही है। यानी यह कभी हो सकता है। और यह तब हो सकेगा जब मनुष्य योनि बहुत विकसित हो जाए—इतनी ज्यादा कि मनुष्य योनि में मुक्ति बिल्कुल सरल हो जाए। तब सम्भव है कि जो अभी स्थिति मनुष्य योनि की है, वह पिछली निम्न योनियो की हो जाए। मेरा मतलब है कि अभी मनुष्ययोनि में ही असम्भव की स्थिति है। कभी करोड दो करोड़, अरब दो अरब, आदमियो में एक आदमी उस स्थिति को उपलब्ध होता है। कभी ऐसा वक्त आ सकता है, और आना चाहिए विकास के दौर में जबकि मनुष्य

की योनि मे बडी सरल हो जाए यह बात तो इससे नीचे की योनियो में भी एक-दो घटनाएँ होने लगें। मगर अब तक मनुष्ययोनि को छोडकर किसी दूसरी योनि में नही घटी हैं।

प्रश्न देवतायोनि में ?

उत्तर . देवतायोनि में कभी नही हो सकती। पशुयोनि में कभी हो सकती है। निपेध नही है लेकिन देवयोनि में बिल्कुल निषेध है। निषेध का कारण है कि देवयोनि मे एक तो शरीर नही है वहाँ किसी तरह का। दूसरा, देवयोनि मनोयोनि है। इस वजह से जैसे पशुयोनि में चेतना का अभाव है वैसे देवयोनि में शरीर का अभाव है। और शरीर भी साधना में अनिवार्य कडी है। उसके बिना साधना करना बहुत मुश्किल है, असम्भव है। जैसे पशु में बुद्धि न होने से मुश्किल हो गई है, ऐसा देव में शरीर न होने से मुश्किल हो गई है। लेकिन पशु में कभी भी बुद्धि विकसित हो सकती है, मगर देव मे कभी शरीर विकसित नहीं हो सकता। वह अशरीरयोनि है। देव को जब मुक्ति होती है तब उसको फिर मनुष्य योनि में वापस लौटना पडता है। यानी अब तक जो मुक्ति का द्वार रहा है वह मनुष्य योनि के अतिरिक्त कोई योनि नहीं है। पशुओ को मनुष्य तक आना पडता है और देवताओ को पुन मनुष्य तक लौटना पडता है। इसलिए मैंने कल रात कहा था कि मनुष्य चौराहे पर खडा है। जैसे कि मैं आपके घर तक गया चौराहे से, फिर मुझे दूसरी तरफ जाना है तो मैं फिर चौराहे तक वापस आऊँगा। तो देवयोनि बड़ी सुखद है, पशुयोनि बड़ी दुखद है। सुखद जरूर है वह देवयोनि लेकिन सुख अपने तरह के बन्धन रखता है, दु ख अपने तरह के बधन रखता है। और सुख से भी ऊब जाती है स्थिति जैसे वह दुख से ऊब जाती है।

बडे मजे की बात है यह कि अगर बहुत सुख में कोई आदमी हो तो वह अपने हाथ से दु.ख पैदा करना शुरू कर देता है। अब जैसे कि अमेरिका से आते हुए बीटल हैं, हिप्पी हैं। ये सब सुखी घरो के लड़के हैं, अत्यन्त सुखी घरो के लडके हैं। अब उन्होने दु ख अपनी तरफ से पैदा करना शुरू कर दिया है क्योंकि सुख उबाने वाला हो गया है। मुझे बनारस में एक हिप्पी मिला। वह सडक पर भीख माँग रहा था। करोडपती घर का लडका है, वह दस पैसे माँग रहा है और प्रसन्न है। झाड के नीचे सो जाएगा दस पैसे माँग कर, कहीं होटल में खाना खा लेगा। प्रसन्न है। क्यो प्रसन्न है ? वह सुख भी उबाने वाला हो गया है जहाँ सब सुनिश्चित है। सब सुबह वक्त पर मिल जाता है, साँझ

वक्त पर मिल जाता है, और वह सो जाता है। सब सुनिश्चित है तो आदमी को कोई मौका नही रहा जिन्दगी अनुभव करने का वह सब तोड़कर बाहर आ जाएगा।

देवता बहुत सुख में हैं लेकिन सुख उबाने वाला है। और हैरानी की बात है कि सुख दुःख से ज्यादा उबाने वाला है। इसलिए दुखी आदमी को ऊब में आप कभी नही पाएँगे। गरीब आदमी आपको ऊबा हुआ नही मिलेगा। अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। गरीब आदमी परेशान मिलेगा, ऊबा हुआ नही। लेकिन जिन्दगी में उसको रस होगा। अमीर आदमी को रस भी नही होगा जिन्दगी मे।

देवताओ के जगत् मे ऊब सबसे ज्यादा उपद्रव है, मनुष्यो के जगत् में चिन्ता सबसे ज्यादा उपद्रव है। और यह जानकर आप हैरान होगे कि कोई पशु कभी ऊब में नही होगा। आप किसी कुत्ते को ऊबा हुआ नही देखेंगे, कोई पक्षी आपको ऊबा हुआ नही दिखेगा। न चिन्तित है, न ऊबा है क्योकि चेतना ही नही है। जो बोध होना चाहिए इन चीजो का, वही नही है। गरीब आदमी चिन्तित मिलेगा, अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। ऊब ही उसकी चिन्ता है। तो देवताओ के जगत् में ऊब सबसे बडी समस्या है। चूँकि शरीर नही है, मन की इच्छा करते ही पूरी हो जाती है। आपको कल्पना ही नहीं हो सकती कि आप मन में इच्छा करें और वह तत्काल पूरी हो जाए। तो आप दो दिन बाद इतने ऊब जाएँगे, जिनका कोई हिसाब नही। क्योकि आपने जो औरत चाही वह हाजिर हो गई, आपने जो भोजन चाहा वह हाजिर हो गया, जो मकान चाहा वह बन गया। और कुछ भी न करना पडा। 'चाह' काफी थी। चाह की आपने और वह पूरी हो गई। आप दो दिन बाद इतने घबडा जाएँगे कि कहेंगे 'इतनी जल्दी नही, यह तो सब व्यर्थ हुआ जा रहा है।' क्योंकि पाने का जो रस था, वह चला गया। उपलब्ध करने का, जीतने का, प्रतीक्षा करने का जो रस था, वह सब चला गया। वहाँ कुछ भी नहीं है। न प्रतीक्षा है, न उपलब्धि के लिए श्रम है, न चेष्टा है, न कुछ और है। आप बैठे हैं। आपने जो चाहा वह हो गया। अमीर आदमी इसलिए ऊब जाता है कि वह बहुत सी चीजें चाहता है और वे तत्काल पूरी हो जाती हैं। गरीब आदमी नही ऊबता है क्योंकि वह चाहता है अभी, और पचास साल बाद पूरी हो पाती है तो पचास साल वह रस में रहता है अब पूरी होगी, अब पूरी होगी।

देवयोनि सुख की है लेकिन ऊब की है। मनुष्य अभी तक चौराहे पर खडा है जहाँ से किसी को लौटना पडे। इसलिए मनुष्य को मैं योनि नहीं कहता। वह चौराहा है। पशु उधर आते हैं। देवता उधर आते हैं। सब उधर आते हैं। पौधे वहाँ आते हैं, पत्थर वहाँ आते हैं, सब वहाँ आते हैं। वह चौराहा है। कुछ लोग ऐसे हैं जो चौराहे पर ही रुके रहने का तय कर लेते हैं। तो वे चौराहे पर ही रुके रहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो कोई रास्ता चुन लेते हैं। वे देवता की तरफ भी जा सकते हैं, मुक्ति की तरफ भी जा सकते हैं।

प्रश्न . वापस नहीं लौट सकते हैं ?

उत्तर : वापस नहीं लौट सकते। उसका कारण है। क्योंकि जो भी हमने जान लिया, जी लिया उसमें पीछे लौटने का उपाय नही रह जाता। जो आपने जान लिया उसको आप अनजाना नही कर सकते। उसे अनजाना करने का मामला असम्भव है। और आपकी चेतना जितनी विकसित हो गई, उससे नीचे उसे नहीं गिरा सकते। जैसे कि एक बच्चा पहली कक्षा में पढता है तो वह दूसरी कक्षा में जा सकता है। पहली कक्षा में रुक सकता है लेकिन नीचे नही उतर सकता। दूसरी कक्षा में पढता है, फेल हो जाए तो वह दूसरी में रुक सकता है, पास हो जाए तो तीसरी में जा सकता है। लेकिन पहली में उतरने का कोई उपाय नही ? पहली पास हो चुका। पहली में वापिस जाने का कोई उपाय नही। हम तो कर भी सकते हैं उपाय क्योंकि स्कूल हमारी कृत्रिम व्यवस्था है। लेकिन जीवन की जो व्यवस्था है, उसमें यह असम्भव है। जहाँ से हम पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए, वहाँ वापस लौटना नही।

प्रश्न : शास्त्रों मे ऐसा कैसा लिखा है कि अन्य योनियो मे रहना पड़ना है मनुष्य को ?

उत्तर : सिर्फ आपको भयभीत करने के लिए।

प्रश्न तादात्म्य के सम्बन्ध मे मैं अब तक ऐसा ही समझता रहा कि जिस व्यक्ति को ज्ञान होता है उसका तादात्म्य सम्पूर्ण जगत् से युगपत् हो जाता है, ऐसा नहीं कि स्थावर से कर लिया तो चेतना से नहीं, चेतना से कर लिया तो स्थावर से नहीं। पर आप के कहने से ऐसा लगा जैसे महावीर का तादात्म्य जब जड़ के साथ है, वृक्ष के साथ है तो मनुष्य के साथ नहीं है। अन्यथा जब उनके कान में जो व्यक्ति कीले ठोक रहा था, वह कीले न ठोकता। तो मैं यही मान रहा था अब तक कि तादात्म्य जब होता है तब युगपत् सबके साथ हो जाता है, एक-एक के साथ अलग-अलग नहीं होता है।

उत्तर : बिल्कुल ठीक। जब पूर्ण तादात्म्य होता है तो युगपत् हो जाता है। लेकिन वह मोक्ष में ही होता है। और जो मैंने कहा कि महावीर उन लोगो में से हैं जो परिपूर्ण मोक्ष पाने के पहले वापस लौट आए हैं। वह तादात्म्य तो होता है लेकिन तब महावीर मिल जाते हैं। पूर्ण तादात्म्य में फिर महावीर नही रह जाते हैं। और सदेह पहुँचाने का भी उपाय नही रह जाता। इसलिए जो मुक्त हो जाता है वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा कोई संदेश नही पहुँचाता आपको। उसका तादात्म्य आप से है। सन्देश पहुँचाने के लिए महावीर लौट आए हैं वापिस। ज्ञान पूरा हो गया है लेकिन अभी डूब नहीं गए हैं सागर मे। जैसे एक नदी पहुँच गई है सागर के किनारे और डूबने के पहले ही लौटकर एक आवाज देती है। जिब्रान ने इस प्रतीक का उपयोग किया है कि मैं उस नदी की जाति हूँ जो सागर में गिरने के करीब पहुँच गई है और इसके पहले कि सागर में गिर जाऊँ उन सबका स्मरण आता है जो मार्ग में पीछे छूट गए हैं। वे पथ, वे पहाड, वे झीलें, वे तट, क्या एक बार लौट कर देखने की आज्ञा न मिलेगी? इसके पहले कि सागर से गिर जाऊँ एक बार लौट कर देख लूँ उन सबको, जिनके साथ मैं रहा और अब कभी नही होऊँगा।

उस चरण पर महावीर पहुँच गए हैं, जहाँ से आगे सागर है, जहाँ पूर्ण तादात्म्य हो जाएगा, जहाँ महावीर नही रह जाएँगे जैसे नदी सागर में खो जाएगी। खबर पहुँचानी है तो उसके पहले। फिर खबर पहुँचाने का कोई उपाय नहीं है। किसको खबर पहुँचानी है, कौन पहुँचाएगा? इसलिए मैंने कहा कि तीर्थंकर का मतलब है ऐसा व्यक्ति जो मोक्षद्वार से एक बार वापस लौट आया है उसके लिए जो पीछे रह गए हैं और उनको खबर देने आया है। इस हालत में तादात्म्य सबसे नही होता है। वह जिससे तादात्म्य चाहेगा और व्यवस्था बनाए रहा तादात्म्य की तो तादात्म्य हो जाएगा। वह युगपत् नही होगा। वह एक विशिष्ट दिशा मे एक साथ एक बार होगा। दूसरी दिशा में दूसरी बार होगा। तीसरी दिशा में तीसरी बार होगा। मोक्ष मे तो युगपत् हो जाएगा।

प्रश्न : उनका कोई व्यक्तित्व इस समय है या नहीं?

उत्तर मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता लेकिन हमारा व्यक्तित्व है जो हम अमुक्त हैं। असल मे हमारी कठिनाई यह है कि हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते हैं। व्यक्तित्व शरीर का है, मन का है। एक व्यक्ति खो गया अनन्त मे। है मौजूद। अनन्त होकर मौजूद

देवयोनि सुख की है लेकिन ऊब की है। मनुष्य अभी तक चौराहे पर खडा है जहाँ से किसी को लौटना पड़े। इसलिए मनुष्य को मैं योनि नहीं कहता। वह चौराहा है। पशु उधर आते हैं। देवता उधर आते हैं। सब उधर आते हैं। पौधे वहाँ आते हैं, पत्थर वहाँ आते हैं, सब वहाँ आते है। वह चौराहा है। कुछ लोग ऐसे हैं जो चौराहे पर ही रुके रहने का तय कर लेते हैं। तो वे चौराहे पर ही रुके रहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो कोई रास्ता चुन लेते हैं। वे देवता की तरफ भी जा सकते हैं, मुक्ति की तरफ भी जा सकते हैं।

प्रश्न : वापस नहीं लौट सकते हैं ?

उत्तर . वापस नही लौट सकते। उसका कारण है। क्योकि जो भी हमने जान लिया, जी लिया उसमें पीछे लौटने का उपाय नही रह जाता। जो आपने जान लिया उसको आप अनजाना नही कर सकते। उसे अनजाना करने का मामला असम्भव है। और आपकी चेतना जितनी विकसित हो गई, उससे नीचे उसे नहीं गिरा सकते। जैसे कि एक बच्चा पहली कक्षा में पढता है तो वह दूसरी कक्षा में जा सकता है। पहली कक्षा में रुक सकता है लेकिन नीचे नही उतर सकता। दूसरी कक्षा में पढता है, फेल हो जाए तो वह दूसरी मे रुक सकता है, पास हो जाए तो तीसरी में जा सकता है। लेकिन पहली में उतरने का कोई उपाय नही ? पहली पास हो चुका। पहली में वापिस जाने का कोई उपाय नही। हम तो कर भी सकते हैं उपाय क्योकि स्कूल हमारी कृत्रिम व्यवस्था है। लेकिन जीवन की जो व्यवस्था है, उसमें यह असम्भव है। जहाँ से हम पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए, वहाँ वापस लौटना नही।

प्रश्न ' शास्त्रों मे ऐसा कैसा लिखा है कि अन्य योनियो मे रहना पडता है मनुष्य को ?

उत्तर : सिर्फ आपको भयभीत करने के लिए।

प्रश्न . तादात्म्य के सम्बन्ध में मैं अब तक ऐसा ही समझता रहा कि जिस व्यक्ति को ज्ञान होता है उसका तादात्म्य सम्पूर्ण जगत् से युगपत् हो जाता है, ऐसा नहीं कि स्थावर से कर लिया तो चेतना से नहीं, चेतना से कर लिया तो स्थावर से नहीं। पर आप के कहने से ऐसा लगा जैसे महावीर का तादात्म्य जब जड़ के साथ है, वृक्ष के साथ है तो मनुष्य के साथ नहीं है। अन्यथा जब उनके कान में जो व्यक्ति कीले ठोक रहा था, वह कीले न ठोकता। तो मैं यही मान रहा था अब तक कि तादात्म्य जब होता है तब युगपत् सबके साथ हो जाता है, एक-एक के साथ अलग-अलग नहीं होता है।

उत्तर : बिल्कुल ठीक। जब पूर्ण तादात्म्य होता है तो युगपत् हो जाता है। लेकिन वह मोक्ष में ही होता है। और जो मैंने कहा कि महावीर उन लोगो में से हैं जो परिपूर्ण मोक्ष पाने के पहले वापस लौट आए हैं। वह तादात्म्य तो होता है लेकिन तब महावीर मिल जाते हैं। पूर्ण तादात्म्य में फिर महावीर नही रह जाते हैं। और सदेह पहुँचाने का भी उपाय नही रह जाता। इसलिए जो मुक्त हो जाता है वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा कोई संदेश नही पहुँचाता आपको। उसका तादात्म्य आप से है। सन्देश पहुँचाने के लिए महावीर लौट आए हैं वापिस। ज्ञान पूरा हो गया है लेकिन अभी डूब नहीं गए हैं सागर मे। जैसे एक नदी पहुँच गई है सागर के किनारे और डूबने के पहले ही लौटकर एक आवाज देती है। जिब्रान ने इस प्रतीक का उपयोग किया है कि मैं उस नदी की जाति हूँ जो सागर में गिरने के करीब पहुँच गई है और इसके पहले कि सागर में गिर जाऊँ उन सबका स्मरण आता है जो मार्ग में पीछे छूट गए हैं। वे पथ, वे पहाड, वे झीलें, वे तट, क्या एक बार लौट कर देखने की आज्ञा न मिलेगी ? इसके पहले कि सागर से गिर जाऊँ एक बार लौट कर देख लूँ उन सबको, जिनके साथ मैं रहा और अब कभी नही होऊँगा।

उस क्षण पर महावीर पहुँच गए हैं, जहाँ से आगे सागर है, जहाँ पूर्ण तादात्म्य हो जाएगा, जहाँ महावीर नही रह जाएँगे जैसे नदी सागर में खो जाएगी। खबर पहुँचानी है तो उसके पहले। फिर खबर पहुँचाने का कोई उपाय नहीं है। किसको खबर पहुँचानी है, कौन पहुँचाएगा ? इससिए मैंने कहा कि तीर्थंकर का मतलब है ऐसा व्यक्ति जो मोक्षद्वार से एक बार वापस लौट आया है उसके लिए जो पीछे रह गए हैं और उनको खबर देने आया है। इस हालत में तादात्म्य सबसे नही होता है। वह जिससे तादात्म्य चाहेगा और व्यवस्था बनाए रहा तादात्म्य की तो तादात्म्य हो जाएगा। वह युगपत् नही होगा। वह एक विशिष्ट दिशा मे एक साथ एक बार होगा। दूसरी दिशा मे दूसरी बार होगा। तीसरी दिशा में तीसरी बार होगा। मोक्ष मे तो युगपत् हो जाएगा।

प्रश्न : उनका कोई व्यक्तित्व इस समय है या नहीं ?

उत्तर मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नही रह जाता लेकिन हमारा व्यक्तित्व है जो हम अमुक्त है। असल में हमारी कठिनाई यह है कि हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते है। व्यक्तित्व शरीर का है, मन का है। एक व्यक्ति खो गया अनन्त मे। है मौजूद। अनन्त होकर मौजूद

है। आप तो सीमित हैं। अगर आप सागर के तट पर भी जाएँगे तो भी चुल्लू भर पानी भर सकते हैं। लेकिन जो नदी सागर में खो गई है उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह कहाँ खो गई है। गंगा गिर गई है सागर में। लेकिन गंगा का कण-कण मौजूद है सागर में। वह खो गई है सागर में, मिट नहीं गई। जो था वह तो अब भी है। सीमा की जगह असीम हो गया है। ऐसी कुछ विधि है कि सागर के तट पर जब आप खडे होकर गगा को पुकारें तो वे अणु जो अनन्त सागर मे खो गए हैं उस तट पर इकट्ठे हो जाएँगे। आप चुल्लू भर गंगा ले सकते हैं सागर से। मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूँ। यह पुकार है आपकी अणुओं को क्योंकि अणु कही खो नही गया है। वह सब सागर में मौजूद हैं। क्या कठिनाई है कि पुकार पर वे अणु आपके पास चले न आएँ और गगा का चुल्लू भर पानी आपको सागर से मिल जाए। कठिनाई नही है। इसी तरह चेतना के महासागर में महावीर जैसा व्यक्ति खो गया है। लेकिन खोने के पहले ऐसा प्रत्येक व्यक्ति कुछ ऐसे संकेत छोड जाता है जो कभी भी उस अनन्त के किनारे खडे होकर पुकारे जाएँ तो उसके अणु आपको उत्तर देने के लिए समर्थ हो जाएँगे। इस सबकी पूरी-पूरी अपनी टेकनीक है।

जैसे आपने कभी रास्ते पर देखा होगा कि एक आदमी खेल दिखा रहा है। एक लडके की छाती पर तावीज रख दिया है, लडका बेहोश हो गया है और वह पूछता है कि अब आपकी घड़ी मे कितना बजा है? लडका बताता है। वह आपके नोट का नम्बर बताता है, वह आपका नाम बताता है, और फिर वह मदारी तावीज बेचना शुरू कर देता है कि यह छः-छः आने के तावीज हैं। और तावीज की यह शक्ति है जो आप देख रहे हैं अपनी आँखो के सामने। आपको भी लगता है कि तावीज की बडी भारी शक्ति है। छः आने देकर आप तावीज खरीद लेते हैं। घर आते हैं। आप कुछ भी करिए, तावीज मे कुछ भी नही होगा। क्योंकि तावीज की शक्ति थी न थी। मामला बिल्कुल दूसरा था। उस लडके को बेहोश करके बहुत गहरी बेहोशी में कहा गया है कि जब भी यह तावीज तेरी छाती पर रखेंगे तू बेहोश हो जाएगा। इसको कहते हैं पोस्ट हिपनाटिक सजेशन। अभी बेहोश है वह। अभी उसको कह रहे हैं 'यह तावीज पहचान ले ठीक से। आँख खोल! वह बेहोश है। इतनी चौडाई का यह लाल रग का तावीज जब भी तेरी छाती पर हम रखेंगे तू तत्काल बेहोश हो जाएगा। ऐसा महीनों उसको बेहोश किया जाता है और यह तावीज बता कर उसके मन में यह सुझाव बैठाया जाता है।

वह तावीज सकेत हो गया। जैसे ही उसको छाती पर रखा कि वह बेहोश हो गया। अब उसको सबके सामने बेहोश नही करना पडता, नही तो बेहोश करने में वक्त लगता है। बेहोश करने की शिक्षा पहले दे दी है। और तावीज से एसोसिएशन जोड़ दिया है उसका। अब तावीज जब भी छाती पर रखेंगे, वह बेहोश हो जाएगा। बेहोश होने से ही वह फैल गया सब में। अब वह वही से पढ सकता है आपके खीसे के नोट के नम्बर। क्योकि चेतना बहुत फैली हुई है नीचे। इधर छोटे से चेहरे से दिखाई पड रही है, उधर पीछे फैलती चली गई है। अगर यहाँ से बेहोश कर दी जाय तो वह वहाँ पूरे से सम्बन्ध जोड लेगी। जैसा इस बेहोश के साथ तावीज का सम्बन्ध जोडा गया है, ऐसा प्रत्येक शिक्षक जो पीछे भी उपयोगी होना चाहता है और जो उसके पीछे भी उसका सहयोग, मार्ग-दर्शन चाहेंगे वह उनके लिए व्यवस्थित सूत्र छोड़ जाता है कि इन सूत्रो का प्रयोग करने से मैं पुन उपस्थित हो जाऊँगा।

दक्षिण में एक योगी था—ब्रह्मयोगी। अभी कुछ वर्ष पहले ब्रंटन उससे आकर मिला। तो उसने अपना एक फोटो दिया ब्रटन को। उसने कहा : मैं आपको गुरु बना लेता हूँ लेकिन मैं तो लदन चला जाऊँगा। उसने कहा इससे क्या फर्क पडता है। लदन कोई बहुत दूर तो नही। तुम यह फोटो ले जाओ। तुम इस भाँति इस आसन में बैठकर, इस तरह इस फोटो को रखकर एक-दो मिनट एकाग्र होकर फोटो को देखना। और तुम्हें जो प्रश्न पूछना हो, पूछना। उत्तर तुम्हें आ जाएगा। ब्रटन बहुत हैरान हुआ कि यह कैसे होगा लेकिन वह सारी व्यवस्था की जा सकती है। उसने कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर एकदम आ गया उसी ध्वनि में, उसी शब्दावली में जिसमें ब्रह्मयोगी बोलता है। उसने वह सब लिख रखा जब भी उसने जो जो पूछा। पीछे आकर उसने ब्रह्मयोगी को पूछा कि मैंने एक दफा यह पूछा था, आपने क्या कहा था। तो जो उसने लिखा था उसने बताया कि 'मैंने' यह कह दिया था। अब यह ऐसा उपाय है जिससे काल और क्षेत्र मिट जाते हैं, और सम्बन्ध हो जाता है।

जो लोग बिल्कुल खो गए हैं अनन्त में, वे ही पीछे उपाय छोड जाते हैं। सभी नही छोड जाते। वह उनकी मर्जी पर निर्भर है कि वे छोडें या न छोडें। कोई शिक्षक कुछ भी नहीं छोड जाते, कोई शिक्षक कुछ छोड जाते है। महावीर निश्चित छोड गए हैं कि इस उपाय से सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। महावीर का कोई व्यक्तित्व नहीं बनता लेकिन उस अनन्त से उत्तर आ जाता है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर से अभी भी सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। कुछ शिक्षकों

से सम्बन्ध स्थापित होना असम्भव है जैसे जरथुस्त्र। उससे कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता क्योंकि उसने कोई उपाय नही छोडा है। उसकी अपनी समझ है। वह कहता है कि पुराने शिक्षक की क्यो फिक्र करनी। नए शिक्षक आते रहेंगे, तुम उनसे सम्बन्ध बनाना। जरथुस्त्र से क्या लेना-देना। उसकी अपनी समझ है। महावीर की अपनी समझ है, वह यह कि क्या फिक्र तुम्हें, मैं ही काम पड़ सकता हूँ, मेरा उपयोग किया जा सकता है।

यह अपनी समझ की बात है। सम्बन्ध बिल्कुल स्थापित किए जा सकते हैं लेकिन जो शिक्षक उपाय छोड़ गया हो उसी से।

प्रश्न : महावीर के बाद किसी को इस सांकेतिक भाषा (कोड वर्ड) का पता है ?

उत्तर : हाँ, पता है लेकिन यह पता नही कि यह काहे के लिए है और इसकी क्या विधि है। यानी जैसे मैं आपको लिखकर दे जाऊँ, कुछ दिन तक उसका उपयोग होता रहे, शास्त्र न लिखे जाएँ। मगर जब उपयोग छूट जाएगा या कुछ लोग खो जाएँगे जो जानते थे तब झगडे चलेंगे। झगडे तो पीछे चलते ही हैं क्योंकि फिर पूछना मुश्किल हो जाता है।

प्रश्न : आज महावीर से सम्पर्क बनाने वाला कोई नहीं है ?

उत्तर . नही, कोई नही है, मगर सम्पर्क आज भी हो सकता है। उनकी परम्परा मे कोई नहीं है लेकिन और लोगों ने सम्पर्क स्थापित किए हैं महावीर से। कुछ लोग निरन्तर श्रम कर रहे हैं। ब्लावटस्की ने करीब-करीब सभी शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की है। उनमें महावीर भी एक शिक्षक है।

ब्लावटस्की एक रूसी महिला है। थियोसॉफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री है। और उसके साथ अल्काट ने भी सम्बन्ध स्थापित किए हैं, एनी बीसेंट ने भी। ये सब मर चुके हैं। थियोसॉफी मे आज कोई ऐसा नही रहा है। वह स्रोत सूख गया है। लेकिन थियोसॉफिस्टों ने हजारो साल बडी मेहनत की और जो बडे से बडा काम किया वह यह कि सारे पुराने शिक्षको से सम्बन्ध स्थापित किया, ऐसे शिक्षकों से भी जिनकी कोई किताब भी नहीं बची थी।

प्रत्येक शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित करने की अलग-अलग विधियाँ हैं। कुछ से सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता है। या तो विधि ठीक नहीं है या करने

वाला ठीक नही कर पा रहा हैं। मैं चाहता हूँ कि इधर कुछ लोग उत्सुक हो तो बराबर इस विधि पर काम करवाया जाए। इसमें कोई कठिनाई नही है।

प्रश्न . महावीर के सम्बन्ध मे आप जो कुछ कह रहे हैं वह बहुत मुश्किल और रहस्यवादी बनता चला जा रहा है। ऐसा जो सामान्य व्यक्ति की समझ में आ जाए और करने लायक भी हो महावीर का वह सन्देश कहे। क्योकि यह जो आप कह रहे हैं बहुत ही थोड़े लोगों के पल्ले पड़ने वाली बात है।

उत्तर ' बात ही ऐसी है। असल में जिन्हें भी करना है, उन्हे असाधारण होने की तैयारी दिखानी पड़ती है। कोई सत्य साधारण होने को कभी तैयार नही है। व्यक्तियो को ही असाधारण होकर उसे झेलना पडता है और सत्य को साधारण किया तो असत्य से भी बदतर हो जाता है। यानी सत्य उतर कर तुम्हारे मकान के पास नही आएगा। तुम्हें ही जाकर सत्य की चोटी तक पहुँचना होगा और सत्य अगर आ गया तुम्हारे मकान तक तो बाजार में बिकने वाला हो जाएगा। उसका कोई मूल्य नही रहेगा।

९

प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक २१ सितम्बर, १९६९

महावीर ने जो जाना उसे जीवन के भिन्न-भिन्न तलों तक पहुँचाने की अथक चेष्टा की है। कल हम सोचते थे कि मनुष्य के नीचे जो मूक जगत् है उस तक महावीर ने कैसे सवाद किया? कैसे वह प्रतिध्वनित किया जो उन्हें अनुभव हुआ? दो बातें छूट गई थी वह विचार कर लेनी चाहिए। एक तो मनुष्य से ऊपर के लोक की है। उन लोगो तक महावीर ने कैसे बात पहुँचाई और मनुष्य तक पहुँचाने के उन्होने क्या-क्या उपाय खोजे। देवलोक तक बात पहुँचानी सर्वाधिक सरल है। मगर देव जैसी कोई चीज की स्वीकृति हमें बहुत कठिन मालूम पडती है। जो हमें दिखाई पड़ता है हमारे लिए वही सत्य है। जो नही दिखाई पडता है, वह असत्य हो जाता है। और देव उस अस्तित्व का नाम है जो हमें साधारणत दिखाई नही पडता लेकिन थोडा-सा भी श्रम किया जाए तो उस लोक के अस्तित्व को भी देखा जा सकता है। उससे सम्बद्ध भी हुआ जा सकता है। साधारणत यह ख्याल है कि देव कही और, प्रेत कही और, हम कही और जगह पर रहते है। यह बात एकदम ही गलत है। जहां हम रह रहे हैं, ठीक वही देव भी हैं और प्रेत भी हैं।

प्रेत वे आत्माएँ हैं जो इतनी निकृष्ट हैं कि मनुष्य होने की सामर्थ्य उन्होने खो दी है और नीचे उतरने का कोई उपाय नही रहा है। वे एक कठिनाई में हैं। ऐसी आत्माएँ प्रतीक्षा करेंगी जब तक उन्हें योग्य देह उपलब्ध न हो जाए या उनके जीवन में परिवर्तन हो जाए, रूपान्तरण हो जाए और वे जन्म ग्रहण कर सकें। देव वे आत्माएँ हैं जो मनुष्य से ऊपर उठ गई हैं लेकिन उनमें मोक्ष को उपलब्ध करने की सामर्थ्य नही है। यह प्रतीक्षामय जीवन है। यह कही दूर दूसरी जगह नही, किसी चांद पर नही, ठीक हमारे साथ है। और हमें

कठिनाई होती है कि अगर हमारे साथ हैं तो हमें स्पर्श करना चाहिए, हमें दिखाई पड़ना चाहिए। कभी-कभी हमें स्पर्श भी करती हैं और कभी-कभी किन्ही छाहो में दिखाई भी पड़ती है। साधारणत नही। क्योकि हमारे होने के ढंग और उनके होने के ढंग में बुनियादी भेद है। इसलिए दोनो एक ही जगह मौजूद होकर भी, एक दूसरे को काटने, एक-दूसरे की जगह घेरने का काम नही करती। जैसे इस कमरे में दिए जल रहे हैं। और दियो के प्रकाश से कमरा भरा हुआ है, मैं आऊँ और एक सुगन्धित इत्र यहाँ छिडक दूँ तो कोई मुझसे कहे कि कमरा प्रकाश से बिल्कुल भरा हुआ है, इत्र के लिए जगह नही है। इत्र पूरे कमरे में फैल कर सुगन्ध भर दे अपनी। प्रकाश भी भरा था कमरे में, सुगन्ध भी भर गई कमरे में। न सुगन्ध प्रकाश को छूती है, न प्रकाश सुगन्ध को छूता है। न एक-दूसरे को बाधा पड़ती है इससे कि कमरा पहले से भरा है। उन दोनों का अलग अस्तित्व है। प्रकाश का अपना अस्तित्व है, सुगन्ध का अपना अस्तित्व है। दोनो एक दूसरे को न काटते, न छूते। दोनो समानान्तर चलते हैं। फिर कोई तीसरा व्यक्ति आए और वीणा बजाकर गीत गाने लगे और हम उससे कहें कि कमरा बिल्कुल भरा हुआ है, वीणा बज नही सकेगी। प्रकाश पूरा घेरे हुए है, सुगन्ध पूरा घेरे हुए है। अब तुम्हारी ध्वनि के लिए जगह कहाँ है ? लेकिन वह वीणा बजाने लगे और ध्वनि भी इस कमरे को भर ले। ध्वनि को जरा भी बाधा नही पडेगी इससे कि प्रकाश है कमरे में, कि गन्ध है कमरे में। क्योकि ध्वनि का अपना अस्तित्व है, ध्वनि अपनी स्पेस पैदा करती है अलग, ध्वनि का अपना आकाश है, गन्ध का अपना आकाश है, प्रकाश का अपना आकाश है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक अस्तित्व का अपना आकाश है और वे दूसरे को काटते नहीं।

इसलिए जब हमें यह सवाल उठते हैं कि कहाँ रहते हैं देवता, कहाँ जीते हैं प्रेत तो हम सदा ऐसा सोचते हैं कि 'हमसे कही दूर।' ऐसी बात ही गलत है। वे ठीक समानान्तर हमारे जी रहे हैं, हमारे साथ। और यह बड़ा उचित ही है कि साधारणत. वे हमें दिखाई नही पड़ते और साधारणत हम उनके स्पर्श में नही आते हैं, नहीं तो जीवन बड़ा कठिन हो जाए। लेकिन किन्ही घड़ियो में, किन्हीं क्षणो में वे दिखाई भी पड सकते हैं; उनका स्पर्श भी हो सकता है; उनसे सम्बन्ध भी हो सकता है। और महावीर या उस तरह के व्यक्तियों के जीवन में निरन्तर उनका सम्बन्ध और सम्पर्क रहा है। जिसे परम्पराएँ समझने में एकदम असमर्थ है। वे बातचीत ऐसे ही हो रही है जैसे दो व्यक्तियों के

बीच हो रही है—महावीर की, इन्द्र की या और देवताओ की। उसमें कही भी ऐसा नहीं है कि कोई कल्पनालोक में बात हो रही हो। यह अत्यन्त आमने-सामने बात हो रही है। और यह किसी एक के साथ ऐसा नही हो रहा है। बुद्ध के साथ भी वैसा हो रहा है, जीसस के साथ भी, मुहम्मद के साथ भी।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे भीतर कुछ उनसे सम्बन्धित होने का मार्ग है लेकिन प्रसुप्त है। मनुष्य के मस्तिष्क का शायद एक तिहाई भाग काम कर रहा है। दो तिहाई भाग बिल्कुल काम नही करता। इससे वैज्ञानिक भी चिन्तित हैं। अगर हम एक आदमी की खोपडी को काटें तो एक तिहाई हिस्सा केवल सक्रिय है। बाकी दो-तिहाई हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय है। शरीर में और सब चीजें सक्रिय है। वैज्ञानिकों को यह ख्याल आना शुरू हुआ है कि यह दो तिहाई हिस्सा जीवन के किन्ही तलों को स्पर्श करता होगा, अगर सक्रिय हो जाए। अब जैसे आपकी आँख देखती हैं क्योकि आँख से जुडा हुआ मस्तिष्क का हिस्सा सक्रिय है। अगर वह हिस्सा निष्क्रिय हो जाए, आपकी आँख देखना बन्द कर देगी। यह भी हो सकता है कि आँख बिल्कुल ठीक हो लेकिन मस्तिष्क का वह हिस्सा, जिससे आंख सक्रिय होती है निष्क्रिय पडा हो तो बिल्कुल ठीक आँख नही देख सकेगी।

एक लडकी मेरे पास आती थी। उस लडकी का किसी से प्रेम था और घर के लोगो ने उस विवाह को इन्कार कर दिया और लडकी को उस युवक को देखने की भी मनाही कर दी। सख्त पाबन्दी लगा दी। उसे घर के भीतर बिल्कुल कैद कर दिया। वह लडकी दूसरे दिन अधी हो गई। सब चिकित्सकों को दिखाया गया। उन्होंने जांच-पडताल की और कहा, आँख तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह भी पक्का है कि उसे दिखाई नही पडता। वह मित्र मुझे कहे कि बडी मुश्किल में हम पड़ गए। पहले तो हमने समझा कि वह सिर्फ धोखा दे रही है क्योकि हमने उस पर रुकावट लगाई थी। लेकिन अब तो डाक्टर भी कहते हैं कि आंख ठीक है लेकिन उसे दिखाई नही पड रहा। मानसिक अधापन है उसे। इसका मतलब यह है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा जो आंख से जुडकर आँख को दिखाने का काम करता है बद हो गया है। जैसे ही उस लडकी को कहा कि जिसे वह प्रेम करती है वह उसे अब नही देख सकेगी, हो सकता है उसके मस्तिष्क को यह ख्याल आया हो कि अब देखने का कोई अर्थ ही नही। जिसे हम प्रेम करते है उसे ही न देख सकें तो अब देखने की भी क्या जरूरत है। और मस्तिष्क का वह हिस्सा बंद हो गया और आंख ने देखना बन्द कर दिया।

बहुत से प्राणी हैं, बहुत सी योनियाँ हैं, जिनके पास मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो देख सकता है लेकिन निष्क्रिय है। तो उन प्राणियो में आँखें पैदा नही हो पाई हैं। ऐसे भी प्राणी हैं जिनके पास कान नही है। हिस्सा है जो सुन सकता है लेकिन निष्क्रिय है। इसलिए कान पैदा नही हो पाए। मनुष्य की पाँच इन्द्रियाँ हैं अभी क्योंकि मस्तिष्क के पाँच हिस्से सक्रिय हैं। शेष बहुत बड़ा हिस्सा निष्क्रिय पडा हुआ है। अब वैज्ञानिको को भी ख्याल मे आया है कि वह जो शेष हिस्सा निष्क्रिय पडा है उसमें से अगर कुछ भी सक्रिय हो जाए तो नई इन्द्रियाँ शुरू होगी। अब जिस आदमी ने कभी प्रकाश देखा ही नही है वह कल्पना ही नही कर सकता कि प्रकाश कैसा है और जिसने ध्वनि नहीं सुनी वह कल्पना भी नही कर सकता की ध्वनि कैसी है? हम समझ लें कि एक गाव हो जिसमें सब बहरे हो तो उस गाव में ध्वनि की चर्चा भी नही होगी। और अगर उन बहरों को कोई किताब मिल जाए जिसमें लिखा हो कि ध्वनि होती थी, या कही ध्वनि होती है तो वे सब हँसेंगे कि यह कैसी बात है। ध्वनि, यानी क्या? ध्वनि कहाँ है—किस जगह है? हम कहाँ ध्वनि को पकडें, कहाँ ध्वनि हमें मिलेगी? इनके सब प्रश्न संगत होते हुए भी व्यर्थ होंगे।

हमारे मस्तिष्क के बहुत से हिस्से हैं जो निष्क्रिय हैं। और अगर वे सक्रिय हो जाएँ तो जीवन और अस्तित्व की अनन्त सम्भावनाओं से हमारे सम्बन्ध जुड़ने शुरू हो जाएँगे। जैसे कि तीसरी आँख की बात निरन्तर हम सुनते हैं। वह अगर सक्रिय हो जाए, वह हिस्सा जो हमारी दोनो आँखो के बीच का निष्क्रिय पडा है सक्रिय हो जाए तो हम कुछ ऐसी बातें देखना शुरू कर देंगे जिनकी हमें कल्पना ही नही है। हवाई जहाज में अगर आप बैठकर इंजन के पास गए हों तो आपने राडार देखा होगा जो सौ मील या डेढ सौ मील आगे तक के चित्र देता रहता है। इसलिए चालक को हवाई जहाज के भीतर बैठकर बाहर देखने की कोई जरूरत नहीं क्योंकि हवाई जहाज इतनी गति से जा रहा है कि अगर चालक देख भी ले कि सामने हवाई जहाज है तो भी उसे बचाया नही जा सकता टकराने से। क्योंकि जब तक वह बचाएगा तब तक वह टकरा ही जाएगा। गति इतनी तीव्र है। अब तो उसे डेढ सौ–दो सौ मील दूर की ही चीजें दिखाई पड़नी चाहिएँ। दो सौ मील पर उसे दिखाई पड़े कि बादल हैं तो तभी वह बचा सकता है। और बचाते-बचाते वह दो सौ मील पार कर जाएगा, तभी वह बचा पाएगा, और बादल के आगे, नीचे या ऊपर हो जाएगा। तो राडार है जो दो सौ मील दूर से देख रहा है कि उसके दो सौ मील आगे

वर्षा हो रही है कि बादल जा रहे हैं कि हवाई जहाज है, कि दुश्मन है, कि क्या है ? वह सब चित्र आ रहा है।

मनुष्य की जो तीसरी आँख है, वह राडार से भी अद्भुत है। उसमे कोई स्थान और काल का सवाल ही नहीं। वहाँ दो सौ मील का सवाल नही है। वह एक वार सक्रिय हो जाए तो कही भी क्या हो रहा है उसके प्रति ध्यानस्थ होकर उस होने को तत्काल पकड सकती है। आगे क्या होगा, उसकी बहुत सी सम्भावनाएँ भी पकडी जा सकती हैं। पीछे क्या हुआ है, ये सम्भावनाएँ भी पकडी जा सकती हैं। मस्तिष्क का एक और हिस्सा है जो अगर सक्रिय हो जाए तो हम दूसरे के मन में क्या विचार चल रहे हैं, उनकी झलक पा सकते हैं। और हमारे मन में जो विचार चल रहे हैं अगर हम उन्हें विना वाणी के दूसरे में डालना चाहें तो वह भी हो सकता है। सवाल है कि मस्तिष्क के हमारे और हिस्से कैसे सक्रिय हो जाएँ ? मस्तिष्क का एक हिस्सा है जो सक्रिय होने से देवलोक से जोड देता है। उस जुड़ जाने के वाद हम खुद भी मुश्किल में पड जाएँगे क्योंकि हम दूसरे को वता नही सकने कि यह हो रहा है।

स्विडनबोर्ग एक अद्भुत व्यक्ति हुआ। आठ सौ मील दूर एक मकान में आग लग गई है बारह बजे और वह किसी मित्र के घर ठहरा हुआ है। वह एकदम चिल्लाया है पानी लाओ, आग लगी है, भागा और बाल्टी पर पानी लेकर आ गया। मित्रों ने कहा, 'कहाँ आग लगी है।' उसने कहा, 'अरे' बडी भूल हो गई।' बाल्टी नीचे रख दी। आग तो बहुत दूर लगी है। लेकिन जब मुझे दिखी तो मुझे ऐसा लगा कि यही लगी है। वह तो आठ सौ मील दूर लगी है। वह तो वियना में लगी है। फलाँ-फलाँ घर विल्कुल जला जा रहा है। मित्रो ने कहा कि आठ सौ मील दूर का फासला है यहाँ से कैसे तुम्हे दिख सकता है ? उसने कहा मुझे दिखता है बिल्कुल जैसे कि यहाँ आग लगी हो। मुझे दिख रहा है। तीन दिन लग गए खबर लाने में। लेकिन ठीक जिस जगह उसने बताया था वहीं तक आग लगी थी, आगे नही लगी थी। उसने देवताओं के सम्बन्ध में बहुत अद्भुत बातें कही हैं। यूरोप मे देवलोक के बारे में जानकारी रखने वाला वह पहला आदमी है। उसने एक किताव लिखी : स्वर्ग और नरक। और यह बडी अद्भुत किताब है। इसमें उसने आँखो देखे वर्णन दिए हैं। लेकिन उन पर तो भरोसा करने की बात नही उठती क्योकि हमारे लिए वह सब निरर्थक है।

स्विडनबोर्ग की जिन्दगी में और ऐसी घटनाएँ थी जिनकी वजह से लोगों को मजबूर होना पड़ा कि जो वह कहता है ठीक होगा। यूरोप के एक सम्राट् ने उसे अपने घर बुलाया और कहा : मेरी पत्नी मर गई है। तुम उससे संबंध स्थापित करके मुझे कहो कि वह क्या कहती है? उसने दूसरे दिन आकर खबर दी कि तुम्हारी पत्नी कहती है कि फलाँ-फलाँ अलमारी में ताला पड़ा है। चाबी उसकी खो गई है। वह तुम्हारी पत्नी के वक्त में ही खो गई थी, उसका ताला तोड़ना पड़ेगा। उसमें उसने तुम्हारे नाम एक पत्र लिखकर रखा है और उस पत्र में उसने ये-ये लिखा है। पत्नी को मरे पन्द्रह साल हो गए हैं। वह अलमारी कभी खोली नही गई। बड़ा सम्राट् है, बड़ा महल है। चाबी खोजी गई, चाबी नही मिल सकी। वह पत्नी के पास ही हुआ करती थी। फिर ताला तोड़ा गया है। निश्चित उसमें एक बंद लिफाफे मे रखा हुआ पत्र मिला जो पन्द्रह साल पहले उसकी पत्नी ने लिखा था। उसे खोला गया और वही इबारत जो स्वीडनबोर्ग ने बताई थी उसमें मिली।

ये जो सम्भावनाएँ है मस्तिष्क के और तलों के मुक्त हो जाने की, महावीर ने इन पर अथक श्रम किया है अभिव्यक्ति के लिए। अगर देवलोक के साथ अभिव्यक्ति करनी है तो हमारे मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा टूट जाना चाहिए, एक द्वार खुल जाना चाहिए। वह द्वार न खुल जाए तो उस लोक तक हम कोई खबर नही पहुँचा सकते। जैसे मनुष्य तक खबर पहुँचानी हो तो शब्द का द्वार होना चाहिए, नही तो पहुँचाना मुश्किल हो जाएगा। वैसे उस लोक से भी मस्तिष्क के कुछ द्वार खुलने चाहिए। और हमें कठिनाई यह होती है कि जो हमारी सीमा है इन्द्रियों की उससे अन्यथा को स्वीकार करना मुश्किल हो जाता है।

एक आदमी पिछले दूसरे महायुद्ध में ट्रेन से गिर पड़ा और ट्रेन से गिरने के बाद एक अद्भुत घटना घटी जो पहले कभी नही घटी थी जमीन पर। ऐसे बहुत लोगो ने कहा था लेकिन उसका वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं हो सका था। गिर जाने से उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा, जो निष्क्रिय भाग है, सक्रिय हो गया। और उसे दिन मे आकाश मे तारे दिखाई पड़ने लगे। तारे लुप्त होते नही, वे तो रहते है, लेकिन सूरज के प्रकाश में ढँक जाते हैं। हमारी आँख समर्थ नहीं है उनको देखने में। लेकिन उस आदमी को दिन में तारे दिखाई पड़ने लगे। पहले लोगो ने समझा कि वह पागल हो गया है। लेकिन जो जो उसने सूचनाएँ दी वे बिल्कुल सही थी। और जब प्रयोगशालाओं ने सिद्ध कर

दिया कि जहां जो बताता है, वहां वह है उस वक्त तब फिर बड़ा मुश्किल हो गया। लेकिन वह आदमी घबड़ा गया था और उस आदमी को बड़ी मुश्किल हो गई थी। उस आदमी के सिर का आपरेशन करना पड़ा ताकि उसे दिन में तारे दिखाई पड़ना बंद हो जाएँ।

एक आदमी दूसरे महायुद्ध में चोट खाया, अस्पताल में भर्ती किया गया और उसे ऐसा लगा कि आस-पास कोई रेडियो चला रहा है। उसने सब तरफ देखा कि अस्पताल में कोई रेडियो नही चल रहा है लेकिन उसे साफ सुनाई पड़ रहा है। चोट लगने से उसका कान इस भांति हो गया कि वह जिस नगर में था, दस मील आस-पास के किसी भी स्टेशन को उसका कान पकड़ने लगा और बंद करने का कोई उपाय नही था। उस आदमी के पागल होने की नौबत आ गई। और जब पकड़ने लगा वह ध्वनियां, पहले तो शक हुआ किन्तु जब नर्सो और डाक्टरो ने कहा कि तुम पागल तो नही हो गए हो, यहां तो कोई रेडियो नही, यह शान्त भूमि है, यहां कोई रेडियो बज ही नही सकता, यहां कोई यदि आवाज हो तो हमको भी आनी चाहिए। तब उसने कहा कि फलां-फलां गीत की कड़ी आ रही है। वे लोग आगे गए, जाकर सामने के होटल में रेडियो खोला। कड़ियां आ रही थी। फिर उन्होने ताल-मेल बिठाया। जिस नगर में हुई थी यह घटना वह उस नगर के स्टेशन को पकड़ लेता था। उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा सक्रिय हो गया था, जो हमारा सक्रिय नही है। तब उसका आपरेशन करना पड़ा। अगर उसका वह हिस्सा सक्रिय रहता तो उसकी जिन्दगी मुश्किल हो जाती। क्योंकि रेडियो को तो हम बंद कर सकते हैं, लेकिन विचार को बंद नही कर सकते। वह चलता चला जाएगा।

हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाएँ अनन्त है। लेकिन स्वभावत. जितनी सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं उन सबके आगे अंधकार मालूम पड़ता है। वह मालूम पड़ेगा ही। यह जो अभी रूस में एक वैज्ञानिक है फयादेव उसने एक हजार मील दूर तक टेलीपैथिक संदेश भेजकर नए चमत्कार उपस्थित किए है। और, रूस में यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि रूस इस तरह की बातों पर अनायास विश्वास करने के लिए कतई तैयार नही है। फयादेव ने मास्को में बैठकर एक हजार मील के फासले पर तिफिलस नगर के एक व्यक्ति से अपना संबंध स्थापित किया है। उसके मित्र एक बगीचे की झाडी में छिपे हुए हैं और वायरलेस से सम्बन्ध है उनका। वह मित्र फयादेव से कहते हैं कि दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है। तुम उसे मास्को से सुझाव देकर सुला दो। फयादेव

कहता है कि मैं पांच मिनट में उसे सुला दूँगा। वह पांच मिनट तक मास्को में बैठकर चित्त को एकाग्र करके एक हजार मील दूर तिफलिस के फलाँ बगीचे में दस नम्बर की बेंच पर जो आदमी बैठा हुआ है, उसकी तरफ तीव्र प्रवाह से विचार भेजता है। और वह आदमी पांच मिनट बाद सो जाता है, उसी बेंच पर। लेकिन उसके मित्र कहते हैं कि हो सकता है कि वह थका मांदा हो और अनायास सो गया हो। तुम उसे तीन मिनट के भीतर उठा दो अब वापिस। वह उसे फिर सुझाव भेजता है उठने के। वह आदमी तीन मिनट के भीतर उठ जाता है। मित्र उस आदमी के पास जाते हैं और उससे पूछते हैं कि तुम्हें कुछ लगा तो नही। उसने कहा सच में बडी हैरानी की बात है। कुछ लगा जरूर। पहले मैंने ख्याल नही किया। जैसे मैं बेंच पर आकर बैठा, कोई मेरे भीतर जोर से कहने लगा ' सो जाओ। और मैं बिल्कुल थका-मांदा नही था। मैं किसी की प्रतीक्षा करने इस बगीचे में आकर बैठा हूं। कोई आने वाला है, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। लेकिन इतने जोर से आया सो जाने का ख्याल मुझे कि मैं सो गया। और अभी-अभी किसी ने मुझे जोर से कहा . उठो ! उठो ! तीन मिनट के भीतर उठ जाना !' मेरी समझ में कुछ नही आया कि क्या बात हो गई है। फिर फयादेव ने बहुत प्रयोग करके बताए और सिद्ध किया कि विचार की तरगे सम्प्रेषित होती हैं बिना वाणी के।

सोहन यहाँ बैठी हुई है। उसके घर में मैं पहली या दूसरी दफा मेहमान था। वह रात आकर मेरे बिस्तर के नीचे बिस्तर लगाकर सो गई। और उसने कहा कि मैं तो आपसे कभी कुछ पूछती नहीं। सिर्फ एक सवाल मुझे पूछना है : आपकी माँ का नाम क्या है ? उससे मैंने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है। तू आंख बंद कर ले। तुझे जो पहला नाम आ जाए, बोल दे। अगर वह कहती कि इससे कैसे होगा, कैसे पता चलेगा तो फिर मैं उसे बता देता। क्योंकि वैसा कहने वाला व्यक्ति फिर सवेदनशील नही हो सकता। मगर उसने बात मान ली। उसने कुछ नहीं पूछा, आंख बंद कर ली और कहा 'सरस्वती।' मैंने कहा कि वही मेरे माँ का नाम है। पर उसे विश्वास न पडा। उसने कहा कि मैं यह कैसे मानूँ ? पता नही आप किसी भी नाम में 'हाँ' भर दे। मैंने कहा कि यह तो कोई कठिन बात नही है। तू मेरी माँ से भी मिल लेना और पता लग जाएगा। यह झूठ कितनी देर चल सकता है ?

अब यह कैसे हुआ ? वह जब दो मिनट शान्त होकर लेट गई थी तब मैं मन में 'सरस्वती, सरस्वती' दोहराता रहा। चूँकि वह उत्सुक थी जानने को,

इसलिए उसके विचार शान्त हो गए थे और शब्द उसके मन में प्रतिध्वनित हो गए। उसने कहा 'सरस्वती।' मगर उसको पता नही कि यह कैसे आया। थोडे से इसको प्रयोग करके देखिए।

आप रास्ते पर जा रहे हैं और सामने एक आदमी जा रहा है। आप दोनो आंखो की पलकें बन्द करके उसकी गर्दन पर देखते रहना थोडी देर, पीछे चलते रहना चुपचाप और देखते रहना। और फिर मन में जोर से कहना कि पीछे लौटकर देखो। सौ में निन्यानवे आदमी लौटकर पीछे देखेगा कि क्या बात है? और उसे पता भी नही चलेगा कि उसने पीछे लौटकर क्यो देखा? ठीक उसकी गर्दन पर अगर आपकी आंखे केन्द्रित हो तब कोई भी विचार एकदम से सम्प्रेषित हो जाता है उसके प्रति। लेकिन होना चाहिए आपके पास तीव्रता से सम्प्रेषण करने की क्षमता यानी अगर आप साथ में ऐसा कहें कि 'पता नही कि लौटकर देखेगा कि नही देखेगा' तो सब गडबड़ हो जाएगा। क्योकि साथ-साथ आपका सन्देह भी सम्प्रेषित हो जाएगा और वह भी आदमी को पहुँच जाएगा और फिर वे दोनों कट जाएँगे। वह आदमी सीधा चला जाएगा, लौटकर पीछे नही देखेगा।

हमारे मस्तिष्क की सम्भावनाओं का हमे ठीक-ठीक बोध नही है। देवलोक से सम्बन्धित होने के लिए मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा है जो सक्रिय होना जरूरी है। सक्रिय होने से हम दूसरी दुनिया में प्रवेश कर गए। जैसे रात हम सपने में प्रवेश कर जाते हैं, सुबह जागकर फिर एक नई दुनिया शुरू हो जाती है, ठीक वैसे ही हम एक नई दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं। यह प्रवेश उतना तथ्य ही है जैसे कि आपने रेडियो खोला जो ध्वनियां चल रही थी वे पकडाई जानी शुरू हो गई। कोई ऐसा नही है कि रेडियो खोलने के वक्त ध्वनियाँ आनी शुरू हो जाती हैं। ध्वनियां इस कमरे में पहले से ही दौड रही हैं, सिर्फ खोलने पर पकडी जाती हैं। देवता प्रतिक्षण उपस्थित हैं ही, केवल आपके मस्तिष्क की एक व्यवस्था खुल जाने पर वे पकडे जाते हैं, देखे जाते हैं। यह निर्भर करता है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा कैसे टूट जाए? उसके लिए दो-तीन बातें ख्याल में रखनी चाहिए।

एक बात कि अगर कोई व्यक्ति समग्र चेतना से, सारे शरीर को छोडकर सिर्फ दोनो आंखो के बीच में आज्ञाचक्र पर ध्यान को स्थिर करता रहे तो जहाँ हमारा ध्यान स्थिर होता है, वहीं सोए हुए केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाते हैं।

ध्यान सक्रियता का सूत्र है। शरीर मे किन्हीं भी केन्द्रो पर ध्यान जाने से वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं। जैसे एक ही ख्याल हमें है सैक्स के सेन्टर का, जिसका लोगों को अनुभव है। कभी आपने ख्याल किया कि जैसे ही आपका ध्यान सैक्स की तरफ जाएगा, सैक्स केन्द्र तत्काल सक्रिय हो जाएगा। जागते में ही नही, सोते में भी, स्वप्न में भी अगर सैक्स की तरफ ख्याल गया तो सैक्स केन्द्र फौरन सक्रिय हो जाएगा। सिर्फ ध्यान जाने से ही, सिर्फ जरा सी कल्पना उठने से ही सैक्स, वासना का केन्द्र सक्रिय हो जाएगा।

एक केन्द्र का हमें सामान्य ख्याल है, इसलिए मैं उदाहरण के लिए कहता हूँ। दूसरे केन्द्र का हमें सामान्यत. बोध नही है। फिर भी एक-दो केन्द्रो का थोडा-थोडा हमें बोध है। ऐसा कोई आदमी नहीं मिलेगा जो प्रेम की बात करते वक्त सिर पर हाथ रखे, मगर हृदय पर हाथ रखने वाला आदमी मिलेगा। स्त्रियाँ जब प्रेम की बात करेंगी तब उनका हाथ हृदय पर चला जाएगा। वह एक केन्द्र है जो प्रेम का ध्यान आते ही सक्रिय हो जाता है। लेकिन जैसे कोई चिन्तित है और विचार में सक्रिय है तब उसका हाथ सिर पर जा सकता है, माथे पर जा सकता है। क्योंकि चिन्तित व्यक्ति को जहाँ विचार सक्रिय होता है उसी केन्द्र के आस-पास बोध हो जाएगा। आज्ञाचक्र वह जगह है जिसे दूसरे लोग 'तीसरी आँख' (थर्ड आई) कहते हैं। अगर सारा ध्यान वहाँ केन्द्रित हो जाए तब करीब-करीब भीतर एक आँख के बराबर का एक टुकडा बिल्कुल खुल जाता है। कोई ऊपर से खोजने जाएगा तो उसे पता नही चलेगा लेकिन भीतर अगर ध्यान केन्द्रित हो तो ध्यान में व्यक्ति को निरन्तर पता चलेगा कि कोई चीज वहाँ टूट रही है, कोई छेद वहाँ हो रहा है। और जिस दिन उसे लगता है कि छेद हो गया उसी दिन उसे वे चीजें, जिन्हें हम देव कहें, प्रेत कहें, उनसे उसके सीधे सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, जो हमारे सम्बन्ध नही हैं।

तो महावीर का बहुत समय जिसको हम साधनाकाल कह रहे हैं अभिव्यक्ति के माध्यम खोजने का, इस तरह के केन्द्रों को सक्रिय करने और तोडने के लिए व्यतीत हुआ। इस तरह के केन्द्रों को तोडने में जितना ज्यादा ध्यान बिना बाधा के दिया जा सके उतना उपयोगी है। क्योंकि मामला वहाँ ऐसा है कि अगर आप पांच चोटें करके छोडकर चले गए तो दुबारा जब आप आएँगे तब तक पांच चोटें विलीन हो चुकी होंगी। यानी आपको फिर 'अ' 'ब' 'स' से शुरू करना होगा। यह वजह है कि महावीर को बहुत दिन तक के लिए

खाना, पीना, निद्रा आदि सारे काम त्याग करने पडे। **चोट सतत और सीधी होनी चाहिए।** कोई भी बाधा बीच में नही होनी चाहिए। क्योकि जब कोई दूसरी बात बीच में आएगी ध्यान वहाँ जाएगा। और ध्यान दूसरी जगह गया कि वहाँ से जो काम हुआ था वह अधूरा छूट जाएगा। वह अधूरा न छूट जाए इसलिए जीवन के सारे कामो से—जो बीच में बाधाएँ डाल सकते हैं—ध्यान हटाना पडेगा। तभी एक केन्द्र को पूरी तरह से सक्रिय किया जा सकता है।

तो महावीर निरन्तर एकान्त में खडे हैं, और यह ध्यान रहे कि महावीर का भी साधना का अधिकतम हिस्सा खडे-खडे व्यतीत हुआ है। दूसरे साधको ने बैठकर साधना की है। **महावीर की अधिकतम साधना खडे-खड़े हुई है।** महावीर के ध्यान का प्रयोग भी खडे-खडे करने के लिए है। कुछ कारण है उसमें। बैठा हुआ आदमी, लेटा हुआ आदमी सो सकता है। और अगर एक क्षण को भी वहाँ से ध्यान हट जाए तो पहला काम एकदम विलीन हो जाएगा। उस चक्र पर तो सतत काम करना चाहिए। वह काम खडे होकर ही किया जा सकता है क्योकि खडे हुए आदमी की सोने की सम्भावना एकदम न्यून हो जाती है, क्षीण हो जाती है। निद्रा से बचने के कई उपाय किए उन्होने। और कोई कारण नही। सिर्फ कारण है कि निद्रा में उतनी देर के लिए ध्यान अलग हो जाएगा और तब हो सकता है कि उतना काम व्यर्थ हो जाए। **निद्रा से बचने के लिए भोजन को छोड़ देना चाहिए** क्योकि नीद का पचहत्तर प्रतिशत भोजन से सम्बन्धित है। जैसे ही भोजन पेट में गया, मस्तिष्क की सारी शक्ति पेट की तरफ आनी शुरू हो जाती है, भोजन को पचाने के लिए। इसलिए भोजन करने के बाद नीद का हमला शुरू हो जाता है कारण कि मस्तिष्क में जो शक्ति काम कर रही है उसे पहले जरूरी है भोजन पचाना। क्योंकि ज्यादा देर वह बिना पचा रह जाए तो वह जहर हो जाएगा, ठंडा हो जाएगा। इसलिए पेट सारे शरीर से एकदम सारी शक्ति को वापस बुला लेता है और मस्तिष्क की शक्ति उतर जाती है नीचे। आँखें झपकने लगती है, नीद आने लगती है। अगर नीद को बिल्कुल ही तोडना हो तो पेट में कुछ नही होना चाहिए। इसलिए उपवास के दिन आपको नीद आना मुश्किल है। क्योकि उस शक्ति को नीचे आने का कोई उपाय ही नही रह जाता।

और जो लोग आज्ञाचक्र पर काम कर रहे हैं, वहाँ ध्यान लगा है उनकी शक्ति नीचे नही आनी चाहिए। वह ऊपर ही लगी रहनी चाहिए तो ही वह चक्र खुल सकता है। सत्य की अनुभूति से वह चक्र नही खुल जाता। हाँ, उस

अनुभूति को उस चक्र के माध्यम से प्रकट करना हो तो उसे खोलने की जरूरत पडती है। तिब्बत ने इस दिशा में सर्वाधिक मेहनत की है, तीसरी आँख के सम्बन्ध में। तोडने के लिए अथक श्रम किया है। और तिब्बत में निरन्तर ऐसे लोग पैदा होते रहे जिन्होंने उसका पूरा उपयोग किया। आज्ञाचक्र के माध्यम से ही देवताओं से जुडा जा सकता है। वहाँ वाणी की कोई जरूरत नहीं रहती। भाव जो भीतर पैदा हो वह आज्ञाचक्र से प्रतिध्वनित हो जाता है और देव-चेतना तक प्रवेश कर जाता है।

यह मैंने दो बातें कही। जड सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी शिथिल हो जानी चाहिए कि जड के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए और मनुष्य से ऊपर की योनियो से सम्बन्धित होना हो तो चेतना इतनी एकाग्र होनी चाहिए कि आज्ञाचक्र टूट जाए। सर्वाधिक कठिनाई मनुष्य के साथ है। मनुष्य से सम्बन्धित होने के लिए महावीर ने तीन प्रयोग किए हैं। पहला प्रयोग यह है कि किसी भी मनुष्य को सम्मोहन की हालत में कोई भी सन्देश दिया जा सकता है। और उस वक्त सन्देश उसके प्राणो के आखिरी कोर तक सुना जाता है। और इस वक्त चूंकि तर्क बिल्कुल काम नही करता, विचार काम नही करता, चेतना काम नही करती इसलिए न वह विरोध करता है, न विचार करता है। जो कहा जाता है उसे चुपचाप स्वीकार कर लेता है यहां तक कि अगर एक व्यक्ति को बेहोश करके कहा जाए कि तुम घोड़े हो गए हो तो वह बराबर चारो हाथ पैर से खडा हो जाएगा, घोड़े की तरह आवाज करने लगेगा, वह यह मान लेगा। उसके बिल्कुल अचेतन तक अगर यह बात प्रविष्ट हो जाए तो हम जो उसे कहेंगे, वह वही हो जाएगा। उसे कहा जाए कि तुम्हें लकवा लग गया है तो उसके शरीर को एकदम लकवा लग जाएगा। फिर वह हाथ पैर हिला नही सकेगा। सौ मे से तीस पुरुष, पचास स्त्रियां और पचहत्तर बच्चे सम्मोहित हो सकते हैं। जितना सरल चित्त हो उतनी शीघ्रता से सम्मोहन प्रवेश कर जाता है।

महावीर वर्षो तक काम कर रहे है कि सम्मोहन के द्वारा कैसे संदेश पहुँचाया जाए। लेकिन अन्तत उन्होने उस प्रक्रिया का प्रयोग नही किया है क्योंकि सम्मोहन के द्वारा सन्देश तो पहुँच जाता है लेकिन कुछ सूक्ष्म नुकसान दूसरे को पहुँच जाते हैं। जैसे उसकी तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है, जैसे वह परवश हो जाता है और वह धीरे-धीरे दूसरे के हाथ मे जीने लगता है। मैंने भी इधर सम्मोहन पर बहुत प्रयोग किये हैं इसी दृष्टि से। क्योंकि थोडी मेहनत करें तब

एक बात मुश्किल से समझाई जा सकती है। इधर दो मिनट बेहोश किया जाए तो वह बात उसमें प्रवेश कराई जा सकती है। लेकिन मैं भी इस नतीजे पर पहुँचा कि उस व्यक्ति में कुछ बुनियादी नुकसान पहुँच जाते हैं। सन्देश पहुँच जाएगा लेकिन वह व्यक्ति ऐसे जीने लगेगा जैसे उसकी कोई स्वतन्त्रता नही रही, वह परवश है, कोई और उसे चला रहा है, ऐसा चलने लगेगा।

रामकृष्ण ने विवेकानन्द को जो पहला संदेश दिया वह सम्मोहन की विधि से दिया गया था जिसमें उनके स्पर्शमात्र से विवेकानन्द को समाधि हो गई। वह सम्मोहन के द्वारा दिया गया सदेश है और इसीलिए विवेकानन्द सदा के लिए रामकृष्ण का अनुगत हो गया। और भी मजे की बात है कि रामकृष्ण ने जिस दिन स्पर्श द्वारा विवेकानन्द को सदेश दिया उसी दिन से विवेकानन्द के भीतर एक शक्ति प्रकट हुई जो उसकी अपनी नही थी, किसी दूसरे के दबाव में उसके भीतर आ गई थी। कमरे में बैठे हुए है विवेकानन्द। और उस कमरे में एक भक्त भी रहता था। गोपाल बाबू उसका नाम था। वह सब तरह की भगवान् की मूर्तियाँ रखे हुए था अपने कमरे में और दिन भर पूजा चलती थी क्योंकि इतने भगवान् थे कि उनकी उसे रोज दो तीन घटे पूजा करनी पडती थी। वह कभी साझ को भोजन कर पाता, कभी रात में। इतने भगवान् और एक भक्त! बडी मुश्किल हो गई थी। विवेकानन्द ने कई बार उससे कहा तू क्या पत्थर इकट्ठे कर रहा है। जिस दिन विवेकानन्द को पहली बार रामकृष्ण से सम्मोहन का सन्देश मिला उस दिन वह कमरे में जाकर बैठे और उन्हे एकदम से ख्याल आया कि इस वक्त अगर मैं गोपाल बाबू को कहूँ कि 'जा! सारी मूर्तियो को बाँध कर गंगा में फेंक आ तो बराबर हो जाएगा।" इस वक्त उनके पास बड़ी तीव्र शक्ति है जिसको वह विस्तीर्ण कर सकते हैं। उन्होने यह कहा सिर्फ मजाक में कि 'गोपाल बाबू! सब भगवानो को बाँधो और गंगा में फेंक आओ।' गोपाल बाबू ने सब भगवान् चद्दर में बाँधे और गंगा में फेंकने चले। रामकृष्ण घाट पर मिले और कहा, 'खूब'! गोपाल बाबू को कहा: 'वापस चलो'! जाकर विवेकानन्द का दरवाजा खोला और कहा कि 'तेरी चाबी मैं अपने हाथ मे रखे लेता हूँ क्योंकि तू तो कुछ भी उपद्रव कर सकता है। और जो तुझे आज अनुभव हुआ है अब वह तेरे मरने के तीन दिन पहले ही तुझे हो सकेगा, उसके पहले नहीं।' और विवेकानन्द को जो समाधि का अनुभव हुआ रामकृष्ण के स्पर्श से फिर जिन्दगी भर तडप रहो, वह कभी नहीं हो सका। लेकिन मरने के तीन दिन पहले वह फिर अनुभव हुआ। वह भी

विवेकानन्द का अपना नहीं है। वह भी सम्मोहन अवस्था में कहा गया है कि फलां दिन तुझे फिर होगा। लेकिन चाबी मेरे पास है तो फलां दिन वह फिर हो जाएगा।

मैं एक बच्चे पर सम्मोहन के बहुत से प्रयोग करता था। उससे मैंने कहा कि यह किताब सामने रखी है। इसके बारहवें पन्ने पर तुम पेंसिल उठा कर अपने दस्तखत कर देना। लेकिन आज नहीं, पन्द्रह दिन बाद ठीक ग्यारह बजे दोपहर! और कर ही देना; भूल मत जाना। बात खत्म हो गई। वह तो होश में आ गया। स्कूल जाना था, स्कूल चला गया। पन्द्रह दिन बीत गए। किताब वहीं टेबिल पर पड़ी रही। लेकिन उसने कभी उस पर दस्तखत नहीं किए। पन्द्रहवें दिन उसका दस बजे स्कूल लगता था। उसने कहा: आज मेरा सिर कुछ भारी है। मैं स्कूल नहीं जाना चाहता हूँ। मैंने कहा: सुबह तो तबियत ठीक थी। उसने कहा: बिल्कुल ठीक थी पर अभी मेरा सिर भारी है। मैंने कहा: तुम्हारी मर्जी। मैं उसी कमरे में बैठा हूँ और टेबिल पर किताब रखी है, वह लड़का भी वहीं लेटा हुआ है। ठीक ग्यारह बजे उठा है, पेन्सिल उठाई है जाकर। जो पन्ना मैंने कहा था उसने खोला है और अपने दस्तखत करने लगा है। मैंने उसको दस्तखत करते वक्त पकड़ा है कि तू यह क्या कर रहा है। उसने कहा "समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या कर रहा हूँ। न तो मेरा सिर दुख रहा है और न कुछ और। लेकिन सुबह से ऐसा लग रहा है कि आज स्कूल मत जाना; कोई जरूरी काम करना है। बस भीतर से यही चल रहा है। और जब मैंने दस्तखत कर दिए हैं तो मेरे भीतर से बोझ उतर गया है जैसे मेरा पहाड़ उतर गया हो। मेरा सिर बिल्कुल ठीक हो गया है। दस्तखत करके मैं बिल्कुल हल्का हो गया हूँ। पता नहीं यह क्यों हुआ है कि दस्तखत मुझे करने हैं। यह पन्द्रह दिन पहले दिया गया सम्मोहन प्रयोग है।

रामकृष्ण ने जिस विधि का उपयोग किया है उस विधि को महावीर ने बहुत दूर तक विकसित किया है लेकिन छोड़ दिया, उसका प्रयोग नहीं किया और मैं यह जानता हूँ कि विवेकानन्द को नुकसान पहुँचा। विवेकानन्द कुछ भी अपना काम नहीं कर सका। अपनी कमाई अभी बाकी रह गई है। यह हुआ है दूसरे के द्वारा। इसमें विवेकानन्द की अपनी कोई उपलब्धि नहीं है। इसलिए विवेकानन्द बहुत चिन्तित, दुखित और परेशान रहे क्योंकि वे रामकृष्ण से बँधे थे। आखिरी समय में जो पत्र लिखे हैं उन्होंने, वे बड़े दुख के हैं, बड़ी

पीडा के हैं, बहुत सन्ताप है उनमें। जैसे जिन्दगी एकदम व्यर्थ हो गई हो, कुछ भी नही पा सके। रामकृष्ण ने ऐसा क्यों किया! अगर महावीर ने इसका प्रयोग नही किया तो रामकृष्ण ने क्यों किया! कुछ कारण हैं। महावीर वाणी में समर्थ थे। रामकृष्ण वाणी में असमर्थ थे। और वाणी के लिए विवेकानन्द को साधन की तरह उपयोग करना जरूरी हो गया, नही तो रामकृष्ण ने जो जाना था वह खो जाता। रामकृष्ण ने जो जाना था। उसे जगत् तक पहुँचाने के लिए रामकृष्ण के पास वाणी नही थी। उस वाणी के लिए विवेकानन्द का उपयोग करना जरूरी था। विवेकानन्द सिर्फ रामकृष्ण के ध्वनि-विस्तारक यन्त्र हैं, इससे ज्यादा नही। और वह बिल्कुल सम्मोहित अवस्था में सारे जगत् में घूम रहे हैं, बिल्कुल सोयी अवस्था में। रामकृष्ण जो बुलवाना चाह रहे हैं, वे बोल रहे हैं। विवेकानन्द का उपयोग किया गया है एक साधन की भांति। यह जरूरी था रामकृष्ण के लिए। नही तो रामकृष्ण किसी को कुछ भी न दे पाते। यही विवेकानन्द से कहा है रामकृष्ण ने "तुझे मैं समाधि में नही जाने दूँगा क्योंकि तुझे अभी एक बहुत बडा काम करना है।" और जब भी विवेकानन्द ने उनसे पूछा "परमहंस देव, उस दिन जो खुशी मिली थी, प्रकाश मिला था, आनन्द मिला था, वह फिर कब मिलेगा।" तो उन्होने बहुत जोर से उसे डाटा है, डपटा है, और कहा है कि तू बहुत लोभी है, स्वार्थी है, तू अपने ही आनन्द के पीछे पड़ा है। तुझे मैं एक बडा वृक्ष बनाना चाहता हूँ जिसके नीचे बहुत लोग छाया में विश्राम करें। तुझे तो एक बडा काम करना है। वह कौन करेगा? तू समाधि में चला जाएगा तो वह कार्य कौन करेगा? महावीर को यह कठिनाई नही है। महावीर के पास रामकृष्ण के अनुभव भी हैं। विवेकानन्द की सामर्थ्य भी है। इसलिए दो व्यक्तियों की जरूरत नहीं पड़ती। एक ही व्यक्ति काफी है।

अक्सर ऐसा हुआ है, जैसे गुरजिएफ की मैं बात करता हूँ निरन्तर। गुरजिएफ ने आस्पेंस्की का इसी तरह उपयोग किया है जैसा कि विवेकानन्द का रामकृष्ण ने। गुरजिएफ के पास वाणी नही है, आस्पेंस्की के पास वाणी है, बुद्धि है, तर्क है। आस्पेंस्की का पूरा उपयोग किया है गुरजिएफ ने। गुरजिएफ की आप किताब पढे तो समझ ही नही सकते हैं कुछ भी, क्योंकि उनके पास वह अभिव्यक्ति है ही नही लेकिन आस्पेंस्की से उसने सब लिखवा लिया है जो उसे लिखवाना था। आस्पेंस्की की किताबें इतनी अद्भुत हैं जिनका कोई हिसाब नही। गुरजिएफ को जो कहना था वह आस्पेंस्की से कहलवा लिया है। और यह बिना सम्मोहन प्रयोग के नही हो सकता है। महावीर के पास भी वह

साधना है लेकिन उन्होंने देखा कि वह साधन व्यक्ति को नुकसान पहुँचाता है और सोचा कि किसी को अपने साधन की तरह उपयोग करने का सवाल नही है; वह तो उसके भीतर सदेश भर पहुँचाने का सवाल है। इसलिए उसका प्रयोग तो उन्होंने बहुत किया, लेकिन किसी को अपने साधन की तरह उपयोग कभी नही किया। दूसरा रास्ता है कि दूसरा व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो जाए तो फिर मौन में ही बात हो सकती है, फिर कोई जरूरत नही है उससे शब्दो का उपयोग करने की, क्योंकि शब्द सबसे असमर्थ चीज है। मौन में जो कहा जाए वह पहुँच जाता है, जो कहा ही नही गया जो समझा जा सकता है वह भी पहुँच जाता है।

इसलिए महावीर का जो भक्त है उसको कहते हैं श्रावक यानी ठीक से सुनने वाला। सुनते हम सभी हैं। हम सभी श्रावक हैं। लेकिन हम सभी श्रावक नही हैं। श्रावक वह है जो ध्यान की स्थिति में बैठकर सुन सके—उस स्थिति में जहाँ उसके मन में कोई विचार नही है, शब्द नही है, कुछ भी नही है, मौन मे बैठ कर जो सुन सके वह श्रावक है। यह शब्द का उपयोग आकस्मिक नही है। भक्त को श्रोता कहने से काम नही चलता क्योंकि श्रोता का मतलब है सिर्फ सुनना। श्रावक का मतलब है सम्यक् श्रवण। हम सब सुनते हैं लेकिन हम श्रावक नही हैं। श्रावक हम तब होते हैं जब हम सिर्फ सुनते हैं और हमारे भीतर कुछ भी नही होता।

गुरजिएफ की मैं अभी बात कर रहा था। पहले कि वह संदेश दे आस्पेंस्की को उसे श्रावक बनाना जरूरी है। वह सुन ले और संदेश को ले जाए। तो गुरजिएफ आस्पेंस्की को जंगल में ले जाकर तीन महीने रहा। उस मकान में तीस व्यक्तियो को वह लाया जिनको वह श्रावक बना रहा था। तीन महीने उन तीस लोगो को रखा एक ही बंगले में जो सब तरफ बंद कर दिया गया, जिसमें बाहर जाने का कोई उपाय नही है और जिसमे गुरजिएफ कभी बाहर से खोल कर भीतर आता है और जिसे बद कर बाहर जाता है। मकान सब तरफ से बद है। भोजन का इन्तजाम है। सारी व्यवस्था है। शर्त यह है कि तीन महीने न तो कोई कुछ पढेगा, न कोई कुछ लिखेगा, न कोई किसी से बात करेगा। तीस आदमी एक मकान के भीतर हैं। गुरजिएफ ने कहा कि तुम ऐसे समझना कि एक-एक ही वहाँ हो, तीस नही। उन्तीस यहाँ हैं ही नहीं तुम्हारे अलावा। आँख के इशारे से भी मत बताना कि दूसरा है। सुबह तुम बैठोगे तो कोई जा रहा है तो जाने देना। तुम मत सोचना कि कोई जा रहा है।

अगर कोई नमस्कार भी करे तो नमस्कार मत करना क्योंकि कोई है ही नही जिसको तुम नमस्कार करो। आंख से भी मत पहचानना कि तुम हो। मुस्कराना भी मत, भाव भी मत प्रकट करना। और जो आदमी इस तरह के भाव प्रकट करे उसे मैं बाहर निकाल दूंगा। पन्द्रह दिन में 'छंटाई' करूंगा। पन्द्रह दिन में सत्ताईस आदमी उसने बाहर कर दिए। तीन आदमी रह गए। उनमें एक रूप का गणितज्ञ आस्पेंस्की भी था। आस्पेंस्की ने लिखा है कि पन्द्रह दिन बहुत कठिनाई के थे, दूसरे को न मानना बड़ा कठिन था। कभी सोचा भी नही था कि कठिनाई हो सकती है। लेकिन संघर्ष से, संकल्प से पन्द्रह दिन में वह सीमा पार हो गई। दूसरे का ख्याल बंद हो गया। आस्पेंस्की ने लिखा है कि जिस दिन दूसरे का ख्याल बंद हो गया उस दिन से पहली बार अपना ख्याल शुरू हुआ। अब हम सब अपना ख्याल करना चाहते हैं। मगर दूसरे का ख्याल मिटता नही है। अपना ख्याल कभी हो नहीं सकता। क्योंकि जगह खाली नहीं। कहते हैं—आत्मस्मरण। मगर आत्म-स्मरण कैसे हो? आत्मस्मरण चौबीस घंटे चल रहा है और उसी के बीच दूसरे का स्मरण भी हो रहा है और फिर हम आत्मस्मरण करना चाहते हैं।

आस्पेंस्की ने लिखा है कि तब तक मैं समझा ही नही था कि आत्म-स्मरण का मतलब क्या होता है। और बहुत बार कोशिश की थी अपने को याद करने को। कुछ नही होता था। तब ख्याल में आया पन्द्रह दिन के बाद कि वह जो दूसरा भीतर बैठा था विदा हो गया है। जब भीतर खाली रह गया तो सिवाय अपने स्मरण के कोई मौका ही नहीं रहा। तब पहली बार मैं अपने प्रति जागा। सोलहवें दिन सुबह उठा जैसा कि मैं जिन्दगी में कभी नही उठा था। पहली बार मुझे बोध हुआ कि अब तक मैं दूसरे के बोध में ही उठता था। सुबह उठने से दूसरे का बोध शुरू हो जाता था। अब अपना बोध चौबीस घंटे घेरे रहने लगा क्योंकि अब कोई उपाय न रहा। दूसरे को भरने की जगह न रही। एक महीना पूरा होते-होते, उसने लिखा है कि मैं हैरानी में पड़ गया। दिन बीत जाते हैं, मुझे पता ही नही चलता कि जगत् भी है, कोई व्यावहारिक संसार भी है, बाजार भी है, लोग भी हैं। दिन बीत जाते हैं, और पता नही चलता। सपने विलीन हो गए। जिस दिन दूसरा छूटा उसी दिन सपने विलीन हो गए। क्योंकि सब सपने बहुत गहरे में दूसरे से सम्बन्धित हैं। जिस दिन सपने विलीन हुए उस दिन मुझे रात में भी अपना स्मरण रहने लगा। ऐसा नही है कि मैं रात में सोया हुआ हूं। रात में भी सब सोये हैं और मैं जागा हुआ हूं, ऐसा होने लगा।

तीन महीने पूरे होने के तीन दिन पहले गुरजिएफ ने दरवाजा खोला। आस्पेंस्की ने लिखा है . उस दिन मैंने पहली वार देखा कि यह आदमी कैसा अद्‌भुत है। इतना खाली था कि अब मैं नही देख सकता था। भरी हुई आँख क्या देखेगी ? गुरजिएफ को मैंने पहली बार देखा : ओफ ! यह आदमी और इसके साथ होने का सौभाग्य ! पहले समझा था कि जैसे और लोग थे वैसा गुरजिएफ था। खाली में पहली वार गुरजिएफ को देखा। आस्पेंस्की ने लिखा है, उस दिन मैंने जाना कि वह कौन है। गुरजिएफ सामने वैठ गया और वोला : आस्पेंस्की ! पहचाना मुझे ! मैंने चारो ओर चौक कर देखा : गुरजिएफ चुप वैठा है। आवाज गुरजिएफ की है। फिर भी मैं चुप रहा। फिर आवाज आई : आस्पेंस्की ! पहचाना नहीं, सुना नही। तव मैंने चौंक कर गुरजिएफ की ओर देखा। मैं विल्कुल चुप वैठा था। मेरे मुँह से कोई शब्द निकल रहा था। तव गुरजिएफ खूव मुस्कराने लगा और फिर कहा . अव शब्द की कोई जरूरत नही है। विना शब्द के भी वात हो सकती है। अव तू इतना चुप हो गया कि मैं भीतर सोचूँ और तू सुन लेगा क्योंकि जितनी शाति है उतनी सूक्ष्म तरगे पकडी जा सकती हैं।

तुम रास्ते से भागे चले जा रहे हो। तुम्हें किसी ने कहा है, तुम्हारे मकान में आग लग गई है। और मैं रास्ते में तुम्हें मिलता हूँ और कहता हूँ नमस्कार ! तुमने सुना ? तुमने नही सुना। तुमने देखा ? तुमने नही देखा। तुम भागे चले जा रहे हो। तुम्हारे घर में आग लग गई है। दूसरे दिन तुम मुझे मिलते हो। मैं कहता हूँ रास्ते में मिला था, नमस्कार की थी, तुमने कोई जवाव नही दिया। तुम कहते हो : मैंने देखा ही नही। मेरे घर में आग लग गई थी, मैं भागा जा रहा था। मुझे तुम नही दिखाई पडे। न मैंने देखा कि तुमने हाथ जोडे। न मैं इस हालत में था कि हाथ जोड सकता था। अगर मकान में आग लग गई तो तुम्हारा चित्त इतने जोर से चलता है कि जोड़े गए हाथ दिखेंगे नहीं, किया हुआ नमस्कार सुनाई नही पडेगा। अगर चित्त का चक्र धीमा हो गया है, ठहर गया है तो जरूरी नहीं कि मैं वोलूँ ! इतना ही काफी है कि मैं कुछ चाहूँ कि तुम पर चला जाए, वह एकदम चला जाएगा।

विद्यासागर ने लिखा है कि वंगाल का गवर्नर उन्हें एक पुरस्कार देना चाहता था। विद्यासागर एक गरीव आदमी थे, पुराने ढग से रहने के आदी थे। वही पुराना वगाली कुर्ता, पुरानी धोती है। डंडा हाथ में है। मित्रों ने कहा : इस वेप में गवर्नर के दरवार में जाना ठीक नही है। हम तुम्हें नए

कपडे बनवा देते है। विद्यासागर ने कहा कि मैं जैसा हूँ, ठीक हूँ। मित्र नही माने। उन्होंने खूब कीमती कपडे बनवाए। कल सुबह जाना है विद्यासागर को गवर्नर के सामने और पुरस्कार लेना है। दरबार भरेगा। साझ को वह घूमने निकले। समुद्र के तट पर से घूमकर लौट रहे हैं। सामने ही एक मुसलमान मौलवी छडी लिए चुपचाप शान से चला जा रहा है। एक आदमी भागा हुआ आया है और मौलवो से कहा . मीर साहब! तेजी से चलिए, आपके मकान में आग लग गई है। मीर ने कहा ठीक है और फिर वह उसी चाल से चला। विद्यासागर हैरान हो गए क्योंकि सुना है उन्होंने, आदमी ने अभी आकर कहा है कि मकान में आग लग गई है। मगर वह उसी चाल से चल रहा है। फिर, उस आदमी ने घबडाकर कहा है : शायद आप समझे नही हैं। आपके मकान में आग लग गई है। तो कहा : मैंने समझ लिया है। फिर वह उसी चाल से चलने लगा है। तब विद्यासागर कदम बढा कर आगे गए और कहा : "सुनिए ! हद हो गई है। आपके मकान में आग लग गई है और आप उसी चाल से चल रहे हैं।" उस आदमी ने कहा कि मेरी चाल से मकान का क्या सम्बन्ध है ? और मकान के पीछे चाल बदल दें जिन्दगी भर की ? लग गई है ठीक है, लग गई है। अब मैं क्या करूंगा ? विद्यासागर ने घर आकर कहा कि मुझे वे कपडे नही पहनने हैं। जिन्दगी भर की चाल छोड़ दूं गवर्नर के लिए। एक आदमी जिसके मकान में आग लग गई है उसी चाल से जा रहा है, एक कदम नही बढा रहा है। लेकिन ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है और अगर मिल जाए तो वह श्रावक हो सकता है।

महावीर की सतत चेष्टा इसमें लगी कि कैसे मनुष्य श्रावक बने, कैसे सुनने वाला बने, कैसे सुन सके। और वह तभी सुन सकता है जब उसके चित्त की सारी विचार-परिक्रमा ठहर जाए। फिर बोलने की जरूरत नही। वह सुन लेगा। ऐसी जो न बोली लेकिन सुनी गई वाणी है, उसका नाम दिव्य ध्वनि है। बोली नही गई है लेकिन सुनी गई है। दी नही गई है लेकिन पहुँच गई है। सिर्फ भीतर उठी है और सम्प्रेषित हो गई है। तो श्रावक बनाने की कला खोजने के लिए बडा श्रम करना पडा। अब तो हम किसी को भी श्रावक कहते हैं। जो महावीर को मानता है वह श्रावक है। मगर महावीर के मरने के बाद श्रावक होना ही मुश्किल हो गया। असल में जो महावीर के सामने बैठा था वही श्रावक था। उसमें भी सभी श्रावक नही थे। बहुत से श्रोता थे। श्रोता कान से सुनता है, श्रावक प्राण से सुनता है। श्रोता को

शब्द बोले जाएँ तो वह सुन ले, जरूरी नहीं है। वह शब्द बोले, जरूरी नहीं है। महावीर ने श्रावक की कला को विकसित किया। यह बड़ी से बड़ी कला है जगत् में। क्योंकि जीसस लोगों को नहीं समझा पाए। उन्होंने सिर्फ इसकी फिक्र की कि मैं ठीक ठीक कहूँ। इसकी फिक्र ही नहीं की कि वह ठीक-ठीक सुन सकता है, या नहीं सुन सकता। मुहम्मद इसकी फिक्र नहीं कर रहे हैं कि वह सुन सकेगा या नहीं। वह इसकी फिक्र कर रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूँ वह ठीक होना चाहिए। वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन कहना ही ठीक होने से कुछ नहीं होता, सुनने वाला भी ठीक होना चाहिए। नहीं तो कहना व्यर्थ हो जाएगा। तुम कहोगे कुछ, सुना कुछ जाएगा, समझा कुछ जाएगा।

इसलिए मैं महावीर की दूसरी बड़ी देनों में से श्रावक बनने की कला को मानता हूँ। यह बड़े से बड़े योगदान में से एक है कि आदमी श्रावक कैसे बने। और तभी उन्होंने शब्द उठा दिया 'प्रतिक्रमण'। 'प्रतिक्रमण' शब्द श्रावक बनाने की कला का एक हिस्सा है। हमें ख्याल भी नहीं कि 'प्रतिक्रमण' का अर्थ क्या होता है ? 'आक्रमण' का अर्थ हम समझते हैं क्या होता है। आक्रमण से उल्टा मतलब होता है प्रतिक्रमण का। 'आक्रमण' का अर्थ होता है दूसरे पर हमला करना और प्रतिक्रमण का अर्थ होता है सब हमला लौटा लेना, वापस लौट जाना। हमारी चेतना आक्रामक है साधारणतः। प्रतिक्रमण का अर्थ है वापस लौट आना, सारी चेतना को समेट लेना वापस, जैसे सूर्य शाम को अपनी किरणों को जाल समेट लेता है ऐसे ही अपनी फैली हुई चेतना को मित्र के पास से, शत्रु के पास से, पत्नी के पास से, बेटे के पास से, मकान से और धन से वापस बुला लेना है। जहाँ-जहाँ हमारी चेतना ने खूँटियाँ गाड़ दी हैं और फैल गई है, उस सारे फैलाव को वापस बुला लेना है। प्रतिक्रमण का मतलब है वापस लौट आना। जाना है आक्रमण, लौट आना है प्रतिक्रमण। जहाँ जहाँ चेतना गई है, वहाँ वहाँ से उसे वापस पुकार लेना है कि 'आ जाओ'।

बुद्ध ने एक कहानी कही है। सांझ को नदी के तट पर कुछ बच्चे रेत के घर बना रहे हैं। बहुत से बच्चे हैं। कोई घर बनाता है, कोई गड्ढा खोदता है, किसी बच्चे का किसी के घर में पैर लग जाता है। और जहाँ इतने बच्चे हों वहाँ पैर लग जाना भी सम्भव है। किसी का घर गिर जाता है, मारपीट होती है, गाली गलौज होती है, बच्चे चिल्लाते हैं : मेरा घर मिटा दिया।

क्यों यहाँ पैर रख रहे हो। ये सब झगड़ते हैं, मारते हैं, पीटते हैं, फिर शान्त हो जाते हैं। और नदी के तट से कुछ दूर घर-घर से बच्चों की माँ पुकारती है "लौट आओ, लौट आओ। अब बहुत खेल हो गया" और बच्चे जो लड़ते थे इस पर कि मेरे घर पर लात मत मारना वे अब अपने ही घर को लात मार कर घर की ओर भागते हुए वापस लौट गए हैं। घर पड़े रह गए हैं टूटे-फूटे। नदी तट निर्जन हो गया है। बच्चे घर चले गए हैं अपने ही घर को लात मार कर जिस पर लड़े थे कि मेरा तोड़ मत देना। बुद्ध कहते हैं : ऐसा एक क्षण आता है जीवन में जब तुम रेत के घरों को लात मारकर खुद ही वापस लौट आते हो। इसका अर्थ है प्रतिक्रमण। और अगर इसका अभ्यास जारी रहे कि तुम रोज घड़ी भर को प्रतिक्रमण कर जाओ, सब तरफ से चेतनाओं को वापस बुला लो, सब रेत के घरो से आ जाओ वापस अपने भीतर, कही से सम्बन्ध न रखो, असंग हो जाओ तो प्रतिक्रमण हुआ। प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है। क्योंकि जब तुम लौटोगे ही नही, चेतनाओं को वापस नहीं लाओगे तो ध्यान कौन लगाएगा ? अभी तो चेतना ही नही है मौजूद, वह तो घर के बाहर गई हुई है, वह तो किसी दूसरे ओर भटक रही है, वह तो कही और जगह है। तुम चेतना को नही लौटाओगे तो ध्यान कैसे करोगे ?

प्रतिक्रमण है पहला चरण ध्यान का, सामायिक है दूसरा चरण। सामायिक अर्थात् ध्यान। सामायिक ध्यान से भी अद्भुत शब्द है। महावीर ने जो इस शब्द का उपयोग किया है, वह ध्यान से बेहतर है। ध्यान शब्द में कही दूसरा छिपा हुआ है। जैसे हम कहते हैं 'ध्यान मे आओ' तो आदमी कहता है 'किसके ध्यान में, किस पर ध्यान करें, कहाँ ध्यान लगाएँ।' ध्यान शब्द किसी न किसी रूप में पर-केन्द्रित है। उससे सवाल हुआ है 'किसका ध्यान।' सामायिक को महावीर ने बिल्कुल मुक्त कर दिया है। समय का मतलब होता है आत्मा और सामायिक का मतलब है आत्मा मे होना। प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा कि दूसरे से लौट आओ, सामायिक है दूसरा हिस्सा अपने में हो आओ। और जब तक दूसरे से न लौटोगे तब तक अपने में होओगे कैसे ? इसलिए पहली सीढी प्रतिक्रमण और दूसरी सीढ़ी सामायिक है। लेकिन वह जो बकवास प्रतिक्रमण के नाम से चलता है, वह प्रतिक्रमण नही है। उससे कोई मतलब हो नही है कि कितने देवी-देवता हैं और कहाँ कौन बैठा है, कितने योजन, क्या दूर है—इससे कोई मतलब हो नहीं है। यह तो दूसरे के लिए भटकना है।

प्रतिक्रमण बहुत अद्भुत बात है। वह चेतना को सब तरफ से असम्बन्धित कर देना है पत्नी, अब पत्नी नही है, बेटा, अब बेटा नहीं है, मकान, अब मकान नहीं है। शरीर, अब शरीर नहीं है। प्रतिक्रमण है सब तरफ से लौटा लेना; सब तरफ से काटते चले आना।

चेतना लौट आए अपने में तो फिर दूसरी बात शुरू होती है कि अब अपने में कैसे रम जाए क्योंकि न रम पाई तो फिर दूसरे में चली जाएगी। अगर बच्चे शाम घर भी लौट आए और अगर मां न रमा पाई तो बच्चे फिर लौट जाएंगे नदी के तट पर। वे फिर रेत के घर बनाएँगे। वे फिर खेलेंगे और फिर लड़ेंगे। लौट आना सिर्फ सूत्र है लेकिन लौट आते हैं तो रमें कैसे, ठहर कैसे जाएँ उसकी चिन्ता करनी है। अगर चिन्ता नही की तो लौट भी नहीं पाएँगे। तो प्रतिक्रमण सिर्फ प्रक्रिया है, स्वभाव नही। इसलिए कोई प्रतिक्रमण में ही रुकना चाहे तो वह नासमझी में है। चेतना इतनी शीघ्रता से आती है और इतनी शीघ्रता से लौट जाती है कि पता ही नही चलता। एक दफा सोचती है कि कहाँ मकान ? क्या मेरा ? लौटती है एक क्षण को। लेकिन यहां ठहरने को जगह नही पाती। पुन वही लौट जाती है। दूसरा सूत्र है सामायिक। वह हम कल बात करेंगे कि चेतना कैसे स्वयं में ठहर जाए। वह ख्याल में आ गया तो सब ख्याल में आ गया।

महावीर का जो केन्द्र है वह सामायिक है। सामायिक बड़ा अद्भुत शब्द है। दुनिया में बहुत शब्द लोगो ने उपयोग किए हैं लेकिन इससे अद्भुत शब्द का उपयोग नही हो सका कही भी। समय का अर्थ है आत्मा, सामायिक अर्थात् आत्मा में होना। इसमें कोई यह नही पूछ सकता कि सामायिक किसकी। पूछोगे तो वह गलत हो जाएगा। यह सवाल ही नही है। ध्यान हो सकता है किसी का। सामायिक किसकी होगी ? किसी की भी नहीं होगी।

१०

प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक २२ सितम्बर, १९६९

प्रतिक्रमण बहुत अद्भुत बात है। वह चेतना को सब तरफ से असम्बन्धित कर देना है पत्नी, अब पत्नी नही है, बेटा, अब बेटा नही है, मकान, अब मकान नही है। शरीर, अब शरीर नही है। प्रतिक्रमण है सब तरफ से लौटा लेना, सब तरफ से काटते चले आना।

चेतना लौट आए अपने में तो फिर दूसरी बात शुरू होती है कि अब अपने में कैसे रम जाए क्योंकि न रम पाई तो फिर दूसरे में चली जाएगी। अगर बच्चे शाम घर भी लौट आए और अगर माँ न रमा पाई तो बच्चे फिर लौट जाएगे नदी के तट पर। वे फिर रेत के घर बनाएँगे। वे फिर खेलेगे और फिर लड़ेंगे। लौट आना सिर्फ सूत्र है लेकिन लौट आते हैं तो रमें कैसे, ठहर कैसे जाएँ उसकी चिन्ता करनी है। अगर चिन्ता नही की तो लौट भी नही पाएँगे। तो प्रतिक्रमण सिर्फ प्रक्रिया है, स्वभाव नही। इसलिए कोई प्रतिक्रमण में ही रुकना चाहे तो वह नासमझी में है। चेतना इतनी शीघ्रता से आती है और इतनी शीघ्रता से लौट जाती है कि पता ही नहीं चलता। एक दफा सोचती है कि कहाँ मकान? क्या मेरा? लौटती है एक क्षण को। लेकिन यहां ठहरने को जगह नही पाती। पुन वही लौट जाती है। दूसरा सूत्र है सामायिक। वह हम कल बात करेंगे कि चेतना कैसे स्वयं में ठहर जाए। वह ख्याल में आ गया तो सब ख्याल में आ गया।

महावीर का जो केन्द्र है वह सामायिक है। सामायिक बड़ा अद्भुत शब्द है। दुनिया में बहुत शब्द लोगो ने उपयोग किए है लेकिन इससे अद्भुत शब्द का उपयोग नही हो सका कही भी। समय का अर्थ है आत्मा, सामायिक अर्थात् आत्मा में होना। इसमें कोई यह नही पूछ सकता कि सामायिक किसकी। पूछोगे तो वह गलत हो जाएगा। यह सवाल ही नहीं है। ध्यान हो सकता है किसी का। सामायिक किसकी होगी? किसी की भी नहीं होगी।

महावीर की साधना-पद्धति में केन्द्रिय शब्द है—सामायिक। यह शद बन्ना है समय से। पहले इस शब्द को थोड़ा-सा समझ लेना उपयोगी होगा।

पदार्थ का अस्तित्व है तीन आयामो में : लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई। किसी भी पदार्थ में तीन दिशाएँ हैं अर्थात् पदार्थ का अस्तित्व तीन दिशाओ में फैला हुआ है। अगर आदमी में हम इस पदार्थ को नापने जाएँ तो लम्बाई मिलेगी, चौडाई मिलेगी, ऊँचाई मिलेगी। अगर प्रयोगशाला में आदमी की काट-पीट करे तो जो भी मिलेगा, लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई में घटित हो जाएगा। लेकिन आदमी की आत्मा चूक जाएगी हाथ से। आदमी की आत्मा लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई की पकड़ में नही आती है। तीन आयाम हैं पदार्थ के। आत्मा का चौथा आयाम है। लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई—ये तीन दिशाएँ हैं जिनमें सभी वस्तुएँ आ जाती हैं। लेकिन आत्मा की एक और दिशा है जो वस्तुओ में नही है, चेतना की दिशा है। वह है समय जो अस्तित्व का चौथा आयाम है। वस्तु हो सकती है तीन आयामो में लेकिन चेतना कभी भी तीन आयामो में नहीं हो सकती। वह चौथे आयाम में हो सकती है। जैसे अगर हम चेतना को अलग कर लें तो दुनिया में सब कुछ होगा, सिर्फ समय नही होगा।

समझ ले कि इस पहाड़ पर कोई चेतना नही है तो पत्थर होंगे, पहाड़ होगा, चाँद निकलेगा, सूरज निकलेगा, दिन डूबेगा, ऊगेगा लेकिन समय जैसी कोई चीज नही होगी। क्योंकि समय का बोध ही चेतना का हिस्सा है। चेतना के बिना समय जैसी कोई चीज नही है। और अगर समय न हो तो चेतना भी नही हो सकती। इसलिए वस्तु का अस्तित्व है लम्बाई, चौडाई, ऊँचाई में, और चेतना का अस्तित्व है काल में, समय की धारा में। आइंस्टीन ने फिर

बहुत अद्भुत काम किया है इस तरफ। और उसने यह चारों आयाम जोड़कर अस्तित्व की परिभाषा की है। काल और क्षेत्र दो अलग चीजें समझी जाती रही हैं सदा से। समय अलग है, क्षेत्र अलग हैं। आइंस्टीन ने कहा ये अलग चीजें नहीं हैं। ये दोनों इकट्ठी हैं और एक ही चीज के हिस्से हैं। उसने काल और क्षेत्र को जोड़ दिया। ये अलग चीजें नहीं हैं। किसी भी चीज के अस्तित्व में तीन चीजें हमें ऊपर से दिखाई पड़ती हैं—लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई लेकिन अस्तित्व होगा ही नहीं। हम बता सकते हैं कि कौन सी चीज कहाँ है, किस जगह है। लेकिन अगर हम यह न बता सकें कि कब है तो उस वस्तु का हमें कोई पता नहीं चलेगा। तो आइंस्टीन ने अस्तित्व की अनिवार्यता मान लिया समय को। इस बात का पहला बोध महावीर को हुआ है कि समय चेतना की दिशा है। चेतना का कोई अस्तित्व अनुभव में भी नहीं आ सकता समय के बिना। समय का जो बोध है, जो भाव है, वह चेतना का अनिवार्य अंग है। अतः महावीर ने आत्मा को समय ही कह दिया।

इस बात में और भी बातें अन्तर्निहित हैं। इस जगत् में सब चीजें परिवर्तनशील हैं। सब चीजें क्षणभंगुर हैं। आज हैं, कल न होंगी। सब चीजें समय की धारा में बदलती हैं, मिटती हैं, बनती हैं। आज बनती हैं, कल बिखरती हैं, परसों विदा हो जाती हैं। सिर्फ इस जगत् की लम्बी धारा में समय भर एक ऐसी चीज है जो कभी नहीं बदलता, जो सदा है जिसके भीतर सब बदलाहट होती है। जो न हो तो बदलाहट न हो सकेगी। अगर समय न हो तो बच्चा बच्चा रह जाएगा, जवान नहीं हो सकेगा; कली कली रह जाएगी, फूल नहीं हो सकती। क्योंकि परिवर्तन की सारी सम्भावना समय में है। जगत् में सब चीजें समय के भीतर हैं और परिवर्तनशील हैं लेकिन समय अकेला 'समय' के बाहर है और परिवर्तनशील नहीं है। समय अकेला शाश्वत सत्य है जो सदा था, सदा होगा। और ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि जो न हो। क्योंकि किसी चीज के न होने के लिए भी समय जरूरी है। समय के बिना कोई चीज नहीं हो भी सकती। जैसे जन्म के लिए समय जरूरी है वैसे मृत्यु के लिए भी समय जरूरी है, बनने के लिए भी समय जरूरी है, मिटने के लिए भी समय जरूरी है। उदाहरण के लिए हम ऐसा समझें : यह कमरा है। इसमें से हम सब चीजें बाहर निकाल सकते हैं, या भीतर भर सकते हैं। लेकिन इस कमरे के भीतर जो जगह है उसे हम बाहर नहीं निकाल सकते। कोई उपाय नहीं है। चाहे मकान रहे, चाहे जाए, क्षेत्र तो रहेगा। मकान क्षेत्र में ही बनता

है और क्षेत्र में ही विलीन हो जाता है। लेकिन क्षेत्र रहेगा। ठीक ऐसे ही समझने की जरूरत है कि समय की जो धारा है, उस धारा में सब चीजें बनेंगी, मिटेंगी। जो तत्त्व है, सदा से है और सदा है वह समय है।

महावीर आत्मा को समय का नाम इसलिए भी देना चाहते है क्योंकि वही तत्त्व शाश्वत, सनातन, अनादि, अनन्त सदा से और सदा रहने वाला है। सब आएगा, जाएगा। वही भर सदा रहने वाला है। इस कारण भी वह आत्मा को समय का नाम देते हैं। और इस कारण से भी कि आम तौर से हमें ख्याल में नही है यह बात कि महावीर की दृष्टि इस सम्बन्ध में भी बहुत गहरी गई है। आम तौर से हम समय के तीन विभाग करते हैं. अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन यह विभाजन बिल्कुल गलत है। अतीत सिर्फ स्मृति में है और कही भी नही। और भविष्य केवल कल्पना में है और कही भी नही। है तो सिर्फ वर्तमान। इसलिए समय का एक ही अर्थ हो सकता है वर्तमान। जो है वही समय है। लेकिन अगर कोई पूछे कितना है वर्तमान हमारे हाथ में तो क्षण का कोई लाखो हिस्सा भी हमारे हाथ में नही है। जो क्षण का अन्तिम हिस्सा हमारे हाथ में है, उसको महावीर समय कहते हैं। जैसे कि पदार्थ को वैज्ञानिकों ने तोडकर अन्तिम परमाणु पर ला दिया है और अब परमाणु को भी तोड कर इलैक्ट्रोन पर ला दिया है। इलैक्ट्रोन वह हिस्सा है जो अन्तिम खण्ड है, जिसके आगे और खन्ड सम्भव नही है। क्योंकि वैज्ञानिक पदाथ का विश्लेषण कर रहा है, इसलिए उसने पदार्थ के अन्तिम खण्ड को पकडने की कोशिश की है। और महावीर चेतना का विश्लेषण कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने चेतना के अन्तिम खण्ड अणु को पकडने की कोशिश की है। उस अन्तिम अणु का नाम 'समय' है। 'समय' एक विभाजन है वर्तमान क्षण का जो हमारे हाथ में होता है। लेकिन वह छोटा हिस्सा है। जैसे अणु दिखाई नहीं पडता है, परमाणु दिखाई नही पडता है, ऐसे ही क्षण का वह हिस्सा भी हमारे बोध में नही आ पाता। जब वह हमारे बोध में आता है तब तक वह जा चुका होता है। तो इतना बारीक हिस्सा है, इतना छोटा टुकडा है कि जब हम जागते हैं तब तक वह जा चुका होता है। यानी हमारे होश से भरने में भी इतना समय लग जाता है कि समय जा चुका है। जैसे इस क्षण हमारे हाथ में क्या है? अतीत नही, वह जा चुका। भविष्य अभी आया नहीं। दोनों के बीच में एक बारीक बाल के हजारवें हिस्से का छोट सा टुकडा हमारे हाथ में होगा। लेकिन वह इतना छोटा टुकडा है कि जब हम बोध से भरेंगे उसके

प्रति कि यह रहा वर्तमान तब तक वह जा चुका है, तब तक वह अतीत हो चुका है।

तो महावीर आत्मा को 'समय' इस अर्थ में भी कह रहे हैं कि जिस दिन आप इतने शांत हो जाएँ कि वर्तमान आपकी पकड़ में आ जाए, उस दिन आप सामायिक में प्रवेश कर गए। इसका मतलब यह हुआ कि इतना शांत चित्त चाहिए, इतना शांत, इतना निर्मल कि वर्तमान का जो क्षण है अत्यल्प, छोटा सा क्षण, वह भी झलक जाए। अगर वह भी झलक जाए तो समझना चाहिए कि हम सामायिक को उपलब्ध हुए। यानी समय के अनुभव को उपलब्ध हुए, समय को हमने जाना, देखा और अनुभव किया। अब तक हमने समय को अनुभव नहीं किया है। हम कहते हैं कि हमारे पास घड़ी है। हम समय नापते भी हैं। हम बताते भी हैं कि इस समय इतना बजा है। लेकिन जब हम कहते हैं—"इतना बजा है, वह बज चुका है।" जब हम कहते हैं कि इस वक्त आठ बजा है जितनी देर में हमने यह कहा कि आठ बजा उतनी देर में आठ बज चुका। घड़ी आगे जा चुकी। जरा क्षण भी सरक गई, आगे हो गई। यानी हम जब भी कुछ कह पाते हैं, अतीत का ही कह पाते हैं। जब भी पकड़ पाते हैं, अतीत को ही पकड़ पाते हैं। ठीक वर्तमान हमारे हाथ से चूक जाता है। और अतीत कल्पना स्मृति है सिर्फ। वह है नहीं यहाँ। है वर्तमान। जो है, अस्तित्व जो है, वह अभी एक समय का है। और उस एक समय का हमें कोई बोध नहीं क्योंकि हम इतने व्यस्त हैं, इतने उलझे और अशांत हैं कि उस छोटे से क्षण की हमारे मन पर कोई छाप नहीं बन पाती। न हमें वह दिखाई पड़ता है। उससे हम चूकते ही चले जाते हैं। समय से निरन्तर चूकते चले जाते हैं। तो हम अस्तित्व से परिचित कैसे होंगे, क्योंकि जो अस्तित्व है समय भी वही है, बाकी सब या तो हो चुका या अभी हुआ नहीं। जो है, उससे ही प्रवेश करना होगा। और उसका हमें बोध ही नहीं हो पाता, उसे हम पकड़ ही नहीं पाते। तो महावीर इसलिए भी आत्मा को समय कहते हैं कि तुम आत्मा को उपलब्ध तब हुए जब तुम समय का दर्शन कर लो। उसके पहले तुम आत्मा को उपलब्ध नहीं हो। क्योंकि जब तुम अस्तित्व का ही अनुभव नहीं कर पाते तो तुम्हारे अस्तित्व का मतलब क्या है? आत्मा तो सबके भीतर है सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। जैसे एक बीज में छुपा हुआ है वृक्ष—एक सम्भावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। बीज वृक्ष हो सकता है। हम भी आत्मा हो सकते हैं। जब हम कहते हैं कि सबके भीतर

आत्मा है तो उसका मतलब सिर्फ इतना है कि हम भी आत्मा हो सकते हैं, अभी हैं नही। और हम उसी क्षण आत्मा हो जाएँगे जिस दिन अस्तित्व आमने-सामने हमारे हो जाएगा, उसी क्षण जब हम अस्तित्व को देखने, जानने, पहचानने में समर्थ हो जाएँगे। उसके पहले हम अस्तित्ववान् नही हैं।

इसे दूसरी तरह भी समझा जा सकता है : अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं, वर्तमान आत्मा का हिस्सा है। मन हमेशा अतीत और भविष्य में रहता है, पीछे या आगे। यहाँ, इसी वक्त, अभी, अब—ऐसी कोई चीज मन में नही होती। मन संग्रह है अतीत का और भविष्य की योजनाओ का। मन जीता है अतीत और भविष्य मे। अतीत और भविष्य के बीच मे एक अत्यन्त सूक्ष्म रेखा है जो दोनो को तोडती है। वह वर्त्तमान है। और वह इतनी बारीक है कि उस बारीक रेखा के अनुभव के लिए हमें अत्यन्त शात होना जरूरी है। जरा सा कम्पन हुआ कि हम चूक जाएँगे। जरा सा भी कम्पन हुआ भीतर कि निकल जाएगी रेखा। हमारा कम्पन उसे पकड नही पाएगा। इसलिए अकम्प चेतना जिस दिन हो जाए, तब समय के क्षण का छोटा सा दर्शन भी हमे होगा। वह दर्शन हमें अस्तित्व में उतार देता है यानो ऐसा समझें कि वर्तमान का क्षण ही द्वार है अस्तित्व मे प्रवेश का। ब्रह्म में प्रवेश कहें, सत्य में प्रवेश कहें, मोक्ष मे प्रवेश कहें, कुछ भी कहें, वर्तमान के क्षण से हम प्रविष्ट होते हैं। वही है द्वार। और वह चूक-चूक जाता है।

एक कहानी मैंने सुनी। एक अधा आदमी एक बडे भारी राजभवन में भटक गया है। बडा है भवन। हजारो द्वार हैं उस भवन में। लेकिन एक ही द्वार खुला है। सब द्वार बन्द हैं। वह अधा आदमी द्वारो को टटोलता-टटोलता भटक रहा है कि शायद कोई द्वार खुला मिल जाए। बस पहुँचा जा रहा है खुले द्वार के करीब। ऐसे हजारो द्वार टटोलता-टटोलता वह थक गया है। और जब वह ठीक उस द्वार पर पहुँचा है जो खुला है तो उसे खुजान उठ गई है। उसने माथे पर खुजाया है और वह द्वार फिर चूक गया है। तब फिर हजारो द्वार हैं और वह फिर टटोल रहा है। मीलों के चक्कर के बाद वह फिर उस द्वार पर आया है लेकिन इतना थक गया है टटोलते-टटोलते कि उसने टटोलना बन्द कर दिया है। वह ऊब गया है। वह टटोलना छोड देता है। आखिर है भी वह द्वार कि नही। लेकिन इतने में वह द्वार फिर निकल गया है। लेकिन क्या करेगा अंधा आदमी ? निकलना है तो ऊबे या न ऊबे। फिर

टटोलना शुरू करता है। ऐसे वर्षों बीत जाते हैं और वह अन्धा आदमी बार-बार उस खुले द्वार के पास से आकर चूक जाता है।

यह एक कहानी है। हजारों जन्मों तक हम समय के द्वार को टटोलते हुए घूम रहे हैं कि कहां से द्वार मिल जाए मोक्ष का, कहाँ से द्वार मिल जाए जीवन का, कहाँ से द्वार मिल जाए आनन्द का। टटोलते आते हैं मगर या तो हम बन्द द्वार टटोलते हैं जो अतीत के हैं जो बन्द हो चुके हैं या हम भविष्य के द्वार टटोलते हैं जो हैं ही नही। जो हैं नही उनको हम टटोल नही सकते; जो नहीं हो गए हैं उनको भी हम टटोल नही सकते। लेकिन एक द्वार जो खुला है वर्त्तमान का, वह बार-बार चूक जाता है। उस वक्त या तो हम माथा खुजाने लगते हैं या कुछ और करने लगते हैं और वह चूक जाता है। मतलब यह कि जब भी उस द्वार पर हम आते हैं, हम किसी और चीज में व्यस्त होते हैं। वर्त्तमान के क्षण में हम सदा व्यस्त है, इसलिए चूक जाते है। इसलिए सामायिक का अर्थ है अव्यस्त होना। कुछ भी नही कर रहे हैं, कुछ भी नहीं सोच रहे है तो ही उस समय को हम पकड पाएँगे क्योंकि हम कुछ कर रहे हैं तो चूक जाएँगे। उतनी देर में तो वह निकल गया। वह निकलता ही चला जा रहा है।

महावीर ने यह नाम बड़े गहरे प्रयोजन से दिया है। वह तो यही कहने लगे कि समय ही आत्मा है और समय को जान लो, समय में खड़े हो जाओ, समय को पहचान लो और देख लो तो तुम अपने को देख लोगे, अपने को पहचान लोगे। लेकिन समय को जानना ही बहुत मुश्किल बात है। सबसे ज्यादा कठिन है वर्त्तमान मे खड़े होना क्योंकि हमारी पूरी आदत या तो पीछे होने की होती है या आगे होने की होती है। एक आदमी को पूछो कि तुम क्या कर रहे हो। या तो तुम उसे अतीत में पाओगे, या भविष्य में पाओगे। या तो वह उन दृश्यों को देख रहा है जो आ चुके हैं या उन दृश्यों को सोच रहा है जो आएँगे। लेकिन शायद ही कभी किसी व्यक्ति को पाओगे कि वह कहे कि मैं कुछ भी नही कर रहा हूँ। ऐसा आदमी नही मिलेगा। ऐसा आदमी मिल जाए तो समझना कि वह सामायिक में था उस वक्त। उस क्षण में वह कही भी व्यस्त नही था। बस था। जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, बस हैं, कुछ भी नही कर रहे हैं, मंत्र भी नहीं जप रहे है, श्वास भी नही देख रहे हैं, सामायिक में हैं। जिसे मैं श्वास देखने के लिए कहता हूँ वह सामायिक नही है। यह सिर्फ इसलिए कह रहा हूँ कि जिससे आपकी व्यर्थ की दूसरी व्यस्तताएँ छूट जाएँ। एक ही व्यस्तता रह जाए कम से कम तब मैं कहूँगा कि इससे भी छलांग लगा जाएँ। इतनी

बहुत सी व्यस्तताएँ टूट गईं। एक ही व्यस्तता रह गई कि श्वास ही देखना है। अब यह ऐसी व्यस्तता है कि न इससे कोई धन कमाई का उपाय है, न इससे कोई लाभ है। यह एक ऐसी व्यस्तता है जिससे छलांग लगाने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। यह एक ऐसी व्यर्थ व्यस्तता है कि अगर आप सबसे छूट गए तो इससे छूटने में देर नही लगेगी। जैसे मैं कहूँगा 'छोड़ें !' आप तो तैयार ही थे कि अब इसको छोड़ें। यह अभी सामायिक नही है। यह सामायिक के पहले की सीढ़ी है—सिर्फ छलांग लगाने की। जैसे नदी का किनारा है। वहाँ तख्ता लगा हुआ है जिस पर खड़े होकर छलांग लगाई जाती है। अगर आप यहाँ पहुँच गए हैं तो अब एक ही छलांग में आप सागर में पहुँच सकते हैं।

जब तक हम कुछ भी कर रहे हैं तब तक हम चूकते जाएँगे वर्तमान से। जब हम कुछ भी नही करते तब हम उतर जाएँगे। लेकिन यह हमारी समझ से एकदम बाहर हो जाता है कि कोई ऐसा मौका भी हमें मिले जब हम कुछ भी नही कर रहे, बस हैं। और अगर यह समझ में आ जाए तो कोई कठिनाई नहीं है। इसमें क्या कठिनाई है कि कुछ क्षणों के लिए आप 'बस' हो जाएँ और कुछ न करें ? कमरे में पड़े हैं, कोने में टिके है, सिर्फ हैं। कुछ भी नही कर रहे हैं। बस है। आखिर होना इतना कठिन क्या है ? वृक्ष हैं, पत्थर है, पहाड़ हैं, चाँद-तारे हैं, सब हैं और शायद वे इसलिए सुन्दर हैं कि समय में कही गहरे डूबे हुए हैं। हम शायद इसीलिए इतने कुरूप हैं, इतने परेशान, चिन्तित, दुखी और हैरान हैं क्योंकि समय से भागे हुए हैं, समय के बाहर छिटक गए है। जैसे जीवन के मूल स्रोत से कही झटका लग गया है, जड़ें उखड़ गई हैं, हम कही और हैं।

दो तरह की क्रियाएँ हैं। एक तो हमारे शरीर की क्रियाएँ हैं जो हमारी निद्रा में शिथिल हो जाती हैं, बेहोशी में बन्द हो जाती हैं। शरीर की क्रियाओं को रोकना बहुत कठिन नही है। शरीर की क्रियाओं से कोई गहरी बाधा नही है। उसके भीतर हमारे मन की क्रियाएँ हैं। वही हैं असली बाधाएँ क्योंकि वही हमें समय से चुकाती हैं। शरीर नही चुकवाता हमें समय से। शरीर का अस्तित्व तो निरन्तर वर्तमान में है। यह ध्यान रहे कि लोग आम तौर पर साधक होने की स्थिति में शरीर के दुश्मन हो जाते हैं जबकि शरीर बेचारे की कोई दुश्मनी ही नही है। शरीर तो निरन्तर समय में है। शरीर तो एक क्षण भी न अतीत में जाता, न भविष्य में जाता है। शरीर वही है जहाँ है। शरीर ने कभी भी किसी आदमी को नही भटकाया है आज तक। भटकता

है मन क्योंकि मन कहीं-कहीं जाता है। जहाँ नहीं है वहाँ जाता है। रात आप सोते हैं शरीर होगा श्रीनगर में, मन कहीं भी हो सकता है। आप दिन में बैठे हैं, शरीर है चश्मेशाही[1] पर मन कहीं हो सकता है। मगर शरीर सदा वहीं है जहाँ है। लेकिन साधक आम तौर से शरीर से दुश्मनी साध लेता है, जिसने कभी कोई नुकसान पहुँचाया ही नहीं। साधक का गहरे अर्थों में जो प्रयोग है वह होना चाहिए मन पर। किसी न किसी तरह उसे अ-मन की स्थिति में पहुँचना है। कबीर उसे कहते हैं 'अमनी' यानी ऐसी अवस्था में पहुँच जाना जहाँ मन नहीं है। अब यह बड़े मजे की बात है कि मन होगा तो क्रिया होगी; क्रियाँ होगी तो मन बना रहेगा। मन किसी भी तरह की क्रिया के लिए राजी है। आप कहें : दूकान करो। तो वह कहता है : ठीक है, दूकान करते हैं। आप कहें : दूकान नहीं, पूजा करनी है। तो वह कहता है : चलो पूजा करो। मन कहता है : कुछ भी करो, हम राजी हैं क्योंकि करने मात्र में मन बच जाता है। आप कहते हैं कि मंत्र जपो तो वह कहता है : चलो हम राजी हैं। कोई भी क्रिया करो तो मन राजी है। लेकिन मन से कहो कि हम कुछ भी नहीं करना चाहते, तो मन बिल्कुल राजी नहीं है। वह पूरी कोशिश करेगा आपको कुछ न कुछ करवाने की। वह कहेगा कि कम से कम इतना ही करो कि मन से लड़ो। विचारों को निकाल कर बाहर करो, उन्हें आने मत देना। मन कहेगा : ध्यान करो। लेकिन कुछ करो जरूर क्योंकि बिना किए काम नहीं चल सकता।

जापान का एक सम्राट् एक झेन मन्दिर को देखने गया। बड़ी मॉनेस्ट्री है, बड़ा आश्रम है। पहाड़ों पर दूर तक फैले हुए भवन हैं। बीच में बड़ा पगोडा है। सम्राट् द्वार पर ही उस आश्रम के बूढ़े प्रधान भिक्षु को कहता है कि मैं देखने आया हूँ आप यहाँ क्या करते हैं। एक-एक जगह मुझे दिखा दें कि कहाँ क्या करते हैं। वह बूढ़ा ले जाता है जहाँ भिक्षु स्नान करते हैं। वह कहता है : यहाँ भिक्षु स्नान करते हैं। सम्राट् कहता है कि इन सब फिजूल की बातों को मुझे मत दिखाएँ। असली चीज जहाँ करते हों वह बताइए। फिर वह दूसरी ओर ले जाता है। और कहता है : भिक्षु यहाँ फलाँ-फलाँ काम करते हैं। सम्राट् कहता है : क्यों आप बेकार की बातों में मेरा समय नष्ट कर रहे हैं। मैं पूछता हूँ कि भिक्षु कहाँ जरूरी चीजें करते हैं? भिक्षु कहता है यहाँ हम अध्ययन करते हैं, यह पुस्तकालय है। यहाँ भोजन करते हैं, यह भोजन-

१ श्रीनगर का वह स्थान जहाँ भगवान् श्री के ये प्रवचन हुए।

शाला है। यहाँ व्यायाम करते हैं, यह व्यायामशाला है। सम्राट् कहता है कि क्यो तुम फिजूल की बातों में मुझे भटका रहे हो ? बीच में जो बडा भवन है, वहाँ क्या करते हैं ? जब सम्राट् उससे यह पूछता है तो भिक्षु मौन हो जाता है जैसे कि वह बहरा हो। सुनता ही नही। दूसरी बातें बताने लगता है। कहता है यहाँ बगीचा लगाते हैं, यहाँ शाम को टहलते हैं। फिर सम्राट् पूछता है : यह सब मैं समझ गया। यह सब ठीक है। वहाँ क्या करते हैं, उस बड़े भवन में क्या करते हैं ? तब भिक्षु चुप हो जाता है जैसे कोई प्रश्न पूछा ही नही। सम्राट् ऊकता गया है, परेशान हो गया है, दरवाजे पर वापस आ गया है, अपने घोडे पर सवार हो गया है, और कहता है कि या मैं पागल हूँ या तुम पागल हो। यह बडा भवन जो दिखाई पड रहा है इसमें क्या करते हो ? बोलते क्यो नही ? तो वह भिक्षु कहता है : आप मुझे बडी मुश्किल में डाल देते हैं। असल में वह जगह ऐसी है जहाँ हम कुछ नही करते और आप पूछते हैं क्या करते हो ? अगर मैं कहूँ कुछ करना, तो गल्ती हो जाए या मैं चुप रह जाऊँ। क्योंकि आप करने की भाषा समझते हो इसलिए मैंने स्नानगृह दिखलाया, अध्ययनकक्ष दिखलाया, जहाँ हम कुछ करते हैं। आप पूछते हैं . वहाँ क्या करते हो ? तो मैं एकदम चुप हो जाता हूँ क्योंकि वहाँ हम कुछ करते ही नही। जिसे करना है, उसको वहाँ जाने की मनाही है। वहाँ करने की भाषा नही चलती। वहाँ जब किसी को कुछ भी नही करना होता तो कोई चुपचाप चला जाता है। वह हमारा ध्यान भवन है। तो सम्राट् कहता है . समझ गया। वहाँ तुम ध्यान करते हो। भिक्षु कहता है कि भूल हुई जाती है क्योंकि ध्यान का अर्थ ही है कुछ न करना।

जब तक हम कुछ कर रहे हैं तब तक ध्यान नही हो सकता लेकिन 'ध्यान' शब्द में भी क्रिया जुडी हुई है। 'सामायिक' शब्द में वह क्रिया भी नही है। 'ध्यान' से लगता है कुछ करने की बात है। 'सामायिक' में करने को कुछ नही रह जाता। 'सामायिक' का मतलब है—अपने में होना, 'समय' में होना। करना नहीं है वहाँ होना है सिर्फ। हम सब हैं बाहर-बाहर। कुछ न कुछ कर रहे हैं। ऐसा कभी नही है जब हम कुछ भी न कर रहे हो। आकाश में कभी देखा होगा चील को तैरते हुए। जब चील तैरती है तब पंख भी नही हिलाती। सिर्फ हवा पर रह जाती है वह। वैसा ही कुछ होता है हमारे भीतर भी, जब हम सिर्फ तुल जाते हैं, पंख भी नही हिलाते, कुछ भी नही करते भीतर, तब सन्नाटा हो जाता है। वह केवल होने की स्थिति है, क्रिया की नही है। वहाँ हम सिर्फ होते हैं, कुछ भी नहीं करते। उस स्थिति का नाम है 'सामायिक'।

इसलिए जब कोई पूछता है कि 'सामायिक' कैसे करें तो इससे और गलत सवाल दूसरा नही पूछ सकता। इससे ज्यादा गलत सवाल दूसरा नही हो सकता।

हमारी सारी भाषा चिन्तना 'करने' पर खडी है। 'न करने' का हमे कोई ख्याल ही नही है। लेकिन हम करने में अपने स्वभाव को कभी नही जान सकेंगे ? क्योंकि 'करना' सदा दूसरे के साथ है। सूक्ष्मतम तलो पर, जब भी हम कुछ कर रहे हैं, सदा और के साथ कर रहे है। और जब हम कर्ता बन रहे हैं तब हम कुछ और बन रहे हैं जो हम नही है। तब हम कोई अभिनय अपने ऊपर ले रहे हैं जो हम नही हैं। जैसे एक आदमी दूकानदार बन रहा हैं। यह एक अभिनय है जो वह अपने ऊपर ले रहा है। दूकानदार होना जीवन के एक बडे नाटक में उसका अभिनय है। एक आदमी शिक्षक है, एक आदमी नौकर है। यह अभिनय है जो आदमी ले रहे हैं। जिन्दगी के बड़े नाटक में हम यह भूल जाएँगे कि हम कुछ और थे जिन्होने यह अभिनय स्वीकार किया था। धीरे-धीरे अभिनय से तादात्म्य हो जाएगा। दूकानदार को फिर बडा मुश्किल है दूकानदार न हो जाना एक क्षण भर भी।

मैं कलकत्ते मे एक घर में मेहमान था। उस घर की पत्नी ने कहा कि उसका पति चीफ़ जस्टिस है हाईकोर्ट का। क्योंकि वह आपको सुनते हैं, समझने की कोशिश करते हैं, कृपा करके इतना इनसे कह दें कि कभी-कभी चीफ जस्टिस न हो जाएँ तो बड़ा अच्छा रहे। वे चौबीस घंटे चीफ़ जस्टिस हैं। उनकी वजह से हम बडे परेशान हैं। वह घर में घुसते हैं और घर एकदम अदालत हो जाता है। बच्चे संभल कर बैठ जाते हैं। काम व्यवस्थित रूप मे होने लगता है : चीफ जस्टिस आ गए। तब यह आदमी भूल गया है कि वह नाटक है। वह शान्त हो ही नही रहा कभी। हम जानते हैं भली भांति कि कपडे का दूकानदार रात मे चादर भी फाड देता है सपने में। ग्राहकों को बेच देता है सामान। नींद खुलती है तब पता चलता है कि उसने चादर फाड दी। वह दिन भर कपडा फाड रहा है, फ़ाड रहा है। सपने मे भी वही कर रहा है। सपने में हम वही होते हैं जो हम चौबीस घंटे दिन में हैं। हम करेंगे क्या ? हमारी क्रिया ने हमारे सारे व्यक्तित्व को चारों ओर से घेरा हुआ है। ऐसा कभी नहीं, जबकि हम बिल्कुल शांत हों, वही हैं जो हैं और कुछ अंगीकार नहीं कर रहे, कुछ ग्रहण नहीं कर रहे क्योंकि जब भी हम कुछ करेंगे, अभिनय शुरू हो जाएगा। और ध्यान रहे जब तक हम॰

अभिनय में हैं तब तक हम आत्मा में नहीं हो सकते। आत्मा में अगर होना है तो सब तरह के मंचों से नीचे उतरना होगा। अभिनय बदल लेना आसान है। एक दूकानदार सन्यासी हो सकता है। तब वह एक नई दूकान खोल लेगा। वह संन्यासी होने के अभिनय में पड जाएगा। लेकिन समस्त अभिनयो से कभी घड़ी भर बाहर उतर आना, जब कि आत्मा न दूकनदार रहे, न सन्यासी रहे, न गृहस्थ रहे, न पिता रहे, न माँ रहे, न बेटा रहे, न पति रहे, न पत्नी रहे और आप सब क्रिया और सब अभिनय को उतार कर एक तरफ रख देना और वही हो जाना जो आप थे जन्म के पहले और हो जाएँगे मरने के बाद।

'झेन फकीर लोगों से कहते हैं कि तुम आँख बन्द करके एक काम करो, कोशिश करो खोजने की कि जब तुम जन्में नही थे तुम्हारा चेहरा कैसा था? कहते हैं कि तुम उठकर एक अधेरे कमरे में बैठ जाओ और इसकी खोज करो। वह आदमी जाता है, सोचता है, कोशिश करता है क्योंकि हम सबको ख्याल है कि चेहरा हर हालत में रहना ही चाहिए। और हमें यह ख्याल ही नही है कि कोई एक भीतर भी है जहाँ कोई चेहरा नही है। तो वह आदमी खोजता है कि मेरा मूल चेहरा क्या है, परेशान हो जाता है, थक जाता है कि जब पैदा नहो हुआ था तो मैं कौन था, मेरा चेहरा कैसा था। आकर बार-बार खबर देता है कि शायद ऐसा था तो झेन फकीर कहता है कि यह तो तुम इसी चेहरे को नकल बता रहे हो। यह तो इसी चेहरे से मिलता-जुलता है जो तुम कह रहे हो। यह कहाँ था माँ के पेट में? माँ के पेट के पहले कहाँ था? जरा और खोजो। तब खोज चलती है। किसी दिन विस्फोट होता है और उसे ख्याल आता है कि मेरा भीतर कोई चेहरा है भी? चेहरे तो सब बाहर से लिए हुए है, सब मुखौटे है। बाजार से एक आदमी मुखौटा खरीद कर चोर बन जाता है तो हम उस पर हँसते हैं। और हम माँ-बाप से कहकर एक चेहरा ले आते हैं खरीद कर और बडे प्रसन्न है। और सोच रहे हैं यह चेहरा मेरा है। इसी तरह यह चेहरा भी गहरी दुनिया के बाजार से खरीदा गया है, ठेठ बाजार से नही लाया गया लेकिन फिर भी बाहर से लाया गया है। भीतर कोई चेहरा नही है, कोई नाम नही, कोई क्रिया नही, कोई अभिनय नही।

तो अगर स्वभाव को जानना हो जो मैं हूँ, उसे ही जानना हो तो मुझे सारी क्रिया, सारे चेहरे, सारे अभिनय छोडकर थोडी देर बाहर खड़े हो जाना पड़ेगा। इस थोड़ी देर को बाहर खड़े हो जाने का नाम सामायिक है। और एक बार मुझे पहचाना जाए कि मेरा कोई नाम नही, चेहरा नही, शरीर

नहीं, कर्म नही, कोई अभिनय नही, मात्र होना है, अस्तित्व मात्र मेरा स्वभाव है और जानना मात्र मेरी प्रकृति है तो एक मुक्ति, एक विस्फोट होगा। यह विस्फोट व्यक्ति को जीवन के समस्त चक्कर के बाहर तत्क्षण खडा कर देता है। और उसे लगता है कि मैं अभिनय में था और इसलिए यह एक चक्कर था, एक खेल था। अभिनय में ऐसी भूल हो जाती है और कई बार ख्याल भी नही रहता क्योंकि अभिनय को हम जन्म के साथ ही पकड लेते हैं। हमारी सारी सभ्यता, सारी संस्कृति, सारी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसका ठीक अभिनय देने की है। यानी एक-एक आदमी को उसका ठीक-ठीक अभिनय मिल जाए उनकी सारी व्यवस्था है। हमारी पूरी व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक चेहरा मिल जाए, एक काम मिल जाए, एक अभिनय मिल जाए, नाटक में काम करे, चेहरा निभाए और जिन्दगी गुजार दे। जिस आदमी को चेहरा न मिल पाए, अभिनय न मिल पाए हम कहते हैं वह आदमी भटक गया, खो गया है। उसके पास न कोई काम है, न कोई चेहरा है। वह क्या करता है, कुछ पता नही चलता। वह कौन है कुछ पता नही चलता। तो हम उन आदमियों को सफल कहते हैं जो आदमी इस अभिनय में जितना तादात्म्य कर लेते हैं और जितने गहरे उतर जाते हैं।

एक चित्रकार था—गोगां। वह चालीस वर्ष की उम्र तक दलाल रहा। और खूब कमाया उसने। पत्नी थी, बच्चे थे और कभी किसी ने सोचा नही था कि गोगा एक रात घर से नदारद हो जाएगा। रात सोया था पत्नी को नमस्कार करके, बच्चों को प्रेम करके और आधी रात कब चला गया घर से पता नहीं चला। न कभी उसे किसी दूसरे स्त्री में उत्सुक देखा गया था कि पत्नी यह विचार करे कि कही भाग गया किसी स्त्री के साथ। न किसी क्लब में, न किसी शराब में, न किसी जुए में, उसे कोई उत्सुकता थी। बडा सीधा-सादा आदमी था। कमाता था, घर का काम करता था, बच्चों से प्रेम था, पत्नी से प्रेम था। कोई कभी झगडा नही हुआ था, कोई घटना न घटी थी। अचानक वह आदमी रात कहीं नदारत हो गया, दो साल तक पता न चला। दो साल बाद पता चला कि वह पेरिस में एक चित्रकार के पास चित्रकला सीख रहा है। घर के लोग भागे गए। पत्नी भागी गई, कहा : तुम्हें क्या हो गया, तुम आए क्यों ? तो उसने कहा कि ऐसा ख्याल आ गया कि क्या जिन्दगी भर दलाल होने का ही अभिनय करता रहूंगा ? उसकी पत्नी ने कहा : यह मेरी कुछ समझ में नही आता। इसका क्या मतलब है ? उसने कहा कि इसका मतलब

यह है कि मैंने सोचा कि यह कोई मेरा चेहरा तो नही है। यह तो ग्रहण किया हुआ चेहरा है। बदल ले चेहरे को। तो उन्होंने कहा कि 'हम बच्चे और पत्नी।' उसने कहा : "तुम्हारे लिए मैं इन्तजाम कर आया हूँ। लेकिन अब मैं किसी का पति नही हूँ, किसी का बाप नही हूँ।" कोई जिन्दगी भर बाप ही बना रहूँ और पति ही बना रहूँ? किसी की समझ में नही आया और उन्होने समझा कि आदमी पागल हो गया है। दस वर्ष निरन्तर मेहनत करके वह दुनिया के श्रेष्ठतम चित्रकारो में एक हो गया है। लेकिन एक दिन अचानक लोगों ने पाया कि जब उसके चित्र लाखो में बिकने लगे तो वह छोडकर चला गया। किसी ने उससे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो गई है, इतना तुमने श्रम किया है। तो उसने कहा कि कोई भी अभिनय मेरा स्वभाव नही है। मैं अपने चेहरे की खोज में लगा हूँ। मैं किसी नकली चेहरे को पकडना नही चाहता।

मैं आपसे यह नही कह रहा हूँ कि आप जो कर रहे हैं, उसे छोडकर भाग जाएँ। कह रहा हूँ कुल इतना कि जो चेहरा आपने सख्त, मजबूती से पकड लिया है वही आप हैं इस भ्रम में न पडे। वह आपके होने का एक ढोंग है। होना नही है। वह आपकी जीवन-पद्धति का, अभिनय का एक रूप है। जो आप कर रहे हैं, वह जरूरी है करेंगे। करना है। लेकिन आपकी न करने की भी कोई अवस्था होनी चाहिए जहाँ आप कुछ भी नही कर रहे हैं, जहाँ सारे सम्बन्ध, सारी क्रियाएँ, सारे अभिनय क्षीण हो गए हैं, आप ही रह गए हैं बस अपने होने मे। ऐसा जो क्षण उपलब्ध हो जाए तो समय का बोध शुरू होता है, और व्यक्ति स्वयं में स्थिर हो जाता है, रुक जाता है। और वह अनुभूति एक बार भी मिल जाय तो दुबारा कभी खोती नहीं। फिर आप कितना ही कुछ करते रहें, आप प्रत्येक करने में जानते हैं कि यह अभिनय है। थोडी देर के बाद उतर कर घर चले जाना है। यह स्मृति इतनी साफ हो जाती है कि फिर आप अभिनेता होने से तादात्म्य नही कर लेते हैं अपना। अभिनय जीवन व्यवस्था का अंग हो जाता है। लेकिन अभिनय के बाहर आपकी सत्ता की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।

कृष्ण के जीवन व्यवहार को जो नाम दिया है, वह है 'लीला'। 'लीला का मतलब है खेल, नाटक जो सच्चा नही, माना हुआ है। जो व्यक्ति सामायिक को उपलब्ध हो जाएगा उसका जीवन लीला हो जाएगा। वह चरित्र नहीं रह जाएगा। इसलिए राम के जीवन को हम 'लीला' नही कहते। वह एक

चरित्र है। वहां नीति की पकड़ गहरी है। वहां अभिनय भारी है। लेकिन कृष्ण के मामले को हम कहते हैं—'लीला।' क्योंकि वहां चीजें तरल हैं; पकड़ नहीं है। सब खेल है। और भीतर एक आदमी बाहर खड़ा है जो खेल के बिल्कुल बाहर है। क्या ऐसा कर सकते हैं आप कि क्षण भर खेल के बाहर उतर आएं, वे वस्त्र उतार दें जो नाटक के मंच पर पहने थे, वे चेहरे भी निकाल दें, वह मेकअप भी हटा दें जो काम करता था मंच पर, और खाली घर लौट आएं जैसे आप हैं? ऐसा अगर कर सकें तो इसके पहले हिस्से का नाम प्रतिक्रमण है—इस लौटने का नाम। दूसरे का नाम है सामायिक जब आप अपने में ठहर गए हैं, जैसे झींगुर बोल रहा है, वृक्षों में पत्ते लग रहे हैं, आकाश में चांद की किरणें गिर रही हैं, ऐसा ही किसी क्षण में आप कुछ कर नहीं रहे हैं, जो हो रहा है हो रहा है; श्वास चल रही है चल रही है, आप चला नहीं रहे हैं, आंख झपक रही है झपक रही है, आप झपका नहीं रहे हैं; पैर थक गया है, हिल गया है, आपने हिलाया नहीं है। और आप बिल्कुल ऐसे हो गए हैं जैसे है ही नहीं। उस क्षण में आपको पता चल सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरी आत्मा क्या है, मेरा अस्तित्व क्या है और एक बार इसका पता चल जाए तो फिर जीवन दूसरा होगा; फिर जीवन वही कभी नहीं होगा जो था। इसे हम दो चार उदाहरणों से समझाने की कोशिश करें।

तिब्बत में एक फकीर हुआ है मार्पा। वह अपने गुरु के पास गया। गुरु लेटा हुआ है। वह गुरु से कहता है: आप इस समय क्या कर रहे हैं? गुरु कहता है: किसी समय मैंने कुछ नहीं किया। मार्पा कहता है: कुछ तो कर ही रहे होंगे? बिना किए कैसे हो सकते हैं? गुरु कहता है: करने वाला कभी हुआ है? किया कि गए। नहीं किया कि पाया। मार्पा कहता है कि कुछ समझ में नहीं आया। गुरु कहता है: तुम समझने की कोशिश कर रहे हो इसलिए समझ में कैसे आए? समझने की कोशिश न करो। देखो, जानो और पहचानो।

एक जर्मन विचारक है हैरीगेल। वह जापान गया। वहां उसने बहुत सी तरकीबें खोजीं जिनके माध्यम से वह 'सामायिक' में ले जाना सिखाते हैं। उनमें फूल जमाने की कला भी एक है जिससे आप ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं। जिस दिन फूल जमाने की कला में कोई निष्णात हो जाता है, गुरु पूछता है। जब वह कहता है कि बहुत अच्छे जमाए फूल तो उसका गुरु कहता है उससे: ऐसा मत कह, तू कह कि फूल जम गए, मैंने कुछ किया नहीं है, फूल ऐसे जमता

चाहते थे। मैंने फूल जमाए नही। मेरा उन्होने उपयोग ले लिया और फूल जम गए। तो फूल जमाने से भी सिखाते हैं, तलवार चलाने से भी सिखाते हैं, तीर चलाने से भी सिखाते हैं। हैरीगेल जिस गुरु के पास गया वह धनुर्विद्या से ध्यान सिखाता था। तीन साल तक हैरीगेल ने धनुर्विद्या सीखी। उसके निशाने अचूक हो गए। लेकिन गुरु रोज कहता है ' नही, अभी कुछ भी नही हुआ है। तो हैरीगेल कहता है कि मैं परेशान हो गया तीन साल मेहनत करते-करते। मेरा एक निशाना भी नही चूकता है और आप कहते हैं . कुछ नही हुआ है। गुरु कहता है . निशाने से लेना-देना क्या है ? अभी तीर तू चलाता है, वह चलता नही है। निशाने से क्या मतलब ? निशाना लगे न लगे यह गौण बात है। और निशाना क्यो न लगेगा ? निशाना लगेगा। निशाने से कुछ लेना-देना नही है। लेकिन तू तीर चलाता है, तीर अभी चलता नहीं। तीन साल परेशान हो गया हैरीगेल। जो भी देखने आता, वह कहता हैरीगेल अद्भुत हो तुम ! उसका कोई निशाना नही चूकता लेकिन उसका गुरु रोज कह देता 'नही, अभी कुछ नही हुआ है।' आखिर थक गया है हैरीगेल। और उसने कहा : अब क्षमा करे। अब मैं लौट जाऊं। लेकिन गुरु ने कहा . सर्टिफिकेट नही दे सकूँगा। इतना लिख सकता हूँ कि तीन साल मेरे पास रहा लेकिन असफल लौटता है। वह कहता है कि सब निशाने ठीक लगते हैं। गुरु ने कहा निशाने से हमें कोई मतलब ही नही। हम तुझे देख रहे हैं। तू ही ठीक नहीं है क्योंकि तू अभी तक ऐसा नही हो पाया है कि तीर चले। अभी तू तीर चलाता है। हैरीगेल पश्चिमी आदमी है। उसकी समझ से बाहर है बिल्कुल ही यह बात। वह लिखता है अपनी किताब में ' मेरी समझ के ही बाहर है कि तीर चलेगा ही कैसे जब तक मैं न चलाऊँगा। यह निपट बकवास मालूम पडती है कि तीर अपने आप चले। और वह कहता है ऐसा चलाओ जैसा कि तुमने न चलाया हो। बस तीर चल जाए। तुम बीच में मत आओ, तुम क्रिया मत बनो, तुम कर्ता मत बनो। थक गया वह। आखिर तीन साल बाद उसने कहा कि मैं कल टिकट बुक करवा आया हूँ। मैं वापस जा रहा हूँ। गुरु ने कहा : जैसी तुम्हारी मर्जी। दूसरे दिन साझ को हवाई जहाज चलना है। सुबह वह अन्तिम विदा लेने गुरु के पास जाता है। गुरु दूसरे शिष्यो को तीर चलाना सिखाता रहा है। हैरीगेल एक बेंच पर बैठ गया है। उसके गुरु ने तीर उठाया है। तीर चलाया है। हैरीगेल एकदम से खडा हो गया है। गया है गुरु के पास बिना बोले। धनुष हाथ में लिया है। तीर चलाया है। गुरु ने कहा ठीक . तीर चल गया। हैरीगेल ने

कहा : लेकिन इतने दिन से क्यो नही हो सका। उसने कहा : तू इतने दिन से कोशिश में लगा रहा। आज तू कोशिश में नहीं था। आज तू ऐसे आकर बैठा था कि विदा लेनी है। हैरीगेल ने कहा : 'हाँ, मैं आज तक देख ही नहीं सका आपको। आज मैंने पहली दफा देखा कि तीर चल रहा है और आदमी मौजूद नही है। फिर मैं उठा। मैं यह भी नही कह सकता कि क्यों उठा ? उठ गया। तीर हाथ में आ गया। तीर चल गया।' गुरु ने कहा : अब मैं तुझे लिखकर दे सकता हूँ। वैसे एक ही दिन काफी है। बात खत्म हो गई। तुझे समझ में आ गया फर्क। न हम कर्ता हैं, न हम अकर्ता हैं। एक क्षण भी अकर्ता हो जाएं तो बात खत्म हो गई। एक क्षण अकर्ता का ही 'सामायिक' का क्षण है। एक और घटना मुझे याद आती है।

चीन में एक हुईहाई फकीर हुआ। वह अपने गुरु के पास जाकर कहता है कि मुझे मोक्ष पाना है, सत्य पाना है। गुरु कहता है : जब तक पाना है तब तक कही और जा। जब पाना न हो तब मेरे पास आना। उसने कहा जब मुझे पाना नही होगा तो मैं आपके पास क्यों आऊँगा ? गुरु कहता है : 'मत आना।' लेकिन जब तक पाना है तब तक मुझसे क्या 'लेना-देना' क्योंकि पाने की भाषा तनाव की भाषा है। जब तक तू कहता है : 'पाना है तो पाना होगा भविष्य में। तू होगा आज में। और तेरा मन खिचेगा भविष्य तक। तनाव हो जाएगा'। वह गुरु से पूछता है आप कुछ पाने के लिए नही करते ? गुरु कहता है 'नही, जब तक हम पाने के लिए करते थे नही पाया। जिस दिन पाना छोड दिया, उस दिन पा लिया। मेरे बूढे गुरु ने मुझसे कहा था कि 'खोजो और खो दोगे। मत खोजो, और पा लो।' तब मैं भी नही समझता था कि मामला क्या है 'मत खोजो और पा लो।' 'खोजोगे और खो दोगे ?' गुरु ने जब मुझसे कहा था तो मैंने कहा कि यह तो बिल्कुल पागलपन की बात है। खोजेंगे नहीं तो पाएगे कैसे ? गुरु ने मुझसे कहा था कि तुम खोजते हो इसीलिए खो रहे हो क्योंकि जिसे तुम खोजते हो उसे तुम पाए ही हुए हो। एक क्षण तुम खोज को रोको, दौड को रोको, ताकि तुम देख सको कि तुम्हें क्या मिला हुआ है। तो गुरु ने कहा : 'मैं भी तुझसे कहता हूँ कि जब तक पाना हो तू कहीं और खोज ले। और जब न पाना हो तब आ जाना। वह युवक कई आश्रमों में भटकता फिरा। कई जगह खोज की। थक गया, परेशान हो गया, कहीं कुछ मिला नही, कहीं कुछ पाया नही। थका-मांदा वापस लौटा। तब गुरु ने पूछा : 'क्या इरादे है। और खोजोगे ?' वह कहता है :

नही मैं बहुत थक गया। कुछ खोजना नही है। विश्राम के लिए आया हूँ। तब गुरु ने कहा : आओ, स्वागत है। कभी-कभी जो श्रम से नही मिलता है, विश्राम में मिल जाता है।

न भूत मे जाना, न भविष्य में जाना, न कुछ पाना, न कही कुछ खोजना, बस जहाँ है वही रह जाना, नही तो सम्पूर्ण उमर बीत जाती है। बुद्ध को जिस दिन उपलब्धि हुई, उस दिन सुबह उनसे लोगो ने पूछा : 'आपको क्या मिला ?' बुद्ध ने कहा : मिला कुछ भी नही। जो मिला ही हुआ था, वही मिल गया। कैसे मिला ? बुद्ध ने कहा 'कैसे, की बात मत पूछो। जब तक कैसे की भाषा में मैं सोचता था, तब तक नही मिला। क्योंकि जो मिला ही हुआ था, उसको मैं खोजता था। फिर मैंने सब खोज छोड दी। और जिस क्षण मैंने खोज छोडी, पाया कि जिसे मैं खोजता था वह है ही। असल में स्वभाव का, स्वरूप का मतलब है जो है ही। खोज का मतलब है वह जो नही है, उसे हम खोज रहे हैं। इसलिए जब कोई आदमी आत्मा को खोजने लगता है तब वह पागलपन में लग गया है। क्योंकि आत्मा को कौन खोजेगा ? कैसे खोजेगा ? वह तो है ही हमारे पास। जब हम खोज रहे हैं तब भी, जब नहीं खोज रहे हैं तब भी। फर्क इतना ही पडता है कि अब खोजने में हम उलझ जाते हैं, चूक जाते है। नही खोजते है—दिख जाता है, मिल जाता है, उपलब्ध हो जाता है।

यह बात ठीक से ख्याल में आ जानी चाहिए कि सामायिक है **अप्रयास अ-खोज**, कोई लक्ष्य नही है जो भविष्य में है, यह भी अभी, और यही, अगर हम लक्ष्य को खोजते हुए भटकते रहे तो हम चूकते चले जाएँगे, अनन्त जन्मो तक, अगर आप इसी क्षण में हो सकते है, और कुछ भी नही करते तो आप वही पहुँच जाएँगे जहाँ महावीर सदा से खडे हैं। लेकिन हमारा मन वही प्रश्न बार-बार उठाए जाता है : कैसे करें ? क्या करें, कहाँ जाएँ ? कहाँ खोजें ? जो नही जानते है वे कहेंगे उसे जो खोजने की इच्छा कर रहा है 'खोजो।' जो जानते है कहेंगे . और कही मत खोजो, जहाँ से प्रश्न उठा है, वही उतर जाओ। वे कहेंगे कि जहाँ यह जो भीतर पूछ रहा है कि आत्मा को कैसे पाएँ, मोक्ष को कैसे पाएँ, इसी में उतर जाओ। और इसी में उतरने से मोक्ष मिल जाएगा, आत्मा मिल जाएगी। यही है आत्मा, यही है मोक्ष। लेकिन कही कुछ मनुष्य के चित्त की पूरी यान्त्रिकता में कुछ बुनियादी भूल है कि वह चूकता ही चला जाता है। एक बारीक सी बात उसके ख्याल में नही आ पाती कि जो मुझे पाना है, वह मुझे किसी न किसी अर्थ में मिला ही हुआ है। अगर यह स्पष्ट रूप

से ख्याल में आ जाए तो दूसरी बात ख्याल में आ जाएगी कि हमें श्रम से नहीं पाना है इसे, विश्राम में पाना है। तब यह भी समझ में आ जाएगा कि पाने की भाषा ही गलत है। जो पाया ही हुआ है उसका आविष्कार कर लेना है। इसलिए आत्मा उपलब्ध नही होता सिर्फ आत्म-आविष्कार होता है। कुछ ढँका हुआ था, उसे उघाड लिया है। और ढँका है हमारी खोज करने की प्रवृत्ति से; ढँका है हमारे और कहीं होने की स्थिति से। हम कही और न हों तो उघड़ जाएगा, अपने से उघड जाएगा, अभी उघड जाएगा। सामायिक न तो कोई क्रिया है, न कोई अभ्यास है, न कोई प्रयत्न है, न कोई साधना है, न कोई साधन है।

मैं एक छोटी सी घटना से समझा दूं। मुछाला महावीर में पहला शिविर हुआ। राजस्थान की एक वृद्ध महिला भूरबाई भी उस शिविर में आई। उसके साथ उसके कुछ भक्त भी आए। फिर जब भी मैं राजस्थान गया हूँ, निरन्तर प्रतिवर्ष हर जगह भूरबाई आती रही साथ कुछ लोगों को लेकर। सैकडो लोग पूजा करते हैं उसकी। सैकडो लोग पैर छूते हैं, सैकडो लोग उसे मानते हैं। और वह एक निपट साधारण, ग्रामीण स्त्री है। न कुछ बोलती, न कुछ बताती। लेकिन लोग पास बैठते हैं, उठते हैं, सेवा करते हैं और चले जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा वह प्रेम करती है लोगों को। उनको खिला देती है, उनकी सेवा कर देती है और उनको विदा कर देती है लेकिन फिर भी, सैकडो लोग उसको प्रेम करते हैं, उसके पास आते है। तो वह आई। पहले दिन ही सुबह की बैठक में मैंने समझाया कि ध्यान क्या है जैसे अभी आप से कहा कि 'सामायिक' क्या है और कहा कि ध्यान करना नही है, 'न करने' मे डूब जाना है। उस भूरबाई के पास एक व्यक्ति पच्चीस वर्षों से उसकी सेवा करते हैं। वह कभी हाईकोर्ट में वकील थे। फिर सब छोड़ कर वे भूरबाई के दरवाजे पर बैठ गए। उसके कपड़े धोते, उसके पैर दबाते और आनन्दित हैं। वह भी आये थे। जब सांझ को सब ध्यान करने आए तो उन सज्जन ने मुझे आकर कहा कि बड़ी अजीब बात है। भूरबाई को हमने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो। वह खूब हँसती है। जब हम उसने बार-बार कहते है तो वह कहती है कि तुम जाओ। और जब हम नही माने तो उसने कहा कि तुम जाओ यहाँ से, तुम ध्यान करो। तो उसने मुझे आकर कहा कि मुझे बडी हैरानी हुई कि हम आए किसलिए। वह तो आती नहीं कमरे को छोड कर। मैं इधर आया कि

उसने दरवाजा वंद कर लिया। मैंने कहा कि कल जब वह सुबह आए तो उसके सामने ही मुझसे पूछना। सुबह वह बुढिया आई और मेरे पैर पकडकर हंसने लगी और कहने लगी रात बड़ा मजा हुआ। आपने सुबह कितना समझाया कि ध्यान करना नही है और हमारा यह वकील कहता है : ध्यान करने चलो। तो मैंने उससे कहा कि तू जल्दी से जा यहाँ से क्योकि करने वाला रहेगा तो कुछ न कुछ गड़बड़ करेगा। तू जल्दी से जा यहाँ से। तू ध्यान कर। और जैसे ही यह बाहर आया, मैंने दरवाजा वंद कर लिया और मैं ध्यान में चली गई। और आपने ठीक कहा। 'करने से' नही हुआ। वर्षों तक नही हुआ करने से और कल रात हुआ क्योकि मैंने कुछ नही किया। बस मैं पड़ गई, जैसे मर गई हूँ। पडी रही, और हो गया। और यह कहता था ध्यान करने चलो। यह इधर ध्यान करने आया और मैं उधर ध्यान में गई और यह चूक गया। आप इसको समझाओ कि वह करने की बात भूल जाए।

करने की बात हमें नही भूलती, किसी को भी नही भूलती। इसलिए मुझे भी समझने में आप निरन्तर चूक जाते हैं कि मैं क्या कह रहा हूँ। महावीर को समझने में भी लोग निरन्तर चूके हैं कि वे क्या कह रहे हैं।

एक छोटी सी घटना है। लाओत्से एक जगल से गुजर रहा है। उसके साथ उसके कुछ शिष्य हैं। किसी राजा का महल वन रहा है और जगल में हर वृक्ष की शाखाएँ काटी जा रही हैं, तने काटे जा रहे हैं, लकडियाँ काटी जा रही हैं। पूरा जगल कट रहा है। सिर्फ एक वृक्ष है बहुत बडा जिसके नीचे हजार बैलगाडी ठहर सकती हैं। उस वृच की किसी ने एक शाखा भी नही काटी है। लाओत्से ने अपने शिष्यो से कहा कि जरा जाओ, उस वृच से पूछो कि इसका रहस्य क्या है। जब सारा जंगल कट रहा है तो यह वृक्ष कैसे बच गया है। इस वृक्ष के पास जरूर कोई रहस्य है। जाओ, जरा वृच से पूछ कर आओ। शिष्य दरख्त का चक्कर लगा कर आते हैं और लौट कर कहते हैं कि हम चक्कर लगा आए मगर वृक्ष से क्या पूछे ? यह बात जरूर है कि वृक्ष बडा भारी है, किसी ने नही काटा उसे। बडी छाया है उसकी, बडे पत्ते हैं उसके। बड़ी दूर से आ आकर पक्षी विश्राम करते हैं। हजारो बैलगाडियाँ नीचे ठहर सकती हैं। लाओत्से ने कहा तो जाओ, उन लोगो से पूछो जो दूसरे वृक्षो को काट रहे हैं कि इसको क्यो नही काटते। रहस्य जरूर है उस वृक्ष के पास। तो वे गए हैं और एक बढई से उन्होने पूछा है कि तुम इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते। उस बढई ने कहा है

कि इस वृक्ष को काटना मुश्किल है। यह वृक्ष बिल्कुल लाओत्से की भाँति है तो उसके शिष्यों ने कहा कि हम लाओत्से के शिष्य हैं। तब बढ़ई ने कहा यह वृक्ष लाओत्से की भाँति है, बिल्कुल बेकार है, किसी काम का नहीं, लकड़ी कोई सीधी नहीं, सब तिरछी हैं, किसी काम में नहीं आती, जलाओ तो धुआं देती हैं। इसे काटे भी कौन ? इसलिए बचा हुआ है। वे लौटे। उन्होंने लौटकर कहा बडी अजीब बात हुई। बढ़ई ने कहा है कि लाओत्से की भाँति है यह वृक्ष। लाओत्से ने कहा : बिल्कुल ठीक इसी वृक्ष की भाँति हो जाओ। न कुछ करो, न कुछ पाने की कोशिश करो। क्योंकि जिन वृक्षों ने सीधा होने की कोशिश की, सुन्दर होने की कोशिश की, कुछ भी बनने की कोशिश की उनकी हालतें देख रहे हो। एक भर वह वृक्ष है जिसने कुछ भी बनने की कोशिश नहीं की, जो हो गया हो गया, तिरछा तो तिरछा, आडा तो आडा, धुंआ निकलता है तो धुआ निकलता है। देखो वह कैसा बच गया है—बिल्कुल लाओत्से जैसा। और ऐसे ही हो जाओ अगर बचना हो और बडी छाया पानी हो। और तुम्हारी शाखाओं में बडे पक्षी विश्राम करें और तुम्हें कभी कोई काटने न आए। फिर शिष्यों ने कहा कि हम ठीक से नहीं समझे कि बात क्या है। यह तो एक पहेली हो गई। वृक्ष से तो नहीं पूछ सके लेकिन जब आप कहते हैं कि मेरे ही भाँति यह वृक्ष है तो हम आपसे ही पूछते हैं कि रहस्य क्या है ? तब लाओत्से ने कहा कि रहस्य यह है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ था। मुझे कभी कोई उठा नहीं सका क्योंकि मैं सदा उस जगह बैठा जहाँ से कोई उठाने आता ही नहीं। मैं जूतों के पास ही बैठा सदा। मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका क्योंकि मैंने कभी मान की कामना नहीं की। मैंने कुछ होना नहीं चाहा, न धनी होना चाहा, न यशस्वी होना चाहा, न विद्वान् होना चाहा, इसलिए मैं वही हो गया जो मैं हूँ यानी कुछ और होना चाहता तो मैं चूक जाता। यह वृक्ष—ठीक कहते हैं वे लोग, मेरे जैसा इसने कुछ नहीं होना चाहा। इसलिए जो था, वही हो गया। और परम आनन्द है, वही हो जाना जो हम हैं, जो हम हैं उसी मे रम जाना मुक्ति है, जो हम हैं उसी को उपलब्ध कर लेना सत्य है।

सामायिक को अगर ऐसा देखेंगे तो समझ में आ जाएगा और मन्दिरों में जो सामायिक की जा रही है, अगर वहाँ समझने गए तो फिर कभी समझ में नहीं आएगा। वे सब करने वाले लोग हैं। वे वहाँ भी सामायिक कर रहे हैं,

वहाँ भी व्यवस्था दे रहे हैं। मंत्र है, जप है, इन्तजाम है—सब कर रहे हैं। वह सब क्रिया है और क्रिया के पीछे लोग हैं। क्योंकि ऐसी कोई क्रिया ही नही जिसके पीछे लोग न हो, पाने की कामना न हो। स्वर्ग है, मोक्ष है, आत्मा है, कुछ न कुछ उन्हें पाना है। उसके लिए वे क्रिया कर रहे हैं। और जिसके भी पाने की आकांक्षा है, सब पा लें सिर्फ स्वयं को नही पा सकते। क्योंकि स्वयं को पाने की आकांक्षा से नही पाया जा सकता। **पाने की सब आकांक्षा स्वयं के बाहर ले जाती है।** जब पाने की कोई आकांक्षा नही रही तो आदमी स्वयं में वापस लौट आता है। यह जो वापिस लौट आना है और घर में ही ठहर जाना है, इसका नाम 'सामायिक' है। महावीर ने अद्‌भुत व्यवस्था की है उस 'अक्रिया' में उतर जाने की—होने मात्र में उतर जाने की। जिसको समझ में आ जाए उसे करने मात्र का सवाल नही है फिर। और जिसकी समझ में न आए वह कुछ भी करता रहे, उसे कोई फर्क पड़ने वाला नही।

प्रश्न : अठतालीस मिनट का इसमें क्या हिसाब है ?

उत्तर : कुछ मतलब नही है। यहाँ मिनट का सवाल ही नही है। एक समय भर ठहर जाना काफी है। एक क्षण का जो हजारवाँ हिस्सा है, लाखवा हिस्सा है उसमें भी अगर तुम ठहर गए तो बात हो गई।

प्रश्न : यह सूत्र क्यों बनाए हैं सामायिक के ?

उत्तर : सूत्र अनुयायी बनाते हैं और बाँधते हैं। महावीर को कोई सम्बन्ध नही है इन सूत्रो से। असल में सदा ही यह कठिनाई रही है कि अनुयायी क्या करता है। यह बड़ा मुश्किल मामला है। वह जो कर सकता है करता है। और वह सब इन्तजाम कर देता है पूरा का पूरा। और उसमें जो महत्वपूर्ण था वह इन्तजाम में ही खो जाता है। और अनुयायी प्रेम से इन्तजाम करता है। वह कहता है कि सब व्यवस्थित कर दो। लोग पूछते हैं कि क्या करना चाहिए, कितनी देर करना चाहिए, कैसे करना चाहिए। कुछ इन्तजाम करें, नही तो लोग कैसे समझेंगे, सामान्य आदमी कैसे समझेगा। सामान्य आदमी के लिए अनुयायी इन्तजाम कर देता है। फिर वह इन्तजाम चलता है। सत्य का उससे कोई सम्बन्ध नही रह जाता।

महावीर जैसे लोगो को समझना ही मुश्किल है। क्योंकि वह जो बात कह रहे हैं, इतनी गहराई की है, और हम जहाँ खड़े हैं वह इतने उथलेपन में है बल्कि उथलेपन मे भी तट पर खड़े हुए हैं और वहाँ से जो हमारी समझ में आता है, वह इन्तजाम हम कर लेते हैं। अनुयायी सारी व्यवस्था देता है, और

कुछ व्यवस्थापरक मस्तिष्क होते हैं जो सदा व्यवस्था देते रहते हैं। वह किसी भी चीज को व्यवस्थित कर देते हैं। कुछ चीजें ऐसी हैं जो व्यवस्था में ही मर जाती हैं। असल में जीवनबोध की कोई भी चीज व्यवस्था में ही मर जाती है। मेरा कहना है कि व्यवस्था मत देना। क्योंकि व्यवस्था दी तो जिनके समझ में भी कभी आ सकता था उनकी समझ में भी कभी नहीं आएगा फिर। इसलिए उसको अव्यवस्थित ही छोड़ देना। जैसा है वैसा ही छोड़ देना।

प्रश्न—अगर करना हो 'सामायिक' तो क्या कहेंगे ? सामायिक करेंगे या नहीं ?

उत्तर—नहीं, बिल्कुल नहीं करेंगे।

उसका मतलब इतना है कि कुछ देर के लिए कुछ भी नहीं करना है। जो हो रहा है, होने देना है। विचार आते हैं, विचार आने दो। भाव आते हैं, आने दो। हाथ हिलते हैं, हिलने दो। करवट बदलना है, बदलने दो। सब होने दो। थोड़ी देर के लिए कर्ता मत रहो बस साक्षी रह जाओ। जो हो रहा है, होने दो, कुछ मत करो। जो व्यवस्था उत्पन्न होगी, वह सामायिक है। यानी सामायिक के लिए कुछ भी नहीं करना है। अगर आप कुछ भी न कर रहे हों थोड़ी देर तो हो ही जाएगा। सामायिक तब होगी जब आप बिल्कुल ही अप्रयास में पड़ेंगे। जैसे कभी आपने ख्याल किया हो किसी का नाम आपको भूल गया है और आप कोशिश कर रहे हैं याद करने की और वह याद नहीं आ रहा है, फिर आप ऊब गए और थक गए और आपने कोशिश छोड़ दी और आप दूसरे काम में लग गए और अचानक वह नाम याद आ गया है। तो अब अगर कोई कहे कि हमें किसी का नाम भूल जाए और उसे याद करना हो तो हम क्या करें उससे हम यह कहेंगे कि कम से कम नाम याद करने की कोशिश मत करना। तो वह कहेगा कि हमको नाम ही तो याद करना है और आप यह क्या कहते हैं ? तो उससे हम कहेंगे कि नाम याद करने की कोशिश मत करना तो नाम याद आ जाएगा। और तुमने कोशिश की तो मुश्किल में पड़ जाओगे क्योंकि तुम्हारी कोशिश अशान्त कर देती है मस्तिष्क को। तो उसमें से जो आना चाहिए वह भी नहीं आ पाता। मस्तिष्क सख्त हो जाता है।

जुजुत्सू एक कला होती है युद्ध की, लड़ाई की, कुश्ती की। आम तौर से जब दो आदमियों को लड़ने के लिए हम सिखाते हैं, तो हम कहते हैं कि तुम दूसरे पर हमला करना। लेकिन जुजुत्सू में वह सिखाते हैं कि तुम हमला मत करना। जब दूसरा तुम्हारी छाती में घूसा मारे तो उसके घूसे के लिए जगह

बना देना। बिल्कुल राजी होकर घूंसे को पी जाना। तब उसके हाथ की हड्डी टूट जाएगी और तुम बच जाओगे। बहुत कठिन है यह क्योंकि जब कोई आपकी छाती में घूंसा मारे तो आपकी छाती सख्त हो जाएगी फौरन। और सख्ती में आपकी हड्डी टूट जाने वाली है। जैसे दो आदमी चल रहे हैं एक बैलगाडी में बैठे हुए। एक शराब पिए हुए है। एक बिल्कुल शराब पिए हुए नही है। बैलगाडी उलट गई। तो जो शराब पिए हुए है उसको चोट लगने की सम्भावना कम है। जो शराब नही पिए है उसको चोट लगेगी। कारण कि वह शराब जो पिए है वह हर हालत में राजी है। वह उलट गई तो वह उसी में उलट गया। उसने बचाव का कोई उपाय नही किया। लेकिन वह जो होश में है, बैलगाडी उलटी तो वह सजग हो गया। उसने कहा, 'अरे। बचाओ।' तो वह सब सख्त हो गया। जो हड्डियाँ सख्त हो गई, उन पर जरा सी चोट लगी कि 'टूटी।' इसलिए शराब पीने वाला गिरता है सडको पर। कभी हड्डी टूटते देखी उस बेचारे की? आप जरा गिर कर देखो। कारण कि वह ऐसा गिरता है जैसे बोरा गिर रहा है। उसमें कुछ है ही नहीं। गिर गया तो गिर गया, उसी के लिए राजी हो गया। उसको चोट नही लगती। तो जुजुत्सू कहता है कि अगर चोट न खानी हो तो ऐसे गिरना कि जैसे गिरे ही हुए हो। यानी तुम नही गिरना है इसका ऐसा ख्याल ही मत करना।

प्रश्न . गिरना भी नहीं है?

उत्तर : हाँ, गिरना भी नहीं है, तो चोट नही खाओगे। दूसरा जब हमला करे तो तुम पी जाना उसके हमले को। तुम राजी हो जाना। ठीक सामायिक का मतलब भी यही है कि चारों तरफ से चित्त पर बहुत तरह के हमले हो रहे हैं। विचार हमला कर रहा है, क्रोध हमला कर रहा है, वासना हमला कर रही है। सबके लिए राजी हो जाना; कुछ करना ही मत। जो हो रहा है, होने देना। और चुपचाप पडे रहना। एक क्षण को भी अगर यह हो जाए तो सब हो गया। मगर हम करने को इतने आतुर हैं कि विचार आया नही कि हम उस पर सवार हुए। या उसके साथ गए, या उसके विरोध में गए। हम बिल्कुल तैयार ही हैं लडने को। मैं जब समझना चाहूँ तो यही कह सकता हूँ कि कुछ मत करना। जो हो रहा हो उसको एक घडी भर देखना। तेईस घंटे हम कुछ करते ही हैं। एक घंटा कर लेना कि कुछ नही करेंगे, बैठे रहेंगे; जो होगा होने देंगे। देखेंगे कि यह हो रहा है। इसे सिर्फ देखना है। साक्षी रह जाना है। साक्षी भाव ही सामायिक में प्रवेश दिला देता है।

११

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक २२ सितम्बर, १९६९

प्रश्न आप जो कुछ जैन दृष्टि के बारे मे कह रहे हैं उसमे मुझे ऐसा लगा कि दो तिहाई बातों से सभी लोग सहमत हो जाएँगे। किन्तु एक तिहाई अंश ऐसा है जिससे सहमति कठिन है। पहली बात आप कहते हैं सम्यक् दर्शन की। जिसने थोडा भी शास्त्र पढ़ा है वह यह जानता है कि सम्यक् दर्शन के बिना चरित्र का कोई अर्थ नहीं। सम्यक् दर्शन के बिना जो कुछ होता है, वह चरित्र कहलाता ही नहीं। यह दृष्टि बहुत स्पष्ट है। यह भी स्पष्ट है कि चरित्र का और कोई अर्थ नहीं है अतिरिक्त 'आत्मस्थिति' के। आत्मा मे स्थित हो जाना, यही चरित्र का अर्थ है। इन दोनों अर्थो मे आपसी सहमति लगती है। पर, सम्यक् दर्शन होने के बाद और 'आत्मस्थिति' मे पूर्ण स्थिति होने के पहले जो बीच का अन्तराल है, उसमे आपकी दृष्टि परम्परागत दृष्टि से कुछ भिन्न नजर आती है। परम्परा मे ऐसा मानते हैं लोग कि एक चरित्र का क्रमिक विकास है। उस चरित्र का बाह्य स्वरूप भी है जिसे त्रिगुप्ति और पंचसमिति नाम से अष्टप्रवचनमातृका कहते हैं। जैसे कि मन, वचन, काय का संयम और आहार व्यवहार मे विवेक। यही चरित्र का स्वरूप मानते हैं। पर यह जो अष्टप्रवचनमातृका है, यह पच व्रतो की रक्षा करने के लिए हैं। इस पंचव्रत और अष्टप्रवचनमातृका का भी एक सुनिश्चित स्थान जैन आचार मीमांसा मे है। अब आप उस सम्बन्ध मे क्या कहेंगे? यदि यहाँ आपकी सम्मति कुछ बने और परम्परा से मिल सके तो शतप्रतिशत सहमति हो जाए। पर यदि न मिल सके तो मुझे लगता है कि दो तिहाई तो सहमति हो पाएगी, एक तिहाई अंश मे नहीं।

उत्तर : यदि हो पाएगी तो पूरी हो पाएगी। नही हो पाएगी तो बिल्कुल न हो पाएगी। क्योंकि चरित्र की जैसी धारणा रही है उस धारणा से मैं

बिल्कुल असहमत हूँ। और वैसी धारणा महावीर की भी नही थी, ऐसा भी मैं कहता हूँ। एक दृष्टि है बाह्य आचरण को व्यवस्थित करने की। असल मे बाह्य आचरण को व्यवस्थित नहीं कर सकता है वह जिसके पास अन्तर्विवेक नही है। अन्तर्विवेक हो तो बाह्य आचरण स्वयं व्यवस्थित हो जाता है, करना नही पडता। जिसे करना पड़ता है वह इस बात की खबर देता है कि उसके पास अन्तर्विवेक नही है। अन्तर्विवेक की अनुपस्थिति में बाह्य आचरण अंधा है चाहे हम उसे अच्छा कहें या बुरा कहें, नैतिक कहें या अनैतिक कहें। निश्चित ही समाज को फर्क पडेगा। एक को समाज अच्छा आचरण कहता है, एक को बुरा कहता है। समाज अच्छा आचरण उसे कहता है जिससे समाज के जीवन में सुविधा बनती है। बुरा आचरण उसे कहता है जिससे असुविधा बनती है। समाज को व्यक्ति की आत्मा से कोई मतलब नही है, सिर्फ व्यक्ति के व्यवहार से मतलब है क्योंकि समाज व्यवहार से बनता है, आत्माओ से नही बनता। समाज की चिन्ता यह है कि आप सच बोलें। यह चिन्ता नही है कि आप सत्य हों। आप झूठ हो कोई चिन्ता नही, पर बोलें सच। आप मन में झूठ को गढे, कोई चिन्ता नही लेकिन प्रकट करें सच को। आपका जो चेहरा प्रकट होता है समाज को मतलब है उससे। आपकी आत्मा जो अप्रकट रह जाती है, उससे कोई मतलब नही।

समाज इसकी चिन्ता ही नहीं करता कि भीतर आप कैसे हैं। समाज कहता है बाहर आप कैसे है ? बस हमारी बात पूरी हो जाती है। बाहर आप ऐसा व्यवहार करें जो समाज के लिए अनुकूल है, समाज के जीवन के लिए सुविधापूर्ण है, जो सबके साथ रहने में व्यवस्था लाता है। समाज की चिन्ता आपके आचरण से है, धर्म की चिन्ता आपकी आत्मा से है। इसलिए समाज इतना फिक्र भर कर लेता है कि आदमी बाह्य रूप से ठीक हो जाए। बस इसके बाद वह फिक्र छोड देता है। बाह्य रूप को ठीक करने के लिए वह जो उपाय लाता है वे उपाय भय के हैं। या तो पुलिस है, अदालत है, कानून है, पाप-पुण्य का डर है, स्वर्ग है, नरक है। ये सारे भय के रूप उपयोग में लाता है। अब यह बड़े मजे की बात है कि समाज के द्वारा आचरण की जो व्यवस्था है वह भय पर आधारित है और बाहर तक समाप्त हो जाती है। परिणाम में समाज व्यक्ति को केवल पाखण्डी बना पाता है या अनैतिक— नैतिक कभी नहीं। पाखण्डी इन अर्थों में कि भीतर व्यक्ति कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। और जो व्यक्ति पाखण्डी हो गया उसके धार्मिक

होने की सम्भावना अनैतिक व्यक्ति से भी कम हो जाती है। इसे समझ लेना जरूरी होगा। समाज की दृष्टि में वह आदृत होगा, साधु होगा, संन्यासी होगा लेकिन पाखण्डी हो जाने के बाद वह अनैतिक व्यक्ति से भी बुरी दशा में पड़ जाता है। क्योंकि अनैतिक व्यक्ति कम से कम सीधा है, सरल है, साफ है। उसके भीतर गाली उठती है तो गाली देता है और क्रोध उठता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नही है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नही होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी भी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखण्डी व्यक्ति का मतलब है कि बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है और भीतर अज्ञानी जैसा होता है। उसके भीतर गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। मगर बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, "अहिंसा परमो धर्म." की तख्ती लगाकर बैठता है, चरित्रवान् दिखाई पडता है, नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर का व्यक्तित्व वह ज्ञानी से उधार लेता है और भीतर का व्यक्तित्व वह अज्ञानी से उधार लेता है। यह पाखण्डी व्यक्ति, जिसको समाज नैतिक कहती है, कभी भी उस दिशा से उपलब्ध नहीं होगा जहाँ धर्म है। अनैतिक व्यक्ति उपलब्ध हो भी सकता है। अक्सर ऐसा होता है कि पापी पहुँच जाते हैं और पुण्यात्मा भटक जाते हैं। क्योंकि पापी के दोहरे कारण हैं पहुँच जाने के। एक तो पाप दुखदायी है। उसकी पीड़ा है जो रूपान्तरण लाती है। दूसरी बात यह है कि पाप करने के लिए, समाज के विपरीत जाने के लिए भी साहस चाहिए। जो पाखण्डी लोग हैं वे मध्यम (मीडियाकर) है। उनमें साहस नहीं है। साहस न होने की वजह से वे चेहरा वैसा बना लेते हैं जैसा समाज कहती है, समाज के डर के कारण। और भीतर वैसे रहे आते हैं, जैसे वे हैं। अनैतिक व्यक्ति के पास एक साहस है जो कि आध्यात्मिक गुण है और पाप की पीड़ा है। यह दो बातें हैं उसके पास। पाप उसे पीड़ा और दुख में ले जाएगा। दुख और पीड़ा में कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहता। और साहस है उसके पास कि जिस दिन भी वह साहस कर ले वह उस दिन बाहर हो जाए।

मैं एक छोटी सी कहानी से समझाऊँ। एक ईसाई पादरी एक स्कूल में बच्चों को समझा रहा है कि नैतिक साहस क्या होता है। एक बच्चा पूछता है कि उदाहरण से समझाइए। वह कहता है कि समझ लो कि तुम बीस बच्चे

हो, तुम पिकनिक के लिए पहाड पर गए। दिन भर के थक गए हो, नीद आ रही है। सर्द रात है। उन्तीस बच्चे जल्दी से बिस्तर में कम्बल ओढकर सो जाते हैं। लेकिन एक बच्चा कोने में घुटने टेक कर परमात्मा की प्रार्थना करता है। पादरी कहता है कि उस लडके में नैतिक साहस है। जब उन्तीस बिस्तर में सो गए है, सर्द रात है, दिन भर की थकान है जब कि प्रलोभन पूरा है कि 'मैं भी सो जाऊँ' तब भी वह हिम्मत जुटाता है और कोने में भगवान् की प्रार्थना करता है सर्द रात में। तब सोता है जब प्रार्थना पूरी कर लेता है। महीने भर बाद, वह पादरी वापिस आया है। उसने फिर नैतिक साहस पर कुछ बातें की हैं और उसने कहा है कि अब मैं तुमसे समझना चाहूँगा कि नैतिक साहस क्या है। तो एक लडके ने कहा है कि मैं—जैसा उदाहरण आपने दिया था वैसा ही उदाहरण देकर समझाता हूँ। तीस पादरी है। एक पहाड पर पिकनिक को गए हुए हैं। दिन भर के थके मादे लौटते है, सर्द रात है। उन्तीस पादरी प्रार्थना करने बैठ जाते हैं। एक पादरी कम्बल ओढ़ कर सो जाता है तो जो आदमी कम्बल के भीतर सो जाता है, वह नैतिक साहस का उदाहरण है। और आपने जो उदाहरण दिया था उससे यह ज्यादा अच्छा है कि जब-उन्तीस पादरी प्रार्थना कर रहे हो और कह रहे हो कि नरक जाओगे अगर तुम बिस्तर में सोवोगे तब एक आदमी चुपचाप बिस्तर में सो जाता है।

नैतिक साहस होता ही नही उनमें जिन्हें हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। उनकी नैतिकता साहस की कमी के कारण होती है, साहस के कारण नही। एक आदमी चोरी नही करता। आम तौर से हम उसकी प्रशंसा करते हैं। मगर चोरी न करना ही अचोर होने का लक्षण नहीं है। चोरी न करने का कुल कारण इतना हो सकता है कि आदमी तो चोर है लेकिन चोरी करने का साहस नही जुटा पाता। सौ में निन्यानवे मौकों पर ऐसा होता है कि चोरी सब करना चाहते है लेकिन साहस नहीं जुटा पाते। चोरी करना साधारण साहस की बात नही है। अंधेरी रात में, दूसरे के घर में अपने घर जैसा व्यवहार करना बहुत मुश्किल बात है। तो जिनको हम नैतिक कहते हैं अक्सर वे साहस-हीन लोग होते हैं। और धर्म एक साहस की यात्रा है। साहसहीन लोग इसलिए नैतिक होते है कि उनमें साहस नही है। बुरे लोगो में एक गुण स्पष्ट है कि वे पूरे समाज के विरोध में साहसी हैं। जब उन्तीस लोग प्रार्थना कर रहे हैं तब वे सोने चले गए है। अब सवाल यह है कि उनका साहस पाप की ओर से हटकर पुण्य की ओर कैसे जाए? आपको ले जाने की जरूरत नही है। पाप

की पीडा ही अपने आप में इतनी सघन है कि वह आदमी को इससे उठने के लिए मजबूर कर देती है। आज नही, कल वह आदमी उठता है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि पापी की सम्भावनाएँ धर्म के निकट पहुँचने की ज्यादा हैं अपेक्षाकृत उसके जिसको हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं। और जिस दिन पापी धर्म की दुनिया में पहुँचते है वह उतनी ही तीव्रता में पहुँचता है जितनी तीव्रता से वह पाप में गया था। नीत्शे ने लिखा है : जब मैंने वृक्षों को आकाश छूते देखा तो मैंने खोजबीन की। मुझे पता चला कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उस वृक्ष की जडों को पाताल छूना पडता है। उसने लिखा है कि तब मुझे ख्याल आया कि जिस व्यक्ति को पुण्य की ऊँचाइयां छूनी हों उस व्यक्ति के भीतर पाप की गहराइयो को छूने को क्षमता चाहिए। अगर कोई पाप का पाताल छूने में असमर्थ है तो वह पुण्य का आकाश भी नहीं छू सकता क्योंकि ऊपर शिखर उतना ही जाता है जितना नीचे जडें जा सकती हैं। यह हमेशा अनुपात में जाता है। जिस घास की जडे भीतर बहुत गहरी नही जाती वह घास उतना ही ऊपर आता है जितनी जडे जाती हैं। तो पापी की गति बुरे की तरफ है लेकिन वह अच्छे की तरफ भी जा सकता है। तो मेरी दृष्टि में झूठी नैतिकता बाहर से थोपी गई है। परिणाम यह हुआ कि दुनिया में धर्म कम होता चला गया। अच्छा तो यही है कि आदमी सीधा हो चाहे वह पापी हो। बजाय झूठे, व्यर्थ के आडम्बर थोपने के वैसा ही हो जैसा है। इसमें बदलाहट की बडी सम्भावना है कि जैसा वह है, अगर वह दुखद है तो बदलेगा। करेगा क्या ? लेकिन पाखण्डी आदमी ने तो व्यवस्था कर ली है। जैसा है वह छिपा लिया है। जैसा नही है वह व्यवस्था कर ली है उसने। समाज से आदर भी पाता है, सुख भी पाता है, सम्मान भी पाता है और जैसा है वैसा वह है। इसलिए जो गलत होने की पीडा है, वह भी नही भोग पाता। वही पीडा मुक्तिदायी है।

तो मेरी दृष्टि में पाखण्डी समाज से सीधा ऐन्द्रिक समाज ज्यादा अच्छा है। और इसलिए मैं कहता हूँ कि पश्चिम में धर्म के उदय की सम्भावना है, पूरब में नही है। इसको मैं भविष्यवाणी कह सकता हूँ कि आने वाले सौ वर्षों मे पश्चिम मे धर्म का उदय होगा और पूरब में धर्म प्रतिदिन क्षीण होता चला जाएगा क्योंकि पूरब पाखण्डी है और पश्चिम साफ है। पश्चिम बुरा है मगर साफ है। यह साफ बुरा होना पीडा देने वाला है। और उस पीड़ा से उसको बाहर भी निकलना पड़ेगा। पाखण्डी का झूठा अच्छा होना पीडा भी नही बनता।

और वह कहीं बाहर भी नहीं निकल सकता। पाखण्डी आदमी कुनकुनी हालत में होता है—कभी भाप नहीं बनता, बर्फ भी नहीं बनता। पापी आदमी बर्फ भी बन सकता है, भाप भी बन सकता है क्योंकि वह कुनकुनी हालत में कभी होता ही नहीं। मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर समाज को किसी प्रकार सुव्यवस्थित तो कर लिया है मगर व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुँचाया है। और यह भी मेरा मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पड़ता है। अगर व्यक्ति झूठे हैं तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है। क्योंकि जो व्यक्ति झूठा है वह पीछे के रास्ते से कर ही रहा होगा, जो सामने के रास्ते से नहीं कर रहा है। समाज ज्यादा से ज्यादा एक मकान के दो दरवाजे ही कर देता है। एक सामने का दरवाजा है जिसमें प्रार्थनाएँ, भजन-कीर्तन चलते हैं। एक पीछे का दरवाजा है जिसमें गाली-गलौज चलती है। वह पीछे का दरवाजा भी समाज का ही हिस्सा है, वह जाएगा कहाँ ? वह उबल-उबल कर बाहर आता रहता है।

गाली गलौज जो है वह गूँजती ही रहती है क्योंकि वह जाएगी कहाँ ? झूठे चेहरे कैसे जिए जा सकते हैं ? और जो सब आदमी झूठे चेहरे बना लेते हों और सब को यह पता हो कि सब चेहरे झूठे हैं तो समाज एक मिथ्या हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि एक धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पड़ा है क्योंकि इस झूठे समाज में वह राजी नहीं हो सका। तो बुद्ध अपने भिक्षुओं को जो नाम देते हैं वह है 'अनागरिक'। उसे नागरिकता छोड़ देनी पड़ी, उसे मिथ्या समाज की व्यवस्था छोड़ देनी पड़ी। वह नागरिक नहीं रहा। असल में भिक्षु, साधु, सन्यासी का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थ में असामाजिक हो गया है। समाज से उसने नाता तोड़ लिया है क्योंकि समाज पाखण्ड और झूठी नैतिकता का गढ़ है। जब झूठी नैतिकता बहुत जोर पकड़ लेती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी जोर पकड़ लेती है। झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। जब झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं तो अराजकता आती है, स्वच्छन्दता आती है। जब स्वच्छन्दता तेजी को पकड़ जाती है तो फिर झूठी नैतिकता को समर्थन देने वाले लोग खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं स्वच्छन्दता बुरी है, नैतिकता लाओ।

यानी मेरा मानना है कि समाज का अब तक का इतिहास, झूठी नैतिकता, झूठी व्यवस्था और अराजकता के बीच डोलता रहा है। झूठी नैतिकता उतनी ही खतरनाक है जितनी स्वच्छन्दता। और सच तो यह है कि झूठी नैतिकता

ही स्वच्छन्दता पैदा करने का कारण है। अब बहुत दिन हो गये इसके बीच डोलते-डोलते। अब इस बात की चिन्ता हमें करनी चाहिए कि या तो सच्ची नैतिकता स्वीकार कर लें कि आदमी अनैतिक है तो अनैतिक होकर कैसे जिए, उनका इन्तजाम कर ले। या बजाय आदमी को झूठा बनाने के, सच्चे होने की पहली आधार-शीला रख दें। और जो नीति कहती है कि सत्य कीमती है, वह भी अगर आदमी को झूठा बनाने का उपाय करती है तो वह कैसी नीति है? मेरा कहना है कि अगर आदमी अनैतिक ही है तो इसे हम स्वीकार कर ले और अनैतिक आदमी कैसे जिए, इसका इन्तजाम कर लें। यह ज्यादा अच्छा होगा और सरलता से धर्म की तरफ ले जाने वाला होगा। क्योंकि अनैतिकता दुःख देगी ही। पाप सुख दे ही नही सकता।

प्रश्न : एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है मगर झूठा पाखण्ड है वह ब्रह्मचर्य। अगर उस व्यक्ति को यह मार्ग नहीं दिखलाते कि वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य से सत्य ब्रह्मचर्य को कैसे प्राप्त हो? आप उसको यह मार्ग दिखला दें तो वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य को छोड़ ही दे। आप उसे उल्टी ओर ले जा रहे हैं अपनी ओर उसको ले जाइए।

उत्तर : नही, मैं उसे ठीक ओर ही ले जा रहा हूँ क्योंकि काम-वासना उतनी खतरनाक नही है जितना पाखण्ड खतरनाक है। पाखण्ड मनुष्य की ईजाद है और काम-वासना परमात्मा की। तो जो आदमी झूठे ब्रह्मचर्य में है, आप सोचते है कि मैं उसको ब्रह्मचर्य से भिन्न ले जा रहा हूँ। पाखण्डी ब्रह्मचर्य जैसा ब्रह्मचर्य होता ही नही। पाखण्डी ब्रह्मचर्य वाले मनुष्य के भीतर तो गहरी कामुकता होती है।

प्रश्न : उसे काम-वासना के माध्यम से ही सत्य तक पहुँचना होगा?

उत्तर : हाँ, पाखण्ड से कैसे सत्य तक पहुँच सकता है? सत्य से ही सत्य तक पहुँच सकता है। काम-वासना सत्य है तो काम वासना से ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है। सत्य जो है वह कामवासना की समझ से ही उत्पन्न अन्तिम अनुभूति है। लेकिन पाखण्डी ब्रह्मचर्य जिसने पहले ही थोप लिया है वह सत्य तक कभी नही पहुँच पाता। पाखण्ड छोड़ो तो ही सत्य तक पहुँच सकते हो। ये दो बातें समझने जैसी हैं। काम-वासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है। इस सत्य को समझने से हम और बड़े सत्य को उपलब्ध हो सकते है। यानी ब्रह्मचर्य जो है वह वासना की ही अन्तिम समझ से हुई निष्पत्ति है। वह

और वह कहीं बाहर भी नहीं निकल सकता। पाखण्डी आदमी कुनकुनी हालत में होता है—कभी भाप नही बनता, बर्फ भी नही बनता। पापी आदमी बर्फ भी बन सकता है, भाप भी बन सकता है क्योंकि वह कुनकुनी हालत में कभी होता ही नहीं। मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर समाज को किसी प्रकार सुव्यवस्थित तो कर लिया है मगर व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुँचाया है। और यह भी मेरा मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पडता है। अगर व्यक्ति झूठे हैं तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है। क्योंकि जो व्यक्ति झूठा है वह पीछे के रास्ते से कर ही रहा होगा, जो सामने के रास्ते से नही कर रहा है। समाज ज्यादा से ज्यादा एक मकान के दो दरवाजे ही कर देता है। एक सामने का दरवाजा है जिसमें प्रार्थनाएँ, भजन-कीर्तन चलते हैं। एक पीछे का दरवाजा है जिसमें गाली-गलौज चलती है। वह पीछे का दरवाजा भी समाज का ही हिस्सा है, वह जाएगा कहाँ? वह उबल-उबल कर बाहर आता रहता है।

गाली गलौज जो है वह गूँजती ही रहती है क्योंकि वह जाएगी कहाँ? झूठे चेहरे कैसे जिए जा सकते हैं? और जो सब आदमी झूठे चेहरे बना लेते हों और सब को यह पता हो कि सब चेहरे झूठे हैं तो समाज एक मिथ्या हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि एक धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पडा है क्योंकि इस झूठे समाज में वह राजी नही हो सका। तो बुद्ध अपने भिक्षुओ को जो नाम देते हैं वह है 'अनागरिक'। उसे नागरिकता छोड देनी पडी, उसे मिथ्या समाज की व्यवस्था छोड देनी पडी। वह नागरिक नहीं रहा। असल में भिक्षु, साधु, सन्यासी का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थ में असामाजिक हो गया है। समाज से उसने नाता तोड लिया है क्योंकि समाज पाखण्ड और झूठी नैतिकता का गढ है। जब झूठी नैतिकता बहुत जोर पकड लेती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी जोर पकड लेती है। झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। जब झूठी नैतिकता को तोडने वाले तत्त्व सक्रिय हो जाते हैं तो अराजकता आती है, स्वच्छन्दता आती है। जब स्वच्छन्दता तेजी को पकड जाती है तो फिर झूठी नैतिकता को समर्थन देने वाले लोग खडे हो जाते हैं। वे कहते हैं स्वच्छन्दता बुरी है, नैतिकता लाओ।

यानी मेरा मानना है कि समाज का अब तक का इतिहास, झूठी नैतिकता, झूठी व्यवस्था और अराजकता के बीच डोलता रहा है। झूठी नैतिकता उतनी ही खतरनाक है जितनी स्वच्छन्दता। और सच तो यह है कि झूठी नैतिकता

ही स्वच्छन्दता पैदा करने का कारण है। अब बहुत दिन हो गये इसके बीच डोलते-डोलते। अब इस बात की चिन्ता हमें करनी चाहिए कि या तो सच्ची नैतिकता स्वीकार कर लें कि आदमी अनैतिक है तो अनैतिक होकर कैसे जिए, उसका इन्तजाम कर ले। या बजाय आदमी को झूठा बनाने के, सच्चे होने की पहली आधार-शीला रख दें। और जो नीति कहती है कि सत्य कीमती है, वह भी अगर आदमी को झूठा बनाने का उपाय करती है तो वह कैसी नीति है? मेरा कहना है कि अगर आदमी अनैतिक ही है तो इसे हम स्वीकार कर ले और अनैतिक आदमी कैसे जिए, इसका इन्तजाम कर लें। यह ज्यादा अच्छा होगा और सरलता से धर्म की तरफ ले जाने वाला होगा। क्योकि अनैतिकता दुःख देगी ही। पाप सुख दे ही नही सकता।

प्रश्न : एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है मगर झूठा पाखण्ड है वह ब्रह्मचर्य। आप उस व्यक्ति को यह मार्ग नहीं दिखलाते कि वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य से सत्य ब्रह्मचर्य को कैसे प्राप्त हो? आप उसको यह मार्ग दिखला दें तो वह पाखण्ड ब्रह्मचर्य को छोड़ ही दे। आप उसे उल्टी ओर ले जा रहे हैं अपनी ओर उसको ले जाइए।

उत्तर : नही, मैं उसे ठीक ओर ही ले जा रहा हूँ क्योकि काम-वासना उतनी खतरनाक नही है जितना पाखण्ड खतरनाक है। पाखण्ड मनुष्य की ईजाद है और काम-वासना परमात्मा की। तो जो आदमी झूठे ब्रह्मचर्य में है, आप सोचते हैं कि मैं उसको ब्रह्मचर्य से भिन्न ले जा रहा हूँ। पाखण्डी ब्रह्मचर्य जैसा ब्रह्मचर्य होता ही नही। पाखण्डी ब्रह्मचर्य वाले मनुष्य के भीतर तो गहरी कामुकता होती है।

प्रश्न : उसे काम-वासना के माध्यम से ही सत्य तक पहुँचना होगा?

उत्तर : हाँ, पाखण्ड से कैसे सत्य तक पहुँच सकता है? सत्य से ही सत्य तक पहुँच सकता है। काम-वासना सत्य है तो काम वासना से ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है। सत्य जो है वह कामवासना की समझ से ही उत्पन्न अन्तिम अनुभूति है। लेकिन पाखण्डी ब्रह्मचर्य जिसने पहले ही थोप लिया है वह सत्य तक कभी नही पहुँच पाता। पाखण्ड छोड़ो तो ही सत्य तक पहुँच सकते हो। ये दो बातें समझने जैसी हैं। काम-वासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है। इस सत्य को समझने से हम और बड़े सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं। यानी ब्रह्मचर्य जो है वह वासना की ही अन्तिम समझ से हुई निष्पत्ति है। यह

वासना के विरुद्ध लड़ी गई बात नही है। वासना को जिसने ठीक से समझा है, पहचाना है, वह धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जिस वासना को पहचानने से इन्कार कर दिया है और झूठा ब्रह्मचर्य ऊपर से थोप लिया है वह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नही होता। पहले उसे झूठे ब्रह्मचर्य से छुड़ाना होगा और सच-सच बताना होगा कि तुम कहाँ हो क्योंकि कोई भी यात्रा तभी हो सकती है जब हम पहले जान लें कि हम कहाँ खड़े हैं। अगर हम इस भ्रम में हैं कि मैं हूँ तो श्रीनगर में, और मैं समझूँ कि मैं बैठा हूँ हिमालय पर तो हिमालय से यात्रा शुरू नही हो सकती। यात्रा वही से शुरू होगी जहाँ मैं हूँ। तो इस व्यक्ति को जिसका पाखण्डी ब्रह्मचर्य है पहले समझना पड़ेगा कि पाखण्डी ब्रह्मचर्य के भ्रम को तु तोड़। अगर तूने कल्पना में ऐसा मान रखा है कि तू ब्रह्मचर्य को पहुँच चुका है तब और ब्रह्मचर्य को पहुँचने का क्या उपाय है ? पाखण्ड का मतलब है कि आदमी जहाँ नहीं पहुँचा है, जान रहा है कि वहाँ पहुँच गया है और जहाँ है वहाँ से इन्कार कर रहा है कि वहाँ मैं नही हूँ।

अब मैं साधु संन्यासियों को मिलता हूँ तो हैरान हो जाता हूँ। सबके सामने तो वे आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं, ब्रह्मचर्य के गुण गाते हैं। एकान्त में वे पूछते हैं कि सेक्स से कैसे छुटकारा हो। अभी तक मैं किसी साधु-साध्वी को नही मिला हूँ जिसने एकान्त में सेक्स के लिए न पूछा हो कि इससे कैसे छुटकारा हो। हम जले जा रहे हैं इस आग में। लेकिन व्याख्यान ब्रह्मचर्य का कर रहे हैं और लोगो को समझा रहे हैं ब्रह्मचर्य की बातें। और जिस ब्रह्मचर्य को समझा रहे हैं, उसे कही भी, कहीं से भी नही जान रहे है कि वह ब्रह्मचर्य कहाँ है ? उसका कारण है कि पहले तो हमारे व्यक्तित्व का जो सत्य है, हम उसे पकड़ें, उसे समझें। जो आदमी सेक्स को ठीक से समझ ले, वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए बिना रह नहीं सकता। उसे ब्रह्मचर्य की ओर जाना ही होगा। यानी उसे ले जाएगा नहीं कोई। उसकी समझ उसकी यात्रा बन जाती है। तो मैं उल्टे नही ले जा रहा हूँ। उल्टे रास्ते वह जा रहा है जो उसको ब्रह्मचर्य समझा रहा है। वह उसे कभी भी ब्रह्मचर्य की ओर नहीं ला सकता। अगर ब्रह्मचर्य की ओर लाना हो तो उसे कामवासना की पूरी समझ देनी होगी। और कामवासना के जितने निहित और गहरे छुपे हुए तथ्य हैं वे सब उसे उघाड़ने पड़ेंगे उसे उस सम्मोहन को तोड़ना पड़ेगा जो कामवासना उसे दे रही है। वह सम्मोहन नहीं टूटता तो वह बाहर से ब्रह्मचारी हो जाएगा मगर भीतर से कामुकता सघन हो जाएगी।

यह जानकर हैरानी होगी तुम्हें कि साधारण रूप से कामुक व्यक्ति इतना कामुक नही होता। उसकी काम-वासना कभी होती है, कभी नही होती। लेकिन जो व्यक्ति ऊपर से ब्रह्मचर्य थोप लेता है वह चौबीस घंटे कामुक होता है। वह एक क्षण भी काम से छुटकारा नही पा सकता क्योंकि जो उसने दबाया है, वह भीतर से निकलने के हजार उपाय खोज लेगा, वह उसके सारे चित्त को घेर लेगा, उसके पूरे चित्त के रग-रेशे में प्रविष्ट हो जाएगा। अब यह ध्यान देने की बात है कि सेक्स का अपना एक सुनिश्चित केन्द्र है। अगर कोई व्यक्ति सामान्य रूप से सेक्स जीवन से गुजर रहा है तो उसके मस्तिष्क में सेक्स कभी नही घुसता। लेकिन जो व्यक्ति पाखण्डी ब्रह्मचर्य को धारण कर लेता है वह सेक्स के केन्द्र पर इतना दमन डालता है कि सेक्स की प्रवृत्ति दूसरे केन्द्र में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् वह उसके मन और चेतना तक में चली जाती है। यह ऐसा ही मामला है जैसा कि आपके घर में रसोई है, और रसोई में धुँआ उठता है तो आपने धुँआ निकलने की व्यवस्था की हुई है। और एक आदमी धुँआ निकलने का विरोधी हो जाए और रसोई से धुँआ निकलने की चिमनी बन्द कर दे तो धुँआ मिटना बन्द हो जाएगा। रसोई है तो धुँआ होगा। अब यह धुँआ बैठक खाने में भी घूमेगा, घर के दूसरे कमरो में भी प्रवेश करेगा क्योंकि रसोई से निकलने का मार्ग तो उसने बन्द कर दिया। परिणाम यह होगा कि वह पूर्ण घर रसोई जैसा हो जाएगा। सारी दीवारें काली हो जाएँगी। और जितना यह धुँआ बढेगा उतना वह घबडाएगा। उतना वह जाकर चिमनी को बन्द करेगा क्योंकि वह कहेगा कि इसको दबाना जरूरी है, यह तो धुँआ और बढता चला जा रहा है। उसे पता नही कि दबाने से ही बढता चला जा रहा है। पशु इतने कामुक नही हैं आदमी के मुकाबले। और मजे की बात है कि पशु एक वक्त ही कामुक होता है। शेष वक्त पर वह भूल जाता है। कारण कि पशु के चित्त में काम का दमन नही है। इसलिए जब वह उसे भोगता है, पूर्ण भोग लेता है। फिर शिथिल हो जाता है, शान्त हो जाता है।

आदमी जो भोग रहे है काम को, जिनके बच्चे भी पैदा हो रहे हैं फिर भी भोग नहीं पा रहे। और जो अभोगा छूट जाता है, वह भोग की माँग करता रहता है। सिर्फ मनुष्य ही चौबीस घंटे साल भर कामुक रहता है। कोई जानवर चौबीस घंटे साल भर कामुक नही रहते। फिर भी जो लोग काम को भोग रहे है, कुछ क्षण के लिए शिथिल भी हो जाते हैं। एक दफा काम का भोग किया तो कम से कम चौबीस घंटे के लिए वे विस्मृत हो जाते हैं। लेकिन साधु संन्यासी

उस घटे में भी विस्मृत नही हो पाते। वे चौवीस घंटे उसी रस में डूबे हुए हैं। मैं उन्हें ब्रह्मचर्य की ओर ले जाने की बात कर रहा हूँ। मैं कह रहा हूँ कि सत्य को समझो, इससे भागो मत, डरो मत, भयभीत मत हो, इसे पहचानो, जागो। जागोगे, पहचानोगे, समझोगे तो यह क्षीण होगा, और एक घड़ी ऐसी आती है कि पूर्ण समझ की स्थिति में सेक्स रूपान्तरित हो जाता है। उसकी सारी शक्ति नए मार्गों से उठनी शुरु हो जाती है। और जब वह नए मार्गों से उठती है तो वह शक्ति व्यक्ति का परम अनुभव हो जाता है।

सेक्स शक्ति के विसर्जन का सबसे नीचे का केन्द्र है। उसके ऊपर और केन्द्र है जिसे हम ब्रह्मरंध्र कहते हैं। वह सेक्स की ही ऊर्जा के विसर्जित होने का अन्तिम श्रेष्ठतम केन्द्र है। नीचे से सेक्स विसर्जित होता है तो प्रकृति में ले जाता है। और जब ब्रह्मरंध्र से सेक्स की शक्ति विसर्जित होती है तो वह परमात्मा मे ले जाती है। और इन दोनों के बीच की जो यात्रा है, वह यात्रा वही शक्ति कर सकती है जो समझपूर्वक सेक्स की ऊर्जा को ऊपर उठाने के प्रयोग में लग जाए। मेरा कहना है कि ब्रह्मचर्य की साधना में सेक्स पहला कदम है, विरोध नही। जिस ऊर्जा को हमें ऊपर चढाना हो, उसे लडकर हम ऊपर नही उठा सकते। उसे समझकर हम प्रेमपूर्ण आमन्त्रण से ही ऊपर उठा सकते हैं क्योंकि लडकर तो हम दो हिस्सो में टूट जाते हैं। और दो हिस्सों में टूटे कि हम गए। पाखण्डी व्यक्ति खंड-खंड हो जाता है। कई खड उसमें हो जाते है। और मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति हो अखण्ड क्योंकि अखण्ड व्यक्ति ही कुछ रूपान्तरण ला सकता है। ब्रह्मचर्य सरल है अगर थोपा न जाए। ब्रह्मचर्य कठिन है अगर थोप लिया जाए। तो मैं कहता हूँ कि समाज को सिखाओ वासना, ठीक से। समाज को सम्यक् वासना सिखाओ, सम्यक् काम सिखाओ।

प्रश्न : महावीर भी यही कहना चाहते थे ?

उत्तर बिल्कुल कहेंगे ही। इसके सिवाय उपाय ही नही है, क्योंकि महावीर भी जिस ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए हैं, वह जन्म-जन्मान्तरो की वासना की समझ का ही परिणाम है।

प्रश्न : वह भोगकर आएगी या बिना भोग के भी आ सकती है ?

उत्तर बिना भोग के नही आ सकती। जिस चीज को मैंने जाना ही नही, जिया ही नही, उसको मैं समझूँगा कैसे ? समझने के लिए मुझे गुजरना पड़ेगा उस मार्ग से। वहाँ कभी भी कोई गुजरा हो, यह सवाल नही है। लेकिन

विना गुजरे कभी भी समझ में नही आ सकती यह बात। और विना गुजरने की जो आकाक्षा है हमारे मन में वह भय है। वह समझ नही आने देगा। वह डर है। वह कहता है जाओ मत उधर। लेकिन जब जाएँगे नही तो जानेंगे कैसे? जीवन में जो भी हम जानते हैं वह हम जाकर ही जानते हैं। विना जाए हम कभी नही जानते और अगर विना जाए कोई रुक गया तो किसी दिन वह जाने की इच्छा ही मुसीबत वन जाएगी।

प्रश्न : भोगने से समझ को प्राप्त हो सकता है?

उत्तर : विल्कुल प्राप्त हो सकता है। कोई सवाल ही नही है। हम जब भोग रहे हैं तभी हम समझपूर्वक भोग सकते हैं। गैर समझपूर्वक भी भोग सकते हैं। अगर हम समझपूर्वक भोगते हैं तो हम ब्रह्मचर्य की ओर जाते हैं। अगर गैर समझपूर्वक भोगते हैं तो हम उसी में घूमते हैं। सवाल भोगने का नही है, सवाल जागे हुए भोगने का है। अब सेक्स के साथ बडा मजा है कि लोग उसे जन्म-जन्मान्तरों मे भोगते हैं लेकिन सोए हुए भोगते हैं। इसलिए कभी भी अनुभव हाथ में नही आ पाता कुछ भी। सेक्स के क्षण में आदमी मूच्छित हो जाता है, होश ही खो देता है। वाहर आता है, जब होश में आता है तो वह क्षण निकल चुका होता है। फिर उस क्षण की माँग शुरू हो जाती है। तो ब्रह्मचर्य की साधना की प्रक्रिया का सूत्र यह है कि सेक्स के क्षण में जागे हुए कैसे रहें। और अगर आप दूसरे क्षणो में जागे हुए होने का अभ्यास कर रहे हैं तभी आप सेक्स के क्षण में भी जागे हुए हो सकते हैं।

ठीक ऐसा ही मृत्यु का मामला है। हम वहुत वार मरे लेकिन हमें कोई पता नही कि हम पहले कभी मरे। उसका कारण है कि हर वार मरने के पहले हम मूच्छित हो गए हैं। मृत्यु का भय इतना ज्यादा है कि मृत्यु को हम जागे हुए नही भोग पाते। और एक दफा कोई मृत्यु में जागे हुए गुजर जाए, मृत्यु खत्म हो गई, क्योंकि वह जानता है कि यह तो अमृत हो गया, मरा तो कुछ भी नही, सिर्फ शरीर छूटा है और सव खत्म हो गया। लेकिन हम मरते हैं कई वार, हम वेहोश हो जाते है। और जव हम होश में आते हैं तव तक नया जन्म हो चुका है। वह जो वीच की अवधि है मृत्यु के गुजरने की, उसकी हमारे मन में कोई स्मृति नही वनती। स्मृति तो तब वनेगी जब हम जागे हुए हो। जैसे एक आदमी को वेहोशी में हम श्रीनगर घुमा ले जाएँ। वह मूच्छित पड़ा है। उसको हमने क्लोरोफार्म सुंघाया हुआ है। श्रीनगर पूरा घुमायें, हवाई जहाज से दिल्ली वापस पहुँचा दें और वह दिल्ली मे फिर जगे और हम उससे कहें तुम श्रीनगर

होकर आए हो। वह कहे क्या पागलपन की बाते है ! मैं यही सोया था, यहीं जगा हूँ। सिर्फ श्रीनगर से गुजर जाना काफी नही है, होश से गुजर जाना जरूरी है। नही तो वह आदमी क्लोरोफार्म की हालत मे श्रीनगर घूम भी गया और फिर दिल्ली पहुँच कर कहेगा कि मैंने श्रीनगर देखा ही नही। मेरे मन में लालसा रह गई श्रीनगर को देखने की। वह मैं देख नही पाया। वह कैसा है श्रीनगर ? इसी तरह हम मृत्यु से मूर्च्छित गुजरते है, इसलिए मृत्यु से अपरिचित रह जाते हैं। जो मृत्यु से परिचित हो जाए वह आत्मा के अमर स्वरूप को जान लेता है। हम सेक्स मे मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए हम सेक्स से अपरिचित रह जाते है। जो सेक्स से परिचित हो जाए, वह ब्रह्मचर्य को जान लेता है। तो मेरा कहना है कि किसी भी स्थिति से अगर हम जागे हुए गुजरे है तो सब बदल जाएगा क्योंकि जो हम जानेंगे, वह बदलाहट लाएगा। अगर आपने एक बार किसी का हाथ पकड कर चूमा है और बहुत आनन्दित हुए है तो दुबारा फिर उस हाथ को होश से चूमें, जागे हुए चूमें और देखे कि आनन्द कहाँ आ रहा है, कैसा आ रहा है, आ रहा है कि नही आ रहा है।

एक दिन बुद्ध एक सडक से गुजर रहे हैं। एक मक्खी उनके कन्धे पर बैठ गई है। आनन्द से बातें कर रहे हैं। मक्खी को उडा दिया है। फिर रुक गए हैं। मक्खी तो उड गई। आनन्द चौंक कर खडा हो गया कि वह क्यो रुक गए ? फिर, बहुत धीरे से हाथ को ले गए कंधे पर। आनन्द ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं, मक्खी तो उड चुकी है। बुद्ध ने कहा कि वह जरा गलत ढग मे उड़ा दी मैंने। मैं तुम्हारी बातो में लगा रहा और बेहोशी में मक्खी उडा दी मैंने। अब मैं जागे हुए ऐसे उडा रहा हूँ जैसे उडाना चाहिए था। यह मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया। मैं मूर्च्छित था, इसलिए दुर्व्यवहार हो गया। अब मैं जागकर उडा रहा हूँ। तो किसी का हाथ चूमा, और बहुत आनन्द आया। फिर दुबारा हाथ पकड लें और पूर्ण होशपूर्वक चूमें और देखें कि कौनसा आनन्द कहाँ आ रहा है तब बहुत हैरान हो जाएँगे। तब देखेंगे कि हाथ है, होठ है, चुम्बन है मगर आनन्द कहाँ ? और वह जो अनुभव जागा हुआ होगा, वह जो हाथ का पागल आकर्षण होगा वह विलीन हो सकता है, बिल्कुल विलीन हो सकता है।

एक बार किसी भी अनुभव से होशपूर्वक गुजर जाएँ तो उस अनुभव की पकड आप पर वही नही हो सकती जो आपकी बेहोशी में थी। तरकीब यह है प्रकृति की कि उसने सब कीमती अनुभव आपको बेहोशी में गुजरवाने का

इन्तजाम किया है। क्योंकि नहो तो आप फिर नही गुजरेंगे उससे। और सेक्स प्रकृति की गहरी जरूरत है। वह सन्तति उत्पादन की व्यवस्था है। वह नही चाहती कि आप उसको छुएँ, उसमें कुछ गडवड करें। वहाँ ले जाकर वह आपको एकदम वेहोशी की हालत में कर देती है। जिसको आप आमतौर से प्रेम आदि कहते हैं, वह सब वेहोश होने की तरकीवें हैं, और कुछ भी नही। आपको वेश्या के साथ सम्भोग करने में वह सुख नही मिलता जो अपनी प्रेयसी से सम्भोग करने में मिलता है। कारण कि वेश्या के पास आपकी मूर्च्छा कभी गहरी नही हो पाती क्योंकि यह धन्धा सौदे का काम है। दस रुपया फेक कर सम्बन्ध वनाया। कोई सम्मोहित होने का सवाल नही है वडा। इसलिए वेश्या वह तृप्ति नही दे पाती जो प्रेयसी देती है। वह पत्नी भी नही दे पाती क्योंकि पत्नी के पास रोज-रोज गुजरने से मूच्छित होने का कारण नही रह जाता। वह सम्बन्ध बिलकुल यांत्रिक हो गया है। लेकिन प्रेयसी के पास आपको पहले मूच्छित होना पडता है, उसे मूच्छित करना पडता है। प्रेमक्रीडा से गुजरने के पहले सारा गोरख-धन्धा एक दूसरे को मूच्छित करने का उपाय है, चूमना है, चाटना हैं, गले मिलना है, कविताएँ सुनाना है, गीत गाना है, अच्छी-अच्छी वाते करना है, एक दूसरे की तारीफ करना है, एक दूसरे को सम्मोहित करना है। जब वे दोनो सम्मोहन मे आ गए तब फिर ठीक है। तब वे वेहोश गुजर सकते हैं।

यह जो मेरा कहना है वह कुल इतना है कि ऐसी किसी भी क्रिया से जिससे हम मुक्त होना चाहते हो कभी भी हम मूच्छित हालत में मुक्त नही हो सकते। और पाखण्ड मूच्छित हालत को थोडे ही तोडता है, उल्टा भ्रम पैदा करवा देता है। और गलत चीजें हमें पकडा देता है। लेकिन हम पकडते ऐसे ढग से हैं कि हमें ख्याल में नही आता। जैसे महावीर हैं। अगर महावीर स्त्रियो को छोडकर जगल चले गए हैं तो हमें लगता है कि हम भी स्त्रियो को छोडें और जगल चले जाएँ। हम महावीर की बुनियादी बात समझना भूल गए हैं। महावीर इसलिए जगल नही चले गए है कि स्त्रियो को छोडे जा रहे हैं। वे इसलिए जगल चले गए हैं कि स्त्रियों में कोई रस नही रहा है। वे जब जगल जा रहे हैं तो पीछे स्त्रियो की स्मृति नहीं है उनके मन में। और आप भी जगल जा रहे है स्त्रियो को छोडकर लेकिन जितनी स्मृति कभी घर पर नही थी, उतनी जगल में आपको घेरे हुए है। और आप समझ रहे है कि आप वही काम कर रहे है जो महावीर कर रहे हैं। आप भी जंगल में जाकर बैठ

जाएँगे। मगर महावीर बैठेंगे तो स्वयं में खो जाएँगे। आप बैठेंगे तो स्त्रियो में खो जाएंगे। आप कहेंगे कि यह तो महावीर ने भी किया जो हम कर रहे हैं। हमारी कठिनाई यह है कि ऊपर का रूप हमे दिखाई पड़ता है। महावीर जगल जाते दिखाई पडते हैं। उनके भीतर क्या घटी है, यह हमें दिखाई ही नही पडता। और अगर वह हमें दिखाई पड जाय तो बिल्कुल बात और ही हो जाएगी।

बिना अनुभव के कोई मुक्ति नही है। पाप के अनुभव के बिना पाप से भी मुक्ति नही है। इसलिए भयभीत होकर जो पाप से रुका हुआ है, वह पाप से मुक्त नही होगा। वह सिर्फ पाप करने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और आज नही, कल वह पाप करेगा ही। और पाप करके पछताएगा। स्वयं पछता कर वह फिर दमन करने लगेगा। दमन करके वह फिर पाप करेगा और फिर पछताएगा और यह एक बुरा चक्र है पाप पश्चात्ताप, पाप पश्चात्ताप। मैं कहता हूँ पश्चात्ताप भूल कर भी मत करना। पश्चात्ताप की जरूरत ही नही है। पश्चात्ताप का मतलब है कि पाप पहले हो गया है, पीछे फिर आप पश्चात्ताप कर रहे हैं। मैं कहता हूं जानकर पाप करना, पूरे जागे हुए पाप करना। जो भी करना पूरे जागे हुए करना। किसी को गाली भी देना तो पूरे जागे हुए देना। शायद दुबारा गाली देने का मौका न आए और पश्चात्ताप की भी जरूरत न पडे।

एक फकीर ने लिखा है कि उसका बाप मर रहा था। बूढे बाप के पास वह बैठा था। उसकी उम्र कोई पन्द्रह-सोलह साल की थी। मरते हुए बाप ने उसके कान में कहा कि तू एक ही ध्यान रखना : किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे से पहले मत देना। और जिन्दगी भर का अनुभव मैं तुझे एक ही सूत्र मे कहे देता हूँ : किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे के पहले देना ही मत। वह फकीर बडी शांति को उपलब्ध हुआ और जब लोगो ने उससे पूछा कि तुम्हारी शान्ति का रहस्य क्या है तो उसने कहा कि रहस्य बडा अद्भुत है। मेरा बाप मर रहा था और उसने कहा था कि चौबीस घंटे से पहले तुम किसी का जवाब ही मत देना। अगर किसी स्त्री ने मुझसे कहा मैं तुझे बहुत प्रेम करती हूँ तो मैं चौबीस घंटे चुप ही रहा। चौबीस घंटे के बाद सब खतम ही हो चुका था क्योंकि वह स्त्री विदा ही हो चुकी थी दिमाग से उसके। उसने कहा : यह क्या बात है। हम जब कहें तब तो तुम कुछ उत्तर ही नही देते। अब आए हो जब नशा ही जा चुका है। किसी ने गाली दी तो वह चौबीस

घंटे बाद जवाब देने गया कि जो तुमने गाली दी थी उसका हम जवाब देने आए हैं। उस आदमी ने कहा . लेकिन अब तो सब बात ही खत्म हो गई। अब क्या फायदा ? अब तुम क्या जवाब दे रहे हो। उस आदमी ने लिखा है कि मैं जब भी चौबीस घंटे बाद गया मैंने पाया कि मैं हमेशा लेट पहुँचता हूँ, ट्रेन छूट चुकी होती है। वह तो उसी वक्त हो सकता था और उसी वक्त अगर होता तो मूर्च्छित होता। और चौबीस घंटे सोच-विचार के बाद हुआ तो वह बड़ा जागृत था। कई दफे तो मैं यह कहने गया कि तुमने गाली बिल्कुल ठीक दी थी। चौबीस घंटे सोचा तो पाया कि तुमने जो कहा था, बिल्कुल ही ठीक कहा था कि मैं बेईमान हूँ। दबाने की बात नहीं है। अगर दबाया चौबीस घंटे तब तो गाली और मजबूत होकर आएँगी। चौबीस घंटे समझने की कोशिश की कि क्या उत्तर देना है उस आदमी को तो बात बदल जाएगी। उसके बाप ने कहा है कि कोई अगर तुम्हें गाली दे तो मैं मना नहीं करता कि तू गाली मत देना और अगर बाप यह कहता कि तू गाली मत देना चौबीस घंटे, बाद क्षमा माँगना तो बात उल्टी हो जाती। तब वह गाली को दबाता। उसके बाप ने कहा कि गाली जरूर देना, मगर चौबीस घंटे बाद देना। लेकिन चौबीस घंटे समझ लेना कि कौन सी गाली देनी है, कितने वजन की देनी है, देनी है कि नहीं देनी है, उसकी गाली का मतलब क्या है ? अगर बाप यह कहता है कि चौबीस घंटे बाद क्षमा माँगने जाना तो शायद वह दमन करता। उसने कहा था कि तू गाली देना मजे से लेकिन चौबीस घंटे बाद। इतना अन्तराल छोड़ देना और यह बड़े मजे कि बात है कि कोई भी बुरा काम अन्तराल पर नहीं किया जा सकता, तत्काल ही किया जा सकता है क्योंकि अन्तराल में समझ आ जाती है, ख्याल आ जाता है।

डेल कार्नेगी ने एक अनुभव लिखा है कि लिंकन पर उसने भाषण दिया रेडियो से और जन्मतिथि गलत बोल गया। उसके पास कई पत्र पहुँचे गुस्से के कि तुमको जन्मतिथि तक मालूम नहीं है, तुमने भाषण किसके लिए दिया और एक स्त्री ने उसको बहुत ही सख्त पत्र लिखा और उसमें वह जितनी गालियाँ दे सकती थी दीं। बड़ा क्रोध आया कार्नेगी को। उसने उसी वक्त रात को उठकर जवाब लिखा। जैसी गालियाँ उसने दी, उसने दुगुने वजन की गालियाँ दी। लेकिन रात को देर हो गई थी और नौकर चला गया था। उसने चिट्ठी दबाकर रख दी। सुबह उठा, सोचा कि एकबार चिट्ठी को पढ़ लूँ। लेकिन अब बारह घंटे का फर्क पड़ गया था। चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि ज्यादती हो गई है

चिट्ठी में। उस स्त्री की चिट्ठी को दुबारा पढा तो वह उतनी सख्त नही मालूम पडी जितनी बारह घंटे पहले मालूम पड़ी थी क्योकि अब दुबारा पढी थी। और अपनी चिट्ठी पढी तो लगा कि जरा सख्त उत्तर हो गया है। दूसरा उत्तर लिखा। वह पहले से ज्यादा विनम्र था। लिखते वक्त उसे ख्याल आया कि बारह घंटे और रुककर देखूँ कि कोई फर्क पडता है क्या ? यह जो बारह घंटे मे इतना फर्क पड गया तो उसने पहली चिट्ठी फाड कर फेंक दी, दूसरी चिट्ठी दबा कर रख दी। सांझ को जब दफ्तर से लौटा, उस पत्र को पढा। उसने कहा अभी भी उसमे कुछ बाकी रह गई है चोट। फिर पत्र तीसरा लिखा। पर उसने कहा ' इतनी जल्दी भी क्या ? औरत ने मांग तो की नही। कल सुबह तक और प्रतीक्षा कर ले। वह सात दिन तक निरन्तर यह करता रहा। सातवें दिन उससे जो पत्र लिखा वह पहले पत्र से बिल्कुल ही उल्टा था। पहला पत्र सख्त दुश्मनी का था। सातवे दिन पत्र मैत्री का था। वह पत्र उसने भेजा। लौटती डाक से उत्तर आया। उस स्त्री ने क्षमा मांगी क्योकि उसको भी समय गुजर गया था। अगर वह गालियां देता तो उसको क्षमा मांगने का मौका ही न मिलता। वह फिर गाली देती। डेल कार्नेगी ने लिखा है कि तब मे मैंने नियम बना लिया कि किसी पत्र का उत्तर सात दिन से पहले देना ही नही है। उसमें होता क्या है ? समय के बीत जाने पर आपके दिमाग का पागलपन क्षीण हो जाता है। बर्नार्ड शा कहता था कि मैं पन्द्रह दिन के पहले किसी पत्र का उत्तर देता नही हूँ। यह सवाल नही है कि आप सात ही दिन प्रतीक्षा करेंगे। एक अन्तराल चाहिए बीच मे। एक विचार का मौका चाहिए। नही तो हम बिना विचार के उत्तर दे रहे हैं।

प्रश्न : किसी के साथ ऐसा चौबीस घंटे मे भी हो सकता है?

उत्तर : हो सकता है। बिल्कुल हो सकता है। उसमें सिर्फ तय यह करना है कि तत्काल उत्तर नही देना है। तत्काल उत्तर मूर्च्छा से आ सकता है ऐसा कोई जरूरी नही है। अगर आदमी जागृत हो तो तत्काल उत्तर मूर्च्छा मे नही आता है। लेकिन चूँकि हम जागृत नही है, इसलिए अन्तराल का सवाल है।

मैं बर्नार्ड शा के सम्बन्ध में कह रहा था वह निरन्तर पन्द्रह दिन तक उत्तर ही नही देता था। पन्द्रह दिन तक उत्तर न देने पर कुछ पत्र अपना जवाब खुद ही दे देते हैं। इस तरह कुछ से छुटकारा हो जाता है। फिर बहुत कम बचते हैं, जिनका उत्तर देने की जरूरत पड़ती है। मेरा मतलब केवल इतना है कि हमारा कोई भी अनुभव, जितना जागरूक हो सके उतना अच्छा है। दमन या

सवाल नही है। मेरी निरन्तर यह धारणा रही है कि अनैतिक व्यक्ति को जितना बुरा कहा गया है, वह कहना गलत है। नैतिक व्यक्ति को जितना भला कहा गया है, वह कहना भी गलत है। मेरी समझ में जीवन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति को सरल और सहज होने का उपाय और मौका हो, न उसकी निन्दा हो, न उसका दमन हो, न उसको जबरदस्ती ढालने-बदलने की चेष्टा हो। लेकिन समाज उसे समझने का विज्ञान और व्यवस्था देता हो, शिक्षा उसे समझने का मौका देती हो। एक बच्चा स्कूल में गया। हम उससे कहते हैं : क्रोध मत करो, क्रोध बुरा है। हम दमन सिखा रहे हैं। सच्चा और अच्छा स्कूल उसे सिखाएगा : क्रोध करो लेकिन जागे हुए। कैसे करो, हम इसकी विधि बताते हैं। क्रोध जरूर करो, लेकिन जागे हुए, जानते हुए, पहचानते हुए करो। हम क्रोध का दुश्मन तुम्हें नही बनाते। केवल तुम्हें हम समझदार क्रोध करना सिखाते हैं। अगर ऐसी व्यवस्था हो तो व्यक्ति धीरे-धीरे क्रोध के बाहर हो जाएगा क्योंकि समझपूर्वक कोई कभी क्रोध नही कर सकता है।

मेरी बात कई दफा उल्टी दिखती है। कई दफा ऐसा लगता है कि इससे स्वच्छंदता फैल जाएगी, अराजकता फैल जाएगी। लेकिन अराजकता फैली हुई है, स्वच्छंदता फैली हुई है। मैं जो कह रहा हूँ उससे स्वच्छंदता मिटेगी, अराजकता मिटेगी। मेरी बातो से कई दफा ऐसा हो सकता है कि साधारण आदमी भ्रान्त हो जाए, गलत रास्ते पर चला जाए। इस सब में एक बात तुम मान कर चले हो कि साधारण आदमी ठीक रास्ते पर है। अगर यह मानकर चलोगे तो हो सकता है कि साधारण आदमी इसलिए साधारण बना है कि वह गलत रास्ते पर है। नही तो कोई आदमी ऐसा नही जो असाधारण न हो जाए। लेकिन जिन रास्तो पर वह चल रहा है, वे रास्ते ही उसे साधारण बना रहे हैं। मैं जानता हूँ कि रास्ते साधारण या असाधारण बनाते हैं। जिन रास्तो पर हम चल रहे हैं, वे रास्ते हमें साधारण बना देते हैं। ऐसे रास्ते भी है जो हमें असाधारण बना सकते है पर उन पर हम चलेंगे तभी। समाज चाहता नहीं कि व्यक्ति असाधारण बने। समाज साधारण व्यक्ति चाहता है क्योंकि साधारण व्यक्ति खतरनाक नहीं होते, विद्रोही नहीं होते, अद्वितीय नही होते, व्यक्ति ही नही होते, सिर्फ भीड होते हैं। समाज चाहता है भीड, नेता चाहते हैं भीड, गुरु चाहते है भीड शोषक चाहते हैं भीड जिसमे कोई व्यक्तित्व न हो। उस भीड का शोषण किया जा सकता है। और मैं कहता हूँ कि चाहिए व्यक्ति क्योंकि भीड की कभी आत्मा नही होती। और एक ऐसी दुनिया, एक

ऐसा समाज बनाने की जरूरत है जहाँ व्यक्ति हो। व्यक्ति अलग अलग होंगे अलग-अलग रास्तो पर चलेंगे। लेकिन यही व्यवस्था होनी चाहिए कि अलग-अलग रास्तो पर चलने वाले लोग, अलग-अलग व्यक्तित्व वाले लोग एक-दूसरे के प्रति प्रेमपूर्वक रह सकें।

पोलपरे के खिलाफ एक आदमी था और उसने पोलपरे को इतनी गालियाँ दी, और उसके खिलाफ किताबें लिखी कि पोलपरे को नाराज हो जाना चाहिए था। वह एक दिन रास्ते में पोलपरे को मिला और कहा कि महाशय, आप चाहते होंगे कि मेरी गर्दन कटवा दें क्योकि मैं आपके खिलाफ ऐसी बातें कर रहा हूँ। पोलपरे ने कहा नही, अगर तुम मुझसे पूछोगे तो तुम जो कह रहे हो उसे कहने का तुम्हें हक है। और इस हक को बचाने के लिए अगर जरूरत पड़े तो मैं अपनी जान गंवा दूँगा हालाकि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है। हमारा भिन्न-भिन्न होने का सवाल नही है। सवाल हमारी भिन्नता की स्वीकृति का है। अभी जो समाज हमने पैदा किया है, वह भिन्नता को स्वीकार नही करता। वह या तो भिन्नता का अपमान करता है या उसका सम्मान करता है। और यदि वह भिन्नता को नही मानेगा और भिन्न रहता ही चला जाएगा तो वह कहेगा : भगवान् है, मगर कभी स्वीकार नही करेगा कि हमारे बीच में है। अच्छी दुनिया वह होगी जहाँ भिन्नता स्वीकृत होगी; एक-एक व्यक्ति का अद्वितीय होना स्वीकृत होगा। और हम दूसरे की भिन्नता को आदर देना सीखेंगे।

अभी हम यह कहते है कि जो हमसे राजी है वह ठीक है, जो हमसे राजी नही, वह गलत है। यह बडी अजीब बात है! यह बहुत हिंसक भाव है कि जो मुझसे राजी है वह ठीक है। जो मुझसे राजी है इसका मतलब यह हुआ कि जिसका कोई व्यक्तित्व नही है, मैं जिसको पी गया पूरी तरह वह ठीक है। और जो मुझसे राजी नही, वह गलत है। यह बहुत ही शोषक वृत्ति है। इसको मैं हिंसा मानता हूँ। और जो गुरु अनुयायियो को इकट्ठे करते फिरते है, वे हिंसक वृत्ति के लोग है। वे कहते है कि हमारे साथ एक हजार लोग राजी है, एक हजार लोग हमें मानते है। यानी एक हजार लोगो को उन्होंने मिटा दिया है। दस हजार लोग हों तो उनको और मजा आए, करोड है तो और, क्योकि इतने लोगो को उन्होंने बिल्कुल पोंछकर मिटा दिया है। ये खतरनाक लोग है। अच्छा आदमी यह नही चाहता कि आप उससे राजी हो। अच्छा आदमी चाहता है कि आप सोचना शुरू करें। हो सकता है कि सोचना आपको

मुझसे बिल्कुल भिन्न ले जाए। मैं यह नही कहता कि जो मैं कहता हूँ वह आप मान लें। मेरा जोर यह है कि आप भी इस भांति सोचना शुरू करें। हो सकता है सोचकर आप उस जगह पहुँचे जहाँ मैं कभी आपसे राजी न हूँ या आप मुझसे राजी न हो। लेकिन आप सोचना शुरू करें। जीवन में सोचना शुरू हो, जागना शुरू हो, दमन बन्द हो, अनुगमन बद हो तब प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा मिलनी शुरू होगी और आत्मा प्रत्येक को असाधारण बना देती है। मुझे इससे चिन्ता नही कि साधारण आदमी भटक जाएगा क्योंकि मैं मानता हूँ कि साधारण आदमी भटका ही हुआ है। अब उसके और भटकने का कोई उपाय नही है। वह क्या भटकेगा और ? उसे हम अगर और भटका दें तो शायद वह ठीक रास्ते पर पहुँच जाए।

प्रश्न : अब जो आपने कहा, क्या उसका यह अर्थ होगा कि जो लोग आपका विचार पढ़ें या सुनें और उसमे जो जैन श्रावक के व्रतो का, या जैन साधु के व्रतों का पालन कर रहे हो, उन्हें सत्य की प्राप्ति के लिए पहले अपने व्रत छोड देने होगे, तभी कुछ हो पाएगा ? यानी सारा जैन समाज, जो श्रावक वर्ग और साधु वर्ग का है, पहले अपने व्रतों को छोड़ दे तभी वह सत्य को पाएगा। इसी के साथ जुडा हुआ यह भी प्रश्न है कि क्या इन अढाई हजार वर्षों मे जिन्होने इन व्रतो का पालन किया, श्रावक या साधु वे सबके सब पाखण्डी थे, उनमे कोई सत्य की सम्भावना नहीं थी।

उत्तर नही, कभी भी सम्भावना नही थी।

असल में व्रत पालने वाला कभी भी पाखण्डी होने से नही बच सकता है। व्रती पाखण्डी होगा ही। सवाल यह है कि व्रत पकडता वही है जो भीतर सोया हुआ है। जो भीतर जग गया है, वह व्रत को नही पकडता है। व्रत आते है उसके जीवन में।

प्रश्न · कोई व्रती पाखडी न रहा हो, यह सम्भव नहीं क्या ?

उत्तर : नही, असम्भव है यह। यह तो ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति आंख फोड ले और फिर सोचे कि उसे दिखाई पड सकता है कि नही। मेरी बात समझ ले। मैं यह कहूँगा कि चाहे अढाई हजार साल तक कोई फोडे आंखें, चाहे हजार साल तक फोडे, आँख फोडकर दिखाई नही पडेगा। और आंख फोडता ही वही है जिसे दिखाई पडने से डर पैदा हो गया है, देखना नही चाहता।

व्रत का मतलब क्या है ? व्रत का मतलब है चित्त की वह दशा जिसके विपरीत आप व्रत ले रहे हैं। व्रत है दमन का नियम। मैं कामवासना से भरा हूँ, ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूँ। हिंसा से भरा हूँ, अहिंसा का व्रत लेता हूँ। परिग्रह से भरा हूँ, अपरिग्रह का व्रत लेता हूँ। परिग्रह का व्रत नहीं लेना पड़ता किसी को, न हिंसा का लेना पड़ता है, न कामवासना का लेना पड़ता है। क्योंकि जो हम हैं उसका व्रत नहीं लेना पड़ता। जो हम नहीं हैं उसका व्रत लेना पड़ता है। तो व्रत का मतलब हुआ कि जो मैं हूँ, वह उलटा है और उससे ठीक भिन्न उलटा व्रत ले रहा हूँ। उस व्रत को बाँधकर मैं अपने को बदलने की कोशिश करूँगा। निश्चित ही व्रत दमन लाएगा, मेरा भाव है लोभ का कि मैं करोड़ों रुपए कमा लूँ और व्रत लेता हूँ कि मैं एक लाख रुपए की ही सीमा बाँधता हूँ। मेरा मन है करोड़ वाला तो मैं करोड़ वाले मन को लाख वाले मन की सीमा में बाँधने की चेष्टा करूँगा। चेष्टा का एक ही परिणाम हो सकता है कि मेरा लोभ दूसरी जगह से प्रकट होना शुरू हो। मेरा मन कहे कि लाख पर अगर तुम रुक गए तो स्वर्ग में तुम्हें जगह मिलेगी। यह लोभ का नया रूप हुआ। लोभ करोड़ का था। लाख पर बाँधने की कोशिश की तो उसकी धाराएँ टूट गईं। अब वह स्वर्ग में लोभ करने लगा कि वहाँ अप्सराएँ कैसे मिलेंगी, कल्पवृक्ष कैसे मिलेगा, मकान कैसा होगा, भगवान् के पास होगा कि दूर होगा ?

प्रश्न : व्रती को निःशल्य तो होना ही है क्योंकि यह तो उसकी शर्त है।

उत्तर : न, नहीं। असल में व्रती निःशल्य हो ही नहीं सकता क्योंकि व्रत ही एक शल्य है। अव्रती निःशल्य हो सकता है। व्रती निःशल्य नहीं हो सकता। शल्य तो लगी है पीछे। काँटा चुभा है छाती में। एक स्त्री निकल रही है, वह अपनी पत्नी नहीं है, तो उसको देखना नहीं है, वह चाहे कैसी भी हो। और जो चुपचाप देख लेता है, वह शायद कम शल्य से भरा हुआ है। काँटा कम है उसके चित्त में। लेकिन जो आँख बंद करके एक तरफ बैठ जाता है कि हमने व्रत लिया है कि हमें पत्नी के सिवाय किसी का चेहरा नहीं देखना है तो उसको एक काँटा चुभा ही हुआ है चौबीस घंटे। व्रती तो निःशल्य हो ही नहीं सकता। अव्रती निःशल्य हो सकता है लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि अव्रती होने से ही कोई निःशल्य हो जाएगा। अव्रती होना हमारे जीवन की स्थिति है। अव्रती दशा में जागना हमारी साधना है। अव्रती स्थिति में दो विकल्प हैं या तो अव्रती स्थिति को व्रत लेकर तोड़ो। लेकिन तब भीतर

जागने की कोई जरूरत नही पडती। दूसरा रास्ता यह है कि अव्रती स्थिति के प्रति जागो ताकि अव्रती स्थिति विदा हो जाए। तव व्रत से तुम जो माग करते थे, वह आएगा। वह तुम्हें लाना नही पडेगा।

जैसे मैंने उदाहरण के लिए अभी कहा कि सेक्स हमारी स्थिति है, ब्रह्मचर्य हमारा व्रत है। सेक्स के प्रति जागना साधना है। जो व्यक्ति सेक्स की स्थिति को अस्वीकार करेगा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर, उसका सेक्स कभी मिटाने वाला नही। व्रत वाहर खडा रहेगा, सेक्स भीतर खडा हो जाएगा। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का व्रत नही लेता, सिर्फ सेक्स की वस्तुस्थिति को समझने की साधना का प्रयोग करता है, उसका धीरे-धीरे सेक्स विदा होता है और ब्रह्मचर्य आता है। यानी ब्रह्मचर्य तुम्हारे व्रत की तरह कभी नही आता; वह तुम्हारी समझ की छाया की तरह आता है। और जब आता है तो तुम्हें कसम नही खानी पडती किसी मन्दिर में जाकर कि मैं ब्रह्मचर्य धारण रखूगा। क्योकि कोई सवाल ही नही है। आ गया है। इसके लिए कोई कसम की जरुरत नही है और जिसकी तुम कसम खाते हो उससे तुम सदा उलटे होते हो। और जो तुम होते हो उसकी तुम्हें कभी कसम नही खानी पडती।

प्रश्न . पर इतने लम्बे काल मे जो साधक हुए, उनमे कोई ऐसा साधक नहीं जिसका सहज फलित ब्रह्मचर्य हो ?

उत्तर . वह विलकुल अलग वात है। मगर उसको मैं व्रती नही कह रहा। तुम जो कह रहे हो कि अढाई हजार साल मे व्रती व्रती तो कभी नहीं पहुँचता। अढाई हजार साल या पच्चीस हजार साल हो उसका कोई सवाल नही उठता। व्रती तो कभी नही पहुँचता। जो पहुँचता है वह सदा अव्रती, प्रज्ञावान् व्यक्ति होता है। पर इनमे कुछ लोग ऐसे हैं जैसे कुन्दकुन्द। कुन्दकुन्द वैसा ही व्यक्ति है जैसा महावीर। कुन्दकुन्द कोई व्रत नही पाल रहा है। वह समझ को जगा रहा है। जो समझ रहा है, वह छूटता जा रहा है। जो व्यर्थ है, वह फिकता चला जा रहा है। लेकिन है वह अव्रती व्यक्ति। और वह जो व्रती व्यक्ति है, वह सदा झूठ है, निपट पाखण्ड है। व्रत पालना विल्कुल सरल है। इसमें क्या कठिनाई है ? क्योकि यह सिर्फ वासनाओ को दवाना है। लेकिन व्रत पालने से कोई कभी कही नही पहुँचा। महावीर को भी मैं अव्रती कहता हू। कुन्दकुन्द भी अव्रती है। ऐसा है उमास्वाति। ऐसे कुछ और लोग भी है। लेकिन जव तुम कहते हो 'जैन श्रावक', 'जैन साधु' तो न तो कुन्दकुन्द जैन है, न उमास्वाति जैन है। मतलव यह है कि

जिनको जैन होने का कोई पागलपन नहीं है। जिनको जैन होने का पागलपन है, वे कभी नहीं पहुँचते। क्योंकि जैन होने का भ्रम व्रत आदि से होता है कि मैं रात को खाना नहीं खाता इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैं पानी छानकर पीता हूँ इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैंने अणुव्रत लिए हुए हैं इसलिए मैं जैन हूँ, कि मैं सामायिक करता हूँ, इसलिए मैं जैन हूँ। यानी इसका जैन होना व्रतों पर ही निर्भर है। वह श्रावक है, तो श्रावक के व्रत हैं। साधु है तो साधु के व्रत हैं। अव्रती बात ही अलग है। सब अव्रती हैं। लेकिन अव्रती स्थिति में जो प्रज्ञा को जगाता है तो वह अव्रती सम्यक् हो जाता है।

प्रश्न : मैं समझता हूं कि जैसा शास्त्र कह ही रहे हैं कि जो व्यक्ति व्रत, अव्रत दोनों से ऊपर हो जाता है वही बात आप कह रहे हैं।

उत्तर वह तो पीछे होगा। लेकिन व्रत पालनेवाला, व्रत बाधनेवाला कभी नहीं हो पाएगा। समझ आएगी तो चीजें मिट जाती हैं। उदाहरण के लिए, अगर समझ आएगी तो हिंसा मिट जाती है। शेष रह जाती है अहिंसा। लेकिन व्रती की हिंसा भीतर होती है और वह अहिंसा थोपता है। व्रती की अहिंसा हिंसा के विरोध में तैयार करनी पड़ती है। प्रज्ञावान् की हिंसा विदा हो जाती है, शेष रह जाती है अहिंसा। प्रज्ञावान् की अहिंसा हिंसा का विरोध नहीं है, वह हिंसा का अभाव है। व्रती की अहिंसा हिंसा का विरोध है, अभाव नहीं। और जिसका विरोध है, वह सदा मौजूद रहता है। वह कभी नहीं मिटता।

प्रश्न व्रत निरर्थक है। यह व्रत पालने से मालूम पड़ेगा?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल पड़ेगा। और जितने व्रती हैं, उनको जितने जोर से मालूम पड़ता है, उतना आपको नहीं मालूम पड़ता। अगर वे भी मेकम की तरह इसमें मूच्छित हो लगे हो कि रोज सुबह मन्दिर चले जाते हैं मूच्छित और कभी जागकर नहीं देखा कि क्या मिला, यह प्रश्न ही अगर न पूछा तो जन्म जन्मान्तर तक व्रत मानते रहेंगे। यह प्रश्न पूछ लिया हो तो अभी टूट जाएगा इसी वक्त। अगर व्रती समझ ले मेरी बात को तो उसको जल्दी समझ में आ जाएगी बजाए आपके। क्योंकि उसको व्रत की व्यर्थता का अनुभव भी है। लेकिन वह अनुभव को देखना नहीं चाहता, मूर्च्छा की तरह चला जाता है। वह कहता है अभी नहीं हुआ तो कल होगा, कल नहीं हुआ तो परसों होगा और कुछ तो हो ही रहा है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि मैं

इतने दिन से णमोकार का पाठ कर रहा हूँ तो मैं पूछता हूँ उससे क्या हुआ ? वह कहता है, बडा अच्छा लग रहा है, शाति लग रही है। फिर थोडी देर में मुझसे पूछता है . शाति का कोई उपाय बताइए ? मैं कहता हूँ : अब मैं कैसे बताऊँ तुम्हे जब मिल ही रही है शाति। वह कहता है ' नही, अभी कुछ खास नही मिल रही। मैं कहता हूँ तुम मुझे बिल्कुल साफ-साफ कहो। अगर थोडा-थोडा लगता है तो करते चले जाओ, धीरे-धीरे ज्यादा लगने लगेगा फिर मुझसे मत पूछो। तुम बिल्कुल ईमानदारी से कहो कि सच में कुछ हुआ है। वह कहता है . कुछ हुआ तो नही है। यानी वह जो कह रहा था उसकी भी उसे होश नही थी कि वह क्या कर रहा है। एक आदमी कहता है कि मैं मन्दिर जाता हूँ रोज। वह फिर भी पूछता है "शान्ति चाहिए"। उसको पूछो तो वह कहता है कि मन्दिर जाने से शान्ति मिलती है। मिलती है तो फिर अब और क्या शाति चाहिए ? ठीक है, जाओ। वह कभी जागा हुआ ही नही है कि वह क्या कह रहा है, क्या कर रहा है, वह भी सुनी-सुनाई बातें दोहरा रहा है। यानी मन्दिर जाने से शाति मिलती है, यह उसने सुना है और वह मन्दिर जाता है। अब वह भी कह रहा है कि बडी शाति मिलती है।

अगर जगे कोई व्रती तो व्रत से एकदम मुक्त हो जाए। अव्रती भी समझ ले तो उसके भी समझ में आ सकता है, क्योकि ऐसे हम अव्रती भले हो, चाहे हमने कभी कसम खाकर व्रत न लिए हो लेकिन वैसे किसी न किसी रूप में हम सब व्रती हैं। जैसे कि आपने शादी की तो पत्नीव्रत या पतिव्रत लिया। आपको ख्याल में नही है। मन्दिर में जाकर नही लिया जाता, वह तो हम चौबीस घटे जो भी कर रहे हैं, उसमें व्रत पकड रहे हैं। और अगर हम जाग जाएँ तो हमको पता चले कि कुछ हुआ नही है उस व्रत से। चीजे कही बदली नही हैं। और चित्त वैसा ही रह गया है जैसा था। चित्त की वही दौड है, वही भाग है। वह तो सभी चीजें अनुभव से आती है लेकिन जिन्दगी मे व्रत चल ही रहे हैं चौबीस घटे। जैसे एक व्यक्ति है जो कहता है . "मेरे पिता है, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ।" यह व्रत ले रहा है सेवा का। इसको पिता की सेवा करने में कोई आनन्द नहीं है। यह कह रहा है "कर्तव्य है"। यह व्रती आदमी है। पिता की सेवा भी कर रहा है और पूरे वक्त क्रोध से भी भरा हुआ है कि कब छुटकारा हो जाए, यह पैर दबाने से कब छुटकारा मिले ? लेकिन यह व्रतपूर्वक, नियमपूर्वक कर रहा है। पिता है इसलिए कर रहा है। अब सच बात तो यह है कि इसको कभी आनन्द नही मिलेगा। यानी पिता हैं',

इसलिए पैर दबाऊँ, अगर यह कर्त्तव्य भाव है तो आनन्द कभी नही मिलेगा। और अगर इसे आनन्द आ रहा है पैर दबाने में तो फिर व्रत नही रह गया। फिर इसकी एक समझ है, एक प्रेम है, एक दूसरी बात है। एक नर्स है। वह एक बच्चे को व्रतपूर्वक पाल रही है। एक माँ है। वह अपने बच्चे को आनन्द-पूर्वक पाल रही है। और अगर कोई उस माँ से पूछेगा कि 'तूने अपने बेटे के लिए बहुत किया तो वह कहेगी कि कुछ भी नही कर पाई। जो कपडे देने थे नही दे पाई, जो खाना देना था नही दे पाई। लेकिन कोई नर्स से पूछे 'तुमने फला लडके के लिए बहुत किया।' वह कहेगी 'बहुत किया। पाँच बजे सुबह से काम पर जाती थी, पाँच बजे शाम को लौटती थी। बहुत किया।'

कर्त्तव्य, व्रत की भाषा है, व्रत की बात है। प्रेम अव्रत की भाषा है, अव्रत की बात है। लेकिन अव्रत अकेले काफी नही है। अव्रत और जागरण। वह कोई भी करे, जैन करे, मुसलमान करे, ईसाई करे, पुरुष करे, स्त्री करे, इससे कोई सम्बन्ध नही है। घटना उस करने मे घटती है। लेकिन होता क्या है: परम्पराएँ धीरे-धीरे जड नियम बन जाती है और जड नियम थोपने की प्रवृत्ति शुरू हो जाती है और जब जड-नियम थोप दिए जाते है और लोग उन्हें स्वीकार कर लेते है तो वे जड नियम भी लोगो को जड करते है। इसलिए व्रती व्यक्ति जड होता चला जाता है धीरे-धीरे।

प्रश्न . महावीर का पौरुष या व्रती का जागरण जल्दी फलित होगा या अव्रती का जागरण जल्दी फलित होगा ?

उत्तर जागरण, चाहे वह अव्रती का हो या व्रती का हो, फलीभूत होता है। आप जिस स्थिति में हो, वही जाग जाएँ। हम किसी न किसी स्थिति में है हो, किन्ही-न-किन्ही सीमाओ में बघे है, कुछ न कुछ कर रहे है। कोई दूकान चला रहा है, कोई मन्दिर में पूजा कर रहा है, कोई मकान बना रहा है, कोई मन्दिर बनवा रहा है, कोई उपवास कर रहा है, कोई खाना खा रहा है। हम कुछ न कुछ कर रहे हैं। हम जो भी कर रहे है उसके प्रति जागरण फलीभूत होता है। हम जो भी कर रहे हैं इसमे कोई सम्बन्ध नही। एक आदमी चोरी कर रहा है और एक आदमी पूजा कर रहा है। करने के प्रति जागने मे फल आना शुरू हो जाता है। चोरी करने वाला चोरी करने के प्रति जाग जाए तो वही फल लाएगा। जागरण के पीछे फल होगा अवश्य।

प्रश्न व्रती का ज्यादा होगा या अव्रती का ?

उत्तर : असल बात यह है कि यह होगा। यह बड़ी बात है। बड़ी इसलिए है कि कौन सा व्रत ? एक आदमी व्रत लिए है पाँच बार माला फेर लेना। एक आदमी चोरी करने जा रहा है। यह प्रत्येक घटना पर निर्भर करेगा कि क्या व्रत या क्या अव्रत ? लेकिन कुल कीमत की बात इतनी है कि आदमी जो भी कर रहा है, उसके प्रति उसे जागकर करना है। वह मन्दिर जा रहा हो तो भी जागना है, वेश्यालय जा रहा हो तो भी जागना है। जो भी करे उसे होशपूर्वक करना है। होशपूर्वक करने से जो शेष रह जाएगा वह धर्म है। जो मिट जाएगा, वह अधर्म है।

प्रश्न : महावीर क्या इसी जागरूकता को पौरुष और क्षात्रधर्म मान रहे हैं या कोई और पौरुष है ?

उत्तर : इसको ही, इससे बड़ा और कोई पौरुष नहीं है। नींद तोड़ने से बड़ा कोई पौरुष नहीं है।

प्रश्न : पर आपने यह भेद किया कि एक मार्ग आत्मसमर्पण का है, दूसरा पौरुष का है।

उत्तर : हाँ, हाँ, नींद तोड़ना दोनों में बराबर है। मगर बिल्कुल ही अलग-अलग रास्ते से नींद टूटेगी। समर्पण करने वाले की नींद अगर थोड़ा भी पौरुष हुआ तो नहीं टूटेगी। क्योंकि समर्पण करने में एकदम स्त्रीभाव चाहिए। यानी समर्पण करने में यही पौरुष होगा कि पौरुष बिल्कुल न हो। और पौरुष करने वाले में यही पौरुष होगा कि उसमें समर्पण का भाव न हो जरा भी। महावीर के हाथ तुम किसी के प्रति नहीं जुड़वा सकते हो। तुम कल्पना ही नहीं कर सकते हो कि यह आदमी हाथ जोड़े हुए खड़ा हो कहीं।

प्रश्न : वह अपने आन्तरिक शत्रुओं से लड़ा, यह पौरुष नहीं है ?

उत्तर : नहीं, नहीं, कोई आन्तरिक शत्रु नहीं है सिवाय निद्रा के, मूर्च्छा के, प्रमाद के। इसलिए महावीर से कोई पूछे : धर्म क्या है ? वह कहेंगे : अप्रमाद। और अधर्म क्या है ? वह कहेंगे : प्रमाद। कोई पूछे कि साधुता क्या है ? वह कहेंगे : अमूर्च्छा। असाधुता क्या है : वह कहेंगे : मूर्च्छा। और सारी साधना का सूत्र है विवेक। कैसे कोई जागे, कैसे कोई होश से भरा हुआ हो तो महावीर का पौरुष काम, क्रोध, लोभ से लड़ने में नहीं है। क्योंकि ये तो लक्षण हैं सिर्फ। इनसे पागल लड़ेगा। इनसे महावीर नहीं लड़ सकता। मूर्च्छा है मूल वस्तु। काम, क्रोध, लोभ, सब इससे पैदा होते हैं। जैसे कि तुम्हें बुखार चढ़ा। अगर

कोई बुद्धिहीन वैद्य मिल गया तो वह तुम्हारे शरीर की गर्मी से लड़ेगा। ठंडा पानी डालेगा तुम्हारे ऊपर शरीर की गर्मी को कम करने के लिए। लेकिन बुद्धिमान् वैद्य कहेगा कि गर्मी बुखार नहीं है। गर्मी केवल खबर देती है कि भीतर कोई बीमारी है। यह केवल सूचना है, यह लक्षण है। इससे लड़े तो मरीज मरेगा। बीमारी से लड़ो ताकि यह लक्षण विदा हो जाए। बीमारी विदा हुई तो शरीर से ताप विदा हो जाएगा। लेकिन शरीर से ताप विदा करने की कोशिश की तो बीमारी का विदा होना जरूरी नहीं। आदमी मर भी सकता है। तो काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये लक्षण हैं कि भीतर आदमी मूर्च्छित है। ये सिर्फ खबरें हैं, मूर्च्छा टूटेगी तो ये विदा हो जाएँगे। और अगर मूर्च्छा से बचते हुए व्रत को लेकर इनको खत्म करने की कोशिश की तो ये कभी खत्म नहीं होंगे क्योंकि मूर्च्छा भीतर जारी है। वह नए-नए रूपों में इनको पैदा करती रहेगी। सिर्फ रूप बदल जाएँगे ज्यादा से ज्यादा। एक कोने से न निकल कर दूसरे दरवाजे से झरना निकलेगा। महावीर तो बहुत स्पष्ट हैं कि साधना यानी अमूर्च्छा, संघर्ष यानी मूर्च्छा, संकल्प यानी जागरण। इसके अतिरिक्त और कोई सवाल ही नहीं है उनके लिए।

प्रश्न : आचारांग का एक वाक्य है। उसका अर्थ यह है कि 'तू बाह्य शत्रुओं से क्यों लड़ता है, अपनी आत्मा के शत्रुओं से ही लड़।' यह वाक्य आपके विचार में किसी ढंग से व्याख्येय है, या अशुद्ध ही है।

उत्तर : मैं तो फिक्र नहीं करता सूत्रों की। क्योंकि जो लोग उन्हें संगृहीत करते हैं वे कोई बहुत समझदार लोग नहीं हैं। इनकी मैं फिक्र नहीं करता। इनसे कोई ताल-मेल बैठाने का सवाल नहीं है। बैठ जाए, वह आकस्मिक बात है। न बैठे, उसकी कोई जरूरत नहीं है। 'आन्तरिक शत्रुओं से लड़' यह कहीं न कहीं बुनियादी भूल हो गई क्योंकि 'शत्रुओं' शब्द बहुवचन में है। 'आन्तरिक शत्रु से लड़'—यह ठीक बात रही होगी क्योंकि 'शत्रु' एकवचन में है। आन्तरिक शत्रु सिर्फ मूर्च्छा है। महावीर हजार बार दोहरा कर यह कह रहे हैं। इसलिए बहुत शत्रु नहीं हैं भीतर। शत्रु एक ही है और मित्र भी एक ही है। 'जागरण' मित्र है, मूर्च्छा शत्रु है। इसलिए सुनने वाले ने कहीं न कहीं भूल कर दी है। आन्तरिक शत्रुओं से लड़ने में वह फिर काम, क्रोध, और लोभ वाली दुनिया में उतर आया है। वह इन्हीं की बात कर रहा है फिर क्योंकि शत्रुओं का प्रयोग उसने बहुवचन में किया है। एकवचन में होता तो मैं राजी हो जाता कि बिल्कुल ठीक है। भूल हो गई बुनियादी। फिर वह इन्हीं को शत्रु समझ रहा है।

ये शत्रु हैं ही नही। शत्रु कोई और है। ये उसकी फौजें हो सकती हैं। यानी इनसे लडने का कोई मतलव नही है। मालिक कोई और है। वह मालिक नई फौजें भेजता रहेगा। अगर पुरानी तुमने हटा भी दी तो नई फौजें आती रहेंगी। 'आन्तरिक शत्रु' से लडना है, 'शत्रुओं' से नही।

अक्सर ऐसा हो जाता है कि हमारी जो समझ होती है वह भटक जाती है। इसको यह ख्याल में नही आता कि शत्रु एक है। हमारे ख्याल में आता है कि शत्रु वहुत है। मगर शत्रु एक ही है और इसलिए जो वहुत शत्रुओ से लड रहा है, वह वुनियादी भूल कर रहा है क्योंकि मजा यह है कि अगर काम चला जाए तो लोभ चला जाता है, क्रोध चला जाता है, मोह चला जाता है। इनमें से एक को विदा कर दो, वाकी तीन को वचा लो तो मैं समझूँ कि यह अलग है। अगर कोई यह कहता हो कि मैंने लोभ विदा कर दिया, लेकिन अभी काम वचा हुआ है तो यह असम्भव है। क्योंकि काम के साथ अनिवार्य लोभ है। यानी वे चार जो तुम्हें दिखाई पड रहे हैं—काम, क्रोध, लोभ और मोह—वे संयुक्त हैं और उन सव का संयुक्त जो तना है नीचे, वह मूर्च्छा है। वहाँ से शाखाएँ निकलती रहती हैं। अव सव लोग इस उलटे काम में लग जाते हैं। कोई लड रहा है क्रोध से कि मुझे क्रोध जीतना है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि हमें कोध वहुत ज्यादा है, क्रोध से वचने का उपाय वताइए। वे समझ रहे है, क्रोध उनका शत्रु है। क्रोध शत्रु नही है। क्योंकि वाकी अगर तीन की वे फिक्र नही कर रहे हैं तो इस क्रोध से कुछ हल नही होगा। तव चारो की एक साथ फिक्र करनी होगी। जैसे की एक वृक्ष है, उसमें कई शाखाएँ हैं। एक आदमी एक शाखा काट रहा है, दूसरा आदमी दूसरी शाखा काट रहा है और नीचे के तने पर आदमी पानी सीचते हैं सुवह उठ कर। नीचे के तने पर पानी सीचते हैं रोज और रोज वृक्ष पर चढ कर शाखाएँ काटते है। एक शाखा कटती है तो दो पैदा हो जाती हैं, दो कटती है तो चार पैदा हो जाती हैं। और नीचे के तने पर पानी दिए चले जाते है। मजा यह है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह से हम लडते हैं और मूर्च्छा पर पानी दिए चले जाते है। और "मूर्च्छा से वे सव पैदा होते हैं। तो जो थोडी सी गहराई में उतरेगा वह कहेगा: मूर्च्छा से लड़ना है।" और लडना क्या है जागना है। वह लडना हो नही, जागना होगा। कभी जागा हुआ आदमी लोभी नही पाया गया, और सोया हुआ आदमी कभी अलोभी नही हुआ, अकामी नही हुआ।

इसलिए मेरे हिसाब में, काम, क्रोध, लोभ सोए हुए आदमी के लक्षण हैं। जब ये बाहर दिखाई पडते हो तो भीतर आदमी सोया हुआ है। जब ये बाहर दिखाई नही पडते तो भीतर आदमी जागा हुआ है। लेकिन कोई उससे उलटी तरकीब में लग जाय कि इनको दिखाई न पडने दे तो कोई फर्क नही पडता। व्रती यही कर रहा है कि क्रोध को दिखाई न पड़ने देंगे तो हो सकता है दिखाई न पडे। दबा ले तरकीबो से। लेकिन फिर भी वह पहचाना जा सकता है। और उसके भीतर तो रहेगा ही। अगर कोई ढंग से उसको उकसाए तो क्रोध निकाला जा सकता है। यानी उसके क्रोध नए-नए रूप लेंगे और हो सकता है कि कई बार हम उसको उकसा भी न पाएं क्योंकि उसको उकसाने की तरकीब हमें पता न हो। उस तरकीब को अगर हम पकड लें तो फौरन उसको उकसाया जा सकता है।

व्रत से कभी कुछ नही मिटता क्योंकि व्रत शाखाओ से लडाई है। और कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त हुआ हो तो वह दमन से मुक्त नही हुआ होगा। वह जब भी मुक्त हुआ होगा जागरण से ही मुक्त हुआ होगा। यह दूसरी बात है कि उस दिन की भाषा साफ न हो, अभिव्यक्ति साफ न हो। मगर अभिव्यक्ति निरन्तर साफ होती चली जाती है। जैसे समझ लें कि न्यूटन ने खबर बताई कि चीजें गिरती हैं क्योंकि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है। कोई हमसे पूछे कि न्यूटन के पहले जो चीजें गिरती रही, वे भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। न्यूटन ने तो अभी तीन सौ साल पहले कहा कि चीजें ऊपर से नीचे गिरती हैं क्योंकि जमीन खीचती है, गुरुत्वाकर्षण है। कोई आदमी हमसे पूछ सकता है कि क्या न्यूटन के पहले चीजे नीचे नही गिरती थी और अगर गिरती थी तो वह भी क्या गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। तो हम कहेंगे कि वह भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थी। जब भी कोई चीज गिरी है, गुरुत्वाकर्षण से ही गिरी है। खबर अभी न्यूटन ने ही दी है। न्यूटन ने सिर्फ नियम बनाया है। चीजें गिर ही रही थी सदा से। लेकिन इसको न्यूटन ने पहली बार स्पष्ट किया है। महावीर मुक्त हुए हों, कि कृष्ण मुक्त हुए हों, दमन से नही, सदा जागरण से हुए होंगे। यह बात फ्रायड ने पहली बार स्पष्ट की है। इस नियम को पहली बार ठीक-ठीक वैज्ञानिक ढग से कहा है। और इसलिए अब जो लोग महावीर को समझने के लिए फ्रायड के पूर्व की भाषा का उपयोग कर रहे हैं, वे महावीर को कभी भी आज के युग के लिए उपयोगी नहीं बनने देंगे क्योंकि वह बुनियादी गलत बातें और गलत शब्द उपयोग करते रहेंगे।

यह भूल निरन्तर होती रही है, क्योंकि महावीर के साथ अनिवार्य रूप से अढाई हजार साल पुरानी शब्दावली जुड़ी हुई है, जब न फ्रायड हुआ है, न मार्क्स हुआ है, न आइस्टीन हुआ है। और अगर उसी को पकड कर अनुयायी शोर मचाना चाहता है तो वह कभी भी उसको उपयोगी नही बना सकता। वह तो जैसे-जैसे शब्द बदलते जाते हैं, नए-नए शब्द आते जाते हैं, उनको हमें समझपूर्वक उपयोग करना चाहिए। वैसी घटना जब भी घटी होगी दमन से कभी नही घटी होगी। यानी वह वैज्ञानिक असम्भावना है। उसका महावीर से कोई लेना-देना नही है। यानी दो ही उपाय हैं। अगर कोई कहे कि दमन से महावीर उपलब्ध हुए हैं तो फिर महावीर उपलब्ध न हुए होंगे। दूसरा उपाय है कि अगर वह उपलब्ध हुए तो उन्होने दमन न किया होगा। यानी इसके सिवाए कोई मार्ग ही नही है। मैं मानता हूँ कि वह उपलब्ध हुए क्योंकि जैसी शाति, जैसा आनन्द और जैसी ज्योति उनके व्यक्तित्व में आई, वह कभी दमित व्यक्ति को आ ही नही सकती। दमित व्यक्ति के चेहरे पर, मन पर सब ओर तनाव होता है क्योंकि जो दबाया है, वह दिक्कत देता रहता है। सिर्फ विमुक्त आदमी के मन में ऐसी शाति हो सकती है जैसी महावीर के मन में है। जिसने कुछ भी नही दबाया, वह मुक्त हो गया। मुक्ति और दमन उल्टे शब्द है—यह हमें ख्याल में नही। दमन का मतलब है भीतर दबाया गया, मुक्ति का मतलब है छूट गया, विसर्जित हो गया। क्रोध विदा ही हो गया है, चला ही गया है, दबाया नही गया।

प्रश्न : आपने कहा कि जागृति आती है तो मूर्च्छा चली जाती है। मूर्च्छा के प्रति जागृत होना चाहिए, उसकी शाखा से लड़ने की जरूरत नहीं ?

उत्तर : कोई जरूरत नहीं।

प्रश्न : आपका मतलब है कि अव्रत की अकेले जरूरत नहीं। साथ में जागृति की भी जरूरत है।

उत्तर : मेरा कहना है कि जागृति आ जाएगी तो अव्रत आ ही जाएगा। अव्रत है ही हमारा। व्रती का मतलब है कि जो नियम बाधकर जी रहा है। अव्रती का मतलब है जो नियम बाधकर नही जी रहा है। अव्रती हम हैं ही। उसे लाने का सवाल नही है।

कुछ हम में व्रती हैं : मन्दिर जाने वाले, मस्जिद जाने वाले, पूजा-पाठ करने वाले, नियम धर्म से जीने वाले। बाकी लोग अव्रती हैं। व्रती को व्रत के प्रति जाग जाना चाहिए और अव्रती को अव्रत के प्रति। जो हम कर रहे हैं उसी के प्रति जाग जाना चाहिए। जागने से वह आ ही जाएगा। जो व्रती चेष्टा कर रहा है व्रत से लाने की वह अपने आप आ जाएगा।

प्रश्न : जागरण के साथ विशेषण विवेक का होना जरूरी है अथवा नहीं? क्योंकि अविवेक हो तो जागरण कैसे हो सकता है?

उत्तर : नहीं, विवेकपूर्ण जागना नहीं हो सकता। जागरण अनिवार्य रूप से विवेकपूर्ण होता है। असल में जागरण और विवेक एक ही अर्थ रखते हैं। जैसे हम यह नहीं कह सकते "जीवित मुर्दा" वैसे ही हम अविवेकपूर्ण जागरण नहीं कह सकते। ये विपरीत शब्द हैं। विवेक यानी जागरण। विवेक से आम ख्याल होता है कि यह गलत है और यह सही है।

लेकिन ऐसा विवेक आप जब तक करते हैं, और कहते हैं कि यह ठीक मानूं, यह गलत मानूं तब तक आपको विवेक नहीं होता। तब तक विवेक-शील लोगों ने जिसको ठीक दिया है, और जिसको गलत माना है, वह आपने पकड़ लिया है। जिस दिन आपका विवेक होगा उस दिन यह तय नहीं करना पड़ता है कि यह गलत है या सही है। जो सही है वह होता है, जो गलत है वह नहीं होता है। सही होता है जागे हुए व्यक्ति से। गलत होता है सोये हुए व्यक्ति से। जागे हुए व्यक्ति से गलत नहीं होता, सोये हुए व्यक्ति से सही नहीं होता। असत्य है यह बात कि कोई अविवेकपूर्ण जागरण होता है क्योंकि जागरण है तो अविवेक टिकेगा कहाँ, ठहरेगा कहाँ?

प्रश्न : परतन्त्रता, स्वच्छंदता और स्वतन्त्रता में क्या फर्क है?

उत्तर : बहुत फर्क है।

परतन्त्रता का मतलब है जो हमसे करवाया जा रहा तो हम वही करें। स्वच्छन्दता का मतलब होता है जो हमसे करवाया जा रहा हो, वह हम नहीं कर रहे, हम उससे विपरीत करते हैं। विद्रोह भी परतन्त्रता है यानी विद्रोह में चली गई परतन्त्रता। जैसे कि बाप ने कहा कि "मन्दिर जाना" मगर लड़का मन्दिर नहीं जा रहा है।

एक परतन्त्र है, एक स्वच्छंद। लेकिन जो स्वच्छंद है वह परतन्त्रता के खिलाफ है इसलिए वह विद्रोही परतन्त्र है। इन दोनो से भिन्न स्वतन्त्रता है जिसका मतलब है कि वह न इसलिए जाता है मन्दिर कि बाप कहता है और न इसलिए नही जाता है कि बाप कहता है। वह सोचता है, समझता है। ठीक लगता है तो जाता है, ठीक नहीं लगता तो नही जाता। मगर वह न तो परतन्त्र है, न स्वच्छद।

प्रश्न : आपने पीछे कहा कि देवताओं के पास, भूत-प्रेतों के पास वाणी नहीं होती। और कल आपने कहा कि आर्मस्ट्रांग और उसके साथी जब लौट रहे थे, नीचे रिसीव करने वाले स्टेशनों पर दस मिनट तक जैसे हजारों भूत-प्रेत रो रहे हों, हंस रहे हों, चिल्ला रहे हों, ऐसी आवाजें पकड़ी गई। इनकी कोई व्याख्या नहीं हो सकी कि वे कैसे आई। तो जब भूत-प्रेतो की वाणी नहीं होती हो वे आवाजें कैसे पैदा हुई ?

उत्तर . इसे थोडा समझना पडेगा। पिछले महायुद्ध में एक आदमी के अंगूठे में चोट लगी बम के गिरने से। उसे बेहोश हालत में अस्पताल में लाया गया। बीच-बीच में, जब भी वह होश में आता वह चिल्लाता कि मेरा अगूठा बहुत जल रहा है, आग पड रही है मेरे अंगूठे में। रात उसको बेहोश करके उसका पूरा पैर काट दिया गया क्योकि पूरा पैर खराब हो गया था, उसको बचाने का कोई उपाय न था और इतनी असह्य वेदना थी कि पूरे शरीर में जहर फैल जाने का डर था। उसका घुटने से लेकर नीचे तक का पैर काट दिया गया। सुबह जब होश में आया तो उसने चीख पुकार मचानी शुरू की कि मेरे अंगूठे में बहुत दर्द हो रहा है। आस-पास के डाक्टरो ने उसे गौर से देखा क्योंकि अंगूठा अब था ही नही। अंगूठे में दर्द कैसे हो सकता है जब अंगूठा ही नही है, ठीक से सोच कर कहो। अभी उसको बताया नही कि उसका पैर कटा हुआ है। उसने कहा : क्या ठीक से सोचें। मेरा अगूठा जला जा रहा है, आग पड रही है। उन्होंने उसका कम्बल उघाड़ा और कहा तुम्हारा पैर तो रात साफ कर दिया, अंगूठा तो है नहीं। उसने देखा और कहा मुझे भी दिखाई पड रहा है अंगूठा नहीं है लेकिन दर्द मेरा अगूठे में हो रहा है, इसको मैं कैसे इन्कार करूं। तब उसको जांच-परख की गई। और जाच-परख से एक बहुत नया सत्य हाथ में आया जो कभी ख्याल में नहीं था। जाच-परख से यह सत्य पकड में आया कि अंगूठे में जो दर्द होता है, उसने सिर

तक खबर पहुँचाने वाले जो स्नायु तन्तु हैं, वे हिलते हैं। अंगूठा सिर में तो है नहीं। अगूठा तो छः फुट दूर है। दर्द अँगूठे में होता है, सिर में पता चलता है। पता लाने के लिए जो तन्तु हैं, वे हिलते हैं बीच में। उन तन्तुओ के खास ढंग से हिलने से दर्द पता चलता है। अंगूठा तो कट गया, वे तन्तु उसी खास ढंग से हिले जा रहे हैं। वे तन्तु जो आगे के हैं उसी तरह से कांप रहे हैं जिस तरह दर्द में कौंपना चाहिए। दर्द का पता चल रहा है और अंगूठे में पता चल रहा है जो है ही नहीं। क्योंकि वह अगूठे के दर्द की खबर लाने वाला तन्तु है। इसके बाद तो फिर बडी काम की चीजें हाथ लगी। फिर तो यह पता चला कि आपके कान के पीछे जो तन्तु हैं उनमें खास तरह की चोट करके आपके भीतर खास तरह की ध्वनियाँ पैदा की जा सकती हैं। जैसे मैंने कहा : राम ! तो आपके कान के भीतर का तन्तु एक खास ढग से हिला। कोई राम बाहर न कहे मगर सिर्फ उस तन्तु को आपके कान के पीछे इस तरह से हिला दे जैसे राम बोलते वक्त हिलता है तो आपके भीतर राम सुनाई पड़ेगा। जैसे आपकी आँख है, उससे रोशनी भीतर जाती है। तन्तु एक तरह से हिलते हैं। आपकी आँख बंद कर दी जाए और सिर के भीतर इलेक्ट्रोड डालकर आँख के तन्तु इस प्रकार हिला दिए जाएँ जैसा कि वे प्रकाश के वक्त हिलते हैं, आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ेगा और आप अंधेरे में बैठे है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि भूत, प्रेत, देवताओ के लिए दो उपाय हैं जिससे वे वाणी पैदा कर सकें। एक उपाय यह है कि वे किसी मनुष्य के शरीर का उपयोग करें जैसा कि आमतौर पर वे करते हैं। तब वे बोल सकते हैं। क्योंकि वे आपके कंठ का, आपके बोलने के यंत्र का उपयोग कर लेते हैं। दूसरा उपाय यह है कि आपके रिसीविंग सेन्टर पर, आपके रेडियो स्टेशन पर तरंगें पैदा की जा सकें तो आपका रिसीविंग सेंटर कहेगा कि आवाज हो रही है। इसलिए उस दस मिनट में जो आवाजें पकडी गईं उनमें कोई शब्द नही पकडे गए। सिर्फ रोने, हँसने, शोरगुल की आवाजें थी वे। कोई शब्द नहीं है स्पष्ट। शब्द स्पष्ट पैदा करना बहुत कठिन है। लेकिन इस तरह की तरगें पैदा की जा सकती हैं कि वे रोने, चिल्लाने, शोर-गुल की आवाजें पैदा कर दें। वे तरगे ही पैदा की गई हैं। वे तरंगे पैदा करने के लिए वाणी की जरूरत नही है। तरगें पैदा करने के दो ही उपाय हैं। या सीधी तरगें पैदा कर दी जाएँ या किसी मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाए। आमतौर

से मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाता है लेकिन तरंगें भी पैदा की जा सकती हैं। वहाँ बोलने वाले की जरूरत नहीं है। बोलने से जो तरंगें मंडल में पैदा होती हैं वे पैदा कर दी जाएँ तो वे जो भी मनोकामना करें, पैदा हो जाती हैं। वह अगर शोरगुल की मनोकामना करें तो शोरगुल पैदा हो जाए। और जैसा मैंने कहा कि देव या प्रेत योनि में जो सबसे बड़ी अद्‌भुत खूबी की बात है, वह यह है कि वहाँ कंठ की जरूरत नहीं, वाणी की जरूरत नहीं, सिर्फ मनोकामना पर्याप्त है।

१२

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

श्रीनगर, प्रातः, दिनांक २३ सितम्बर, १९६९



प्रश्न : आपने कहा कि सामायिक आत्म-स्थिति है। लेकिन जिसे आप सामायिक या आत्म-स्थिति कह रहे हैं क्या वह वीतरागता ही नहीं? और जब व्यक्ति आत्म-स्थिति में यानी चेतना-स्थिति मे हो गया है तो फिर वह जीवन-व्यवहार में आकर क्या आत्म-स्थिति को नहीं खो देगा?

उत्तर : नही, नही खो देगा। जैसे कि आप स्वास ले रहे हैं, तो चाहे जगें, चाहे सोएँ, चाहे काम करें, चाहे न करें, स्वांस चलती रहेगी क्योकि वह जीवन की स्थिति है। ऐसी ही चेतना की स्थिति है। और एक बार वह हमारे ख्याल में आ जाए तो फिर वह मिटती नही। यानी जीवन-व्यवहार में उसका ध्यान नही रखना पडता कि वह बनी रहे, वह बनी ही रहती है। जैसे एक आदमी धनपति है और उसे पता है कि मेरे पास धन है तो उसे चौबीस घटे याद नही रखना पडता कि वह धनपति है। लेकिन वह धनपति होने की स्थिति उसकी बनी रहती है चौबीस घंटे। चाहे वह कुछ भी कर रहा हो, वह सडक पर चल रहा है, काम कर रहा है, उठ रहा है, बैठ रहा है इससे कोई मतलब नही। एक भिखारी है, वह कुछ भी कर रहा है। उसकी वह स्थिति भिखारी होने की बनी ही रहती है। हमारी स्थितियां हमारे साथ ही चलती है। होनी चाहिए बस यह है बडा सवाल। तो एक पल के हजारवें हिस्से में भी अगर हमें अनुभव में आया है तो वह बना रहेगा क्योकि हमारे पास पल के हजारवें हिस्से से बडा कोई समय होता ही नही। उतना ही समय होता है हमेशा। जब भी होगा, उतना ही होगा। वह हमें दिखाई पड गया तो बना रहेगा। गीता में जिसे स्थितप्रज्ञ कह रहे हैं, वह वही बात है। उसमें कुछ फर्क नही। सामायिक और वीतराग में जो समानता दिखाई

पड़ती है उसका मतलव कुल इतना है कि 'सामायिक' है मार्ग, 'वीतरागता' है उपलब्धि। इससे जाना है, वहाँ पहुँच जाना है। तो दोनों में मेल होगा ही।

यहाँ थोडा सा समझ लेना उपयोगी है। सामायिक के लिए मैंने जो कहा, वीतरागता के लिए जो कहा, वह बिल्कुल समान प्रतीक होगा क्योंकि 'सामायिक' मार्ग है, वीतरागता मंजिल है। सामायिक द्वार है, वीतरागता उपलब्धि है। साधना और साध्य अन्ततः अलग-अलग नही हैं। क्योकि साधन ही विकसित होते-होते साध्य हो जाता है। तो वीतरागता में परम उपलब्धि होगी उसकी जिसे सामायिक में धीरे-धीरे उपलब्ध किया जाता है। सामायिक में पूरी तरह स्थिर हो जाना वीतरागता में प्रवेश करना है। कृष्ण ने जिसे 'स्थिर' या 'स्थितप्रज्ञ' कहा है, वह वही है जो वीतराग है। निश्चित ही वह वही है। दोनो शब्द बहुमूल्य हैं। वीतराग वह है जो सब द्वन्द्वो के पार चला गया है, सब दो के पार चला गया है, जो एक में ही पहुँच गया है। अब ध्यान रहे कि स्थिर या स्थितप्रज्ञ का अर्थ है जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, जिसकी प्रज्ञा कांपती नही। प्रज्ञा उसकी कांपती है जो द्वन्द्व में जीता है, दो के बीच में जीता है। वह कांपता रहता है, कभी इधर कभी उधर। जहाँ द्वन्द्व है, वहाँ कम्पन है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। तो दिए की लौ कांपती है क्योंकि हवा कभी पूरव झुका देती है, कभी पश्चिम झुका देती है। दिया कांपता रहता है। दिए का कपन तभी मिटेगा जब हवा के झोके न हों, यानी जब इस तरफ, उस तरफ जाने का उपाय न रह जाए, दिया वहीं रह जाए जहाँ है। तो कृष्ण उदाहरण देते हैं कि जैसे किसी बन्द भवन में जहाँ हवा का कोई झोंका न जाता हो दिया स्थिर हो जाता है ऐसे ही जब प्रज्ञा, विवेक, बुद्धि स्थिर हो जाती है और कांपती नही; डोलती नहीं तब वैसा व्यक्ति 'स्थितधी' है, 'स्थितप्रज्ञ' है। वीतराग का भी यही मतलब है कि जहाँ राग और विराग खो गया, जहाँ द्वन्द्व खो गया वहाँ कांपने का उपाय खो गया और जब चित्त कांपता नही है तो वह स्थिर हो जाता है, ठहर जाता है। महावीर ने द्वन्द्व के निषेध पर जोर दिया है इसलिए वीतराग शब्द का उपयोग किया है। द्वन्द्व के निषेध पर जोर है, द्वन्द्व न रह जाए। कृष्ण ने द्वन्द्व की बात ही नही की, स्थिरता पर जोर दिया है। एक ही चीज को दो तरफ से पकड़ने की कोशिश की है दोनों ने। कृष्ण पकड़ रहे हैं दिए की स्थिरता से, महावीर पकड रहे हैं द्वन्द्व के निषेध से। लेकिन द्वन्द्व का निषेध हो तो प्रज्ञा स्थिर हो जाती है, प्रज्ञा स्थिर हो जाए तो द्वन्द्व का निषेध हो जाता है। ये दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। इनमें जरा भी फर्क नही है।

और आपने पूछा है कि एक क्षण में, एक क्षण के हजारवें हिस्से में जिसे समय कहते है अगर ज्ञान उपलब्ध हो गया, दर्शन हुआ तो क्या जीवन व्यवहार में वह स्थिर रहेगा ? असल में जीवन व्यवहार आता कहाँ से है ? जीवन व्यवहार आता है हमसे ! तो जो हम हैं, गहरे में, जीवन व्यवहार वही से आता है। अगर झरना जहर से भरा है, अगर मूल स्रोत जहर से भरा है तो जो लहरें छलकती हैं, जो बिन्दु फिरते हैं, और बूँद उचटती हैं उनमें जहर होगा। अगर मूल स्रोत अमृत से भर गया तो फिर उन्ही बूँदों में, उन्ही लहरो में अमृत हो जाता है। जीवन व्यवहार हमसे निकलता है। हम जैसे है वैसा ही हो जाता है। हम मूच्छित हैं तो जीवन व्यवहार मूच्छित होता है। जो हम करते हैं, उसमें मूर्च्छा होती है। हम अज्ञान में हैं तो जीवन-व्यवहार अज्ञान से भरा होता है। और अगर हम ज्ञान में पहुँच गए तो जीवन व्यवहार ज्ञान से भर जाता है।

जैसे यह कमरा अंधेरे से भरा हो तो हम घिर उठते है और निकलने की कोशिश करते हैं। कभी द्वार से टकरा जाते हैं, कभी दीवार से टकरा जाते हैं, कभी फर्नीचर से टकरा जाते हैं। बिना टकराए निकलना मुश्किल होता है। और कई बार ऐसा हुआ है कि टकराते ही रहते हैं और नही निकल पाते। निकल भी जाते हैं तो टकराए बिना नही निकल पाते हैं। फिर कोई व्यक्ति हमसे कहे कि एक दिया जला लो तो हम उससे कहेंगे कि दिया जला लेंगे। लेकिन क्या दिए के जल जाने पर हम बिना टकराए निकल सकेंगे ? क्या फिर टकराना नही रहेगा ? क्या फिर सदा ही हमारा टकराने का जो व्यवहार था बन्द हो जाएगा ? तो वह कहेगा कि तुम दिया जलाओ और देखो। क्योंकि दिया जलाने पर तुम टकराओगे कैसे ? टकराते थे अंधेरे के कारण। टकराना भी चाहो तो न टकराओगे क्योंकि चाह कर कभी कोई टकराया है और द्वार जब दिखलाई पडेगा तो तुम दीवार से क्यो निकलोगे ? दीवार से भी निकलने की कोशिश चलती थी क्योकि द्वार दिखाई नही पडता था। ज्योति जल जाए भीतर तो वह ऐसी नही है कि क्षण भर जले और फिर बुझ जाए, दिया हम जलाएँ, वह फिर बुझ सकता है, हम फिर टकरा सकते है। दिए का तेल चुक सकता है, दिए की बाती बुझ सकती है, हवा का झोका आ सकता है, हजारो घटनाएँ घट सकती हैं। जला हुआ दिया भी जरूरी नही कि जलता ही रहे। बुझ भी सकता है। लेकिन जिस अन्तर्ज्योति की हम बात कर रहे है, वह ऐसी ज्योति नही है जो कभी बुझती है। अभी भी वह जल रही है। अभी भी जब हम

उसके प्रति जागे नहीं हैं, वह जल रही है। सिर्फ हम पीठ किए है। वह कभी बुझी नही क्योंकि वह हमारी चेतना का अन्तिम हिस्सा है, वह हमारा स्वभाव हैं। पीठ फेरेंगे; लौट कर देखेंगे तो उसे जली हुई पाएँगे। जलेगी नही वह, जली हुई थी ही, सिर्फ हमारी पीठ बदलेगी। हम पाएँगे कि वह जली है और ऐसी ज्योति जो कभी बुझी नही, जो कभी बुझती नही, न तेल है, न बाती है, जहाँ जो हमारे अन्तर्जीवन की अनिवार्य क्षमता है, उसको हमने एक बार देख लिया तो बात खत्म हो गई। एक बार हमें पता चल गया कि ज्योति पीछे है फिर हम चाहें भी कि हम पीठ करके चलें ज्योति को तरफ तो हम न चल पाएँगे क्योंकि ज्योति की तरफ पीठ करके कौन चल पाया है ? कौन चलेगा ? एक बार जान लें। न जाने तो बात अलग है। इसलिए एक क्षण को भी उसकी उपलब्धि हो जाती है तो वह उपलब्धि सदा के लिए स्थायी हो गई और उसके अनुपात में हमारा जीवन-व्यवहार बदलना शुरू हो जाएगा। एकदम ही बदल जाएगा क्योंकि कल जो हम करते थे, वे आज हम कैसे कर सकेंगे ? वह करते थे अँधेरे के कारण। अब है प्रकाश इसलिए वह करना असम्भव है।

प्रश्न : एक प्रश्न जो मन मे उठता है वह है पुनर्जन्म वाली बात। क्या अन्य प्राणी मनुष्य योनि के अन्दर आ सकते हैं ? और आ सकते हैं तो स्वतः आते हैं या वह उनकी उपलब्धि है ?

उत्तर : कर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ समझना जरूरी है क्योंकि जितनी इस बात के सम्बन्ध में नासमझी है, उतनी शायद किसी बात के सम्बन्ध में नही। इतनी आमूल भ्रान्तियाँ परम्पराओं ने पकड ली हैं कि देख कर आश्चर्य होता है कि किसी सत्य-चिन्तन के आस-पास असत्य की कितनी दीवारे खडी हो सकती हैं। साधारणत कर्मवाद ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि जो हमने किया है, वह हमें भोगना पडेगा। हमारे कर्म और हमारे भोग में एक अनिवार्य कार्य-कारण सम्बन्ध है। यह बिल्कुल सत्य है कि जो हम करेंगे, हम उससे अन्यथा नही भोगते हैं। भोग भी नही सकते। कर्म भोग की तैयारी है। असल में, कर्म भोग का प्रारम्भिक बीज है। फिर वही बीज भोग में वृक्ष बन जाता है। जो हम करते हैं, वही हम भोगते हैं। यह बात तो ठीक है लेकिन कर्मवाद का जो सिद्धान्त प्रचलित मालूम पडता है, उसमें ठीक बात को भी इस ढंग से रखा गया है कि वह बिल्कुल गैर ठीक हो गई है। उस सिद्धान्त में ऐसी बात न मालूम किन कारणों से प्रविष्ट हो गई है और वह यह है कि कर्म तो हम अभी करेंगे और भोगेंगे अगले जन्म में। अब कार्य-कारण के बीच कभी अन्तराल

नहीं होता। अन्तराल हो ही नही सकता। अगर अन्तराल बीच में आ जाएगा तो कार्य-कारण विच्छिन्न हो जाएँगे। उनका सम्बन्ध टूट जाएगा। मैं अभी आग में हाथ डालूँगा तो अगले जन्म में जलूँगा। अगर मुझसे कोई कहे तो यह समझ के बाहर बात हो जाएगी क्योंकि हाथ मैंने अभी डाला और जलूँगा अगले जन्म में। कारण तो अभी है और कार्य होगा अगले जन्म में। यह अन्तराल किसी भाँति समझाया नही जा सकता। और कार्य-कारण में अन्तराल होता ही नहीं। कार्य और कारण एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं, जुडे हुए और सयुक्त। इस छोर पर जो कारण है उसी छोर पर वह कार्य है। और यह पूरी शृखला जुडी हुई है। इसमें कही क्षण भर के लिए भी अगर अन्तराल हो गया तो शृंखला टूट जाएगी। लेकिन इस तरह के सिद्धान्त की, इस तरह की भ्रान्ति की कुछ वजह थी और वह यह कि जीवन में हम देखते हैं कि एक आदमी भला है और दु ख उठाता हुआ मालूम पडता है। एक आदमी बुरा है और सुख उठाता हुआ मालूम पडता है। इस घटना ने कर्मवाद के पूरे सिद्धान्त की गलत व्याख्या को जन्म दिया है। इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर प्रतिपल हमारे कार्य और कारण जुडे हुए हैं तो फिर इसे कैसे बताया जाए? एक आदमी भला है, सच्चरित्र है, ईमानदार है और दु ख भोग रहा है, कष्ट पा रहा है, और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, बदमाश है और सुख पा रहा है, पद पा रहा है, यश पा रहा है, धन पा रहा है। इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर अच्छे कार्य तत्काल फल लाते हैं तो अच्छे आदमी को सुख भोगना चाहिए। और अगर बुरे कार्य तत्काल बुरा लाते है, तो बुरे आदमी को दुःख भोगना चाहिए। लेकिन यह तो दिखता नही। भला आदमी परेशान दिखता है, बुरा आदमी परेशान नही दिखता। तो इसको कैसे समझाएँ? इसको समझाने के पागलपन में गडबड हो गई। तब रास्ता एक ही मिला कि जो अच्छा आदमी दु ख भोग रहा है, वह अपने पिछले बुरे कार्यो के कारण और जो बुरा आदमी सुख भोग रहा है वह अपने पिछले अच्छे कर्मो के कारण। हमें एक-एक जीवन का अन्तराल खडा करना पड़ा इस स्थिति को सुलझाने के लिए। लेकिन इस स्थिति को सुलझाने के दूसरे उपाय हो सकते थे और असल में दूसरे उपाय ही सच हैं। यह स्थिति इस तरह सुलझाई नही गई बल्कि कर्मवाद का पूरा सिद्धान्त विकृत हो गया है और कर्मवाद की उपादेयता भी नष्ट हो गई है।

कर्मवाद की उपादेयता थी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को कह सकें कि तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो। इसलिए तुम ऐसा करो कि तुम सुख भोग

सको, आनन्द भोग सको। उपादेयता यह थी। उसका जो गहरे से गहरा परिणाम होना चाहिए था व्यक्ति के चित्त पर वह यह था कि तुम जो कर रहे हो वही तुम भोग रहे हो। अगर तुम क्रोध करोगे तो दु:ख भोगोगे, भोग ही रहे हो। इसके पीछे ही वह आ रहा है छाया की तरह। अगर तुम प्रेम कर रहे हो, शान्ति से जी रहे हो, दूसरे को शान्ति दे रहे हो तो तुम शान्ति अर्जित कर रहे हो जो आ रही है पीछे उसके, जो तुम्हें मिल जाएगी, मिल ही गई है। यह तो अर्थ था उसका। लेकिन इस सिद्धान्त का इस तरह से उपयोग करना जीवन की इस घटना को समझने के लिए उस अर्थ को नष्ट कर देगा। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इतना दूरगामी चित्त का नही होता कि वह अभी कर्म करे और अगले जन्म में मिलने वाले फल से चिन्तित हो। होता ही नही इतना दूरगामी चित्त। अगला जन्म अंधेरे में खो जाता है। क्या पक्का भरोसा है अगले जन्म में। पहले तो यही पक्का नही कि अगला जन्म होगा। दूसरा यह पक्का नहो कि जो कर्म अभी फल नही दे पा रहा, वह अगले जन्म में देगा। अगर एक जन्म तक रोका जा सकता है फल को तो अनेक जन्मो तक क्यों नही रोका जा सकता? फिर दूसरी बात यह कि **मनुष्य का चित्त तत्कालजीवी है।** चित्त की यह क्षमता ही नही है कि वह इतनी देर तक की व्यवस्था को पकड सके। वह जीता तत्काल है। वह कहता है, ठीक है, अगले जन्म में जो होगा, होगा। अभी जो हो रहा है, वह हो रहा है। अभी मैं सुख से जी रहा हूँ। अभी मैं क्यो चिन्ता करूँ अगले जन्म की। जो उपादेयता थी वह भी नष्ट हो गई, जो सत्य था वह भी नष्ट हो गया। सत्य है कार्यकारण सिद्धान्त जिस पर सारा विज्ञान खडा हुआ है। और अगर कार्य-कारण सिद्धान्त को हटा दो तो सारा विज्ञान का भवन गिर जाएगा।

ह्यूम ने इंग्लैण्ड में इस बात की कोशिश की कि कार्य-कारण का सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाए। वह बहुत कुशल और अद्भुत विचारक था। उसने कहा कि तुमने कार्य-कारण देखा कब है। तुमने देखा है कि एक आदमी ने आग में हाथ डाला और उसका हाथ जल गया। लेकिन तुम यह कैसे कहते हो कि आग में डालने से हाथ जल गया। दो घटनाएँ तुमने देखी। आग में हाथ डाला यह देखा। हाथ जला हुआ निकला यह देखा। लेकिन आग में डालने से जला, इस बीच के सूत्र तुम कैसे पहचान गए? तुम्हें यह कहां से पता चला? हो सकता है कि ये दोनो घटनाएँ कार्य-कारण न हों, सिर्फ सहगामी घटनाएँ हो। जैसे ह्यूम ने कहा कि दो घड़ियाँ हमने बना ली। दो घड़ियाँ लटका

ली दीवार पर जिनमें भीतर कोई सम्बन्ध नही। लेकिन, ऐसी व्यवस्था की कि एक घडी में जब बारह बजेंगे तो दूसरी घडी बारह के घंटे बजाएगी। यह व्यवस्था हो सकती है। इसमें क्या तकलीफ है? एक घडी में जब बारह पर कांटा जाएगा तो दूसरी घडी बारह के घंटे बजा देगी। कार्य-कारण सिद्धान्त मानने वाला कहेगा कि जब इसमें बारह बजते हैं तब इसमें बारह के घटे बजते हैं। इनके बीच कार्य-कारण का सम्बन्ध है जब कि वे सिर्फ समानान्तर चल रही हैं। कोई सम्बन्ध वगैरह है ही नही। ह्यूम ने कहा कि हो सकता है कि प्रकृति में कुछ घटनाएँ समानान्तर चल रही हो। यानी इधर तुम आग में हाथ डालते हो उधर हाथ जल जाता है और दोनो के बीच कोई सम्बन्ध नही रहता। क्योंकि सम्बन्ध कभी देखा नही गया। घटनाएँ देखी गईं। तुम दोनो का सम्बन्ध कैसे जोडते हो? तो ह्यूम ने बडी चेष्टा की कार्य-कारण सिद्धान्त को गलत सिद्ध करने की। अगर ह्यूम जीत जाता तो पश्चिम में साइंस खडी न हो सकती। क्योंकि साइंस खडी हो रही है इस आधार पर कि चीजो के सम्बन्ध जोडे जा सकते हैं। एक आदमी क्षयग्रस्त है, तो हम कारण-कार्य के हिसाब से इलाज कर पाते है कि उसको जो कीटाणु है, वे दवा देने से मर जाएँगे। यह दवा उनकी मृत्यु का कारण बनेगी और मृत्यु कार्य हो जाएगी। तो हम इलाज कर लेते हैं। फला बम पटकने से आग पैदा होगी, लोग मर जाएँगे तो बम बन जाता है।

धर्म भी विज्ञान है और वह भी कार्य-कारण सिद्धान्त पर खडा है। अगर चार्वाक जीत जाए तो धर्म गिर जाए पूरा का पूरा। जो ह्यूम विज्ञान के खिलाफ कह रहा है, वही चार्वाको ने धर्म के खिलाफ कहा है : "खाओ, पिओ, मौज करो क्योंकि कोई भरोसा नही है कि जो बुरा करता है, उसको बुरा ही मिलता है, देखो एक आदमी बुरा कर रहा है और भला भोग रहा है। कहाँ कोई कारण का सम्बन्ध है इसमे? एक आदमी भला कर रहा है और पीड़ा झेल रहा है। कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नही है।" इसलिए चार्वाको ने कहा : "ऋणं कृत्वा, घृतं पिबेत्।" अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो पिओ क्योंकि ऋण चुकाने की जरुरत क्या है? सवाल असली में घी मिलने का है। वह कैसे मिलता है, यह सवाल ही नही है। और तुमने ऋण ले लिया और नहीं चुकाया, तो इसका बुरा फल मिलेगा, यह सब पागलपन की बातें हैं। कहाँ फल मिल रहे हैं? ऋण लेने वाले मजा कर रहे हैं, न लेने वाले दुख उठा रहे हैं। कोई कार्य-कारण का सिद्धान्त नही है। ह्यूम

ने इंग्लैंड में विज्ञान के खिलाफ जो वात कही, अगर ह्यूम जीत जाता तो विज्ञान का जन्म नही होता। अगर चार्वाक जीत जाता तो धर्म का जन्म नहीं होता क्योकि चार्वाक ने भी यही कहा कि इसमें कोई क्रम नही है। असम्वद्ध क्रम है घटनाओ का। चोर मजा कर सकता है, अचोर दु ख उठा सकता है। क्रोधी आनन्द कर सकता है, अक्रोधी पीडा उठा सकता है। जीवन के सभी कर्म असम्वद्ध हैं। इनमें कोई सम्वन्ध ही नही है। और यदि कही कोई सम्वन्ध दिखाई पड़ता है तो वह समानान्तरता की भूल है। वह सिर्फ इसलिए दिखाई पड जाता है कि चीजें समानान्तर कभी-कभी घट जाती हैं। वस और कोई मतलव नही है। लेकिन वुद्धिमान् आदमी इस चक्कर में नही पडता है, चार्वाक ने कहा। वुद्धिमान् आदमी जानता है कि किसी कर्म का किसी फल से कोई सम्वन्ध नही है। इसलिए जो सुखद है, वह करता है चाहे लोग उसे वुरा कहें चाहें भला कहें क्योकि दुवारा लौटना नही है, दुवारा कोई जन्म नही है।

चार्वाक के विरोध में ही महावीर का कर्म सिद्धान्त है। इस विरोध में ही कि न तो वस्तु-जगत् में और न चेतना-जगत् में कार्य-कारण के विना कुछ हो रहा है। विज्ञान में तो स्थापित हो गई वात ह्यूम हार गया और विज्ञान का भवन खडा हो गया। लेकिन धर्म के जगत् में अव भी स्थापित नही हो सकी यह वात। और न होने का वडे से वडा जो कारण वना वह यह कि विज्ञान कहता है : अभी कारण, अभी कार्य; तथाकथित धार्मिक कहते हैं : अभी कारण, कार्य अगले जन्म में। इससे सव गड़वड हो गया। यानी धर्म का भवन खडा नही हो सका। इस अन्तराल में सव वेईमानी हो गई। क्योकि यह अन्तराल एकदम झूठ है। कार्य और कारण में अगर कोई सम्वन्ध है तो उसके वीच में अन्तराल नहीं हो सकता क्योकि अन्तराल हो गया तो सम्वन्ध क्या रहा? चीजें असम्वद्ध हो गईं, अलग-अलग हो गईं। फिर, कोई सम्वन्ध न रहा। और यह व्याख्या नैतिक लोगो ने खोज ली क्योंकि वे समझा नही सके जीवन को। तो जीवन की पहली वात मैं आपको समझा दूँ जिसकी वजह से यह अन्तराल टूटे। मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक कर्म तत्काल फलदायी है। जैसे मैंने क्रोध किया तो मैं क्रोध करने के क्षण से ही क्रोध को भोगना शुरू करता हूँ। ऐसा नही कि अगले जन्म में क्रोध का फल भोगूँ। क्रोध करता हूँ और क्रोध का दुःख भोगता हूँ। क्रोध का करना और दुख का भोगना साथ-साथ चल रहा है। क्रोध विदा हो जाता है लेकिन दु ख का सिलसिला देर तक चलता है। तो पहला हिस्सा कारण हो गया, दूसरा हिस्सा कार्य हो गया। यह असम्भव है कि कोई

आदमी क्रोध करे और दु:ख न झेले। यह भी असम्भव है कि कोई आदमी प्रेम करे और आनन्द का अनुभव न करे। क्योंकि प्रेम की क्रिया में ही आनन्द का झरना शुरू हो जाता है। एक आदमी रास्ते पर गिरे हुए किसी आदमी को उठाए, उठाए अभी और अगले जन्म तक आनन्द की प्रतीक्षा करे, ऐसा नही। उठाने के क्षण में ही भरपूर आनन्द उसके हृदय को भर जाता है। ऐसा नही है कि उठाने का कृत्य कही अलग है और फिर आनन्द कही दूसरी जगह प्रतीक्षा करेगा। तो कही कोई हिसाव-किताव रखने की जरूरत नही। इसलिए महावीर, भगवान् को विदा कर सके। अगर हिसाव-किताव रखना है जन्म-जन्मान्तर का तो फिर नियन्ता की व्यवस्था जरूरी है।

नियन्ता की जरूरत वहाँ होती है जहाँ नियम का लेखा-जोखा रखना पडता है। क्रोध मैं अभी करूँ और फल मुझे किसी दूसरे जन्म में मिले तो इसका हिसाव कहाँ रहेगा ? यह कहाँ लिखा रहेगा कि मैंने क्रोध किया था और मुझे यह-यह फल मिलना चाहिए और कितना क्रोध किया था, कितना फल मिलना चाहिए ? अगर सारे व्यक्तियो के कर्मों की कोई इस तरह की व्यवस्था हो कि अभी हम कर्म करेंगे फिर कभी अनन्त काल में भोगेंगे तो वडे हिसाव-किताव की जरूरत पडेगी, वडे खाते-वहियो की। नही तो कैसे होगा यह ? फिर इस सव इन्तजाम के लिए एक महालिपिक की भी जरूरत पडेगी जो हिसाव-किताव रखता हो। और परमात्मा को वहुत से लोगो ने महालिपिक की तरह ही सोचा हुआ है। तो इनके विचार में वह नियन्ता है, सारे नियम की देखरेख रखता है कि नियम पूरे हो रहे हैं या नही।

महावीर ने वडी वैज्ञानिक वात कही है। उन्होंने कहा नियम पर्याय हैं, नियन्ता कि जरूरत नहीं है क्योकि नियम स्वयं वह काम करना है। जैसे आग में हाथ डालते हैं, हाथ जल जाता है। यह आग का स्वभाव है कि वह जलाती है। यह हाथ का स्वभाव है कि वह जलता है। अव डालने की वात है। डालने से सयोग हो जाता है। डालना कर्म वन जाता है और पीछे जो भोगना है वह फल वन जाता है। इसमें किसी को भी व्यवस्थित होकर खडे होने की जरूरत नही। आग को कहने की जरूरत नही कि तू अव जला, यह आदमी हाथ डालता है। हाथ डालना और जलना यह विलकुल ही स्वयंभू नियम के अन्तर्गत है। नियम है, नियन्ता नही। क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर नियन्ता हो तो नियम में गडवड होने की सम्भावना रहती है। क्योंकि प्रार्थना करें, खुशामद करें, हाथ जोडें नियन्ता को। नियन्ता किसी पर खुश

हो जाए, किसी पर नाराज हो जाए तो कभी आग में हाथ जले, कभी न जले। कभी प्रह्लाद जैसे भक्त आग में न जलें क्योंकि भगवान् उन पर प्रसन्न है। तो महावीर कहते हैं कि अगर ऐसा कोई नियन्ता है तो नियम सदा गडबड होगा क्योंकि वह जो नियन्ता है वह एक व्यर्थ की परेशानी खडी करता है। अब प्रह्लाद उसका भक्त है तो वह उसको जलाता नही। पहाड से गिराओ तो उसके पैर नही टूटते। और दूसरे किसी को गिराओ तो उसके पैर टूट जाते है। तो फिर पक्षपात शुरू होगा। प्रह्लाद की कथा पक्षपात की कथा है। उसमें अपने आदमी की फिक्र की जा रही है। उसमें अपने व्यक्ति के लिए विशेष सुविधाएँ और अपवाद दिए जा रहे हैं। महावीर कहते है कि अगर ऐसे अपवाद है तो फिर धर्म नही हो सकता।

धर्म का बहुत गहरे से गहरा मतलब होता है नियम। और कोई मतलब नही होता। और नियम के ऊपर अगर कोई नियन्ता भी है तो फिर सब गडबड हो जाएगी। कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु किसी दवा से मरें। और कभी ऐसा हो सकता है कि क्षय के कीटाणु भी प्रह्लाद की तरह भगवान् के भक्त हो और दवा कोई काम न करे। इसमें क्या कठिनाई है। फिर नियम नही हो सकता। अगर नियम है तो नियन्ता में बाधा पडेगी। इसलिए महावीर नियम के पक्ष में नियन्ता को बिदा करते हैं। यह बडी महत्त्वपूर्ण बात है नियम के पक्ष में नियन्ता को बिदा करने की। वे कहते हैं नियम काफी है और नियम अखण्ड है। नियम से, प्रार्थना, पूजा, पाठ से बचने का कोई उपाय नही है। नियम से बचने का एक ही उपाय है कि नियम को समझ लो कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, इसलिए हाथ मत डालो। इसको समझ लेना जरूरी है। अगर नियन्ता है तो फिर यह भी हो सकता है कि नियन्ता को राजी कर लो फिर हाथ डालो। क्योंकि नियन्ता उपाय कर देगा कि तुम न जलो! 'अच्छा ठहरो', आग को कह देगा : 'रुको अभी! इस आदमी को जलाना मत।' महावीर कहते हैं कि चार्वाक को अगर मान लिया जाए तो भी जीवन अव्यवस्थित हो जाता है क्योंकि वह कहता है कि दो वर्गों के बीच कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही है। महावीर कहते है कि अगर नियन्ता के मानने वालों को मान लिया जाए तो वे भी यह कहते हैं कि अनिवार्य सम्बन्ध के बीच में एक व्यक्ति है जो अनिवार्य सम्बन्धो को शिथिल भी कर सकता है। इसलिए वह कहते हैं कि चार्वाक भी अव्यवस्था में ले जाता है, नियन्ता को मानने वाला भी अव्यवस्था में ले जाता है। यह दोनो एक ही तरह के लोग हैं। चार्वाक नियम को तोड़कर

अव्यवस्था पैदा कर देता है और नियन्ता को मानने वाला भी। नियम के ऊपर किसी नियन्ता को स्थापित करके।

महावीर पूछते हैं कि वह भगवान् नियम के अन्तर्गत चलता है या नही। अगर नियम के अन्तर्गत चलता है तो उसकी जरूरत क्या है? यानी अगर भगवान् आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा कि नही? अगर जलता है तो वह भी वैसा ही है जैसे हम हैं और अगर नही जलता है तो ऐसा भगवान् खतरनाक है। क्योंकि हम भगवान् से दोस्ती बनाएँगे तो हम आग में हाथ भी डालेंगे और शीतल होने का उपाय भी कर लेंगे। इसलिए महावीर कहते हैं कि हम नियम को इन्कार नहीं करते क्योंकि नियम का इन्कार करना अवैज्ञानिक है। नियम तो है मगर हम नियन्ता को स्वीकार नही करते क्योंकि नियन्ता की स्वीकृति नियम में बाधा डाल देती है। तो जो विज्ञान ने अभी पश्चिम में तीन सौ वर्षों मे उपलब्ध किया है वह यह है कि विज्ञान सीधे नियम पर निर्धारित है, सीधे नियम की खोज पर। विज्ञान कहता है कि किसी भगवान् से हमें कुछ लेना-देना नही। हम तो प्रकृति का नियम खोजते है। ठीक यही बात अढाई हजार साल पहले महावीर ने चेतना के जगत् में कही है कि नियन्ता को हम विदा करते हैं, चार्वाक को हम मान नही सकते। वह सिर्फ अव्यवस्था है, अराजकता है। दोनो के बीच में एक उपाय है वह यह कि हम मान लें कि नियम शाश्वत है, अखण्ड है और अपरिवर्तनीय है। उस अपरिवर्तनीय नियम पर ही धर्म का विज्ञान खड़ा हो सकता है। लेकिन उस अपरिवर्तनीय नियम में पीछे के व्याख्याकारो ने जो जन्मों का फासला किया, उसने फिर गड़बड़ पैदा कर दी। यह तीसरी गडबड थी।

पहली गडबड थी चार्वाक की, दूसरी गडबड थी भगवान् के भक्त की, तीसरी गडबड थी दो जन्मो के बीच में अन्तराल पैदा करने वाले लोगो की। महावीर को फिर झुठला दिया गया। यह असम्भव ही है कि एक कर्म अभी हो और फल फिर कभी हो। फल इसी कर्म की शृंखला का हिस्सा होगा जो इसी कर्म के साथ मिलना शुरू हो जाएगा। हम जो भी करते हैं उसे भोग लेते हैं। और अगर यह हमें पूरी सघनता में स्मरण हो जाए कि हमारे जीवन में और हमारे कर्म में अनिवार्य अन्तर नहीं पडने वाला है, मैं जो भी कह रहा हूँ वही भोग रहा हूँ, या मैं जो भोग रहा हूँ, वही मैं जरूर कर रहा हूँ तो बात स्पष्ट हो जाती है। एक आदमी दुःखी है, एक आदमी अशान्त है और वह आपके पास आता है और पूछता है : शान्ति का रास्ता चाहिए। अशान्त है तो वह सोचता

है कि किसी पिछले जन्म का कर्मफल भोग रहा हूँ। तो उसके पास अनकिया करने का कोई उपाय नही है। मगर सही बात यह है कि जो मैं अभी कर रहा हूँ उसे अनकिया करने की अभी मेरी सामर्थ्य है। अगर मैं आग में हाथ डाल रहा हूँ और मेरा हाथ जल रहा है, और अगर मेरी मान्यता यह है कि पिछले जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा हूँ तो मैं हाथ डाले चला जाऊँगा क्योंकि पिछले जन्म के कर्म को मैं बदल कैसे सकता हूँ ? इधर आग में हाथ डालूँगा और जलूँगा और गुरुओ से पूछूँगा : शान्ति का उपाय बताइए, क्योंकि हाथ बहुत जल रहा है। और वे गुरु जो यह मानते हैं कि पिछले जन्म के फल के कारण जल रहा है वे यह नही कहेंगे कि हाथ बाहर खीचो क्योंकि हाथ जल रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि हाथ अभी डाला जा रहा है और अभी डाला गया हाथ बाहर भी खीचा जा सकता है लेकिन पिछले जन्म में डाला गया हाथ आज कैसे बाहर खीचा जा सकता है ? तो हमारी व्याख्या ने कि अनन्त जन्मो में फल का भोग चलता है मनुष्य को एकदम परतन्त्र कर दिया है। परतन्त्रता पूरी हो गई क्योंकि पीछा उसका बँधा हुआ हो गया। अब उसमें कुछ किया नही जा सकता। किन्तु मेरा मानना है कि सब कुछ किया जा सकता है इसी वक्त, क्योंकि जो हम कर रहे हैं, वही हम भोग रहे हैं।

एक मित्र मेरे पास आए कोई दो या तीन वर्ष हुए। उसने कहा कि मैं बहुत अशान्त हूँ। मैं अरविन्द आश्रम गया, वहाँ भी शान्ति नही मिली। मैं रमण आश्रम गया, वहाँ भी शान्ति नही मिली। मैं शिवानन्द के यहाँ गया, वहाँ भी शान्ति नही मिली। सब धोखा-धडी है, सब बातचीत है, कही शान्ति नही मिलती। पाण्डीचेरी में किसी ने आपका नाम लिया तो वहाँ से सीधा यही चला आ रहा हूँ। तो मैंने कहा . अब तुम सीधे एकदम मकान से बाहर हो जाओ इसके पहले कि तुम जाकर कही कहो कि वहाँ भी शान्ति नही मिली। फिर मैंने उससे पूछा कि तुम अपनी अशान्ति खोजने किससे पूछ कर गए थे ? तुमने किस से सलाह ली थी। कौन है गुरु तुम्हारा ? उसने कहा . कोई गुरु नही। अशान्ति खोजने के लिए मैंने किसी से नही पूछा। मैंने कहा, इस अशाति के लिए तुम खुद ही गुरु हो, पर्याप्त हो और शान्ति का हमने ठेका लिया हुआ है तुम्हारे लिए ? शान्ति तुम हमसे पूछोगे ? न मिले तो हम धोखा सिद्ध हुए। मजा यह है कि अशान्ति तुम पैदा करो, शान्ति मैं तुम्हें दूँ और न दे पाऊँ तो धोखा मैं हूँ। मैंने उससे कहा कि कृपा करके इतना ही खोजो कि तुम्हें अशान्ति कैसे मिल रही है, बस। जिस ढंग से तुम अशान्ति पा रहे हो, उस ढंग को

वदलो। वह ढंग अशान्ति देने वाला है वह कारण है तुम्हारी अशान्ति का। उसको तो तुम देखना नही चाहते। वह आदमी कहता है कि वह अशान्ति का ढंग तो जन्म-जन्मान्तरो का है। मैंने कहा कि तब जन्म-जन्मान्तर में कोशिश करनी पड़ेगी शान्ति के लिए। फिर यह इतना जल्दी होने वाला भी नही। पर मैं तुमसे कहता हूँ कि हो सकता है क्योंकि यह जन्म-जन्मान्तर की वात नही, तुम अभी कर रहे हो अशान्ति के लिए सब उपाय।

मैंने कहा कि तुम दो-तीन दिन रुक जाओ कृपा करके। तुम अपनी अशाति की चर्चा करो मुझसे। क्या अशान्ति है? कैसे पैदा हो रही है? क्या पैदा हो रहा है? तीन दिन वह आदमी रुका था। चूँकि मैं शान्ति की कोई तरकीब वता ही नही रहा था, उसको अपनी अशान्ति की ही वात करनी पडी। धीरे-धीरे उसकी वात खुली। वह लखपति आदमी है, वडा ठेकेदार है। एक ही लडका है उसका और उस लडके ने, जिस लडकी से वाप नही चाहता था कि उसकी शादी हो, शादी कर ली। तो दरवाजे पर वन्दूक लेकर खडा हो गया जव वे दोनो आए। और कहा कि सिर्फ लाश अन्दर जा सकती है तुम्हारी, वापिस लौट जाओ। अव मुझसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है। मैंने उससे पूछा · उस लडकी में कोई खरावी है। उसने कहा कि नही, लड़की में कोई खरावी नही है। लडकी तो एकदम ठीक है। मैंने कहा कि उस लडकी और लडके के सवध में कोई पाप है, उसने कहा · वह भी नही है। मैंने कहा मामला क्या है? आपकी नाराजगी क्या है? सिर्फ इतनी ही कि आपके अहकार को तृप्ति न मिली, लडके ने आपकी आज्ञा नही मानी। और अहकार अशान्ति लाता है। अव उस लडके को वाहर निकाल दिया है। वडे आदमी का लडका था। पढा-लिखा भी नही था ठीक से। वह दिल्ली में नव्वे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है। अव वाप तडप रहा है। यह कभी अरविन्द आश्रम जा रहा है, कभी इधर जा रहा है, कभी उधर जा रहा है। मैंने कहा कि तुम्हें कही जाने की जरूरत नही। लडके से जाकर क्षमा मांगो। तुम्हारा अहंकार तुम्हे दु ख दे रहा है। और अहकार दुख देता है। और तुम्हारा अहंकार से किया गया कृत्य अशान्ति ला रहा है। मैंने कहा कि तुम अपने दिल की वात कहो कि तुम्हारा मन लडके को वापस लाने का है या नही। उसने कहा . विल्कुल है। वही मेरा एक लडका है। अव मैं कितना पछता रहा हूँ। हम वुड्ढे-वुड्ढी है दोनो, मरने के करीव है। यह सव उसका है और जव हमें पता चलता है कि वह नव्वे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है दिल्ली में तो हमारी नीद उचट जाती है। अव यह भी

लगता है कि उस लडकी का भी क्या कसूर है ? मैंने कहा कि इसमें तो कोई बात नही। तुम जब बन्दूक लेकर खडे हो सकते थे तो जाकर क्षमा भी माँग सकते हो। तुम प्रेम का निमंत्रण करोगे। तुम्हारा लड़का है। तुमने बीच में बाधा डाली है इसलिए तुम दुःख भोग रहे हो। मैंने कहा कि तुम अब सीधे चले जाओ दिल्ली और उस लडके से क्षमा माँग लो। बात उसकी समझ में आ गई। वह आदमी दिल्ली गया। उसने क्षमा माँगी। पन्द्रह दिन बाद उसका पत्र आया कि मैं हैरान हूँ। आपने ठीक कहा था। वह लडका और बहू घर आ गए हैं और मैं इतना आनन्दित हूँ जितना मैं कभी भी नही था। इतना शान्त हूँ जितना मैं कभी नही था।

अब हमारी कठिनाई यह है कि हम जो कर रहे हैं, वह अशांति ला रहा है। कुछ बदलाहट लाई जा सकती है इसी वक्त। अगर कभी कुछ किया था वह अशान्ति ला रहा है तब तो बदलाहट का काई उपाय नही। और यह जो पैदा करना पडा सिद्धान्त जिन्दगी की विषमता को समझाने के लिए उसका कारण दूसरा है। जैसे मेरी अपनी समझ में एक बुरा आदमी सफल होता है, सुखी होता है तो बुरा आदमी एक बहुत बड़ी जटिल घटना है। हो सकता है वह झूठ बोलता है, बेईमानी करता है लेकिन उसमें कुछ और गुण हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते। वह साहसी हो सकता है, पहल करने वाला हो सकता है, बुद्धिमान् हो सकता है, एक-एक कदम को समझ कर उठाने वाला हो सकता है। बेईमान हो सकता है, चोर हो सकता है। बुरा आदमी बडी घटना है। उसके एक पहलू को ही कि वह बेईमान है, देख कर आपने निर्णय करना चाहा, तो आप गलती में पड जाएँगे। और एक अच्छा आदमी भी एक बड़ी घटना है। हो सकता है कि अच्छा आदमी चोरी भी न करता हो बेईमानी भी न करता हो लेकिन वह बहुत भयभीत आदमी हो। शायद इसलिए चोरी और बेईमानी न करता हो कि उसमें बिल्कुल साहस की कमी हो, जोखिम उठा न पाता हो, बुद्धिमान् न हो, बुद्धिहिन हो क्योंकि अच्छा होने के लिए कोई बुद्धिमान् होना जरूरी नहीं। बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि बुद्धिमान् आदमी का अच्छा होना मुश्किल हो जाता है। बुद्धिहीन आदमी अच्छा होने के लिए मजबूर होता है। कोई बचने का उपाय नहीं होता क्योंकि बुद्धिहीनता बुरे होने में फौरन फंसा देती है। लेकिन हम इन सब बातो को नहीं तोलेंगे। हम तो कहेंगे . आदमी अच्छा है, मन्दिर जाता है, उसको सफलता मिलनी चाहिए। मेरी मान्यता है कि सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी

साहसी है तो सफलता ले आएगा। अच्छा आदमी अगर साहसी है तो बुरे आदमी से हजार गुनी सफलता लाएगा। लेकिन सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी भी साहसी है तो सफलता ले आएगा। सफलता मिलती है बुद्धिमानी से। अगर बुरा आदमी बुद्धिमान् है तो सफलता हो जाएगी। अगर अच्छा आदमी बुद्धिमान् है तो हजार गुना सफल हो जाएगा। लेकिन सफलता अच्छे भर होने से नही आती।

सफलता आती है बुद्धिमानी से, विचार से, विवेक से। मगर हम क्या करते हैं। हम पकड लेते हैं एक-एक गुण। देखो कि यह आदमी कितना अच्छा है, मन्दिर जाता है, प्रार्थना करता है लेकिन इसके पास बिलकुल पैसा नही है। अब मन्दिर जाने से और प्रार्थना करने से पैसा होने का क्या सम्बन्ध है? पैसा कमाना पडेगा और अगर वह नही कमा रहा तो भटक जाएगा। अगर वह सच में अच्छा आदमी है मगर पैसा नही कमा पाया तो यह पीडा उसके मन में नही होगी। वह सोचेगा कि मैं नही कमा पाया तो नही कमा पाया। बात खत्म हो गई। और इसके मन में द्वेष भी नही होगा कि फला आदमी बुरा है और वह कमा रहा है। अगर कोई अच्छा आदमी यह कह रहा है कि मैं सुखी नही हूँ क्योकि मैं अच्छा हूँ और वह दूसरा आदमी सुखी है क्योकि वह बुरा है तो वह आदमी बुरे होने का सबूत दे रहा है। वह ईर्ष्या से भरा हुआ आदमी है। वह बुरे आदमी को जो-जो मिला है सब पाना चाहता है और अच्छा रह कर पाना चाहता है। यानी उसकी आकांक्षा ही बडी बेहूदी है। एक तो वह बुरा भी नही। वह बेचारा बुरा भी हो, बुरे होकर उसने दस लाख रुपये कमा लिए तो दस लाख रुपये कमाने में बुरे होने का सौदा चुकाया है, बुरे होने की पीडा झेली है, बुरे होने का दश भी झेला है, काटा भी झेला है। यह जो अच्छा आदमी है यह इन कामो को भी नही करना चाहता। न बुरा होना चाहता है, न बुरे होने का दश झेलना चाहता है, न स्वर्ग बिगाडना चाहता है। यह आदमी मन्दिर में पूजा करना चाहता है, घर में बैठना चाहता है, बुरे आदमी को जो दस लाख रुपये मिले हैं, वह भी चाहता है। और जब इसको नहीं मिलते तो यह कहता है कि मैं अपने पिछले जन्मों के बुरे कर्मो का फल भोग रहा हूँ और वह आदमी किसी पिछले जन्मो के अच्छे कर्मो का फल भोग रहा है। अभी जो वह कर रहा है, वह उसको अच्छा फल देने वाला नही है, अगले जन्म में वह कष्ट पाएगा, नरक भोगेगा, ऐसे यह सान्त्वना भी दे रहा है अपने को। इस आदमी को अगले जन्म में नरक भेज कर सुख भी पा रहा है कि चलो कोई बात

नहीं। आज हम दुःख भोग रहे हैं, अगले जन्म में हम स्वर्ग में होंगे, तुम नरक में होंगे।

मेरा मानना है कि कर्म का फल तत्काल है लेकिन कर्म बहुत जटिल बात है। साहस भी कर्म है। उसका भी फल है। साहसहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिमानी भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। पहल करना, जोखिम उठाना भी कर्म है, उसका भी फल है। जोखिम न उठाना, घर में बैठे रहना भी एक कर्म है, उसका भी फल है। और इस सारे कर्मों का इकट्ठा फल होता है। इकट्ठे फल को हम किसी एक कारण से जोड़ेंगे तो हम मुश्किल में पड़ जाएँगे। इकट्ठे फल को किसी एक कारण से नही जोडा जा सकता। बुरे आदमी सफल हो सकते हैं कि सफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। अच्छे आदमी असफल हो सकते हैं क्योकि असफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। बुरे आदमी सुखी भी हो सकते हैं क्योंकि सुख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे। और अच्छे आदमी दु खी भी हो सकते हैं क्योकि दु.ख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे। जैसे ईर्ष्या दु ख देती है और अच्छा आदमी ईर्ष्यालु है तो वह दु'ख पाएगा। और हो सकता है कि बुरा आदमी ईर्ष्यालु न हो और सुख पाए। अब इसमें कैसे उससे सुख छीना जा सकता है ? अच्छा आदमी, हो सकता है, स्वार्थी हो और दु'ख पाए और बुरा आदमी स्वार्थी न हो और सुख पाए।

मेरे एक प्रोफेसर थे, उन्हें शराब पीने की आदत थी और यूनिवर्सिटी में उनसे ज्यादा बुरे आदमी का किसी को ख्याल ही न था। कितनी स्त्रियो से उनका सम्बन्ध रहा, इसका कुछ ठीकाना नही। शराब पीते थे, जुआ खेलते थे। लेकिन मेरा उनसे दोस्ताना था। मुझे कभी-कभी अपने घर ले जाते और घर सुलाते थे। मैंने देखा कि कभी शराब अकेले न पीते। दस-पांच मित्रों को इकट्ठा न कर लें तो शराब न पिएँ। दस-पांच मित्रों को बुला न लाएँ तो शाम का खाना न खाएँ, उस दिन उपवास ही हो जाए। मैंने उनसे कहा कि यह क्या है ? उन्होने कहा अकेले भी क्या खायें ? दस मित्र होते है तभी खाने का सुख आता है। यह आदमी शराब पीता है और शराब पीने के जो दु ख हैं, वह भोगेगा, भोगता है। लेकिन यह आदमी बड़े अद्भुत अर्थों मे निस्वार्थी है। उनके पास कभी पैसा नही बचता। दस-पन्द्रह तारीख तक उनका पैसा खत्म हो जाता है। क्योकि अकेले खाना नही खाना है, अकेले

शराब नही पीनी है, अकेले कुछ करना ही नही है। वह कहते है कि मैं सोच ही नही सकता कि कोई आदमी अकेला बैठ कर खाना खा सकता है। यह बात ही सोचने की नही है क्योकि अगर हम खाने में ही साझीदार नही बना सकते तो जिन्दगी बेकार है। मैं जितने दिन उनके घर रुका ,उन्होने शराब न पी। तो मैंने उनसे कहा कि मैं आपके घर न रुकूँगा क्योकि मेरे कारण आप शराब पोने से रुकते है। उन्होंने कहा . नही, नही ! तुम्हारे होने से मुझे इतना आनन्द मिलता है कि शराब पीने का ख्याल ही नही आता। वह तो पिता ही तब हूँ जब कोई आनन्द नही जिन्दगी में। तुम जब मेरे पास होते हो, मैं इतना आनन्दित होता हूँ कि शराब पीने का सवाल ही नही है। अब यह जो आदमी है, कई अर्थों में सुखी है। लेकिन इसके सुख के अपने कारण थे। यह कई अर्थों में दु खी था लेकिन दु'ख तो हम किसी का देखने नही जाते। यह भी ध्यान रखना एक जरूरी बात है।

दु'ख तो हमे किसी का दिखता नही, दु ख सिर्फ अपना दिखता है और सुख सदा दूसरे का दिखता है। ऐसे ही, शुभ कर्म हमें अपना दिखता है और अशुभ कर्म दूसरे का दिखता है क्योंकि हमारा अहकार कभी मान नही पाता कि हम अशुभ कर्म कर रहे है। 'हमारे अहकार को भी सुविधा मिलती है कि अगर अशुभ कर्म किए होगे तो किसी और जन्म में किए होगे। अभी तो मैं एकदम शुभ कर्म कर रहा हूँ और दु'ख भोग रहा हूँ। अब यह समझ लेने जैसी बात है। मामला है सिर्फ मनोवैज्ञानिक कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को शुभ मानता है क्योकि उसके अहकार को इससे तृप्ति मिलती है और वह अपने दु खों की गिनती करता है, सुखो की गिनती नहीं करता। क्योकि जो सुख हमें मिल जाता है, उसकी गिनती ही भूल जाती है। जो सुख नही मिल पाता वह हमारी गिनती में होता है। जो मकान हमारे पास है हमें कभी नही लगता कि इससे हमे कोई बडा सुख मिल रहा है। सडक पर एक भिखमगा निकलता है और कहता है देखा वह आदमी कितना सुखी है। मगर उस मकान वाले को कभी पता भी नही चलता है कि मैं सुखी हू। वह आदमी भी जब एक बडे महल के पास से निकलता है तो कहता है कि कितना सुखी है यह आदमी ? कैसा मकान है ? कैसा महल है ? उस महल में रहने वाले को कोई पता नही अपने सुख का। सुख के हम आदी हो जाते हैं। दु ख के कभी हम आदी नही हो पाते। दु'ख दिखता ही रहता है, सुख दिखना बन्द हो जाता है। दुःख दिखता है और शुभ कर्म दिखते है कि मैंने यह-यह अच्छा किया। क्योकि अहंकार अपने गलत कर्म

को छिपा देता है, मिटा देता है। और अपने अच्छे कर्मों की लम्बी कतार बढा कर खड़ी कर लेता है। और तब एक मुश्किल खडी हो जाती है; दूसरे के अशुभ कर्म दिखाई पड़ते हैं क्योंकि दूसरे को शुभ मानना भी हमारे अहकार को दु ख देना है कि हमसे भी कोई अच्छा हो सकता है। साधारण आदमी को छोड दें। बडे से बडे साधु से कहें कि आप से भी बडा साधु एक गांव में आ गया है। वह और भी पवित्र आदमी है। आग लग जाएगी क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे ज्यादा पवित्र कोई आदमी हो ? तो दूसरे की अपवित्रता को हम खोजते रहते हैं निरन्तर, इसीलिए निन्दा मे इतना रस है। शायद उससे गहरा कोई रस ही नही है। न संगीत में आदमी को उतना आनन्द आता है, न सौन्दर्य में, जितना निन्दा में आता है। सौन्दर्य छोड सकता है, सगीत छोड़ सकता है, सब छोड सकता है। अगर जरूरी निन्दा का मौका मिल जाए तो उस रस को वह नही चूकेगा। अगर हम दूसरों की बातचीत पता लगाने जाएँ तो सौ मे से नब्बे प्रतिशत बातचीत किसी भी निन्दा से सम्बन्धित होगी।

निन्दा में रस है क्योंकि दूसरे को छोटा दिखाने में अपने बडा होने का ख्याल है। इसलिए हर आदमी दूसरे को छोटा दिखाने की कोशिश में लगा है। अगर कोई हमसे आकर कहे कि फलाँ आदमी बहुत अच्छा है तो हम एकदम से नही मान लेते हैं। हम कहेंगे : यह आपकी बात सुनी, जाँच-पड़ताल करेंगे, खोजबीन करेंगे क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि आदमी इतना अच्छा हो। कहाँ इतने अच्छे आदमी होते हैं ? ये सब बाते हैं। सब दिखते हैं ऊपर से अच्छे। भीतर कोई अच्छा होता नही। लेकिन एक आदमी हमसे आकर कहता है कि फलाँ आदमी बिल्कुल चोर है। हम कभी नही कहते कि हम खोज-बीन करेंगे। हम कहते हैं कि बिल्कुल होगा ही। यह तो होता ही है। सब चोर हैं ही। जब कोई किसी की बुराई करता है तो हम बिना खोज-बीन के मान लेते हैं, तर्क भी नही करते, विवाद भी नही करते, लेकिन जब कोई किसी की अच्छाई की बात करता है तो हम बड़े सचेत हो जाते हैं। हजार तर्क करते है, फिर भी भीतर सन्देह बना हुआ है। और जांच रखते हैं जारी कि कहीं कोई मौका मिल जाए और हम बता दें . 'देखो ! वह तुम गलत कहते थे कि यह आदमी अच्छा था। इस आदमी में ये-ये चीजें दिखाई पड गईं।' हम दूसरे को छोटा दिखाना चाहते हैं। दूसरे को बडा मानना बड़ी मजबूरी में होता है। अत्यन्त कष्टपूर्ण है किसी को बड़ा मानना। किसी को हम बडा भी मान लें अगर मजबूरी

मे तो भी हम अपने मन में जांच-पडताल जारी रखते हैं कि कोई मौका मिल जाए तो इसको छोटा सिद्ध कर दें।

तो आदमी दूसरे का देखता है अशुभ और सुख, वह अपना देखता है शुभ और दुःख। उपद्रव हो गया तो वह कर्मवाद के सिद्धान्त में ही घुस गया। मेरी मान्यता यह है कि अगर वह सुख भोग रहा है तो वह कुछ ऐसा जरूर कर रहा है जो सुख का कारण है क्योकि बिना कारण के कुछ भी नही हो सकता। अगर एक डाकू सुखी है तो उसमें कोई कारण है उसके सुखी होने का। और अगर एक साधु सुखी नही है तो उसमें कोई कारण है दुःखी होने का। अब अगर दस डाकू साथ होगे तो उनमें इतना भाईचारा होगा जितना दस साधुओ में कभी सुना ही नही गया। लेकिन दस डाकुओ में मित्रता है तो वे मित्रता के सुख भोगेंगे। साधु कैसे भोगेगा उस सुख को ? डाकू कभी एक दूसरे से झूठ नही बोलेंगे लेकिन साधु एक दूसरे से बिल्कुल झूठ बोलते रहेंगे। सच बोलने का जो सुख है वह साधु नही भोग सकता।

प्रश्न : अकस्मात् जो घटनाएँ हो जाती हैं, उसकी क्या वजह है ?

उत्तर कोई घटना अकस्मात् नही होती। असल में उस घटना को हम अकस्मात् कहते हैं जिसका हम कारण नही खोज पाते। ऐसी घटनाएँ होती हैं जिसका कारण हमारी समझ में नही आता। लेकिन कोई घटना अकस्मात् नही होती।

प्रश्नः लाटरी कैसे निकलती है ?

उत्तर : अकस्मात् नही है वह भी। सिर्फ हमें दिखता है कि वह अकस्मात् है। मैं एक घटना बताऊँ। मेरे एक मित्र पुंगलिया जी ने चार-पांच वर्ष पहले एक गाडी ली और वे मुझे लेने नासिक आए। लेकिन उनकी लड़की ने कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि वे आपकी गाडी में आएँगे नही। पर इस बात का कोई मतलब न था। शायद उसने सोचा होगा कि मैं किसी दूसरी गाडी में आ जाऊँ या कुछ हो जाए। बात खत्म हो गई। वे मुझे लेने नासिक आए। सुबह बारह बजे के करीब हम निकले वहाँ से। नया ड्राइवर था। वह इतनी तेजी से भगा रहा था कि मुझे मन में लगा कि यह कही भी गाड़ी उलटेगो। लेकिन ऐसी कोई बात नही थी। रास्ते में हम एक बगाली डाक्टर की गाड़ी को पार किए। उस गाडी में जो महिला बैठी थी उसको भी लगा कि यह गाडी नही गिरेगी। एक दो मिनट बाद ही जाकर दुर्घटना हो गयी। वह गाडी उतर

गई नीचे और रेत में उल्टी हो गई। चारो पहिए ऊपर हो गए। मेरे एक दूसरे मित्र मणिक वावू ने पूना में रात को सपना देखा कि मेरे हाथ में वहुत चोट आ गई है। तो फिर वे मुझे लेने आए। पुंगलिया की लडकी को जो ख्याल हुआ था कि मैं उनकी गाड़ी में नही आऊँगा सही हो गया। हमारी गाडी उलट गई और मणिक वावू की गाडी में हमें आना पडा। लेकिन यह घटना एकदम अकस्मात् नही है। और अगर इस वात का थोडा विज्ञान समझ में आ जाए तो कारण भी समझ में आ सकेंगे।

जैसे कि सोवियत रूस के कुछ हिस्सो में वाकू के इलाके में हजारो साल से वडा मेला लगता था। यहाँ एक देवी का मन्दिर है और वर्ष के एक खास दिन में उसमें अपने-आप ज्वाला प्रज्वलित होती है। कोई आग लगानी नही पडती, ईंधन डालना नही पडता। पर जव ज्वाला प्रज्ज्वलित होती है तो आठ दिन तक जलती है और आठ दस दिन वहाँ मेला भरता है। करोडो लोग इकट्ठे होते हैं। यह एक वडी चमत्कारपूर्ण घटना थी और कोई कारण समझ मे नही आता था, क्योकि न कोई इंधन है, न कोई दूसरी वजह है। फिर कम्यूनिस्ट वहाँ आए। उन्होंने मन्दिर उखाड दिया, मेला वन्द कर दिया और खुदाई करवाई। वहाँ तेल के गहरे झरने निकले, मिट्टी के तेल के। लेकिन सवाल यह था कि खास दिन पर वर्ष में क्यो आग लगती है। तेल के झरने से गैस वनती है। गैस जल भी सकती है घर्षण से। लेकिन वह कभी भी जल सकती है। तव खोज-वीन से पता चला कि पृथ्वी जव एक खास कोण पर होती है तभी वह गैस घर्षण कर पाती है। इसलिए खास दिन आग जल जाती है। जव वात साफ हो गई तो मेला वन्द हो गया। अग्नि देवता विदा हो गए। अव वहाँ कोई नही जाता। अव भी वहाँ जलती है आग। अव भी खास दिन पर जव पृथ्वी एक खास कोण पर होती है तो वह गैस जो इकट्ठी हो जाती है वर्ष भर में, फूट पडती है। तव तक वह अकस्मात् था। अव वह अकस्मात् नही है। अव हमें कारण का पता चल गया है।

प्रश्न : यह जो गाड़ी उलट गई आप सब बच गए उसमे, तो सवका कहना है कि आप उसमें थे इसलिए वच गए।

उत्तर · नही। असल में होता यह है कि हम सव वचना चाहते हैं और वचने के लिए वच जाएँ तो भी कोई कारण खोज लेंगे। न वच जाएँ तो भी कोई कारण खोज लेंगे। कारण हम स्थापित कर लें यह एक वात है और कारण की खोज विलकुल दूसरी वात है। यानी एक तो यह होता है कि हम

जो होना चाहते हैं उसके लिए भी हम कोई कारण खोज लेते है। और इसके पीछे भी एक बुनियादी बात हैं और वह यह हैं कि बिना कारण के कोई भी चीज कैसे होगी ? यह बुनियादी सिद्धान्त हमारे भीतर काम कर रहा है। अगर चारो आदमी बच गए और जरा भी चोट नही पहुँची तो इसका कोई कारण होना चाहिए। अगर ठीक से समझें इतनी दूर तक तो वैज्ञानिक है यह मामला। क्योंकि अकारण यह भी नही हो सकता लेकिन कारण क्या होगा ? हम कुछ भी कल्पित कर लेते हैं कि गाडी में एक अच्छा आदमी था इसलिए बच गए। और अगर मान लो न बचते तो भी हम कोई कारण खोज लेते कि एक बुरा आदमी वहाँ था इसलिए मर गए। इसमें एक ही बात पता चलती है वह यह कि आदमी अकारण किसी बात को मानने के लिए राजी नही है। और यह बात ठीक है। लेकिन हमसे वह जो कारण बताता है वह कारण ठीक हो यह जरूरी नही। कारणों की वैज्ञानिक परिक्षा होनी चाहिए। जैसे कि मुझे बैठाल कर दो चार बार गाडी गिरानी चाहिए। और अगर मेरे साथ दो चार दफे गिरने से जो भी गिरे, वे सब बच जाएँ तो फिर जरा पक्का होगा। और अगर न बचें तो बात खत्म हो गई। मेरा मतलब यह है कि वैज्ञानिक परीक्षण के बिना कोई उपाय नही है। और एक बात ठीक है कि अकारण कोई आदमी किसी बात को मानने के लिए राजी नही है और होना भी नही चाहिए। लेकिन दूसरी बात ठीक नही है। तब हमें कोई कल्पित कारण नही मान लेना चाहिए। इतना फिर हमें ध्यान में रखना चाहिए कि कारण को भी हम फिर स्थापित करने के लिए प्रयोग करें। क्योंकि अगर कारण सही है तो वह निरपवाद सही हो जाएगा। दो चार दस बार मुझे गिरा कर देखेंगे तो उससे पता चलेगा कि सबको चोट लगती है या नही लगती। और मजे की बात यह है कि चोट अगर लगी तो थोडी सी सिर्फ मुझको ही लगी थी उसमें, बाकी किसी को बिल्कुल नही लगी थी। थोडा सा जो भी लगा था, वह मेरे पैर में ही लगा था। बाकी तो किसी को भी नही लगा था। अगर बुरा आदमी कोई था भी उसमें तो मैं ही था। बाकी जो हम कल्पित आरोपण करते है उनका कोई मूल्य नही है। लेकिन अकस्मात् कुछ भी नही होता है। क्योंकि अकस्मात् अगर हम मान लें तो कार्य कारण का सिद्धान्त गया, एकदम गया। एक बात भी अगर इस जगत् मे अकस्मात् होती है तो सारा सिद्धान्त गया। फिर कोई सवाल नही है उसके बचने का।

अकस्मात् कुछ होता ही नहीं क्योंकि होने के पीछे कारण के बीना उपाय नहीं है। कारण होगा ही। अब जैसे एक आदमी है। उसको लाटरी मिल

जाती है तो यह बिल्कुल अकस्मात् बात है क्योंकि इसमें तो हम कोई कारण खोज नही सकते हैं। लेकिन एक लाख आदमियों ने अगर लाटरियों के टिकट भरे हैं और एक आदमी को मिल गई है तो किसी दिन अगर वैज्ञानिक क्षमता हमारी बढे और एक लाख लोगो के चित्तो का विश्लेपण हो सके तो मैं आपको कहता हूँ कि कारण मिल जाएगा आदमी को लाटरी मिलने का। और हो सकता है कि एक लाख लोगों में सबसे ज्यादा संकल्प का आदमी यही है, सबसे ज्यादा सुनिश्चित इसी ने मान लिया है कि लाटरी मुझे मिलने वाली है। एक उदाहरण दे रहा हूँ। और हजार कारण हो सकते हैं। इन लाख लोगों में सबसे संकल्पवान् आदमी जो है, इच्छा-शक्ति का आदमी जो है, उसको मिलने की सम्भावना ज्यादा है, क्योकि उसके पास एक कारण है जो दूसरो के पास नही है।

अभी इस पर बहुत प्रयोग चलते हैं। अगर हम एक मशीन से ताश के पत्ते फेंके या मशीन से हम पासे फेंके तो मशीन में कोई इच्छाशक्ति नही होती है। मशीन पांसे फैंक देती है। अगर सौ बार पासे फैंकती है तो समझ लीजिए दो बार बारह का अंक आता है। तो यह अनुपात हुआ मशीन के द्वारा फैंकने का। मशीन की कोई इच्छाशक्ति नही है। मशीन सिर्फ फैंक देती है पासे, हिला देती है और फैंक देती है। सौ बार फैंकने में दो बार बारह का अक आता है। अब एक दूसरा आदमी है जो हाथ से पांसे फैंकता है और हर बार भावना करके फैंकता है कि बारह का अक आए। वह सौ में बीस बार बारह का अंक ले आता है। आँख बद है उसकी। वह देख नही सकता कि पासा कैसा है, क्या है? और बीस बार ले आता है। एक तीसरा आदमी है जो कितने ही उपाय करता है कि बारह का आकड़ा आ जाए लेकिन सौ में दो बार भी नही ला पाता। यानी दो बार जो कि मशीन भी ले आती, जो कि बिल्कुल ही गणना का सवाल है। यह जो बीस बार लाता है, इस आदमी से हम दुबारा प्रयोग करवाते है कि तू इस बार पक्का कर कि बारह का आँकड़ा नही आने देना। वह पांसा फैंकता है, बीस बार नही आता। समझे, पाँच बार आता है, तीन बार आता है, दो बार आता है। अब सवाल होगा यह कि भीतर की इच्छाशक्ति काम करती है। इस पर हजारो प्रयोग किए गए हैं और यह निर्णीत हो गया है कि भीतर का संकल्प पासे तक को प्रभावित करता है, ताश के पत्तों तक को प्रभावित करता है, घटनाओ को बाधता है, प्रभावित करता है, और हजारो आदमीयो केअनुभवों और कारणो का परिणाम होता है।

वह भी आकस्मिक नहीं है कि किसी आदमी को भीतरी संकल्प मिल गया है। भीतरी सकल्प भी उसके हजारो उन अनुभवों और कारणों का फल होता है जिनसे वह गुजरा है। समझ लीजिए कि एक आदमी है और उसने तय किया है कि मैं बारह घंटे तक आँख नहीं खोलूँगा और वह आदमी बैठ गया है और बारह घंटे में उसने तीन ही घंटे बाद आँख खोल दी है तो इस आदमी का भावी संकल्प क्षीण हो जाएगा। इस आदमी के सकल्प की शक्ति क्षीण हो जाएगी। अगर वह बारह घंटे तक आँख बंद किए बैठा ही रहा, कोई उपाय नहीं किए गए कि वह आँख खोले बारह घंटे में तो यह आदमी एक कर्म कर रहा है जिसका फल होगा, उसका भीतर संकल्प मजबूत हो जाएगा।

जीवन बहुत जटिल है। उसमें कोई बात कैसे घटित हो रही है यह कहना एकदम मुश्किल है लेकिन इतना कहना निश्चित है कि जो घटना हो रही है उसके पीछे कारण होगा, चाहे वह ज्ञात हो, चाहे अज्ञात हो।

दक्षिण में एक बूढे संगीतज्ञ का जन्म दिन मनाया जा रहा है। उसके हजारों शिष्य हैं। वे सब भेंटें चढाते हैं क्योंकि हो सकता है कि अगले वर्ष वह जिए भी नहीं। उसके हजारो भक्त हैं, प्रेमी हैं, वे सब भेंटें चढाने आए हैं। रात दो बजे तक भेंटे चढती रहीं। लाखो रुपयो की भेंटें चढ गई हैं। राजा है, रानियाँ हैं। जिन्होंने उससे सीखा है, वे सब भेटें देने आए हैं। आखिर में दो बजे एक भिखारी जैसा आदमी तम्बूरा लिए हुए द्वार पर आया है। सिपाही ने कहा है कि तुम कहाँ जाते हो ? उसने कहा है कि मैं भी कुछ भेंट कर जाऊँ। उसने कहा कि तुम्हारे पास तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो उस भिखारी ने कहा कि जरूरी नहीं कि जो दिखाई पडे, वही भेट किया जाए। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह भी भेंट किया जा सकता है। तम्बूरा भी उसने सिपाही के पास रख दिया और भीतर गया। भीतर जाकर उसने गुरु के पैर पर सिर रखा। उस भिखारी की उम्र मुश्किल से तीस-बत्तीस वर्ष है। बूढा गुरु उसे पहचान भी नहीं सका। उसने कहा : तुमने कब मुझसे सीखा मुझे याद नहीं पड़ता। भिखारी ने कहा कि मैंने कभी आपसे नहीं सीखा। मैं एक भिखारी का लड़का हूँ। लेकिन महल के भीतर आप गाते-बजाते थे; मैं बाहर बैठकर सुनता था और वहीं मैं भी कुछ सीखता रहा। लेकिन अब आज धन्यवाद देने तो आना ही चाहिए। सीखा तो आपसे ही है। द्वार की सीढ़ी के बाहर बैठ कर ही सीखा, कभी भीतर नहीं आ सका क्योंकि भीतर आने का कोई उपाय नहीं था। आज

भी आना बडी मुश्किल से हुआ है। एक छोटी सी भेंट लाया हूँ—अंगीकार करेंगे, इन्कार तो न करेंगे। गुरु ने सहज कहा . नही, नही, इन्कार कैसे करूँगा? पर देखा कि उसके पास कुछ है तो नही। हाथ खाली है, कपडे फटे है। कहाँ की भेंट है, कैसी भेंट है? कहा ' नही, नही, इन्कार कैसे कर दूँगा? तुम जो दोगे, जरूर ले लूँगा। भिखारी ने आँख बन्द की और ऊपर जोर से कहा . 'भगवान्, मेरी शेष आयु मेरे गुरु को दे दो क्योंकि मैं जीकर भी क्या करूँगा?' यह कहते ही वह आदमी मर गया। यह ऐतिहासिक घटना है। अगर इतना प्रबल सकल्प किसी आदमी का है तो वह पूरा हो सकता है। यह बहुत कठिन बात नही है। और वह गुरु पन्द्रह वर्ष और जिया जिसकी एक ही साल में मर जाने की आशा थी। ऐसा व्यक्ति अगर लाटरी पर नम्बर लगाये और लाटरी निकल आए तो इसे संयोग कहा जाएगा क्योंकि हमें कारण तो दिखाई पडते नही। वही तो ह्यूम कहता है कि सब संयोग है। क्योंकि कारण कहाँ दिखाई पड रहे हैं? जिसमें हमें दिखाई पड जाते हैं उसमें तो हम राजी हो जाते हैं। जिसमें दिखाई नही पड़ते, सयोग मालूम पडता है। लेकिन संयोग बडा अद्‌भुत है। एक आदमी कहे कि मेरी उम्र चली जाए और उसी वक्त उसकी उम्र चली जाए। इतना एकदम आसान नही है सयोग। हो सकता है लेकिन यह होना एकदम आसान नही मालूम पडता। इतने संकल्प का आदमी अगर लाटरी का नम्बर लगा दे तो बहुत कठिन नही है कि निकल आए। बहुत से कारण है जो हमें दिखाई नहीं पडते है। और हमको लगता है कि यह आकस्मिक हुआ है मगर आकस्मिक कुछ भी नही है।

प्रश्न : किसी एक को लाटरी मिलनी है, इसलिए उसको मिल गई है। क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता?

उत्तर : अब यह जो मामला है इसकी भी भविष्यवाणी की जा सकती है। ऐसे लोग भी हैं जो बता सकें कि लाटरी किसको मिलेगी, तब क्या कहोगे? तब समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हिटलर की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। गांधी की मृत्यु को बताने वाले लोग है कि किस दिन हो जाएगी। चीन किस दिन हमला करेगा भारत पर, इसको बताने वाले लोग भी हैं। एक अर्थ में हम कह सकते हैं कि यह सब सयोग है।

प्रश्न : लेकिन हिरोशिमा में दो लाख व्यक्ति एक साथ कैसे मर गए?

उत्तर ' हाँ, मरे। दो लाख व्यक्ति भी एक साथ मर सकते है क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि किसी न किसी दिन सारी पृथ्वी एक साथ मरेगी। हमें लगता

है कि यह कितना आकस्मिक है कि दो लाख आदमी एक साथ मर गए क्योंकि इन दो लाख व्यक्तियों के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं है। और ऊपर से ऐसा दिखता है कि बिल्कुल आकस्मिक है कि एटम गिरा। लेकिन कोई पूछे कि हिरोशिमा पर क्यों गिरा? हिरोशिमा कोई महत्त्वपूर्ण नगर न था। टोकियो पर गिर सकता था। नागासाकी पर क्यों गिरा? जब तक हम पूरा भीतर प्रवेश न कर पाएँ कारणों के, जब तक हम हिरोशिमा के लोगों के भीतर न घुस सकें तब तक हम कुछ नहीं कह सकते। कोई नहीं कह सकता कि हिरोशिमा में जापान में सबसे ज्यादा आत्मघातेच्छुक लोग हों कि इसलिए हिरोशिमा एटम को आकर्षित करता हो।

एक मोटर एक्सीडेंट हो जाए, एक एयरोप्लेन एक्सीडेंट हो जाए तो कोई नहीं कह सकता कि उस मोटर में, उस हवाई जहाज में बैठे हुए लोगों के चित्त में क्या चल रहा है और वह किस भाँति परिणाम ला सकता है।

मेहरबाबा की जिन्दगी में दो-तीन घटनाएँ बड़ी अद्भुत हैं। एक मकान उनके लिए बनाया गया। उस मकान में वह प्रवेश करने गए। प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा है, फूल-झाड़ लगाए गए हैं, दिए लगाए गए हैं। दरवाजे पर वह दो मिनट रुके और वापस लौट आए। उन्होंने कहा इस मकान में मैं नहीं जाऊँगा। लोगों ने कहा क्या मतलब है आपका इस मकान में न जाने से। उन्होंने कहा और मुझे कुछ नहीं लगता लेकिन दरवाजे पर मैं एकदम ठिठका इसलिए मैं मकान में नहीं जाता। वह मकान उसी रात गिर गया। इस आदमी को भी साफ नहीं है कि क्या हुआ लेकिन सीढ़ी पर उसको एकदम झिझक मालूम हुई और उसने इन्कार कर दिया।

यही मेहरबाबा एक बार हिन्दुस्तान से यूरोप जाते हैं हवाई जहाज से। और लंदन में जहाज पर चढ़ने से इन्कार कर देते हैं। उनकी टिकट है आगे तक की। लंदन पर जहाज रुका है। वह एयरपोर्ट पर उतरे हैं और उसके बाद वह एकदम इन्कार कर देते हैं कि मैं जहाज पर नहीं चढ़ सकता और वह जहाज गिर जाता है।

जापान में एक घटना घटी। पिछले महायुद्ध में एक अमेरिकी जनरल जा रहा है एक हवाई जहाज से, किसी सैनिक कार्य से, किसी दूसरे सैनिक कैम्प में। वह घर से निकल गया है सुबह आठ बजे। उसकी टाइपिस्ट भागी हुई उसके घर पहुँची है कोई सवा आठ बजे और उसकी पत्नी से कहा है कि जनरल कहाँ है? उसकी पत्नी ने कहा क्यों? उसने कहा रात मैंने एक सपना देखा है।

मैं उसको कह दूँ। मैं बहुत डर गई हूँ। पहले मैंने सोचा कि कहना है कि नहीं, इसलिए देर हो गई। क्या सपना देखा है, उसकी पत्नी ने पूछा। तो वह अपना सपना बताती है कि जनरल जिस हवाई जहाज से आज जा रहे हैं, वह टकरा जाता है बीच में। उसमें जनरल है, चालक है और एक औरत है। हवाई जहाज टकरा जाता है हालांकि मरता कोई नहीं है। तीनों बच जाते हैं। तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुम्हारा सपना यहीं से गलत हो गया क्योंकि जनरल और चालक दो ही जा रहे हैं। उसमें कोई औरत नहीं है। और वह तो निकल चुके हैं। फिर भी, पत्नी और वह, दोनों कार से एयरपोर्ट पर पहुँचते हैं। तब तक जनरल जा चुका है। लेकिन एयरपोर्ट पर पता चला कि एक औरत भी गई हुई है। एक औरत ने वहीं आकर कहा कि मेरा पति बीमार है। और मुझे इस वक्त कोई जाने का उपाय नहीं है। मुझे आप साथ ले चलें तो कृपा होगी। जनरल ने कहा कि हवाई जहाज खाली है, कोई बात नहीं है, तुम चलो। वह औरत साथ गई है। तब उसकी पत्नी घबड़ा गई है। वह एयरपोर्ट पर ही है कि खबर मिलती है कि वह जहाज टकरा गया है लेकिन मरा कोई नहीं है। और उस लड़की ने जिसको सपना आया है कहा है कि कितनी बड़ी चट्टान है जिससे वह जहाज टकराता है, कैसी जगह है, और वहाँ कैसे दरख्त हैं। वह सब शब्द-शब्द सही निकला है। लेकिन अगर यह सपना नहीं है तो बात अकस्मात् है। लेकिन अगर यह सपना है तो बात अकस्मात् नहीं है। कुछ कारण काम कर रहे हैं जिनका तालमेल आधा घंटा या घण्टा भर बाद उस जहाज को गिरा देने वाला है।

जिन्दगी जैसी हम देखते हैं उतनी सरल नहीं है। सब चीजें समझ में नहीं आती हैं। लेकिन इतनी बात समझ में आती ही है कि अकारण कुछ भी नहीं है। कर्म के सिद्धान्त का बुनियादी आधार यह है कि अकारण कुछ भी नहीं है। दूसरा बुनियादी आधार यह है कि जो हम कर रहे हैं वही हम भोग रहे हैं। और उसमें जन्मों के फासले नहीं हैं। और जो हम भोग रहे हैं, हमें जानना चाहिए कि हम उस भोगने के लिए जरूर कुछ उपाय कर रहे हैं, चाहे सुख हो, चाहे दुःख हो, चाहे शान्ति हो, चाहे अशान्ति हो।

प्रश्न : जो बच्चे अंगहीन पैदा हो जाते हैं या अन्धे पैदा हो जाते हैं या अस्वस्थ पैदा हो जाते हैं, उसमें उन्होंने कौन सा कर्म किया है जिसकी वजह से वे वैसे हैं।

उत्तर : हाँ, बहुत से कारण हैं। अब यह बात समझने जैसी है असल में। एक बच्चा अंधा पैदा होता है तो घटनाएँ घट रही हैं। अगर वैज्ञानिक से पूछेंगे तो वह कहेगा कि इसमें माँ-बाप के जो अणु मिले उसमें अंधेपन की गुंजाइश थी। वैज्ञानिक यहाँ समझाएगा। वह भी अकारण नहीं मानता इसको। लेकिन वह विज्ञान के कारण खोजेगा। वह कहेगा कि जो माँ-बाप के अणु मिले उन अणुओं से अंधा बच्चा ही पैदा हो सकता था। अंधा बच्चा पैदा हो गया। उन अणुओं में कोई रसायनिक कमी थी जिससे कि आँख नहीं बन पायी। लेकिन धार्मिक कहेगा कि बात इतनी ही नहीं है। इसके पीछे और भी कारण हैं। विज्ञान के लिए तो आदमी सिर्फ जन्मता है। जन्म के पहले कुछ भी नहीं है। लेकिन वह इस बात को इन्कार कैसे कर सकता है कि पैदा होने के पीछे भी कारण है, सिर्फ अंधा होने के पीछे ही नहीं। यानी वह इतना तो मानता है कि अंधा पैदा हो गया क्योंकि अणुओं में कुछ ऐसा कारण है जिससे अन्धा पैदा होना है। लेकिन पैदा ही क्यों होगा यह आदमी ? बस वह अणुओं के मिलने पर शुरूआत मानता है। धर्म कहता है उसके पीछे भी कोई कारण की शृंखला है, उसको अभी तोड़ा नहीं जा सकता। धर्म कहता है कि जो आदमी मरा, मरते वक्त तक ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं कि वह आदमी खुद भी आँख न चाहे। या उसके कर्मों का पूरा योग हो सकता है उस क्षण में कि आँख सम्भव न रहे। और ऐसा आदमी अगर मरे तो ऐसी आत्मा उसी माँ-बाप के शरीर में प्रवेश कर सकेगी, जहाँ अन्धे होने का संयोग जुड़ गया है। यानी ये दोहरे कारण हैं। अब जैसे मैं उदाहरण के लिए कहूँ। एक लड़की को मैं जानता हूँ जिसकी आँख चली गई सिर्फ इसलिए कि उसके प्रेमी से उसको मिलने के लिए मना कर दिया गया। उसके मन में भाव इतना गहरा हो गया इस बात का कि जब प्रेमी को ही नहीं देखना है तो फिर देखना भी क्या है ? यह भाव इतना संकल्पपूर्ण हो गया कि आँख चली गई। और किसी इलाज से आँख नहीं लौटाई जा सकी जब तक कि उसको प्रेमी से मिलने नहीं दिया गया। मिलने से आँख वापस लौट आई। उनके मन ने ही आँख का साथ छोड़ दिया था। तो मरते क्षण में, मरते वक्त में आत्मा के पूरे के पूरे जीवन की व्यवस्था, उसका चित्त, उसका संकल्प, उसकी भावनाएँ सब काम कर रही हैं। इन सारे संकल्पों, इन सारी भावनाओं, इस सारे कर्म शरीर को, इस सारे संकल्प शरीर को लेकर वह इस शरीर को छोड़ती है। नया शरीर हर कोई ग्रहण नहीं कर लिया जाएगा। वह उसी शरीर की ओर सहज नियम से आकर्षित होगी जहाँ उसकी इच्छाएँ, उसकी भावनाएँ उपलब्ध हो सकेंगी।

दो कारण-परम्पराएँ यहाँ मिल रही है।एक शरीर के अणुओं की, एक आत्मा की। शरीर के अणुओ से बनेगा शरीर। लेकिन उस शरीर को चुनेगा कौन ? यहाँ हम पचास मकान, पचास ढंग के बनाएँ। आप मकान खरीदने आएँ। आप पचास में से हर कोई मकान नही चुन लेते। आप खोजते हैं, फिर आप एक मकान चुन लेते है। आपके भीतर उसके चुनाव के कारण होते हैं। हो सकता है कि आपके ख्याल सौन्दर्य रुचि वाले हो कि बड़ा सुन्दर मकान चाहिए हो सकता है कि सुविधा के ख्याल हो कि सुविधापूर्ण मकान चाहिए। बड़ा चाहिए, छोटा चाहिए, कैसा चाहिए ? वह आपके भीतर है। तो दोहरे कारण हैं। एक तो इंजीनियर मकान बना रहा है। उसके भी मकान पचास बन गये हैं। उसके भी कारण हैं पचास मकान बनाने के। वह भी हर कुछ नही बना देगा। उसके अपने भीतरी कारण हैं, अपनी दृष्टि है, अपने विचार हैं, अपनी धारणाएँ है। फिर आप चुनाव करते हैं। पचास में से आपने एक चुना। तो यहाँ दोहरी कारण-शृंखलाओ का मिलन हुआ। एक इजीनियर की कारण-शृंखला और दूसरी आपकी अपनी कारणशृखला। हो सकता है कि आप पचास में से कोई भी न चुने, वापस चले जाएँ कि यहाँ मुझे कुछ पसद नहीं पड़ता। इन दोनो ने क्रास किया और आपने खास मकान चुना। जो शरीर हमने चुना है, वह हमने चुना है। वह हमारा चुनाव है, चाहे वह अचेतन हो, चाहे वह चेतन हो। लेकिन जो शरीर हमने चुना है उसमें भी कर्म का प्रभाव है क्योंकि कार्य-कारण से अन्यथा कुछ हो ही नही सकता।

प्रश्न : एक गाँव है। उसमे जो बच्चे हैं वे सौ प्रतिशत दो साल बाद मर जाते हे। लेकिन क्या ऐसी व्यवस्था है कि सौ के सौ ही जिन्दा रह जाएँ ? क्या नस्ल सुधारी जा सकती है ?

उत्तर : हाँ बिल्कुल सुधारी जा, सकती है। बिल्कुल सुधारी जा सकती है। फिर वे बच्चे पैदा नही होंगे उस गाँव में जो दो साल में मरते हैं। एक और गाँव है जिसमे दो साल मे हर दस में से आठ बच्चे मर जाते हैं। इस गाँव मे वे ही बच्चे आकर्षित होते हैं जिनकी दो साल से ज्यादा जीने की सम्भावना नही। अगर इस गाँव की नस्ल सुधार दी जाए तो इसका मतलब हुआ कि इंजीनियर ने दूसरे मकान बनाए जिनमें वे ही यात्री आकर्षित होंगे जो अभी आकर्षित नही हुए थे। इस गाँव में अब वे बच्चे पैदा होंगे जो सौ वर्ष जिन्दा रहने के लिए आए हुए हैं।

प्रश्न लेकिन क्या सब गाँव मे ऐसा किया जा सकता है ?

उत्तर सब गाँव में किया जा सकता है, तो नक्षत्र बदल जाएँगे। इससे कोई फर्क नही पडता। यानी एक गाँव बदलता है या दूसरा गाँव यह सवाल नही। अगर पूरी पृथ्वी पर हम सौ साल की उम्र तय कर लें तो इस पृथ्वी पर सौ साल से कम पैदा होने वालो का उपाय बन्द हो जाएगा। उनको दूसरे नक्षत्र चुनने पड़ेंगे।

प्रश्न तब तो फिर दूसरे जन्म तक कर्म गया ?

उत्तर · मेरा मतलब नही समझे। दूसरे जन्म तक तुम जाओगे और तुमने जो किया है, तुमने जो भोगा है उसी से तुम निर्मित हुए हो इसको भी ठीक समझ लेना जरूरी है। समझ लो मैंने पानी बहाया इस कमरे में। एक गिलास पानी लुटका दिया। पानी बहा, उसने एक रास्ता बनाया, दरवाजे से निकल गया। फिर पानी बिल्कुल चला गया। धूप आई। सब सूख गया। सिर्फ एक सूखी रेखा रह गई। पानी नही है बिल्कुल अब। लेकिन पानी जिस मार्ग से गया था वह मार्ग रह गया है। आपने दूसरा पानी उलटाया। अब इस दूसरे पानी की हजार सम्भावनाओ में निन्यानवे सम्भावनाएँ यह हैं कि वह उसी मार्ग को पकड ले क्योकि उसमें न्यूनतम प्रतिरोध है, झगडा ज्यादा नही है। दूसरा मार्ग बनाना हो तो फिर धूल हटानी पडेगी, कचरा हटाना पडेगा तब पानी मार्ग बना पाएगा। बना हुआ मार्ग है। यह पानी उस मार्ग को पकड़ लेगा और उसी मार्ग से बह जाएगा। पुराना पानी नही रह गया था सिर्फ सूखी रेखा रह गई थी।

मेरा कहना है कि एक जन्म से दूसरे जन्म में कर्म के फल नही जाते। लेकिन कर्म और फल जो हमने किए और भोगे, उनकी एक सूखी रेखा हमारे साथ रह जाती है। उसको मैं संस्कार कहता हूँ। कर्म फल दूसरे जन्म में नही जाते। मैंने पिछले जन्म गाली दी थी तो फल वहीं भोग लिया था। लेकिन गाली दी थी मैंने और तुमने नही दी थी तो मैंने गाली का फल भोगा, तुमने वह फल भी नही भोगा। तो मैं एक और तरह का व्यक्ति हूँ। मेरे पास एक सूखी रेखा है गाली देने और गाली का फल भोगने की। वह सूखी रेखा मेरे साथ है। इस जन्म में मेरे साथ सम्भावना है कि कोई गाली दे तो मैं फिर गाली दूँ क्योकि वह सूखी रेखा जो है, न्यूनतम प्रतिरोध की वजह से मैं फौरन उसे पकड लूँगा। कल रात हम सब लोग सो जाएँ। आप अलग ढंग से जिए। मैं अलग ढंग से जिया। जो मैं जिया वह गया। आप जो जिए वह भी गया। लेकिन उसकी सूखी रेखाएँ साथ रह गईं।

प्रश्न : मरने के बाद तो कोई श्रीमन्त के यहाँ जन्मता है, कोई गरीब के यहाँ जन्मता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर : हाँ सही है। यहाँ भी हमारी सूखी रेखाएँ ही काम कर रही हैं। हमारा जो चित्त है, उसके जो आकर्षण हैं, हमने जो किया और भोगा है उसने हमें एक खास परिस्थिति दी है, एक खास संस्कार-बद्धता दी है। वह खास संस्कार-बद्धता हमें खास मार्गों पर प्रवाहित करती है। वे खास मार्ग सब रूपों में कारण से बधे होंगे। चाहे वह समृद्ध के घर पैदा हो, चाहे गरीब के घर में, चाहे हिन्दुस्तान में पैदा हो, चाहे अमेरिका में, चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप हो, चाहे जल्दी मरने वाला हो या देर तक जीने वाला हो इन सारी चीजों में उस आदमी ने जो किया है और भोगा है, उसकी संस्कारशीलता काम करेगी ही। अकारण यह कुछ भी नहीं है।

प्रश्न : कल जब समाजवाद आ जाएगा, कारण और कार्य दोनों खत्म नहीं होंगे उस वक्त ?

उत्तर : कारण और कार्य खत्म हो गए। जैसे आपने आग में हाथ डाले फिर आपने हाथ बाहर निकाल लिए तो डालना खत्म हो गया। आपका हाथ जला वह भी खत्म हो गया। हाथ की जलन भी खत्म हो गई लेकिन आग में डालने से जला हुआ हाथ पास रह गया।

प्रश्न : किसी के कर्म का जो अन्तिम फल है वही तो चला अगले जन्म में ?

उत्तर : फल नहीं चलने वाला है। फल तो खत्म हो गया।

प्रश्न : आग जलने के कारण हाथ पर कुछ निशान रह गए ?

उत्तर : हाँ ये जो निशान हैं न तो ये जलन है, न आग है। फल जलन था, वह तुमने भोग लिया। अब तुम्हारा हाथ जल गया है।

प्रश्न : यह भी तो एक प्रकार का फल ही है कि हाथ कुरूप हो जाए ?

उत्तर : यह सूखी रेखा है। सिर्फ चिह्न रह गया है कि तुम्हारा हाथ जला था।

प्रश्न . फल तो उसी का है ?

उत्तर : नहीं, तुम फल का मतलब ही नहीं समझते। फल का मतलब होता है जलन। कारण था आपका हाथ डालना, फल था हाथ का जलना। यह एक घटना थी। इस घटना के सूखे संस्कार पीछे रह जाएँगे कि इस आदमी ने

आग में हाथ डाला था। इस बात को मैं संस्कार कहता हूँ, फल नहीं कहता। फल तो जलन थी जो भोग लिया तुमने। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भोगने की खबर को लिए हुए है अपने साथ। ये खबरें भी हमें प्रभावित करती हैं। वे हमें न्यूनतम प्रतिरोध का मार्ग सुझाती हैं। जिस आदमी ने पिछले दस जन्मों में हत्या की है बार-बार उसकी बहुत सम्भावना इस जन्म में भी हत्या करने की है। कारण कि दस जन्मो से हत्या करने को उसकी जो वृत्ति है, जो भाव है, जो सस्कार है, वह निरन्तर गहरा होता चला गया है और जब उससे झगडा होता है तो पहली बात उसको यही सूझती है कि मार डालो। दूसरी बात नही सूझती उसको। यह निकटतम रास्ता है जिस पर सूखी रेखा बनी है। वृत्ति सिर्फ सूखी है, उसमें कोई प्राण नही है। अगर आप बदलना चाहें तो बदल सकते हैं। लेकिन अगर आप कहते हैं फल तो फल सूखा नही, फल हरा है। फल भोगना पडेगा, आप उसे बदल नही सकते। जैसे कोई आग में हाथ डालता है तो उसे उसी वक्त जलना पडेगा जब कि वह हाथ डालता है लेकिन मेरा कहना है कि यह आदमी आग में हाथ डालने की वृत्ति वाला है। दूसरे जन्म में भी इससे डर है कि कही वह आग में हाथ डाल दे। क्योकि इसकी बार-बार आग में हाथ डालने की आदत भय पैदा करती है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि यह आग में हाथ डालने को बँधा है। यह चाहे तो न डाले।

इसका मतलब यह होता है अन्तत. कि कर्मो की निर्जरा नही करनी है आपको। कर्मो की निर्जरा हर कर्म के साथ होती ही चली जाती है। पीछे सूखी रेखा रह जाती है। इसी सूखी रेखा से आपको ज्ञान हो जाना काफी है। इसलिए मोक्ष या निर्वाण तत्काल हो सकता है। पुरानी धारणा में वह तत्काल नही हो सकता क्योकि आपने जितने कर्म किए हैं उनके फल आपको भोगने ही पडेगे। जब आप सारे फल भोग लेंगे तभी आपको मुक्ति हो सकती है। और इन फलो को भोगने में फिर आपने कुछ कर्म कर लिए तो आप फिर बँध जाएँगे और यह अन्तहीन शृंखला होगी। यानी मैं कह रहा हूँ कि आप प्रतिबार कर्म करके फल भोग लेते हैं। निर्जरा वही हो जाती है, रह जाती है सिर्फ सूखी रेखा, कर्म नहीं, फल नहीं। अगर आप होश से भर जाते हैं तो वह अभी विदा हो जाती है।

प्रश्न . सूखी रेखा रहने की जरूरत क्या थी ?

उत्तर : उसकी जरूरत है।

प्रश्न . सूखी रेखा का सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर सिद्धान्त की जरूरत नही। तथ्य है यह। जैसे समझ लो कि आज दिन भर मैंने क्रोध किया, दुःख भोगा, गाली खाई, झगड़ा हुआ, उपद्रव हुआ, अशान्त हुआ। फिर मैं सो गया आज रात को। आपने दिन भर क्रोध नही किया, प्रेम से लोगो से मिले जुले, आनन्दित रहे। आप भी सो गए। सुबह हम दोनो एक ही कमरे में सोकर उठे। मेरी चप्पल मेरे विस्तर के पास नही मिली मुझे। आपकी भी नही मिली। आपको सम्भावना वहुत कम है कि आप क्रोध में आ जाएँ। मेरी सम्भावना वहुत ज्यादा है कि मैं क्रोध में आ जाऊँ। वह जो कल का दिन था उसकी सूखी रेखा मेरे साथ है। कल दिन भर जो क्रोध किया तो आज सुबह से ही उपद्रव शुरू हो गया। कहाँ है मेरी चप्पल ? कल जो मैंने गाली दी थी, वह भी गई, जो गाली का दु.ख था, वह भी गया। लेकिन गाली देने वाला आदमी जिसने दिन भर गालियाँ दी वह तो शेष है। मुझमें और आप में कोई फर्क तो होना चाहिए क्योकि आपने गाली नही दी और मैंने दिन भर गाली दी। और सुवह फिर ऐसा हो जाए कि कोई भेद न रह जाए तव तो फिर व्यवस्था गई। भेद तो रहेगा ही मुझ में और आप में। क्योकि हम अलग ढंग से जिए। मैं क्रोध मे जिया, आप प्रेम में जिए। तो हम में भेद रहेगा। वह भेद वृत्ति का होगा, फल का नही। फल तो गया। अव हमारे साथ रह जाएगा वह जो समग्र संस्कार है हमारा। इस समग्र सस्कार के प्रति हमारी मूर्च्छा कारण होगी इसको चलाने का। जैसे समझ ले कि कल मैंने क्रोध किया दिन भर और सुवह सोचूँ कि वहुत क्रोध किया, वहुत दु:ख पाया और जाग जाऊँ तो जरूरी नही कि मैं फिर क्रोध करूँ यानी मेरे भीतर क्रोव करने की अनिवार्यता नही है। सिर्फ मूर्च्छा में ही अनिवार्यता है। अगर मैं सोए-सोए कल जैसा व्यवहार करूँ तो क्रोव चलेगा। अगर जाग जाऊँ तो क्रोव टूट जाएगा।

इसलिए अन्तत. मेरी दृष्टि में कर्म की निर्जरा तो हो चुकी है लेकिन कर्म की सूखी रेखा रह गई है। और वह सूखी रेखा हमारी मूर्च्छा है। अगर हम मूर्च्छित रहें तो हम वैसे ही काम करेंगे। अगर हम जाग जाएँ तो काम इसी वक्त वन्द हो जाए। इसलिए मैं कहता हूँ कि एक क्षण मे मुक्ति हो सकती है। करोड़ जन्मो में आपने क्या किया है, इससे मुझे कुछ लेना-देना नही है। सिर्फ आप जाग जाएँ। इससे ज्यादा कोई शर्त नही। यह मेरी व्यक्तिगत दृष्टि है क्योकि मैं ऐसी व्याख्या कर रहा हूँ। वुनियादी अन्तर पड़ेगा आपकी व्याख्या से।

आपकी व्याख्या का मतलब यह है कि अगर करोड जन्म आपने कर्म किए तो आपको फल भोगने के लिए शेष है अभी। वह जब तक आप नही भोग लेते तब तक कोई उपाय नही। और उनको भोगने में भी नए कर्म होंगे क्योकि आप बचेंगे कैसे? अगर पुरानी व्याख्या सही है तो मैं मानता हूँ कि कोई कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। कारण कि कल मैंने कितने पाप किए, कितनी बुराइयां की, उनका फल भोगना है। और वह मैं कैसे भोगूँगा? जब मुझे कोई गाली देने आएगा क्योकि मैंने पिछले जन्म मे उसे गाली दी थी तो फिर कर्म शुरू होगा। वह फिर मुझे गाली देगा। और जब मैंने पिछले जन्म में गाली दी थी तो गाली देने की मेरी वृत्ति तो है ही। और अब अगर वह मुझे फिर गाली देगा तो फिर गाली का सिलसिला जारी रहेगा। और सिलसिले का अन्त क्या है? क्योकि अगर एक कर्म भी शेष रह गया तो उसको भोगने में फिर नए कर्म निर्मित होते चले जाएँगे। और अगर एक भी शेष रहा तो यह निर्मिति कैसे बन्द होगी? और अगर यह बात सही है तो दुनिया में कोई कभी मुक्त हुआ ही नही। लेकिन दुनिया में मुक्त लोग हुए हैं और वे इसलिए मुक्त हो सके हैं कि कर्म आगे के लिए शेष नहीं रह जाते। कर्म पीछे ही चुकता हो जाते हैं। सिर्फ रह जाती है सोयी हुई वृत्ति और अगर आदमी सोया ही रहे, तो उन्ही कर्मों को दुहराता चला जाएगा। जाग जाए तो दुहराना बन्द कर देगा। यानी मुझे कोई मजबूर नही कर रहा है कि मैं क्रोध करूँ सिवाय मेरी मूर्च्छा के। और अगर मैं जाग गया हूँ तो मैं कहता हूँ कि ठीक है, इस रास्ते से बहुत बार जा चुके, बहुत दुःख उठा चुके।

इसलिए महावीर ने बडी कोशिश की प्रत्येक व्यक्ति को पिछले जन्मो के स्मरण करने की ताकि यह पता चल जाए कि तुम क्या-क्या कर चुके हो, क्या-क्या भोग चुके हो, तुम कितनी वार गुजर चुके हो? और अगर स्मरण आ जाए किसी व्यक्ति को उसके दो चार जन्मो का तो वह जानेगा कि उसने बहुत बार धन कमाया, कई बार बेईमानी से और बहुत बार प्रेम किया, क्रोध किया, यश कमाया, अपमान सहा, मान सहा। सब कर चुका वह जो अब फिर कर रहा है। और अगर उसको यह दिखाई पड जाए कि यह मैं बहुत बार कर चुका तो यह निरर्थक हो जाए। और यह चोट अगर उसको पड जाए तो वह अभी जाग जाए और कहे कि अब मैं बहुत कर चुका यह। अब दूसरे करने का क्या मतलब? कितनी बार धन कमाया, फिर उसका हुआ क्या? तो यह जागरण उसकी सूती रेखा को तोड़ने का कारण बन जाएगा। इसलिए इसमें तत्काल

बोध की सम्भावना है। सच तो यह है कि जब भी कभी मुक्ति होती है वह तत्काल होती है।

प्रश्न : फिर यह जो सुधार करना चाहते हैं समाज मे, वह व्यर्थ हो गया। जैसे सतीप्रथा थी जो स्त्रियों को जबरदस्ती आग मे ढकेल देते थे।

उत्तर : यह बडा अच्छा सवाल है। सच में अन्याय कुछ भी नही है। क्योकि जो हम कर रहे हैं, वह हम भोग रहे हैं। एक बात और समझ लेनी जरूरी है। पुराना ख्याल था कि अगर मैं किसी को चाँटा मारूँ तो किसी जन्म में वह मुझको चाँटा मारेगा। कर्म सिद्धान्त का ऐसा ख्याल है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर मैंने किसी को चाँटा मार दिया तो जब तक वह मुझे चाँटा न मार ले, तब तक वह भी मुक्त नही हो सकता। यानी मेरा कृत्य भी उसकी अमुक्ति का कारण बन जाएगा। समझ लीजिए कि मैंने किसी को चाँटा मारा और वह इसी जन्म में मुक्त हो सकता था। मगर अब नही हो सकता जब तक वह मुझे चाँटा न मार ले। क्योंकि मुझे चाँटा कौन मारेगा ? हिसाब कैसे पूरा होगा ? उसे अगला जन्म लेना पड़ेगा और वह भी मेरे कारण जो कि बिल्कुल ही व्यर्थ बात है। नही, मेरा कहना यह है कि मैं जब उसको चाँटा मारता हूँ तो वह मुझे चाँटा मारेगा ऐसा फल नही होता। मैं चाँटा मारता हूँ। मेरे चाँटा मारने में जिस वृत्ति से मैं गुजरता हूँ, वह मुझे दुःख दे जाती है। उससे कुछ चाँटा लौटाने का सवाल नही है। हाँ, मैंने उसे चाँटा मारा। अगर चाँटे को वह साक्षी भाव से देखता रहा, तो वह नया कर्म नही बाँधता है क्योंकि वह सिर्फ साक्षी रहता है। मैंने चाँटा मारा, उसने देखा। वह कुछ भी नही कर रहा है। अगर वह मेरे चाँटा मारने से मुझे चाँटा मारे तो वह मेरे चाँटा मारने का फल नही है। वह उसका कर्म है जिसका फल उसको भोगना पडेगा। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। मैंने चाँटा मारा है उसको और अगर वह चुपचाप खड़ा रहे और समझे कि वह बिचारा पागल है, चाँटा मारता है और कुछ न करे और समझे, अपने रास्ते बढ जाए तो उसने कोई कर्मबद्ध नही किया। मैंने कर्म किया और उसका फल भोगा। मेरे इस कर्मबन्ध की शृंखला से उसने कोई सम्बन्ध नहीं जोडा। लेकिन वह अगर मुझे चाँटा मारे तो वह मेरे चाँटे का उत्तर तो मैं ही भोग रहा हूँ। उसके चाटे का उत्तर वही भोगने वाला है। यह उसकी कर्म-शृंखला है। इसमे मुझे कुछ लेना-देना नही है। इसमें अन्याय कुछ भी नहीं है। मैं चाटा मारता हूँ तो मैं दुःख भोग लेता हूँ।

प्रश्न : आपका दृष्टिकोण है कि चांटा मारने से दु.ख होगा। लेकिन ऐसी भी वृत्ति होती है कि मैं चांटा भी मारूं और आनन्द भी लूं और जिसे चांटा मारा उसको दु ख नहीं है क्या ?

उत्तर समझें थोडा इसे। मैंने चाटा मारा किसी को तो मैंने कर्म किया, दु ख भोगा, फल भोगा। लेकिन जिसको मैंने चाटा मारा उसके साथ अन्याय हो गया। और मैं कहता हूँ कि अन्याय कुछ भी नही है। मेरा कहना है कि मेरा चांटा मारना आधा हिस्सा है। और चांटा भी मैं उसी को मारता हूँ जो चांटे को आकर्षित करता है। वह दूसरा हिस्सा है जो हमें दिखाई नही पडता। यह असम्भव है कि मैं उसको चांटा मार दू जो चांटे को आकर्षित नहीं करता। जो चाटा को आकर्षित करता है उसी को चाटा पडता है। आकर्षित करने की वजह से वह दु ख उठाता है। आकर्षण उसका हिस्सा है। यानी अकेला कोई आदमी इस दुनिया में मालिक नही होता। गुलाम भी उसके साथ गुलाम होना चाहता है। नही तो यह सम्बन्ध बन ही नही सकता है। हम तो मालिक को थोप देते है कि तुमने गुलाम बनाया है इस आदमी को। लेकिन हमने यह कभी नही पूछा कि यह आदमी गुलाम बनना चाहता है। अगर यह नही बनना चाहता तो असम्भव है इसे गुलाम बनाना।

एक फकीर हुआ है डायोजनीज। रास्ते से गुजर रहा था, नगा फकीर था। उसे कुछ लोगो ने पकड लिया। उसने पूछा कहा ले जाते हो मुझे पकड कर। लोगो ने कहा कि हम गुलामों को पकड कर बेचते हैं बजारो में। डायोजनीज ने कहा : बहुत बढिया, चलो, चलते है। पर लोग बहुत हैरान हुए क्योंकि कोई आदमी को पकडा गुलामी के लिए तो वह भागता है, बचना चाहता है। डायोजनीज ने कहा कि हाथ-पांव छोड़ दो क्योंकि मैं खुद ही चलता हूं। जो तुम्हारे साथ नही जाना चाहता उसे तुम जजीर बाधकर भी नही ले जा सकते। मैं तो चलता ही हूं। जंजीरे अलग कर लो। वे उसे ले गए। वह उनके साथ चला गया। उसे जाकर खडा कर दिया गया। बहुत तगडा फकीर था, बडा स्वस्थ आदमी था। वैसा ही नग्न रहता और वैसा ही सुन्दर था। उसे चौखटे पर खडा कर दिया जहां नीलाम-बिक्री होती थी गुलामो की। और बेचनेवाले ने चिल्लाया कौन इस गुलाम को खरीदता है। उसने कहा : चुप! यह मत कहना। आवाज मैं ही लगा देता हूँ। उस आदमी ने चौखटे पर खड़े होकर कहा कि किसी को मालिक खरीदना हो तो आ जाए। लोग बडे चौंके। और भीड लग गई। उन्होंने

कहा कि क्या मजाक की बात है ? डायोजनीज़ ने कहा मैं हर हालत में मालिक ही रहूँगा। ये लोग मुझे पकड़ कर भी लाए तो मैंने कहा : हटाओ ये जंजीरें तो इन्होंने जल्दी से हटा ली। क्योंकि मैंने कहा कि मैं ऐसे ही चलता हूँ क्योंकि मैं मालिक हूँ। इनसे पूछो कि मैं इन्हें कितना डाटता-डपटता ला रहा हूँ। यह जो मुझे पकड कर लाए हैं इनका कितना सुधार किया है, इनको कितना ठीक किया है मैंने। इनसे पूछो। और हालत सच में यही थी कि जो उसको पकड कर लाए थे, बहुत डरे हुए थे। वह आदमी बडी अकड से भरा हुआ था। उसने कहा कि कोई गुलाम समझ कर मुझे मत खरीद लेना क्योंकि जो गुलाम होना चाहे वही गुलाम हो सकता है। हम तो मालिक ही हैं। किसी को मालिक खरीदना हो तो खरीद ले। एक राजा को क्रोध आ गया। उसने कहा . यह क्या बात करता है ? उसने उसे खरीद लिया और घर ले जाकर कहा कि इसकी टाग तोड डालो। डायोजनीज़ ने टाग आगे कर दी। राजा ने कहा : तुडवा रहे हैं तुम्हारी टाग। उसने कहा तुम क्या तुडवा रहे हो हम खुद ही आगे कर रहे हैं। हम मालिक हैं। तुडवाओगे तुम तब जब हम बचाएँ। तोडो लेकिन ध्यान में रहे कि नुकसान में पड जाओगे। लेकिन जो खरीदा है मुझको फिर मैं किसी काम का न रह जाऊँगा। टाग टूट गई फिर मैं काम का नही रहूँगा। तुम्हारी मर्जी। राजा को भी ख्याल आया कि बात तो सच है। अगर इसकी टाग तुडवा दी तो यह और बोझ बन जाएगा। राजा ने कहा कि रहने दो, इस आदमी की टाग मत तोडो। डायोजनीज़ ने कहा : देखते हो तुम, मालकियत किसकी चल रही है।

तो मैं कह रहा हूँ कि जब एक आदमी गुलाम होता है तो किसी न किसी रूप में वह गुलामी को आमन्त्रित करता है। जब मालिक होने की प्रवृत्ति वाले और गुलाम होने की प्रवृत्ति वाले आदमी मिल जाते हैं तो ताल-मेल बैठ जाता है। एक गुलाम बन जाता है, एक मालिक हो जाता है। इसे ऐसा समझना चाहिए कि जैसे हम एक प्लग लगाते हैं तो उसमें हम जो पिने लगा रहे हैं वही मतलब नही रखती। उसमें जो छेद हैं वे भी मतलब रखते हैं। जब मैं किसी को चाटा मारता हूँ तो इतना ही काफी नही कि मैंने चाटा मारा। वह आदमी किसी न किसी ढग से छेद का कार्य कर रहा है, चाटे को निमन्त्रित कर रहा है। नही तो यह असम्भव है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि अन्याय असम्भव है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि हमें अन्याय मिटाने की कोशिश नही करनी चाहिए। नही, वह कोशिश हमें करनी

चाहिए। क्यो ? उसका कारण है। हमे एक ऐसी दुनिया वनानी चाहिए जहाँ न कोई चाटे को आकर्षित करता हो, न कोई चांटा मारने को उत्सुक होता हो। अन्याय कभी भी नही है। अन्याय का कुल मतलव इतना हो सकता है कि अभी ऐसे लोग हैं दुनिया में जो चाटा मारने को भी उत्सुक हैं और चाटा खाने को भी उत्सुक हैं। अन्याय घटना में नही है, घटना तो हमारी न्याय-सगति है। जो हो रहा है, वैसा ही होता है। वैसा ही हो सकता था। जैसे सतियाँ होती थी। वे इसलिए होती थी कि कुछ स्त्रियाँ मरने को राजी थी आग में। नियम चलता था। अन्याय कुछ भी नही था। जो स्त्रियाँ जलने को राजी नही थी, वे उस दिन भी नही जलाई गईं। जो स्त्रियाँ जलने को आज भी राजी है वे स्टोव से आग लगा लेती हैं, जहर खा लेती हैं, कुछ भी करती हैं। यानी मेरा कहना यह है कि उस समय भी सारी स्त्रियाँ तो सती नही हो जाती थी। कुछ ही स्त्रियाँ सती होती थी। और अगर तुम हिसाव लगाते जाओ तो जितनी औरतें आज आग लगाकर मरती हैं, वह अनुपात कम नही पाओगे। यह सोचने जैसा मामला है। सती की व्यवस्था आग में जलने वाली औरतों के लिए एक सुविधा थी। कुछ लोग जलाने वाले भी हैं। वे अब भी जलाने का इन्तजाम करते हैं।

प्रश्न ' किसी को ढकेल कर भी मार सकते हैं। ढकेल कर भी सती कर सकते हैं ?

उत्तर ढकेल कर भी सती कर सकते हैं। हाँ, हाँ। ढकेल कर भी सती किया जाता था। लेकिन जिसको ढकेल कर सती किया जाता था उसके भी ढकेले जाने की पूरी मनोवृत्ति होती थी। यानी मैं यह कह रहा हूँ कि घटना जब भी घटती है उसके दो पहलू होते है। उसमें हम एक ही पहलू को जिम्मेदार ठहराते हैं। वह हमारी गल्ती है। दूसरा पहलू भी उतना ही जिम्मेदार होता है। जैसे हम कहते है कि अंगरेजो ने आकर हमको गुलाम बना लिया, यह आधा हिस्सा है। हम गुलाम होने की तैयारी में थे, यह दूसरा हिस्सा है जो हमें खयाल में नही आता। और जब तक हम गुलाम होने की तैयारी मे हैं, हम गुलाम रहते हैं। यह दूसरी वात थी कि अंगरेज बनाते, कि हूण बनाते, कि फ्रेंच बनाते। लेकिन गुलामी घटती। तो वह गुलामी की तैयारी थी।

लेकिन इसका मतलव यह नहीं कि सती की प्रथा जारी रहनी चाहिए। मैं कहता हूँ प्रथा तो गलत है। प्रथा इसलिए गलत है कि जलाने वाला भी

गलत कार्य कर रहा है, जलाया जाने वाला भी गलत कार्य कर रहा है। दोनो आदमी गलत हैं। दुनिया ऐसी होनी चाहिए जहाँ न कोई जलाने को उत्सुक हो, न कोई जलने को उत्सुक हो। ऐसी अच्छी दुनिया हमें बनानी चाहिए। लेकिन जो हो रहा है, वह न्याययुक्त है। जीवन और चेतना बदले तो कुछ और होना शुरू हो जाए। अन्याय सिर्फ यह है कि जो हमारी जीवन व्यवस्था है, वह हमें बहुत दुःख में डाल रही है। और दु खी हम ही बन रहे हैं, कोई बना नही रहा है। इससे बेहतर जीवन व्यवस्था हो सकती है जो ज्यादा हमें सुख मे ले जाए, आनन्द में ले जाए। और ऐसी व्यवस्था के लिए हमें सचेष्ट होना चाहिए व्यक्तिगत रूप से भी, सामूहिक रूप से भी।

जैसे रूस में समाजवाद है। वहाँ सारे लोगो की सम्पत्ति बराबर हो गई है। लोग पूछते हैं कि जहाँ सम्पत्ति बराबर नही है, वहाँ तो अन्याय हो रहा है। वहा सम्पत्ति बराबर होने की कोई कर्म रेखा, कोई सस्कार उस मुल्क की चेतना में नही है क्या? अगर है तो क्यो अन्याय हो रहा है? जिस मुल्क में समानता का संस्कार अर्जित नही हुआ है चेतना में वही समानता है और वह न्यायसंगत है इन अर्थों में कि जो हमारी चेतना है, वह हमारा फल है। अगर रूस की चेतना उस जगह पहुँच गई है सामूहिक रूप से जहाँ कि सम्पत्ति की समानता संस्कार का हिस्सा हो गई तो ठीक है उन्होंने समानता स्थापित कर ली। और इसका परिणाम यह होगा कि रूस में वे आत्माएँ जन्म लेने लगेंगी जिनमें समानता का उदय हुआ है, असमानता के भाव की आत्माएँ रूस में जन्म लेना बंद कर देंगी। हमें सिर्फ एक तरफ से देखने पर कठिनाई मालूम पडती है। अगर हम दोनो तरफ से देखेंगे तो कोई कठिनाई नही रह जाती।

प्रश्न : जब से दुनिया बनी है तभी से शुरू हुई है समानता पैदा होनी या जब से यह समाजवाद आया रूस में ?

उत्तर · चेतना के विकास में समानता बहुत विकसित चेतना की स्थिति है। असमानता सामान्य स्थिति है। दूसरे के साथ अपने को समान मानने के लिए तैयार होना भी बडी उपलब्धि है। चित्त नही मानता कि यह मेरे समान हो। असमानता सहज वृत्ति है। विषमता पैदा करना इसलिए सामान्य रहा। समानता पैदा करने वाली जो चेतनाएँ पैदा हुई महावीर उनमे से एक हैं। लेकिन वे चेतनाएँ व्यक्तिगत थी। तब धीरे-धीरे उनकी सघनता बढी और

सघनता उस जगह पर पहुँच गई कि अब समान करने वाली चेतनाओं का भी एक बडा अंश पृथ्वी पर है। जिस दिन असमान वृत्ति वाली चेतनाएँ क्षीण होती जाएँगी उस दिन सारी पृथ्वी पर समानता हो जाएगी। लम्बा वक्त लगता है। लेकिन लम्बा वक्त हमको दिखता है क्योंकि हमारे वक्त का हिस्सा ही छोटा सा है। मनुष्य को हुए मुश्किल से दस लाख वर्ष हुए। और जिसको हम मनुष्य कहते हैं उसको तो मुश्किल से दस हजार साल हुए। पृथ्वी को बने दो अरब वर्ष हुए और पृथ्वी बडी नई चीज है। कोई बहुत पुरानी चीज नही। तारे हैं, उनका भी कोई हिसाब लगाना मुश्किल नही है कि कितने पुराने है। और जहाँ अन्तहीन समय की धारा है, वहाँ दस-पाँच हजार वर्ष का क्या मतलब होता है ?

मनुष्य अभी भी बिल्कुल ही बचपन में है। विकास की व्यवस्था में अभी हम बिल्कुल बच्चों की तरह हैं। अभी हम जवान भी नही हुए। बूढा होना तो बहुत दूर की बात है। अभी कई बातें प्रकट होनी शुरू हुई है। जैसे कि एक बच्चा है। वह चौदह साल का हुआ है और उसमें सेक्स का भाव उठा। और लोग कहें कि चौदह साल से यह क्या कर रहा था। चौदह साल से पहले उसे सेक्स का भाव क्यो नही उठा ? चौदह साल गुजर गए। लेकिन एक अवस्था है बच्चे की। वह चौदह, पन्द्रह, सोलह साल का हो जाए तो प्रकृति उसको मानती है इस योग्य कि अब वह सेक्स की वृत्ति में उतरे। मनुष्य जाति की भी एक अवस्था होगी जहाँ आकर प्रकृति मानेगी कि अब तुम समान हो सकते हो, अब तुम उस योग्यता के हो गए। दस हजार वर्ष लग जाएँ, बीस हजार वर्ष लग जाएँ कोई बात नही क्योंकि वह पूरी मानव-जाति का सवाल है, एक व्यक्ति का सवाल नही है। हाँ, एक व्यक्ति तो कभी भी समान होने की वृत्ति को उपलब्ध हो सकता है। उसी को हम सम्यक् कहते हैं। समता कहते हैं। मन से भेद ही मिट गया है कि कौन नीचा है, कौन ऊँचा है। यह सवाल ही चला गया है। तो कोई महावीर, कोई बुद्ध इसको उपलब्ध हो इसमें अड़चन नही है। लेकिन मनुष्य-जाति इस तल पर आने में हजारो वर्ष लेती है। अन्याय नही है इस अर्थ में कि प्रत्येक चीज अपने कारणो से न्याययुक्त है। अन्याय इस अर्थ में है कि जिन्दगी इससे भी ज्यादा आनन्दपूर्ण, ज्यादा शाति की, ज्यादा सौन्दर्य की हो सकती है। उस दिशा में हमें कोशिश करनी चाहिए। तुम कहो कि फिर हम कोशिश भी क्यो करें ? लेकिन तुम यह मान लेते हो कि कोशिश जैसे हम कर रहे हैं, वह कोशिश करना भी हमारे

कर्म के संस्कार की पूरी व्यवस्था का हिस्सा होता है। वह न करने का तुम्हारा सवाल भी व्यर्थ है।

प्रश्न : कोशिश करने का भी कारण होता है ?

उत्तर : हां, कारण है। कारण यही है कि तुम दु:ख को नही झेल सकते, नही देख सकते और उसको बदलने की कोशिश करते हो। तो हम जब यह सोचने लगते हैं कि न करें तब हम गलती में पड जाते हैं। न करने के लिए कारण जुटाना बहुत मुश्किल है। और नहीं तो न करने का जिस दिन कारण जुटा लोगे उस दिन सामायिक हो जाएगी और मोक्ष हो जाएगा। यानी मेरा मतलब समझे आप ? करने का कारण ही हमने जुटाया है सब। जिस दिन हम उस हालत में आ जाएँगे कि हम कह सकें कि न करना भी काफी है, अब कुछ नही करते तो नियम के हम बाहर हो जाएँगे। उस स्थिति का नाम ही मोक्ष है जो करने के बाहर हो गया। लेकिन जो करने के भीतर है, वह कुछ न कुछ करता ही रहेगा।

दूसरी बात यह भी समझ लेनी चाहिए। एक आदमी, हो सकता है कि चांटा मारने में दु:ख न उठाए, आनन्दित हो। हम को लगेगा कि फिर उसके साथ क्या होगा ? लेकिन हमें ख्याल नही है कि जो आदमी चांटा मारने में आनन्दित है वह आदमी नही रह गया है। वह आदमी से बहुत नीचे उतर गया है। और उसने चांटा मारने में इतना खोया जितना कि चांटा मार कर दु:खी होने वाला नहीं खोता है। इस बात को जरा ख्याल में रखे। जो चांटा मार कर दुःखी होता है, वह बहुत थोडा फल भोगता है लेकिन जो चांटा मार कर आनन्दित होता है उसने तो भारी फल भोग लिया। उसका तो विकास तल एकदम नीचे चला गया। वह तो एकदम जंगली हो गया। उसने दस हजार, बीस हजार, पचीस हजार साल में जो विकास किया, सब खो दिया। उसका विकास तो इतना पिछड़ गया कि उसको जन्म-जन्मान्तरो का चक्कर हो गया जिसमें कि वह वापस उस जगह आए जहां कि चांटा मारने से दु:ख होता है। मेरा मतलब समझे आप ? फल वह भी भोग रहा है। बहुत भारी फल भोग रहा है। उसका फल बहुत गहरा है, बहुत गहरा है।

प्रश्न : आपने जो कहा कि जीवनग्रस्त कर्म की जो सूखी रेखा अंकित होती है, उससे पुनर्जन्म का सिद्धान्त फलित होता है। आपने कहा कि एक आदमी हत्या करता है दस-बारह जन्मों तक तो उसके हत्यारा होने की सम्भावना बनी रहती है। पहले आपने कहा था कि जो पहले जन्म में वेश्या

होती है दूसरे जन्म में उसकी वृत्ति दमन की होती है। कर्मों की सूखी रेखा से तो उसे वेश्या ही होना चाहिए।

उत्तर : ठीक कहते हैं। साधारणतः तुम समझते हो कि दमन कर्म नही है। असल में दमन कर्म है, भोग भी कर्म है, वेश्या होना भी एक कर्म है।

प्रश्न : और दमन भी कर्म है ?

उत्तर : हां दमन भी कर्म है। दमन की भी सूखी रेखा रह जाती है। सन्यासी है एक, साध्वी है एक। हजारो सूखी रेखाएँ हैं। हजारों हमारे कर्म हैं, हजारो रेखाओ का जाल है। उस सब जाल की निष्पत्ति हम हैं। एक वेश्या, प्रतिदिन जब भी वह वेश्या के काम से गुजरती है, दु खी होती है। सामने उसके एक संन्यासिनी रहती है और वेश्या दिन-रात सोचती है कि कैसा अद्भुत जीवन है उसका। कैसा अच्छा होता कि मैं संन्यासिनी हो जाती। तो दोहरी रेखाएँ पड रही हैं। वह वेश्या होने का कर्म कर रही है, यह उसकी एक रेखा है लेकिन उससे भी प्रबल एक रेखा है कि वह वेश्या होने से पीड़ित है और वह सन्यासिनी होना चाहती है। सामने जो सन्यासिनी रह रही है वह सुबह से साझ तक ब्रह्मचर्य साध रही है। लेकिन जब भी वेश्या के घर में दिया जलता है, सुगधि निकलती है और सगीत बजने लगता है तब उसका मन डावाडोल हो जाता है। और वह सोचती है कि पता नहीं वेश्या कैसा आनन्द लूट रही होगी। तो साध्वी भी दो रेखाएँ बना रही है। एक रेखा बना रही है वह साध्वी होने की और दूसरी रेखा बना रही है वह वेश्या होने के आकर्षण की। अब इन सबके तालमेल पर निर्भर करेगा अन्ततः कि साध्वी वेश्या हो जाए या वेश्या साध्वी हो जाए।

मेरा मतलब है कि जिन्दगी में हजार-हजार रेखाएँ काम कर रही हैं। सीधी रेखा नहीं है कोई, सीधा रास्ता नही है कोई। हजार-पगडंडियाँ फट रही हैं। और वे बहुकारणात्मक हैं। और तुम खुद कभी थोडी देर गिर जाते हो, फिर थोडी देर उठ जाते हो। तुम कोई सीधी रेखा में नही चले जा रहे हो। कभी तुम अच्छे आदमी होने की रेखा में दो कदम चलते हो, दस कदम बुरे आदमी के होने में हट आते हो। तुम्हारी जिन्दगी भी कोई ऐसी नही है कि तुम एक रास्ते पर सीधे चले जा रहे हो। तुम बार-बार चौराहे पर लौट आते हो। पीछे जाते हो, आगे जाते हो, बाएँ-दाएँ जाते हो। सब ओर तुम घूम रहे हो। इस सबका समूचा हिसाब होगा। तुम्हारे चित्त पर इन सब के संस्कार होंगे।

१३

प्रवचन

श्रीनगर, रात्रि, दिनांक २३ सितम्बर, १९६९

थोडी सी बातें पिछले प्रश्नो के सम्बन्ध में कर लें।

यह जरूर पूछा जा सकता है कि यदि पता हो कि एक दुर्घटना होने वाली है तो क्या रुक जाना चाहिए। मगर क्यो रुक जाना चाहिए ? मैंने जो मेहर बाबा का उदाहरण दिया वह सिर्फ इस बात को समझाने के लिए कि क्या होने वाला है इसे भी जानने की पूर्ण सम्भावना है। लेकिन जो उन्होने किया मैं उसके पक्ष में नही हूँ। उनका हवाई जहाज से उतर जाना या मकान में न ठहरना, इसके मैं पक्ष में नही हूँ। मेरी मान्यता यह है कि जीवन में अगर पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति उपलब्ध करनी है तो स्वयं को प्रवाह मे ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे किसी ने नदी मे अपने को छोड दिया हो, जो तैरता नहीं, सिर्फ बहता है, जो हो रहा हो, उसमें सहज बहता है। जीसस को जिस दिन सूली लगी उससे एक क्षण पहले उसने जोर से चिल्ला कर कहा, 'हे परमात्मा ! यह क्या करवा रहा है ?' शिकायत आ गई और परमात्मा गलत कर रहा है यह भी आ गया। और जीसस परमात्मा से ज्यादा जानते हैं यह भी आ गया। लेकिन तत्क्षण जीसस की समझ में आ गई बात कि कहने में भूल हो गई है। तो दूसरा वाक्य उन्होने कहा 'मुझे क्षमा करो ! मैं क्या जानता हूँ ? तेरी मर्जी पूरी हो।' फिर इसके बाद आखिरी वचन जो उन्होने बोला उसमें कहा कि इन सब लोगो को माफ कर देना क्योकि ये लोग नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं। वह उन लोगो की ओर इशारा कर रहा था जो उसे सूली दे रहे थे। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस क्षण जीसस ने कहा कि 'हे परमात्मा ! यह क्या कर रहा है, यह क्या करवा रहा है, यह क्या दिखला रहा है, तब तक वह जीसस ही थे और जैसे ही उन्होंने समग्र मन से यह कहा कि 'तेरी मर्जी पूरी हो, क्षमा कर' उसी क्षण वह क्राइस्ट हो गए।

तो मैंने जो यह कहा कि मेहर बाबा लौट गया मकान से या हवाई जहाज से उतर गया, इसका बहुत गहरा अर्थ यह है कि व्यक्ति का अहकार अभी सुरक्षित है। अभी विश्व के प्रवाह में वह अलग होने को, पृथक् होने को, अपने को बचाने को आतुर और उत्सुक है। मैंने यह नही कहा कि जो किया वह ठीक किया। मैंने कुल इतना कहा कि इस बात की सम्भावना है कि बातें पहले से जानी जा सकती हैं। लेकिन परम स्थिति यह है कि जीवन एक बहाव हो, तैरना भी न रह जाए। जिन्दगी जहाँ ले जाए और जो हो उसके साथ चुपचाप राजी हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति को ही मैं आस्तिकता कहता हूँ। मैं कहूँगा मेहर बाबा आस्तिक नहीं है। जरा मुश्किल होगी यह समझने में। आस्तिकता का मतलब यह है कि मृत्यु भी आ जाए तो वह वैसे ही स्वीकृत है जैसा जीवन स्वीकृत था। भेद क्या है मृत्यु और जीवन में? मकान के बचने में और गिरने में फर्क क्या है? जैसे पौधे अकुरित होते हैं, फूल बनते हैं इतना हो शान्त और चुपचाप बहाव होना चाहिए जिसमें अहकार कोई अवरोध ही नही डालता, कोई बाधा ही नही डालता। तभी मुक्ति पूरे अर्थों में सम्भव है तो इसलिए मैं वैसा करने को गलत ही कहता हूँ। दूसरी बात पूछी जा सकती है कि यदि सकल्प से सब हो सकता है तो फिर कुछ भी किया जा सकता है, धन भी, यश भी कुछ भी इकट्ठा किया जा सकता है, चाहे वह परोपकार के लिए हो, चाहे स्वार्थ के लिए हो—हाँ निश्चित ही किया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही कर सकेगा जो अभी धन के लिए जीता है, यश के लिए जीता है।

अभी कल ही बात हो रही थी कि रामकृष्ण को कैंसर हो गया और रामकृष्ण के भक्त उनसे कहने लगे कि आप एक बार क्यों नही कह देते हैं माँ को कि कैंसर ठीक करो। रामकृष्ण ने कहा कि दो बातें हैं। एक तो जब मैं उनके सामने होता हूँ तो मैं कैंसर भूल जाता हूँ। यानी ये दो बातें एकसाथ नही होती हैं। जब मैं उस दशा में होता हूँ तब कैंसर होता ही नही। और जब कैंसर होता है तब मैं उस दशा में नही होता। इन दोनो का कभी ताल-मेल नही होता। और अगर हो भी जाए तो मैं परमात्मा से कहूँ कि कैंसर ठीक कर दे तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं परमात्मा से ज्यादा जानता हूँ। इसलिए जो हो रहा है, उसे सहज स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही है।

विवेकानन्द बहुत गरीब थे। उनके पिता जब मरे तो बहुत कर्ज छोड़ गए। कई लोगों ने विवेकानन्द को कहा कि रामकृष्ण के पास जाते हो, उनसे पूछ लो कोई तरकीब, कोई रास्ता जिससे धन उपलब्ध हो जाए, कर्ज चुका दो।

ऐसी हालतें थी कि दिन-दिन विवेकानन्द भूखे घूमते रहते, खाने को नही था। या घर में इतना कम होता कि माँ अकेली खा सकती या विवेकानन्द खा सकते। तो वह कहते कि आज मैं मित्र के घर निमंत्रित हूँ तुम खाना खा लो, मैं खाना खाकर लौटूंगा। और वह भूखे हँसते हुए घर आ जाते कि बहुत ही वढिया खाना आज मित्र के घर मिला। इतना भी नही था घर में उपाय, इन्तजाम। एक मित्र ने कहा कि रामकृष्ण से पूछ लो। रामकृष्ण के पास विवेकानन्द गए और कहा कि क्या करूँ, गरीबी है। उन्होने कहा कि इसमें कहने की क्या वात है ? सुवह प्रार्थना के वाद 'माँ' को कह देना कि ठीक कर दे, सव इन्तजाम कर दे। विवेकानन्द गए, प्रार्थना करके वापस लौटे। राम कृष्ण ने पूछा कहा ? विवेकानन्द ने कहा 'मुँह ही न खुला। क्योकि यह वात ही अशोभन मालूम पडी कि प्रार्थना से भरे चित्त में पैसे को लाया जाए।' फिर दूसरे दिन, फिर तीसरे दिन ऐसा ही हुआ। भूखे हैं, रोटी नही मिल रही है, कर्जदार पीछे पडे हैं। रामकृष्ण रोज-रोज पूछते हैं - 'क्यो ? आज कहा' तो वह लौटकर कहते हैं नही, परमहंस देव, यह नही हो सकेगा। क्योंकि जव मैं प्रार्थना में होता हूँ तो इतना धनी हो जाता हूँ कि निर्धनता क्या ? कैसी ? कौन निर्धन ? और जव प्रार्थना के वाहर आता हूँ तो फिर वही निर्धन हो जाता हूँ जो था। तव मन करने लगता है कि कह दूँ। लेकिन जव प्रार्थना में होता हूँ तो मुझसे धनी कोई होता ही नही।'

संकल्प जितना-जितना प्रगाढ़ होता चला जाएगा, उतना ही उसका उपयोग कम होता चला जाएगा। यह समझने जैसी वात है। असल में संकल्प के उपयोग की जो हमारी चित्तवृत्ति है वह संकल्प के न होने के कारण ही है। जैसे-जैसे संकल्प होता जाएगा घना वैसे-वैसे संकल्प का उपयोग वन्द होता चला जाएगा। इस जगत् में सिर्फ शक्तिहीन ही शक्ति के उपयोग की वात सोचते हैं। जिनके पास शक्ति है वे कभी उसका उपयोग करते ही नही। क्योकि शक्ति की उपलब्धि में ही शक्ति के अनुपयोग की सम्भावना छिपी है। आकस्मिक, अनायास कुछ हो जाए तो हो जाए लेकिन सोचते, विचारते, शक्ति का कोई उपयोग नही होता। मगर हमें ऐसा लगता है क्योकि हम धन को मूल्यवान् समझते है। एक छोटा वच्चा है। उसके लिए खिलौना मूल्यवान् है। उसका पिता उससे कहता है कि भगवान् से मैं जो भी प्रार्थना करूँ हो जाता है। तो वच्चा कहता है कि मेरे लिए एक खिलौना क्यो नही माँग लेते। वाप कहता है। पागल, खिलौना माँग कर भ. क्या करेंगे ? क्योकि वाप के लिए खिलौने वेकार हो गए हैं और यह

कल्पना के बाहर है कि परमात्मा से खिलौने माँगे जाएँ। लेकिन बच्चे की समझ से यह बाहर है कि खिलौने जैसी बढिया चीज भगवान् से क्यों नही माँग लेते। सबूत हो जाएगा कि कैसा भगवान् है ? कैसी शक्ति है ? खिलौने जब तक हमें सार्थक है तब तक हमें लगता है कि अगर भगवान् मिल जाए तो हम खिलौने ही माँग लें। अगर सकल्प जग जाए तो धन ही ले ले। मगर यह भी ध्यान रहे कि ऐसे चित्त में संकल्प जगेगा भी नही। और फिर भी ऐसा नही है कि तुम एकहरा व्यक्तित्व लेकर पैदा होते हो। अनन्त सम्भावनाएँ लेकर तुम पैदा होते हो।

एक बच्चा पैदा हुआ। उसके सन्यासी होने की सम्भावना है क्योकि उसने संन्यासी होने की भी एक रेखा डाली हुई है। उसके बदमाश होने की भी सम्भावना है क्योकि उसने वह भी रेखा बाँधी हुई है। वह अनन्त सम्भावनाएँ लेकर पैदा हुआ है। अनन्त सूखी रेखाएँ उसे आमंत्रित करेंगी। अब जो रेखा प्रबल सिद्ध हो जाएगी उसमें बह जाएगा। तो हमारी सारी कठिनाई यह है कि नियम जो हैं, उन्हें जब समझाता है कोई तो वे सीधी रेखा में होते हैं। और जिन्दगी जो है, वह बहुत सी रेखाओ की काट-पीट है। जब मैं समझाने बैठता हूँ और जब तुम एक नियम समझ लेते हो तब तत्काल तुमको दूसरा ख्याल आ जाता है कि उसका क्या होगा। और उपाय नही है कोई भी इकट्ठा समझाने का। अगर मैं क्रोध समझाऊँगा तो क्रोध समझाऊँगा, घृणा समझाऊँगा तो घृणा समझाऊँगा, प्रेम समझाऊँगा तो प्रेम समझाऊँगा, दया समझाऊँगा तो दया समझाऊँगा और तुम एक साथ सब हो—दया भी, प्रेम भी, घृणा भी, क्रोध भी। तुम्हारी सब सम्भावनाएँ हैं। कोई तुम्हें प्रेम से बात करेगा, तुम प्रेमपूर्ण हो जाओगे। कोई छुरी दिखाएगा, तुम क्रोधपूर्ण हो जाओगे। तुम सब हो। क्योंकि व्यक्ति है अनन्त कारणो से भरा हुआ। और जब हम समझाने बैठते हैं तो एक ही कारण को चुनना पडता है। भाषा रेखाबद्ध है। जिन्दगी अनन्त रेखाओं का जाल है। इसलिए भाषा में बहुत भूल होती है क्योकि भाषा सीधी जाती है एक रेखा में। मैं करुणा समझाऊँगा तो करुणा समझाता चला जाऊँगा। अब करुणा के साथ ही साथ एकदम से क्रोध कैसे समझाऊँ, घृणा कैसे समझाऊँ ? वह समझाना मुश्किल है। फिर उनको अलग-अलग समझाऊँगा। ये सब अलग-अलग रेखाएँ बन जाएँगी। व्यक्ति में ये सब रेखाएँ अलग-अलग नही हैं, सब इकट्ठी जुडी खडी हैं।

प्रश्न . अगर कोई बलवान् रेखा है उसके कर्म करने की, अब उससे जो कमजोर रेखा है उसकी छाया उसमे साथ आएगी या नहीं ?

उत्तर : हां बिल्कुल साथ आएगी।

प्रश्न एक कमरा है, मच्छर हैं, चीटियां हैं, मक्खियां हैं तो एक मन आता है पिलट लगा दो। एक मन आता है पिलट न लगाओ। इसमे मन की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो जाती है। तो उसमें क्या उचित है ?

उत्तर : उचित वही है जो आप कर सकोगे और करोगे। उचित मानकर आप चले तो मुश्किल में पड जाओगे। अगर मैंने कह दिया कि फ्लिट लगाना उचित नही है तो रात भर मुझको गाली दोगे क्योंकि मच्छर काटेंगे। या मैंने कह दिया कि फ्लिट लगाना उचित है तो आप समझेंगे कि हिंसा मैंने की। फल उसका मैं भोगूंगा। यह उचित, अनुचित का सवाल नही है। आप सोचो और जिओ। जो ठीक लगे, करो।

सकल्प जग सकता है मगर तभी जब चित्त की धारणाएँ चली जाएँ। संकल्प जग जाए तो फिर इनके प्रयोग का कोई मतलब नही क्योंकि जब धारणाएँ छूटें तभी संकल्प जगता है। यानी कठिनाई कुछ ऐसी है जैसा वैक के सम्बन्ध में कहा जाता है। वैंक उस आदमी को पैसे उधार देता है जिसको पैसे की कोई जरूरत नही। और जिस आदमी को जरूरत है उसे वैंक पैसा उधार नही देता क्योंकि जिसे जरूरत है उससे लौटने की सम्भावना नही। वैंक पक्का पता लगा लेता है कि इस आदमी को पैसे की जरूरत नही है। फिर वैक जितना चाहे उतना उधार देता है। और पक्का पता लग जाए कि इस आदमी को पैसे की जरूरत है तो वैंक हाथ खीच लेता है, पैसे नही देता है। यह वडा उल्टा है नियम। होना तो ऐसा चाहिए था कि जिसे पैसे की जरूरत हो उसे वैंक पैसा दे लेकिन वैंक उसको पैसा नही देता। वैंक सिर्फ उसी को पैसा देता है जिसको कोई जरूरत नही है।

तो मेरा कहना है कि परमात्मा को विराट् शक्ति उन्ही को उपलब्ध होती है जिन्हें कोई जरूरत नही। और जिन्हें जरूरत है उन्हें उपलब्ध नही होती। जीसस का कहना है कि जो अपने को बचाएगा वह नष्ट हो जाएगा और जो अपने को खोने के लिए राजी है उसे कोई भी नष्ट नही कर सक्ता। जो मागेगा उससे छीन लिया जाएगा और जो छोडकर भागने लगेगा उसे दे दिया जाएगा। असल में मागने वाला चित्त संकल्प ही नही कर सकता। उसका कारण है क्योंकि मांगने वाला चित्त दीन और दरिद्र होता है कि संकल्प जैसी सम्पदा उसके पास नही हो सकती। असल में न मागने वाला सकल्प कर सकता है। लेकिन हम संकल्प भी इसीलिए करते है कि कुछ माग लेंगे। तब

सारी कठिनाई हो जाती है, सारी असुविधा हो जाती है। तो इसकी बात भी तनिक कर लेनी चाहिए।

जैसा मैंने कहा कि महावीर को कोई फर्क नही पडता शादी हो या न हो। एक सीमा पर सब बराबर हैं और जहाँ सब बराबर हैं, वही मुक्ति है। और जहाँ तक भेद है वहाँ तक मुक्ति नही है। जहाँ तक शर्त है कि ऐसा होगा तो ठीक, और ऐसा न होगा तो गलत हो जाएगा वहाँ तक हम बंधे हुए हैं। यह चुनाव ही बांधता है। मैं कहता हूँ: बस ऐसा, तो शात रहूँगा, आनन्दित रहूँगा। ऐसा न हुआ तो फिर अशात हो जाऊँगा। शाति और अशाति, आनन्द और निरानन्द बधे हुए हैं कही। मैं मुक्त नही हूँ। ऐसा नही है कि मैं हर हालत में आनन्दित रहूँ। जो आदमी हर हालत में आनन्दित है उसको कोई शर्त नही है। उसकी तो यह भी शर्त नही कि बीमार रहे कि स्वस्थ, जिन्दा रहे कि मर जाए, शादी हो कि न हो, मकान हो कि न हो। उसे कोई शर्त नही। वह बेशर्त जीता है, जो भी हो जीता है।

मैं अपना ही उदाहरण देता हूँ। शादी के लिए मैंने कभी मना किया ही नही। क्योंकि मना भी वही करता है जिसके मन में कहीं 'हाँ' छिपा हो। 'हाँ' छिपा हो तभी 'न' सार्थक होती है। और कई बार तो 'न' का मतलब ही 'हाँ' होता है, यानी 'न' सिर्फ ऊपर की होती है, 'हाँ', पीछे होती है। मैं विश्व-विद्यालय से लौटा तो घर के लोग चिन्तित थे। शादी की बड़ी चिन्ता थी। मुझसे पहली रात मेरी माँ ने पूछा कि शादी के सम्बन्ध मे क्या ख्याल है। मैंने उससे कहा कि दो-तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली तो यह कि मैंने अब तक शादी नही की इसलिए मुझे कोई अनुभव नही। तो मेरे 'हाँ' और 'न' दोनों गैर अनुभवी के होंगे। दूसरा यह कि तुमने शादी की है। तुम्हारा जिन्दगी का अनुभव है। तुम पन्द्रह दिन सोच लो और फिर मुझे कहना कि तुमने शादी करने के बाद कोई ऐसा आनन्द पाया जिससे तुम्हारा बेटा वंचित न रह जाए तो मैं शादी कर लूंगा। और अगर तुम्हें लगा कि शादी करके तुमने कोई आनन्द नही पाया और तुम्हें शादी के बाद कई बार ऐसा ख्याल आया कि नहीं की होती तो अच्छा था तो मुझे सचेत कर देना कि कही मैं कर न बैठूं। मेरी ओर से न 'न' है, न 'हाँ' है। मेरी ओर से कोई शर्त ही नही है। मैंने बात सीधी सामने रख दी क्योंकि मेरा कोई अनुभव ही नही है। अभी मैंने शादी नही की है, कर सकता हूँ। ऐसी कोई कठिनाई नही है। लेकिन जो मुझे प्रेम करते हैं उनको इतना तो मेरे लिए सोचना ही चाहिए कि उन्होंने जो अनुभव

किया है वह अगर ऐसे किसी आनन्द का है जिससे मैं वंचित रहूँ तो उन्हें दुःख होगा तो मैं शादी कर लूँगा। फिर मुझसे पूछना ही मत। और अगर कही तुम्हारा ऐसा अनुभव हो कि तुमने दु ख पाया तो तुम्हारा पहला काम होगा मुझे सचेत कर देना ताकि कही मैं भूल-चूक से भी शादी न कर लूँ।

पन्द्रह दिन बाद जब माँ ने मुझे कहा कि मुश्किल में डाल दिया है। क्योकि खोजने गई हूँ तो कैसा आनन्द ? अब मैं नही कह सकती हूँ कि तुम शादी करो। वैसे तुम्हारी मर्जी। मैंने कहा अब जब मेरी मर्जी होगी मैं तुमसे कहूँगा। यानी तब तक के लिए बात स्थगित हो गई और वह मर्जी नही हुई। न मैंने कभी नही कहा है, न कभी हाँ कहा है। यहाँ भी कोई समझाने-बुझाने वाला आ जाए तो मैं राजी हो सकता हूँ। इसमें कोई तकलीफ की बात नही है, इसमें कोई अडचन नही है। मेरे पिता के एक मित्र थे। बडे वकील थे बडे तार्किक थे। दूसरे गाँव में रहते थे। पिता ने उनको कहा कि आप आकर समझाएँ। वे आए, रात आकर रुके। आते ही उन्होने मुझसे कहा कि चाहे कितने भी दिन मुझे रुकना पडे मैं यह सिद्ध करके जाने वाला हूँ कि शादी बहुत उपयोगी है। मैंने कहा कि इसमें देर की जरूरत ही नही आज ही आप मुझे समझा दे, आज ही मैं राजी हो जाऊँ। लेकिन ध्यान रहे यह एक तरफ नही रहेगा मामला। उन्होने कहा · क्या मतलब ? मैंने कहा आप समझाएँगे तो मुझे भी कुछ बोलने का हक होगा। और अगर सिद्ध कर दिया कि शादी करना आनन्द-पूर्ण है तो मैं कल सुबह हाँ भर दूँगा। और अगर सिद्ध हो गया कि आनन्द-पूर्ण नही है तो आपका क्या इरादा है ? क्या आप शादी छोडने को राजी है ? क्योकि अकेला एकतरफा मामला ठीक नही है। यह अन्याय हो जाएगा। यानी मैं दाव लगाऊँ जिन्दगी और आप बिना दाव के लडे तो फिर मजा नही आएगा। उन्होने कहा कि तुम ठहर जाओ। मैं सुबह तुमसे बात करूँगा। मेरे उठने के पहले वह जा ही चुके थे। पिता से कह गए थे कि मैं इस झंझट में नही पडता। इस झझट से मुझे कोई जरूरत नही।

संदिग्ध हमारा मन है भीतर तो हम किसी को क्या समझाएँगे ? फिर बहुत वर्ष बाद जब वे मुझे मिले तो उन्होंने कहा : 'तुमने मुझे बहुत चिन्ता में डाल दिया। मैं रात-भर सो नही सका। फिर मैंने कहा कि यह ज्यादती होगी क्योकि मैं खुद ही छोडने की हालत में बैठा हूँ। मैंने कहा इस बात में मुझे पडना ही नहीं है। और मैं हार जाता क्योंकि मैं भीतर से ही कमजोर था। यानी मैं खुद ही इस पक्ष का हूँ कि बहुत गल्ती हो गई लेकिन अब कोई उपाय

नही।' लेकिन मैंने मना नही किया। अभी तक कोई समझाने वाला नही आया। क्या करें, कोई उपाय नही है। इसलिए उसकी चिन्ता नही लेनी चाहिए।

कर्म के सम्बन्ध में आप पूछते हैं कि यह जो विकास हो रहा है जिसमें ये जो पशु-पक्षी हैं मनुष्य योनि तक आ गए हैं क्या अपने आप चल रहा है या उनकी सचेत चेष्टा भी इसमें सहयोगी है। मेरा कहना है कि विकास दो तलों पर चल रहा है। डार्विन की खोज बडी गहरी है लेकिन एकदक अधूरी है। डार्विन ने शरीर के विकास पर सारा सिद्धान्त निर्धारित किया है। ऐसा मालूम पडता है कि कभी न कभी कुछ लाख वर्ष पहले, बन्दर के ही शरीर से मनुष्य के शरीर की गति हुई होगी। बन्दर के शरीर की व्यवस्था, उसके मस्तिष्क, उसकी हड्डी, मास-पेशियाँ सब खबर देती हैं कि उससे ही मनुष्य का शरीर आया होगा और खोज करते-करते कहा जा सकता है कि किसी न किसी रूप में मछली से जीवन-यात्रा शुरू हुई होगी और मछली भी किसी न किसी प्रकार के पौधे से ही आई होगी। इस सब के लिए लम्बा वैज्ञानिक अन्वेषण हुआ है। और यह बात तय हो गई है कि इस तरह का क्रमिक विकास शरीर में हो रहा है। लेकिन चूँकि विज्ञान आत्मा की फिक्र ही नहीं करता, इसलिए बात अधूरी है और आधे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं क्योंकि आधे सत्यो में पूर्ण सत्य होने का भ्रम पैदा होता है।

यह विकास का एक आधा हिस्सा है। दूसरा हिस्सा वह है जिसके लिए महावीर जैसे लोगों की खोज कीमती है। वह कहते हैं कि चेतना भी विकसित हो रही है। अगर शरीर ही अकेला है बस तब सब विकास परिस्थितिगत है और प्रकृति के नियम के अनुकूल है। क्योंकि अगर शरीर अकेला हो तो इच्छा का सवाल ही नही उठता। लेकिन अगर चेतना भी है तो विकास सहज हालत में नही हो सकता क्योंकि चेतना का मतलब ही है कि जो यान्त्रिक नही है। एक पंखा चल रहा है। पखे का चलना बिल्कुल यान्त्रिक है। पंखे की कोई इच्छा काम नहीं कर रही। लेकिन अगर पंखे की आत्मा हो तो पखा कभी भी कह सकता है कि आज बहुत सर्दी है, नही चलते। या आज बहुत थक गए हैं, आज चलने का मन नही है। कभी तेजी से भी चल सकता है अगर प्रेमी पास आ जाए। दुश्मन आ जाए तो बन्द भी हो सकता है। मगर पंखे के पास कोई चेतना नही है। किन्तु जहाँ चेतना है वहाँ विकास स्वचालित नही हो सकता। उसमें चेतना सक्रिय रूप से भाग लेगी। लेकिन जो हमें विकास दिख रहा है वह मालूम पड़ रहा है और सचेष्ट विकास की यात्रा बहुत कम नजर आती है तो

हम कहते हैं कि विकास शायद निन्यानवें प्रतिशत स्वचालित है। एक आध प्रतिशत विकास स्वेच्छा से होता है। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर की तरफ आते हैं विकास सचेष्ट मालूम होता है।

मनुष्य के साथ यह मामला है कि उसके साथ जो विकास होगा वह निन्यानवें प्रतिशत स्वेच्छा से होगा, नही तो विकास होगा ही नही। और इस लिए मनुष्य कोई पचास हजार वर्षों से ठहर गया है। अब उसमे कोई विकास लक्षित नही होता। दस लाख वर्ष के भी जो शरीर मिले हैं उनमें भी कोई विकास हुआ नही दिखता। उसमें और हमारे अस्थि-पंजर में कोई बुनियादी फर्क नही पडा है, न हमारे मस्तिष्क में कोई बुनियादी फर्क पडा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य में निन्यानवें प्रतिशत स्वेच्छा पर निर्भर करेगा। कोई बुद्ध, कोई महावीर—यह स्वेच्छा का विकास है और अगर हम स्वचालित विकास से प्रतीक्षा करते रहे तो एक ही प्रतिशत विकास की सम्भावना है जो बहुत ही धीरे-धीरे घिसटती रहेगी। जितने पीछे हम जाते हैं, उतनी स्वेच्छा कम हैं, यांत्रिकता ज्यादा है। मनुष्य तक आते हैं तो स्वेच्छा ज्यादा हैं, यान्त्रिकता कम है। लेकिन निम्नतम योनि में भी एक अश स्वेच्छा का है जो कि उसे चेतन बनाता है। नही तो चेतन होने का कोई अर्थ नही। यानी चेतन होने का अर्थ यही है कि विकास में हम भागीदार हैं और पतन में हम जिम्मेदार हैं। चेतना का मतलब यही है कि हमारा दायित्व है, हमारी जिम्मेदारी है। जो भी हो रहा है उसमें, हम जो हो सकते हैं उसमें अन्तत हम जिम्मेदार हैं।

सारा विकास—चाहे पशु, पक्षी, मछली, कीडे-मकोडे, पौधा—कोई भी विकसित हो रहा हो उसकी इच्छा सक्रिय होकर काम कर रही है। पहचानना मुश्किल है। हम कैसे पहचानें कि पशु पक्षी मानव योनियो में प्रवेश कर रहे हैं। कई रास्ते हो सकते हैं लेकिन सरलतम रास्ता एक ही है. और वह यह कि जो मनुष्य चेतनाएँ आज हैं अगर हम उन्हें उनके पिछले जन्मो में उतार सकें तो हम पा जाएँगे पता इस बात का कि वे पिछले जन्मो में पशुओ और पौधों से भी होकर आई है। जातीय-स्मरण के गहरे प्रयोग महावीर ने किए हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके निकट आता वह उसे जातीय-स्मरण के प्रयोग में ले जाते ताकि वह जान सके कि उसकी पिछली यात्रा क्या है। यहाँ तक भी वह जान सके कि वह पशु कब था, कैसा पशु था, और पशु होने में उसने कौन सा कर्म किया कि वह मनुष्य हो सका। और अगर यह उसे पता चल जाए कि

पशु होने में उसने कुछ किया जिससे वह मनुष्य बना तो उसे ख्याल में हो सकता है कि मनुष्य होने में कुछ करे तो वह और ऊपर जा सकता है।

महावीर एक व्यक्ति को समझा रहे थे। रात है। महावीर का संघ ठहरा है। हजारो साधु, सन्यासी ठहरे हुए हैं। एक बडी धर्मशाला में निवास है। एक राजकुमार भी दीक्षित हुँ। पुराने साधुओ को ज्यादा ठीक जगह मिल गयी। मगर राजकुमार वह जो बीच का रास्ता है धर्मशाला का, उस पर सोया हुआ है। रात भर उसे बडी तकलीफ हुई है, बडा कष्ट हुआ है। यह ऐसा अपमान ! वह राजकुमार था, कभी जीवन पर चला नही था, आज गलियारे में सोया है। वृद्ध साधुओं को कमरे मिल गए हैं, वह गलियारे में पडा हुआ है। रात भर कोई गलियारे से निकलता है, तो उसकी नीद टूट जाती है। वह बार-बार सोचने लगा कि बेहतर है मैं लौट जाऊँ। जो था वही ठीक था। यह क्या पागलपन में मैं पड गया हूँ। ऐसा गलियारों में पडे-पडे तो मौत हो जाएगी। यह मैंने क्या भूल कर दी। सुबह महावीर ने उसे बुलाया और कहा : तुझे पता है कि पिछले जन्म में तू कौन था ? उसने जवाब दिया कि मुझे कुछ पता नही। तो महावीर उससे उसके पिछले जन्म की कथा कहते हैं · पिछले जन्म में तू हाथी था। जगल में आग लगी। सारे पशु, सारे पक्षी भागे। तू भी भागा। जब तू पैर उठा रहा था और सोच रहा था कि किधर को जाऊँ तभी तूने देखा कि एक छोटा-सा खरगोश तेरे पैर के नीचे आकर बैठ गया है। उसने समझा कि पैर छाया है, बचाव हो जाएगा और तू इतना हिम्मतवर था कि तूने नीचे देखा कि खरगोश है तो तूने फिर पैर नीचे नही रखा। तू फिर पैर ऊँचा ही किए खडा रहा। आग लग गई, तू मर गया लेकिन तूने खरगोश को बचाने की मरते दम तक चेष्टा की। उस कृत्य की वजह से तू आदमी हुआ है। उस कृत्य ने तुझे मनुष्य होने का अधिकार दिया है। और आज तू इतना कमजोर है कि रात भर गलियारे में सो नही सका और भागने की सोचने लगा। तो उसे याद आती है अपने पिछले जन्म की और पता चलता है कि ऐसा था। तब सब बदल जाता है। भागने की, पलायन की, छोडने की, भयभीत होने की सारी बात खत्म हो जाती है। अब वह दृढ-संकल्प पर खड़ा हो जाता है। अब एक नई भूमि उसे मिल जाती है।

एक रास्ता यह है कि हम व्यक्तियो को उनके पिछले जन्मो में ले जाएँ। उससे पता चलेगा कि वे किस योनि से कैसे विकसित हुए, कौन-सी घटना थी जिसने उन्हें मूलत· हकदार बनाया कि वे ऊपर की जिन्दगी में चले जाएँ।

यही सरलतम रास्ता है दूसरा रास्ता कठिन है बहुत। और वह यह है कि हम दस बीस पशुओ के निकट रहें और उनसे आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करें। हमें पता चलेगा कि उनमें भी अच्छे, बुरे हैं। वे जो दस कुत्ते हमें दिखाई पड रहे हैं, वे सब एक जैसे कुत्ते नही हैं। उनका अपना-अपना व्यक्तित्व है।

स्विटजरलैंड के एक स्टेशन पर एक कुत्ते का स्मारक बना हुआ है। वह दुनिया में अकेला स्मारक है कुत्ते के लिए। सन् १९३० या १९३२ की घटना है। एक आदमी के पास एक कुत्ता है। हर रोज जब वह आदमी दफ्तर जाता है सुबह दस बजे की ट्रेन पकडकर तो वह कुत्ता उसे स्टेशन छोडने जाता है। जब ट्रेन छूटती है तब वह कुत्ता खडा हुआ उसे विदा देता रहता है। ठीक पांच बजे जब वह लौटता है तो कुत्ता स्टेशन पर खडा रहता है जहां उसका मालिक उतरता है। ऐसा हर रोज चलता है। ऐसा कभी नही हुआ कि वह सुबह छोडने न आया हो। ऐसा भी कभी नही हुआ कि वह ठीक पांच बजे शाम अपने मालिक को लेने न आया हो। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मालिक गया और नही लौटा। एक दुर्घटना हुई शहर में और मालिक मर गया। पांच बजे कुत्ता लेने आया। गाडी खडी हो गई लेकिन मालिक नही उतरा। तो फिर उसने एक-एक डिब्बे में जाकर झाका, चिल्लाया, पुकारा। लेकिन मालिक नही है। फिर स्टेशन के लोगो ने उसे भगाने की कोशिश की लेकिन किसी भी हालत में वह भागा नही और जो भी ट्रेन आती उस पर मालिक को खोजता ऐंसे पन्द्रह दिन उसने पानी नही पिया, खाना नही खाया और वह भी उसी जगह खडा हुआ मर गया जहां उसका मालिक उसे रोज पांच बजे की ट्रेन से आकर मिलता था। सब तरह के उपाय किए गए कि वह एक टुकडा रोटी का खा ले लेकिन उसने इन्कार कर दिया। स्विटजरलैड के अखबारो में सब तरफ चर्चा हो गई। उस कुत्ते के बडे-बड़े फोटो छपे। लेकिन उस कुत्ते ने हटने से इन्कार कर दिया। उसको वहां से भगाओ, वह फिर पांच-दस मिनट बाद वहां हाजिर। उसने स्टेशन का पीछा नही छोडा और जब तक जिन्दा रहा, हर गाडी पर चिल्लाता रहा, रोता रहा। उसकी आंख से आसू टपकते। वह एक-एक डिब्बे में झाकता। कमजोर हो गया। चल नही सकता। वह अपनी जगह पर बैठा है और रो रहा है। आखिर वही वह मर गया है, जहां मालिक को उसे मिलना था। अब ऐसा कुत्ता कोई साधारण कुत्ता नही। इसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है जो कि मनुष्य तक में कम होता है। यह गति कर जाएगा। इसकी गति निश्चित है। यह उस जगह से ऊपर उठने वाला है। इसकी

चेतना ने कदम उठा लिया है जो इसे आगे ले जाएगी। उसका स्मारक बना है। वह स्मारक के लायक कुत्ता था। कई आदमी भी स्मारक के लायक नहीं होते जिनके स्मारक बने हुए हैं।)

दूसरा रास्ता यह है कि हम पशु-पक्षियो के निकट जाकर उनको जानें, पहचानें। इसके भी बहुत से प्रयोग किए गए हैं और इनके आधार पर कहा जा सकता है कि विकास स्वेच्छा से हो रहा है। इसलिए सारे प्राणी विकसित नहीं हो पाते। जो श्रम करते हैं विकसित हो जाते हैं। जो श्रम नही करते वे पुनरुक्ति करते रहते हैं उसी योनि में। अनन्त पुनरुक्तियाँ भी हो सकती हैं। लेकिन कभी न कभी वह क्षण आ जाता है कि पुनरुक्ति ऊबा देती है और ऊपर उठने की आकाक्षा पैदा कर देती है। तो विकास किया हुआ है, चेतना श्रम कर रही है विकास में। वह जितनी विकसित होती चली जाती है, उतने विकसित शरीर भी निर्णय कर लेती है। इसलिए शरीर में जो विकास हो रहा है वह भी, जैसा डार्विन समझता है कि स्वचालित है वैसा नही है। जितनी चेतना तीव्र विकास कर लेती है उतना शरीर के तल पर भी विकास होना अनिवार्य हो जाता है। लेकिन वह होता है पीछे, पहले नही होता। यानी बन्दर का शरीर अगर कभी आदमी का शरीर बनता है तो तभी जब किसी बन्दर की आत्मा इसके पूर्व आदमी की आत्मा का कदम उठा चुकी होती है। उस आत्मा की जरूरत के लिए ही पीछे से शरीर भी विकसित होता है। आत्मा का विकास पहले है, शरीर का विकास पीछे है। शरीर सिर्फ अवसर बनता है। जितनी आत्मा विकसित होती चली जाती है उतना विकसित शरीर को भी बनना पडता है।

मनुष्य आगे भी गति कर सकता है और ऐसी चेतना विकसित हो सकती है जो मनुष्य से श्रेष्ठतर शरीरों को जन्म दे सके। इसमें कोई कठिनाई नही है। लेकिन मनुष्य तक आ जाना कोई साधारण घटना नही है। लेकिन जो मनुष्य है उसे यह ख्याल नही आता। हम जिन्दगी ऐसे गंवाते हैं जैसे कि मुफ्त में मिल गई हो। मनुष्य हो जाना साधारण घटना है। लंबी प्रक्रियाओं, लंबी चेष्टाओं, लंबे श्रम और लंबी यात्रा से मनुष्य की चेतना-स्थिति उपलब्ध होती है। लेकिन अगर हमने ऐसा मान लिया कि यह मुफ्त में मिल गई है, और अक्सर ऐसा होता है कि अमीर बाप का बेटा जब घर में पैदा होता है तो वह घर की सम्पत्ति को मुफ्त में हुआ ही मान लेता है। वह एक ही काम करता है कि बाप की अमीरी कैसे विसर्जित हो। बाप कमाता है, बेटा गंवाता है। क्योंकि

बेटे को अमीरी जन्म से उपलब्ध हुई है। उसे लगता है कि यह तो है ही। उसे कभी ख्याल भी नहीं होता कि कितने श्रम से वह अमीरी खड़ी की गई है।

फोर्ड एक दफा इंग्लैंड आया। स्टेशन से उतर कर उसने इन्क्वायरी आफिस में जाकर पूछा कि लन्दन में सबसे सस्ता होटल कौन-सा है। संयोग से इन्क्वायरी वाला आदमी फोर्ड को पहचानता था। उसने कहा: "आप सस्ता होटल पूछते हैं। आप फोर्ड हो हैं!" उसने कहा, "हां, मैं फोर्ड ही हूं। सस्ता होटल कौन सा है सबसे ज्यादा?" उसने कहा "मुझे हैरानी में डालते हैं आप। आपका बेटा आता है तो वह पूछता है कि सबसे महगा होटल कौन सा है?" फोर्ड ने कहा. "वह फोर्ड का बेटा है। मैं फोर्ड हूं। मैं गरीब आदमी था, श्रम करके पैसा कमा पाया हूं। यह अमीर आदमी पैदा हुआ है, श्रम करके गरीब होने की कोशिश करेगा। मैं गरीब आदमी था। मैं सचेत हूं पूरी तरह कि कैसे कमा पाया हूं। वह अमीर का बेटा है। हैनरी फोर्ड का बेटा है। उसको ठहरना ही चाहिए महगी जगह। लेकिन मैं ठहरा हैनरी फोर्ड।" यह हैनरी फोर्ड एक पुराना कोट पहने रहता था वर्षों से। वह कभी बदलता ही नहीं था उसको। कोट फट गया तो सिलवा लेता, ठीक करवा लेता। किसी मित्र ने कहा कि आपको यह कोट शोभा नहीं देता। तो हैनरी फोर्ड ने कहा कि लोग मुझे ठीक-ठीक पहचानते हैं कि मैं हैनरी फोर्ड हूं। मैं चाहे कोई भी कोट पहन लूं इससे कोई फर्क नहीं पडता। यह तो मेरे बच्चे के लिए है कि वे शानदार कोट पहनें ताकि लोग पहचान सकें कि हैनरी फोर्ड के लड़के हैं।

तो हम एक जन्म में जो कमाते हैं दूसरे जन्म में वह हमारी सहज उपलब्धि होती है। यानी दूसरे जन्म में वह हमें सम्पत्ति की तरह मिलती है और पिछला जन्म हमें भूल जाता है जैसे कि बेटे को बाप का श्रम भूल जाता है। पिछले जन्म में जो हमने कमाया है उसे हम इस जन्म मे भूल जाते हैं और हम उसे अवसर गवाना शुरू करते हैं। धन के बाबत ही नहीं, पुण्य के बाबत, ज्ञान के बाबत, चेतना के बाबत भी यही होता है। अवसर का उपयोग और बढ़े इसके लिए हम आगे और कुछ भी नहीं कर पाते। जो हो गए हैं वहीं हम भटक जाते हैं। इसलिए लोग एक ही योनि में बार-बार पुनरुक्त हो सकते हैं। लाख बार भी पुनरुक्त हो सकते हैं। नीचे कोई नहीं जाता। नीचे जाने का कोई उपाय नहीं है। पीछे कोई लौट नहीं सकता। लेकिन

जहाँ है वही पुनरुक्त हो सकता है या आगे जा सकता है। दो ही उपाय हैं : या तो आप आगे जाएँ या जहाँ हैं वही भटकते रह जाएँ। और जहाँ है अगर आप वही भटकते रहते हैं तो विकास अवरुद्ध हो जाएगा और अगर आप आगे जाते हैं तो विकास फलित होगा।

विकास चेष्टा पर निर्भर है, संकल्प पर निर्भर है, साधना पर निर्भर है। इसीलिए इतने बड़े प्राणी जगत् में मनुष्यो की संख्या बहुत कम है। बढती भी है तो बहुत धीरे-धीरे बढती है। आज हमें लगता है कि बहुत जोर से बढ रही है तो वह भी हम सिर्फ मनुष्य को सोचते हैं, इसलिए ऐसा लगता है। अगर हम प्राणीजगत् को देखें तो मनुष्य से ज्यादा छोटी सख्या का कोई प्राणी नही है जगत् में। एक घर में इतने मच्छर हो सकते है जितनी पूरी मनुष्य जाति। और करोड़ों योनियाँ हैं। एक-एक योनि में कितने असंख्य व्यक्ति हैं। इतने थोडे हैं लोग। जैसे कोई एक मन्दिर बनाए और बडी भारी नीव भरे, फिर उठते-उठते, आखिर मीनार पर एक छोटी सी कलगी उठी रह जाए। ऐसा बड़ा भवन है जीवन का, उससे मनुष्य की कलगी बडी छोटी-सी ऊपर उठी रह गई है। अगर हम सारे प्राणीजगत् को देखें तो हमारी कोई सख्या ही नही है। हम एक बडे समुद्र में एक छोटी बूंद से ज्यादा नही हैं। लेकिन अगर हम मनुष्य को देखें तो हमें बहुत ज्यादा मालूम पडता है कि साढ़े तीन अरब आदमी हैं और हमें चिन्ता हो गई है कि हम कैसे बचाएँगे इतने आदमियो को, कैसे खाना जुटाएँगे, कैसे मकान बनाएँगे, कैसे क्या करेंगे ? लेकिन यह कोई बडी संख्या नही है। और ध्यान रहे, मेरी अपनी यह समझ है कि जब जरूरत पैदा होती है तब नए उपाय तत्काल विकसित हो जाते है जैसे आने वाले पचास वर्षों में होने वाला है। आदमी के जन्म को; जीवन को रोकने की सभी चेष्टाओ से कुल इतना ही हो सकता है कि जितनी तीव्रता से गति हो रही है, वह शायद न हो। लेकिन इन आने वाले पचास वर्षो में भोजन के नए रूप विकसित हो जाएँगे। जैसे कि हम समुद्र के पानी से भोजन निकाल सकेंगे, हवा और सूरज की किरणो से सीधा भोजन लिया जा सकेगा। आने वाले पचास वर्षों मे भोजन के नए रूप विकसित होंगे जो कभी नहीं थे पृथ्वी पर।

दूसरी बात जो मैं समझता हूँ बहुत कीमत की है। जैसे बड़ी चेष्टा चली चांद पर जाने की, मगल पर जाने की। यह चेष्टा पृथ्वी पर सख्या के अधिक बढ जाने का आन्तरिक परिणाम है। ऊपर से दिखाई पडता है कि रूस और अमेरिका में दौड लगी हुई है चांद पर जाने की। लेकिन बहुत

गहरे मे आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य की सख्या का तीव्रता से बढने का जो भय है उससे नई जमीन की खोज शुरू हो गई है, जहाँ हम आदमी को पहुँचा सकें। एक जमाना था जबकि आदमी एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहता था क्योंकि एक जगह का खाना खत्म हो जाता था। फल टूट गए तो दूसरी जगह चला जाता था। फिर आदमी इतने हो गए कि एक जगह से फल नही टूटे, सभी जगह के फल एकसाथ टूटने लगे तो दूसरी जगह कहाँ जाओ। फिर हमें जमीन पर पैदावार करनी पडी। फिर खेती भी पर्याप्त नही साबित हुई। तब हमें औद्योगिक व्यवस्था करनी पडी। अब वह भी पर्याप्त साबित नही होगी तो हमें नई व्यवस्थाएँ करनी पडेंगी। पृथ्वी इतनी भारग्रस्त हो जाए, इतनी बडी संख्या में नीचे की योनियो से मनुष्य में प्राणी आ जायें तो कही दूसरी जगह हमको खोजनी पडेगी। वह जगह हम किन्ही दूसरे कारणो से खोजते रहेंगे, यह दूसरी बात है, क्योंकि हमें बहुत कुछ साफ नही है कि क्या होता है भीतर। लेकिन भीतर अचेतन शक्ति धक्के देती रहती है कि पृथ्वी के बाहर जगह खोजो क्योंकि आज नहीं कल, पृथ्वी के बाहर बसने की जरूरत पड़ेगी। जैसा मैंने कहा कि जब नई चेतना विकसित होती है तब नए शरीर लेने पडते हैं। जब एक चेतन समाज की सख्या बढती है तब नए ग्रह उपग्रह बसाने पडते हैं।

पहला जीवन जो पृथ्वी पर आया है, वह भी वैज्ञानिक नही बता पाते कि कैसे आया। वैज्ञानिक विकास बता पाते हैं। लेकिन विकास तो उसी चीज का होता है, जो हो। विकास तो बाद की बात है। जीवन आया कहाँ से ? कैसे आया ? विकास तो ठीक है कि मछली आदमी बन गई। लेकिन मछली ? वह प्राण कहाँ से आया ? कोई कहे कि पौधा मछली बन गया। पौधे में वह प्राण कहाँ से आया ? यानी प्राण को कही न ,कही से आने की जरूरत पडी है। इस लिए मैं आपसे कहना चाहता हूँ दूसरी बात—वह यह कि जब एक माँ गर्भ के योग्य होती है तो एक आत्मा उसमें प्रवेश करती है। जब एक पृथ्वी या एक उपग्रह जीवन के योग्य होता है तो दूसरे ग्रहो-उपग्रहों से वहाँ जीवन प्रवेश करता है। और कोई उपाय नहीं। यानी जो पहला जीवाणु है, वह सदा प्रसार करता है। इसके सिवाय कोई उपाय नही है कि वह किसी दूसरे ग्रह से आएगा। हो सकता है उस ग्रह पर जीवन समाप्त होने के करीब आ गया हो।

इस सम्बन्ध में यह भी समझ लेना जरूरी है कि बुद्ध या महावीर, या मैं या कोई भी जब इतना श्रम करते हैं कि लोग विकसित हो तो कही ऐसा कभी

हुआ है ? ऐसा बहुत बार हुआ है मगर हमारी दृष्टि बहुत छोटी है और हम बहुत कम जानते हैं। अगर आदमी का इतिहास हम जानते हैं व्यवस्थित रूप से तो मुश्किल से जीसस के बाद का। इतिहास जीसस से शुरू होता है। तभी तो हम लिखते हैं ईसा के बाद और ईसा के पहले। ईसा के बाद इतिहास व्यवस्थित है और उससे पहले सब धूमिल है। फिर हम बहुत खीचें तो पाँच हजार साल से पहले का हमें कुछ अन्दाज नही बैठता। पृथ्वी पर आदमी दस लाख वर्षों से है। पृथ्वी दो अरब वर्षों से है। लेकिन पृथ्वी बहुत नया जन्म है। सूरज पृथ्वी से कई हजार अरब वर्ष पहले से है। लेकिन हमारा सूरज सारे जगत् में सबसे नया सूरज है। और जो चारो तरफ हमें तारे दिखाई पड़ते हैं, वह महासूर्य है जिनमें हमारा सूरज बहुत छोटा है। पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बड़ा है। लेकिन यह सबसे छोटा तारा है। इससे करोड, दो करोड गुने बडे तारे हैं। वे हमें छोटे-छोटे दिखाई पडते हैं क्योंकि फासला अन्तहीन है। सूरज से हम तक किरण आने में दस मिनट लगते हैं और किरण की गति होती है एक सैकेंड में १ लाख ८६ हजार मील। दस मिनट सूरज से आने में लगते हैं। जो सूरज के बाद निकटतम तारा है उससे चार वर्ष लगते है हम तक किरण के आने में। गति वही है एक लाख छयासी हजार प्रति सैकेंड। रोशनी चलेगी आज, आएगी चार वर्ष बाद। इतना हमारा फासला है। लेकिन वह निकटतम तारा है। उसके बाद जो तारा है उससे आठ वर्ष लग जाते हैं हम तक किरण के आने में। और उसके बाद फासले बढते चले जाते हैं। ऐसे तारे भी है कि जब पृथ्वी बनी थी यानी दो अरब वर्ष पहले तक की उनकी रोशनी चली है, अब आ पाई है। और ऐसे तारे भी हैं कि उनकी रोशनी अभी तक नही पहुँची। और ऐसे तारे होगे जिनकी रोशनी कभी नही पहुँचेगी। उनकी चली हुई रोशनी जब तक आएगी तब तक पृथ्वी बन कर जा चुकी होगी। यह जो अन्तहीन विस्तार है इसके अनन्त विस्तार में अनन्त पृथ्वियां है। अनेक पृथ्वियो पर जीवन हैं। उन जीवनो ने अनेक बार अन्तिम स्थिति भी पाई है।

असल में बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट जैसे लोग न केवल मनुष्य जाति के अतीत में प्रवेश करते हैं बल्कि जीवन की समस्त सम्भावनाओ में, समस्त लोको में, प्रवेश करते हैं और वही से आश्वासन पाते है इस बात का कि पूर्णता बहुत बार हो चुकी है। यह आश्वासन आकस्मिक नही है। लेकिन हमारी दृष्टि बहुत छोटी है। एक कीडा है जो वर्षा में पैदा होता है, फिर वर्षा में मर जाता है। उससे कोई कहे कि वर्षा फिर आएगी, वह कहेगा कभी सुना नही, कभी आई नही। न

मेरे माँ-बाप ने कहा, न मेरे पुरखो ने लिखा। वर्षा एक ही बार आती है क्योंकि किसी भी कीडा ने दो बार वर्षा नही देखी क्योकि वह कीडा तो वर्षा में ही पैदा होता है, वर्षा ही में मर जाता है। अनुभूति का कोई सवाल नही है और स्मृति लिखने का और स्मृति बनाने का कोई सवाल नही है।

हम पृथ्वी पर ही जीते हैं और पृथ्वी पर ही मर जाते हैं। जानने की सीमा इतनी छोटी है कि हमें पता नही है कि अंतहीन विस्तार में, इस पूरे ब्रह्माण्ड में कितने-कितने लोको में जीवन सम्भव है। उस जीवन से भी सम्बन्ध स्थापित करने की निरन्तर चेष्टाएँ की गई हैं। वैज्ञानिक चेष्टाएँ चल रही हैं। धार्मिक चेष्टा बहुत पुरानी है और सम्बन्ध किए गए हैं। उन्ही सम्बन्धों ने बडे आश्वासन दिए हैं और उन आश्वासनो ने भरोसा दिया है कि अगर कही जीवन और गहराई में विकसित हुआ है, और आनन्द में विकसित हुआ है कि मनुष्य दिव्य हो गया है कही, तो यहाँ भी हो सकता है। कोई बाधा नही है। फिर, दूसरा और बडा आश्वासन यह है कि जो व्यक्ति इस तरह कोशिश कर रहा है वह तो उपलब्ध हो ही गया है। और जिस दिन उसने जान लिया है कि यह हो सकता है, उस दिन सम्भावना खुल गई है कि यह सबके लिए हो सकता है। कोई बाधा नहीं है। अगर हम बाधा न बनें तो वह सम्भावना खुल सकती है पृथ्वी पर भी। वह होगी अवश्य किन्तु देर लग सकती है। लेकिन समय के इतने बडे प्रवाह में देर का कोई अर्थ ही नही होगा। बस देर हमारे छोटे मापदड की वजह से है। नापने का मापदड बहुत छोटा है। उससे हम नापते हैं तो बहुत लम्बा मालूम पडता है।

अभी महावीर को हुए वक्त ही कितना हुआ। ढाई हजार वर्ष हुए। हमारे लिए यह बडा लम्बा फासला है। लेकिन जिस विस्तार की मैं बात कर रहा हूँ उसमें ढाई हजार वर्ष का क्या मतलब? हमने नाप की बात की है। एक चीटी एक आदमी के ऊपर चढ जाती है तो समझती है कि हिमालय पर पहुँच गई हूँ। इसमें कोई झूठ भी नही क्योकि चीटी और आदमी का अनुपात है। चीटी का नाप कितना? हमारा नाप कितना? बहुत छोटा नाप है और वह छोटा नाप हमारे जीवन के साथ है। जीवन को हम सौ साल की अवधि से नापते हैं। लेकिन जिन व्यक्तियो की अतीत में उतरने की सम्भावना है, या जिन व्यक्तियो ने अतीत में उतरने की चेष्टा की है वह अलग बात है। उन्होने जीवन को पूरा जान लिया है कि एक है पृथ्वी का जीवन। यह पृथ्वी का जीवन जहाँ से आता है, जिन लोगो से आता है, उन लोगों की इस जीवन के भीतर कही-न-

कही स्मृति भी होती है। उन लोगों में भी इस स्मृति से प्रवेश हो सकता है— विज्ञान शायद प्रवेश नही कर पाएगा। क्योंकि चाँद पर विज्ञान पहुँचा, बडी कीमती घटना घटी लेकिन अब अगर मगल पर पहुँचता है तो एक वर्ष जाने में और एक वर्ष आने में लगेगा और सूर्य के जितने उपग्रह हैं उनमें किसी पर जीवन नही है पृथ्वी को छोडकर। सूर्य के उपग्रह छोडकर अगर किसी दूसरे उपग्रह पर जाना है तो मनुष्य की उम्र का अंत ही नही। अगर दो सौ वर्ष आने-जाने में लगें तो कोई उपाय नही। जिस तारे से चार वर्ष लगते हैं प्रकाश आने में तो जिस दिन ।हम प्रकाश की गति को वाहन बना लेंगे, उस दिन चार वर्ष लगेंगे हमको जाने में, चार वर्ष लगेंगे आने में। लेकिन प्रकाश की गति का वाहन कभी हो सकेगा ? क्योंकि कठिनाई यह है कि प्रकाश की गति जिस चीज में भी हो जाय वही प्रकाश हो जाएगा। यानी किरण ही हो जाएगी वह चीज। यानी उतनी गति पर अगर किसी चीज को चलाया तो वह ताप की वजह से किरण हो जाएगी। तो प्रकाश की गति असम्भव मालूम पडती है। क्योंकि प्रकाश की गति पर हवाई हजाज चला तो जैसे ही वह उतनी गति पकडेगा वह पिघलेगा और प्रकाश हो जाएगा, क्योकि उतनी गति पर उतना ताप पैदा हो जाता है और उतने ताप पर किरण बन जाती हैं। प्रकाश की गति पर किसी दिन वाहन ले जाया जा सकेगा, यह असम्भव है। तो विज्ञान हमारे सभी जीवनो से सम्बन्ध बना सकेगा, यह करीब-करीब असम्भव बात है। लेकिन इतना हो सकता है कि विज्ञान की इस सारी खोज-बीन के बाद हमें यह ख्याल में आ सके कि धर्म यह सम्बन्ध बना सकता है।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि जैसे ही अन्तरिक्ष की यात्रा शुरू हुई है, रूस और अमेरिका दोनों ही योग में उत्सुक हो गए हैं। अमरीका ने कमीशन बिठाई तीन-चार वैज्ञानिको का। सारी दुनिया का चक्कर लगाओ और इसकी खबर लाओ कि क्या विचार का सम्प्रेषण बिना माध्यम के हो सकता है, खबरें लाई गई हैं। क्योंकि इस बात का डर है कि अन्तरिक्ष में यात्री जाए, उसका यंत्र बिगड जाए और वह कोई खबर न दे सके। वह अन्तहीन में खो जाएगा। उसका हमें दुबारा कभी पता भी नही लगेगा कि वह कहाँ गया ? एक तो व्यवस्था होनी चाहिए कि अगर यंत्र भी खो जाएँ तो वह सीधा विचार के सम्प्रेषण से खबर दे सके। अगर विचार का सम्प्रेषण सीधा हो सके तभी यह सम्भावना है कि हम दूसरे लोगों के जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर सकें। क्योंकि तब विचार की गति का सवाल ही नही। विचार में समय लगता ही नहीं।

यानी अगर मैं विचार सम्प्रेषित कर सकता हूँ तो मैंने विचार सम्प्रेषित किया और आपने पाया, इसके बीच में पल भी नही लगता। जिसको महावीर समय कहते हैं, पल का भी लाखवां हिस्सा, वह भी नही लगता। विचार समयातीत सम्प्रेषित होता है। तो उसी दिन विचार के सम्प्रेषण से ही दूसरे जीवनों से सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। महावीर, बुद्ध, जीसस, ऐसे जीवन की तलाश में हैं। सम्बन्ध स्थापित करने की पूरी कोशिश की गई है और कुछ बातें खोज भी ली गई हैं कि वह सम्बन्ध स्थापित हो सकता है, हुआ है। उस सम्बन्ध के आधार पर कामना बनती है, आशा बनती है कि पृथ्वी पर भी यह हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नही है।

कल जो मैंने कहा उससे स्पष्ट हुआ होगा कि एक ही जन्म नही है। जन्मों की एक लम्बी यात्रा है। हम जो आज है, वह हम एकदम आज के ही नहीं हैं। हम कल भी थे, परसो भी थे। एक अर्थ में हम सदा थे किन्ही भी रूपो में। कभी पक्षी में, कभी पत्थर में, कभी खनिज में, कभी इस ग्रह पर, कभी उस ग्रह पर। हम सदा थे। होने के साथ हम एक हैं। अस्तित्व में हमारी प्रतिध्वनि सदा थी। लेकिन मूर्च्छित से मूर्च्छित थी। अमूर्च्छित होती चली गई है, जागृत होती चली गई है। हममें से सभी थे। जरूरी नही कि महावीर से सम्बन्धित हुए, जरूरी नही कि महावीर के पास थे, जरूरी नही कि महावीर के प्रदेश में थे। लेकिन सब थे। कही होंगे, इससे कोई फर्क नही पडता। यह भी हो सकता है कि हममें से कोई महावीर के निकट भी रहा हो, उस गांव में भी रहा हो जहाँ से महावीर गुजरे हो। जरूरी नही कि हम मिलने गए हो। क्योकि महावीर गांव से गुजरे तो कितने लोग मिलने जाते हैं इसकी कोई आवश्यकता नही। महावीर गांव में ठहरे भी हो और दस-बीस लोग भी मिले हो तो ठीक है। न मिले हो तब भी कोई जरूरी नही। हम सदा थे और हम सदा रहेंगे। मूर्च्छित या अमूर्च्छित दो बाते हो सकती हैं। अगर मूर्च्छित रहे हो तो हमारा होना न होना बराबर था। जब से हम अमूर्च्छित होते हैं, जागते हैं, चेतन होते हैं, तभी से हमारे होने मे कोई अर्थ है। और जितने हम चेतन होते चले जाते हैं उतना ही हमारा होना गहरा होता जाता है। उतना ही हमारा अस्तित्व प्रगाढ, समृद्ध होता चला जाता है। शायद उस अर्थ में होना हमारा अभी भी नही। अभी भी बस हम हैं। यह जो होने की लम्बी यात्रा है, इसमें बहुत बार शरीर बदलने जरूरी हैं। क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है, उसकी सीमा है। वह चूक जाता है। असल में कोई भी पदार्थ

से निर्मित वस्तु शाश्वत नही हो सकती। पदार्थ से जो भी निर्मित होगा वह बिखरेगा, जो बनेगा वह मिटेगा। शरीर बनता है मिटता है। लेकिन पीछे जो जीवन है, वह न बनता है न मिटता है। वह सदा नए-नए बनाव लेता है। पुराने बनाव नष्ट हो जाते हैं, फिर नए बनाव लेता है। यह नया बनाव उसके सस्कार, उसने क्या दिया, क्या भोगा, क्या किया, क्या जाना—इन सब का इकट्ठा सार है। इसे समझने के लिए दो तीन बातें समझ लेनी चाहिए।

एक, शरीर हमें दिखाई पडता है जो हमारा ऊपर का है। एक और शरीर है ठीक इसके ही जैसी आकृति का जो इस शरीर में व्याप्त है। उसे सूक्ष्म शरीर कहें, कर्म शरीर कहें, मनोशरीर कहें, कुछ भी नाम दे—काम चलेगा। इस शरीर से मिलता हुआ, ठीक बिल्कुल ऐसी ही अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओ से निर्मित सूक्ष्म देह है। जब यह शरीर गिर जाता है तब भी वह शरीर नही गिरता है। वह शरीर आत्मा के साथ ही यात्रा करता है। उस शरीर की खूबी है कि आत्मा की जैसी मनोकामना होती है, वैसा ही आकार ले लेता है। पहले वह शरीर आकार लेता है और तब उस आकार के शरीर में आत्मा प्रवेश करती है। अगर एक सिंह मरे तो उसके शरीर के पीछे जो छुपा हुआ सूक्ष्म शरीर है, वह सिंह का होगा। लेकिन वह मनोकाया है। मनोकाया का मतलब यह है कि जैसे हम एक गिलास में पानी डालें, उस गिलास का हो जाए रूप उसका, बर्तन में डालें बर्तन जैसा हो जाए, बोतल में भरे, बोतल जैसा हो जाए। हमारा स्थूल शरीर सख्त है और हमारा सूक्ष्म शरीर तरल है। वह किसी भी प्रकार को ले सकता है तत्काल। अगर एक सिंह मरे और उसकी आत्मा विकसित होकर मनुष्य बनना चाहे तो मनुष्य शरीर ग्रहण करने के पहले उसका सूक्ष्म शरीर मनुष्य की आकृति को ग्रहण कर लेता है। वह उसकी मनोआकृति है। सुन्दर, कुरूप, अन्धा, लंगडा, स्वस्थ, बीमार—वह उसकी मनोआकृति है जो उसके शरीर को पकड जाती है। सूक्ष्म शरीर जैसे ही देह ग्रहण कर लेता है, मनोआकृति बन जाता है। वैसे ही उसकी खोज शुरू हो जाती है गर्भ के लिए।

अब यह भी समझना जरूरी है कि व्यक्ति स्त्री या पुरुष जीवन में अनेक सम्भोग करते है लेकिन सभी सम्भोग गर्भ नही बनते। और यह भी जानकर हैरानी होगी कि एक सम्भोग में एक व्यक्ति के इतने वीर्य अणु नष्ट होते हैं जिससे अन्दाजन एक करोड बच्चे पैदा हो सकते हैं। यानी एक पुरुष अगर जिन्दगी में साधारणत. आम तौर से कोई तीन हजार से लेकर चार हजार

सम्भोग करता है और एक सम्भोग में अन्दाजन एक करोड बच्चे के सम्भावना-बीज हैं तो अगर एक पुरुष के सारे अणु प्रयुक्त हो सके और वास्तविक बन सकें तो एक पुरुष अन्दाजन चालीस करोड़ बच्चो का पिता बन सकता है। स्त्री को यह सम्भावना नही है क्योकि उसका महीने में एक ही बीज परिपक्व होता है। वह महीने मे सिर्फ एक व्यक्ति को जन्म दे सकती है। लेकिन एक को भी नही दे पाती क्योकि नौ महीने सिर्फ एक व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को रोक लेता है। सभी सम्भोग सार्थक नही होते। और इसका कारण है जो कि अभी तक वैज्ञानिक नही सोच पाए। स्त्री का बीज मौजूद है। उस पर पुरुष के एक करोड बीज एकदम से हमला करते हैं। और ध्यान रहे कि जो बाद में प्रकट होते हैं गुण वह बीज में ही छिपे होते हैं। पुरुष के सारे बीजाणु हमलावर होते हैं, तेजी से हमला करते हैं। स्त्री का बीज प्रतीक्षा करता है वह हमला नही करता। यह जो एक करोड वीर्याणु हैं बहुत तेजी से गति करते हैं। यह जानकर आप हैरान होगे कि प्रतियोगिता शुरु हो जाती है। वहाँ जो प्रतियोगिता में आगे निकल जाता है, वह जाकर स्त्रीअणु से एक हो जाता है। जो पीछे छूट जाता है, वह हट जाता है, मर जाता है, समाप्त हो जाता है। लेकिन प्रत्येक बार सम्भोग से गर्भ नही बनता। उसका वैज्ञानिक कारण नही खोज पाए अब तक। और नही खोज पायेंगे। उसका कारण यह है कि गर्भ तभी बन सकता है जब वैसी आत्मा प्रवेश करने के लिए आतुर हो। वह हमें दिखाई नही पडता। दो अणु मिलते हैं, इतना हमें दिखाई पडता है। स्त्री और पुरुष के अणुओ का मिलन सिर्फ जन्म नहीं है, यह है सिर्फ अवसर भर जिसमें एक आत्मा उतर सकती है।

प्रश्न : लेकिन अब तो सम्भावना है बगैर सम्भोग के ही ?

उत्तर सम्भोग से कोई सम्बन्ध ही नही है सम्भावना का। सम्बन्ध तो सिर्फ दो अणुओं के मिलन का है। वह मिलन सम्भोग के द्वारा हो रहा है, यह प्रकृति कीव्यवस्था है। कल सिरिंज के द्वारा हो सकता है, वह विज्ञान की व्यवस्था होगी।

प्रश्न इनमे से हर एक अणु ही उसमे इस्तेमाल हो सकते हैं ?

उत्तर. हाँ, हो सकते हैं और वह तभी हो सकेंगे जब इतनी आत्माएँ जन्म लेने के लिए आतुर हो जाएँ कि गर्भ व्यर्थ हो जाएँ। और इसलिए मैं कह रहा हूँ कि सब जरूरतें अनुकूल तैयार होती है, यह हमारे ख्याल में नही आता।

यानी अब तक, इस बात की जरूरत ही नही पडी थी कि हम वीर्य अणु को प्रयोगशाला में ले जाकर बच्चा पैदा करें। लेकिन अब जरूरत पड जाएगी इसलिए क्योकि स्त्री की सम्भावना समाप्त होने के करीब आ गई है। वह एक बच्चे को नौ महीनों में जन्म दे सकती है। वह कितने ही बच्चों को जन्म दे, बीस-पचीस बच्चों से ज्यादा जन्म नही दे सकती। अधिकतम जन्म देने वाली स्त्री ने छब्बीस बच्चो को जन्म दिया है। उसकी सम्भावना इससे ज्यादा नही है। लेकिन अगर मनुष्य आत्माओ का तीव्र आगमन होने लगे तो फौरन उपाय करने पडेगे। वह हमको दिखता नही अभी कि आखिर हम यह उपाय किसलिए कर रहे हैं या यह कभी सम्भव हो सकता है। और तब तो एक व्यक्ति के पूरे के पूरे चालीस करोड बीजाणुओ का भी गर्भधारण हो सकता है। लेकिन वह होगा तभी जब आत्मा उतरने को आतुर हो। और मेरा मानना है कि यह जो एक करोड की सम्भावना है एक सम्भोग में और चालीस करोड की सम्भावना है एक व्यक्ति के जीवन में वह इसलिए है कि आज नही कल, हजार वर्ष बाद, दस हजार वर्ष बाद इतनी जीव-आत्माएँ मुक्त होगी कि इन सब अणुओं की जरूरत पडने वाली है। नही तो इसका कोई मतलब नही है। और प्रकृति बे-मतलब कोई काम नही करती। जो भी शरीर मे है, उसकी कोई गहरी सार्थकता है, वह हमें पता हो, या न हो। और अगर आज उसकी सार्थकता नही तो कल उसकी सार्थकता हो सकती है। एक माँ और एक बाप के व्यक्तित्व से निर्मित जो बीजाणु है, वह सम्भावना बनते हैं एक ऐसे व्यक्ति को जन्म देने की जो इन दोनो की सम्भावनाओ से तालमेल खाता हो। इसलिए जो लोग समझ सकते हैं इस विज्ञान को वे यह भी निश्चित करवा सकते हैं बहुत गहरे में कि कैसे बच्चे उनको पैदा हों। सम्भोग के क्षण में यह उनकी मनोदशा, उनके मनोभाव, उनकी चित्तस्थिति निर्धारित करेगी।

प्रश्न : ये जो महावीर और बुद्ध के सम्बन्ध मे हमे ढेर कहानियाँ प्रचलित मिलती हैं, वह किस अर्थ मे सार्थक हैं? जैसे महावीर के सम्बन्ध में है कि इतने स्वप्न आते हैं या बुद्ध के सम्बन्ध मे है कि इतने स्वप्न आते हैं?

उत्तर : स्वप्न आते है, या नही आते हैं यह महत्त्वपूर्ण नही है। महत्त्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि ऐसे स्वप्न जिस चित्त में आते हो, उस चित्त की एक विशिष्ट अवस्था होगी तो ये स्वप्न आएँगे। सब स्वप्न सबको नही आते। चित्त की अवस्था पर स्वप्न निर्भर करते हैं। एक आदमी क्रोधी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें क्रोध होगा। एक आदमी कामी है तो वह

ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें काम होगा। एक आदमी लोभी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है जिनमें लोभ होगा। स्वप्न वे ही हैं जो व्यक्ति के चित्त की अवस्थाएँ हैं। महावीर जैसा व्यक्ति पैदा होना है तो वह साधारण मनोदशा में पैदा नही हो जाता। उसके माता पिता के भीतर चित्त की, शरीर की एक विशिष्ट अवस्था जरूरी है तभी वैसी आत्मा प्रवेश कर सकती है। और उसके पहले के लक्षण भी जरूरी हैं। वे लक्षण भी होने चाहिएँ। प्रतीक हैं वे लक्षण। वे इस बात की खबर देते हैं कि चित्त कैसा है। फ्रायड कहता है कि अगर कोई आदमी स्वप्न में मछली देखता है तो वह सेक्स का प्रतीक है। हजारो स्वप्नों का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा निकाला गया कि स्वप्न में मछली देखना सेक्स से सम्बन्धित है। मछली जननेन्द्रिय का प्रतीक है। गलत भी हो सकता है इसका ख्याल। लेकिन हजार स्वप्न अध्ययन किए हैं जिसने उसे ऐसा लगता है कि यह हो सकता है।

अभी तक महावीर के स्वप्नो या बुद्ध के स्वप्नो का कोई मनोवैज्ञानिक अध्ययन नही हुआ। उनकी माताओ के स्वप्नो का अध्ययन हो सकता है। लेकिन बडी कठिनाई यह है कि ऐसे व्यक्ति बडी सख्या में पैदा नही हुए। इसलिए तालमेल बिठाने के लिए उपाय नही है हमारे पास। तोल नही बिठाई जा सकती। कहा जाता है कि महावीर की माँ को स्वप्न मे सफेद हाथी दिखाई पडे। साधारणत सफेद हाथी दिखाई नही पडते। आप इतने लोग यहाँ बैठे हैं शायद ही किसी को स्वप्न में हाथी दिखाई पडा हो। और सफेद हाथी दिखाई पडे तो यह सम्भावना और न्यून हो जाती है। महावीर की माँ को अगर सफेद हाथी दिखाई पडा है तो यह अपवाद ही है। अगर इस तरह के सौ-दो सौ स्वप्न अध्ययन न किए जा सकें तो सफेद हाथी किस बात का प्रतीक है, यह तय करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन फ्रायड ने ही पहली बार यह काम नही किया है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरो की माताओ के स्वप्नो में जो ताल-मेल है इस बात की भी फिक्र की जाती रही है कि जब तीर्थंकर पैदा होता है तो उसकी माँ को क्या स्वप्न आते हैं। उसके जन्म के पहले इसकी चित्तदशा क्या है? शात है, अशात है, आनन्दपूर्ण है, प्रेमपूर्ण है, घृणापूर्ण है, क्रोधपूर्ण है, पवित्र है, दिव्य है, साधारण है, क्षुद्र है, कैसी है? यह बिल्कुल ठीक है कि चित्त की विशिष्ट दशा में ही ऐसी आत्मा उतर सकती है। चगेजखाँ या तैमूरलंग पैदा हो तो भी फिक्र की जानी चाहिए कि उनकी माताएँ कैसे स्वप्न देखती है। फिक्र नही की गई है। हिटलर पैदा हो, स्टालिन पैदा हो, तो

कैसे स्वप्न उनकी माताएं देखती रही हैं इसकी भी फिक्र की जानी चाहिए। तो शायद हमें यह साफ हो सके कि चित्त की एक विशिष्ट दशा में ऐसी आत्मा प्रविष्ट होती हैं। इतना तो तथ्य है कि हर दशा में हर आत्मा प्रविष्ट नही होती। माँ-बाप सिर्फ अवसर बनते हैं आत्मा के उतरने के, अवतरण के। आत्मा एक शरीर को छोडती है। जैसे ही मरती है मूर्छित हो जाती है। और दूसरे जन्म तक मूर्च्छित हो रहती है। यानी माँ के पेट के नौ महीनो में भी मूर्च्छित ही रहती है। लेकिन कुछ आत्माएँ सचेत मरती हैं वे माँ के पेट में भी सचेत हो सकती हैं। जो सचेत मरेगा, वह माँ के पेट में भी सचेत होगा। तो यह कहानियाँ आकस्मिक नही हैं कि माँ के पेट में भी कुछ सीखा जा सके और बाहर की बाते सुनी जा सकें, या बाहर के अर्थ ग्रहण किए जा सके। यह असम्भव नही है। अगर कोई आत्मा मरते वक्त पूर्ण चेतन थी, होश नही खोया था, शरीर होशपूर्वक छोडा था तो वह आत्मा होशपूर्वक शरीर लेगी। लाओत्से के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ क्योंकि पैदा होते ही उसने ऐसे लक्षण दिखाए जो कि अत्यन्त वृद्ध ज्ञानी में होने चाहिए। और बचपन से उसमें ऐसी बातें दिखाई पड़ने लगी जो कि बडे अनुभव के बाद ही हो सकती हैं।

सचेतन रूप से मरा हुआ व्यक्ति सचेतन रूप से पैदा हो सकता है। तो माँ के पेट में महावीर के संकल्प करने की बात अर्थ रखती है। "मैं अपने माता-पिता को दुःख नही दूँगा, उनके जीते सन्यास नही लूँगा" इस बात का संकल्प गर्भ में किया गया है। लेकिन सामान्यत हम मरते समय बेहोश हो जाते हैं और दूसरे जन्म तक यह बेहोशी जारी रहती है। असल में प्रकृति की यह व्यवस्था है मूर्च्छा करने की। जैसा हम आपरेशन करते हैं एक आदमी का तो हम उसे मूर्च्छित कर देते हैं ताकि मूर्च्छा में जो भी हो उसे पता न चल सके। क्योंकि पता चलना बहुत घबराने वाला भी हो सकता है। इसलिए प्रकृति की व्यवस्था है मरने के पहले मूर्च्छित करने की और दूसरे जन्म तक मूर्च्छा ही रहती है। और इस मूर्च्छा में जो भी होगा—जैसा कि मैने कहा कि आत्मा शरीर ग्रहण करेगी तो वह बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वाभाविक का मतलब यह है कि आत्मा रुझान जैसी है अचेतन, वह उस तरफ यात्रा कर पाएगी। सचेतन रूप से जन्म बहुत कम लोग लेते हैं। सचेतन रूप से वही लोग जन्म ले सकते हैं जिन्होंने पिछले जीवन मे चेतना की बड़ी गहरी उपलब्धि की है। और तब वे जानते हैं पिछले जन्मों को, मृत्यु को, मरने के बाद को।

तिब्बत में एक प्रयोग होता है—बारदो। दुनिया में जिन लोगों ने खोज की है मृत्यु के बाबत उनमें सबसे ज्यादा लोग तिब्बत के हैं। बारदो एक अद्‌भुत प्रयोग है। आदमी मरता है तो भिक्षु उसके आस-पास खडे होकर बारदो का प्रयोग करते हैं। जब वह मर रहा होता है तब वे उसे चिल्लाकर कहते हैं कि होश रख, होश रख, संभल, बेहोश मत हो जाना क्योंकि बडा मौका आया है जैसा कि मरने का मौका फिर सौ वर्ष के बाद आया हो। वे उसे हिलाते हैं, जगाते हैं। आप हैरान होंगे। आस्पेन्सी नाम का एक अद्‌भुत विचारक चलते-चलते मरा, लेटा नही। अभी मरा दस-पन्द्रह साल पहले। और उसने अपने सारे शिष्यों को इकट्ठा कर लिया मरने से पहले। वह चलता ही रहा। उसने कहा कि मैं होश में ही मरूँगा। मैं लेटना भी नहीं चाहता कि कही झपकी न लग जाए। चलता ही रहा। जो लोग मौजूद थे उन्होंने लिखा है कि जो अनुभव हमें उस दिन हुआ वह कभी नही हुआ कि कोई आदमी इतने होश से मर सकता है। टहलता ही रहा और कहता रहा कि बस, अब यह होता है, अब यह होता है। अब मैं यहाँ डूब रहा हूँ, अब मैं इस जगह पहुँच रहा हूँ, अब सब इतने सैकेंड में स्वास चली चली जाएगी। वह एक-एक चीज को नाप कर घोलता रहा। और पूरा सचेत मरा। मरा तब सचेत खडा था। बारदो में उस आदमी को चिल्ला चिल्लाकर सचेत करते हैं कि जागे रहना, सो मत जाना। देखो—ऐसा, ऐसा होगा, घबराओ मत। बेहोश मत हो जाना। और फिर अगर वह आदमी होश में रह जाता है तो "बारदो" की प्रक्रिया आगे चलती है। फिर उसको बताते हैं अब ऐसा होगा, देख गौर से देख भीतर की अब ऐसा होगा, अब ऐसा होगा। अब शरीर से प्राण इस तरह टूटेगा। अब शरीर छूट गया, तू घबराना मत। तू मर नहीं गया है। शरीर छूट गया है लेकिन देख तेरे पास देह है, गौर से देख, घबडा मत। वह पूरे प्रयोग करवाएँगे मरते वक्त। और मरने की प्रक्रिया बहुत कीमती है। अगर उस वक्त किसी को सचेत किया जा सके तो उसके जीवन में एक क्रान्ति हो गई जो बहुत अद्‌भुत है। लेकिन सचेत उसको रखा जा सकता है जो जीवन में सचेत होने का प्रयोग कर रहा हो।

मैं जिस श्वास के अभ्यास के लिए आपसे कह रहा हूँ अगर वह आप जारी रखें तो मृत्यु के वक्त मे कोई सम्पत्ति काम नहीं आएगी, कोई मित्र काम नही आएगा, श्वास की जागरूकता ही सिर्फ काम मे आती है। क्योंकि जो श्वास के प्रति जागरूक है उसकी श्वास जब डूबने लगती है, वह अपनी जागरूकता

जारी रखती है। और श्वास के डूबने के साथ वह देखता है कि मृत्यु उतरने लगी है। और उसने श्वांस की जागरूकता का इतना अभ्यास किया है कि जब श्वांस बिल्कुल नहीं रह जाती तब भी वह जागा रहता है। बस वही कोण है जहाँ से उसकी नई यात्रा शुरू हो गई जागरण की। तब फिर उसका जन्म एकदम जागरूक जन्म है। तो 'बारदो' में बड़ी चेष्टा करते हैं। मैं चाहता हूं कि 'बारदो' जैसी स्थिति इस मुल्क मे पैदा की जाए, जो कभी नही हो सकी। यहाँ मरने के नाम फिजूल मूर्खतापूर्ण बातें प्रचलित हो गई है जिनका कोई देना-लेना नही है। कोई मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नही जगा पाया कि मरते हुए आदमी के लिए हम सहयोगी हो जाएँ। सहयोगी हम हो सकते है और उसी माध्यम से वह व्यक्ति जब दुबारा जन्म लेगा तो उसके जन्म की पिछली यात्रा उसके सामने रहेगी सदा। वह आदमी दूसरे ढग का हो जाएगा। उसके दूसरे जन्म में साधना अनिवार्य हो जाएगी। अब वह दूसरा जन्म खोने को तैयार नही हो सकता।

वह जो सूक्ष्म शरीर है, जिसकी मैंने बात कही, उसी सूक्ष्म शरीर मे वे सूखी रेखाएँ बनती है जो फल मैने कहीं। वे कर्म जो हमने किए, वे फल जो हमने भोगे और वह जो हम जिए उस सबकी सूक्ष्म रेखाएँ उस सूक्ष्म शरीर पर बनती है। इसलिए वह जो सूक्ष्म शरीर है उसका एक नाम महावीर ने रखा कार्मण शरीर। महावीर का ख्याल है कि जो भी हमने जिया और भोगा उस भोग के कारण विशेष प्रकार के परमाणु हमारे शरीर से जुड जाते हैं। जैसे एक क्रोधी आदमी है तो वह एक विशेष प्रकार के परमाणु अपने सूक्ष्म शरीर में जोड़ लेता है। अब तो साइंस बहुत तरह की बाते कहती है कि जब आप क्रोध में होते है तो आपके खून में एक तरह का जहर छूट जाता है। जब आप प्रेम में होते हैं तो आपके खून में एक तरह का अमृत छूट जाता है। जब एक आदमी किसी स्त्री के प्रति और कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रति पागल हो जाती है प्रेम में तो उसके खून में अमृत के फव्वारे छूट जाते हैं जिनकी वजह से सम्मोहन पैदा हो जाता है और स्त्री सुन्दर दिखाई पड़ने लगती है जितनी वह है नही। अगर आपको किसी स्त्री से प्रेम नहो है तो एल एस डी का इन्जैक्शन लगाकर उस स्त्री को देखें जिससे आपको प्रेम नहीं तो आप एकदम दीवाने हो जाएँगे क्योंकि वह इंजैक्शन आपके शरीर में अमृत छोड़ देता है जिससे कोई भी स्त्री आपको अपूर्व सुन्दर दिखाई पडे। यह सवाल नही है कि फलाँ स्त्री। एक साधारण सी स्त्री भी अद्वितीय दिखाई पडेगी। एक साधारण सा फूल सुन्दर और आलौकिक दिखाई पडेगा।

जब हम क्रोध करते हैं तब एक तरह का जहर, और प्रेम करते हैं तो एक तरह का अमृत—इस तरह सारे के सारे रस शरीर में छूटते रहते हैं। यह तो स्थूल शरीर के तल पर हो रहा है लेकिन सूक्ष्म शरीर के तल पर भी यह हो रहा है। जब आप क्रोध कर रहे हैं तो सूक्ष्म शरीर के साथ विशेष तरह के परमाणु सम्बन्धित हो रहे हैं। जब आप प्रेम कर रहे हैं तो विशेष प्रकार के परमाणु सम्बन्धित हो रहे हैं। इस शरीर के छूट जाने पर वह सूक्ष्म शरीर ही सूखी रेखाओं की तरह आपके भोगे गए जीवन को लेकर नई यात्रा शुरू करता है। और वह सूक्ष्म शरीर ही नए शरीर ग्रहण करता है। वह अन्धा हो सकता है, वह लंगड़ा हो सकता है; बुद्धिमान् हो सकता है। प्रत्येक मृत्यु में स्थूल देह मरती है। फिर अन्तिम मृत्यु है महामृत्यु, जिसे हम मोक्ष कहते हैं। उसमे सूक्ष्म शरीर भी मर जाता है। जिस दिन सूक्ष्म शरीर मर जाता है, उस दिन व्यक्ति का मोक्ष हो गया। स्थूल शरीर तो हर बार मरता है। मगर भीतर का शरीर हर बार नहीं मरता वह तभी मरता है जब उस शरीर के रहने का कोई अर्थ नही रह जाता। जब व्यक्ति न कुछ करता है, न भोगता है, न कर्ता बनता है, न किसी कर्म को ऊपर लेता है, न कोई प्रतिक्रिया करता है। जब व्यक्ति केवल साक्षी मात्र रह जाता है तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है। साक्षी की जो प्रक्रिया है, वह सूक्ष्म शरीर को ऐसे पिघला देती है जैसे सूरज निकले और बर्फ पिघलने लगे। साक्षी के निकलते ही सूक्ष्म शरीर के परमाणु पिघल कर बहने लगते हैं। और यह पिघलना ऐसा अनुभव होता है जैसे रात को सर्दी से जुकाम पकड गया हो। और जुकाम उतर रहा है तो आप अनुभव करते हैं, किसी को बता नही सकते कि अब जुकाम नीचे उतर रहा है। सूक्ष्म शरीर का पिघलना साक्षी को इसी तरह पता चलता है कि कोई चीज भीतर पिघल कर बहती चली जा रही है। और जिस दिन सूक्ष्म शरीर पिघल जाता है, आत्मा और शरीर पृथक् दिखाई देते हैं। सूक्ष्म शरीर जोड है। वह पृथक् नही दिखाई पडने देता। वह दोनों को जोड़कर रखता है। और जिस दिन वे दोनो पृथक् दिखाई पड जाते हैं, वह आदमी कह देता है कि यह आखिरी यात्रा है। अब इसके बाद लौटना नही।

बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, बुद्ध ने कहा कि वह घर गिर गया जो सदियो से नही गिरा था। तो वे घर के बनाने वाले विदा हो गए जो सदा उस

घर को बनाते थे। अब मेरे लौटने की कोई उम्मीद नही रही क्योंकि कहाँ लौटूँगा? अब वह घर ही न रहा, जिसमें सदा लौटता था। और वह घर जो है, वह सूक्ष्म शरीर का घर, उस पर हमारे सारे कर्म, हमारे सारे कर्मों के फल, हमारा भोग, हमारा जिया हुआ जीवन—वह सब वैसा बन जाता है जैसे स्लेट की पट्टी पर रेखाएँ बन जाती हैं। **उस सूक्ष्म शरीर को गलाना ही साधना है।** अगर मुझसे कोई पूछे कि तपश्चर्या का क्या मतलब तो मैं कहूँगा कि सूक्ष्म शरीर को गलाना ही तपश्चर्या है। तप का मतलब होता है—तीव्र गर्मी, सूर्य की गर्मी ऐसी गर्मी भीतर साक्षी से पैदा करनी है कि सूक्ष्म शरीर पिघल जाए और बह जाए। तप का यही मतलब है। तप का मतलब धूप में खडे होना नही है। वह आदमी पागल है जो धूप में खड़ा होकर तप कर रहा है। जब महावीर को कहते हैं महातपस्वी तो उसका मतलब यह नही है कि वह धूप में खडे होकर शरीर को सता रहे हैं। और जब महावीर को कहते हैं 'काया को मिटाने वाला' तो उस काया का इस काया से कोई मतलब नहीं है। उस काया का मतलब है भीतर की काया से जो असली काया है।

बाहरी काया तो बार-बार मिलती है। आप इस कमीज को अपनी काया नही कह सकते। क्योंकि आप रोज उसे बदल लेते हैं। आप शरीर को काया कहते है क्योंकि जिन्दगी भर उसे नही बदलते। महावीर भली भाँति जानते हैं कि यह शरीर भी तो कई बार बदला जाता है लेकिन एक और काया है जो कभी नही बदली, बस एक ही बार खतम होती है, बदलती नही। तो उस काया के पिघलने में लगा हुआ जो श्रम है वही तपश्चर्या है। और उस काया **को पिघलाने की जो प्रक्रिया है वही साक्षीभाव, सामायिक का ध्यान है।** और वह स्मरण में आ जाए और उसके प्रयोग से हम गुजर जाएँ तो फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है। पुनर्जन्म रहेगा, सदा रहेगा अगर हम कुछ न करें। लेकिन ऐसा हो सकता है कि पुनर्जन्म न हो। हम विराट् जीवन के साथ एक हो जाएँ। ऐसा नहीं कि हम मिट जाते हैं, ऐसा नहीं कि हम खतम हो जाते हैं। बस ऐसा ही हो जाते हैं जैसे बूँद सागर हो जाती है। वह मिटती नहीं, लेकिन मिट भी जाती है, बूँद की तरह मिट जाती है, सागर की तरह रह जाती है। इसलिए महावीर कहते हैं कि आत्मा ही परमात्मा हो जाता है। लेकिन नही समझे लोग कि इसका क्या मतलब है। मतलब यह है कि आत्मा कि बूँद खो जाती है परमात्मा में और एक हो जाती है। उस एकता में, उस परम अद्वैत में परम आनन्द है, परम शांति है, परम सौन्दर्य है।

१४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक २४ सितम्बर, १९६९

प्रश्न : ऐसा कोई व्यक्ति क्यो नहीं मिल सका जिसके चरणों में महावीर आत्मसमर्पण कर सकें ? महावीर क्या खोज रहे हैं जिसकी वजह से वे किसी गुरु के पास नहीं गए ? इस सम्बन्ध में महावीर क्या कहते हैं ?

उत्तर । जीवन में बहुत कुछ है जो दूसरे से नहीं मिल सकता और जो भी श्रेष्ठ है जो भी सत्य है, सुन्दर है, उसे दूसरे से पाने का कोई भी उपाय नही है। जो दूसरे से पाया जा सकता है, उसका कोई महत्त्व नहीं। क्योंकि जिसे हम दूसरे से पा लेते हैं वह हमारे प्राणों से विकसित हुआ नहीं होता। वह ऐसा ही है जैसे कागज के फूल कोई बाजार से ले आए और घर को सजा ले। वृक्षों से आए हुए फूलों की बात दूसरी है। वे जीवन्त हैं। मगर वे भी मृत हो जाते हैं। थोडी देर गुलदस्ते में धोखा दे सकते हैं जीवित होने का। लेकिन फिर भी वे जीवित नही हैं। सत्य के फूल कभी उधार नहीं मिलते। इसलिए जो भी सत्य को खोजने निकला हो, वह गुरु को खोजने नही निकलता है। हाँ, असत्य को खोजने कोई निकला हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है। सत्य की खोज में गुरु एकदम अनावश्यक है। लेकिन शिष्यत्व यानी सीखने की क्षमता बहुत आवश्यक है। असली सवाल सीखने की क्षमता का है और जिसके पास सीखने की क्षमता है वह गुरु नही बनाता, सीखता चला जाता है। गुरु बनाना एक तरह का बन्धन निर्मित करना है। यह इस बात की चेष्टा है कि सत्य पाएँगे तो इस व्यक्ति से और कहीं से नहीं।

मेरा मानना है कि सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है जो किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो। सत्य पूरे जीवन पर छाया हुआ है। अगर हम सीखने को उत्सुक हैं, तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। गुरु लाख समझाए कि जिन्दगी

असार है, कल मौत आ जाएगी, चेत जाओ और अगर हम सीख न सकते हों तो आवाज कान में सुनाई पडेगी और समाप्त हो जाएगी। और अगर कोई सीख सकता है तो एक वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्ते को देखकर भी सीख सकता है कि जिन्दगी असार है और अभी जो हरा था, वह अभी सूख गया; कल जो जन्मा था, आज मर गया है। और एक सूखा पत्ता गिरता हुआ भी एक व्यक्ति को जीवन की सारी व्यर्थता का बोध करा सकता है। लेकिन सीखने की क्षमता न हो तो यह बोध कोई भी नही करा सकता। महावीर में सीखने की अद्भुत क्षमता है, इसलिए उन्होने कोई गुरु नही बनाया। गुरु खोजा भी नही। बस सीखने निकल पडे, खोजने निकल पडे, बीच में किसी व्यक्ति को लेना नहीं चाहा क्योंकि उधार ज्ञान लेने की उनकी कोई आकांक्षा नही। उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है? सब चीजें उधार हो सकती हैं, ज्ञान उधार नही हो सकता। ज्ञान उसका ही होता है, जो पाता है। वह दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है।

गुरुओं की कमी न थी, सब तरफ गुरु मौजूद थे। शास्त्रों की कमी न थी, शास्त्र मौजूद थे। सिद्धान्तों की कमी न थी, सिद्धान्त मौजूद थे। लेकिन महावीर ने सबकी ओर पीठ कर दी क्योंकि शास्त्र की ओर मुंह करना या सिद्धान्त की ओर या गुरु की ओर—बासे और उधार के लिए उत्सुक होना है। वह निपट अपनी खोज पर चले गए। स्वयं ही पा लेना है। और जो स्वयं न मिले वह दूसरे से माग कर मिल भी कैसे सकता है? मिलने का मार्ग भी क्या है? रास्ता भी क्या है? दूसरे से ज्यादा से ज्यादा शब्द मिल सकते हैं, सिद्धात मिल सकते हैं, लेकिन सत्य नहीं मिल सकता। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति समर्पण नही किया। यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो गुरु के प्रति, सीमित के प्रति क्या? समस्त के प्रति क्यों नहीं? सच तो यह है कि एक के प्रति समर्पण असल में समर्पण नही है। एक के प्रति समर्पण में शर्त है। जब मैं कहता हूँ कि फलां व्यक्ति के प्रति मैं समर्पण करूंगा, और फला के प्रति नहीं तो मैं शर्त रख रहा हूँ क्योंकि मैं मानता हूँ कि एक ठीक है, दूसरा गलत है। यह पा लिया है, दूसरा नहीं पाया है। इससे मिलेगा, दूसरे से नहीं मिलेगा। यह दे सकता है, दूसरा नही दे सकता। तब समर्पण कैसा हुआ? यह तो सौदा हुआ। जिससे हमें मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं, उसकी आकांक्षा को ध्यान में रखकर अगर समर्पण किया गया तो समर्पण कैसा हुआ? वह सौदा हुआ, लेन-देन हुआ। समर्पण का अर्थ यह है कि बिना शर्त, बिना आकांक्षा के स्वयं को छोड़ देना। तब कोई किसी व्यक्ति के प्रति

कभी समर्पित नहीं हो सकता। समर्पित हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति। और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भी एक व्यक्ति है तो भी समर्पण नही हो सकता। जैसे अगर किसी ने परमात्मा को राम मान लिया है तो राम के प्रति उसका समर्पण है, कृष्ण के प्रति समर्पण नही है।

एक बडे रामभक्त सन्त के जीवन में उल्लेख है कि उन्हें कृष्ण के मन्दिर में ले जाया गया। तो बांसुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति को उन्होंने नमस्कार करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो धनुर्धारी राम के प्रति ही झुकता हूं। और अगर चाहते हो कि मैं झुकूं तो इनके हाथ में धनुषबाण दे दो। यानी झुकने वाला शर्त लगाएगा। वह यह भी शर्त लगाएगा कि तुम कैसे खडे हो? धनुषबाण लेकर कि बांसुरी लेकर। तुम्हारी कैसी शक्ल हो, तुम्हारी कैसी आँखें हो, वह सब शर्त लगाएगा। और इस तरह समर्पण में शर्त हो सकती है। यानी कोई यह कहे कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं समर्पण करूँगा तो क्या समर्पण रहा? समर्पण का तो अर्थ ही सदा बेशर्त है। मैं मानता हूँ कि महावीर का समर्पण है लेकिन किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, समस्त के प्रति। और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है उनका हमें पता नही चलता। क्योंकि पता कैसे चलेगा? हम तो व्यक्तियो के ही समर्पण को समझ पाते हैं कि यह आदमी फलां आदमी के प्रति समर्पित है। लेकिन एक आदमी समस्त के प्रति समर्पित है, उस पत्थर के प्रति भी जो सड़क पर पडा है, आकाश के तारे के प्रति भी, आदमी के प्रति भी, और बच्चे के प्रति भी और जानवर के प्रति भी। जो समस्त के प्रति समर्पित है, उसका समर्पण हमारी पहचान में नहीं आएगा क्योंकि हमारा मापदण्ड सीमित सौदे का है।

अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करूं तो समझ में आ सकता है कि मैं प्रेम करता हूँ। लेकिन अगर मेरा समस्त के प्रति प्रेम हो तो समझ में आना मुश्किल हो जाएगा क्योंकि हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं जब वह व्यक्ति से बंध जाए। अगर वह फैला हो, असीम हो तो हम नही पहचान पाते उसे। इसलिए महावीर को समझने वाले सोचते रहे हैं कि महावीर ने किसी एक के प्रति इसलिए समर्पण नही किया कि एक के प्रति समर्पण करने से शेष के प्रति असमर्पण हो जाता है। अगर पूर्ण समर्पण है तो पूर्ण के प्रति, असीमित के प्रति ही हो सकता है। अपूर्ण के प्रति, सीमित के प्रति समर्पण नही हो सकता। अब तक किसी ने भी इस तरह नहीं सोचा है महावीर के प्रति कि वह समर्पित व्यक्ति है। मेरा मानना है कि वे बिल्कुल ही पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं। लेकिन

पूर्ण समर्पित व्यक्ति किसी एक के प्रति समर्पित नही होता। वह किसी एक के आगे सिर नही झुकाता, इसलिए नही कि अहंकार है, बल्कि इसलिए कि उसका सिर झुका ही हुआ है सब ओर। अब वह कैसे अलग-अलग खोजने जाए कि इसके प्रति झुको, उसके प्रति न झुको। उसके किसी एक के प्रति झुकने का सवाल ही नही, और ध्यान रहे जो व्यक्ति किसी एक के प्रति झुकता है, वह दूसरे के प्रति सदा अकडा रहता है। और जो व्यक्ति किसी एक के चरण छूता है, वह किसी से चरण छुवाने को आतुर है।

मैं एक बड़े संन्यासी के आश्रम में गया। बडे मंच पर संन्यासी बैठे हुए हैं। उनके मंच के नीचे एक छोटा तख्त है, उस पर एक दूसरे सन्यासी बैठे हैं। उस तख्त के नीचे और संन्यासी बैठे हुए हैं। उस बडे संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप देखते हैं मेरे बगल में कौन बैठा है? मैंने कहा मुझे देखने को जरूरत नही। कोई बैठा है जरूर। उन्होंने कहा, शायद आपको पता नहीं। वह हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस हैं, साधारण आदमी नही हैं। लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नही बैठते हैं। मैंने कहा कि वह मुझे दिखाई पड़ रहा है। लेकिन उनसे भी नीचे तख्त पर कुछ लोग बैठे हुए हैं। और वे आपके मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जब आप मरो तो वे इस तख्त पर बैठें, और आपने जो कहा कि यह आदमी विनम्र है क्योंकि आपके साथ नहीं बैठता तो यह भी सोचना जरूरी है कि आप कैसे आदमो हैं। आप बड़े अहंकारो आदमी मालूम होते हैं। आप कैसे आदमी हैं जो कोई आपके साथ बैठे तो आप अविनय समझते हैं, नीचे बैठे तो विनय समझते हैं। लेकिन वे जो चेले नीचे बैठे हैं प्रतीक्षा करते हैं कि वे कब गुरु हो जाएँ। वे जो हैं किसी के प्रति समर्पित व्यक्ति, वे दूसरो के समर्पण की मांग करते हैं क्योकि जो वे इधर देते हैं, वह दूसरे से मांग करते हैं। निरन्तर आपने देखा होगा कि जो आदमी किसी की खुशामद करेगा वह अपने से पीछे वाले लोगों से खुशामद मांगेगा। जो आदमी किसी की खुशामद नही करेगा वह खुशामद भी नहो मांगेगा। दोनो बातें एक साथ चलती हैं। जो आदमी नम्रता दिखलाएगा वह दूसरों से नम्रता की मांग करेगा।

महावीर को समझना इस अर्थ में कठिन हो जाता है। न वह किसो के प्रति समर्पित हैं, न कोई उनका गुरु है, न वे किसी के चरण छूते हैं, न वे किसी के चरणो में बैठते हैं, न वे किसी के पीछे चलते हैं। तो उन्हें समझना कठिन हो जाता है। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि में यह है कि वह इतने समर्पित व्यक्ति हैं, समस्त के प्रति और इस भाँति झुके हुए हैं कि अब और किसके लिए झुकना

है और क्यों झुकना है। एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि आप फलाँ-फलाँ आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं। मैंने कहा कि अगर तुम मुझसे कहते कि आदमी को महात्मा मानते हैं कि नही तो मैं जल्दी से राजी हो जाता। तुम कहते हो फलाँ-फलाँ व्यक्ति। अब इसमें यह बात छिपी है कि मैं एक व्यक्ति को महात्मा मानूँ तो दूसरो को हीनात्मा मानूँ इसके सिवाय कोई चारा नही है। एक को महात्मा मानने में दूसरे को हीनात्मा मानना पडेगा। नही तो उसे महात्मा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। मैंने कहा कि मैं किसी को हीनात्मा मानने में राजी नहीं हूँ इसलिए महात्मा भी विदा हो जाता है। मेरे लिए कोई महात्मा नही क्योंकि कोई हीनात्मा नही है। और एक को महात्मा बनाओ तो हजार, लाख, करोड़ को हीनात्मा बनाना जरूरी है, नही तो काम चलता नहीं। यानी एक महात्मा की रेखा खीचने के लिए करोड हीनात्माओं का घेरा खडा करना पडता है, तब एक महात्मा बन सकता है, बनाया जा सकता है। लेकिन एक आदमी को महात्मा मानने में हम करोडों आदमियों को हीनात्मा की दृष्टि से देखना शुरू कर देते हैं। महावीर किसी को न महात्मा मानते हैं, न हीनात्मा मानते हैं। महावीर इस विचार में ही नही पडते। वह एक-एक की गिनती नही कर रहे हैं : समस्त जीवन का सीधा समर्पण है। व्यक्ति बीच में आता ही नही।

इस प्रश्न से सम्बन्धित दूसरी बात भी मैं आपको याद दिला दूँ कि चूंकि महावीर ने किसी को गुरु नही बनाया इसलिए जितने लोगों ने महावीर को गुरु बनाया उन सबने महावीर के साथ अन्याय किया है। वे समझ ही नहीं पाए महावीर को। यानी जिस आदमी ने किसी को कभी गुरु नही बनाया है, वह कभी किसी को शिष्य बनाने की बात भी नही सोच सकता। दोनो सयुक्त बातें हैं। क्योकि जब वह अपने लिए यह ठीक नही मानता है कि किसी को गुरु की तरह स्थापित करें, तो वह कैसे मान सकता है कि कोई उसे गुरु की तरह स्थापित करे। इसलिए जो अपने को महावीर के शिष्य और अनुयायी समझते हैं, वे महावीर के साथ एक बुनियादी अन्याय कर रहे हैं। वे उस आदमी को समझ ही नही पाए। जिस महावीर ने अपने से पहले चले आए किसी शास्त्र को नही माना उस महावीर का शास्त्र बना लेना उसके साथ अन्याय करना है। महावीर ने अपने पहले हुए किसी भी व्यक्ति को ऐसा नही कहा है कि उससे मुझे मिल जाएगा या वह मुझे देने वाला हो सकता है। बात ही नही उठाई इसकी। उस महावीर के पीछे लाखों लोग हैं जो यह कहते हैं :

"तुम्ही हमें पहुँचा दो, तुम्ही हमें मिला दो, तुम्ही हमारा कल्याण करो। जो कुछ हो तुम्ही हो।" यह सब कहना महावीर के प्रति अशोभन है लेकिन ख्याल में नही आता।

यह भी पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा क्या खोज रहे हैं जिसकी वजह से वह किसी गुरु के पास नही गए। निश्चित ही वह कोई ऐसी चीज खोज रहे थे जो किसी गुरु से कभी किसी को नही मिली। हाँ, कुछ चीजें हैं जो गुरु से मिल जाती हैं। असल में जीवन का बाह्य ज्ञान सदा गुरु से ही मिलता है। गणित सीखना है, भूगोल सीखना है। इन सब का स्वयं ज्ञान नही होता। ऐसा नही कि एक आदमी आँख बंद करके बैठ जाय और भूगोल सीख जाए। असल में जो चीजें जीवन के बाहरी फैलाव से सम्बन्धित हैं, वे सबकी सब किसी से सीखनी पड़ती हैं। लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं जो बाहर के फैलाव से सम्बन्वित ही नही हैं। जो मेरी अन्तस् चेतना में ही छिपी हैं, उन्हें कभी किसी गुरु से नहीं सीखना पडता। जैसे कोई आदमी सोचता हो कि मैं आँख बन्द करके अन्तर्यात्रा करूँ और जगत् का भूगोल जान लूं। जैसी गल्ती वह आदमी करेगा ऐसी ही गल्ती वह आदमी भी करेगा जो अन्तर्यात्रा के लिए और अन्तर्दर्शन के लिए किसी गुरु के पास चला जाता है। **कुछ है जो दूसरे से सीखा जाता है। और कुछ है जो स्वयं ही सीखा जाता है** और दूसरे से कभी भी नही सीखा जा सकता। महावीर उसी परम शक्ति की खोज में थे। इसलिए वह किसी के पास नही गए। उन्होंने किसी को बीच में लेना नही चाहा क्योकि बीच में लेने से शुद्धता नष्ट हो जाती है। अगर मैं प्रेम की खोज में हूँ तो मैं किसी को बीच में नही लेना चाहूँगा। अगर मैं सत्य की खोज में हूँ तो भी मैं किसी को बीच में नही लेना चाहूँगा। अगर मैं सौन्दर्य की खोज में हूँ तो भी मैं अपनी आँखों से सौन्दर्य देखना चाहूँगा। मैं दूसरे की आँखें उधार नही लेना चाहूँगा क्योकि वे आँखें दूसरों की होंगी, अनुभव दूसरों का होगा।

महावीर उस सत्य की खोज में हैं जो स्वयं में ही छिपा रहता है। किसी के पास जाकर माँगने से, हाथ जोडने से, प्रार्थना करने से नहीं मिलता। इससे कोई ऐसा न समझ ले कि वे बहुत अहंकारी व्यक्ति रहे होंगे। क्योंकि साधारणतः हमारा ख्याल यह है कि जो किसी के प्रति सिर नही झुकाता, किसी के चरणो में नहीं बैठता, किसी को आदर नहीं देता, किसी को सम्मान नही देता, वह आदमी बडा अहंकारी है। जो आदमी किसी को सम्मान नहीं देता, जो आदमी किसी को आदर नही देता, वह आदमी किसी से आदर माँगता है, किसी से

सम्मान माँगता हूँ तो अहंकार की खबर मिलती है। लेकिन जो आदमी न आदर देता, न माँगता उसे कैसे अहंकारी कहेंगे? जो न गुरु बनाता, न, बनता, जो न शास्त्र मानता, न रचता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे? तो महावीर अत्यन्त विनम्र व्यक्ति हैं; सीधी खोज पर अपना सीधा रास्ता खोज रहे हैं। किसी को साथ नही लेना चाहते। कोई साथ हो भी नही सकता। अकेले के रास्ते हैं, अकेले की यात्राए हैं।

प्लुटिनस ने एक किताब लिखी है और उस किताब में कहा है: बहुत सी यात्राएँ थी जो सबके साथ हुई, बहुत सी खोजें थी जिनमें मित्र थे, बहुत सी सम्पत्ति थी जिसमें साथी-सहयोगी थे। फिर एक ऐसी खोज आई, जहाँ न मित्र थे, न संगी था, न कोई साथी था। अकेले की उड़ान थी अकेले की तरफ। बीच में कोई न था। जरा भी बीच में ले लेते तो बस भटकन शुरू हो जाती क्योंकि उडान थी अकेले की अकेले की तरफ। इसलिए महावीर बहुत सचेत हैं। महावीर को प्रेम करने वाले, बुद्ध को प्रेम करने वाले, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले लोग भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। तब दुनिया में विशुद्ध धर्म होता, कोई जैन न होता, हिन्दू न होता, मुसलमान न होता, ईसाई न होता। क्योंकि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन गुरुओ से बधी हुई धारणा से पैदा होते हैं। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाए तो दुनिया में आदमियत होगी, धर्म होगा लेकिन पंथ न होगे। और तब सारी वसीयत हमारी हो जाएगी। आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नही मालूम पड़ते क्योंकि कुछ दूसरे लोगों ने उन्हें अपना बना रखा है। और जब कुछ लोग किसी को अपना बना लेते हैं तो शेष लोगों के लिए वह पराया हो जाता है। आज क्राइस्ट जैनियों के लिए अपने नही मालूम पडते क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग किसी बडे सत्य को अपना बनाने का दावा करते हैं, वे शेष मनुष्य जाति को वंचित कर देते हैं उस सत्य की सम्पदा से, उसकी वसीयत से।

अगर गुरु के आस-पास पागलपन पैदा न हों, श्रद्धा पैदा न हो, अन्धभक्ति पैदा न हो, तो सम्प्रदाय विदा हो जाए। तब क्राइस्ट भी हमारे हों, मुहम्मद भी हमारे हों, बुद्ध भी हमारे हों, सारी दुनिया की समस्त जागृत चेतनाएँ भी हमारी हों और तब हम इतने समृद्ध हों जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन हम दरिद्र हैं, और हम दरिद्र अपने हाथो से हैं। महावीर ने दरिद्र होना नही चाहा इसलिए उन्होंने किसी को नही पकडा। जो किसी को पकड़ेगा,

वह दरिद्र हो जाएगा। वह पूर्ण समृद्ध हो गए क्योंकि सब कुछ उनका था। ऐसा कुछ भी न था जिसका निषेध करना है, ऐसा भी कुछ न था जिसको पकड़ना है। जो एक को पकड़ेगा वह दूसरे को छोड़ने की जिद्द करेगा। महावीर समय के प्रति समर्पित व्यक्ति है, कोई गुरु नही, कोई शास्त्र नही, कोई मान्यता नही।

प्रश्न : महावीर की उन शर्तों का क्या अभिप्राय है कि ऐसा कोई खास व्यक्ति होगा तो ही भिक्षा लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा !

उत्तर : जैसा मैंने कहा कि खोज पूरी हो चुकी थी पहले ही जन्म में। इस जन्म में वह सिर्फ बाँटने आए हैं। इसलिए उन्होंने यह प्रयोग किया कि अगर मैं बाँटने ही आया हूँ और मेरा स्वार्थ नही है तो अगर विश्वसत्ता मुझे भोजन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहें तो मैं भोजन भी क्यो लूँ। अगर विश्व-सत्ता मुझे जीवन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे को मेरे जीवन का भी क्या अर्थ है ? अब महावीर का कोई निजी स्वार्थ नहीं है। उनमें जिजीविषा नहीं है। इसलिए उन्होंने अनूठे काम किए हैं। भोजन लेने निकलते तो वह अपने मन में संकल्प बना लेते कि आज मैं ऐसे घर में भोजन लूँगा जिस घर के सामने दो गाएँ लड़ती हों। गायो का रंग काला हो, स्त्री खड़ी हो, उसका एक पैर बाहर हो, दूसरा पैर भीतर हो, आँख से आँसू बहते हों, होठों पर हँसी हो। वह एक ऐसी धारणा बना लेते सुबह, और तब वह भिक्षा माँगने निकलते। अगर यह धारणा पूरी हो जाती कही तो वह भिक्षा ले लेते, नही तो वह वापस लौट आते। इसका मतलब बहुत गहरा है। महावीर कह रहे हैं कि अगर अब विश्व की समग्र सत्ता की इच्छा हो तो ही मैं जीता हूँ, अपनी तरफ से मैं जीता ही नहीं। अगर भोजन देना हो तो ठीक, नही तो मैं माँगने नही जा रहा हूँ। कोई मुझे दे रहा है इसलिए भी मैं नही लूँगा। अब मैं किसी का अनुग्रह भी नही मान रहा हूँ। अगर जगत् की पूर्ण सत्ता ही मुझे भोजन देना चाहती हो तो ठीक, अन्यथा मैं वापस लौट आता हूँ। लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि विश्व की सत्ता ने मुझे भोजन दिया। तो मैं एक शर्त बना लेता हूँ। वह शर्त विश्व की सत्ता पूरी कर दे तो मैं समझूँ कि भोजन उससे आया। मैं देने वाले को धन्यवाद नही दूँगा क्योंकि देने वाले का कोई सवाल ही न रहा। न मैं अनुगृहीत हूँ किसी का।

और गहरी बात यह है कि जो व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हुआ लौट आया है उसके लिए कर्म जैसी कोई चीज नहीं। कर्म होता है इच्छा से और कर्म का

जन्म होता है आकांक्षा से। महावीर कहते हैं कि मैं यह भी इच्छा नहीं करता कि भोजन मुझे मिलना ही चाहिए। मैं यह भी विश्व की सत्ता पर छोड़ देता हूँ। यह पूरे के प्रति समर्पण है। अगर पूरी हवाएँ, पहाड़, पत्थर, मानवीय चेतना, पशु, देवी-देवता जो भी हैं, अगर उस पूरे की आकांक्षा है कि महावीर एक दिन और जी जाएं तो इन्तजाम करो, अन्यथा अपना कोई इन्तजाम नहीं। मैं इसलिए शर्त लगा देता हूँ क्योंकि मुझे पता कैसे चलेगा कि किसी एक व्यक्ति ने मुझे भोजन दिया या पूरे जगत् के अस्तित्व ने मुझे भोजन दिया। तो महावीर बड़ी पेचीदा शर्त लगाते हैं जिसका पूरा होना मुश्किल मालूम होता है कि अब एक स्त्री एक पैर बाहर किए हो, दूसरा पैर भीतर किए हो। राजकुमारी हो, हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी हों, आँख से आँसू गिरते हों, मुँह से हँसी आती हो। ऐसा किसी द्वार पर कोई मिल जाए तो उस द्वार पर ही मैं भोजन कर लूँगा। फिर जरूरी नहीं कि उस द्वार पर भोजन देनेवाला हो। ऐसा द्वार मिल जाए आज, यह भी जरूरी नहीं। ऐसी स्थिति बने, यह भी जरूरी नहीं। महावीर बिल्कुल ही अनहोनी की कल्पना करके घर से निकलते हैं, अपनी भिक्षा के लिए निकलते हैं। यह अनहोनी अगर पूरी हो जाए तो महावीर अपने मन में समझ लेते हैं कि विश्व की सत्ता ने एक दिन जीने के लिए और दिया है। यानी मैं अपनी तरफ से, अपनी जिद् से नहीं टिका हूँ। जरूरत है अस्तित्व को तो मैं आ रहा हूँ। नहीं तो मैं एक दिन भी जीने की इच्छा नहीं करता। अपनी ओर से जीने का कोई अर्थ नहीं है।

ऐसा प्रयोग कभी किसी ने नहीं किया है जगत् में। बहुत अनूठा है यह प्रयोग। आज भी जैन मुनि ऐसा करते हैं लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं : ऐसा-ऐसा कर लेना या वे श्रावकों को बता देते हैं। और कुछ बँधे हुए इन्तजाम कर रखे हैं उन्होंने। एक घर के सामने दो केले लटके हैं तो वहाँ वे भोजन ले लेंगे। दस-पाँच घरों में लोग अपने घर के सामने केला लटका देते हैं। एक, दो स्त्रियाँ बच्चे को लेकर खड़ी हो जाती हैं। ऐसे दस-पाँच बँधे हुए नियम हैं उनके। वे बँधे हुए नियम दस घरों में पूरे कर दिए जाते हैं। यह अब भी चलता है। जैन मुनि वैसा ही करता है रोज भोजन लेने के पहले। पच्चीस चौके सज जाते हैं, पच्चीस चौकों के सामने वह घूमता है। पच्चीस चौकों में उसकी बात पूरी हो जाती है। लेकिन महावीर ने जो प्रयोग किया वह बहुत ही अनूठा था। वह ऐसी धारणा लेकर चलते थे कि जिसमें उपाय कम ही था कि वह अपने आप घट जाए जब तक कि विश्वसत्ता राजी न हो।

महावीर एक-एक दिन जी रहे हैं, अपने लिए नहीं, अगर जरूरत है परमात्मा को तो ही। और उनका पूरा जीवन इस बात का प्रमाण है कि विश्वसत्ता को जिस व्यक्ति की जरूरत है, वह उसके लिए आयोजित करती है। जिसकी स्वांस से, जिसके होने से, जिसके जीने से, जिसकी आँख से, जिसके चलने से कुछ घटित हो रहा है, जोकि कल्प-कल्प बीत जाए तो दुबारा घटित मुश्किल से होता है विश्वसत्ता को जरूरत है उसके अस्तित्व की तो वह उसके लिए आयोजन करती है। तो एक-एक दिन के लिए महावीर जी रहे हैं। ऐसा भी नहीं है कि इकट्ठा एक दिन तय कर लिया तो बारह साल के लिए काफी हो गया। इस आदमी को अपनी ओर से - जीने का कोई मोह नहीं रह गया। बहुत कीमती है यह बात कि कोई व्यक्ति चाहे तो बराबर वैसा जी सकता है लेकिन तभी जब उसे अपने जीवन का मोह विदा हो गया हो। तब पूरा अस्तित्व उसके प्रति मोहपूर्ण हो जाता है। और उसे बनाने के उपाय करने लगता है, और उसके ढंग की, बेढंग की शर्तें भी स्वीकार करने लगता है। फिर वह क्या कहता है क्या नहीं कहता, कैसा उठता है कैसा बैठता है सबको स्वीकृति हो जाती है। सारा जगत् एक गहरे प्रेम से उसे घेर लेता है और उसके लिए जो भी किया जा सके, करने लगता है।

बुद्ध के गृहत्याग की कथा प्रचलित है। बुद्ध घर से चले आधी रात को। उनके घोड़े के पैरों की टाप ऐसी है कि वह बारह कोस तक सुनी जाती है। बुद्ध उस घोड़े पर सवार होकर चले हैं। घोड़े की टाप इतनी होगी कि सारा महल जग जाए। कहानी कहती है कि घोड़े के टाप के नीचे देवता फूल रखते चले जाते हैं। टाप फूलों पर पड़ती है ताकि गाँव में कोई जग न जाए। क्योंकि बहुत कल्पों के बाद ही कभी कोई व्यक्ति महाअभिनिष्क्रमण करता है। जब वे नगर के द्वार पर पहुँचते हैं तो बड़ी-बड़ी कीलें हैं वहाँ जिन्हें पागल हाथी भी धक्के मारे तो खुल नहीं सकती। और जब द्वार खुलते हैं तो उनकी इतनी आवाज होती है कि पूरा नगर सुनता है मगर जब बुद्ध वहाँ पहुँचते हैं तो देवता द्वार को ऐसा खोल देते हैं जैसे वह बन्द हो न था। यह सारी कहानियाँ निर्मित हैं। लेकिन साथ-साथ ही ये इस बात की भी सूचक हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत्, सारा अस्तित्व सुविधा देने लगता है क्योंकि इस सारे जगत् को, इस सारे अस्तित्व को इस आदमी की जरूरत है। मगर हम सबके लिए अस्तित्व की आवश्यकता रहती है। श्वांस चले इसलिए हवा की जरूरत है, प्यास बुझे इसलिए पानी की जरूरत है, गर्मी मिले इसलिए सूरज की

जरूरत है। सारे अस्तित्व की हमें जरूरत है अपने लिए। लेकिन कभी-कभी ऐसा व्यक्ति भी पैदा हो जाता है जिसके लिए अस्तित्व को उसकी जरूरत है कि वह हो जाए तो थोडी देर रह जाए, और उसके लिए कोई असुविधा न हो। और महावीर इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अगर हमें जिन्दा रखना हो तो आज ऐसा इन्तजाम हो जाए, नहीं तो हम वापस लौट जाएँगे। न कोई शिकायत है पीछे लौटने से, न कोई नाराजगी है। इतनी ही खबर जरूर है कि अस्तित्व कहता है अब तुम्हारी जरूरत नहीं। वह हम स्वीकार कर लेंगे और विदा हो जाएँगे। इस वजह से वे वैसा भाव लेकर चलते हैं। लेकिन उसको नही समझा जा सका। ऐसा आदमी चुनौती दे रहा है विश्वसत्ता को कि रखना हो तो रखो अन्यथा हम जाते हैं।

प्रश्न : महावीर को पारिवारिक या सामाजिक कौन-सा असंतोष था? क्या उनका गृहत्याग जवाबदारियों से पलायन नहीं है?

उत्तर : पहली बात यह है कि महावीर को न तो कोई पारिवारिक असंतोष था, और न कोई सामाजिक असंतोष था। इस जन्म में तो कोई व्यक्तिगत असतोष भी नही था। आम तौर से तीन तरह के असंतोष होते हैं। पारिवारिक असतोष, सामाजिक असतोष या वैयक्तिक असंतोष। पारिवारिक असंतोष आर्थिक हो सकता है, विवाह-दाम्पत्य का हो सकता है, शरीर की सुविधा-असुविधा का हो सकता है। वैसा असंतोष जिसे है वह आदमी कभी धार्मिक नही हो सकता। क्योंकि वैसा आदमी उस असतोष को मिटाने में लगा रहता है। वैसा आदमी अत्यधिक भौतिक होता है। फिर सामाजिक असंतोष है। व्यवस्था है, समाज की नीति है, नियम है, शोषण है, धन है, राज्य है, सम्पत्ति है, वितरण है। यह सब है। ऐसा असंतोष भी होता है। ऐसा सामाजिक, क्रान्तिकारी, सुधारक व्यक्ति भी धार्मिक नही होता। धार्मिक होता है वह व्यक्ति जिसके असंतोष का न समाज से कोई सम्बन्ध है, न परिवार से कोई सम्बन्ध है, न सम्पत्ति से कोई सम्बन्ध है, न शरीर से कोई सम्बन्ध है, जिसके असतोष का एक ही अर्थ है कि मेरा होना मात्र अभी ऐसा नहीं है कि जिससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊँ, जिसकी आखिरी चिन्ता इस बात की है कि मैं जैसा हूँ क्या ऐसा ही होना काफी है, पर्याप्त है? अगर हिंसक हूँ तो हिंसक होना ही काफी है, पर्याप्त है? अगर क्रोधी हूँ तो क्रोधित होना ही काफी है? अशान्त हूँ तो अशान्त होना ही ठीक है? दुःखी हूँ, अज्ञानी हूँ, सत्य का कोई पता नहीं, प्रेम का कोई अनुभव नहीं, क्या ऐसा होना ही काफी है? एक ऐसा असन्तोष

है जो इस भीतरी जगत् से उठता है जहाँ व्यक्ति कहता है कि जहाँ अज्ञान नहीं, अंधकार नही, दु:ख नही, अशांति नहीं, क्रोध नही, घृणा नही, द्वेष नहीं, मैं ऐसा जीवन चाहता हूँ। इस आन्तरिक असंतोष से धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है। इस जीवन में महावीर को यह असंतोष भी नही है क्योकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म हो चुका है लेकिन पिछले जन्मों में जो उनका नितान्त असंतोष है वह आध्यात्मिक है; वह सामाजिक या पारिवारिक नहीं है।

आध्यात्मिक असन्तोष बहुत कीमती चीज है और वह जिसमें नही है वह व्यक्ति कभी उस यात्रा पर जाएगा ही नही जहाँ आध्यात्मिक संतोष उपलब्ध हो जाए। **जिस असन्तोष से हम गुजरते हैं उसी तल का सन्तोष हमें उपलब्ध हो सकता है।** अगर धन का असन्तोष है तो ज्यादा से ज्यादा धन मिलने का सन्तोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बड़े मजे की बात है कि **जिस तल पर हमारा असन्तोष होगा उसी तल पर हमारा जीवन होगा।** प्रत्येक व्यक्ति को खोज लेना चाहिए कि मैं किस बात से असन्तुष्ट हूँ तो उसे पता चल जाएगा कि वह किस तल पर जी रहा है। अब यह हो सकता है कि एक आदमी महल में जी रहा है, विलास में, भोग में। और एक आदमी लंगोटी बाँध कर संन्यासी की तरह खड़ा है—नंगा, धूप में, सर्दी में, वर्षा में। इससे कुछ पता नही चलता कि कौन धार्मिक है। पता चलेगा यह जानकर कि इस व्यक्ति के भीतर असंतोष क्या है। हो सकता है कि महल में जो व्यक्ति है उसके मन में यह असन्तोष हो कि यह महल किस मतलब का है, यह धन किस मतलब का है। और उसे यह असन्तोष पकड़े हुए है कि मैं उसे कैसे पाऊँ जो मेरा स्वरूप है, जो मेरा अन्तिम आनन्द है। सोता है महल में लेकिन उसका असन्तोष उस तल पर चल रहा है। तो वह व्यक्ति आध्यात्मिक है, धार्मिक है। पर एक आदमी लगोटी बाँधे सड़क पर खड़ा है, मन्दिर में प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है। लेकिन प्रार्थना में माँग कर रहा है कि आज अच्छा भोजन मिल जाए, ठहरने को अच्छी जगह मिल जाए, इज्जत मिल जाए, अनुयायी मिल जाएँ, भक्त मिल जाएँ, आश्रम मिल जाए। अगर वह इसी तरह की प्रार्थना मन्दिर में भी कर रहा है तो वह धार्मिक नहीं है। हमारा असन्तोष ही हमारी खबर देता है कि हम क्या हैं?

महावीर इस जीवन में किसी असन्तोष में नही लेकिन पिछले सारे जन्मों में उनके असन्तोष की एक लम्बी यात्रा है। वह निरन्तर यही है कि मेरा अस्तित्व, मेरा सत्य, मेरी वह स्थिति जहाँ मैं परम मुक्त हो जाऊँ, न

कोई सीमा रहे, न कोई बंधन रहे, वह कहाँ है ? वह कैसे मिले, उसकी खोज जारी है। ऐसी खोज वाला व्यक्ति भी दूसरों के पारिवारिक असन्तोष को मिटाने के लिए उत्सुक हो सकता है, दूसरों के सामाजिक असन्तोष को मिटाने के लिए भी उत्सुक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति निपट सन्त भी रह सकता है, क्रान्तिकारी भी बन सकता है, सुधारक भी बन सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति की स्वयं की चिन्ता इन तलों पर नहीं है। उसकी चिन्ता एक अलग ही तल पर है। और बहुत कम लोग हैं जिनके जीवन में आध्यात्मिक असन्तोष होता है। अगर हम, लोगों के सिर खोल कर देख सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएँगे। उनके असन्तोष बहुत ही नीचे तल के होते हैं और जिस तरह के असंतोष होते हैं उस तल पर व्यक्ति होता है।

नीत्से ने कहा है कि अभागा होगा वह दिन जिस दिन आदमी अपने से सन्तुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन जिस दिन मनुष्य की आकाक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त और किन्ही तारों की ओर न मुडेगा। हम सबकी आकाक्षाओं के तीर पृथ्वी से भिन्न कही भी नही जाते। हम सब चीजों से अतृप्त होते हैं, सिर्फ अपने को छोड़कर। एक आदमी मकान से अतृप्त होगा कि मकान ठीक नही, दूसरा बडा मकान बनाऊँ। एक आदमी अतृप्त होगा कि पत्नी ठीक नही है दूसरी पत्नी चाहिए, बेटा ठीक नही है दूसरा बेटा चाहिए, कपडे ठीक नही हैं दूसरे कपडे चाहिए। लेकिन अगर हम खोजने जाएँ तो ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है जो न मकान से अतृप्त है, न कपडों से, न पत्नी से, न बेटों से, जो अपने से अतृप्त है। और जो कहता है कि मैं स्वय ठीक नही हूँ, मुझे और तरह का आदमी होना चाहिए। जब आदमी अपने प्रति ही असन्तुष्ट हो जाता है तब उसके जीवन मे धर्म की यात्रा शुरू होती है। महावीर जरूर असन्तुष्ट रहे। वही यात्रा उन्हें वहाँ तक लाई है जहाँ तृप्ति और सन्तोष उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस दिन व्यक्ति अपने को रूपान्तरित करके उसे पा लेता है जो वह वस्तुत: है उस दिन परम तृप्ति का क्षण आ जाता है। उसके बाद फिर कोई अतृप्ति नही। अगर वह फिर जीता है एक क्षण भी तो वह दूसरों के लिए ताकि वह उन्हें तृप्ति के मार्ग को दिशा दे सके, पर उसकी अपनी यात्रा समाप्त हो जाती है।

आपने पूछा है कि क्या उनका गृहत्याग दायित्व से पलायन नही है। मेरा कहना है कि महावीर ने कभी गृहत्याग किया ही नहीं। गृहत्याग वे लोग करते है जिन्हें गृह के साथ आसक्ति होती है। महावीर ने तो वही छोडा है जो

घर नहीं था। हमें यह ख्याल में आना जरा मुश्किल होता है क्योंकि हम मिट्टी, पत्थर के घरों को घर समझे हुए हैं। इसलिए गृहत्याग का शब्द ही भ्रान्त है। असल मे महावीर घर की खोज मे निकले हैं। जो घर नही था उसे छोड़ा है और जो घर है उसकी खोज में गए हैं। और हम जो घर नही है, उसे पकड़े बैठे हैं और जो घर हो सकता है उसकी ओर आँख बन्द किये हुए हैं। हम पलायनवादी हैं। पलायन का क्या मतलब होता है? एक आदमी कंकड़-पत्थर छोड दे और हीरों की खोज पर निकल जाए। पलायनवादी कौन है? क्या आनन्द की खोज पलायन है? क्या ज्ञान की खोज पलायन है? क्या परम जीवन की खोज पलायन है? तो महावीर ने कोई गृहत्याग नही किया। वह गृह की खोज में ही गए हैं।

आमतौर से आदमी सोचता है कि जो आदमी जिम्मेदारी से भागता है वह पलायनवादी है। लेकिन क्या पक्का पता है कि यही जिम्मेदारी है? महावीर जैसा आदमी दूकान पर बैठकर दूकान चलाता है, क्या यही दायित्व होगा उनका जगत् के प्रति, जीवन के प्रति? महावीर जैसा व्यक्ति घर में बैठ कर बाल-बच्चों को बड़ा करता रहे, क्या यही दायित्व होगा उसका? महावीर जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के क्षुद्रतम घेरे में खड़े होकर सब खो देने से अधिक दायित्वहीनता और क्या हो सकती है। बड़े दायित्व जब पुकारते हैं छोटे दायित्व तब छोड़ देने पड़ते हैं। बड़े दायित्व की पुकार चूँकि हमारे जीवन में नही है, इसलिए हमें देखकर बड़ी मुश्किल होती है कि वह आदमी जिम्मेदारियाँ छोडकर जा रहा है। वह आदमी कितनी बडी जिम्मेदारियाँ ले रहा है, यह हमारे ख्याल मे नहीं आता। आदमी एक घर को छोड़ता है तो करोड़ों घर उसके हो जाते हैं। घर के आँगन को छोड़ता है तो सारा आकाश उसका आँगन हो जाता है। पत्नी को, बेटे को, प्रियजन को छोड़ता है तो सारा जगत् उसका प्रियजन, और मित्र हो जाता है। लेकिन हमने हमेशा उसने जो छोडा है, उन भाषा में सोचा है। जिस विस्तार पर वह फैला है, वह हमने नही सोचा। और जो उस एक घर को छोडकर गया, उसे भी छोडकर कहाँ गया?

बुद्ध के जीवन में एक मधुर घटना है। बुद्ध लौटे हैं घर बारह वर्ष बाद। पत्नी नाराज है। बुद्ध का बेटा एक दिन का था जब वह घर छोड़कर चले गये थे। वह अब बारह वर्ष का हो गया है। पत्नी उसे सामने कर देती है व्यंग्य में, मजाक में और कहती है कि यह तुम्हारे पिता हैं, पहचान लो। पूछ लो तुम्हारे लिए क्या कमाई उन्होंने छोडी है, तुम्हारा दायित्व क्या निभाया है? यही रहे तुम्हारे

पिता। यह जो भिक्षापात्र लिए खड़े हैं यही सज्जन तुम्हें जन्म देकर एक ही रात बाद भाग गये थे। इन्होंने जगाकर भी मुझे नहीं कहा था कि मैं जाता हूँ। अपने दाय का भाग माँग लो। यह तुम्हारे पिता हैं।

भिक्षु यह सुनकर सन्नाटे में आ गये। आनन्द घबड़ाने लगा कि इस पागल को पता नहीं किससे क्या कह रही है? तब बुद्ध ने आनन्दित होकर राहुल से कहा कि बेटा निश्चिन्त हो मैं तेरा पिता हूँ। हाथ फैला कि जो सम्पत्ति मैंने तेरे लिए इकट्ठी की वह तुझे दे दूँ। बुद्ध का हाथ तो खाली है तो भी राहुल ने हाथ फैला दिया है। बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथ में दे दिया और कहा कि तू दीक्षित हुआ। क्योंकि बुद्ध जैसा पिता तुझे ऐसी ही सम्पदा दे सकता है जो तुझे भी बुद्ध बना दे। मैं तो बहुत दिन भटका, अब तुझे क्यों भटकाऊँ? यशोधरा रोने लगी है। लोग चिल्लाने लगे हैं कि यह क्या पागलपन हो रहा है? एक बेटा छोड़कर गये थे उसे भी लिए जाते हैं। तो बुद्ध कहते हैं कि और भी जिसको चलना हो, उसको भी मैं ले जाने को तैयार हूँ। क्योंकि जो मैंने वहाँ पाया है, अपने बेटे को कैसे वंचित रखूँ उससे? जिन हीरों की खदान है वहाँ अपने बेटे को कैसे न ले जाऊँ?

हमें लगता है कि दायित्व छोड़कर बुद्ध भाग गये। लेकिन मैं कहता हूँ कि जैसा बुद्ध थे, वैसा ही रहकर क्या दायित्व पूरा कर लेते हैं? कितने बाप हुए हैं, कितने बेटे हुए हैं, किसने क्या दायित्व पूरा किया है? एक बाप जो कर सकता था ज्यादा से ज्यादा बेटे के लिए वह बुद्ध ने किया है और जो कुछ जाना था, जो कुछ पाया था उसके सामने खोल दिया है। शायद इस दायित्व को समझना हमें मुश्किल हो जाए। अपने दुःख के भार को दूसरे पर लादना ही हम दायित्व समझते हैं। अज्ञान की यात्रा को गति देना ही हम दायित्व समझते हैं।

पलायन वह करता है जो दुःखी हो। भागता वह है जो दुःखी हो, डरता हो, भयभीत हो, जिसे शक हो कि जीत न सकूँगा। ऐसा आदमी हमें भागता दिखता है। घर में आग लगी हो और एक आदमी घर के बाहर निकले उसे आप भागने वाला तो न कहेंगे। कोई यह तो नहीं कहेगा कि घर में आग लगी थी और यह आदमी बाहर निकल आया। कोई नहीं कहेगा कि यह पलायनवादी है क्योंकि वहाँ भागने का सवाल ही नहीं है। विवेक की बात है कि कोई बाहर हो जाए।

महावीर जैसे व्यक्ति जहाँ से भी हटते है, भागते नही—जहाँ, जहाँ आग है, हटते हैं। हटना एकदम विवेकपूर्ण है। और इसलिए भी हटते हैं कि जहाँ-जहाँ दु:ख जन्मता है, जहाँ-जहाँ दु ख बढता है और फैलता है, वहाँ खडे रहने का क्या प्रयोजन है ? वहाँ से वे हटते हैं सिर्फ इसलिए कि और बेहतर जगह है जहाँ आग नही है। जैसे कि आप बीमार पडे है, आप इलाज कराने चले जाएँ और डाक्टर आपसे कहे कि आप बड़े पलायनवादी हैं, बीमारी से भागते हैं। वह आदमी कहेगा कि मैं बीमारी से नही भागता। लेकिन बीमारी में खडे रहने में न तो कोई बुद्धिमत्ता है, न कोई अर्थ है। मैं स्वास्थ्य की खोज में जाता हूँ। हम बीमार आदमी को कभी नही कहते कि तुम डाक्टर के यहाँ मत जाओ। एक अंधेरे में खडा आदमी सूरज की तरफ आता है तो हम नही कहते कि तुम पलायनवादी हो। लेकिन हम महावीर जैसे लोगो को पलायनवादी कहना चाहते हैं। उसका कारण सिर्फ यह है कि अगर महावीर जैसे लोगो को सिद्ध कर देते हैं पलायनवादी तो हम जहाँ खडे हैं वहाँ से हटने की हमें जरूरत नही रह जाती। हम निश्चिन्त हो जाते है कि यह आदमी गडबड है, हम जहाँ खडे हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं। हम सब मिलकर तय कर दें कि यह आदमी सिर्फ भगोडा है और हम बहादुर लोग हैं। हम जिन्दगी में खडे हैं उस जिन्दगी में जहाँ जिन्दगी है ही नही। और बहादुरी क्या है ? और उस बहादुरी से हमें क्या उपलब्ध हो रहा है ?

जिन लोगो ने महावीर को 'महावीर' नाम दिया, उन लोगो ने महावीर को पलायनवादी नही समझा था। शायद कारण यह है कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहाँ से नही हट सकते हैं, वहाँ से महावीर अपने साहस की वजह से हट जाते हैं। लेकिन हम अपनी कमजोरी को भी छिपाते हैं, हम उसके लिए कोई न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं और कोई नही मानना चाहता कि हम कमजोर हैं। और तब हमारे बीच से अगर एक बहादुर आदमी हटता हो—बडी मुश्किल है हिम्मत जुटाना तो क्या वह पलायन है ? घर में आग लगी हो और घर में पचास आदमी हों और हर आदमी मानता ही न हो कि घर में आग लगी है तो जिस आदमी को आग लगी दिखाई पडती हो वह घर के बाहर निकलता हो तो लोग कहेंगे कि यह पलायनवादी है। हमने दुनिया के श्रेष्ठतम लोगों को सदा पलायनवादी कहा है।

स्टीफेन जूड ने आत्महत्या की। लेकिन आत्महत्या करने के पहले उसने एक पत्र मे लिखा कि ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं पलायनवादी हूँ।

और यह भी ध्यान रहे कि मैं कायर नही हूँ। बल्कि मेरा नतीजा तो यह है जिन्दगी भर का कि लोग चूंकि मरने की हिम्मत नही जुटा पाते, इसलिए जिन्दा रहे चले जाते हैं। मैं भी बहुत दिन तक हिम्मत नही जुटा पाया इसलिए जिन्दा रहा। इतना मुझे साफ दिखाई पड गया है कि इस तरह की जिन्दगी अगर रोज जीनी है तो मैं इसे तोड दूँ। और ध्यान रहे कि मैं तोडता हूँ तो सिर्फ इसलिए कि मैं हिम्मतवर हूँ और तुम नही तोडते हो क्योंकि तुम हिम्मतवर नही हो। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरे मरने के बाद लोग कहेंगे कि वह कायर था, पलायनवादी था, मर गया, भाग गया जिन्दगी से।

यह आदमी बहुत कीमती बात कह रहा है। यह उस जगह खडा है जहाँ से आदमी या तो आत्महत्या करता है, या आत्मसाधना में जाता है। यह उस जगह खडा है जहाँ जिन्दगी व्यर्थ हो गई है, वही रोज सुबह का उठना, वही रोज शाम सो जाना, वही काम, वही क्रोध, वही लोभ। वही सब रोज-रोज, एक मशीन की तरह हम घूमते चले जाते हैं। कोई उस जगह पहुँच गया है जहाँ वह कहता है कि अगर यही जिन्दगी है तो मैं खत्म करता हूँ अपने को। और ध्यान रहे कि मैं कायर नही। मेरा भी मानना है कि वह कायर नही। वह गल्ती करता है, वह चूक गया है एक बिन्दु को जिसको महावीर नही चूकते। तो महावीर उस जगह तक पहुँचते हैं जहाँ दुनिया के सभी लोग जिनको जिन्दगी में क्रान्ति घटित होती है, एक दिन पहुँचते हैं, जहाँ या तो आत्म-हत्या या साधना—दूसरा विकल्प नहीं रह जाता। या तो जैसे हम हैं उसको खत्म करो, शरीर से मिटा दो, या जैसे हम हैं, उसे बदलो आत्मिक अर्थों में ताकि हम दूसरे हो जाएँ। जो आत्महत्या कर लेता है वह कायर नही है। है तो बहादुर ही, लेकिन वह भूल से भरा है, क्योंकि आत्महत्या से क्या होगा? जीवन की आकाक्षा फिर नये जीवन बना देगी।

महावीर जैसे व्यक्ति आत्महत्या नहीं करते। आत्मा को ही रूपान्तरित करने में लग जाते हैं। आत्महत्या करने से क्या होगा? आत्मा को ही बदल डालें, नया जीवन कर लें लेकिन हमें दोनो ही भागे हुए लग सकते हैं। और इसके पीछे कारण भी है क्योंकि सौ में से निन्यानवें लोग निश्चित ही भागते हैं। सौ सन्यासियों में से निन्यानवे सन्यासी पलायनवादी ही होते हैं। और उन निन्यानवे के कारण सौ को यह मानना मुश्किल हो जाता है। निन्यानवें तो इसलिए भागते हैं कि बीमारी है, झगडा है, पत्नी मर गई है, दिवाला निकल गया है। कुछ ऐसे कारण हैं जो उन्हें कहते हैं कि इस झंझट से दूर हो जाओ।

लेकिन ऐसे आदमी अगर झंझट से भागते हैं तो नई झंझटें खड़ी कर लेते हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आदमी वही का वही रहा। वह नई झंझटें निर्मित कर लेता है। ऐसा आदमी पलायनवादी कहा जा सकता है। लेकिन महावीर ऐसे पलायनवादी नहीं हैं। क्योंकि वह कोई नई झंझट खड़ी नहीं कर रहे हैं। और किसी भय से नहीं भाग रहे हैं।

अगर कोई आदमी किसी ज्ञानपूर्ण चेतना में सीढी बदल देता है, दूसरी सीढ़ी पर चला जाता है तो यह पलायन नहीं है। अगर कोई आदमी भाग रहा हो किसी से डर कर तो एक बात, और एक आदमी भाग रहा हो कुछ पाने के लिए तो वह बिल्कुल दूसरी बात। वह आदमी भी भाग रहा है जिसके पीछे बन्दूक लगी हो और वह आदमी भी दौडता है जिसको हीरों की खदान दिखाई पड गई है। लेकिन एक के पीछे बन्दूक का भय है, इसलिए भागता है, एक को हीरों की खदान दिख गई है, इसलिए भागता है। दूसरे आदमी को आप भागने वाला नहीं कह सकते, उसे गतिवान् कह सकते हैं, क्योंकि वह किसी चीज से भाग नहीं रहा है। उसकी दृष्टि का जोर है जहाँ वह जा रहा है, जहाँ से वह जा रहा है वहाँ नहीं। दोनों हालतों में वह जगह छूट जाती है। लेकिन दोनों हालतों में बुनियादी फर्क है। महावीर कहीं से भी भागे हुए नहीं हैं लेकिन निन्यानवे भागे हुए संन्यासियों में से एक गया हुआ संन्यासी पहचानना मुश्किल हो जाता है। और वह मुश्किल हमारी समझ में ऐसी बाधाएँ खड़ी कर देती है कि उसके दो ही रास्ते हैं। या तो हम उन संन्यासियों को गया हुआ मान लेते हैं, और या हम उन्हें भागा हुआ मान लेते हैं। जबकि जरूरत इस बात की है कि हम जांच-पड़ताल करें कि कोई आदमी पाने गया है, या कोई आदमी सिर्फ छोडकर भागा है।

पाने गया हो तो जरूर कुछ चीजें छूट जाती हैं। आप सीढियाँ चढ रहे हैं। दूसरी सीढी पर पैर रखते हैं, पहली सीढी छूट जाती है, पहली सीढी से आप भागते नहीं, सिर्फ पहली सीढी छूटती है क्योंकि दूसरे सीढी पर पैर रखना जरूरी है। जो लोग ऊँची सीढ़ियों पर पैर रखते हैं, नीची सीढियाँ छूट जाती हैं। नीची सीढ़ियों से जो डरता है वह ऊँची सीढी पर नहीं पहुँच पाता, वह नीचे की सीढियों पर उतर आता है क्योंकि वह डरा हुआ है। उसका भागना सिर्फ उसे और नीचे की सीढ़ियों पर ले जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक गृहस्थ भाग कर संन्यासी हो जाए तो वह महागृहस्थ हो जाता है। उसकी चाल गृहस्थी की चाल से और भी ज्यादा पारखण्डी हो जाती है।

वह फिर भी पैसा इकट्ठा करता है। कल वह कमा कर इकट्ठा करता था, आज वह कमाने वालो को फँसा कर इकट्ठा करता है। अब उसका जाल जरा गहरा सूक्ष्म, चालाकी का हो जाता है। कल भी वह मकान बनाता था, अब भी बनाता है। कल बनाए हुए मकानो को मकान कहता था, अब उनको आश्रम, मन्दिर ऐसे नाम देता है। कल जो कहता था, वही अब करता है। कल भी अदालत में लडता था, अब भी अदालत में लडता है। लडने का आधार कल व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, आज आश्रम की सम्पत्ति है। भागा हुआ व्यक्ति नीची सीढियो पर उतर जाता है। लेकिन ऊपर की सीढी पर जो जाएगा उसकी भी सीढी टूटती है। यह बारीक है पहचान और यह हमें समझ में तब आएगी जब हम अपनी जिन्दगी में इसकी पहचान करे कि हम कही से भागे है, या कही गए है।

यहाँ आप सब मित्र आए हैं। कोई आ भी सकता है, कोई भागा हुआ भी आ सकता है। एक आदमी बेचैन हो गया है, परेशान हो गया है, पत्नी सिर खाए जाती है, दफ्तर में मुश्किल है, काम ठीक नही चलता, चलो पन्द्रह दिन के लिए सब भूल जाओ। ऐसा भी आदमी आ सकता है। वह भागा हुआ दिखाई पडेगा और वह बच नही सकता क्योकि जिससे वह भागा है वह उसका पीछा करेगा। वह सब भय, वे सब चिन्ताएँ इस पहाड पर भी उसे घेरे रहेंगी। हाँ, थोडी देर के लिए बातचीत में भूल जाएगा लेकिन लौट कर फिर सब पकड़ लेगा। और पन्द्रह दिन पहले जिस उलझन से वह भाग आया था, वह उलझन पन्द्रह दिन में कम नही होने वाली है, पन्द्रह दिन में और बढ़ गई होगी। पन्द्रह दिन बाद वह फिर उसी उलझन में खडा हो जायगा, दुगुनी परेशानी लेकर वहीं पहुँच जाएगा। लेकिन कोई आदमी आया हुआ भी हो सकता है, कही से भागा हुआ नही है। वह कहीं कोई ऐसी बात न थी जिससे वह भाग रहा है बल्कि कही कुछ पाने जैसा लगा है, इसलिए चला आया है। यह आदमी आ सकेगा सच में और आकर पीछे को सब भूल जाएगा क्योंकि कही से आया है, कही से भागा नहीं है। और यहां से लौटकर दूसरा आदमी होकर भी जा सकता है। और आदमी बदल जाए तो सारी परिस्थितियां बदल जाती हैं। मैं महावीर को पलायनवादी नही कहता हूँ।

१५

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक २५ सितम्बर, १९६९

प्रश्न : महावीर ने न नियन्ता को स्वीकार किया है, न समर्पण को, न गुरु को, न शास्त्र को, न परम्परा को। तो क्या यह महावीर का घोर अहंकार नहीं था ? क्या महावीर अहंवादी नहीं थे ?

उत्तर : यह प्रश्न स्वाभाविक है और जो व्यक्ति नियन्ता को स्वीकार करता है, नियन्ता के प्रति समर्पण करता है, गुरु को स्वीकार करता है, गुरु के प्रति समर्पण करता है, शास्त्र परम्परा के प्रति झुकता है, वह साधारणत हमें विनम्र, विनीत, निरहंकारी मालूम पड़ेगा ? इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना जरूरी है। पहली बात यह है कि परमात्मा के प्रति झुकने वाला भी अहंकारी हो सकता है। और यह अहंकार की चरम घोषणा हो सकती है उसकी कि मैं परमात्मा से एक हो गया हूँ। 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा अहंकार की चरम घोषणा है। यानी मैं साधारण आदमी होने को राजी नहीं हूँ। मैं परमात्मा होने की घोषणा के बिना राजी ही नहीं हो सकता हूँ। नीत्से ने कहा है कि यदि ईश्वर है तो फिर एक ही उपाय है कि मैं ईश्वर हूँ। और यदि ईश्वर नहीं है तो बात चल सकती है। ईश्वर के प्रति समर्पण भी ईश्वर होने की अहम्मन्यता से पैदा हो सकता है।

दूसरी बात यह कि समर्पण में अहंकार सदा मौजूद है, समर्पण करने वाला मौजूद है। समर्पण कृत्य ही अहंकार का है। एक आदमी कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है। यहाँ हमें लगता है कि परमात्मा ऊपर हो गया है और यह नीचे। यह हमारी भूल है। समर्पण करने वाला भी नीचा नहीं हो सकता क्योंकि कल चाहे तो समर्पण वापस लौट सकता है। कल कहता है कि अब मैं समर्पण नहीं करता हूँ। असल में कर्ता कैसे नीचे

हो सकता है ? समर्पण में भी कर्ता सदा ऊपर है। वह कहता है मैंने समर्पण किया है परमात्मा के प्रति। और अगर मैं नही हूँ तो समर्पण कोई कैसे करेगा, किसके प्रति करेगा। इसे समझ लें तो महावीर की स्थिति समझ में आ सकती है। महावीर नितान्त ही निरहकार हैं। यानी उतना भी अहंकार नही है कि 'मैं' समर्पण करूँ। वह 'मैं' तो चाहिए समर्पण के लिए। वह समर्पण कराने का कर्त्तव्यभाव चाहिए। और जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति समर्पण करता है, वह समर्पण मागता है। यह मांग एक ही सिक्के का हिस्सा है दूसरा। लेकिन महावीर ने समर्पण किया भी नही, मांगा भी नही। मेरी दृष्टि में यह परम निरहंकारिता हो सकती है। यानी समर्पण करने योग्य भी तो निरहकार चाहिए। आखिर मैं ही समर्पित होऊँगा, नियन्ता को मैं ही स्वीकृत करूँगा।

महावीर के अस्वीकार में ऐसा नहीं है कि 'नियन्ता' नही है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि स्वीकार नही है। 'अस्वीकार' पर जोर नहीं है। महावीर सिद्ध करते नहीं, घूम रहे हैं कि परमात्मा नही है, ईश्वर नही है। उनके अस्वीकार का कुल मतलब इतना है कि वह सिद्ध करते नही, घूम रहे हैं कि ईश्वर है, नियन्ता है। अस्वीकार फलित है, अस्वीकार घोषणा नही। वह सिर्फ स्वीकृति की बात नही कर रहे, न समपण की बात कर रहे हैं। न वे यह कह रहे है कि कोई गुरु नही है, कोई शास्त्र नही है। वह यह भी नहीं कह रहे हैं कि वे गुरु के प्रति समर्पित नही हैं, शास्त्र के प्रति समर्पित नहीं है। यह फलित है जो हमें दिखाई पडता है कि वे समर्पित नही हैं। लेकिन समर्पण के लिए भी अहकार चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नितान्त अहकार शून्य हो जाए तो समर्पण कैसा ? कौन करेगा समर्पण ? समर्पण कृत्य है, कृत्य के लिए कर्ता चाहिए और अगर कर्ता नही है तो समर्पण जैसा कृत्य भी असम्भव है। फिर जब कोई कहता है कि मैंने समर्पण किया तो समर्पण से भी 'मैं' को ही भरता है। समर्पण भी उसके 'मैं' का ही पोषण है। वह समझता है कि 'मैं' कोई साधारण नही हूँ, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हूँ।

एक सन्त के पास—तथाकथित सन्त कहना चाहिए—सम्राट् अकबर ने खबर भेजी : बड़ा उत्सुक हूँ आपके दर्शन को, मिलने को, सुनने को। तथाकथित सन्त ने खबर भिजवाई वापिस कि हम तो सिर्फ राम के दरबार में झुकते है। हम आदमियों के दरबार में नही झुका करते। यह व्यक्ति क्या कह रहा है ? यह कह रहा है कि हम तो सिर्फ राम के सामने झुकते हैं, आदमियों के सामने

नही झुका करते। और हम राम के दरबार के दरबारी हो गए। ऊपर से लगता है यह आदमी कितनी बढिया बात कह रहा है। लेकिन बडे गहरे अहकार से निकली बात मालूम पडती है। अभी इसे आदमी और राम में फर्क है और यह निरन्तर यह भी कहे चला जा रहा है कि सब में राम है। अकबर भर को छोड़ देता है, अकबर में 'राम' नही है। सब में 'राम' देखे चला जा रहा है और अकबर में अटक जाता है, और वहाँ उसका अहंकार घोषणा कर देता है कि 'मैं कोई ऐसा आदमी थोडे ही हूँ कि आदमियो के दरबारों में बैठूँ, मैं तो राम के दरबार का दरबारी हूँ। यह घोषणा बहुत गहरे अहकार की सूचना है। इससे यह मत समझ लेना कि जिन्होने भगवान् को स्वीकार किया है, वे अहकार-शून्य होंगे। हो सकता है यह अहंकार की अतिम चेष्टा हो। अहकार भगवान् को भी मुठ्ठी में लेना चाहता है। उसको तृप्ति नही होती। ससार को मुट्ठी में ले लेने से आखिर में भगवान् को भी ले लेना चाहता है।

महावीर के पास एक सम्राट् गया। और सम्राट् ने कहा सब है आपकी कृपा से। राज्य है, सम्पदा है, अन्तहीन विस्तार है, सैनिक है, सुख हैं, सुविधा है, शक्ति है, सब है। लेकिन इधर मैंने सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज है। तो मैं उसको भी विजय करना चाहता हूँ। क्या उपाय है? कितना खर्च पडेगा? हँसे होंगे महावीर। सम्राट् है, सब जीतना चाहता है। उसने बहुत इन्तजाम कर लिया है। अब इधर खबर मिली है कि मोक्ष जैसी भी एक चीज है, और ध्यान जैसी भी एक अनुभूति है तो उसके लिए भी खर्च करने को तैयार है। यानी ऐसा न रह जाए कि कोई कहे कि इस आदमी को मोक्ष भी नही मिला, ध्यान भी नही मिला। महावीर ने उससे कहा कि खरीदने को ही निकले हो तो जो तुम्हारे ही गाँव में एक श्रावक है उसके पास चले जाना। उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने में बेचेगा, एक ध्यान कितने में बेचेगा। खरीद लेना, उसको उपलब्ध हो गया है। तो नासमझ सम्राट् उस आदमी के घर पहुँचा और हैरान हुआ देखकर कि वह बहुत दरिद्र आदमी है। उसने सोचा कि इसको तो पूरा ही खरीद लेंगे। सामायिक का क्या सवाल है। यानी इसमें कोई झझट ही नही हैं। पूरे आदमी को चुकता खरीदा जा सकता है। यह तो बडी सरल बात है। तो उसने कहा कि महावीर ने कहा है कि सामायिक खरीद लो उस आदमी से जाकर। तो वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि चाहो तो मुझे खरीद लो लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं।

सामायिक पाई जा सकती है, उसे खरीदा नही जा सकता। लेकिन अहंकार उसको भी खरीदना चाहता है, भगवान् को भी खरीदना चाहता है। ऐसा कोई न कहे कि बस तुम्हारे पास धन ही धन है और कुछ भी नही। अहंकार धर्म को भी खरीदने जाता है। लेकिन हमें यह दिखाई पडना बहुत मुश्किल होता है। असल में कठिनाई क्या है? हमारे मन में दो चीजें हैं : अहकार या नम्रता। नम्रता अहकार का ही रूप है, यह हमारे ख्याल में नही है।

अहकार एक विधायक घोषणा है : नम्रता अहंकार की निषेधात्मक घोषणा है। महावीर नियन्ता के प्रति, गुरु के प्रति, परम्परा के प्रति न नम्र हैं, न अनम्र हैं। दोनों बातें असंगत है महावीर के लिए। इनसे कुछ लेना-देना नही है। मैं एक बडे वृक्ष के पास निकलूँ और नमस्कार न करूँ तो आप मुझे अनम्र न कहेंगे। लेकिन एक महात्मा के पास से निकलूँ और नमस्कार न करूँ तो आप कहेंगे अनम्र है। लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरे लिए महात्मा और वृक्ष दोनों बराबर हों। मेरे लिए दोनों असगत हो, इस बात से ही मुझे कुछ लेना-देना न हो। लेकिन आप की तोल मे एक स्थिति में मैं नम्र हो गया और एक स्थिति में अनम्र हो गया जबकि मुझे इसका कुछ पता ही नही।

एक फकीर एक गाँव से निकल रहा है। एक आदमी एक लकडी उठा कर उसको मार रहा है पीछे से। चोट लगने पर लकड़ी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गई है। उस फकीर ने पीछे लौट कर देखा, लकड़ी उठा कर उसके हाथ में दे दी और अपने रास्ते चला गया। एक दूकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया और कहा कि तुम कैसे पागल हो? तुम्हें उसने लकडी मारी, उसकी लकड़ी छूट गई तो तुमने सिर्फ इतना ही किया कि उसकी लकडी उसको उठाकर वापस दे दी और तुम अपने रास्ते चले गए। उन फकीर ने कहा कि एक दिन मैं एक झाड के नीचे से गुजर रहा था। उसकी एक शाखा गिर पड़ी मेरे ऊपर तो मैंने कुछ नही किया। मैंने कहा कि सयोग की बात है कि जब शाखा गिरी तो मैं उसके नीचे आ गया। मैं शाखा को रास्ते के किनारे सरका कर चला गया। सयोग की बात होगी कि उस आदमी को लकडी मारनी होगी हम पर तो इसकी लकडी छूट गई, उसको उठाकर दे दी, और हम क्या कर सकते थे? हम अपने रास्ते चल पडे। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था वही मैंने इस आदमी के साथ भी किया।

एक स्थिति ऐसी हो सकती है कि हमारे प्रश्न असंगत हो जाते हैं। क्योंकि हम जब सोचते हैं तो दो ही में सोच सकते हैं। और यह समझना गलत हो

जाता है। क्योंकि जिस तल पर हम समझ सकते थे उस तल पर उनका कोई भी रूप नही बनता है कि वे कैसे आदमी हैं। महावीर अनम्र है या विनम्र है यह तय करना मुश्किल है क्योकि ऐसा कोई प्रसग ही नही जिसमें वह कोई भी घोषणा करते हों। तब हमारे ऊपर ही निर्भर रह जाता है कि हम निर्णय कर लें और हमारा निर्णय वही होने वाला है जो हमारी तोल है, जो हमारा मापदण्ड है। महावीर उस तोल के बाहर हैं।

इसलिए मैं कहता हूँ कि महावीर से ज्यादा निरहकारी थोडे ही लोग हुए हैं। हाँ, महावीर से ज्यादा नम्र कई लोग हुए हैं। महावीर से ज्यादा अहकारी लोग भी हुए है लेकिन महावीर से ज्यादा निरहकारी लोग मुश्किल से हुए है। महावीर से ज्यादा नम्र आदमी मिल जाएगा जो झुक-झुक कर नमस्कार करेगा। महावीर झुकेगे नही, क्योकि कौन झुके? किसके लिए झुके? फिर जब कोई आदमी झुकता है तो हम कहते हैं कि वह नम्र है लेकिन वह किसलिए झुकता है? किसी अहंकार की पूजा में, किसी अहकार के पोषण में वह झुकता है। और महावीर कहते हैं कि मेरा अहकार तो बुरा है ही, किसी का भी अहंकार बुरा है। मैं झुकूँ और आप की बीमारी बढाऊँ? मैं झुकूँ आपके चरणो में और आपके दिमाग को फिराऊँ? मैं झुकूँगा तो आपको बडा रस आएगा कि यह आदमी बडा नम्र है। लेकिन रस इसीलिए आएगा कि आपके अहकार को तृप्ति मिलती चली जाएगी। महावीर से कोई पूछे तो वह कहेंगे कि देवताओ का दिमाग भी आदमियो ने ही खराब किया है। अगर कही भगवान् भी है तो अब तक पागल हो गया होगा। यह जो झुकना चल रहा है दूसरे के अहकार का पोषण करता है। निरहकारी न तो अहंकार में जीता है न अहकार को पोषण देता है। इसलिए उसके जीवन का तल, उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल बदल जाती है। उसे पकड पाना मुश्किल हो जाता है कि हम उसे कहाँ पकडें, और कहाँ तोलें। महावीर के साथ भी यही कठिनाई मालूम होती है।

प्रश्न : प्रेम मे भी कोई शर्त है क्या? तो फिर महावीर की शर्त क्यो?

उत्तर : मैं कहता हूँ कि प्रेम सदा बेशर्त है, क्योकि जहाँ शर्त है वहाँ सौदा है। जहाँ हम कहते है कि मैं तब प्रेम करूँगा जब ऐसा हो; या तुम ऐसे हो जाओ या ऐसे बनो, तब मैं तुम्हें प्रेम करूँगा ऐसा आदमी प्रेम को शर्त मे बाध रहा है और प्रेम को खो रहा है। महावीर की शर्तो की बात प्रेम के सम्बन्ध मे नही है। महावीर ऐसा नही कहते कि जगत् ऐसा करे तो मैं प्रेम करूँगा, जगत् मुझे भोजन दे तो मैं करूँगा। नही, यह तो बात ही नहीं है प्रेम का मामला

ही नही है। महावीर तो यह कहते है कि अगर जगत् को प्रेम हो, अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले। मैं कैसे जानूं कि सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है, और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जिऊँ एक क्षण ताकि उसके लिए फायदा हो जाए। तो महावीर कहते है कि मैं कुछ शर्तें लगा देता हूँ जिनकी पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है या नही। महावीर यह नही कह रहे कि अगर जगत् मेरी शर्तें पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूँगा। जगत् के प्रति प्रेम है तो शर्त का कोई सवाल ही नही है। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बांधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी पाने के लिए बांधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत् मुझे जिलाए, नही तो कोई बात नही। महावीर कह रहे हैं कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नहीं करूँगा। यह मेरी चेष्टा नही होगी कि मैं जिऊँ। असल में हो भी यही सकता है कि जिसका 'मैं' ही मिट गया हो अब उसे जीने की लालसा क्या हो सकती है ? अब तो यही हो सकता है कि अगर जरूरत हो तो ठीक है।

जैसे समझो कि मैं बोल रहा हूँ। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतरी वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूँ यानी मुझे बोलना ही पडे। अगर कमरे में कोई भी न हो तो दीवार से बोलना पडे। तब बोलना मेरी विवशता होगी। क्योंकि तब बोलने, न बोलने से मेरा कोई सम्बन्ध हो नहीं। मैं भीतर बेचैन हूँ और मुझे कुछ बोलना है, जैसे कोई पागल बोलता है रास्ते पर, अकेले में भी बोलता है, दीवार से भी बोलता है। इससे फर्क नही पड़ता कि सुनने वाले बैठे हों या नही। जरूरी नही कि बोलने वाला आदमी पागल न हो। यह तो तब पता चलेगा जब हम उसे अकेला दीवार के पास छोड दें और वह न बोले। तो अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला फिर बहाना है। उसको जबर्दस्ती थोपा जा रहा है। लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नही है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊँ तब मैं शर्तें लगाऊँगा ताकि मुझे पता चल जाए कि तुम्हारे लिए बोल रहा हूँ। मैं कहूँगा चुप बैठना तो ही मैं बोलूँगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने को तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को तैयार नहीं हो, और तब भी मैं बोले चला जा रहा हूँ तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूँगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठकर सुनना तो ही मैं

बोलूँगा। और जिस क्षण तुम खड़े हो जाओ, या बोलने लगो, मैं बोलना बन्द कर दूँगा और विदा हो जाऊँगा। मेरा मतलब समझे आप।

यानी महावीर यह कह रहे हैं कि अगर पूरे अस्तित्व को मेरी जरूरत है, दरख्तों को, हवाओं को, सूरज को, चाँद-तारों को, परमात्मा को, (परमात्मा महावीर के लिए व्यक्ति नहीं है)—समग्र को अगर जरूरत है मेरी, तो मैं चलता चला जाऊँगा। जिस दिन तुम कह दोगे कि जरूरत नहीं है, तो मैं एक इंच भी आगे नहीं जाऊँगा। तो महावीर की शर्त प्रेम के लिए लगाई गई शर्त नहीं है। वह शर्त अपने होने के लिए लगाई गई है कि मैं अभी लौट जाऊँ इसी क्षण। एक क्षण भी मैं नहीं कहूँगा कि और मुझे ठहरने दो, अभी मुझे कुछ कहना है। यह सवाल नहीं है। तुम्हारी खबर आ जाए तो मैं अभी लौट जाऊँगा।

प्रश्न : दुबारा उनका आना भी जगत् की जरूरत है क्या ?

उत्तर : बिल्कुल ही जगत् की जरूरत है। लेकिन जैसे ही किसी व्यक्ति को आनन्द उपलब्ध होता है, वैसे ही सारे जगत् के प्राणी उससे पुकार करने लगते हैं कि बाँटो, क्योंकि जगत् इतने कष्ट में है, इतनी पीड़ा में है कि जब भी कोई एक व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत् के प्राणियों की पुकार घूम-घूम कर उसके पास पहुँचने लगती है कि बाँटो। वह बाँटना ही लौटाता है। वह बाँटने का जो चारों तरफ से उठा हुआ दबाव है, वही उसे लौटाता है। यह एकदम से हमें दिखाई नहीं पड़ता। 'लोग पूछते हैं कि आप किसलिए बोलते हैं ?' तो उनका सवाल ठीक ही है क्योंकि बोलता मैं हूँ तो सवाल मुझसे पूछा जाएगा। यह ध्यान में आना कठिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है इसलिए मैं बोलता हूँ। जगत् की स्थिति में तो घटनाएँ उल्टी घटेंगी। मैं बोलूँगा तब सुनने वाला आएगा। लेकिन अन्तर्जगत् में घटनाएँ बिल्कुल भिन्न हैं। कोई सुनने वाला पुकारेगा तभी मैं बोलूँगा। जैसे कि हम नदी के किनारे पर खड़े हो जाएँ तो नदी में दिखाई पड़ता है कि सिर नीचे है और पैर ऊपर है। लेकिन वस्तुत. जो किनारे पर खड़ा है उसका सिर ऊपर और पैर नीचे है। नदी में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वह उल्टा बनता है। जीवन में जो प्रतिबिम्ब बनते हैं, वे उल्टे बनते हैं। अन्तस्तल के जो प्रतिम्बिब हैं, बिल्कुल उल्टे हैं।

अन्तस्तल में सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है, तब बोलने वाला आता है। बाहर के जगत् में बोलने वाला पहले दिखाई पड़ता है तब सुनने

ही नही है। महावीर तो यह कहते है कि अगर जगत् को प्रेम हो, अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले। मैं कैसे जानूँ कि सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है, और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जिऊँ एक क्षण ताकि उसके लिए फायदा हो जाए। तो महावीर कहते हैं कि मैं कुछ शर्तें लगा देता हूँ जिनकी पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है या नही। महावीर यह नही कह रहे कि अगर जगत् मेरी शर्तें पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूँगा। जगत् के प्रति प्रेम है तो शर्त का कोई सवाल ही नही है। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बाधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी पाने के लिए बांधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत् मुझे जिलाए, नही तो कोई बात नही। महावीर कह रहे हैं कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नही करूँगा। यह मेरी चेष्टा नही होगी कि मैं जिऊँ। असल में हो भी यही सकता है कि जिसका 'मैं' ही मिट गया हो अब उसे जीने की लालसा क्या हो सकती है? अब तो यही हो सकता है कि अगर जरूरत हो तो ठीक है।

जैसे समझो कि मैं बोल रहा हूँ। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतरी वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूँ यानी मुझे बोलना ही पड़े। अगर कमरे में कोई भी न हो तो दीवार से बोलना पडे। तब बोलना मेरी विवशता होगी। क्योंकि तब बोलने, न बोलने से मेरा कोई सम्बन्ध ही नही। मैं भीतर बेचैन हूँ और मुझे कुछ बोलना है, जैसे कोई पागल बोलता है रास्ते पर, अकेले में भी बोलता है, दीवार से भी बोलता है। इससे फर्क नही पड़ता कि सुनने वाले बैठे हों या नही। जरूरी नही कि बोलने वाला आदमी पागल न हो। यह तो तब पता चलेगा जब हम उसे अकेला दीवार के पास छोड दें और वह न बोले। तो अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला फिर बहाना है। उसको जबर्दस्ती थोपा जा रहा है। लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नही है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊँ तब मैं शर्तें लगाऊँगा ताकि मुझे पता चल जाए कि तुम्हारे लिए बोल रहा हूँ। मैं कहूँगा चुप बैठना तो ही मैं बोलूँगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने को तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को तैयार नहीं हो, और तब भी मैं बोले चला जा रहा हूँ तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूँगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठकर सुनना तो ही मैं

हमारे सब सवाल उल्टे हैं क्योंकि हमारे सब सवाल जहाँ से उठते हैं वहाँ चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। महावीर के प्रेम में कोई शर्त नही है। शायद उतना बेशर्त प्रेम ही कभी नही हुआ। बिल्कुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बाँध रहे हैं। वे जो शर्तें हैं अपने अस्तित्व के लिए हैं, तुम्हारे प्रेम के लिए नही हैं। वह इसलिए कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम विदा हो चुका हो, और अस्तित्व को जरूरत न हो और मैं जिए चला जाऊँ। तब बेमानी हो जाएगी बात। एक क्षण भी नही रुकना, मुझे खबर देना, और किसी परमात्मा को महावीर मानते नही जो कि खबर कर दें। कोई भगवान् नही जो कह दे, बस लौट जाओ। यह तो समग्र अस्तित्व ही खबर करे तो ही पता चलने वाला है और कोई उपाय नही। अगर भगवान् हो तो वह कह देंगे कि मुझे बता देना, मैं विदा हो जाऊँ। लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा? हवाएँ कैसे कहेंगी? फूल कैसे कहेंगे? वृक्ष कैसे कहेंगे? चाँद-तारे कैसे कहेंगे? महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूँ ताकि मुझे पता चलता जाए कि अब इसके आगे नही जाना। अब बात खत्म हो गई, मेरी जरूरत विदा हो गई, मैं चुकता हो गया। इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि वह एक क्षण भी हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नही बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, प्रेम के लिए नही है। प्रेम तो सदा बेशर्त है परन्तु अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए। अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है। यह प्रेम के ऊपर बोझ पड़ेगा, बहुत भारी बोझ पड़ेगा।

प्रश्न : आप मेहरबाबा की बात बता रहे थे कि दो बार जब दुर्घटना होने लगी वह बच गए। उन्हें पहले पता चल गया। लेकिन आप पत्ते की भाँति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं। और जब दलाई लामा तिब्बत से आए तो आपने उनको ठीक कहा। यह कैसे?

उत्तर : असल में मेहरबाबा को मैं कहूँगा गलत क्योंकि बचना चाहते हैं वह खुद।

प्रश्न : मेहरबाबा के अन्दर जो प्रेरणा उठी, वह परमात्मा की थी?

उत्तर : प्रेरणा अगर परमात्मा की होती तो वह उस हवाई जहाज में किसी को भी न बैठने देते। वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए। उस हवाई जहाज के लोग मरे ही। प्रेरणा परमात्मा की होती तो यह कहते

वाले इकट्ठे होते हैं। महावीर को नहीं कह सकोगे जाकर कि आप फिर बोल रहे हो। क्योंकि महावीर कहेंगे कि तुम क्यो सुन रहे हो ? तुम सुनने के लिए पहले आ गए तब मैं बोलने आया हूँ मगर हमें यह दिखाई नही पड़ेगा क्योंकि जिस जगत् पर हम जीते हैं, वह छाया का, प्रतिफलन का जगत् है। वहाँ चीजें सीधी नही हैं, वहाँ चीजें उल्टी हैं, और हम उसी हिसाब से सोचते हुए चलते है। महावीर तुम्हारे गाँव में भी आएँगे तो तुम कहोगे कि क्यो आए हैं आप यहां ? और मजा यह है कि तुम्हीने बुलाया था। लेकिन तुम्हारे बुलाने के प्रति तो तुम सचेतन नही हो। महावीर को यह पीडा भी झेलनी पडेगी कि तुम्हीने बुलाया था और तुम्ही पूछोगे कि कैसे आप आए हो यहाँ ?

बुद्ध एक गाँव में जा रहे हैं। सुबह का वक्त है और वह उस गाँव में प्रवेश करने को है। एक किसान लडकी अपने पति के लिए भोजन लेकर खेत की ओर जा रही है। रास्ते में बुद्ध को कहती है कि मैं जब तक न लौट आऊँ, बोलना शुरू मत करना। बुद्ध कहते हैं कि तेरे लिए ही तो मैं आ रहा हूं भागा हुआ। अगर तू न होगी तो बोलना शुरू होकर भी क्या करूँगा ? आनन्द बहुत मुश्किल में पड जाता है, वह पूछता है कि आप यह क्या कह रहे हैं कि इस लडकी के लिए भागे चले आ रहे हैं दूसरे गाँव से। वह कहते हैं : हाँ इसी लडकी के लिए। देखो वही लडकी मुझसे कहती है कि बोलना शुरू मत करना जब तक मैं न आ जाऊँ। मैं उसी के लिए आ रहा हूँ। फिर वह लड़की चली गई है। गाँव में बुद्ध आए हैं, भीड इकट्ठी हो गई है। लोग कहते हैं : अब आप बोलें, आप शुरू करें। बुद्ध चारो ओर देख रहे हैं, लडकी नजर नही आती। आनन्द कहते है कि लोग क्या कहेंगे कि आप उस लडकी के लिए रुके हैं। आप बोलें। बुद्ध ने कहा कि मैं जिसके लिए आया हूँ और जो रास्ते में मुझे कह भी गई है कि रुकना यह कैसे हो सकता है कि मैं बोलूँ। साझ होने लगी, लोग विदा होने लगे। तब वह लडकी भागी हुई आई और कहा कि बडी मुश्किल में पड गई हूँ। पति बीमार हो गया, उसे कोई कीडा काट गया है और मैं वहाँ उलझ गई। और मैं बडी परेशान थी कि कहीं आप बोलना शुरू न कर दें। बुद्ध ने कहा कि तेरे बिना बोल के करता भी क्या ? तेरे लिए भागा हुआ आया। तूने मुझे पहले बुलाया है, मैं पीछे चला हूँ। लेकिन हमारी दुनिया में जहाँ हम जीते हैं, वहाँ चीजें बिल्कुल उल्टी हैं। वहाँ बुद्ध पहले आए हैं, लड़की पीछे सुनती है।

हमारे सब सवाल उल्टे हैं क्योंकि हमारे सब सवाल जहाँ से उठते हैं वहाँ चीजें बिल्कुल उल्टी है। महावीर के प्रेम में कोई शर्त नही है। शायद उतना बेशर्त प्रेम हो कभी नही हुआ। बिल्कुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बाँध रहे हैं। वे जो शर्तें है अपने अस्तित्व के लिए हैं, तुम्हारे प्रेम के लिए नही हैं। वह इसलिए कि कही ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम विदा हो चुका हो, और अस्तित्व को जरूरत न हो और मैं जिए चला जाऊँ। तब बेमानी हो जाएगी बात। एक क्षण भी नही रुकना, मुझे खबर देना, और किसी परमात्मा को महावीर मानते नही जो कि खबर कर दें। कोई भगवान् नही जो कह दे, बस लौट जाओ। यह तो समग्र अस्तित्व ही खबर करे तो ही पता चलने वाला है और कोई उपाय नही। अगर भगवान् हो तो वह कह देगे कि मुझे बता देना, मैं विदा हो जाऊँ। लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा? हवाएँ कैसे कहेंगी? फूल कैसे कहेंगे? वृक्ष कैसे कहेंगे? चाँद-तारे कैसे कहेंगे? महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूँ ताकि मुझे पता चलता जाए कि अब इसके आगे नही जाना। अब बात खत्म हो गई, मेरी जरूरत विदा हो गई, मैं चुकता हो गया। इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि वह एक क्षण भी हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नहीं बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, प्रेम के लिए नही है। प्रेम तो सदा बेशर्त है परन्तु अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए। अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है। यह प्रेम के ऊपर बोझ पड़ेगा, बहुत भारी बोझ पड़ेगा।

प्रश्न: आप मेहरबाबा की बात बता रहे थे कि दो बार जब दुर्घटना होने लगी वह बच गए। उन्हे पहले पता चल गया। लेकिन आप पत्ते की भाँति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं। और जब दलाई लामा तिब्बत से आए तो आपने उनको ठीक कहा। यह कैसे?

उत्तर: असल में मेहरबाबा को मैं कहूँगा गलत क्योंकि बचना चाहते हैं वह खुद।

प्रश्न: मेहरबाबा के अन्दर जो प्रेरणा उठी, वह परमात्मा की थी?

उत्तर: प्रेरणा अगर परमात्मा की होती तो वह उस हवाई जहाज में किसी को भी न बैठने देते। वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए। उस हवाई जहाज के लोग मरे ही। प्रेरणा परमात्मा की होती तो वह कहते

कि मैं हवाई जहाज को नही जाने दूँगा चाहे मुझे मार डालो। प्रेरणा अपने ही जीवन अस्तित्व की है। खुद तो बच गए है, हवाई जहाज तो चला गया। उस मकान में जिसमें वह ठहरने गए थे, खुद तो नही ठहरे लेकिन किसी को नही कहा कि इसमें मत ठहरो, मकान रात को गिर जाएगा। मेहर बाबा को मैं गलत कहूँगा क्योंकि उन्हें बचने की आकाक्षा है और दलाई को मैं गलत नही कहूँगा क्योंकि उन्हें बचने की आकाक्षा ही नही है। दलाई के लिए बचने का यही सरल उपाय होता कि वह वही रह जाता है और चीनियों के साथ हो जाता। दलाई मुश्किल में पड गया और बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। इसमें फर्क समझ लेना। मेहरबाबा बच रहे हैं खुद, दलाई बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है। और उस बचाने में दलाई अपनी जान को दांव पर लगा रहा है। दलाई का भागना दाव पर लगाना है अपने को। और एक अर्थ में शायद वह कभी नही लौट सकेगा अब। वह रुक भी जाता, सुलह कर लेता और वह राजा भी बना रह सकता था। लेकिन जहाँ तक सबके हित में आने वाली कोई बात हो, और कुछ ऐसी सम्पदा हो जो मेरे होने, न होने से सम्बन्धित नही है और जो पीछे भी काम पड सकती है उसके बचाने के लिए जरूर कुछ श्रम किया जा सकता है।

महावीर भी यही श्रम कर रहे है। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम अपने स्वार्थ के लिए उपयोग कर रहे हो या तुम्हारा कोई स्वार्थ नही है। इस दृष्टि से मैं एक को गलत और दूसरे को सही कहूँगा। निर्णायक बात यह है कि व्यक्ति का कोई अपना स्वार्थ निहित है या नही। दलाई को कोई छुरा मार दे तो दिक्कत नही है, कठिनाई नहीं है। लेकिन जो उसके पास है और निश्चित ही एक ऐसा गुह्य विज्ञान उसके पास है वह इस समय पृथ्वी के दो-चार लोगो की समझ में आ सकता है। क्योंकि पिछले डेढ-दो हजार वर्षों से, सारी दुनिया से अलग, तिब्बत एक प्रयोग कर रहा है। दूसरा महायुद्ध हुआ। दूसरा महायुद्ध जर्मन जीत सकता था। सिर्फ एक आदमी जर्मनी छोडकर भाग गया और जर्मनी को हारना पडा। वह आइंस्टीन था। जर्मनी के हारने का दूसरा कारण नही था। लेकिन जो रहस्य थे, वह एक आदमी के हाथ में थे—आइन्स्टीन के हाथ में थे। और वह था यहूदी। और यहूदियों के सताए जाने के कारण आइंस्टीन ने जर्मनी को छोडा था। जो एटम बम अमेरिका में बना, वह बर्लिन में बना होता। रहस्य एक आदमी के पास था। वह रहस्य अमेरिका में उपलब्ध हुआ। एटम बम बना, हिरोशिमा पर गिरा। तो बनना

था कि लन्दन पर गिरता, न्यूयार्क पर गिरता, मास्को पर गिरता। एक बात पक्की थी कि आइस्टीन के बिना वह कही भी न गिर सकता था जहाँ आइस्टीन होता वह वहीं उसके काम में आने वाला था। आज दुनिया में दस-बारह वैज्ञानिकों की इतनी कीमत है कि अरबो रुपये देकर एक वैज्ञानिक को चुरा लेना काफी बडी बात है। खरबों खर्च हो जाएँ, कोई फिक्र नही है। वैज्ञानिक से रहस्य लेना काफी बडी बात है क्योकि वह सिर्फ दस-बारह लोगो के हाथ में है। जिस तरह से पदार्थ-विज्ञान के सम्बन्ध में यह स्थिति हो गई है, ठीक वैसी स्थिति ही आज अध्यात्म-विज्ञान की है। मुश्किल से दुनिया में दो-चार लोग हैं जो उस गहराई पर समझते हैं। लेकिन उनके पास भी हजारो वर्षों के अनुभव का सार नही है।

एक आदमी था गुरजिएफ। उसने अपनी जिन्दगी के पहले वर्ष एक अद्भुत खोज में लगाए, जैसा इस सदी के किसी आदमी ने नही किया, पिछली सदियो में भी किसी ने नही किया। पन्द्रह-बीस मित्रो ने यह निर्णय लिया कि वे दुनिया के कोने-कोने में, जहाँ भी आध्यात्मिक सत्य छिपे हैं, चले जाएँ और उन सत्यो को खोजकर लौट आएं और मिलकर अपने अनुभव बता दें ताकि एक सुनिश्चित विज्ञान बन सके। यह बीस आदमी दुनिया के कोने-कोने में चले गए, कोई तिब्बत में, कोई भारत में, कोई ईरान मे, कोई ईजिप्ट में, कोई यूनान मे, कोई चीन में, कोई जापान में। ये सारी दुनिया में फैल गए। इन बीसो आदमियों ने बडी खोज की, पूरी जिन्दगी लगा दी क्योंकि आदमी की जिन्दगी बहुत छोटी है, जो जानने को है वह बहुत ज्यादा है। अब अगर एक आदमी सूफियो के पास सीखने को जाये तो पूरी जिन्दगी लग जाती है क्योंकि व्यवस्था के अनुसार एक फकीर एक सूत्र सिखाएगा, वर्ष लगा देगा, दो वर्ष लगा देगा, फिर कहेगा कि अब तुम फला आदमी के पास चले जाओ। अब तुम दूसरे फकीर के पास चले जाओ और वर्ष भर सेवा करो उसकी। हाथ-पैर दाबो उसके। वह जो कहे मानो क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं कि वे तुम्हें तभी दी जा सकती हैं जब तुम धैर्य दिखलाओ, नही तो तुम उसके योग्य नही। अगर तुम धैर्यहीन हो गए तो वे चीजें तुम्हे नही दी जा सकती। उन बीस लोगो ने सारी दुनिया में खोज-बीन की और वे बीस लोग बूढ़े होते-होते लौटकर मिले। उनमें से कुछ मर गए, कुछ लौटे नही। कहाँ खो गए, पता नही चला। लेकिन उनमें से चार लौटे। उन्होंने जो सूचनाएँ दीं उनके आधार पर गुरजिएफ ने एक पूरी साइन्स खडी की। उसमें उन सूत्रों को पकड़ उसके हाथों में आई जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं।

आध्यात्मिक विज्ञान के सम्बन्ध में तिब्बत के पास सबसे बडी सम्पदा है। और दलाई लामा के लिए उपयोगी यही है कि वह सब की फिक्र छोड दे, तिब्बत की फिक्र छोड दे। तिब्बत का बनना मिटना उतना कीमती नहीं है। तिब्बत के लोग इस राज्य में रहते है या उस राज्य में, यह कोई बडे मूल्य की बात नही है। वे किस तरह की व्यवस्था बनाते हैं समाज की, शासन की, वह भी मूल्यवान् नही है। मूल्यवान् यह है कि इन डेढ हजार वर्षो में एक प्रयोगशाला की तरह तिब्बत ने जो काम किया है वे सूत्र नष्ट न हो जाएँ, उनको भाग कर बचाना जरूरी है। न मेहर बाबा से कोई मतलब है मुझे, न दलाई लामा से कोई मतलब है। मेरा मतलब कुल इतना है कि एक दिशा वह है जहाँ हम परम कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं और एक दिशा वह है जहाँ हम अपने कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं। दोनो में फर्क करना जरूरी है।

प्रश्न : (i) महावीर ने विधायक शब्द 'प्रेम' का उपयोग न करके निषेधात्मक शब्द, 'अहिंसा' का उपयोग क्यो किया।

प्रश्न . (ii) महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता क्यो नहीं की ?

उत्तर : अहिंसा शब्द से ही निषेध का, नकारात्मक का बोध होता है। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। महावीर ने क्यो उस शब्द का चुना ? वह 'प्रेम' शब्द भी चुन सकते थे। 'प्रेम' विधायक शब्द है, प्रेम का मतलब होता है किसी को सुख देना। अहिंसा का मतलब होता है किसी को दुःख न देना। यानी अगर मैंने आपको दुःख नही दिया तो मैं अहिंसक हो गया। मगर इतने से ही बात हल नही होती। मैंने आपको सुख दिया कि नही ? अगर सुख दिया तो ही प्रेम पूरा होता है। 'प्रेम' तो विधायक शब्द है और जीसस ने प्रेम शब्द का प्रयोग किया है। अहिंसा निषेधात्मक शब्द है और महावीर ने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। यह समझना बहुत जरूरी है। महावीर क्यो ऐसा प्रयोग करते हैं ? इनमें बडी गहराइयाँ छिपी हुई हैं। ऊपर से देखने से यही लगेगा कि 'प्रेम' शब्द का प्रयोग ही ठीक होता और जहाँ तक समाज का संबंध है, शायद ज्यादा ही ठीक होता। क्योकि जिन लोगो ने महावीर का अनुगमन किया उन लोगो ने 'किसी को दुःख नही देना' यह सूत्र बना लिया। इसी कारण वे सिकुडते चले गए क्योंकि 'किसी को दुःख नहीं देना' इतना ही उनका विचार रहा, सुख देने की तो बात नहीं। चीटी पैर मे न दबे इतना काफी हो गया। चीटी भूखी मर जाए, इससे कोई प्रयोजन नहीं है हमारा। हमने चींटी को पैर से दबा कर नहीं मारा, हमारा काम पूरा हो गया। महावीर का 'अहिंसा' शब्द समाज के

लिए महँगा पडा क्योंकि अहिंसा का अर्थ पकडा गया कि किसी को दु ख नहीं देना है बस वात खत्म हो गई। अपने को इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नही है। और प्रयोजन तब बनता है जब हम किसी को सुख देने जाएँ। अच्छा होता कि महावीर प्रेम शब्द का प्रयोग करते। लेकिन महावीर ने प्रेम का प्रयोग नहीं किया। यह बहुत कीमती वात है। और महावीर की दृष्टि बहुत गहरी है।

अहिंसा शब्द के प्रयोग करने में कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि किसी को दु:ख नही देना। यह कोई साधारण वात नही है। इसका मतलब इतना ही नही होता कि हम किसी को चोट न पहुँचाएँ। अगर बहुत गहरे में देखें तो किसी क्षण में किसी को सुख न देना भी उसको दु ख देना है। उतने दूर तक अनुयायी की पकड नही हो सकी। मै आपको दु:ख न दूँ यह वो ठीक है। वहुत मोटा सूत्र हुआ कि आप को चोट न पहुँचाऊँ, आपकी हिंसा न करूँ, तलवार न मारूँ। लेकिन किसी क्षण यह भी हो सकता है कि मैं आपको सुख न पहुँचाऊँ तो निश्चित रूप से आपको दु ख पहुँचे। लेकिन यह पकड़ में आना साधारणतः मुश्किल था। महावीर इसको साफ कह सकते थे। लेकिन उन्होंने साफ नही कहा और उनके भी कारण हैं। क्योंकि महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुँचाने से भी उसको दु ख पहुँच जाता है। यानी कभी-कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुँचाने की चेष्टा भी उसको दु ख पहुँचा सकती है।

यह जरूरी नही कि आप सुख पहुँचाना चाहते हों इससे दूसरे को सुख पहुँच जाए। सुख पहुँचाने मे भी दु:ख पहुँचाया जा सकता है। सच तो यह है कि अगर कोई कोशिश करे किसी को सुख पहुँचाने की तो उसको दु ख पहुँचाता ही है। अगर वाप अपने वेटे को सुख पहुँचाने की कोशिश में लग जाए, उसके सुधार, उसकी नीति की व्यवस्था करने लगे और सोचे कि इससे उसे सुख पहुँचेगा तो सम्भावना इस वात की है कि वेटे को दु ख पहुँचेगा, और वाप जो भी चाहता है वेटा उसके विपरीत जाएगा इसलिए अच्छे वाप अच्छे वेटों को पैदा नही कर पाते। बुरे वाप के घर अच्छा वेटा पैदा भी हो सकता है। अच्छे वाप के घर अच्छा वेटा पैदा होना अपवाद है। अच्छा वाप वेटे को अनिवार्यतः विगाड़ने का कारण बनता है। क्योंकि वह उसे इतना सुख पहुँचाना चाहता है और इतना शुभ बनाना चाहता है कि वेटे पर उसका यह सुख वोझ हो जाता है।

यह बड़े मजे की बात है कि हम यदि किसी से सुख लेना चाहें तो ही ले सकते हैं। सुख इतनी सूक्ष्म चीज है कि कोई मुझे पहुँचाना चाहे तो नही

पहुँचा सकता। मैं लेना चाहूँ तो ही ले सकता हूँ। इसलिए महावीर ने पहुँचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड दी। हाँ, जो लेना चाहे, उसे दे देना क्योंकि नहीं दोगे तो उसे दुःख मत पहुँचाना। अगर कोई तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसीलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुःख पहुँचेगा। लेकिन तुम सुख पहुँचाने मत चले जाना। क्योंकि अगर तुम सुख पहुँचाने गए तो सिवाय दुःख पहुँचाने के कुछ भी नही कर पाओगे। आक्रामक सुख पहुँचाने वाला आदमी दुःख ही पहुँचाता है। अगर जबरदस्ती हम किसी को सुखी करना चाहेंगे तो हम उसे दुःखी कर देंगे। जबरदस्ती में किसी को भी सुखी नही किया जा सकता है। जबरदस्ती मे हिंसा शुरू हो जाती है। तो महावीर की पकड बहुत गहरी है।

और भी एक गहराई है जो कि आज तक महावीर को समझने वाले लोगो को समझ में नही आई। और वह यह है कि अन्ततः परम स्थिति में जहाँ अहिंसा पूर्ण रूप से प्रकट होती है, या प्रेम पूर्ण रूप से प्रकट होता है—कोई भी नाम दें—उस परम स्थिति में न विधेय है, न निषेध है। परम स्थिति में दोनो नही है।

यह प्रश्न भी पूछा है आपने कि उन्होंने कभी किसी के शरीर को सहायता क्यों नही पहुँचाई? गिरे हुए को क्यों नही उठाया? प्यासे को पानी क्यों नहीं पिलाया? भूखे को रोटी क्यो नही खिलाई? बीमार के पैर क्यों नही दाबे? किसी के शरीर की सेवा क्यो नही की? सवाल तो पूछने जैसा है। उसका भी कारण है। परम अहिंसा की स्थिति में व्यक्ति किसी को दुःख तो पहुँचाना ही नहीं चाहता, सुख भी पहुँचाना नहीं चाहता। क्योंकि बहुत गहरे में देखने पर सुख और दुःख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिसे हम सुख कहते हैं वह दुःख का ही एक रूप है और जिसे हम दुःख कहते हैं, वह भी सुख का ही एक रूप है। बहुत गहरे में जो देखेगा वह पाएगा कि जिसे हम सुख कहते हैं उसकी मात्रा अगर थोड़ी बढ़ा दी जाए तो वह दुःख में बदल जाता है। आप भोजन कर रहे हैं, बड़ा सुखद है। और आप ज्यादा भोजन करते चले जाएँ तो सुख दुःख में बदल जाता है। आप मुझे प्रेम से आकर मिलें, मैंने आपको गले लगा लिया। बड़ा सुखद है एक क्षण, दो क्षण। लेकिन मैं छोड़ता ही नहीं तब आप तड़फने लगेंगे कि बाहों से कैसे छूट जाएँ। पाँच मिनट और तब सुख दुःख में बदल जाता है। और अगर आधा घंटा हो गया तो आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं कि 'मुझे बचाइये यह आदमी मुझे छोड़ता नहीं।' किस क्षण पर सुख दुःख में

बदल गया, बताना बहुत मुश्किल है। एक क्षण तक झलक थी सुख की, दूसरे क्षण में दुःख शुरू हो गया।

एक प्रेमी है, एक प्रेयसी है। दोनो घडी भर मिलते है। बडा सुखद है। फिर पति-पत्नी हो जाते है और बडा दुखद हो जाता है। पश्चिम में जहाँ प्रेम-विवाह प्रचलित है वहाँ एक अनुभव हुआ कि प्रेमी जितना प्रेयसी को सुखी करता है उतना ही दु.खी कर देता है। यह बडी अजीब बात है। सुख कब दु ख में बदल जाता है कहना मुश्किल है। सब सुख दु ख मे बदल सकते हैं और ऐसा कोई दुःख नहीं जो सुख मे न बदल सके। सब दु ख भी सुख में बदल सकते हैं। कितना ही गहरा दु ख है उसमें भी आप सम्भावनाएँ देख सकते हैं सुख की। एक मा है। वह नौ महीने पेट में बच्चे को रखती है। दु ख ही उठाती है। प्रसव है, बच्चे का जन्म है। असह्य दुःख उठाती है लेकिन सब दु ख सुख में बदल जाता है। आगे की सुख की आशा दु ख को झेलने में समर्थ बना देती है। प्रसव-पीडा भी एक सुख की तरह आती है। बच्चे का बोझ भी सुख की तरह आता है। और उसे बच्चे को बडा करना लम्बे दुःख की प्रक्रिया है। लेकिन माँ का मन उसे सुख बना लेता है। दु ख को हम सुख बना सकते हैं। अगर आशा, सम्भावना, आकाक्षा, कामना तीव्र हो तो दु ख सुख बन जाता है। सुख को भी हम दुःख बना सकते हैं। अगर सुख में सब आशा सब सम्भावना क्षीण हो जाए तो सुख दु ख बन जाता है।

यानी इसका मतलब यह हुआ कि सुख और दु ख में कोई मौलिक भेद नहीं है, हमारी दृष्टि का भेद है। हम कैसे देखते हैं इस पर सब निर्भर करता है। हमारे देखने पर ही सुख दुःख का रूपान्तरण हो जाता है। एक आदमी के पैर में घाव है और डाक्टर आपरेशन करता है। आपरेशन का दुःख भी सुख बन जाता है क्योंकि वहाँ पीडा में छुटकारे की आशा काम कर रही है। आदमी जहरीली से जहरीली दवाई, कडवी से कडवी दवाई पी जाता है क्योंकि वहाँ बीमारी से दूर होने की आशा काम करती है। आशा हो तो दु ख को सुख बनाया जा सकता है। और आशा क्षीण हो जाए तो सब सुख फिर दु ख हो जाते हैं। महावीर कहते हैं कि न तो तुम किसी को सुख पहुँचाओ, न तुम किसी को दु ख पहुँचाओ। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ वह न किसी को सुख पहुँचाना चाहता है, न किसी को दु ख पहुँचाना चाहता है वहीं से वह व्यक्ति सबको आनन्द पहुँचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है।

आनन्द पहुँचाने का कारण हो तभी कोई व्यक्ति बनता है जब वह सुख और दुःख के चक्कर से मुक्त होता है और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जहाँ सुख और दुःख का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पर आनन्द को हम जानते नहीं। हमें कोई दुःख पहुँचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी बुरा है। हमें कोई सुख पहुँचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी अच्छा है। लेकिन हमें कोई आनन्द पहुँचाए तो हम बिल्कुल नहीं पहचान पाते कि यह आदमी कैसा है क्योंकि हम आनन्द को पहचान ही नहीं पाते, पकड़ ही नहीं पाते। आनन्द उस चेतना से सहज ही विकीर्ण होने लगता है जो चेतना सुख और दुःख के द्वन्द्व के पार चली जाती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनन्द की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं। निश्चित ही जिनके पास आँखें होती हैं, वे उस आनन्द को देख लेते हैं। जिनके पास आँखें नहीं होती हैं, वे नहीं देख पाते। लेकिन सूरज को चाहे कोई देख पाए, चाहे न देख पाए, जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुँचाता है, और जो नहीं देखता है उसको भी गर्मी पहुँचाता है। फर्क इतना ही है कि नहीं देखने वाला कहता है : कैसा सूरज ? किस सूरज को धन्यवाद दूँ, कोई सूरज कभी देखा नहीं, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुँचाई नहीं। गर्मी अगर पहुँची है तो वह मेरी अपनी है क्योंकि सूरज का कोई पता नहीं। आँख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है। लेकिन अन्धे को समझना बहुत मुश्किल है।

महावीर किसी के पैर दाब रहे हों तो हमें समझ में आ सकता है कि वह किसी की सेवा कर रहे हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे घर में छोटे बच्चे होते हैं और अगर एक भिखमंगा आए और मैं उसे सौ का नोट उठाकर दे दूँ, और वह बच्चा बाद में मुझसे पूछे कि आपने एक भी पैसा उसे नहीं दिया क्योंकि सौ के नोट का उसे कोई अर्थ ही नहीं होता। वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है कि एक पैसा भी उसको नहीं दिया, आप कैसे कठोर हैं ? आया था माँगने, कागज पकड़ा दिया। भूखा था, कागज से क्या होगा ? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गाँव में कहे कि बड़ी कठोरता है मेरे घर में। एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया। कागज के टुकड़े से किसी की भूख मिटी है क्या ? एक पैसा ही दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपये के सिक्के से उसे कोई मतलब नहीं, और सौ के नोट का कोई अर्थ नहीं। महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से। एक

आदमी किनारे पर लगडा होकर पड़ा है। अगर महावीर उसके पैर दबाएँ तो हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग, एक फोटो निकाल देंगे, अखबार में छाप देंगे कि वडा अद्भुत सेवक है महावीर। लेकिन महावीर चुपचाप चले गए है। वह जो लंगडा पडा है किनारे पर, जरूर ही यह कहेगा कि यह कैसा आदमी है। मैं यहाँ लंगडा पडा हूँ और यह चुपचाप चला जा रहा है। लेकिन उसके चुपचाप चलने में इतनी किरणें झर सकती हैं, इतनी तरंगें पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है जितना कि हाथ का प्रयोग करने से नही। क्योंकि महावीर की गहरी से गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नहीं है उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती। वह जो लंगड़ा पडा है वह पैर से लंगडा है। लेकिन हमें ख्याल नही है इस बात का कि दुःख पैर के लगडे होने से नही पहुँचता। मैं पैर से लगडा हूँ, इस चित्त के भाव से, इस आत्मभाव से पहुँचता है और जरूरी नही है कि उस लगडे का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ हो जायगा। महावीर को क्या जरूरी है, यह वह जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि वे जितनी करुणा उस पर फेंक सकते हैं, फेंक कर चले जाएँगे।

मैंने सुना है कि सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए और कहा कि परमात्मा तुम पर बहुत खुश है और कुछ माग लो तो वह वरदान दे देगा। पर उसने कहा कि जव परमात्मा खुश है तो इससे वडा वरदान और क्या हो सकता है। बात खत्म हो गई, मिल गया जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा : "नही, ऐसे काम नही चलेगा ? कुछ मागो।" तो उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही, जब परमात्मा खुश है तो कमी क्या रही ? और जब परमात्मा ही खुश है तब खुशी ही खुशी है, दुःख आएगा कहाँ से ? तो अब मैं मांगू क्या ? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट् हो गया। अगर तुम नही मानते हो तो तुम्हीं दे जाओ जो तुम्हारी इच्छा है। उस फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम जिसको छू दो, मरा हो तो जिन्दा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, सूखा वृक्ष हो तो हरे पत्ते निकल आएँ, हरे फूल निकल आएँ। उसने कहा कि यह देते हो तो ठीक है लेकिन सीधा मुझे मत दो, कहीं मुझे ऐसा न लगने लगे कि मेरे हाथ कोई बीमार ठीक हुआ क्योंकि बीमार को तो फायदा हो जायगा किन्तु मुझे नुकसान हो जाएगा। तब फरिश्ते ने कहा कि और क्या उपाय हो सकता है। उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो कि मैं जहाँ से निकलूँ, अगर छाया पड जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े क्योंकि मैं तब

आनन्द पहुँचाने का कारण हो तभी कोई व्यक्ति बनता है जब वह सुख और दुःख के चक्कर से मुक्त होता है और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जहाँ सुख और दुःख का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पर आनन्द को हम जानते नहीं। हमें कोई दुःख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी बुरा है। हमें कोई सुख पहुँचाए तो हम पहचान जाते हैं कि यह आदमी अच्छा है। लेकिन हमें कोई आनन्द पहुँचाए तो हम बिल्कुल नहीं पहचान पाते कि यह आदमी कैसा है क्योंकि हम आनन्द को पहचान ही नहीं पाते, पकड़ ही नहीं पाते। आनन्द उस चेतना से सहज ही विकीर्ण होने लगता है जो चेतना सुख और दुःख के द्वन्द्व के पार चली जाती है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनन्द की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं। निश्चित ही जिनके पास आँखें होती हैं, वे उस आनन्द को देख लेते हैं। जिनके पास आँखें नहीं होती हैं, वे नहीं देख पाते। लेकिन सूरज को चाहे कोई देख पाए, चाहे न देख पाए, जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुँचाता है, और जो नहीं देखता है उसको भी गर्मी पहुँचाता है। फर्क इतना ही है कि नहीं देखने वाला कहता है : कैसा सूरज? किस सूरज को धन्यवाद दूँ, कोई सूरज कभी देखा नहीं, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुँचाई नहीं। गर्मी अगर पहुँची है तो वह मेरी अपनी है क्योंकि सूरज का कोई पता नहीं। आँख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है। लेकिन अन्धे को समझना बहुत मुश्किल है।

महावीर किसी के पैर दाब रहे हों तो हमें समझ में आ सकता है कि वह किसी की सेवा कर रहे हैं। यह ऐसा ही है कि जैसे घर में छोटे बच्चे होते हैं और अगर एक भिखमंगा आए और मैं उसे सौ का नोट उठाकर दे दूँ, और वह बच्चा बाद में मुझसे पूछे कि आपने एक भी पैसा उसे नहीं दिया क्योंकि सौ के नोट का उसे कोई अर्थ ही नहीं होता। वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है कि एक पैसा भी उसको नहीं दिया, आप कैसे कठोर हैं? आया था मांगने, कागज पकड़ा दिया। भूखा था, कागज से क्या होगा? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गाँव में कहे कि बड़ी कठोरता है मेरे घर में। एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया। कागज के टुकड़े से किसी की भूख मिटी है क्या? एक पैसा ही दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपये के सिक्के से उसे कोई मतलब नहीं, और सौ के नोट का कोई अर्थ नहीं। महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से। एक

आदमी किनारे पर लंगड़ा होकर पड़ा है। अगर महावीर उसके पैर दबाएँ तो हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग, एक फोटो निकाल देंगे, अखबार में छाप देंगे कि बड़ा अद्भुत सेवक है महावीर। लेकिन महावीर चुपचाप चले गए हैं। वह जो लंगड़ा पड़ा है किनारे पर, जरूर ही यह कहेगा कि यह कैसा आदमी है! मैं यहाँ लगडा पडा हूँ और यह चुपचाप चला जा रहा है। लेकिन उसके चुपचाप चलने में इतनी किरणें छर सकती हैं, इतनी तरंगें पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है जितना कि हाथ का प्रयोग करने से नहीं। क्योंकि महावीर की गहरी से गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नहीं है उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती। वह जो लगड़ा पड़ा है वह पैर से लंगडा है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है इस बात का कि दुःख पैर के लगडे होने से नहीं पहुँचता। मैं पैर से लगडा हूँ, इस चित्त के भाव से, इस आत्मभाव से पहुँचता है और जरूरी नहीं है कि उस लगडे का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ हो जायगा। महावीर को क्या जरूरी है, यह वह जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि वे जितनी करुणा उस पर फेंक सकते हैं, फेंक कर चले जाएँगे।

मैंने सुना है कि सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए और कहा कि परमात्मा तुम पर बहुत खुश है और कुछ माग लो तो वह वरदान दे देगा। पर उसने कहा कि जब परमात्मा खुश है तो इससे बड़ा वरदान और क्या हो सकता है। बात खत्म हो गई, मिल गया जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा : "नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा? कुछ मागो।" तो उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही, जब परमात्मा खुश है तो कमी क्या रही! और जब परमात्मा ही खुश है तब खुशी ही खुशी है, दुःख आएगा कहाँ से? तो अब मैं माँगू क्या? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट् हो गया। अगर तुम नहीं मानते हो तो तुम्ही दे जाओ जो तुम्हारी इच्छा है। उस फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम जिसको छू दो, मरा हो तो जिन्दा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, सूखा वृक्ष हो तो हरे पत्ते निकल आएँ, हरे फूल निकल आएँ। उसने कहा कि यह देते हो तो ठीक है लेकिन सीधा मुझे मत दो, कहीं मुझे ऐसा न लगने लगे कि मेरे हाथ कोई बीमार ठीक हुआ क्योंकि बीमार को तो फायदा हो जायगा किन्तु मुझे नुकसान हो जाएगा। तब फरिश्ते ने कहा कि और क्या उपाय हो सकता है। उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो कि मैं जहाँ से निकलूँ, अगर छाया पड जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े क्योंकि मैं तब

तक निकल ही चुका हूँगा। मैंने सूखा ही वृक्ष देखा था। मुझे पता भी नहीं चलेगा कि कब हरा हो गया। अगर किसी मरीज पर छाया पड़ जाए तो वह स्वस्थ हो जाएगा लेकिन मुझे पता भी न चले। मैं 'मैं' की झंझट में ही नहीं पड़ना चाहता। फिर कहते हैं उस फरिश्ते ने उसे वरदान दिया। फिर वह सूखे खेतों के पास से निकलता तो वे हरे हो जाते, और सूखे वृक्षों पर उसकी छाया पड़ जाती तो उनमें पत्ते निकल आते, और बीमार ठीक हो जाते, मुर्दे जिन्दा हो जाते, अन्धे को आँख मिल जाती, बहरे को कान मिल जाते। ये सब उसके आस-पास घटित होने लगा। लेकिन उसे कभी पता नहीं चला। उसे पता चलने का कारण भी न था क्योंकि उसकी छाया से यह घटित होते थे। उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। असल में जो परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं, उनका होना मात्र करुणा है। उनकी मौजूदगी मात्र काफी है। जो भी होता है उनकी छाया से होता है। उन्हें कुछ सीधा नहीं करना पड़ता। जिनके पास ऐसी छाया नहीं है उन्हें कुछ सीधा करना पड़ता है। लेकिन वह पैसे के सिक्के हैं। हमें हिसाब मिल जाता है कि इन्होंने कितनी सेवा की, कितने कोढ़ियों की मालिश की, कितने बीमारों का इलाज किया, कितने अस्पताल खोले। ये बिल्कुल कौड़ियों की बातें हैं। इनका कोई भी मूल्य नहीं है बहुत गहरे में।

श्री अरविन्द आजादी के शुरू दिनों में आतुर थे और शायद उनसे अधिक प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन में कभी नहीं आया। लेकिन अचानक एक मुकदमें के बाद वह सब छोड़ कर चले गए। मित्र घबराये कि जिनसे प्रेरणा मिलती थी, वह आदमी चला गया। जाकर अरविन्द से कहा कि आप भाग आए। अरविन्द ने कहा, मैं भाग नहीं आया। पैसे कौड़ी का काम तुम्हीं कर लो, वह तुम कर सकोगे। मैं कुछ और बड़े काम में लगा हूँ जो मैं कर सकता हूँ। और इस मुल्क में, भारत की स्वतन्त्रता के लिए जितना काम अरविन्द ने किया उतना किसी ने भी नहीं किया। लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में अरविन्द का नाम शायद ही लिखा जाए। क्योंकि अरविन्द ने जो काम किया उसका हिसाब कौड़ियों का हिसाब रखने वाले नहीं रख सकते। वह आदमी चौबीस घंटे जागकर सारे प्राणों से इस मुल्क को जिस भाँति आन्दोलित करने की चेष्टा करता रहा उसका हम कोई हिसाब नहीं रख सकते। यह हो सकता है कि गांधी में जो बल था, वह बल अरविन्द का था, सुभाष में जो ताकत थी, वह अरविन्द की थी।

हिन्दुस्तान के विद्रोह और स्वतन्त्रता के इतिहास में जो सबसे बड़ा कीमती आदमी है, हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के इतिहास में कभी उसका उल्लेख नही होगा, यह पक्का मानिए। लेकिन वह उस तल पर काम कर रहा है जिस तल पर हमारी कोई पकड नही है। वह उन तरगो को पैदा करने की कोशिश कर रहा है जो मुल्क को सोई हुई तन्द्रा को तोड दें, जो विद्रोह के भाव को जगाएँ, क्रान्ति की हवा लाएँ। लेकिन हमें ख्याल भी नही। और जिस दिन कभी हजार दो हजार साल वाद विज्ञान समर्थ होगा इन सूक्ष्म तरगो को पकडने में, शायद उस दिन हमें इतिहास विल्कुल वदल कर लिखना पडे। जो लोग हमें वहुत वडे दिखाई पडते है इतिहास में वह दो कौडी के हो सकते हैं। और जिन्हें हम कभी नही गिनते थे, वे एकदम परम मूल्य पा सकते हैं। क्योकि जब तक सौ रुपये का नोट पहचान में न आए तब तक बडी कठिनाई है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक फूल खिल रहा है, माली पानी डाल देता है, खाद डाल देता है और चला जाता है और एक सगीतज्ञ उसी के पास बैठ कर वीणा बजाता है, कल जब बडे-बडे फूल खिलेंगे तो सगीतज्ञ को कौन धन्यवाद देगा। सगीतज्ञ से मतलब क्या है फूल का। माली को लोग पकडेंगे कि तूने इतना बडा फूल खिला दिया, तेरे खाद, पानी और तेरी सेवा ने। लेकिन ध्वनि-शास्त्र कहता है कि माली जो कुछ भी कर सकता है उसके करने का कोई बडा मूल्य नही है। लेकिन अगर व्यवस्था से सगीत पैदा किया जाए तो फूल उतना बडा हो जाएगा जितना कभी नही हुआ था। ऐसा सगीत भी बजाया जा सकता है कि फूल सुकड़ कर छोटा रह जाए और वह सिर्फ ध्वनियो का खेल है। जब ध्वनियाँ फूलो को बडा कर सकती है तो कोई वजह नहीं कि विशिष्ट चित्त की तरगें देश की चेतना को ऊपर न उठाती हो।

अभी रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक इस चेष्टा में संलग्न है कि क्या इस तरह की ध्वनि तरगें पैदा की जा सकती है कि पूरे मुल्क में आलस्य छा जाए। और इसमें वे काफी हद तक सफल होते चले जा रहे है। कोई कठिनाई नहीं है कि आने वाले युद्ध बमो का युद्ध ही न हों, वे सिर्फ ध्वनि तरंगो के युद्ध हों, आलस्य छा जाए। यानी रूस में रेडियो स्टेशन इस तरह की ध्वनि-लहरियाँ पूरे भारत पर फेक दें कि पूरे भारत का आदमी एकदम आलस्य से भर जाए। यानी उसको कुछ लडने का सवाल ही न रहे, कोई भाव ही न रहे, सैनिक एकदम सो जाएँ और हमारी समझ मे कुछ न आए कि यह क्या हो गया। हमारे भीतर जो सक्रियता है, वह सागे की सारी छीन ली जाए।

इस पर बड़ा काम चल रहा है क्योंकि आखिर चारों ओर ध्वनि-तरंगें हमें घेरे हुए हैं। यह उन पर निर्भर है कि हम क्या करें ? लेकिन उसमें भी गहरी तरंगें हैं जिनका अभी विज्ञान को ठीक-ठीक पता नहीं हो पाया। उन तरंगों पर काम करने वाले लोग हैं। महावीर ने कभी किसी की सेवा नहीं की और यह एक उनके ऊपर इल्जाम रहेगा। लेकिन तब तक यह इल्जाम रहेगा जब तक हम पैसे के सिक्के पहचानते हैं। जिस दिन हम सौ रुपये के नोट पहचानना शुरू कर देंगे उस दिन यह इल्जाम नहीं रह जाएगा बल्कि इसका पता चलेगा कि जो पैर दबा रहे थे, इसलिए दबा रहे थे कि वे और बड़ा कुछ नहीं कर सकते थे। इसलिए पैर दबा कर तृप्ति पा रहे थे। लेकिन पैर दबाने से होता क्या है ?

महावीर की अहिंसा उस तल पर है जिस तल पर सुख-दुःख पहुँचाने का भाव विदा हो गया है, जहाँ सिर्फ महावीर जीते हैं। विज्ञान में इन्हीं तत्त्वों को कैटेलेटिक एजेन्ट कहते हैं जिनकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है। जो खुद कुछ नहीं करते हैं जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन। इन दोनों को आप पास ले आएँ तो वे मिलते नहीं, अलग-अलग ही रहते हैं। लेकिन बीच से बिजली चमक जाए तो वे दोनों मिल जाते हैं और पानी बन जाता है। बिजली की चमक कोई योगदान नहीं करती। उन दोनों के मिलाने में उसका कोई योगदान नहीं है। सिर्फ उसकी मौजूदगी में वे मिल जाते हैं। उससे न कुछ जाता है, न कुछ आता है, न कुछ मिलता है, न कुछ छूटता है। बस वह मौजूद हो जाती है और वे मिल जाते हैं। जिस भाँति भौतिक तल पर कैटेलेटिक एजेन्ट है, वैसे ही आध्यात्मिक तल पर कुछ लोगों ने उनकी स्थिति को छुआ है, जहाँ उनकी मौजूदगी सिर्फ काम करती है, जहाँ वे कुछ भी नहीं करते। यानी महावीर की मौजूदगी ही काम कर देगी इस जगत् में जब वे मौजूद हैं। महावीर और कुछ भी नहीं करेंगे, वह सिर्फ हो जाएँगे। उनका होना काफी है। चेतना के तल पर उनकी मौजूदगी हजारों, लाखों चेतनाओं को जगा देगी, स्वस्थ कर देगी, लेकिन अभी इसकी खोज-बीन होना बाकी है वैज्ञानिक तल पर। आध्यात्मिक तल पर तो खोज-बीन पुरानी है। लेकिन विज्ञान की भाषा में अध्यात्म को समझाया जा सके यह कभी किसी ने सोचा ही नहीं है।

यह कभी आप सोचते ही नहीं हैं कि आप हर हालत में वही नहीं होते। आप हर स्थिति में बदल जाते हैं। अगर आप मेरे सामने हैं तो आप वही आदमी नहीं हैं जो आप घड़ी भर पहले थे। आपके भीतर कुछ ऐसा उठ

आएगा जो आपके भीतर कभी नही उठा था। और उसमें कुछ मैं भी नही कर रहा हूँ। वह उठ सकता है मेरी मौजूदगी में। तो बहुत गहरे तल पर काम करने वाले लोग हैं, बहुत गहरे तल पर सेवा है। लेकिन चूँकि हम पैसों के सिक्के पहचानते हैं, इसलिए कठिनाई हो जाती है! महावीर पर यह इल्जाम रहेगा। इसको मिटाया नही जा सकता। जिस दिन यह मिटेगा, उस दिन वे जिनकी वजह से यह इल्जाम था, दो कौडी के हो जाने वाले हैं। तब महावीर एक नये अर्थ में प्रकट होगे जिसका हिसाब लगाना अभी मुश्किल है। अरविन्द ने जरूर एक चेष्टा की है इस युग में, भारी चेष्टा की है, बडा श्रम उठाया है इस दिशा में लेकिन उनको भी पहचानना मुश्किल पड रहा है और उनको भी सहयोग नही मिल पाता। यह हमारी कल्पना के ही बाहर है कि एक गाँव मे एक आदमी के हट जाने से पूरा गाँव बदल जाता है। वह कुछ भी नहीं करता था, बस वह था। तो भी उसके बदल जाने से पूरा गाँव बदल जाता है।

जबलपुर मे एक फकीर थे मग्घा बाबा। वह ऐसे अद्भुत आदमी है कि उनकी चोरी भी हो जाती है। उन्हे अगर कोई उठाकर ले जाए तो वह चले जाते हैं। उनकी कई बार चोरी हो चुकी है। वह वर्षो के लिए खो जाते हैं। क्योंकि कोई गाँव उनको चुराकर ले जाता है क्योंकि उनकी मौजूदगी के भी परिणाम हैं। अभी वह दो साल से चोरी चले गये है। पता नही कौन ले गया है उनको उठाकर। ऐसा कई दफा हो चुका है। उनको किसी ने उठा कर गाडी में रख लिया तो वह यह भी नही कहेंगे कि क्या कर रहा है, कहाँ ले जा रहा है, क्यों ले जा रहा है? मगर उनकी मौजूदगी के कुछ अच्छे परिणाम हैं जो लोगों को पता चल गये हैं। तो लोग उनको चुराकर ले जाते है। और जिस गाँव में वह होते हैं, जिस घर में वह होते हैं, वहाँ की सब हवा बदल जाती है। वहाँ कुछ भी नही रहता। और वह पडे रहते, सोये रहते हैं ज्यादातर। वह कुछ नही बोलते। लोग आकर उनकी सेवा करते रहते हैं। ऐसा अवसर हो जाता है कि उनको चौबीस घटे ही नही सोने देते। दिन-रात उनकी सेवा करते हैं। एक रात मैं उनके पास से गुजरा, कोई दो बजे थे। उन्होंने मुझसे कहा : मुझ पर कुछ कृपा करो। लोगों को समझाओ। चौबीस घण्टे दबाते रहते हैं। कभी दो-चार आदमी इकट्ठे दबा रहे है। तो वह बूढा आदमी बेचारा लेटा है और कोई आदमी पैर दबा रहा है, कोई सिर दबा रहा है। उनकी सेवा का आनन्द है और उनके पास होने में आनन्द है। कोई जरूरत नही कि वह कुछ करें।

प्रश्न बहुत विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर छोटे से भारत में और वहाँ भी दो-तीन प्रदेशों मे ही चौबीस तीर्थंकर क्यो हुए ? हर कहीं क्यों नहीं हुए ?

उत्तर : यह हर कही नही हो सकते। क्योंकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने की हवा पैदा करती है। यह एक शृंखला है इसमें वह एक जो मौजूद था उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, चेतना को एकदम ऊँचा उठा दिया। इस ऊँची उठी हुई चेतना में ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है। एक शृंखला है उसमें। और यह भी जानकर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुरुष पैदा होते हैं तो करीब-करीब एक शृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेर लेते हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, अजित, संजय, पूर्ण काश्यप—ये सब हुए पाँच सौ वर्ष के बीच में विहार मे। उन्हीं पाँच सौ वर्षों में एथेन्स में सुकरात, अरस्तू, प्लेटो हुए हैं। यानी पाँच सौ वर्षों मे सारी पृथ्वी पर एक शृंखला घूम गई जिसे कि अब विज्ञान समझता है शृंखलाबद्ध विस्फोट। अगर हम एक हाइड्रोजन बम के अणु को फोट दें तो उसकी गर्मी से पड़ोस का दूसरा हाइड्रोजन बम फूट जाएगा और उसकी गर्मी से तीसरा और उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नही बचेगी क्योंकि शृंखला में पृथ्वी के सारे हाइड्रोजन एटम टूटने लगेंगे। सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली बार हाइड्रोजन एटम कभी अरबों, खरबों वर्ष पहले टूटा होगा। और वह भी हुआ होगा किसी बडे तारे की मौजूदगी से जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक अणु टूट गया होगा। उसके टूटने से उसके पड़ोस का अणु टूटा होगा, उसके टूटने से उसके पड़ोस का और तब से सूरज के आस-पास जो हीलियन की गैस इकट्ठी है उसके अणु टूटते चले जा रहे हैं। उन्ही से हमें गर्मी मिल रही है। इसीलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल बाद सूरज ठंडा हो जाएगा क्योंकि अब जितने अणु बचे हैं वे चार हजार साल में खत्म हो जाएँगे। यह शृंखला चल रही है।

जैसे पदार्थ के तल पर शृंखलाबद्ध स्फोट (एक्सप्लोजन) होता है वैसे ही अध्यात्म के तल पर शृंखलाबद्ध स्फोट होता है। जैसे एक मकान में आग लग गई तो पड़ोस के मकान में आग लग जाए, पड़ोस के मकान में लग गई तो उसके पड़ोस में लग जाए, और इस प्रकार पूरा गाँव जल जाए वैसे ही एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो सम्भावना पैदा कर देता है उस कीमत

के सैकड़ो लोगो के पैदा होने की। ऊपर से दिखता है कि महावीर और बुद्ध दुश्मन हैं। लेकिन महावीर के विस्फोट का फल हैं बुद्ध। फल इन अर्थों में कि अगर महावीर न हो तो बुद्ध का होना मुश्किल है। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण काश्यप, गोशाल सब विरोधी हैं। लेकिन किसी को ख्याल नही है इस बात का कि वे सब एक ही शृंखला के हिस्से हैं। एक का विस्फोट हुआ है तो हवा बन गई है। उसकी उपस्थिति ने सारी चेतनाओ को इकट्ठा कर दिया है और आग पकड़ गई है। अब इस आग पकड़ने में जिनकी सम्भावना ज्यादा होगी वह उतनी तीव्रता से फूट जाएँगे। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक युग में एक तरह के लोग पैदा हो जाते हैं। एक वक्त में, एक प्रदेश मे, एकदम से प्रतिभा प्रकट होती है। इस प्रतिभा के भी आन्तरिक नियम और कारण है, तो चौबीस तीर्थंकरो का पैदा होना सीमित क्षेत्र में और वही-वही, एक ही देश में उसका कारण है। उस तरह की प्रतिभा के विस्फोट के लिए हवा चाहिए।

प्रश्न शृङ्खला मे चौबीस व्यक्ति ही क्यो होते हैं? पच्चीस क्यो नहीं होते, तीस क्यों नहीं होते?

उत्तर हाँ उसका भी कारण है। उसका संख्या से कोई सम्बन्ध नही है। असल में पच्चीस होते है, छब्बीस होते है, सत्ताईस होते हैं, कितने ही होते हैं इसका संख्या से कोई सम्बन्ध नही है। लेकिन जब एक शृंखला में एक बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाता है जैसे कि चौबीस तीर्थंकरो की शृंखला में महावीर सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं तब हमें परम बात उपलब्ध हो जाती है। जो जानना था, वह जान लिया गया है, जो पहचानना था, वह पहचान लिया गया है। जो कहना था, वह कह दिया गया है। और अनुयायी को हमेशा डर होता है कि अगर प्रतिभा के लिए आगे द्वार खुले तो प्रतिभा हमेशा अस्त-व्यस्त कर देती है क्योंकि वह विद्रोही है और अराजक है। तो अनुयायी भयभीत होता है। वह अपनी सुरक्षा के लिए व्यवस्था कर लेता है। वह कहता है कि अब बस ठीक है।

प्रश्न : बीस तक क्या कम है?

उत्तर : हाँ, कम ही है। इन चौबीस तीर्थंकरो में महावीर केन्द्र हैं। इनके मुकाबले मे कोई आदमी नही है। ज्ञान तो बराबर उपलब्ध होता है सबको। लेकिन महावीर के बराबर कोई अभिव्यक्ति नही कर पाता है, कोई समझा नही पाता है, कोई खबर नहीं पहुँचा पाता है।

प्रश्न : बहुत विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर छोटे से भारत मे और वहाँ भी दो-तीन प्रदेशों में ही चौबीस तीर्थंकर क्यो हुए ? हर कहीं क्यो नहीं हुए ?

उत्तर : यह हर कही नही हो सकते। क्योंकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने की हवा पैदा करती है। यह एक शृंखला है इसमें वह एक जो मौजूद था उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, चेतना को एकदम ऊँचा उठा दिया। इस ऊँची उठी हुई चेतना में ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है। एक शृंखला है उसमें। और यह भी जानकर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुरुष पैदा होते हैं तो करीब-करीब एक शृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेर लेते हैं। महावीर, बुद्ध, गोशाल, अजित, संजय, पूर्ण काश्यप—ये सब हुए पाँच सौ वर्ष के बीच में बिहार में। उन्ही पाँच सौ वर्षों में एथेन्स में सुकरात, अरस्तू, प्लेटो हुए है। यानी पाँच सौ वर्षों मे सारी पृथ्वी पर एक शृंखला घूम गई जिसे कि अब विज्ञान समझता है शृंखलाबद्ध विस्फोट। अगर हम एक हाइड्रोजन बम के अणु को फोड दें तो उसकी गर्मी से पडोस का दूसरा हाइड्रोजन बम फूट जाएगा और उसकी गर्मी से तीसरा और उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नही बचेगी क्योंकि शृंखला में पृथ्वी के सारे हाइड्रोजन एटम टूटने लगेंगे। सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली बार हाइड्रोजन एटम कभी अरबो, खरबो वर्ष पहले टूटा होगा। और वह भी हुआ होगा किसी बड़े तारे की मौजूदगी से जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक अणु टूट गया होगा। उसके टूटने से उसके पडोस का अणु टूटा होगा, उसके टूटने से उसके पडोस का और तब से सूरज के आस-पास जो हीलियन की गैस इकट्ठी है उसके अणु टूटते चले जा रहे हैं। उन्ही से हमें गर्मी मिल रही है। इसीलिए वैज्ञानिक कहते है कि चार हजार साल बाद सूरज ठंडा हो जाएगा क्योंकि अब जितने अणु बचे है वे चार हजार साल में खतम हो जाएँगे। यह शृंखला चल रही है।

जैसे पदार्थ के तल पर शृंखलाबद्ध स्फोट (एक्सप्लोजन) होता है वैसे ही अध्यात्म के तल पर शृंखलाबद्ध स्फोट होता है। जैसे एक मकान में आग लग गई तो पड़ोस के मकान में आग लग जाए, पड़ोस के मकान में लग गई तो उसके पड़ोस में लग जाए, और इस प्रकार पूरा गाँव जल जाए वैसे ही एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो सम्भावना पैदा कर देता है उस कीमत

कृष्णमूर्ति के पीछे बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध में हैं और रमण के पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढ़ा सके आगे बात को। रामकृष्ण को विवेकानन्द मिले। विवेकानन्द बहुत शक्तिशाली व्यक्ति थे, अनुभवी नहीं। शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया लेकिन चक्र में ज्यादा जान नहीं है। इसलिए वह जाने वाला नहीं है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं लेकिन शिक्षक होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति नहीं है उनकी। शिक्षक वह नहीं हो सकते। इसलिए ऐसा कई बार होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नहीं हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखकर शिक्षण का कार्य करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कन्धे पर हाथ रखकर शिक्षक का कार्य विवेकानन्द से लिया। लेकिन गड़बड़ हो गई। रामकृष्ण अपने आप शिक्षक नहीं हो सकते और विवेकानन्द अनुभवी नहीं हैं। इसलिए सब गड़बड़ हो गई। अस्त-व्यस्त हो गया सब मामला और फिर राम-कृष्ण की मृत्यु हो गई। फिर विवेकानन्द रह गए। विवेकानन्द ने जो शक्ल दी उस व्यवस्था को, वह विवेकानन्द का है। विवेकानन्द एक बहुत बड़े व्यव-स्थापक हैं। अगर विवेकानन्द को अनुभव होता तो एक शृंखला शुरू हो जाती। लेकिन वह नहीं हो सकी क्योंकि विवेकानन्द का कोई अनुभव नहीं था। और जिसको अनुभव है वह व्यवस्थापक नहीं। रमण के साथ हो सकती थी घटना क्योंकि वह उसी कीमत के आदमी हैं जिस कीमत के बुद्ध या महावीर हैं लेकिन वह नहीं हो सका क्योंकि कोई आदमी नहीं उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध में हैं इसलिए कोई सवाल उठता नहीं।

प्रश्न पश्चिम में भी क्या यह शृंखला है ?

उत्तर : पश्चिम में भी यह शृङ्खला है। पश्चिम में भी फकीरों की शृंखला है। जैसे जीसस की शृंखला चली थोड़े दिनों तक। फिर शृङ्खला का द्वार बन्द हो गया। उसके बाद दूसरी शृङ्खला चली। जर्मनी में एकहार्ट नाम का एक बहुत कीमत का आदमी हुआ। लेकिन वह शृङ्खला नहीं पकड़ सका क्योंकि वह कोई शिक्षक नहीं था। जो बात कहता है वे बेबूझ हो जाती हैं। समझाने की समझ न हो तो समझाया नहीं जा सकता। कुछ बातें एकदम विरोधी मालूम होती हैं। समझ लो तो ही उनके विरोधाभास को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है। बोहमे हुआ जर्मनी में। वह भी एक शृङ्खला बन सकता था लेकिन नहीं बन सका। सब शृङ्खलाएँ धीरे-धीरे मर

प्रश्न : आपकी राय मे कोई पच्चीसवाँ तीर्थंकर हो सकता है ?

उत्तर : होता ही रहता है। जैन मना कर देते हैं तो पच्चीसवाँ तीर्थंकर नम्बर एक वन जाता है किसी दूसरी शृखला का। अगर पच्चीसवाँ होता तो वुद्ध को अलग शृखला की जरूरत न पडती। वुद्ध पच्चीसवें हो जाते। कठिनाई यह है कि जव भी कोई परम्परा अपने अन्तिम पुरुष को पा लेती है तो फिर वह उसके वाद दूसरो के लिए द्वार वन्द कर देती है स्वाभाविक रूप से क्योंकि फिर वह उपद्रव नही लाना चाहती क्योकि नई प्रतिभा नया उपद्रव लाती है। इसलिए वह सुनिश्चित हो जाती है कि हमारी वात पूरी हो गई, हमारा शास्त्र पूरा हो गया है, अव हम शृङ्खलावद्ध हो जाते हैं, अव हम दूसरे को मौका नही देंगे। इसीलिए फिर पच्चीसवें को नई शृङ्खला का पहला होना पडता है। वुद्ध पच्चीसवे हो गए होते। कोई वाधा न थी। मगर इन्होने द्वार खोल रखे होते। लेकिन एक और कारण हो गया कि वुद्ध मौजूद थे उसी वक्त। और द्वार वन्द कर देने एकदम जरूरी हो गए। क्योकि अगर वुद्ध आते है तो सव अस्त-व्यस्त हो जाता है। जो महावीर कह रहे हैं उसको अस्त-व्यस्त कर देंगे, नई व्यवस्था देंगे। वह नई व्यवस्था मुश्किल में डाल देगी। इस वजह से एकदम दरवाजा वन्द कर दिया गया कि चौवीस मे ज्यादा हो ही नही सकते और चौवीसवाँ हमारा हो चुका है।

प्रश्न : यह अनुयायियो ने किया ?

उत्तर : यह अनुयायियों की व्यवस्था है सारी। अनुयायी वहुत भयभीत हैं, एकदम भयभीत है। समझ ले कि आप मुझे प्रेम करने लगे और मेरी वात आपको ठीक लगने लगे तो आप एक दिन दरवाजा वन्द कर देंगे क्योकि आपको लगेगा कि दूसरा आदमी अगर आता है और फिर वह उनकी सव वातें गडवड कर देता है तो आपको पीडा होगी उससे। आप दरवाजा ही वन्द कर देंगे कि वस अव कोई जरूरत नही है। इसलिए मुहम्मद के वाद मुसलमानो ने दरवाजा वन्द कर दिया। जीसस के वाद ईसाइयो ने दरवाजा वन्द कर दिया। वुद्ध के वाद वौद्धों ने दरवाजा वन्द कर दिया। एक मैत्रेय की कल्पना चलती है कि कभी वुद्ध एक और अवतार लगे मैत्रेय का। लेकिन वह भी वुद्ध ही लेंगे, कोई दूसरा आदमी नहीं लेगा।

यहाँ सवसे ज्यादा प्रभावशाली आदमी इन दो-तीन सौ वर्षों मे रमण और कृष्णमूर्ति हैं। लेकिन न तो रमण के पीछे शृङ्खला वन सकी और न

कृष्णमूर्ति के पीछे बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध में हैं और रमण के पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढा सके आगे बात को। रामकृष्ण को विवेकानन्द मिले। विवेकानन्द बहुत शक्तिशाली व्यक्ति थे, अनुभवी नहीं। शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया लेकिन चक्र में ज्यादा जान नहीं है। इसलिए वह जाने वाला नहीं है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं लेकिन शिक्षक होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति नहीं है उनकी। शिक्षक वह नहीं हो सकते। इसलिए ऐसा कई बार होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नहीं हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखकर शिक्षण का कार्य करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कन्धे पर हाथ रखकर शिक्षक का कार्य विवेकानन्द से लिया। लेकिन गडबड हो गई। रामकृष्ण अपने आप शिक्षक नहीं हो सकते और विवेकानन्द अनुभवी नहीं हैं। इसलिए सब गडबड हो गई। अस्त-व्यस्त हो गया सब मामला और फिर रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। फिर विवेकानन्द रह गए। विवेकानन्द ने जो शक्ल दी उस व्यवस्था को, वह विवेकानन्द की है। विवेकानन्द एक बहुत बडे व्यवस्थापक हैं। अगर विवेकानन्द को अनुभव होता तो एक शृंखला शुरु हो जाती। लेकिन वह नहीं हो सकी क्योंकि विवेकानन्द का कोई अनुभव नहीं था। और जिसको अनुभव है वह व्यवस्थापक नहीं। रमण के साथ हो सकती थी घटना क्योंकि वह उसी कीमत के आदमी हैं जिस कीमत के बुद्ध या महावीर हैं लेकिन वह नहीं हो सका क्योंकि कोई आदमी नहीं उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध में हैं इसलिए कोई सवाल उठता नहीं।

प्रश्न : पश्चिम में भी क्या यह शृंखला है ?

उत्तर : पश्चिम में भी यह शृंखला है। पश्चिम में भी फकीरों की शृंखला है। जैसे जीसस की शृंखला चली थोडे दिनों तक। फिर शृंखला का द्वार बन्द हो गया। उसके बाद दूसरी शृंखला चली। जर्मनी में एकहार्ट नाम का एक बहुत कीमत का आदमी हुआ। लेकिन वह शृंखला नहीं पकड सका क्योंकि वह कोई शिक्षक नहीं था। जो बात कहता है वे बेबूझ हो जाती हैं। समझाने की समझ न हो तो समझाया नहीं जा सकता। कुछ बातें एकदम विरोधी मालूम होती हैं। समझ लो तो हाँ उनके विरोधाभास को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है। बोहमे हुआ जर्मनी में। वह भी एक शृंखला बन सकता था लेकिन नहीं बन सका। सब शृंखलाएँ धीरे-धीरे मर

जाती है। जैसे जापान में ज़ेन शृङ्खला चलती है। उसमें अभी भी एक प्रतिभाशाली आदमी था सुज़ूकी। लेकिन वह मर गया। उसने बड़ी कोशिश की कि वह गति दे दे लेकिन वह गति नहीं हो पाई। और फिर होता क्या है? जब कोई महापुरुष एक शृङ्खला को जन्म दे जाता है अगर उसके बाद छोटे-छोटे लोग इकट्ठे हो जाएँ और वे उसके दावेदार हो जाएँ तो दोहरा नुकसान पहुँचता है। एक तो वे कुछ चला नहीं सकते और दूसरा जब कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति उस शृङ्खला में पैदा भी हो जाए तो उसे उस शृङ्खला के बाहर कर देते हैं। वह नासमझों की भीड़ उसे एकदम बाहर कर देती है।

असल में जीसस यहूदी शृङ्खला का हिस्सा हो सकता था। लेकिन यहूदी भीड़ जीसस को बर्दाश्त न कर सकी। उस भीड़ ने बाहर कर दिया उसको। यहूदियों का बेटा यहूदियों के बाहर हो गया और ईसाइयत शुरू हो गई। अब ईसाइयत के बीच जो भी कीमती आदमी पैदा होता है, ईसाइयत उसको बाहर कर देती है फौरन। होता क्या है कि वह जो नासमझों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है, वह फिर किसी प्रतिभा को बर्दाश्त नहीं कर सकती। और जो प्रतिभा शृंखला को जिन्दा रख सकती है, उसको वह बाहर कर देती है। तब नई शृङ्खलाएँ शुरू हो जाती हैं। दुनिया में सिर्फ कोई पचास शृंखलाएँ चली हैं, थोड़ी-बहुत चलीं, टूट गईं और मिट गईं। मेरा कहना है कि दुनिया को जितना आध्यात्मिक लाभ पहुँच सकता था इन सबसे वह नहीं पहुँच पाया। और अब हमें चाहिए कि हम सारी व्यवस्था तोड़ दें सम्प्रदाय की ताकि प्रतिभा को बाहर निकालने का उपाय ही न रह जाए कहीं से भी। जैसे थियोसाफी की शृङ्खला थी बड़ी कीमती। उसे ब्लेवटस्की ने शुरू किया और वह कृष्णमूर्ति तक आई। लेकिन कृष्णमूर्ति इतने साहसी साबित हुए कि थियोसोफिस्ट बर्दाश्त नहीं कर सके। थियोसोफिस्टों ने कृष्णमूर्ति को बाहर कर दिया। थियोसोफिस्ट शृंखला मर गई। वह मर गई इसलिए कि जो कीमती आदमी उसे गति दे सकता था उसको तो बाहर निकाल दिया।

जब तक दुनिया से सम्प्रदाय मिट न जाएँ, सीमाएँ मिट न जाएँ, तब तक विस्फोट हो नहीं पाता। जैसे इस मकान में आग लगी तो पड़ोस के मकान में इसलिए आग लग सकती है कि वह उससे जुड़ा हुआ है। अगर बीच में एक गली है तो आग नहीं लग सकती। अब अगर रमण पैदा भी हो जाएँ तो ईसाइयत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता क्योंकि मकान अलग-अलग हैं। तो शृङ्खला बहुत दफा पैदा होती है। लेकिन वे जो अलग-अलग टुकड़े बनाकर

रखे हुए हैं वह उन्ही में भटक कर मर जाती है। बाहर जाने का कोई उपाय नही। और अगर दुबारा कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाय तो वह भीड उसे निकाल बाहर कर देती है कि हमारे घरो में इसे रहने नही देना, यह आग लगवा देगा, और उसको फिर नया घर बनाना पडता है, और नया घर बनाना मुश्किल है। मतलब यह कि वह मुश्किल से जिन्दगी भर में थोडे बहुत लोग इकट्ठा कर पाता है। तो अब तक आध्यात्मिक जगत् में जो नुकसान पहुँचता रहा है मनुष्य को वह इसलिए कि जो सम्प्रदाय है, सीमाएँ हैं वे बहुत सख्त और मजबूत हो जाती हैं। पच्चीसवाँ तीर्थंकर पैदा हो सकता है निरन्तर। इसमें कोई कठिनाई नही है। छब्बीसवाँ होगा, इसमें कोई सवाल ही नही है, कोई सीमा नहीं, कोई सख्या नहीं।

प्रश्न : महावीर का कुछ काम बाकी रहे तब पच्चीसवा हो सकता है?

उत्तर : काम तो कभी खत्म होता ही नही। महावीर का थोडे ही कोई काम है? काम तो यहाँ ज्ञान और अज्ञान की लडाई का है, मूर्च्छा और अमूर्च्छा का है। महावीर का थोडे ही कोई काम है।

प्रश्न : मुसलमानो मे भी फकीर हुए हैं क्या मुहम्मद के बाद?

उत्तर : हाँ, मुहम्मद के बाद बहुत लोग हुए हैं लेकिन उन्हें निकाल दिया मुसलमानो ने बाहर। जैसे बायजिद हुआ। उसे बाहर निकाल दिया फौरन। जैसे मन्सूर हुआ। गर्दन उडा दी उसकी। मुहम्मद के बाद जो भी कीमती आदमी हुए वे अलग हिस्सा हो गए सूफियों का। मुसलमान फिक्र नही करता उनको मानने की और सूफियो में भी सिलसिले बढते चले गए।

प्रश्न सूफी किसे कहते हैं मोटे तौर पर?

उत्तर : सूफी मुसलमानो के बीच मे क्रान्तिकारी रहस्यवादियों का एक वर्ग है जैसा कि बौद्धो में जेन फकीरो का एक वर्ग है, जैसा यहूदियो मे 'हसीद' फकीरों का एक वर्ग है। यह सब बगावती लोग हैं जो परम्परा में पैदा होते है लेकिन इतने कीमती है कि उनका बगावत करनी पडती है। अब जैसे कि मुहम्मद के पीछे नियम बना कि एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह का एक ही पैगम्बर है : मुहम्मद। सूफियो ने कहा कि एक अल्लाह है, यह तो बिलकुल ठीक है लेकिन पैगम्बर हजारा हैं। बस झगडा शुरू हो गया। मुसलमान जब मस्जिद में नमाज पढता है तो वह कहता है कि एक ही परम्परा है और एक ही उसका पैगम्बर है मुहम्मद। सूफी भी मस्जिद में नमाज पढता है लेकिन वह

कहता है कि एक ही परमात्मा है लेकिन पैगम्बर अर्थात् सन्देश लाने वाले तो हजारों हैं। क्योंकि वह कहता है कि महावीर भी ठीक, बुद्ध भी ठीक, जीसस भी ठीक, यह सभी पैगम्बर हैं। एक ही खबर लाने वाले ये अनेक लोग हैं। मगर यह मुसलमान की बरदाश्त के बाहर है।

अभी मेरा एक वक्तव्य छपा। उसमें मैंने महावीर के साथ मुहम्मद और ईसा का नाम लिया। तो एक बड़े जैन मुनि हैं, जिनके बड़े भक्त हैं, उनको वह किताब किसी ने न दी तो उन्होंने उसे उठाकर फेंक दिया और कहा कि महावीर का नाम मुहम्मद के साथ! कहाँ मुहम्मद कहाँ महावीर! महावीर सर्वज्ञ तीर्थंकर और मुहम्मद साधारण अज्ञानी। कहाँ मेल बैठा दिया। दोनों का नाम साथ दिया, यही पाप हो गया। फिर उन्होंने कहा कि इसको मैं पढ़ ही नहीं सकता। तो वही मुहम्मद को मानने वाला भी कहेगा कि मुहम्मद का नाम महावीर के साथ लिख दिया। कहाँ पैगम्बर मुहम्मद और कहाँ महावीर? क्या रखा है महावीर में। तो वह जो सूफी कहेगा कि सब पैगम्बर हैं उसी के, वह बरदाश्त के बाहर हो जाएगा। अज्ञानियों की भीड़ में ज्ञान सदा बरदाश्त के बाहर हो जाता है, इसलिए कठिनाई हो जाती है। सबकी चेतना समान है किन्तु अभिव्यक्ति बिल्कुल अलग-अलग है। मुहम्मद मुहम्मद हैं, महावीर महावीर हैं। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। मुहम्मद जो बोलेंगे, वह मुहम्मद का बोलना है। अपनी भाषा होगी, अपनी परम्परा के शब्द होंगे। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। अनुभूति बिल्कुल एक है।

प्रश्न सबकी एक-एक अभिव्यक्ति है तो उनके सुनने वाले समझ कर साधना में लग जाते हैं। फिर आपने सब अभिव्यक्तियों की अलग-अलग बात की है तो आपके सुनने वालों का क्या होगा?

उत्तर : मेरे सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है क्योंकि अगर मैं कोई एक ही बात कहता तब बहुत आसान था मेरे पीछे चलना। पहली बात कि मैं पीछे नहीं चलाना चाहता किसी को। जरूरत ही नहीं मेरे पीछे चलने की। दूसरी बात मैं चीजों को इतना आसान भी बनाना नहीं चाहता क्योंकि आसान बनाकर नुकसान हुआ है। सम्प्रदाय इसीलिए बने। मैं तो उन सारी धाराओं की बात करूँगा, उन सारे नियमों की बात करूँगा और उन सारी पद्धतियों की, उन सारे रास्तों की जो मनुष्य ने कभी भी आविष्कार किए हैं। शायद इस तरह की कोशिश कभी नहीं की गई। रामकृष्ण ने थोड़ी-सी कोशिश की थी। उन्होंने

सभी साधना-पद्धतियो का प्रयोग किया और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सब रास्ते अलग हैं किन्तु पहाड़ की चोटी पर सब एक हो जाते हैं। लेकिन उनके पास कोई उपाय नही था कि वह कह सकते। फिर उन्होने वही साधना-पद्धति अपनाई जो बगाल में उन्हें उपलब्ध थी। सारे जगत् के बावत उनका विचार विस्तीर्ण नही था।

मैं एक प्रयोग करना चाहता हूँ कि सारी दुनिया में अब तक जो किया गया है परम जीवन को पाने का, उसकी सार्थकता को एक साथ इकट्ठा ले आऊँ। निश्चित ही मैं कोई सम्प्रदाय नही बनाना चाहता। लेकिन मैं चाहता हूँ कि सम्प्रदाय मिट जाएँ। मैं अनुयायी भी नही बना सकता क्योकि मैं चाहता हूँ कि अनुयायी हो ही नही। मेरी चाह यह है कि मनुष्य ने जो अब तक खोजा है वह एकदम निकट आ जाए। इसलिए मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास मिलेगा। क्योंकि जब मैं किसी मार्ग की बात कर रहा होता हूँ तो मैं उसी मार्ग की बात कर रहा होता हूँ। जब दूसरे मार्ग की बात कर रहा होता हूँ तो उन मार्ग की बात कर रहा होता हूँ। और इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग वृक्ष मिलते हैं, अलग-अलग चौराहे मिलते हैं। इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग मन्दिर का आभास है। इन दोनो मार्गों पर अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियाँ हैं मगर परम अनुभूति समान है। वह तो मैं जिन्दगी भर बोलता रहूंगा, धीरे-धीरे जब तुम्हें सब साफ हो जाएगा कि मैं हजार रास्तो की बातें कर रहा हू तब तुम्हे ख्याल में आएगा और फिर तुम्हे जो ठीक रास्ता लगे चलना। लेकिन एक फर्क पडेगा।

मेरी बात समझकर जो गति करेगा वह किसी भी रास्ते पर जाए तो वह उसे अनुकूल होगा। वह दूसरे मार्ग की दुश्मनी की बात नही करेगा। वह इतना ही कहेगा कि मेरे लिए अनुकूल है यही रास्ता। तब हो सकता है कि पति सूफियो को मानता हो, पत्नी मीरा के रास्ते पर जाती हो, बेटा हिन्दू हो, जैन हो या बौद्ध हो। तब एक परम स्वतन्त्रता होगी रास्तो की। और हर घर मे रास्तो के बाबत थोड़ा-सा परिचय होगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए रास्ता चुन सके कि उसके लिए क्या उचित हो सकता है। अभी कठिनाई यह है कि एक आदमी जैन घराने में पैदा हो जाता है। और हो सकता है कि उनके लिए महावीर का रास्ता अनुकूल न हो। मगर वह कभी कृष्ण के रास्ते पर नही जाएगा जो कि उसके लिए अनुकूल हो सकता था। एक आदमी कृष्ण को मानने वाले घर में पैदा हो गया तो वह महावीर के बारे में कभी सोचेगा ही

नही। और हो सकता है कि उसे कृष्ण का रास्ता बिल्कुल अनुकूल न हो और वह महावीर के रास्ते जा सकता था। तो मेरा काम ही यह है कि मै सारे रास्तो को निकट खड़ा कर दूं ताकि एक दृष्टि में वे दिखाई पडने लगें, एक झलक में आदमी उन्हें देख सके, पहचान सके और निष्पक्ष होकर सोच सके अपनी स्थिति के साथ तोल करके कि कौन-सा रास्ता मेरे लिए उपयोगी है। लेकिन तब वह दूसरे की दुश्मनी नही है। तुमने जो कपडे पहने हुए हैं वह तुम्हारी मौज है।

प्रश्न : रास्तो का भी विश्लेषण किसी वक्त हो सके ?

उत्तर . ऐसा तो होता ही चला जाता है। अब जैसे मैंने महावीर की बात की तो इसमें महावीर के रास्ते का पूरा विश्लेषण हो जाएगा। कल मुहम्मद की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। परसो क्राइस्ट की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा, कृष्ण की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। वह होता चला जाएगा। व्यक्तियों को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हूं और फिर शास्त्र को चुनकर भी बात कर लेना चाहता हू। जैसे गीता को, कुरान को, बाइबिल को। उनको भी चुनकर बात कर लेना चाहता हूँ। अगर पूरी जिन्दगी मे इतना भी काम हो सका तो बडा तृप्तिदायी है।

प्रश्न : जिन्दगी सीमित है। कहीं ऐसा न हो कि जो आप सोच रहे है वह अधूरा रह जाए। इसे किसी दूसरे को देने वाली बात भी आप के ध्यान मे रहनी चाहिए।

उत्तर : आप ठीक कहते है कि जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं और यह भी बात ठीक है कि इतने बडे काम को एक आदमी जिन्दगी में कर पाए, न कर पाए। भरोसा एक ही है कि काम में मेरा कोई स्वार्थ नही है। अगर जिन्दगी की मर्जी होगी तो पूरा काम ले लेगी, नहीं होगी तो नहीं लेगी। यानी उससे मुझे कोई जिद भी नही कि वह पूरा होना ही चाहिए। वे लोग जो धीरे-धीरे मेरे करीब आते है निश्चित ही उनमे काम लिया जा सकता है। और वह भी जिन्दगी को लेना होगा तो ही। उसका भी मेरे मन में कल के लिए हिसाब नही है। कल आएगा तो जो काम जिन्दगी को लेना होगा, ले लेगी। नही लेना होगा तो कल नहीं आएगा। इसमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। इसलिए मैं निश्चिन्त हूं। कोई तनाव भी नही है उसका।

अब जैसे मैं महावीर के सम्बन्ध में जो कह रहा हूँ उसे कभी मैंने बैठकर सोचा भी नहीं है। आप से बात होती है तो सोचता चलता हूँ। कल क्राइस्ट के बाबत क्या कहूँगा, यह मुझे खुद पता नहीं है। सोचता चलूँगा। इधर मेरी अपनी भीतरी स्थिति यह है कि बिल्कुल सब छोड़ा हुआ है। जहाँ परमात्मा ले जाए, जहाँ बहा दे, जो करवाना है करवा दे, न करवाना है न करवा दे तो उसकी मर्जी। उसमें भी मेरी ओर से कोई आग्रह नहीं है किसी तरह का। और उसे काम लेना होता है तो हजार तरह से काम ले लेता है, हजार तरह से पूरा करवा लेता है। वह भी उसके हाथ की बात है।

प्रश्न : आपने कहा कि इसलिए कि शृंखला न चले, सम्प्रदाय न रहे, मैं हर धर्म को सामने पेश करूँगा किन्तु इसमे तो सम्प्रदाय खडा रहेगा। मगर परिवार के अन्दर जब कर्त्तव्य वाले आदमी होंगे तो सत्य का स्वरूप स्वय प्रकट होगा, सत्य अपने आप आ जाएगा। इस पर आप जोर क्यों नहीं देते ?

उत्तर : अगर सब धर्मों को समझने की सद्‌बुद्धि हममें आ जाए तो सत्य का स्वरूप स्वय प्रकट हो जाएगा। उस पर जोर देने की जरूरत नहीं है। यानी अभी तक जो झगडा है वह इसी बात का है कि प्रत्येक धर्म वाला व्यक्ति यह समझता है कि सत्य का मेरा ठेका है और बाकी सब असत्य हैं। अगर मैं सबके भीतर सत्य को बता सकूँ तो यह बात टूट जाती है। इसको जोर देने की जरूरत नहीं है। यह तो सुनते-सुनते टूट जाएगी और तुम उस जगह पर पहुँच जाओगे कि यह कहना मुश्किल हो जाएगा कि मैं हिन्दू हूं कि मैं मुसलमान हू कि मैं ईसाई हू। अगर तुम सुनते-सुनते न पहुँच जाओ और मुझे जोर देना पडे तो वह जोर जबरदस्ती हो जाएगी। यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बात सुनते-सुनते तुम करीब पहुँच गए तो ठीक। पीछे से जोर देना पडे तो फिर ठीक नहीं है।

प्रश्न : क्या उपयोगी दृष्टि से पशुहिंसा न्यायसगत है ?

उत्तर : सिर्फ उपयोगी दृष्टि से ही पशुहिंसा न्यायसगत नहीं है, बाकी सब दृष्टियों से न्यायसंगत है। इसलिए मनुष्य से नीचे तलों पर हम पशुहिंसा को अन्याय नहीं कहते क्योंकि उन तलो पर जीवन ही सब कुछ है और जीवन के लिए जो कुछ किया जा रहा है, सब ठीक है। पशु और मनुष्य में एक ही फर्क है कि मनुष्य सचेत है, जागृत है, स्वचेतन है। उसने चीजों में देखना शुरू

किया है। उसके लिए भोजन इतना महत्त्वपूर्ण नही जितना भोजन का साधन महत्त्वपूर्ण है। एक बार वह भोजन से चूक सकता है, लेकिन मनुष्यता से नही चूक सकता।

मैंने एक कहानी पढी है। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बटवारा हुआ। एक गाव में उपद्रव हो गया, दगा हो गया। एक परिवार भागा। पति है, साथ में पत्नी है, बच्चा है। दो बच्चे कही खो गए। गाएँ थी, भैसे थी वह सब खो गई। सिर्फ एक गाय बचा पाए। लेकिन उस गाय का बछडा था, वह भी खो गया। वे सब जगल में छिपे है। दुश्मन आस-पास है, मशालें दिखाई पड रही है। बच्चा रोना शुरू करता है। माँ घबडा जाती है। वह पहले उसका मुँह बद करती है, उसे दबाती है, रोकती है। लेकिन वह जितना दबाती है वह उतना रोता है। फिर माँ-बाप उसकी गर्दन दबाते है क्योकि जान बचाने के लिए दूसरा कोई उपाय नही है। वह चिल्लाता है तो अभी दुश्मन आवाज सुन लेगा और मौत हो जाएगी। लेकिन तभी उस गाय के बछडे की आवाज कही दूसरे दरख्तो के पास से सुनाई पडती है और वह गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। गाय को चिल्लाते सुनकर दुश्मन पास आ जाता है। बच्चे की गर्दन दबानी आसान थी, गाय की गर्दन भी नही दबती। गाय को मारो कैसे! कोई उपाय भी नही है मारने का। तो वह औरत अपने पति से कहती है कि तुमसे कितना कहा कि इस हैवान को साथ मत ले चलो। लेकिन पति कहता है कि मैं यह विचार कर रहा हूँ कि पशु कौन है? हम या यह गाय? हमने अपने बच्चे को मार डाला है अपने को बचाने के लिए तो हैवान कौन है? मैं इस चिन्ता में पड गया हूँ। दुश्मनो की मशाले करीब आती चली जाती है। गाय भागती है क्योकि उसी तरफ उसके बछडे की आवाज आ रही है। वह दुश्मनो के बीच घुस जाती है। लोग उसे आग लगा देते है। वह जल जाती है लेकिन बछडे के लिए चिल्लाती रहती है। तो वह पति कहता है कि मैं पूछता हूँ कि पशु कौन है, आज मेरे तरफ से पहली दफ़ा जिन्दगी में ख्याल उठा है कि किसको हम मनुष्य कहें, किसको हम पशु कहें? उपयोगी दृष्टि से शायद यह जरूरी है कि मनुष्य पशुओ को मारे, नही तो मनुष्य नही बच सकेगा। यह बात इस अर्थ में बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य अगर शरीर के तल पर ही बचना चाहता तो शायद पशुओ को मारता ही रहता। लेकिन मनुष्य अगर मनुष्यता के आत्मिक तल पर बचना चाहता हो तो पशुओं को मारकर कभी नही बच सकता।

एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि सिर्फ मनुष्य के शरीर को बचाना है या मनुष्यता को बचाना है, तो सवाल बिल्कुल अलग-अलग हो जाएँगे। देहधारी मनुष्य को बचाते हैं तो हम हैवान से ऊपर नही हैं। और अगर हम उसके भीतर की मनुष्यता को बचाने के लिए सोचते हैं तो शायद पशुहिंसा किसी भी तरह ठीक नही ठहराई जा सकती। लेकिन कहा जाएगा कि फिर आदमी बचेगा कैसे? मेरा कहना है कि आदमी बचने के उपाय खोज लेता है जैसे कृत्रिम खाद्य बनाए जा सकते हैं। जितना पृथ्वी भोजन देती है उससे करोड गुना भोजन समुद्र के पानी से निकाला जा सकता है, हवाओ से सीधा भोजन पाया जा सकता है। एक बार यह तय हो जाए कि मनुष्यता मर रही है तो फिर हम मनुष्य को बचाने के हजार उपाय खोज सकते हैं। यह तय न हो तो हम मनुष्य को बचा लेते हैं—देहधारी दिखाई पडने वाले मनुष्य को, लेकिन भीतर कुछ गहरा तत्त्व खो जाता है। वह गहरा तत्त्व तभी खो जाता है जब हम किसी को दु.ख देने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। किसी को दु ख देने का जो भाव है, वही हमें नीचे गिरा देता है। तो किसी को हम दु:ख दें और मनुष्य बने रहें, इन दोनो बातो में कठिनाई है।

यह बात सच है कि आज तक ऐसी स्थिति नहीं बन सकी कि एकदम से मासाहार बन्द कर दिया जाए, एकदम से पशुहिंसा बन्द कर दी जाए तो आदमी बच जाए। लेकिन नहीं बन सकी तो इसलिए नही बन सकी कि हमने उस बात को ख्याल में नही लिया, अन्यथा बन सकती है। क्योंकि अब हमारे पास वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए हैं जिनसे पशुओं को मारने की कोई जरूरत नहीं। अब तो कृत्रिम मांस भी बनाया जा सकता है। आखिर गाय घास खाकर मास बनाती है। मशीन भी हो सकता है जो घास खाए और मास बनाए। इसमें कोई कठिनाई नही है। दूध कृत्रिम बन सकता है, मास कृत्रिम बन सकता है, सब कृत्रिम बन सकता है। मैं अतीत की बात छोड देता हूँ जबकि सब नही बन सकता था। लेकिन अब, जबकि सब बन सकता है तो मनुष्य के सामने एक नया चुनाव खडा हो गया है और वह चुनाव यह है कि अब जब सब बन सकता है तब पशुहिंसा का क्या मतलब? पीछे कठिनाइयाँ थी। आदमी को बचाना मुश्किल था। शायद अतीत में शरीर ही नहीं बचाया जा सकता था। जब शरीर ही नही बचता था तो आत्मा को क्या बचाते आप? शरीर बिल्कुल सारभूत था जिसे बचाए तो पीछे आत्मा भी बच सकती थी, मनुष्यता भी बच सकती थी। इसलिए बुद्ध ने समझौता किया कि मरे हुए

पशु का मास खाया जा सकता है। यह सिर्फ उस स्थिति का समझौता था। लेकिन इस कारण बुद्ध पशु जगत् से सम्बन्ध स्थापित करने मे असमर्थ हो गए। महावीर इस समझौते के लिए राजी नही हुए क्योकि अगर पशु जगत् तक सदेश पहुँचाना था तो समझौता अमान्य था।

प्रश्न . गहरे मे वनस्पतिजीवन और पशुजीवन मे क्या अन्तर है ?

उत्तर : बहुत अन्तर है। पशु विकसित है, बहुत विकसित है पौधे से। विकास के दो हिस्से उसने पूरे कर लिए हैं। एक तो पौधे में गति नही है, थोडे से पौधो को छोडकर जो पशुओ और पौधो के बीच में हैं। कुछ पौधे है जो जमीन पर चलते है, जो जगह बदल लेते है, जो आज यहाँ हैं, तो कल सरक जाएँगे थोडा। साल भर बाद आप उनको उस जगह न पाएँगे जहाँ साल भर पहले आया था। साल भर मे वह यात्रा कर लेंगे थोडी सी। पर वे पौधे सिर्फ दलदली जमीन में होते हैं। जैसे अफ्रीका के कुछ दलदलो में कुछ पौधे हैं जो रास्ता बनाते है अपना, चलते हैं, अपने भोजन की तलाश में इधर-उधर जाते हैं। नही तो पौधा ठहरा हुआ है। ठहरे हुए होने के कारण बहुत गहरे बन्धन उस पर लग गए है और वह कोई खोज नही कर सकता, किसी चीज की। जो आ जाए बस वही ठीक है। अन्यथा कोई उपाय नही है उसके पास। पानी नीचे हो तो ठीक, हवा ऊपर हो तो ठीक, सूरज निकले तो ठीक, नही तो गया वह। यह जो उसकी जड स्थिति है उसमें प्राण तो प्रकट हुआ है—जैसा पत्थर मे उतना प्रकट नही हुआ। वैसे पत्थर भी बढता है, बडा होता है। दु ख की सवेदना पत्थर को भी किसी तल पर होती है। लेकिन पौधे को दु ख की सवेदना बहुत बढ गई है। चोट भी खाता है तो दु खी होता है। शायद प्रेम भी करता है, शायद करुणा भी करता है। लेकिन बँधा है जमीन से। तो परतत्रता बहुत गहरी है। और उस परतंत्रता के कारण चेतना विकसित नहीं हो सकती।

अब हमें ख्याल में नही है कि गति से चेतना विकसित होती है जितनी हम गति कर सकते है स्वतंत्रता से उतनी चेतना को नई चुनौतियाँ मिलती हैं, नये अवसर नये मौके, नये दु ख, नये सुख, उतनी चेतना जगती है। नये का साक्षात्कार करना पडता है। वृक्ष के पास इतनी चेतना नही है तो वृक्ष करीब उस हालत मे है जिस हालत में आप क्लोरोफार्म मे हो जाते हैं। आप चल-फिर नहीं सकते। आप हाथ नहीं उठा सकते। कोई गरदन काट जाए तो कुछ कर नही सकते। प्रकृति उतनी ही चेतना देती है जितना आप उसका उपयोग

कर सकते हैं। अगर पौधे को इतनी चेतना दे दी जाए कि उसकी कोई गरदन काटे तो वह उतना ही दु खी हो जितना आदमी होता है तो पौधा बडी मुश्किल मे पड जाएगा। चूँकि गरदन कोई रोज काटेगा उसकी, इसलिए उसे इतनी मूर्च्छा चाहिए क्लोरोफार्म वाली कि कोई गरदन भी काटे तो भी पता न चले।

पशु पौधे के आगे का रूप है जहाँ पशु ने गति ले ली है। अब उसकी गरदन काटो तो वह उस हालत में नही है जिसमें कि पौधा है। उसकी पीडा बढ गई है, सवेदना बढ गई है, सुख बढ गया है। और गति ने उसको विकसित किया है। लेकिन वह भी एक तरह की निद्रा में चलता रहा है। क्लोरोफार्म की हालत नही है लेकिन एक निद्रा की हालत है। उसे अपना कोई पता ही नही है। जैसे एक कुत्ता है। उसको आपने झिडका तो वह भाग जाता है। आपका झिडकना ही महत्त्वपूर्ण है, उसका भागना सिर्फ प्रत्युत्तर है। आपने रोटी डाली तो खा लेता है, आपने प्रेम किया तो पूँछ हिलाता है। वह कोई कर्म नहीं करता, वह प्रतिकर्म करता है। जो होता रहता है, उसमें वह भागीदार है। भूख लगती है, प्यास लगती है तो घूमने लगता है। भूख न लगे तो वह कुछ खाता नही। अगर वह बीमार है तो उस दिन वह कुछ नही खाएगा। वह घास खाकर उल्टी भी कर देगा। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति नही है तो वह कुछ नही खाएगा। आदमी खाने की स्थिति में नही है तो भी खा सकता है। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति है तो उपवास नहीं कर सकता। करना पडे तो वह बात दूसरी है। आदमी पूरा भूखा है तो भी उपवास कर सकता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि आदमी कर्म कर सकता है, कुत्ता सिर्फ प्रतिक्रिया करता है। लेकिन सभी आदमी कर्म भी नहीं करते। इसलिए बहुत कम आदमी आदमी की हैसियत में हैं, अधिकतर आदमी प्रतिकर्म ही करते हैं। यानी किसी ने आपको प्रेम किया तो आप प्रेम करते हैं तो यह प्रतिकर्म हुआ और किसी ने गाली दी तो फिर आप प्रेम करें तो कर्म हुआ। यह वैसा ही हुआ जैसे कुत्ता पूँछ हिलाता है उसको रोटी डालो तो। कोई बुनियादी फर्क नही है दोनो में।

तो मैं कह रहा हूँ कि कुछ पौधे सरकने लगे हैं। वह जानवर की दिशा मे प्रवेश कर रहे हैं। जानवर भी थोडा-बहुत आदमी की दिशा में सरक रहे हैं। कुछ आदमी भी चेतना लोकों की तरफ सरक रहे हैं। फर्क है स्वतन्त्रता का। पत्थर सबसे ज्यादा परतन्त्र है, पौधा उससे कम, पशु उससे कम, तथाकथित मनुष्य उससे कम। महावीर, बुद्ध जैसे लोग बिल्कुल कम। अगर हम ठीक से

समझें तो सारे विकास को हम स्वतन्त्रता के हिसाब से नाप सकते हैं और इसलिए मेरा निरन्तर जोर स्वतन्त्रता पर है। कोई व्यक्ति जितनी स्वतन्त्रता अर्जित करे जीवन में उतना चेतना की तरफ जाता है और स्वतन्त्रता बहुत प्रकार की है : गति की स्वतन्त्रता, विचार की स्वतन्त्रता, कर्म की स्वतन्त्रता, चेतना की स्वतन्त्रता। यह जितनी पूर्ण होती चली जाती है उतना मोक्ष की तरफ बढा जा रहा है। कर्म की भाषा में कहें तो जीवन मुक्त होने की तरफ जा रहा है। जितना हम नीचे जाते हैं उतना हम अमुक्त हैं। पत्थर कितना अमुक्त है। एक ठोकर आपने मार दी तो कुछ भी नही कर सकता, प्रतिक्रिया भी नही कर सकता। जहाँ पड गया वही पड गया। कोई उपाय नही है उसके पास। सबसे ज्यादा बद्ध अवस्था में है वह। महावीर प्रबुद्ध आत्मा हैं, मुक्त आत्मा हैं।

प्रबुद्ध होने से मुक्त होने तक की यात्रा मे कई तल हैं। तो मोटी सीढिया बाँट ली हैं हमने लेकिन सब सीढियो पर अपवाद है। जैसे समझ लें पचास सीढियाँ है और आदमी चढ रहे हैं। कोई आदमी पहली सीढी पर खडा है, कोई दूसरी सीढी पर खडा है, पहली सीढी से उठ गया है लेकिन अभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा नही है, अभी बीच में है। कोई आदमी तीसरी सीढ़ी पर खडा है। कोई आदमी दूसरी से पैर उठा लिया है, तीसरी पर अभी रखा नही है। इस तरह स्थूल रूप में देखें तो हमको ऐसा लगता है कि पत्थर है, पौधा है। कुछ पत्थर पौधे की हालत में पहुँच रहे हैं। कुछ पत्थर बिल्कुल पौधे जैसे है। उनकी डिजाइन, उनके पत्ते, उनकी शाखाएँ बिल्कुल पौधे जैसी है। वे पौधे की तरफ बढ रहे है। कुछ पौधे बिल्कुल पशुओ जैसे है। कुछ पौधे अपना शिकार भी खोजते हैं। पक्षी उड रहा है आकाश में तो वे चारो तरफ से पत्ते बन्द कर लेते है और फांस लेते है उसे। कुछ पौधे प्रलोभन भी डालते हैं। अपनी कलियो पर बहुत मीठा, बहुत सुगंधित रस भर लेते है ताकि पक्षी आकर्षित हो जाएँ और ज्योही पक्षी उस पर बैठते है कि चारों तरफ के पत्ते बन्द हो जाते है। कुछ पौधे अपने पत्तो को पक्षियो के शरीर मे प्रवेश कर वहाँ से खून खीच लेते हैं। वे पौधे अब पौधे की हालत मे नही रहे। वे पशु की तरफ गति कर रहे है। कुछ पशु मनुष्य की तरफ गति कर रहे हैं। बहुत से कुत्तो में, घोडो में, हाथियो में, गायो में, मनुष्य जैसी बातें दिखाई पड़ती हैं। जिन-जिन जानवरो से मनुष्य सम्बन्ध बनाता है, उन-उन जानवरो से सम्बन्ध बनाने का कारण ही यही है। सभी जानवरो से मनुष्य सम्बन्ध नही बनाता।

जिनको हम पालतू पशु कहते है वे कही, किसी तल पर हमसे मेल खाते हैं। लेकिन फिर भी उसी जाति के सभी पशु एक तल पर नही होते। कुछ आगे बढे होते है, कुछ पीछे हटे होते हैं।

प्रश्न जो लोग शाकाहारी नहीं होते हैं उनमें करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना अधिक होती है, ऐसा कि पश्चिमी देशो मे। लेकिन हम हिन्दुस्तान मे आम तौर से शाकाहारी हैं तो भी हम मे करुणा की भावना, मनुष्यता की भावना रह ही नहीं गई। यह कैसे ?

उत्तर : हां, उसके कारण है क्योकि अगर आप करुणा के कारण शाकाहारी हुए हैं तब तो बात अलग है और अगर जन्म के कारण शाकाहारी है तो इससे कोई सम्बन्ध ही नही है करुणा का। यानी आप क्या खाते हैं, इससे करुणा का सम्बन्ध नही है। आपकी करुणा क्या है, इससे आप का सम्बन्ध हो सकता है। तो मुल्क मे जो शाकाहारी है वह जबरदस्ती शाकाहारी हैं। उसके चित्त मे शाकाहार नहीं है। उसके चित्त में कोई करुणा नही है। फिर जो मासाहारी है उसके मन की कठोरता बहुत कुछ उसके भोजन, उसकी जीवन-व्यवस्था मे निकल जाती है और वह मनुष्य के प्रति ज्यादा सदय हो सकता है। और आप शाकाहारी है तो आपको वह भी मौका नही है। यानी मेरा कहना यह है कि एक शाकाहारी आदमी में आधा पाव कठोरता है और एक मासाहारी आदमी मे भी आधा पाव कठोरता है तो वह मासाहारी आदमी ज्यादा करुणा-वान् सिद्ध होगा बजाय शाकाहारी के क्योकि वह जो आधा पाव कठोरता है उसकी वह और दिशाओ मे वह जाती है। और आपकी आधा पाव कठोरता का कही बहने का उपाय नही है। वह सिर्फ आदमी की तरफ ही बहती है, वह सिर्फ आदमी को ही चूसती है। इसलिए पूरब के मूल्क मे जहां शाकाहार बहुत है वहां बड़ा शोषण है, बडी कठोरता है और आदमी के आपसी सम्बन्ध बहुत हिंसापूर्ण हैं। और आदमी आदमी के प्रति इतना क्रूर मालूम पडता है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और बाकी मामलो मे वह बडा हिसाब लगाता है कि कही चीटी पर पैर न पड जाये, पानी छान कर पीता है। वह जो कठोरता के बहने के इतर उपाय थे बद हो जाते है। फिर एक ही उपाय रह जाता है। आदमी-आदमी का सम्बन्ध बिगड जाता है।

तो मै शाकाहार का पक्षपाती हूं, इसलिए नही कि आप शाकाहारी हो बल्कि इसलिए कि आप करुणावान् हों और आप उस चित्त-दशा मे पहुंचे हुए हो जहां से जीवन के प्रति कठोरता क्षीण हो जाती है। जब कठोरता क्षीण

होगी तो वह पशु के प्रति भी क्षीण होगी, मनुष्य के प्रति भी क्षीण होगी। मगर जन्म के साथ शाकाहारी हो जाता है आदमी और कठोरता क्षीण नहीं होती। क्योंकि जीवन एक तरह से बहुत ही शक्तियों का ताल-मेल है, उसमें अगर कुछ शक्तियाँ भीतर पड़ी रह जाती हैं तो मुश्किल पड जाती है। जैसे उदाहरण के लिए इग्लैंड भर में विद्यार्थियों का कोई विद्रोह नहीं और उसका कुल कारण इतना है कि इग्लैंड के बच्चों को तीन घंटे से कम खेल नहीं खेलना पडता। तीन घंटे हाकी, फुटबाल—इस तरह थका डालते हैं कि तीन घंटों में उसकी सारी की सारी उपद्रव की प्रवृत्ति निकास पा जाती है। तो वह घर शांत होकर लौट आता है। इग्लैंड के लडके को उपद्रव के लिए कहो तो वह उपद्रव की हालत मे नहीं है। जिन मुल्कों में खेल बिल्कुल नहीं है—जैसे हमारा मुल्क है, जैसे फ्रांस है खेल करीब-करीब न के बराबर है—उपद्रव बहुत ज्यादा है। अब वह ख्याल में नहीं आता कि एक नियत व्यवस्था है कि एक लडके को कितना उपद्रव करना जरूरी है। खेल का मतलब है व्यवस्थित उपद्रव। लट्ठ मार रहा है गेंद में एक आदमी। वह उतना ही है जैसे कोई खोपडी में लट्ठ मारे। व्यवस्थित उपद्रव अगर करवाते हैं तो उपद्रव कम हो जाएगा। और व्यवस्थित उपद्रव नहीं करवाते तो फिर अव्यवस्थित उपद्रव बढ़ेगा। इन सबके भीतर हमारी एक निश्चित मात्रा है जो निकलनी चाहिए एक उम्र में। उसका निकलना बहुत जरूरी है।

अब जैसे एक आदमी जंगल में लकडी काटता है। यह आदमी एक दुकान में बैठे हुए आदमी से ज्यादा करुणावान् हो सकता है। कारण कि काटने पीटने का इतना काम करता है वह कि काटने पीटने की वृत्ति मुक्त हो जाती है। वह ज्यादा दयालु मालूम पडेगा। एक दुकान पर बैठा हुआ आदमी दयालु नहीं हो सकता क्योंकि उसके काटने-पीटने की वृत्ति मुक्त नहीं हुई। जंगल का एक चरवाहा है। वह भेडों को चरा रहा है। उसके चेहरे पर कैसी शांति प्रकट होगी। कारण कि वह जानवरों के साथ जो व्यवहार कर रहा है—डंडा मार रहा है, गाली दे रहा है, कुछ भी कर रहा है—वह व्यवहार आप भी करना चाहते हैं लेकिन कोई नहीं मिलता, किससे करें। पत्नी से करते हैं, बेटे से करते हैं, नये-नये बहाने खोजते हैं कि बेटे का सुधार कर रहे हैं, लेकिन भीतरी कारण बहुत दूसरे हैं। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि गाँव का किसान ज्यादा शांत मालूम पडता है। उसका कारण है कि काट-पीट के इतने काम उसको मिल जाते हैं, दिन भर में वृक्षों को काट रहा है, पौधों को काट रहा

है, जानवरो को मार रहा है कि वह शान्त हो जाता है। काट-पीट के इतने काम आपको भी मिल जाएँ तो आप भी शान्त हो जाएँगे। मगर आपको नये रास्ते निकालने पड़ते हैं इसके लिए। आप भी किसी को कोड़ा मारना चाहते हैं। मारे कैसे ? तो हमारे मन की वृत्तियाँ फिर नये-नये रास्ते खोजती हैं। और वे नये उपाय खतरनाक सिद्ध होते हैं।

इसलिए मेरा कहना है कि वृत्तियाँ जाननी चाहिएँ, आचरण बदलने का जोर गलत है। मैं किसी को नही कहता कि कोई शाकाहारी हो। मैं कहता हूँ : अगर मासाहार करना है तो मासाहार करो। इतना जरूर कहूँगा कि यह कोई बहुत ऊँचे चित्त की अवस्था नही है। कुछ और ऊँचे चित्त की अवस्थाएँ हैं जिनके खोजने से मासाहार छूट सकता है। लेकिन मासाहार छूट जाए और आपकी स्थिति वही रहे तो आप दूसरे तरह के मासाहार करेंगे जो ज्यादा महगे साबित होने वाले हैं।

तो हिन्दुस्तान कठोर हो गया है और हिन्दुस्तान में जो लोग गैर मासाहारी है, वे बहुत कठोर हो गए हैं। एक आदमी कभी दो-चार साल में एक बार कठोर हो जाए तो ठीक है। मगर एक आदमी चौबीस घटे कठोर रहे तो वह ज्यादा मँहगा पड जायेगा। इसलिए बडे आश्चर्य की बात है कि बर्बर मनुष्य भी है जो कच्चे आदमी को खा जाएँ, लेकिन बडे सरल हैं। आप जाकर कारागृह में देखे कैदियों को। कैदी एकदम सरल मालूम पड़ता है बजाय उन लोगो के जो मजिस्ट्रेट बने बैठे हैं। एक मजिस्ट्रेट की शक्ल देखें और उसके सामने कारागृह में जिसको उसने दस साल की सजा दे दी है, उस आदमी की शक्ल देखें तो अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। अब हो सकता है कि दस साल की सजा देने में इस आदमी के भीतर रस हो—कानून तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूँटी हो। मानो वह आदमियो को सताने के यह उपाय खोज रहा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट नही होता, हर आदमी शिक्षक नही होता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं जो बच्चो को सताना चाहते हैं। उनके भीतर बच्चो को सताने की वृत्ति है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है। और बच्चो को ढग से सताते हैं और वे बच्चे कुछ कर भी नही सकते। बिल्कुल निहत्थे वे है। सौ मे से सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे। यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कही सताते। दिन भर सता कर शिक्षक बहुत सीधा-सादा हो जायेगा। जब वह लौटता है घर तो वह बहुत अच्छा आदमी, बहुत भला आदमी मालूम पडता है। वह कितना भला आदमी है क्योंकि वह अपना बुरा मन तो निकाल लेता है।

१६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक २५ सितम्बर, १९६९

आपने पूछा है कि इस जगत् का, इस जीवन का प्रारम्भ कब हुआ, कैसे हुआ? महावीर के प्रसग में भी यह बात बडी महत्त्वपूर्ण है। महावीर उन थोडे से चिन्तकों में से एक हैं जिन्होने प्रारम्भ की बात को ही स्वीकार नही किया। महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ सम्भव ही नहीं है। अस्तित्व का कोई प्रारम्भ नही हो सकता। अस्तित्व सदा से है। और कभी ऐसा नही हो सकता कि अस्तित्व न रह जाए। प्रारम्भ की और अन्त की बात ही वह इन्कार करते है। और मैं भी उनसे सहमत हूँ। प्रारम्भ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारम्भ होता है और अन्त होता है इसलिए हमें लगता है कि सब चीजो का प्रारम्भ होगा और अन्त होगा। लेकिन अगर हम अपने भीतर गहरे में प्रवेश कर जाएँ तो हमे पता चलेगा कि हमारा भी कोई प्रारम्भ नही, कोई अन्त नहीं। एक चीज बनती है, मिटती है तो हमें ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है वह मिटता है। लेकिन बनना और मिटना प्रारम्भ और अन्त नही है। क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप मे मौजूद होती है और जो चीज मिटती है वह मिटने के बाद फिर किसी दूसरे रूप मे मौजूद होती है।

महावीर कहते हैं कि जीवन में सिर्फ रूपान्तरण होता है। न तो प्रारम्भ है और न कोई अन्त है। प्रारम्भ असम्भव है क्योंकि अगर हम यह मानें कि कभी प्रारम्भ हुआ तो यह भी मानना पडेगा कि उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारम्भ कैसे होगा? अगर उसके पहले कुछ भी न हो तो प्रारम्भ होने का उपाय भी नही। अगर हम यह मान लें कि कुछ भी नही था, समय भी नही था, स्थान भी नही था तो प्रारम्भ कैसे हुआ? प्रारम्भ होने के लिए कम से कम

समय तो पहले चाहिए ही ताकि प्रारम्भ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है तो सब पहले हो गया। क्योकि इस जगत् में मौलिक रूप से दो ही तत्त्व हैं गहराई मे—समय और स्थान।

महावीर कहते हैं कि प्रारम्भ की बात ही हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारम्भ नही हुआ और जिसका कभी कोई प्रारम्भ न हुआ हो उन्ही कारणो से उसका कभी अन्त भी नही हो सका। क्योकि अन्त होने का मतलब होगा कि एक दिन कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा? अस्तित्व अनादि है और अनन्त है। न कभी शुरू हुआ है, न कभी अन्त होगा। सदा है, सनातन है। लेकिन रूपान्तरण रोज होता है। कल जो रेत था वह आज पहाड है, आज जो पहाड है वह कल रेत हो जाएगा। लेकिन होना नही मिट जाएगा। रेत में भी वही था, पहाड में भी वही होगा। आज जो बच्चा है, कल जवान होगा, परसो बूढा होगा। बाद विदा हो जाएगा। लेकिन जो बच्चे में था वही जवान में होगा, वही बुढापे में होगा, वही मृत्यु के क्षण में विदा भी ले रहा होगा। वह जो था, वह निरन्तर होगा।

अस्तित्व का अनस्तित्व होना असम्भव है और अनस्तित्व से भी अस्तित्व नही आता है। इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही इन्कार कर दी है। महावीर ने कहा कि जब सृष्टि शुरूआत ही नही होती तो शुरूआत करने वाले की धारणा को क्यो बीच में लाना है? जब शुरूआत ही नही होती तो स्रष्टा की कोई जरूरत नही है। यह बडे साहस की बात थी उन दिनो। महावीर ने कहा सृष्टि है और स्रष्टा नही है। क्योकि अगर स्रष्टा होगा तो प्रारम्भ मानना पडेगा और महावीर कहते है कि स्रष्टा भी हो तो भी शून्य से प्रारम्भ नही हो सकता। और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर शून्य कहना व्यर्थ है। तब था ही कुछ। और उस होने से कुछ होता रहेगा। जैसे साधारणत हम जिसको आस्तिक कहते हैं वस्तुत वह आस्तिक नही होता। साधारणत आस्तिक की दलील यह है कि कोई चीजों को बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए। लेकिन नास्तिकों ने और गहरा सवाल पूछा कि अगर सब चीजों का बनाने वाला है तो फिर परमात्मा को बनाने वाला भी होना चाहिए। और तब बडी मुश्किल खडी हो जाएगी। अगर परमात्मा का स्रष्टा भी मान लें तो फिर अन्तहीन विवाद खडा हो जाएगा। क्योंकि फिर उसका बनाने वाला चाहिए, फिर उसका, फिर उसका, इसका अन्त कहाँ होगा? किसी भी कडी पर यही सवाल उठेगा : इसका बनाने वाला कौन है?

महावीर कहते हैं कि आस्तिक भूल मे है और इसलिए नास्तिक को उत्तर नही दे पा रहा है क्योकि आस्तिक बुनियादी भूल कर रहा है। महावीर परम आस्तिक हैं खुद भी। लेकिन वह कहते हैं कि बनाने वाले को बीच में लाने की जरूरत नही है। अस्तित्व पर्याप्त है। कोई बनाने वाला नही है। इसलिए यह भी सवाल नही है कि उसके बनाने वाला कहाँ है ? महावीर के परमात्मा स्रष्टा की धारणा अस्तित्व की गहराइयों से निकलती है अस्तित्व के बाहर से नही आती। अस्तित्व अलग और परमात्मा अलग बैठकर उसको बना रहा है जैसे कि कुम्हार घडा बना रहा हो, ऐसा नही है कोई परमात्मा। इसी अस्तित्व में जो सारभूत विकसित होते-होते अन्तिम क्षणो तक विकास को उपलब्ध हो जाता है, वही परमात्मा है। परमात्मा की धारणा में महावीर के लिए विकास है यानी परमात्मा की धारणा अस्तित्व का सारभूत अंश है जो विकसित हो रहा है।

साधारण आस्तिक की धारणा है कि परमात्मा अलग बैठा है और जगत् को बना रहा है। तब प्रारम्भ की बात आ जाती है। उसी आस्तिक की नासमझी को वैज्ञानिक भी पकड़े हुए चला जाता है। हालांकि वह ईश्वर से इन्कार कर देता है। लेकिन फिर वह सोचता है कि प्रारम्भ कब हुआ ? हाँ, यह हो सकता है कि इस पृथ्वी का प्रारम्भ कब हुआ इसका पता चल जाएगा। इस पृथ्वी का कब अन्त होगा, यह भी पता चल जाएगा लेकिन पृथ्वी जीवन नही है, जीवन का एक रूप है। जैसे मैं कब पैदा हुआ, पता चल जाएगा। मैं कब मर जाऊँगा, पता चल जाएगा। लेकिन मैं जीवन नही हूँ, जीवन का सिर्फ एक रूप हूँ। जैसे हम एक सागर में जाएँ। एक लहर कब पैदा हुई पता चल जाएगा। एक लहर कब गिरी यह भी पता चल जायगा। लेकिन लहर सिर्फ एक रूप है सागर का। सागर कब शुरु हुआ ? सागर का कब अन्त होगा ? और अगर सागर का पता चल जाए तो फिर सागर भी एक लहर है बड़े विस्तार की।

अन्तत जो है गहराई में वह सदा से है। उसके ऊपर की लहरे आई हैं, गई हैं, बदली हैं। आएँगी, जाएँगी, बदलेंगी। पर जो गहराई में है, जो केन्द्र में है, वह सदा से है। और यह हमारे ख्याल में आ जाए तो प्रारम्भ का प्रश्न समाप्त हो जाता है, अन्त का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। सूरज ठंडा होगा क्योंकि सूरज गर्म हुआ है। जो गर्म होगा, वह ठंडा होगा। वक्त कितना लगता है, यह दूसरी बात है। एक दिन सूरज ठंडा था, एक दिन सूरज फिर ठंडा हो जाएगा। एक दिन पृथ्वी ठंडी होगी। इनके भी जीवन है। असल में हमें ख्याल

भी नहीं है कि पृथ्वी भी जीवित है। इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। हम कहते हैं कि मैं जीवित हूँ लेकिन हम कभी ख्याल भी नही करते कि हमारे शरीर में करोड़ों कीटाणु भी जीवित हैं। उन कीटाणुओ का अपना जीवन है और उन कीटाणुओ से मिले हुए जीवन में एक और भी जीवन है जो हमारा है। पृथ्वी का अपना एक जीवन है। इसलिए महावीर कहते हैं कि पृथ्वी काया है जीवन की। इस पृथ्वी पर पौधो, पक्षियो, मनुष्यो का अपना जीवन है। लेकिन पृथ्वी का अपना जीवन है। पृथ्वी की अपनी जीवनधारा है। उसका जन्म हुआ है। वह मरेगी। सूरज का अपना जीवन है। चांद का अपना जीवन है। वह भी शुरू हुआ, उसका भी अन्त होगा। लेकिन जीवन का, अस्तित्व का कोई अन्त नही है। ऐसा ही समझ लें कि अस्तित्व एक सागर है, उस पर लहरें उठती हैं, आती हैं, जाती है, लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारम्भ हुआ हो, न ऐसा है, न ऐसा हो सकता है।

इसे ऐसा समझना चाहिए। हमारे सारे तर्क एक सीमा पर जाकर व्यर्थ हो जाते है। हम यहां लकडी के तख्तो पर बैठे हुए है। कोई हमसे पूछ सकता है कि आपको कौन सभाले हुए हैं तो हम कहेंगे—लकडी के तख्ते। फिर वह पूछ सकता है कि लकडी के तख्तो को कौन सभाले हुए है तो हम कहेंगे—जमीन। फिर वह पूछ सकता है कि जमीन को कौन सभाले हुए है तो हम कहेंगे कि ग्रहो-उपग्रहो का गुरुत्वाकर्षण। फिर वह पूछ सकता है कि ग्रहों-उपग्रहो को कौन सभाले हुए हैं ? तो शायद हम और खोजते चले जाएँ। लेकिन अन्तत. कोई पूछे कि इस समग्र को, इस पूरे को, जिसमें ग्रह, उपग्रह, तारे, पृथ्वी सब आ गए हैं इस सबको कौन सभाले हुए हैं तो हम उससे कहेंगे कि अब बात जरा ज्यादा हो गई है। इस सबको कौन सभाले हुए है, यह प्रश्न असंगत है क्योकि हमने पूछा कि सबको कौन सभाले हुए है ? अगर सभालने वाले को हम बाहर रखते हैं तो सब अभी हुआ नही। और अगर उसे भीतर कर लेते है तो बाहर कोई बचता नही जो उसे सभाले। सबको कोई भी नहीं संभाले हुए है। सब स्वय सभला हुआ है। एक-एक चीज को एक-एक दूसरा सभाले हुए है। लेकिन समग्र को कोई भी नही सभाले हुए है। वह खुद संभला हुआ है। वह स्वय है। इसीलिए महावीर कहते है कि जीवन स्वयभू है। न इसका बनाने वाला है, न इसका मिटाने वाला है। वह स्वय है। जैसा कि वे कहते है कि इससे क्या फायदा कि तुम एक आदमी को लाओ बीच में। फिर वह यही सवाल उठे कि उसको कौन बनाने वाला है फिर तुम किसी और को

लाओ, फिर वही सवाल उठे। फिर परमात्मा का प्रारम्भ कब हुआ, यह सवाल उठे। और फिर परमात्मा की मृत्यु कब होगी, यह सवाल उठे। हमें सवालो मे जाने का कोई अर्थ नही है।

तो महावीर उस परिकल्पना को एकदम इन्कार कर देते है। और मेरी अपनी समझ है कि जो लोग अस्तित्व की गहराइयो में गए हें, वह स्रष्टा की धारणा को इन्कार ही कर देंगे। उनकी परमात्मा की धारणा, स्रष्टा की धारणा नही होगी। उनकी परमात्मा की धारणा जीवन के विकास की चरम विन्दु की धारणा होगी। यानी सामान्यत जिसको हम आस्तिक कहते हैं उसका परमात्मा पहले है। महावीर की जो आस्तिकता है उसमें परमात्मा चरम विकास है। और इसलिए रोज होता रहेगा। एक लहर गिर जाएगी और सागर हो जाएगी। लेकिन दूसरी लहर उठती रहेगी तो इसलिए कोई कभी अन्त नही होगा। लहरें उठती रहेंगी, गिरती रहेंगी। सागर सदा होगा। इसलिए आस्तिक वह है जो लहरो पर ध्यान न दे, उस सागर पर ध्यान दे जो सदा है। आस्तिक वह है जो वदलाहट पर ध्यान न दे, उस पर ध्यान दे जो सदा से है।

एक आदमी मर रहा है। उससे हम पूछें कि सच में वह तूने किया हो था या कोई सपना देखा था तो मरते आदमी को तय करना वहुत मुश्किल है कि जिन्दगी में जो लाखो कमाए थे, वे कमाए ही थे, या कि कोई सपना था। वर्टेंड रसल ने एक मजाक की है कि मरते वक्त मैं यह नही तय कर पाऊँगा कि जो हुआ वह सच में हुआ या कि मैंने एक सपना देखा। और कैसे तय करूँगा, दोनो में फर्क क्या करूँगा कि वह सच में हुआ था। आप ही पीछे लौटकर देखिए कि जो वचपन गुजर गया वह आपका एक सपना था या कि सचमुच था। आज तो आपके पास सिवाय एक स्मृति के और कुछ नही रह गया। मजे की वात यह है कि जिसे हम जीवन कहते हैं उसकी स्मृति भी वैसे ही वनती है जैसे कि सपने की वनती है। इसीलिए छोटे वच्चे तय भी नही कर पाते कि यह सपना है। छोटा वच्चा अगर रात में सपना देख लेता है कि उसकी गुड्डी किसी ने तोड दी है तो वह सुवह रोता हुआ उठता है, पूछता है मेरी गुड्डी तोड डाली गई है। उसे अभी साफ नही है। उसने जो सपना देखा उसमें और जागकर जो गुड्डी देखी उसमें फर्क है। लेकिन उसे अभी फर्क नही मालूम पडता। इसलिए हो सकता है कि वह सपने में डरा हो और जागकर रोता रहे। और समझाना मुश्किल हो जाए क्योकि हमें पता ही नही उसके कारण का कि वह डरा किस

वजह से है। हो सकता है कि सपने में किसी ने उसे मार दिया हो और वह रोता चला जा रहा है जाकर। उसके लिए फासला नहीं है अभी। जो लोग जीवन की गहराइयों पर उतरते हैं वे अन्त में फिर उस जगह पर पहुँच जाते हैं जहाँ फासले खो जाते हैं।

चीन में च्वागत्से नाम का एक अद्भुत विचारक हुआ है। एक रात सपना देखा उसने, सुबह उठा। वह बड़ा परेशान था। मित्रों ने पूछा कि आप इतने परेशान क्यों हैं। हमारी परेशानी होती है, तो हम आप से सलाह लेते हैं। आज आप परेशान हैं ? क्या हो गया आपको ? उसने कहा : मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूँ और फूल-फूल पर भटक रहा हूँ। तो मित्रों ने कहा, इसमें क्या परेशान होने की बात है ? सपने सभी देखते हैं। उसने कहा : नहीं, इससे परेशान होने की बात नहीं है। अब मैं इस चिन्ता में पड़ गया हूँ कि अगर रात च्वाग नाम का आदमी सोया और तितली हो गया सपने में तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह सपने की तितली अब सो गई है और अब सपना देख रही है च्वाग हो जाने का। क्योंकि जब आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली सपने में आदमी हो सकती है। अब मैं सच में च्वाग हूँ या फिर तितली सपना देख रही है। वह जिन्दगी भर लोगों से पूछता रहा कि कैसे तय हो इस बात का।

जैसे ही कोई आदमी गहरे जीवन में उतरेगा तो उसे पता चलेगा कि वहीं से सपने आते हैं, वहीं से जीवन आता है, वहीं से सब लहरें आती हैं। इसलिए सब लहरें एक अर्थ में समानार्थक होती हैं। तब सुख और दुःख बेमानी हैं। तब आरम्भ और अन्त बेमानी हैं, तब ऐसा होना और वैसा होना बेमानी है। तब सब स्थितियों में आदमी राजी है। लेकिन चूँकि हम लहरों का हिसाब रखते हैं इसलिए हम परम सत्य की बाबत भी पूछना चाहते हैं वह कब शुरू हुआ, कब अन्त होगा।

सूरज बनेगा, मिटेगा। वह भी एक लहर है जो जरा देर तक चलने वाली है। पृथ्वी दो अरब वर्ष चलेगी। वह भी मिटेगी, बनेगी। वह भी एक लहर है। हजारों पृथ्वियाँ बनी हैं और मिटी हैं। हजारों सूरज बने और मिटे हैं। और प्रतिदिन कहीं, किसी कोने पर कोई सूरज ठंडा हो रहा है। और किसी कोने पर सूरज जन्म ले रहा है। इस वक्त भी, अभी जब हम यहाँ बैठे हैं तो कोई सूरज बूढ़ा हो रहा है। कोई सूरज अभी मरा होगा। कोई सूरज नया जन्म ले रहा होगा। कोई सूरज बच्चा है अभी, कोई जवान हो रहा है। हमारा

सूरज भी बूढा होने के करीव पहुँच रहा है। उसकी उम्र ज्यादा नही है। वह चार-पाँच हजार वर्ष लेगा ठंडा होने में। हमारी पृथ्वी भी बूढ़ी होती चली जा रही है। एक छोटी सी इल्ली है, वह वर्षा में ही पैदा होती है, वर्षा में ही मर जाती है। वह वृक्ष पर चढ रही है। वृक्ष उसको सनातन मालूम पड़ता है। उसके वाप भी इसी पर चढे थे। यह वृक्ष कभी मिटता हुआ नही दिखता। इल्ली की हजारो पीढियां गुजर जाती हैं और यह वृक्ष है कि ऐसा ही खडा रह जाता है। इल्लियां सोचती होगी कि वृक्ष न कभी पैदा होते हैं न कभी मरते हैं। इल्लियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं। वृक्ष की उम्र है दो सौ वर्ष और इल्ली एक मौसम भर जीती है। उसकी दो सौ पीढियां एक वृक्ष पर गुजर जाती हैं। हमारी दो सौ पीढियों में कितना लम्बा फासला है। महावीर से हमारा कितना फासला है? पच्चीस सौ वर्ष ही न? अगर हम पचास वर्ष की भी एक पीढी मान लें तो कितना फासला है? कितनी पीढ़ियां गुजरी हैं? कोई वहुत ज्यादा नही।

तो न कोई प्रारम्भ, न कोई अन्त है। और जिसका प्रारम्भ है और अन्त है, वह केवल एक रूप है, एक आकार है। आकार बनेंगे और विगडेंगे, आकृति उठेगी और गिरेगी। सपने पैदा होंगे और खोएँगे। लेकिन जो सत्य है वह सदा है। उसे हम कभी ऐसा भी नही कह सकते कि वह था। उसके लिए ऐसा भी नही कह सकते कि वह होगा। उसके लिए तो एक ही वात कह सकते हैं कि वह है और अगर बहुत गहरे में कोई जाता है तो वह पाता है कि यह कहना भी गलत है कि सत्य है। क्योंकि जो है वही सत्य है। सत्य के साथ 'है' को भी जोडना वेमानी है क्योंकि 'है' उसके साथ जोडा जा सकता है जो नही है, हो सकता हो। कह सकते है कि यह मकान है क्योंकि मकान 'नही' है यह भी हो सकता है। लेकिन 'सत्य है' इसके कहने में कठिनाई है थोडी। क्योंकि सत्य 'नही है' कभी नही हो सकता। इसलिए सत्य और 'है' पर्यायवाची हैं। इनका दोहरा उपयोग करना एक साथ पुनरुक्ति है। 'सत्य है', इसका मतलव है, जो है वह है।

इस दृष्टि का थोडा सा ख्याल आ जाए तो सव वदल जाता है। तव पूजा और प्रार्थना नही उठती। तव मस्जिद और मन्दिर नहीं खडे होते, लेकिन सव वदल जाता है। आदमी मन्दिर वन जाता है। आदमी का उठना, चलना, वैठना, सव पूजा और प्रार्थना हो जाती है। क्योंकि अव जो विस्तार का वोध आता है तो अपनी क्षुद्रता खो जाने का अर्थ लगने लगता है। फिर उसका कोई

मतलब नही रह जाता। मैं 'हूँ'—उसका कोई अर्थ नहीं। 'मैं था'—इसका कोई अर्थ नही। 'मैं होऊँगा'—इसका कोई अर्थ नही। लेकिन मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है। और वह सब के भीतर है और वह एक ही है। तो व्यक्ति खो जाता है, अहंकार खो जाता है। तब जिसका जन्म होता है उसी को हम कहेंगे 'बदला हुआ चित्त', बदली हुई चेतना जो भी नाम देना चाहें, हम दे सकते है।

प्रश्न जड और चेतना दो पृथक् चीजें हैं या एक ही वस्तु के दो रूप ?

उत्तर ये पृथक् चीजे नही हैं। पृथक् दिखाई पड़ती हैं। जड का मतलब है उतना कम चेतन कि हम अभी उसे चेतन नही कह पाते। चेतन का मतलब है इतना कम जड कि अब हम उसे जड नही कह पाते। वह एक ही चीज के दो छोर हैं। जडता चेतन होती चली जा रही है, जड़ता में भीतर कही चेतन छिपा है। फर्क सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है। और जिसको हम जड़ कहते है, वह अप्रकट चेतन है यानी जिसकी अभी चेतना प्रकट नही हुई है। जिसको हम चेतन कहते हैं, वह प्रकट हो गया है। जैसे कि एक बीज रखा है और एक वृक्ष खडा है। कौन कहेगा कि बीज और वृक्ष एक ही है ? क्योंकि कहाँ वृक्ष ? और कहाँ बीज ? लेकिन बीज में वृक्ष अप्रकट है। बस इतना ही फर्क है। दो दिखाई पडते है, दो है नही। और जहाँ-जहाँ हमें दो दिखाई पडते हैं, वहाँ-वहाँ दो नहीं हैं। 'है' तो एक ही लेकिन हमारे देखने की क्षमता इतनी सीमित है कि हम दो मे ही देख सकते है। यह हुआ है हमारी सीमित क्षमता के कारण क्योंकि जड मे हमें चेतन दिखाई नही पडता और चेतन को हम कैसे जड कहे। इसलिए जो झगडा चलता आ रहा है वह एकदम बेमानी है।

जिन लोगों ने कहा कि यह पदार्थ ही है, वे भी ठीक कहते है। क्योंकि सब पदार्थ में ही तो आ रहा है तो कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है। इसमें झगडा कहाँ है ? लेकिन कोई कहता है कि पदार्थ है ही नही। बस, चेतन ही है। वह भी ठीक कहता है। ये ऐसे ही लोग है जैसे एक कमरे में आधा भरा गिलास रखा हो और एक आदमी बाहर आए और कहे कि गिलास आधा खाली है। और फिर दूसरा आदमी बाहर आए और कहे : गलत बोलते हो बिल्कुल ! गिलास आधा भरा है। और दोनों विवाद करे। और तब दो सम्प्रदाय बन जाएँगे। और ऐसे लोगो के सम्प्रदाय बनते हैं जो भीतर कभी जाते नहीं देखते कि गिलास कैसा है ? मकान के बाहर ही निर्णय कर लेते है। दो आदमी बाहर आएँ और एक कहे कि मकान के भीतर जो गिलास है वह आधा खाली है

और दूसरा कहे कि वह आधा भरा है। दोनो ही ठीक कहते हैं। सिर्फ उनका जोर भिन्न है। एक खाली पर जोर देकर चला है, एक भरे पर।

जो लोग पदार्थ पर जोर दे रहे हैं, वे भी ठीक है। और जो अध्यात्म पर जोर दे रहे हैं वे भी ठीक हैं क्योकि पदार्थ और चेतन दो चीजें नही हैं। **पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है और चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति है।** तो मेरी दृष्टि में जिस दिन दुनिया और ज्यादा सम्प्रदायो से उठकर देखना शुरू करेगी उस दिन भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में कोई झगडा नही रहेगा। वह आधे गिलास का झगडा है। हाँ, फिर भी मैं पसद करूँगा कि **जोर** इस तथ्य पर दिया जाए कि **सब चेतन है।** पसद इसलिए करूँगा कि जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है तो हमारी चेतना के प्रकट होने में बाधा पडती है। दूसरी ओर जब हम इस बात पर बल देते हैं कि सब चेतन है तो हमारी चेतना पर बल पडता है और विकास की सम्भावना उद्‌भूत होती है। इसलिए अध्यात्मवाद में और पदार्थवाद में बुनियादी भेद नही है। भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आदमी को रोक सकता है विकास से। क्योकि जब सब पदार्थ ही है तो बात खत्म हो गई। और अध्यात्मवाद विकासशील बना सकता है आदमी को। लेकिन जब कोई पहुँचता है जीवन के सत्य पर तो वह पाता है कि दोनो बाते ठीक हैं। बातो में कोई झगडा न था लेकिन जोर में फर्क पडता था और फर्क उपयोगी था।

भोज के जीवन में एक उल्लेख है कि उसके दरबार में एक ज्योतिषी आया भोज का हाथ देखा और कहा, "तुम बडे अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुँचाओगे, अपने बेटो को भी मरघट पहुँचाओगे। तुम घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुँचाना पडेगा। बाद में तुम मरोगे।" भोज बहुत नाराज हो गया और उसने ज्योतिषी को हथकडियाँ डलवा दी और कहा इसे बन्द कर दो। यह आदमी कैसी अपशकुन की बाते बोल रहा है? कालिदास चुपचाप बैठा था। वह खूब हसने लगा। उसने कहा ज्योतिषी कुछ अपशकुन नही बोलता। सिर्फ बोलने की समझ नही है। जोर गलत चीज पर देता है। भोज ने पूछा : क्या मतलब? कालिदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूँ और हाथ देखकर कहूँ, "बहुत धन्यभागी हैं आप। आपकी उम्र बहुत ज्यादा है। और धन्यभागी इन अर्थों में है कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी कभी दुःखी होगी, न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दुःखी होगे। न कोई सबधी दुःखी होगा। आप बडे धन्यभागी है।" और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए लो, ऐसे शकुन की

बात करनी चाहिए, अपशकुन की नहीं। यह जो जोर का फर्क है चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होते हैं। पहली बात बड़ा उदास कर देगी। दूसरी बात बड़ा प्रसन्न कर देगी। और बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन उनके कहने का ढंग, उनका जोर बदल गया है।

पदार्थवाद मनुष्य को एकदम उदास कर देता है। अध्यात्मवाद एक गति देता है, विकास के द्वार खोलता है, कुछ होने की सम्भावना प्रकट करता है। बात वही है। इसलिए मैं फिर भी कहता हूँ कि अध्यात्मवाद ही ठीक कहता है, यद्यपि भौतिकवाद गलत नहीं कहता है।

प्रश्न : क्या यह मानवज्ञान की सीमा नहीं है कि वह सृष्टि के आदि को नहीं जान सकता ?

उत्तर : नहीं, यह मनुष्य के ज्ञान की सीमा का सवाल नहीं है। मनुष्य का ज्ञान कितना ही असीम हो जाए, तो भी प्रारम्भ की सम्भावना नहीं है।

प्रश्न : जानने की सम्भावना नहीं ?

उत्तर : नहीं, जानने की बात नहीं। बात है प्रारम्भ होने की। जानने का सवाल नहीं है। अगर प्रारम्भ है तो जाना जा सकता है। जो है वह जाना जा सकता है। अब जो नहीं है, उसके लिए क्या करेंगे ? प्रारम्भ असम्भव है। ज्ञान की सीमा का सवाल ही नहीं है। यानी ऐसा नहीं है कि महावीर यह कहते हैं कि मुझे पता नहीं कि प्रारम्भ है या नहीं। मैं भी ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि यह हमारे ज्ञान की सीमा है कि हमें पता नहीं चल सकता कि प्रारम्भ कब हुआ ? नहीं, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि प्रारम्भ की अवधारणा असम्भव है क्योंकि प्रारम्भ के लिए भी पहले कुछ सदा से होना चाहिए, नहीं तो प्रारम्भ हो ही नहीं सकता। यानी प्रारम्भ के सम्भव होने के लिए भी प्रारम्भ के पहले अस्तित्व चाहिये। और जब पहले अस्तित्व चाहिये तो वह प्रारम्भ नहीं रह गया और फिर इसको आप पीछे खींचते चले जाएँ। जैसे कोई आदमी कहे कि दुनिया की एक सीमा है और हम कहें कि हमें तो सीमा का कोई पता नहीं। कोई कहे कि अस्तित्व एक जगह जाकर समाप्त हो जाता है, जिसके आगे कुछ भी नहीं है तो हम कहें हमें पता नहीं है। हो सकता है कि एक दिन आदमी उस जगह पहुँच जाए जहाँ जगत् समाप्त हो जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान अभी सीमित है, हम बहुत थोड़ा सा ही जानते हैं, अभी चाँद पर ही पहुँच पाये हैं, मुश्किल से। और जगत् का अस्तित्व तो बहुत विस्तीर्ण है। फिर भी हम पहुँच

पाएँगे, यह नही कह सकते। इसलिए अन्त के सम्बन्ध में हम कैसे कहें? लेकिन मैं कहता हूँ कि अन्त नहीं हो सकता, अन्त असम्भव है।

अन्त इसलिए असम्भव है कि किसी चीज का अन्त सदा दूसरे का प्रारम्भ होता है। यानी अगर हम किसी दिन ऐसी जगह पहुँच जाएँ जहाँ एक रेखा आ जाती हो और हम कह सके कि यह जगत् का अन्त हुआ तो यह कैसे सभव है? रेखा बनेगी कैसे? रेखा बनती है दो के अस्तित्व से। एक शुरू होता है और एक अन्त होता है। जहाँ आपका मकान खत्म होता है वहाँ पडोसी का मकान शुरू हो जाता है। इसीलिए जहाँ कुछ अन्त होता है, वहीं प्रारम्भ होता है। यानी प्रत्येक अन्त प्रारम्भ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारम्भ अन्त को जन्म देता है। जहाँ ऐसी स्थिति हो, वहाँ हम बिना किसी दिक्कत के कह सकते हैं कि चाहे कितना ही कही मनुष्य पहुँच जाए ऐसा कभी नही होगा कि मनुष्य कहे कि यह है जगत् की सीमा, अब इसके आगे कुछ भी नही है। लेकिन 'आगे' तो होगा। इतना भी अगर रहा कि इसके 'आगे' कुछ नहीं पर 'आगे' तो होगा, फिर 'आगे' तो अभी जारी रहा, खत्म कहाँ हुआ। यानी आप विचार भी नही कर सकते ऐसा कि एक जगह ऐसी आ गई जिसके आगे 'आगे' भी नहीं है। ऐसी जगह कैसे आएगी? इसलिए न तो अवधारणा हो सकती है और न सम्भावना।

महावीर का दावा जारी रहेगा। वह दावा कभी भी खडित नही हो सकता। यानी अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस दिन पृथ्वी का प्रारभ हुआ तो हम पाएँगे कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। फिर जब उसका पता लगा लिया तो पता चलेगा कि उसके पहले कुछ है जिससे प्रारम्भ हुआ। यानी प्रारम्भ शून्य से नही हो सकता है, और अगर शून्य से प्रारम्भ हो सके तो शून्य को शून्य कहना गलत होगा। उसका मतलब होगा कि शून्य में भी बीच की तरह कुछ छिपा है जो प्रकट होगा। फिर वही 'शून्य' न रहा। 'शून्य' का मतलब है जिसमें कुछ भी नही छिपा, जो है ही नही। इसका जो कारण है वह यह नही है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है। इसका कारण यह है कि ज्ञान कितना ही बढ जाए, प्रारम्भ की धारणा असम्भव है। प्रारम्भ कभी है ही नही। यानी उस प्रारम्भ होने की धारणा में ही उसका विरोध छिपा हुआ है। वह कैसे होगा? और जहाँ से भी होगा पूर्व स्थिति की जरूरत पडेगी। और वह पूर्वस्थितियाँ प्रारम्भ को खडित कर देती हैं।

प्रश्न : जीवन की भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों मे महावीर की मानसिक स्थिति का विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसके आधार पर उनकी अंतरंग स्थिति का स्पष्टीकरण क्या हो सकेगा ?

उत्तर : यह बहुत बढिया सवाल है। बढिया इसलिए है कि हम सबके मन मे उठ सकता है कि भिन्न-भिन्न अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियो मे महावीर जैसे व्यक्ति की चित्तदशा क्या होगी ? कोई उल्लेख नही है। तो कोई सोच सकता है कि उल्लेख इसलिए नही है कि महावीर ने कभी कुछ कहा न हो। मगर यह कारण नही है। उल्लेख न होने का कारण दूसरा है जो कि बहुत गहरा, बुनियादी है।

महावीर जैसी चेतना की अभिव्यक्ति में परिस्थितियो मे कोई भेद नही पडता। इसलिए भिन्न-भिन्न परिस्थिति कहने का कोई अर्थ नहीं है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे प्रतिकूल, अनुकूल में चित्त सदा समान है। जैसे कि किसी ने गाली दी तो हम क्रुद्ध होते हैं और किसी ने स्वागत किया तो हम आनन्दित होते हैं। प्रत्येक स्थिति में हमारा चित्त रूपान्तरित होता है। जैसी स्थिति होती है वैसा चित्त हो जाता है। इसी को महावीर बन्धन की अवस्था कहते हैं। स्थिति जैसी होती है, वैसा चित्त को होना पडता है। फिर हम बँधे हुए हैं। स्थिति दु:ख की होती है तो हमें दु:खी होना पड़ता है। स्थिति सुख की होती है तो हमें सुखी होना पडता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नही है। सिर्फ बाहर की स्थिति जो मौका दे देती है चित्त वैसा हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि चेतना अभी उपलब्ध ही नही हुई। अभी हम उस जगह नही पहुँचे है जहाँ स्थितियाँ कोई फर्क नही लाती है, जहाँ सुख आए, दु:ख आए तो प्रतिकूल और अनुकूल जैसी चीज ही नही होती।

महावीर के अंतरग चित्त में क्या हो रहा है ? किसी दिन बहुत शिष्य इकट्ठे हुए होगे तो महावीर का मन कैसा है ? किसी दिन कोई नही आया होगा गाँव से सुनने तो महावीर का मन कैसा है ? किसी दिन सम्राट् आए होगे सुनने और चरणो में लाखो रुपये रखे होगे और किसी दिन कोई भिखारी आया होगा और उसने कुछ नही रखा होगा तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा ? किसी गाँव में स्वागत-समारम्भ हुए होगे, फूल-मालाएँ चढी होगी और किसी गाँव में पत्थर फेंके गए होगे, गालियाँ दी गई होंगी और गाँव के बाहर खदेड दिया गया होगा

तो महावीर का मन कैसा हुआ होगा ? यानी इन स्थितियो में महावीर के भीतर क्या होता है ?

असल में महावीर होने का मतलब ही यह है कि भीतर अब कुछ भी नहीं होता। जो होता है वह सब बाहर होता है। यही महावीर होने का अर्थ है, यही क्राइस्ट होने का अर्थ है, यही बुद्ध होने का अर्थ है, यही कृष्ण होने का अर्थ है कि अब भीतर कुछ भी नही होता। भीतर बिल्कुल अछूता छूट जाता है। जैसे एक दर्पण है और उसके सामने से कोई निकलता है, जैसा व्यक्ति है—सुन्दर या कुरूप—वैसी तस्वीर बन जाती है। व्यक्ति निकल गया, तस्वीर मिट गई, दर्पण रह जाता है। इसमें कोई फर्क नही पडता कि वह दर्पण सुन्दर व्यक्ति को कुछ ज्यादा रस से झलकाए, कुरूप को कम रस से झलकाए। सुन्दर है कि कुरूप है, कौन गुजरता है सामने से, इससे कोई मतलब नही है। दर्पण का काम है झलका देना। लेकिन एक फोटो-प्लेट है वह भी दर्पण का काम करती है लेकिन बस एक ही बार। क्योकि जो भी उस पर अंकित हो जाता है उसे पकड लेती है, फिर उसे छोड नही पाती। इसका मतलब यह हुआ कि दर्पण की घटनाएँ सब बाहर ही घटती हैं, भीतर नही घटती। फोटो-प्लेट में भीतर घटना घट जाती है। बाहर से कोई निकलता है और भीतर घट जाता है। बाहर से तो निकल ही गया लेकिन फोटो-प्लेट फँस गई। वह तो पकड गई भीतर से।

दो तरह के चित्त हैं जगत् मे, फोटो-प्लेट की तरह या दर्पण की तरह काम करने वाले। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं उन्ही को राग-द्वेष ग्रस्त कहते हैं। असल में फोटो-प्लेट बडा राग-द्वेष रखती है। राग-द्वेष का मतलब है जकडती है जल्दी, पकड़ती है जल्दी, फिर छोडती नही। राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है। दोनो पकडते हैं। एक मित्र की तरह पकड़ता है, एक शत्रु की तरह पकडता है। दोनों पकड लेते हैं और चित्त की, जो दर्पण की निर्मलता है, वह खो जाती है। हम सब फोटो-प्लेट की तरह काम करते हैं, इसलिए बडी मुसीबत में पडे होते हैं। एकदम चित्त भरता जाता है, खाली नही होता और फिर स्थिति पकडी जाती है। और कोई स्थिति ऐसी नही है जो हमारे पास से अस्पर्शित निकल जाए। महावीर जैसे व्यक्ति दर्पण की तरह जीते है। समाधिस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह जीता है। कोई गाली देता है तो वह सुनता है, कोई सम्मान करता है तो वह सुनता है। लेकिन जैसे सम्मान

विदा हो जाता है ऐसे गाली भी विदा हो जाती है भीतर कुछ पकड़ा नही जाता।

इसलिए महावीर के चित्त की अलग-अलग स्थितिया नही हैं जिनका वर्णन किया जाए। इसलिए वर्णन नही किया गया। कोई स्थिति ही नही है। अब क्या दर्पण का वर्णन करो बार-बार ? इतना कहना ही काफी है कि दर्पण है। जो भी आता है वह झलकता है, जो चला जाता है। झलक बंद हो जाती है। इसको रोज-रोज क्या लिखो ? इसको रोज-रोज क्या कहो ? इसे कहने का कोई अर्थ नही है। न महावीर की, न क्राइस्ट की, न बुद्ध की, न कृष्ण की—किन्ही की अन्तः परिस्थिति का कोई उल्लेख नही किया गया, नही किए जाने का कारण है। उल्लेख योग्य कुछ है ही नही। एक समता आ गई है चित्त की। वह वैसा ही रहता है।

जैसे कि महावीर को कुछ लोग पत्थर मार रहे हैं या कान मे कीलें ठोक रहे हैं, या गांव के बाहर खदेड रहे हैं तो महावीर को मानने वाले कहते है कि बडे क्षमावान् हैं वह। महावीर ने गाली नही दी उन्हें, क्षमा कर दिया और आगे बढ गए। लेकिन वह भूल जाते हैं कि क्षमा तभी की जा सकती है जब मन में क्रोध आ गया होगा। क्षमा अकेली बेमानी है। वह क्रोध के साथ ही साथ आती है। नही तो उसका कोई अर्थ ही नही है। हम क्षमा कैसे करेंगे यदि हम क्रुद्ध न हुए। और वह कहते हैं कि उन्होंने लौटकर गाली न दी, क्षमा कर दी और आगे बढ गए। लेकिन लौटकर तभी कुछ दिया जा सकता है जब भीतर कुछ हुआ हो। नही तो लौटकर कुछ भी नही दिया जा सकता। तो मैं आपसे कहता हूँ कि महावीर क्षमावान् नही थे क्योकि महावीर क्रोधी नही है। और महावीर ने क्षमा भी नहीं किया, चाहे देखने वालो को लगा हो कि हमने गाली दी, और इस आदमी ने गाली नही दी, बडा क्षमावान् है। बस इतना ही कहना चाहिए कि इस आदमी ने गाली नही दी। बडा क्षमावान है, यह कहना भूल हो जायेगी। इस आदमी ने गाली सुनी जैसे एक शून्य भवन में आवाज गूँजे, चाहे गाली की, चाहे भजन की। आवाज गूँजे और निकल जाए और भवन फिर शून्य हो जाए।

इस तल पर, इस चेतना मे जीने वाले व्यक्ति शून्य भवन की तरह हैं। जिन में जो भी आता है, वह गूँजता जरूर है, हमसे ज्यादा गूँजता है क्योंकि हमारी संवेदनशीलता इतनी तीव्र नही होती। क्योंकि हमने इतनी चीजें पहने

से भर रखी होती हैं। जैसे खाली कमरा है। खाली कमरे में आवाज गूँजती है और बहुत फर्नीचर भरा हो तो फिर नहीं गूँजती। हम फर्नीचर भरे लोग हैं जिनमें बहुत भरा हुआ है, फोटो-प्लेट ने बहुत इकट्ठा कर लिया है, आवाज गूँजती ही नहीं, कई दफा तो सुनाई ही नहीं पडता कि क्या सुना, क्या देखा, कुछ पता ही नहीं चलता। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति की संवेदनशीलता बडी प्रगाढ है। सब गूँजता है। जरा सी आवाज होती है, सुई भी गिरती है तो गूँज जाती है। लेकिन बस गूँजती है। और जितनी देर गूँज सकती है, गूँजती है और बिदा हो जाती है। महावीर उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करते—न क्षमा की, न क्रोध की। **महावीर का सारा योग अप्रतिक्रियायोग है।** प्रतिक्रिया मत करो, देखो, जानो, सुनो लेकिन प्रतिक्रिया मत करो।

प्रश्न एक मन्दबुद्धि व्यक्ति भी तो प्रतिक्रिया नहीं करता ?

उत्तर : हाँ, वह इसलिए नहीं करता क्योंकि न वह सुनता है, न वह जानता है, न वह देखता है।

प्रश्न : मन्दबुद्धि भी एक आदमी है ?

उत्तर : हाँ, वह इसीलिए प्रतिक्रिया नहीं करता क्योंकि वह देख नहीं पाता, सुन नहीं पाता, समझ नहीं पाता। और वह मंदबुद्धि, प्रतिक्रिया नहीं करता। परम स्थिति में भी अक्सर जड जैसी अवस्था मालूम होने लगती है।

प्रश्न : तो मालूम कैसे पडे ?

उत्तर : मालूम करने की जरूरत नहीं है। हाँ! तुम अपनी फिक्र करो कि हम कहाँ हैं। परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति हमें जड जैसा मालूम पडेगा। क्योंकि हमने जड को ही जाना है। अगर आप एक जड को गाली दें तो हो सकता है कि वह बैठा हुआ सुनता रहे। इसलिए नहीं कि उसने गाली सुनी बल्कि सिर्फ इसलिए कि सुना ही नहीं उसने कि क्या हुआ। महावीर को गाली दो तो हो सकता है वह भी वैसे बैठे सुनते रहें, इसलिए नहीं कि उन्होंने गाली नहीं सुनी। गाली पूरी सुनी, जैसी किसी आदमी ने कभी न सुनी होगी। लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं की क्योंकि गाली की प्रतिक्रिया क्या होगी ? प्रतिक्रिया का फल क्या है ? प्रतिक्रिया से लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है ?

अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड जैसा मालूम पडे क्योंकि हम जड को ही पहचानते हैं। लेकिन फर्क तो बहुत गहरे

होगे। वक्त लगेगा पहचानने में और शायद हम ठीक से पहचान भी न सके जब तक हमारे भीतर फर्क होना शुरू न हो जाए।

यह कुछ अद्भुत सी बात है लेकिन दो विरोधी अतियाँ कभी-कभी बिल्कुल समान ही मालूम होती है। जैसे एक बच्चा है. वह सरल मालूम होता है, निर्दोष मालूम होता है। लेकिन अज्ञानी है, ज्ञान बिल्कुल नही। परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे जैसा मालूम होने लगेगा। इतना ही सरल, इतना ही निर्दोष। शायद बच्चे जैसा व्यवहार भी करने लगेगा! शायद हमें तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी ने बुद्धि खो दी, यह कैसा बच्चो जैसा व्यवहार कर रहा है, कैसी बालबुद्धि का हो गया है। लेकिन दोनो में बुनियादी फर्क है। बच्चा अभी निर्दोष दिखता है लेकिन कल निर्दोषता खोएगा, अभी सरल दिखता है लेकिन कल जटिल होगा। यह आदमी जटिल हो चुका है। निर्दोषता खो चुका है। वह पूर्ण उपलब्धि है कि सरलता लौट आई है, फिर निर्दोष हो गया है। अब खोने का सवाल नही है यह जानकर, जी कर लौट आया है। यह उन अनुभवो से गुजर गया है जिनसे बच्चे को गुजरना पडेगा। बच्चे की सरलता अज्ञात की है। एक सन्त की सरलता ज्ञान की है। लेकिन दोनो सरलताएँ अक्सर एक सी मालूम पडेगी। एक सन्त भी बच्चो जैसा सरल हो सकता है। और अगर सन्त बच्चों जैसा सरल न हो सके तो अभी वृत्त पूरा नही हुआ, अभी बात वापस नही लौटी, जटिलता शेष रह गई, कठिनाई शेष रह गई है। कही कोई चालाकी शेष रह गई है। इसीलिए कभी-कभी बहुत भूलें हो जाती है।

मैं फकीर नसरुद्दीन की निरन्तर बात करता हूँ। वह ऐसा ही आदमी था जो देखने में परम जड मालूम पडे, जिसका व्यवहार परम जड़ का हो, लेकिन जो देख सके उसे वही परम ज्ञान दिख जाए। एक बात मैं बताना चाहूँगा। फकीर नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसने देखा कि एक व्यक्ति तोता बेच रहा है और जोर से चिल्ला कर कह रहा है कि बडा कीमती तोता है यह, बडे सम्राट् के घर का तोता है, इस-इस तरह की वाणियाँ जानता है, इस-इस भाषा को पहचानता है, इस-इस भाषा को बोलता है। और सैकडों लोग इकट्ठे हुए हैं। नसरुद्दीन भी उस भीड में खडा हो गया है। कई सौ रुपए में वह तोता नीलाम हुआ और बिक गया। नसरुद्दीन ने लोगों से कहा कि ठहरो, मैं इससे भी बढिया तोता लेकर अभी आता हूँ। भागा हुआ घर आया और अपने तोते के पिंजरे को लेकर बाजार में खड़ा कर दिया और कहा वह नया तोता

था ? अब दाम इसके बोलो। और जहाँ से उसकी बोली खत्म हुई वहाँ से शुरू करो। लोगों ने समझा कि उससे भी बढिया तोता आ गया है तो उन्होंने बोली शुरू की लेकिन तब धीरे-धीरे किसी ने कहा कि वह जो तोता था, बार-बार बोलता था, जवाब देता था, कई दफा बोली भी बढ़ाता था लेकिन यह तो कुछ बोलता ही नही है। नसरूद्दीन ने कहा कि बोलने वाले तोते का क्या मूल्य ? यह मौन तोता है, यह बिल्कुल परम स्थिति को पहुँच गया है। उन्होंने कहा हटाओ इसको। कोई एक पैसे का भी नही खरीदेगा इसे। उसने कहा बडे पागल लोग हो तुम। लोगों ने कहा अरे यह मूर्ख है नसरुद्दीन, इसकी बातों में क्यो पडते हो। यह पागल है इसमें कुछ अकल नही है। तोता सहित इसको निकाल बाहर करो।

लोगों ने नसरुद्दीन को तोता सहित बाहर निकाल दिया। रास्ते पर लोगो ने पूछा : कहो नसरूद्दीन तोता बिका कि नही। उसने कहा कि क्या बिकता क्योकि वहाँ खरीदाकर केवल वाणी को समझ सकते थे, मौन को कोई नही समझ सकता था। हम पिट गए क्योकि वहाँ कोई मौन को समझने वाला न था। मैंने तो सोचा कि जब वाणी के इतने दाम लग रहे हैं तो मौन का तो मजा आ जाएगा। लेकिन लोगों को वह आदमी पागल लगता है। जो तोता बोलता नही उसको कौन खरीदेगा ?

यह आदमी नसरुद्दीन निरन्तर अपने गधे पर यात्राएँ करता है। गधे पर शक्कर भर कर जा रहा है। नदी पडी। गधा नदी में बैठ गया। सारी शक्कर बह गई। नसरुद्दीन ने गधे से कहा है कि तू हमसे भी ज्यादा बुद्धिमानी दिखला रहा है। ठहर बेटे, तुझे भी आगे बतलाएँगे। क्योंकि हम कोई साधारण आदमी नही, हम भी तर्क जानते है। गधे को वापस लाया। उस पर रूई लादी। उसे नदी के पास ले गया। गधा फिर बैठा। रूई भारी हो गई। गधे का उठना मुश्किल हो गया। उसने आस-पास के लोगों को बुलाकर कहा : देखो ! नस-रूद्दीन जीत गया, गधा हार गया। लोगो ने कहा : तुम बिल्कुल जड बुद्धि हो तुम गधे से विवाद कर रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा : विवाद गधे के सिवाय किससे करना पड़ता है। असल में गधों से झगडा है। गधो से बकवास है। दोनो एक से हैं। उनकी बातो का कोई मतलब नहीं।

इस आदमी की जिन्दगी में ऐसे बहुत मौके हैं जब कि एकदम समझना मुश्किल हो जाता है कि यह आदमी क्या पागलपन कर रहा है। लेकिन पीछे

कही कोई बात छिपी रहती है। नसरुद्दीन जा रहा है एक रास्ते से। जोर की वर्षा हो रही है। एक मकान के पास बैठ गया है। गांव का मौलवी भाग रहा है वर्षा से। नसरुद्दीन चिल्लाता है : अरे मौलवी, भाग रहे हो। मैं सारे गांव को बता दूंगा। मौलवी ने कहा कि मैंने क्या अपराध किया है ? उसने कहा : पाप तुम कर रहे हो। भगवान् पानी गिरा रहा है और तुम भाग रहे हो। यह भगवान् का अपमान है। तो मौलवी धीरे-धीरे चला लेकिन सर्दी से बुखार हो गया। तीसरे दिन मौलवी अपने घर के दरवाजे पर परेशान बैठा था जब कि पानी गिरने लगा। नसरुद्दीन भागा जा रहा था। मौलवी ने कहा ठहर नसरुद्दीन। मुझे तो तूने धीरे चलने को कहा था, अब तू क्यो भाग रहा है। उसने कहा : भगवान् के पानी पर कही मेरा पैर न पड जाए इसलिए मैं भाग रहा हूँ और वह भाग गया। दूसरे दिन यह मौलवी मिला तो कहा कि तू बडा बेईमान है मुझे उपदेश दे रहा था मगर खुद क्या कर रहा है। नसरुद्दीन ने कहा : सब समझदार लोग बेईमान पाए जाते है। ईमानदारी करे तो नासमझ हो जाते हैं। फिर व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पडती है। शास्त्रो का क्या भरोसा ? अपने पर भरोसा रखना पडता है। तुम जब पानी मे थे तो हमने वह व्याख्या की। जब हम पानी में है तो हमने यह व्याख्या की। सभी बुद्धिमान् यही करते हैं।

ऊपर से मन्द बुद्धि मालूम होता है यह आदमी जो लोग परम प्रज्ञा को उपलब्ध होते हैं उनमें से एक है यह आदमी। मगर उसे पकडना मुश्किल है। और कई बार उसकी बातें बडी बेहूदी मालूम होती है। घर लौट रहा है। एक मित्र ने कुछ मांस भेंट दिया है और साथ में एक किताब दी है जिसमें मास बनाने की तरकीब लिखी है। किताब बगल में दबाकर, मास हाथ में लेकर बडी खुशी से भागा चला आ रहा है। चील ने झपटा मारा। चील मास ले गई। नसरुद्दीन ने कहा : अरे मूर्ख जा क्योकि बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है।" घर पहुँचा। घर जाकर अपनी पत्नी से कहा सुनती हो। आज एक चील बडी बेवकूफ निकली। क्या हुआ ? मैं मास लेकर आ रहा था। वह मांस ले गई लेकिन मांस बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है। उसकी औरत ने कहा कि तुम बहुत बुद्धू हो, चील इतनी बुद्धू नही है। उसने कहा कि सभी बुद्धिमानों को मैंने किताब पर भरोसा करते पाया है। इसीलिए मैंने भी किताब पर भरोसा किया। यह आदमी एक बार तो दिखेगा कैसा पागल है ? जड़ बुद्धि है। लेकिन कही कोई गहरे में उसकी भी अपनी समझ है और

वह इतने बडे व्यग भी कर रहा है और इतनी सरलता से कि किसी के ख्याल में आए तो उसके प्राणो में घुस जाए, न आए तो वह आदमी बुद्धू है। बहुत वार ऐसा हो सकता है कि हमें पकड में ही न आए कि क्या बात है। लेकिन हमे पकड़ में तभी आएगा जव हमारी समझ उतनी गहराई पर खडी हो।

प्रश्न क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है? क्या महावीर के वाद अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ है? क्या गीता और वाइविल मे महावीर से भी अधिक सूक्ष्म रूप हैं?

उत्तर : पहली वात यह है कि कुछ ऐसी चीजें हैं जो कभी विकसित नहीं होती। विकसित हो ही नही सकती। वे चीजें हैं जहाँ हमारा विचार, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि, सब शात हो जाते हैं। और वे तब हमारे अनुभव में आती हैं। जैसे कोई कहे कि वुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुए पचीस सौ साल हो गए। अब जिन लोगो को ज्ञान उपलब्ध हुआ है वह आगे विकसित होता हैं या नहीं? महावीर के वाद आज तक की अवधि में लोग विकसित हो गए हैं तो ध्यान आगे विकसित होगा या नहीं, ध्यान है स्वयं में उतर जाना। स्वयं में कोई चाहे लाख साल पहले उतरा हो और चाहे अब उतर जाए। स्वयं में उतरने का अनुभव एक है, स्वयं में उतरने की स्थिति एक है। इससे कोई फर्क नही पडता।

महावीर को जो अहिंसा प्रकट हुई वह उनकी स्वानुभूति का ही वाह्य परिणाम है। भीतर उन्होंने जाना जीवन की एकता को और वाहर उनके व्यवहार में जीवन की एकता अहिंसा के रूप में प्रतिफलित हुई। अहिंसा का मतलव है जीवन की एकता का सिद्धान्त, इस वात का सिद्धान्त कि जो जीवन मेरे भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुँचा सकता हूँ। मैं ही हूँ तुममें भी फैला हुआ। जिसे यह अनुभव हुआ हो कि मैं ही सव में फैला हुआ हूँ, या सव मुझसे ही जुडे हुए जीवन है उसके व्यवहार मे अहिंसा फलित होती है। इसमें क्राइस्ट को हो कि किसी और को हो, जीवन की एकता का यह अनुभव कम ज्यादा कैसे हो सकता है? यह थोड़ा समझने जैसा है।

अक्सर हम सोचते हैं कि सव चीजें कम ज्यादा हो सकती हैं। समझ लें कि आपने एक वृत्त (सर्किल) खींचा। कभी आपने सोचा कि कोई वृत्त कम और कोई वृत्त ज्यादा हो सकता है? हो सकता है कि जो वृत्त आपने खींचा है

कुछ कम हो, दूसरा वृत्त कुछ ज्यादा हो ? यह नही हो सकता क्योकि वृत्त का अर्थ ही यह है कि या तो वह वृत्त होगा, या नही होगा। कम ज्यादा नही हो सकता। जो वृत्त कम है, वह वृत्त ही नही है। जैसे प्रेम है। कोई आदमी कहे कि मुझे कम प्रेम है या ज्यादा प्रेम है तो शायद उस आदमी को प्रेम का पता ही नही है। प्रेम या तो होता है या नही होता है। उसके कोई टुकड़े नही होते। और ऐसा भी नही कि प्रेम विकसित होता हो क्योकि विकसित तभी हो सकता है जव थोडा थोडा हो सकता हो। ऐसा नही होता। अक्सर हमारी पसंद विकसित होती है इसलिए हम सोचते हैं कि प्रेम विकसित हो रहा है। पसंद और प्रेम मे बहुत फर्क है। पसंद कम हो सकती है, ज्यादा हो सकती है लेकिन प्रेम न कम होता है, न ज्यादा होता है। या तो होता है या नही होता। ऐसा कोई नही कह सकता कि ऐसा वक्त आएगा जव लोग ज्यादा प्रेम करेंगे। ऐसा नहीं हो सकता।

जीवन के जो गहरे अनुभव हैं, वे होते हैं या नही होते। महावीर को जो जीवन की एकता का अनुभव हुआ वही जीसस को हो सकता है, वुद्ध को हो सकता है, लेकिन ऐसा नही हो सकता कि उसमें किसी को ज्यादा हो और किसी को कम हो। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा। दुनिया में कुछ चीजें हैं आन्तरिक जो कभी विकसित नही होती। जव वे उपलब्ध होती हैं, पूर्ण ही उपलब्ध होती हैं या उपलब्ध होती ही नही हैं। जैसे की पानी भाप वन रहा है। निन्यानवे डिग्री पर गर्मी हो गई, अभी भाप नहीं वना है। अट्ठानवे डिग्री पर था, भाप नही वना, नव्वे डिग्री पर था, भाप नहीं वना, एक सौ डिग्री पर आया कि भाप वन गया। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। अस्सी डिग्री, नब्वे डिग्री, पचानवे डिग्री, निन्यानवे डिग्री। दस वर्तन रखे हैं सवमें अलग-अलग डिग्री का पानी है। उनमें पानी अभी भाप नही वन रहा है। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। कम होगी तो भाप नही वनेगी। जव पूरी होगी तभी भाप वनेगी। या तो भाप वनती है, या नही वनती है। इसके वीच में कोई डिग्री नही होती। भाप वनने की स्थिति आने तक पानी की डिग्रियाँ हो सकती हैं।

अज्ञान की डिग्रियाँ होती हैं ज्ञान की कोई डिग्री नहीं होती हालाँकि हम सव ज्ञान को डिग्रिय देते हैं। एक आदमी कम अज्ञानी, एक आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सार्थक है। लेकिन एक आदमी कम ज्ञानी, एक आदमी ज्यादा ज्ञानी—यह विल्कुल ही असंगत, निरर्थक वात है। कम-ज्यादा ज्ञान होता ही नहीं। हाँ, अज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है। दो अज्ञानियो में भी ज्ञान

का फर्क नही होता सिर्फ सूचना का फर्क होता है। एक आदमी यूनिवर्सिटी से लौटता है, सूचनाएँ इकट्ठा करता है। उसका ही एक भाई गाँव मे, देहात में रह गया था। सूचनाएँ इकट्ठी नही कर पाया। ये दोनो मिलते है तो एक ज्ञानी मालूम पडता है, दूसरा अज्ञानी मालूम पडता है। असल में दोनो अज्ञानी है। एक के पास सूचनाओ का ढेर है, एक के पास सूचनाओ का ढेर नही है। एक ज्यादा अज्ञानी है, यह कम अज्ञानी है, मगर यह भी ज्ञान के हिसाब से नही है तोल। जब ज्ञान आता है तो बस आता है। जैसे आँख खुल जाए और प्रकाश दिख जाए, जैसे दिया जल जाए और अंधेरा मिट जाए। ज्ञानी कभी छोटे-बडे नहीं होते। लेकिन हम चूँकि अज्ञानी हैं सब और छोटे-बडे की भाषा में जीते हैं तो हम ज्ञानियों के भी छोटे-बडे होने का हिसाब लगाते रहते हैं। कोई कहता है कबीर बडा कि नानक, महावीर बडे कि बुद्ध, राम बडे कि कृष्ण, कृष्ण बडे कि मुहम्मद। इस तरह बडे-छोटे का हिसाब लगाते रहते है अपने हिसाब से। कोई बडा-छोटा नही है वहाँ।

आज से तीन सौ चार सौ साल पहले सारी दुनिया में एक ख्याल था कि अगर हम छत पर खडे होकर एक छोटा और एक बडा पत्थर गिरायें साथ-साथ तो बडा पत्थर पहले पहुँचेगा जमीन पर, छोटा पत्थर पीछे। यह बिल्कुल ठीक गणित था। किसी ने गिरा कर देखा नही था। गणित बिल्कुल साफ ही दिखता था। क्योंकि बडा पत्थर है, पहले गिरना चाहिए। छोटा पत्थर है बाद में गिरना चाहिए। जिस पहले आदमी ने पिसा के टावर पर पहली दफा खडे होकर पत्थर गिरा कर देखा कि दोनो पत्थर साथ-साथ गिरे तो उसने दो-चार बार गिरा कर देखा कि कही कुछ भूल जरूर हो रही है क्योंकि बडा पत्थर छोटा पत्थर साथ-साथ कैसे गिरे। फिर जब उसने यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरो को कहा कि दोनों पत्थर साथ-साथ गिरते हैं तो उन्होंने कहा : तुम पागल हो गए हो, ऐसा कभी हुआ है ? हालाकि ऐसा किसी ने कभी देखा नहा था जाकर। फिर भी उसने कहा कि ऐसा हुआ है। प्रोफेसर बामुश्किल देखने गए क्योंकि पंडितों से ज्यादा जड कोई भी नही होता। वह जो पकडे रखते हैं, उसको इतनी जडता से पकडते हैं कि उसको इंच दो इंच भी हिलने नही देते। जब पत्थर गिराकर देखा तो कहा इसमें जरूर कोई शरारत है, इसमें जरूर कोई तरकीब की बात है क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि बडा पत्थर और छोटा पत्थर दोनों साथ-साथ गिरें। इसमें कोई तरकीब है या शैतान का हाथ है। और तुम इस झंझट में मत पडो। इसमें शैतान कुछ पीछे शरारत कर रहा है,

भगवान् के नियमो मे गडबड कर रहा है। असल में बडे छोटे पत्थर बडे-छोटे होने के कारण नही गिरते। गिरते हैं जमीन की कशिश के कारण। और कशिश दोनो के लिए वरावर है। छत पर से गिर भर जाएँ फिर वडा और छोटा होने का कोई मूल्य नही है। मूल्य कशिश की है और वह सवके लिए वरावर है।

एक सीमा है मनुष्य की। उस सीमा से वाहर मनुष्य छलाग भर लगा जाए, फिर परमात्मा की कशिश उसे खीचती है। फिर उसे कुछ नही करना पडता। उस सीमा के वाद कोई छोटा-वडा नही रह जाता। फिर सव पर वरावर कशिश काम करती है। एक सीमा भर है। उस सीमा को मैं कहता हूँ विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार में कूद जाता है उसके वाद फिर कोई छोटा वडा नही रहता, कोई कमजोर नही है, कोई ताकतवर नही है। कोई फर्क ही नही है। बस एक वार विचार से कूद जाए निर्विचार मे फिर जो जीवन की, अस्तित्व की परम शक्ति है, वह खींच लेती है एक साथ। तो हमारे सव फर्क कूदने के पहले के फर्क हैं। जव तक हम नही कूदे हैं तव तक के हमारे फर्क हैं। जिस दिन हम कूद गए उस दिन कोई फर्क नही है। महावीर ने जो छलाग लगाई है वही कृष्ण की है, वही क्राइस्ट की है। उसमें कोई फर्क नही है।

इसलिए कोई विकास अहिंसा में कभी नही होगा। महावीर ने कोई विकास किया है, इस भूल में भी नही पडना चाहिए। महावीर ने जो छलाग लगाई है, वह अनुभव वही है। मगर उस अनुभव की अभिव्यक्ति मे भेद है। लेकिन ऐसा कुछ नही है कि महावीर ने पहली वार अहिंसा का अनुभव किया हो। लाखो लोगो ने पहले किया है। लाखो लोग पीछे करेंगे। यह अनुभव किसी की वपौती नही है। जैसे हम आँख खोलेंगे तो प्रकाश का अनुभव होगा। यह किसी की वपौती नही है। मेरे पहले लाखो, करोडो, अरवो लोगो ने आँख खोली और प्रकाश देखा। और मैं भी आँख खोलूँगा तो प्रकाश देखूँगा। मेरी इसमें कोई वपौती नही है कि मेरे पीछे आने वाले लोग आँख खोलेंगे तो मुझसे कम देखेंगे या ज्यादा देखेगे। आँख खुलती है तो प्रकाश दिखता है। कोई विकास नही हुआ है, कोई विकास हो ही नही सकता।

कुछ चीजे हैं जिनमें विकास होता है। परिवर्तनशील जगत् में विकास होता है। शाश्वत, सनातन अन्तरात्मा के जगत् मे कोई विकास नहीं होता। वहाँ जो जाता है, परम अन्तिम मे पहुँच जाता है। वहाँ कोई विकास नही, कोई

आगे नही, कोई पीछे नही। वहाँ सब पूर्ण के निकट होने से, पूर्ण में होने से कोई विकास नही होता। परमात्मा से मतलब समग्र जीवन के अस्तित्व का है। वहाँ विकास का कोई अर्थ ही नही। जैसे एक बैलगाडी जा रही है, चाक चल रहे हैं। बैलगाडी में बैठा हुआ मालिक भी चल रहा है, बैल भी चल रहे हैं। बैलगाडी प्रति पल आगे बढ रही है। विकास हो रहा है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि बढते हुए चाको के बीच में एक कील है जो हिल भी नही रही है, जो वही की वही खड़ी है। चाक उसके ऊपर घूम रहा है। अगर कील भी चल जाए तो चाक गिर जाएगा। कील नही चलती है इसलिए चाक चल पाता है। कील भी चली कि अभी गाडी गई। फिर कोई विकास नहीं होगा।

मेरा कहना है कि जो कि विकास हो रहा है वह किसी एक चीज के केन्द्र पर हो रहा है पूर्ण के चारों तरफ विकास का चक्र घूम रहा है और पूर्ण अपनी जगह खडा हुआ है। हो सकता है आपने कील पर ख्याल ही न किया हो, सिर्फ चाक के घूमने को ही देखा हो। लेकिन जिसने कील पर ख्याल कर लिया उसके लिए चाक का घूमना बेमानी हो जाता है। कबीर ने एक पंक्ति लिखी है कि चलती हुई चक्की को देखकर कबीर रोने लगा। और उसने लौट कर अपने मित्रो से कहा कि बडा दु ख मुझे हुआ क्योकि दो पाटो के बीच जितने दाने मैंने पडे देखे, सब चूर हो गए। और दो पाटो के बीच में जो पड जाता है, वह चूर हो जाता है। उसका लड़का कमाल हँसने लगा। उसने कहा एसा मत कहो। क्योकि एक कील भी है दो चाको के बीच में और जो उसका सहारा पकड लेता है, वह कभी चूर होता ही नहीं।

इस पूरे अस्तित्व के विकासचक्र के बीच में भी एक कील है। उस कील को कोई परमात्मा कहे, धर्म कहे, आत्मा कहे, इससे कोई फर्क नही पडता। जो उस कील के निकट पहुँच जाता है वह उतना ही चाको के बाहर हो जाता है। उस कील के तल पर कोई गति नही है। सब गति उसी के ऊपर ठहरी हुई है। महावीर जैसे व्यक्ति कील के निकट पहुँच गये हैं—जहाँ कोई लहर भी नही उठती, कोई तरंग भी नही उठती, जहां कभी विकास नही होता, जहाँ कोई भी पहुँचे, अनुभव वही होगा। जहां गति नही, वहाँ कोई विकास नही।

तो महावीर की अहिंसा में कोई गति नहीं है, कोई प्रगति नही है, कोई विकास नही है।

१७

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः दिनांक २६ सितम्बर, १९६९

प्रश्न . महावीर के भी विरोधी थे। क्या उनके विरोध की चिन्ता महावीर को नहीं थी ? अहिंसक व्यक्ति के भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय मे सदेह पैदा करता है।

उत्तर : ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है उसका कोई विरोधी नही होना चाहिए। क्योकि जिसके मन में द्वेष, विरोध, घृणा, हिंसा नही है, उसके प्रति घृणा, हिंसा और द्वेष क्यो होना चाहिये ? ऊपर से देखे जाने पर यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पडती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है और जितने सरल सिद्धान्त होते हैं, जीवन उतना सरल नही है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के विरोधी पैदा होने की सम्भावना अधिक है। उसके कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हम सब हिंसक हैं तो हिंसक से हमारा ताल-मेल बैठ जाता है। अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच एकदम अजनबी है, उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। बरदाश्त न करने के कई कारण हैं। पहली बात यह है कि अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी में हम इतने ज्यादा निन्दित प्रतीत होने लगते हैं, इतने ज्यादा दीन-हीन, इतने ज्यादा क्षुद्र, कि हम निन्दित होने का बदला लिए बिना नहीं रह सकते। हम बदला लेंगे ही। पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्ति के मनो में अनजाने ही तीव्र बदले की भावना पैदा कर देता है। यह भावना हिंसा के कारण पैदा होती है।

महावीर जैसे व्यक्ति को अनिवार्य है कि लाखों विरोधी मिल जाएँ। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर सदेह नही होता। इससे खबर मिलती है कि आदमी इतना अजनबी था कि हम सब उसे स्वीकार नही कर सकते थे और जब हम उसे स्वीकार भी करेंगे तब हम उसे आदमी न रहने देंगे, हम उसे भगवान् बना

देंगे। वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। पूजा कर सकते हैं उसकी। लेकिन चूँकि वह आदमी ही नहीं है इसलिए आदमियों को उससे अब क्या लेना-देना रह जाता है। पहले हम निन्दा करते हैं, विरोध करते हैं। अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी और उसकी भाषा एक हो जाती है। तब तो उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खड़ा रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई फर्क न कर पाए तो फिर हमें कोई उपाय नहीं मिलता। हारे-थके, पराजित फिर हम उसे भगवान् बना देते हैं। यह दूसरी तरकीब है आखिरी जिससे हम उसे मनुष्यजाति से बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं रह जाती। फिर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। यह भी समझना जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलूँ, और मेरे बोलने में कितना ही प्रेम हो, कितनी ही आवाज हो, कितनी बड़ी ताकत हो लेकिन जो बहरा है उस तक मेरी आवाज नहीं पहुँचेगी। यानी जब मैं बोलता हूँ तो दो बातें हैं - मेरा बोलना और आपका सुनना। अगर बहरे तक आवाज न पहुँचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गूगा था। मेरे बोलने पर इसलिए शक नहीं किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नहीं पहुँची, इसलिए मैं गूगा था। महावीर के अहिंसक होने में इसलिए शक नहीं हो सकता कि हिंसक चित्तों तक उनकी आवाज नहीं पहुँच पाती। बहुत गहरे में हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम संवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।

इसी सम्बन्ध में एक प्रश्न और भी किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम में क्या कुछ कमी थी कि वह गोशालक को समझा न पाए। निश्चित ही, समझने में प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा। क्योंकि, दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है जो समझने को राजी ही न हो, पूर्ण बहरापन भी हो सकता है जो सुनने को राजी न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नहीं हो सकता कि वह दूसरे को नहीं समझा रहे हैं, या दूसरे को नहीं बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नहीं मिटा पा रहे हैं। इसके तो कई कारण हो सकते हैं। महावीर की अहिंसा की जाँच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जाँच करना गलत है। सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज को जानना हो तो किसी अंधे आदमी को माध्यम बनाकर जानना गलत है। हम अंधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है और वह कहे कि नहीं है तो हम कह सकते हैं कि कैसा सूरज है जो एक अंधे आदमी को

भी दिखाई नही पड रहा है। अगर कोई अंधे से सूरज को जाँच करने जाएगा तो सूरज के साथ अन्याय हो जाएगा। सूरज की जाँच करनी हो तो सीधी करनी होगी, कोई मध्यस्थ बीच में लेना खतरनाक है क्योकि तब जाँच अधूरी हो जाएगी और मध्यस्थ महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। और मध्यस्थ के पास आँखें होंगी तो सूरज हो जाएगा, धोमी आँखें होगी तो सूरज का प्रकाश धीमा हो जाएगा, अन्धा होगा तो सूरज नहीं होगा।

सीधा ही देखना जरूरी है। महावीर को भी सीधा देखना जरूरी है। तभी हम पहचान सकते हैं कि उनकी अहिंसा और उनका प्रेम पूर्ण है या नही। लेकिन कई वार ऐसा होता है कि हमारी खुद की आँखें इतनी कमजोर होती हैं कि सीधा देखना मुश्किल हो जाता है। तो हम परोक्ष देखते है, किसी और से पूछते हैं। खुद की आँखों की इतनी ताकत भी नही कि सूरज के सामने सीधा देख लें। तो हम दूसरो से खबर जुटाने जाते हैं। और यही कारण है कि महावीर, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगो के सम्बन्ध में हम सीधा देखने से बचते हैं। वहाँ भी प्रकाश बहुत गरिमा में प्रकट होता है। वहाँ भी साधारण कमजोर आँखें बन्द हो जाती है, देख नहीं पाती हैं। इसलिए हम बीच के गुरुओ को खोजते हैं, आचार्यों को खोजते है, टीकाकारो को खोजते हैं, व्याख्याकारो को खोजते हैं, उनके माध्यम से हम देखना चाहते हैं। गीता को हम सीधा नही देखना चाहते, टीकाकार से देखना चाहते हैं। हम आँख को सीधा उठाने की कोशिश भी नही करते।

प्रश्न महावीर ने जिन सिद्धान्तों की चर्चा की, जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त—उनका प्रयोगात्मक रूप क्या हो सकता है ?

उत्तर। इस सम्बन्ध में भी बडी भूल हुई है। पहली बात यह है कि सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य ये सिद्धान्त नही हैं। और इसलिए इनका सीधा प्रयोग करने की बात ही गलत है। इनका सीधा प्रयोग हो ही नही सकता। जैसे एक आदमी भूसा इकट्ठा करना चाहता हो तो उसे गेहूँ बोना पडता है खेत में, भूसा नही। और अगर वह पागल आदमी भूसा पैदा करने के लिए भूसा ही बो दे तो जो पास का भूसा है वह भी खेत में सड जाएगा, कुछ पैदा नही होगा। क्योंकि भूसा उप-उत्पत्ति (बाई प्रोडेक्ट) है, गेहूँ के साथ पैदा होता है। गेहूँ पैदा होता है तो उसके पीछे वह भी पैदा होता है। गेहूँ पैदा न हो तो अकेला भूसा पैदा करने का कोई उपाय ही नहीं है।

देगे। वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। पूजा कर सकते है उसकी। लेकिन चूंकि वह आदमी ही नही है इसलिए आदमियो को उससे अब क्या लेना-देना रह जाता है। पहले हम निन्दा करते हैं, विरोध करते हैं। अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी और उसकी भाषा एक हो जाती है। तब तो उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खडा रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई फर्क न कर पाए तो फिर हमें कोई उपाय नही मिलता। हारे-थके, पराजित फिर हम उसे भगवान् बना देते है। यह दूसरी तरकीब है आखिरी जिससे हम उसे मनुष्यजाति से बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें इसकी चिन्ता करने की जरूरत नही रह जाती। फिर हम निश्चिन्त हो जाते हैं। यह भी समझना जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलू, और मेरे बोलने में कितना ही प्रेम हो, कितनी ही आवाज हो, कितनी बडी ताकत हो लेकिन जो बहरा है उस तक मेरी आवाज नही पहुँचेगी। यानी जब मैं बोलता हूँ तो दो बाते हैं - मेरा बोलना और आपका सुनना। अगर बहरे तक आवाज न पहुँचे तो यह नही कहा जा सकता कि मैं गूगा था। मेरे बोलने पर इसलिए शक नही किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नही पहुँची, इसलिए मैं गूगा था। महावीर के अहिंसक होने में इसलिए शक नही हा सकता कि हिंसक चित्तो तक उनकी आवाज नही पहुँच पाती। बहुत गहरे में हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम सवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।

इसी सम्बन्ध में एक प्रश्न और भी किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम में क्या कुछ कमी थी कि वह गोशालक को समझा न पाए। निश्चित ही, समझाने में प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे यह सिद्ध नही होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा। क्योंकि, दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है जो समझने को राजी ही न हो, पूर्ण बहरापन भी हो सकता है जो सुनने को राजी न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नही हो सकता कि वह दूसरे को नही समझा रहे हैं, या दूसरे को नहीं बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नही मिटा पा रहे है। इसके तो कई कारण हो सकते है। महावीर की अहिंसा की जांच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जांच करना गलत है। सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज को जानना हो तो किसी अंधे आदमी को माध्यम बनाकर जानना गलत है। हम अंधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है और वह कहे कि नहीं है तो हम कह सकते है कि कैसा सूरज है जो एक अंधे आदमी को

ब्रह्मचर्य साधा तो ब्रह्मचर्य होगा बाहर और भीतर होगा व्यभिचार। समाधि भीतर होगी नही। तब हम चूक जाएँगे, बिल्कुल ही चूक जाएँगे। वह जो होने वाला था वह हमें कभी नही हो पाएगा बल्कि हम उल्टी स्थिति में पहुँच जाएँगे।

इसलिए मेरा जोर इस बात पर है कि महावीर जैसे व्यक्ति को अगर समझना हो तो बाहर से भीतर की तरफ समझना ही मत। भीतर से बाहर की तरफ समझना उसे। तो ही वह समझ में आ सकता है, नही तो भूल हो जाएगी। तो मैं अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य इनको सिद्धान्त नही कहता। इनका दो कौडी भी मूल्य नही है समाधि के मुकाबले। उतना ही मूल्य है जितना भूसे का होता है। महावीर को जो उपलब्धि है, वह है समाधि। उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियाँ हैं, वे हैं सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। ये सिद्धान्त नहीं हैं। और न इनको सीधा प्रयोग करने की कोई जरूरत है। न कोई इनका सीधा प्रयोग कभी कर सकता है, न कभी किसी ने किया है। हाँ करने की कोशिश की है बहुत लोगो ने। और कोशिश में असफल हुए हैं, बिल्कुल हुए हैं वे और कभी भी तट तक नही पहुँचे है।

इसलिए यह तो पूछो ही मत कि इनका प्रयोगात्मक रूप क्या है? प्रयोगात्मक रूप तो ध्यान का है। प्रयोग तो करना है ध्यान का। ये आएगे छाया की तरह। आप यहाँ आए हैं तो मैं आपसे नही कहता कि आप अपनी छाया को भी साथ ले आएँ या आज आपकी छाया को भी निमत्रण दिया है वह भी आए। अगर मैं ऐसा कहूँ तो आप कहेंगे। आप कैसी बातें करते हैं? मैं आऊँगा तो मेरी छाया आ ही जाएगी। उसे अलग से निमत्रण देने की कोई जरूरत नही है। लेकिन इससे उल्टा नही हो सकता कि आपकी छाया को मैं ले आऊँ और उसके साथ आप आ जाएँ। पहली बात तो यह है कि मैं आपकी छाया को ला ही नही सकता। और कोई धोखा खडा कर लूँ तो आप उससे नही आ जाएँगे। इसलिए अहिंसा नही साधनी है, साधना है ध्यान। अहिंसा फलित होती है। वह ध्यान का सहज परिणाम है। जब ध्यान आता है तब आदमी हिंसक नही रह जाता। अहिंसा साधनी नही पडती, हिंसा तिरोहित हो जाती है, भीतर कुछ बचता नही।

यह भी समझ लेने की जरूरत है कि अहिंसा, हिंसा का उल्टा नहीं, अहिंसा हिंसा का अभाव है। लेकिन हमें उल्टा दिखाई पडता है क्योंकि हमारे भीतर होती है हिंसा, अहिंसा हम साधते हैं। तो वह उल्टी मालूम पडती है। अहिंसा

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अस्तेय—ये सिद्धान्त नही हैं। यह उप-उत्पत्तियाँ हैं। जहा समाधि पैदा होती है वहाँ ये सब भूसे की तरह अपने आप पैदा हो जाते हैं और जो व्यक्ति इनको सीधा पैदा करने जाएगा वह भूसा की पैदावार करने में लगा हुआ है भूसे से। जो भूसा हमने डाला खेत में, वह भी सड जाएगा। भूसा तो पैदा होने वाला नही है। कई बार ऐसी भूल हो जाती है कि चूंकि गेहूँ और भूसा साथ-साथ पैदा होते हैं तो हम सोच सकते हैं कि गेहूँ को बोओ तो भूसा हो जाता है, भूसा को बोओ तो गेहूँ हो जाएगा। लेकिन ऐसा नही है। साथ-साथ वे जरूर दिखाई पडते हैं। लेकिन भूसा पीछे है, गेहूँ आगे है। गेहूँ आएगा तो भूसा आएगा। वह उसकी छाया की तरह आता है। अहिंसा, सत्य—सब छाया की तरह आते हैं समाधि के अनुभव मे। समाधि पहले है, ध्यान पहले है। ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आते हैं। लेकिन हमें ध्यान दिखाई नही पडता। गेहूँ भी दिखाई नही पडता, दिखाई तो भूसा ही पडता है पहले। आखिर खेत में भी गए तो गेहूँ छिपा है भूसे में। दिखाई तो पडता है भूसा पहले, आता है भूसा पीछे। भूसे को उघाडें तो गेहूँ दिखाई पड़ेगा। भूसा गेहूँ की चारों तरफ से रक्षा करता है।

समाधि आती है पहले, लेकिन दिखाई नही पडती पहले। महावीर के पास जाएँगे तो सत्य, अहिंसा, अचौर्य दिखाई पडेंगे। समाधि दिखाई नही पडेगी। वह भूसा है। वह चारों तरफ से समाधि को घेरे हुए है। लेकिन समाधि आई है पहले। उसके पीछे छाया की तरह सब आया है। लेकिन हमको दिखाई पडेगा पहले। तो हमारे साथ एक मुश्किल हो जाएगी। हमें अहिंसा पहले दिखाई पडेगी। हम सोचेंगे अहिंसा साधो, सत्य साधो, अस्तेय साधो, चोरी मत करो, ब्रह्मचर्य साधो, काम छोडो—हमें यह दिखाई पडेगा और हम भूसा बोने की दौड़ में लग जाएँगे।

महावीर अहिंसा नही साध रहे हैं, क्योंकि जो अहिंसा साधेगा वह करेगा क्या? वह सिर्फ हिंसा को दबाएगा और क्या कर सकता है? और दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता। दबी हुई हिंसा से अगर कोई आदमी अहिंसा भी करेगा तो भी उसकी अहिंसा में हिंसा के लक्षण होंगे। हिंसा उसके पीछे खडी होगी। उसकी अहिंसा में भी हिंसा का स्वर होगा, दबाव होगा। अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार बैठा ही रहेगा। अब यह बड़ी उल्टी बात है। महावीर के भीतर है समाधि और बाहर है ब्रह्मचर्य। और अगर हमने

सूचक है, निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तन्द्रा की, नशे की। उस नशे की हालत को भीतर से तोड दें तो बाहर से हिंसा विदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी। इसलिए इन सिद्धान्तों के सीधे प्रयोग की बात उचित नहीं है और जिन लोगो ने भी इन सिद्धान्तों के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल दमन, आत्म-उत्पीडन और एक तरह की अपने को सताने की लम्बी प्रक्रिया में उतर गए हैं जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध होने से रही, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न . आत्मा परमात्मा से बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न परिवर्तन में कुछ है तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने का उपदेश क्यो देते रहे ?

उत्तर यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरो को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमें इसलिए ऐसा लगता है क्योकि हम असाधु हैं। और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पडेगा। जबकि सच्चाई यह है कि साधुता आती है, बनाना नहीं पड़ता। और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठ, मिथ्या, आडम्बर होगी।

एक युवक एक फकीर के पास गया और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करूँ, मुझे बताएँ? तो उस फकीर ने कहा कि दो तरह की साधुताएँ हैं। साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात। साधु बनना एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे आओ। कपडे बदलो, वेष बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदलो, तुम साधु बन जाओगे। साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है क्योकि तब वेष बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा तब तो तुम ही बदलोगे। महावीर साधु बने, यह अत्यन्त गलत शब्दो का प्रयोग है। बनना होता है चेष्टा से। महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से। अगर महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गलत है। महावीर ने किसी को भी साधु बनने को नही कहा। महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरु हो गई है।

प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं लेकिन साधु नही बन सकते हैं। साधुता तो आत्मपरिवर्तन है पूरा का पूरा। तो साधुता कोई ऐसी चीज नही है कि कल एक आदमी असाधु था, आज साधु हो गया, आज दीक्षा ले ली, वस्त्र

साधनी है तो जो हिंसक करता है, वह हम न करे। ब्रह्मचर्य साधना है तो जो कामुक करता है, वह हम न करें? बस उससे उल्टा करें। तो हमारे लिए काम से उल्टा होता है ब्रह्मचर्य, हिंसा से उल्टी होती है अहिंसा, चोरी से उल्टा होता है अचौर्य, असत्य से उल्टा होता है सत्य। जबकि ये बातें बिल्कुल गलत हैं। ये कोई उल्टे नही होते। ये अभाव हैं। अहिंसा उस दिन आती है जिस दिन हिंसा होती नही। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह विदाई है हिंसा की। जहाँ काम विदा हो जाता है, वहाँ जो शेप रह जाता है उसका नाम है ब्रह्मचर्य। इसलिए ब्रह्मचर्य काम का उल्टा नही है। उल्टे में तो काम की मौजूदगी रहेगी ही। यह ध्यान में रहे कि हर उल्टी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है। वह कभी मिटती नही। अगर क्षमा क्रोध से उल्टी है तो क्रोध के भीतर क्षमा मौजूद है, क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद है। अगर ब्रह्मचर्य काम से उल्टा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा भीतर काम होगा। क्योंकि जो उल्टा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी नही सकता। वह उसके साथ ही जीता है। दोनो अनिवार्य रूप से जुडे हुए हैं।

इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य है, जो परम अनुभूतियाँ हैं, वे अभाव की अनुभूतियाँ हैं—विरोध की नही। जैसे ही समाधि फलित होती है वैसे ही कुछ चीजें विदा हो जाती हैं। हिंसा विदा हो जाती है क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का सम्बन्ध नही जुड़ता। मेरे देखे ये लक्षण हैं। अगर एक आदमी हिंसक है, अब्रह्मचारी है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नही हुआ। इसलिए मैं अब्रह्मचर्य को, काम को, हिंसा को, चोरी को लक्षण मानता हू भीतर की स्थिति का। और जो व्यक्ति लक्षण को बदलने में लगेगा, वह वैसे ही पागल है जैसे किसी को बुखार आ गया है, शरीर गर्म हुआ और हम उसका शरीर ठडा करने मे लग गए। गर्म होना सिर्फ लक्षण है कि भीतर कही कोई बीमारी है, जिस बीमारी में शरीर के तत्त्व संघर्ष में पड गए हैं, संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है और अगर वैद्य इस गर्मी को ही ठंडक देने में लग गया, ठडे पानी से नहलाने में लग गया तो बीमारी के मिटाने की सम्भावना कम है, बीमारी के बढ जाने की सम्भावना ज्यादा है। तो चिकित्सक गर्मी देखकर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है, बीमारी को मिटाने लगता है, गर्मी विदा हो जाती है। इसी तरह हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की

सूचक है, निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तन्द्रा की, नशे की। उस नशे की हालत को भीतर से तोड दें तो बाहर से हिंसा विदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी। इसलिए इन सिद्धान्तो के सीधे प्रयोग की बात उचित नही है और जिन लोगो ने भी इन सिद्धान्तो के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल दमन, आत्म-उत्पीडन और एक तरह की अपने को सताने की लम्बी प्रक्रिया में उतर गए है जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध होने से रही, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न आत्मा परमात्मा से बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न परिवर्तन में कुछ है तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरो को साधु बनने का उपदेश क्यों देते रहे ?

उत्तर यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरो को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमे इसलिए ऐसा लगता है क्योकि हम असाधु है। और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पडेगा। जबकि सच्चाई यह है कि साधुता आती है, बनाना नहीं पड़ता। और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठ, मिथ्या, आडम्बर होगी।

एक युवक एक फकीर के पास गया और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करूँ, मुझे बताएँ ? तो उस फकीर ने कहा कि दो तरह की साधुताएँ है। साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात। साधु बनना एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे आओ। कपडे बदलो, वेष बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदलो, तुम साधु बन जाओगे। साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है क्योकि तब वेष बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा तब तो तुम ही बदलोगे। महावीर साधु बने, यह अत्यन्त गलत शब्दो का प्रयोग है। बनना होता है चेष्टा से। महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से। अगर महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गलत है। महावीर ने किसी को भी साधु बनने को नही कहा। महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है।

प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं लेकिन साधु नही बन सकते हैं। साधुता तो आत्मपरिवर्तन है पूरा का पूरा। तो साधुता कोई ऐसी चीज नही है कि कल एक आदमी असाधु था, आज साधु हो गया, आज दीक्षा ले ली, वस्त्र

साधनी है तो जो हिंसक करता है, वह हम न करे। ब्रह्मचर्य साधना है तो जो कामुक करता है, वह हम न करे ? बस उससे उल्टा करें। तो हमारे लिए काम से उल्टा होता है ब्रह्मचर्य, हिंसा से उल्टी होती है अहिंसा, चोरी से उल्टा होता है अचौर्य, असत्य से उल्टा होता है सत्य। जबकि ये बातें बिल्कुल गलत हैं। ये कोई उल्टे नही होते। ये अभाव हैं। अहिंसा उस दिन आती है जिस दिन हिंसा होती नही। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह विदाई है हिंसा की। जहाँ काम विदा हो जाता है, वहाँ जो शेष रह जाता है उसका नाम है ब्रह्मचर्य। इसलिए ब्रह्मचर्य काम का उल्टा नही है। उल्टे में तो काम की मौजूदगी रहेगी ही। यह ध्यान में रहे कि हर उल्टी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है। वह कभी मिटती नही। अगर क्षमा क्रोध से उल्टी है तो क्रोध के भीतर क्षमा मौजूद है, क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद है। अगर ब्रह्मचर्य काम से उल्टा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा भीतर काम होगा। क्योंकि जो उल्टा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी नही सकता। वह उसके साथ ही जीता है। दोनो अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं।

इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य हैं, जो परम अनुभूतियाँ है, वे अभाव की अनुभूतियाँ हैं—विरोध की नही। जैसे ही समाधि फलित होती है वैसे ही कुछ चीजें विदा हो जाती है। हिंसा विदा हो जाती है क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का सम्बन्ध नही जुड़ता। मेरे देखे ये लक्षण हैं। अगर एक आदमी हिंसक है, अब्रह्मचारी है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नही हुआ। इसलिए मैं अब्रह्मचर्य को, काम को, हिंसा को, चोरी को लक्षण मानता हू भीतर की स्थिति का। और जो व्यक्ति लक्षण को बदलने में लगेगा, वह वैसे ही पागल है जैसे किसी को बुखार आ गया है, शरीर गर्म हुआ और हम उसका शरीर ठंडा करने में लग गए। गर्म होना सिर्फ लक्षण है कि भीतर कहीं कोई बीमारी है, जिस बीमारी में शरीर के तत्त्व संघर्ष में पड़ गए हैं, संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है और अगर वैद्य इस गर्मी को ही ठंडक देने में लग गया, ठंडे पानी से नहलाने में लग गया तो बीमारी के मिटाने की सम्भावना कम है, बीमारी के बढ़ जाने की सम्भावना ज्यादा है। तो चिकित्सक गर्मी देखकर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है, बीमारी को मिटाने लगता है, गर्मी विदा हो जाती है। इसी तरह हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की

सूचक है, निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तन्द्रा की, नशे की। उस नशे की हालत को भीतर से तोड दें तो बाहर से हिंसा विदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी। इसलिए इन सिद्धान्तो के सीधे प्रयोग की बात उचित नही है और जिन लोगो ने भी इन सिद्धान्तों के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल दमन, आत्म-उत्पीडन और एक तरह की अपने को सताने की लम्बी प्रक्रिया में उतर गए है जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध होने से रही, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्न आत्मा परमात्मा से बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न परिवर्तन में कुछ है तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने का उपदेश क्यों देते रहे ?

उत्तर यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें लगता है कि महावीर साधु बने और दूसरो को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमें इसलिए ऐसा लगता है क्योकि हम असाधु है। और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पडेगा। जबकि सच्चाई यह है कि साधुता आती है, बनाना नहीं पड़ता। और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठ, मिथ्या, आडम्बर होगी।

एक युवक एक फकीर के पास गया और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करूँ, मुझे बताएँ ? तो उस फकीर ने कहा कि दो तरह की साधुताएँ है। साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात। साधु बनना एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे आओ। कपडे बदलो, वेष बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदलो, तुम साधु बन जाओगे। साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है क्योकि तब वेष बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा तब तो तुम ही बदलोगे। महावीर साधु बने, यह अत्यन्त गलत शब्दों का प्रयोग है। बनना होता है चेष्टा से। महावीर साधु हुए आत्म-परिवर्तन से। अगर महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो तो भी बात गलत है। महावीर ने किसी को भी साधु बनने को नही कहा। महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है।

प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं लेकिन साधु नही बन सकते हैं। साधुता तो आत्मपरिवर्तन है पूरा का पूरा। तो साधुता कोई ऐसी चीज नही है कि कल एक आदमी असाधु था, आज साधु हो गया; आज दीक्षा ले लो, वस्त्र

वदले, मुँहपट्टी बाधी और साधु हो गया। कल तक असाधु था, आज साधु हो गया। और कल फिर मुँह-पट्टी फेंक दी, वस्त्र वदल लिए फिर असाधु हो गया। यह मुँह-पट्टी, वस्त्र और यह सब का सब जो वाह्य आडम्बर है, अगर किसी को साधु बनाता है तो बडी आसान वात है। कोई साधु बन सकता है, फिर असाधु वन सकता है। लेकिन कभी सुना है ऐसा कि कोई साधु हो गया हो, और फिर असाधु हो जाए। क्योकि जिसने साधुता का आनन्द जाना है, वह कैसे असाधु होने के दुख में उतरेगा। असल में वह साधु हुआ ही नही था, सिर्फ वस्त्र ही वदले थे, सिर्फ वेष ही बदला था, सिर्फ ढोग वदला था, सिर्फ अभिनय वदला था। अभिनय फिर वदला जा सकता है। जो हमारे ऊपर की वदलाहट है वह हमारे भीतर की वदलाहट नही है।

महावीर साधु नही बने क्योकि जो साधु वना है, वह कल असाधु वन सकता है। शायद महावीर को पता ही नही चला होगा कि वह साधु हो गए हैं। होने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त धीमी, शान्त और मौन है। वनने की जो प्रक्रिया है वह अत्यन्त घोषणापूर्ण है। वैंड-वाजे के साथ वनना होता है। वनने की प्रक्रिया भीड-भाड़ के साथ है, जुलूस के साथ है। वनने की प्रक्रिया और है, होने की प्रक्रिया और है। रात में कली खिल जाती है, फूल वन जाती है, शायद पौधे को भी पता न चलता होगा। कव एक छोटा-सा अंकुर, बडा पत्ता वन जाता है, शायद पत्ते को भी पता न चलता होगा। आप कव वच्चे थे और कव जवान हो गये, कव जवान थे और कव वूढे हो गए, कव जन्मे थे, और कव मर जाएँगे, पता चलेगा क्या? यह सव चुपचाप हो रहा है। जीवन चुपचाप काम कर रहा है।

ठीक ऐसे ही अगर कोई अपनी असाधुता को समझता चला जाए, तो वह एक दिन हैरान होगा कि कब वह साधु हो गया, किस क्षण वदल गया। वेष वही होता है, वस्त्र वही होते हैं, सव वही होता है। लेकिन यह घटना चुपचाप घट जाती है। महावीर न कभी साधु वने और न महावीर ने कभी किसी को कहा कि तुम साधु वनो। हाँ, महावीर को देखने वाले लोग साधु वने और उन्होंने दूसरो को यह समझाया कि साधु वनो। वस देखने में भूल हो जाती है। क्योंकि देखने में हमें क्रमिक विकास दिखाई नही पडता, सिर्फ वाहर की घटनाएँ दिखाई पडती हैं कि वाहर कल आदमी ऐसा था आज ऐसा हो गया। भीतर का, बीच का सेतु छूट जाता है। वही मूल्यवान् है।

कुछ वर्ष हुए एक मुसलमान वकील मुझे मिलने आए और उन्होंने मुझे कहा—कई महीनो से आना चाहता था लेकिन नही आया। चित्त अशान्त था। पूछना चाहता था आपसे कि कैसे शात हो जाऊँ। लेकिन यह डर लगता था कि आप कहेंगे कि मांस खाना छोडो, चोरी करना छोडो, बेईमानी छोडो, शराब मत पिओ, जुआ मत खेलो—और ये सब मेरे पीछे लगे हैं। जब भी किसी साधु के पास गया उसने यही कहा कि यह सब छोडो तभी शात हो सकते हो। ये मुझसे छूटते नहो फिर मैंने साधुओ के पास जाना ही वद कर दिया। इसलिए मैं आपके पास नही आया। फिर मैंने कहा। आज आप कैसे आए ? उसने कहा, आज किसो मित्र के घर खाना खाने गया था। उन्होने मुझसे कहा कि आप कहते हैं कि कुछ छोडो हो मत। तो मुझे लगा कि इस आदमी के पास जाना चाहिए। आप कुछ भी छोडने को नही कहते : शराब पी सकता हूँ, जुआ भी खेल सकता हूँ। मैंने कहा मुझे तुम्हारे शराब और जुए से क्या मतलब। यह तुम्हारा काम है, तुम जानो। तो उसने कहा कि फिर आपसे मेरा मेल पड़ सकता है। फिर मैं क्या करूँ ? अशात हूँ, दु खी हूँ। मैंने कहा कि आप ध्यान का छोटा-सा प्रयोग करें। आत्म-स्मरण का प्रयोग शुरू करें। आधा घटा रोज बैठकर अकेले स्वय ही रह जाएँ, सब भूल जाएँ। उतनी देर मन में जुआ न खेलें। बाहर के जुए से मुझे कोई मतलब नही। उतनी देर मन में शराव न पिएँ, बाहर की शराव मैं मुझे कोई मतलब नही। उतनी देर मास न खाएँ, बस इतना वहुत है। उन्होने कहा कि यह हो सकता है। आधा घंटा वचा सकता हूँ।

फिर छः महोनो के वाद वह आदमी वापस आया। उसकी चाल वदल गई थी। वह आदमी वदल गया था। उसने मुझे आकर कहा कि आपने मुझे घोखा दिया। मैं क्यो आपको धोखा दूँ ? वह आधा घंटा तो ठीक था लेकिन मेरे साढे तेईस घटे दिक्कत में पड जाते हैं। कल मैंने शराव पी और मुझे वमन हो गया उसी वक्त। क्योंकि मेरा पूरा मन इन्कार कर रहा था। रिश्वत लेने में एकदम हाथ खिच गए पीछे जैसे कोई जोर से कह रहा हो कि तुम क्या कर रहे हो ? क्योकि उस आधा घटा में जो शान्ति और आनन्द मुझे मिल रहा है, वह अव मैं चाहता हूँ कि चौवीस घटे में फैल जाए। मैंने कहा वह तुम्हारा काम है।

छ महीने वाद वह आदमो दुवारा आया और उसने कहा कि जो आनन्द मैंने उस आधे घटे में पाया वह सारे जीवन मे नही पाया। अव मैं मास नहीं खा सकता। अव मुझे तकलीफ होती है यह सोचकर कि मैं इतने दिन कितना

संवेदनहीन था कि मास खाता रहा। आज मैं सोच भी नही पाता कि मैं इतने वर्षों तक कैसे शराब पीता रहा ? मैंने कहा अब क्या दिक्कत है शराब पीने में ? उसने मुझे कहा कि दिक्कत बहुत साफ हो गई है। पहले मैं अशात था शराब पीता था, अब मैं शान्त हूँ शराब नही पीता हूँ। फिर मैंने कहा कि यह तुम्हारी मर्जी है। अब जो तुम समझो करना।

महावीर का ध्यान ऐसा है कि जो उस ध्यान से गुजरेगा वह मासाहार नही कर सकता है। महावीर कहते नही किसी को कि मासाहार मत करो। वह ध्यान ऐसा है कि आप उससे गुजरेंगे तो मांसाहार नहीं कर सकते। इतने सवेदनशील हो जाएँगे आप कि ये बात मूर्खतापूर्ण मालूम पडेगी, जडतापूर्ण मालूम पडेगी कि भोजन के लिए किसी का प्राण लिया जाए। महावीर कहते हैं कि जो ध्यान से गुजरेगा वह शराब नहीं पी सकता है क्योकि वह ध्यान इतने जागरण में, इतने आन्द में ले जाता है कि शराब पीना उस सबको नष्ट करना होगा। लेकिन हमारी हालत उल्टी है। हम पकडे हुए है कि मास मत खाओ, शराब मत पियो, यह मत करो, वह मत करो, बस फिर जो महावीर को है, आपको हो जाएगा। मगर कभी नही होने वाला है यह। क्योंकि आप गलत दिशा की ओर चल पडे हैं। आप भूसा बो रहे है, गेहूँ का आपको पता ही नही है।

प्रश्न · महावीर सम नता के समर्थक थे। फिर भी उनके सघ मे साध्वी-संघ उपेक्षित क्यों रहा ?

उत्तर · यह बहुत विचारणीय बात है। महावीर के मन में स्त्री-पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव नही है। समानता की पकड इतनी गहरी है कि मनुष्य और पशु में भी, मनुष्य और पौधे में भी वह असमानता का भाव नही रखते। लेकिन फिर भी स्त्री और पुरुष के बीच साधुसघ मे उन्होने कुछ भेद किया है और उसके कुछ कारण हैं। और वह कारण अब तक नही समझे जा सके है। न समझे जाने का रहस्य आपको ख्याल में आ सकता है। महावीर स्त्री के विरोध में नहीं हैं, स्त्रैणता के विरोधी हैं और इसको नहीं समझा जा सका। महावीर पुरुष के पक्ष में नही हैं लेकिन पुरुष होने का एक गुण है, उसके पक्ष में हैं। इन बातो को हम समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा। कई पुरुष हैं जो स्त्रैण हैं, कई स्त्रियाँ हैं जो पुरुष है। स्त्रैणता का अर्थ है निष्क्रियता। पुरुषत्व का अर्थ है सक्रियता पुरुष आक्रामक है। स्त्री अगर प्रेम भी करे तो भी आक्रमण नही करती। वह जानकर किसी को पकड नहीं लेती कि मुझे

तुमसे प्रेम है। प्रेम भी करे तो चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करती है कि तुम आओ और उससे कहो कि 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।' स्त्री आक्रामक नही है। स्त्रैण चित्त आक्रामक नही है। इससे स्त्री का ही सम्बन्ध नही है। बहुत पुरुष ऐसे हैं जो इसी भांति प्रतिक्षा करेंगे। महावीर का कहना है—जैसा मैंने पीछे समझाया कि महावीर की पूरी साधना संकल्प की, श्रम की साधना है—कि जिसे सत्य पाना है उसे यात्रा पर निकलना होगा, उसे खोज में जाना होगा, उसे जुझना पडेगा, उसे चुनौती, साहस, सघर्ष में उतरना पडेगा। ऐसे बैठ कर सत्य नही मिल जाएगा।

तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुरुष होना पडेगा। इस बात को बहुत गलत समझा गया। ऐसा समझा गया कि स्त्री योनि से मोक्ष असम्भव है। स्त्री को भी एक जन्म लेना पडेगा पुरुष का, फिर पुरुषयोनि से मोक्ष हो सकेगा। बात बिल्कुल दूसरी है। पुरुषयोनि से ही मोक्ष हो सकता है महावीर के मार्ग पर। लेकिन पुरुष योनि का मतलब पुरुष हो जाना नही है शरीर से, पुरुष योनि का मतलब है निष्क्रियता छोड देना। एक स्त्री है। उसके मन को सहज यही लगता है कि वह कृष्ण का गीत गाए और कहे तुम्ही ले चलो जहां ले चलना हो। तुम्ही हो मार्ग, तुम्ही हो सहारे, मैं तो कुछ भी नही हूँ, तुम्ही हो सब, अब जहां चाहो मुझे ले जाओ।' जितना भक्तिमार्ग है वह सब स्त्रैण की उत्पत्ति है—स्त्री की नही। जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के कन्धे पर हाथ रख ले, अपने प्रेमी के हाथ में हाथ दे दे और प्रेमी जहां ले जाए, वहां चली जाए। स्त्रैण चित्त कह रहा है कि कोई ले जाए तो मैं जाऊं, कोई पहुंचाए तो मैं पहुंचूं, मैं समर्पण कर सकती हूं। जैसे, एक लता है। वह सीधी खडी नही हो पाती। किसी वृक्ष का सहारा मिल जाए तो वह खडी हो सकती है। लता को वृक्ष का सहारा चाहिए, स्त्री सहारा मांगती है और महावीर सहारे के एक दम खिलाफ हैं। वह कहते हैं कि सहारा मांगा कि तुम परतन्त्र हुए। सहारा मांगो ही मत, बिल्कुल बेसहारा हो जाओ। तुमने सहारा मांगा कि तुम पगु हुए। सहारा भगवान् का भी मत मांगना। सहारा मांगना ही दीन हो जाना है।

तो महावीर कहते हैं कि सहारा मागना ही मत। यह अत्यन्त पुरुषमार्ग है। इस पुरुषमार्ग पर स्त्रैण चित्त की गति नहीं है। लेकिन शरीर से कोई स्त्री हो, किन्तु उसमें पौरुष हो तो गति हो सकती है। एक तीर्थंकर हैं जैनों के मल्ली-बाई। वह स्त्री है और दिगम्बरो ने उसे मल्लीनाथ ही कहा है। उसे स्त्री कहना

बेमानी है। क्योंकि वह ठीक पुरुष जैसी बेसहारा खडे होने की हिम्मत रख सकी। उसने कोई सहारा नही मांगा। इसलिए स्त्री कैसी ? मल्लीबाई कहा ही नही दिगम्बरो ने। उन्होने कहा . मल्लीनाथ। पीछे झगडा खड़ा हो गया कि मल्लीबाई स्त्री थी कि पुरुष। दिगम्बर कहते हैं : पुरुष, श्वेताम्बर कहते हैं . 'स्त्री' दोनो ठीक कहते हैं। मल्लीबाई स्त्री थी। लेकिन उसके चित्त की दशा स्त्रैण नहीं है। यहां काश्मीर में एक स्त्री हुई : लल्ला। काश्मीर के लोग कहते हैं कि हम दो ही नाम पहचानते हैं . अल्ला और लल्ला। मगर लल्ला को स्त्री कहना मुश्किल है। इतिहास मे वह अकेली ही स्त्री है जो नग्न रही। महावीर नग्न रहे वह ठीक है। पुरुष नग्न रह सकता है क्योंकि वह दूसरे को फिक्र ही नही करता। स्त्री चौबीस घंटे दूसरे की फिक्र में है। चाहे वह पति हो, चाहे प्रेमी हो, चाहे समाज हो। महावीर नग्न खडे हो गए, यह कोई बडी बात न थी। लेकिन लल्ला नग्न खडी हो गई, यह बडी भारी बात है। उसके पास पुरुषचित्त है। वह जीवन भर नग्न रही।

गाधी जी ठहरे हुए थे रवीन्द्रनाथ के पास, शातिनिकेतन में। सांझ दोनो घूमने जाने वाले थे। तो रवीन्द्रनाथ ने कहा रुके दो मिनट, मैं जरा बाल संवार आऊँ। वह भीतर गए। एक तो गान्धी जी को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि बुढापे में, बाल संवारने की इतनी चिन्ता क्यो। पर रवीन्द्रनाथ थे। और कोई होता तो शायद गान्धी जी उसको वही कुछ कहते भी। एकदम से कुछ कहा भी नही जा सका। रवीन्द्रनाथ भीतर चले गए। दो मिनट क्या, दस मिनट बीत गए। गान्धी खिडकी से झांक रहे हैं। रवीन्द्र आइने के सामने खडे है और बाल सवारे चले जा रहे है। वह खो ही गए है आइने में। पन्द्रह मिनट बीत गये तब बरदाश्त के बाहर हो गया। गान्धी जी भीतर गए और कहा कि क्या कर रहे हैं आप। रवीन्द्र ने चौंक कर देखा और कहा अरे! मैं भूल गया। चलता हूं। चलने लगे है तो रास्ते में गान्धी जी ने उनसे कहा कि मुझे बडी हैरानी होती है कि इस उम्र में आप बाल संवारते है। रवीन्द्र ने कहा कि जब जवान था तो बिना संवारे भी चल जाता था। जब से बूढा हुआ हूं तब से बहुत संवारना पड़ता है। बडी चिन्ता मन में लगती है कि किसी को देखकर कैसा लगूंगा। और मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अगर मैं कुरूप हूं तो यह हिंसा है क्योंकि दूसरे की आंख को दु ख होता है तो मुझे सुन्दर होना चाहिए। मैं जितना हो सके सुन्दर बनने की कोशिश करता हूं। रवीन्द्रनाथ पुरुष है मगर उनके पास एक स्त्रैण चित्त है। अगर कोई हिम्मत करे तो जैसा

मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा है, ऐसा रवीन्द्रनाथ को रवीन्द्र बाई कहने लगे। वह जो चित्त है भीतर गहरे में, वह एकदम स्त्री का है। शायद सभी कवियों के पास स्त्रैण चित्त होता है। असल में शायद काव्य का जन्म ही नही हो सकता पुरुष चित्त से।

वह जो काव्य का जगत् है, वह स्त्रीचित्त का जन्म है। इसलिए दुनिया में जितना विज्ञान बढता जा रहा है, काव्य पीछे हटता जा रहा है। विज्ञान पुरुष चित्त की देन है और पुरुष जीतता चला जाएगा तो काव्य पीछे हटता चला जाएगा। स्त्री का पूरा चित्त काव्य का है, स्वप्न का है, कल्पना का है। वह निष्क्रिय है, कुछ कर नही सकता, सिर्फ कल्पना कर सकता है। असल में कवि का मतलब है निष्क्रिय चित्त। वह कल्पना कर सकता है, और कुछ भी नही कर सकता। वह कई महल बना सकता है लेकिन कल्पना में। जो बैठे-बैठे बन सकते हैं, वही महल बना सकता है। खडे होकर और गिट्टी तोड कर और पत्थर जमा कर जो महल बनाने पडते हैं, वह उसके वश की बात नही है। वह बैठकर शब्दों के महल बना सकता है। रवीन्द्र कहते हैं कि मैंने क्या गाया? जब मैं नहीं होता हूं तब परमात्मा ही उतर आता है और मुझसे गाता है। अब यह जो निष्क्रिय चित्त है इसमें कुछ उतरता है, इससे बहता है। यह प्रतीक्षारत है, राह देखता है, अवसर खोजता है लेकिन अपनी जगह चुप और मौन है। तो सभी कविचित्त स्त्रीचित्त होंगे।

महावीर का यह जो जोर है, इसके पीछे कारण है। यह स्त्री और पुरुष के बीच नीचे-ऊँचे की बात नही है। यह स्त्रैण चित्त और पुरुषचित्त क्या कर सकते हैं, इस बात के सम्बन्ध में विचार है। इसलिए महावीर कहते हैं स्त्री का मोक्ष नही है। इसका मतलब है स्त्रैण चित्त को मोक्ष नही है। स्त्री मोक्ष जा सकती है लेकिन चित्त पुरुष का होना चाहिए—महावीर के मार्ग से। अगर मीरा के मार्ग से कोई जाना चाहे तो मीरा कहेगी पुरुष को कोई मोक्ष नही है। मीरा के मार्ग से जाना हो तो स्त्रीचित्त ही चाहिए। उस मार्ग से: पुरुष के लिए कोई मुक्ति नही है क्योंकि पुरुष इस तरह की बातें नही सोच सकता जैसा मीरा सोच सकती है। और अगर कभी पुरुष सोचता तो वह स्त्रैण हो जाता। जब कबीर या सूर कृष्ण के प्रेम में पागल हो जाते हैं तो सोचते क्या हैं? फौरन स्त्रैण चित्त की बातें शुरू हो जाती है। कबीर कहते हैं "मैं तो राम की दुलहनियाँ"—मैं राम की दुलहन हूँ। वे कहेंगे कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ सेज पर तुम्हारी, तुम कब आओगे? स्त्री का भाव शुरू हो जाएगा। जगत् में दो

ही तरह के चित्त है—स्त्रीचित्त और पुरुषचित्त। इसलिए बहुत गहरे में मुक्ति के दो ही मार्ग है। स्त्री का और पुरुष का। महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री के लिए कोई गुंजाइश नही है।

प्रश्न ज्यादातर लोग तो मिश्रित होते हैं ?

उत्तर हाँ, उनके लिए बीच का कोई मार्ग होता है। मार्ग बहुत हैं लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होगे क्योकि मनुष्य जीवन में पुरुष और स्त्री दो अति छोर है, जहाँ दो तरह का अस्तित्व होता है। अधिक लोग बीच में होते हैं, वे बीच का रास्ता पकडते हैं जिसमें वे ध्यान भी करते है और पूजा भी करते हैं। अब यह मजा है कि ध्यान पुरुषमार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री-मार्ग का हिस्सा है। दोनो के घोल-मेल से मुक्त होना बहुत मुश्किल है, क्योकि वहाँ कभी हम थोड़ा इस रास्ते पर जाते है, थोड़ा उस रास्ते पर जाते हैं। इसलिए चित्त का विश्लेपण जरूरी है कि किस व्यक्ति के लिए कौन-सा मार्ग उचित है ? महावीर के मार्ग पर स्त्रियाँ उपेक्षित है, ऐसा नही है। बल्कि स्त्री-चित उपेक्षित है जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुषचित्त उपेक्षित है।

एक बार मीरा गई वृन्दावन। वहाँ एक बडा साधु है, पुजारी है, सन्त है। वह उसके दर्शन के लिए उसके द्वार पर खडी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियो को देखता नही, मिलता नही। मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत् में और वह है कृष्ण। मुझे पता न था कि तुम दूसरे पुरुष भी हो। वह भी था कृष्ण का भक्त। वह पुजारी भागा हुआ आया और कहा कि माफ करना, भूल हो गई क्योंकि कृष्ण के साथ सखियो के सिवाय और किसी का निर्वाह नही। वहाँ राधा जैसा स्त्री-चित्त चाहिए—पूर्ण समर्पित, और प्रतीक्षा करता हुआ।

वह भी एक मार्ग है। अगर कोई पूर्ण रूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि हो सकती है। लेकिन महावीर का वह मार्ग नही है। महावीर के मार्ग पर स्त्रीचित्त उपेक्षित होगा ही। मगर वह स्त्री की उपेक्षा नही है।

एक साध्वी ने पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बडी बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित साध्वी हो, तो भी साध्वी साधु को प्रणाम करेगी। यह पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान है जबकि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं। एक तो जो मैंने पूरी बात कही वह ख्याल में रहे। महावीर के मन में स्त्रीचित्त यानी स्त्रैणता के

लिए कोई जगह नही है।' एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को नमस्कार करे। स्वभावत लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया। बात उल्टी है। स्त्रियों से संयम की सम्भावना ज्यादा है सदा पुरुषो के बजाय। क्योंकि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री को जब तक कोई असयम में न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नही है, चाहे मोक्ष की तरफ, चाहे नरक की तरफ। हर चीज में—चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो चाहे नरक, चाहे अधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहले करने वाला है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप में ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा कि उसके पास पुरुषचित्त है।

महावीर यहाँ बहुत अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूत्र का परिचय दे रहे हैं जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नही था। लेकिन सूत्र इतनी गहरी है कि एकदम से दिखाई नही पडती। चूंकि पुरुष ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नही, इसलिए महावीर ने बडा सुगम उपाय किया है कि स्त्री पुरुष को आदर दे। और स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उसके अहंकार को कठिनाई हो जाती है उस स्त्री को पाप की ओर ले जाने में। एक स्त्री आपको आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरो में, तो आपके अहंकार को कठिनाई हो जाती है अब इसको नीचे ले जाने में। इसलिए महावीर ने कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप में ले जाने की कल्पना भी न कर सके।

यहाँ अगर ध्यान से देखा जाए तो मालूम होगा झुकती तो स्त्री है किन्तु वस्तुतः पुरुष का अनादर हो गया है इस घटना में और स्त्री का पूर्ण आदर हो गया है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यह भी ध्यान रखें कि महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियाँ थी। यह अनुपात हमेशा ऐसा ही रहा है। और साध्वियाँ जितनी साध्वियाँ होती है साधु उतने साधु नही होते है। चूंकि वे पहल नही करती किसी भी काम में, इसलिए वे जहाँ हैं, वही रुक जाती है। अगर स्त्री को काम-वासना में दीक्षित न किया जाए तो वह जीवन भर ब्रह्मचर्य से रह सकती है। स्त्री के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। पुरुष के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को काम-वासना मे भी दीक्षित करना पडता है, धर्म

ही तरह के चित्त हैं—स्त्रीचित्त और पुरुषचित्त। इसलिए बहुत गहरे में मुक्ति के दो ही मार्ग हैं। स्त्री का और पुरुष का। महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री के लिए कोई गुंजाइश नही है।

प्रश्न ज्यादातर लोग तो मिश्रित होते हैं?

उत्तर हाँ, उनके लिए बीच का कोई मार्ग होता है। मार्ग बहुत हैं लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होगे क्योकि मनुष्य जीवन में पुरुष और स्त्री दो अति छोर हैं, जहाँ दो तरह का अस्तित्व होता है। अधिक लोग बीच में होते हैं, वे बीच का रास्ता पकडते हैं जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा भी करते हैं। अब यह मजा है कि ध्यान पुरुषमार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री-मार्ग का हिस्सा है। दोनो के घोल-मेल से मुक्त होना बहुत मुश्किल है, क्योकि वहाँ कभी हम थोडा इस रास्ते पर जाते हैं, थोड़ा उस रास्ते पर जाते हैं। इसलिए चित्त का विश्लेपण जरूरी है कि किस व्यक्ति के लिए कौन-सा मार्ग उचित है? महावीर के मार्ग पर स्त्रियाँ उपेक्षित है, ऐसा नही है। बल्कि स्त्री-चित उपेक्षित है जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुषचित्त उपेक्षित है।

एक बार मीरा गई वृन्दावन। वहाँ एक बडा साधु है, पुजारी है, सन्त है। वह उसके दर्शन के लिए उसके द्वार पर खड़ी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियो को देखता नही, मिलता नही। मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत् में और वह है कृष्ण। मुझे पता न था कि तुम दूसरे पुरुष भी हो। वह भी था कृष्ण का भक्त। वह पुजारी भागा हुआ आया और कहा कि माफ करना, भूल हो गई क्योकि कृष्ण के साथ सखियो के सिवाय और किसी का निर्वाह नही। वहाँ राधा जैसा स्त्री-चित्त चाहिए—पूर्ण समर्पित, और प्रतीक्षा करता हुआ।

वह भी एक मार्ग है। अगर कोई पूर्ण रूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि हो सकती है। लेकिन महावीर का वह मार्ग नही है। महावीर के मार्ग पर स्त्रीचित्त उपेक्षित होगा ही। मगर वह स्त्री की उपेक्षा नही है।

एक साध्वी ने पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बडी बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित साध्वी हो, तो भी साध्वी साधु को प्रणाम करेगी। यह पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान है जबकि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं। एक तो जो मैंने पूरी बात कही वह ख्याल में रहे। महावीर के मन में स्त्रीचित्त यानी स्त्रैणता के

लिए कोई जगह नही है।' एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण भी है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को नमस्कार करे। स्वभावत लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया। बात उल्टी है। स्त्रियो से संयम की सम्भावना ज्यादा है सदा पुरुषो के बजाय। क्योंकि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री को जब तक कोई असंयम में न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नहीं है, चाहे मोक्ष की तरफ, चाहे नरक की तरफ। हर चीज में—चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो चाहे नरक, चाहे अधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहले करने वाला है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप में ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा कि उसके पास पुरुषचित्त है।

महावीर यहाँ बहुत अद्भुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दे रहे हैं जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नही था। लेकिन सूझ इतनी गहरी है कि एकदम से दिखाई नही पडती। चूकि पुरुष ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नही, इसलिए महावीर ने बडा सुगम उपाय किया है कि स्त्री पुरुष को आदर दे। और स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उसके अहंकार को कठिनाई हो जाती है उस स्त्री को पाप की ओर ले जाने में। एक स्त्री आपको आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरो में, तो आपके अहकार को कठिनाई हो जाती है अब इसको नीचे ले जाने में। इसलिए महावीर ने कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप में ले जाने की कल्पना भी न कर सके।

यहाँ अगर ध्यान से देखा जाए तो मालूम होगा झुकती तो स्त्री है किन्तु वस्तुतः पुरुष का अनादर हो गया है इस घटना में और स्त्री का पूर्ण आदर हो गया है। लेकिन यह देखना जरा मुश्किल मामला है। यह भी ध्यान रखें कि महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियाँ थी। यह अनुपात हमेशा . ऐसा ही रहा है। और साध्वियाँ जितनी साध्वियाँ होती है साधु उतने साधु नही होते है। चूकि वे पहल नही करती किसी भी काम में, इसलिए वे जहाँ हैं, वही रुक जाती हैं। अगर स्त्री को काम-वासना में दीक्षित न किया जाए तो वह जीवन भर ब्रह्मचर्य से रह सकती हैं। स्त्री के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। पुरुष के शरीर और मन की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को काम-वासना में भी दीक्षित करना पडता है, धर्म

साधना में भी दीक्षित करना पडता है। वह पहल लेती ही नही। इसलिए निर्दोष लडकियां मिल जाती हैं, निर्दोष लडके मिलना बहुत मुश्किल हैं। कुंवारी लडकियां मिल जाती हैं, कुवारे लडके मुश्किल से होते हैं। लडकियों पर जो हमें इतने नियंत्रण और बन्धन मालूम पडते हैं वे असल में लडकियों पर नही हैं। लडकियों को जो घर में रोका गया है, लडको से नही मिलने दिया है, वह इसलिए नही कि लडकियो पर अविश्वास है उसका कारण यह है कि लडको पर विश्वास नही है। वे पहल दे सकते हैं पाप की। और चूंकि लडकियां कोई पहल नही दे सकती कभी भी, महावीर ने व्यवस्था की कि हर स्थिति मे साध्वी साधु को आदर दे। इसमें पुरुष के अहंकार की भी तृप्ति हुई। साधुओं ने समझा होगा हमारा बडा सम्मान हुआ। आज भी यही समझ रहे हैं।

प्रश्न नमस्कार करने वाले का अहंकार टूटता है या जिसको नमस्कार किया जाता है, उसका अहकार टूटता है ?

उत्तर : यहाँ अहंकार तोडने का मतलब नही है। यहाँ महावीर पुरुष का अहंकार पूरी तरह सुरक्षित कर रहे हैं। साध्वी पुरुष को नमस्कार करे इसमें साध्वी का अहंकार टूटेगा, पुरुष का मजबूत होगा। और जब पुरुष को एक बार पता चल जाए कि एक स्त्री ने मुझे आदर दिया तो वह उस स्त्री को पाप में नही ले जाएगा। अगर एक स्त्री आपके पैर छू ले तो आप इस स्त्री को काम की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जाएँगे। इसलिए कि आपके अहकार को बडी बाधा हो जाएगी। अब आप आदर की रक्षा करेंगे। लेकिन स्त्री के मामले में उल्टी बात है।

अगर यह कहा जाए कि स्त्री को पुरुष आदर दे, उसके पैर छुए, तो इसमें भी समझने जैसा मामला है। स्त्री का चाहे पैर छुओ, चाहे कोई शरीर का अंग छुओ, स्त्री की कामुकता उसके पूरे शरीर पर व्याप्त है। पुरुष की कामुकता सिर्फ उसके काम-केन्द्र के आस-पास है। इसलिए पुरुष को सिर्फ सम्भोग से आनन्द आता है, स्त्री को सिर्फ सम्भोग से आनन्द नही आता जब तक कि वह उसके पूरे शरीर के साथ न खेले, और उसके पूरे शरीर को न जगाए। अगर पुरुष स्त्री के पैर भी छू ले तो भी स्त्री में काम की सम्भावना जागृत हो सकती है। उसका पूरा शरीर कामुक है। और यह शुरूआत आगे बढ सकती है। पुरुष को अगर पहले ही झुका दिया जाए तो उसको और झुकने में डर नही रहा। अब वह स्त्री को किसी भी पाप-मार्ग से दीक्षित कर सकता है। इसलिए महावीर की बात तो अद्भुत है, आमतौर से यही समझा जाता है कि स्त्री को

अपमानित कर रहे हैं, पुरुष को सम्मानित कर रहे हैं। मामला बिल्कुल ही उल्टा है। पुरुष पूरी तरह अपमानित हुआ है इस घटना में और स्त्री पूरी तरह सम्मानित हुई है।

प्रश्न ऐसी व्याख्या किसी और ने भी की है क्या ?

उत्तर : नही, अब तक तो मुझे ख्याल में नही है कि किसी ने की है।

प्रश्न अभी तक उन्होंने कैसी व्याख्या की है इसको ?

उत्तर : अभी तक की व्याख्या यही है कि स्त्री नीच योनि है। पुरुष ऊँची योनि है, इसलिए पुरुषयोनि को वह नमस्कार करे। लेकिन मैं इस व्याख्या को बिल्कुल ही गलत मानता हूँ।

प्रश्न : महावीर के जमाने मे बहुत से लोग साधु और साध्वियाँ हो गए। ध्यान में तो पीछे गये होंगे। लेकिन पहले घर-बार छोड़कर उनके साथ क्यों हो गए ? आप तो ऐसी सलाह देते नहीं हैं ?

उत्तर : महावीर ने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए हैं—श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। महावीर की साधना-पद्धति श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। एकदम से कोई साधु नही हो सकता। महावीर की साधना का पूरा व्यवस्थाक्रम है। पहले उसे श्रावक होना होगा। साधना, ध्यान और सामायिक श्रावक की है। जब वह उससे गुजर जाए, जब उसको उतनी उपलब्धि हो जाए फिर वह साधु के जीवन में प्रवेश कर सकता है। महावीर सीधे उत्सुक नही हैं किसी को भी साधु की दीक्षा देने को। श्रावक वह भूमिका है जहाँ साधु का जन्म हो जाए तो फिर वह जा सकता है। और तब भी उनका आग्रह नहीं है कि वह जाए ही। वह श्रावक रहकर भी मोक्ष पा सकता है। सिर्फ महावीर ने ही यह कहने की हिम्मत की है। साधु होना अनिवार्य नही है बीच में। मान लीजिए कि आप गहरे ध्यान में गए और आप को वस्त्र पहनना ठीक मालूम पड़ता है तो आप जारी रखे। और कहीं आपको ऐसा भीतर लगने लगे कि छोड़ दें, कोई अर्थ नही है इनमें तो इसको भी क्यों रोकें, छोड़ दें। यानी महावीर की आस्था है कि एक सहज भाव में अगर एक व्यक्ति को लगता है कि वह शान्त हुआ, ध्यानस्थ हुआ, घर में रहकर ही तो ठीक है। अगर उसे लगता है कि यह व्यर्थ हो गया, वह इसे छोड दे। रुकावट नही है उनकी कोई, कोई आग्रह नही है।

प्रश्न : श्रावक होने से पहले साधु बनने को उन्होंने नहीं कहा क्या ?

उत्तर नही, बनने का उपाय ही नही। श्रावक की व्यवस्था से उसे गुजरना पडेगा। या तो श्रावक होने में ही साधु हो जाए और या वह जिसे हम साधु कहते हैं, वैसा हो जाए।

प्रश्न . परम्परा से प्रामाणिक एवं निर्णीत महावीर के जीवन का बौद्धिक एव तथ्यपूर्ण आपका विश्लेषण क्या समाज को स्वीकृत होगा ?

उत्तर समाज को स्वीकृत हो, ऐसी आवश्यकता भी नही। समाज को स्वीकृत हो इसका ध्यान भी नही। समाज को स्वीकृत होने से ही वह ठीक है, ऐसा कोई कारण भी नही।

समाज को जो स्वीकृत है, वह वही है कि जैसा समाज है उसको वह वैसा ही बनाये रखे। प्राथमिक रूप से जो मैं कह रहा हूँ उसकी अस्वीकृति की ही सम्भावना है समाज से। लेकिन अगर जो मैं कह रहा हूँ वह बुद्धिमत्तापूर्ण है, वैज्ञानिक है, तथ्य है, तथ्यगत है, तात्त्विक है तो स्वीकृति को टूटना पडेगा, अस्वीकृति जीत नही सकती है। और अगर यह तथ्यपूर्ण नही है, अवैज्ञानिक है, तात्त्विक नही है तो अस्वीकृति जीत जाएगी। सवाल यह नही कि कौन उसे स्वीकार करे, कौन अस्वीकार करे। मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मुझे कह देना है। अगर वह सत्य होगा तो आज नही कल स्वीकार करना ही पडेगा। लेकिन सत्य प्राथमिक रूप से अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि हम जिस असत्य में जीते है वह उससे विपरीत पडता है। इसलिए वह पहले अस्वीकृत होता है लेकिन अगर वह सत्य तो टिक जाता है और स्वीकृति पाता है और अगर असत्य है तो मर जाता है, गिर जाता है।

एक अद्भुत व्यक्ति थे महात्मा भगवान् दीन। वह जब किसी सभा में बोलते और लोग ताली बजाते तो वह बहुत उदास हो जाते। मुझसे वह कहते थे कि जब कोई ताली बजाता है तो मुझे शक होता है कि मैंने कोई असत्य तो नही बोल दिया क्योंकि इतनी भीड सत्य के लिए ताली बजाएगी एकदम से, इसकी सम्भावना नही है। वह कहते कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करता हूँ जब भीड एकदम से पत्थर मारेगी तो मैं समझूँगा कि जरूर कोई सत्य बोला गया है क्योंकि भीड असत्य में ही जीती है, समाज असत्य मे जीता है। और सत्य पर पहले तो पत्थर ही पडते हैं। वह सत्य की पहली स्वीकृति है। और सत्य अगर सत्य है तो अस्वीकृति को आज नही कल मर जाना होगा।

निरन्तर कथा यही है। अंधकार घना है, अज्ञान गहरा है। ज्ञान की पहली किरण उतरे, प्रकाश उतरे तो पहला काम हमारा यह होता है कि हमारी आँखें एकदम बन्द हो जाती हैं क्योकि अंधेरे में जाने वाला व्यक्ति प्रकाश को देखने की क्षमता भी नही जुटा पाता। लेकिन आँख कितनी देर तक बन्द रहेगी, वह तो खोलनी ही पडेगी और प्रकाश अगर सचमुच प्रकाश था तो पहचाना भी जा सकेगा। कभी हजार वर्ष लगेगे, कभी दो हजार वर्ष। मेरी अपनी समझ यह है कि महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट या कृष्ण को जो दिखाई पडा वह आज भी स्वीकृत हो सका है? सत्य अभी भी प्रतीक्षा कर रहा है कि वक्त आएगा। सत्य को अनन्त प्रतीक्षा करनी पडती है क्योंकि हमारा असत्य बडा गहरा है।

एक पुरानी कहानी है कि असत्य के पास अपने कोई पैर नही होते। अगर उसे चलना भी है तो सत्य के पैर ही उधार लेने होते हैं। अपने पैर उसके पास नही हैं। यानी असत्य अपने पैर पर खडा ही नही हो सकता। आप सब की स्वीकृति मिल जाए तो वह खडा हो सकता है, सत्य जैसा भासने लगता है। और सत्य को अस्वीकृति मिल जाए तो भी वह असत्य नही हो जाता, असत्य जैसा भासने लगता है। लेकिन सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। असत्य करोडों वर्षों तक चले तो भी असत्य है। सत्य बिल्कुल न चल पाए तो भी सत्य है। गैलीलियों ने जब यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नही लगाता है, पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है तो ईसाई जगत् में क्रोध पैदा हुआ क्योकि बाइबल कहती है कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। तो क्या जीसस को पता नही था? क्या हमारे पैगम्बरो को पता नही था? सत्तर साल के बूढे गैलीलियो को जंजीरे डाल कर पोप की अदालत में लाया गया और उससे कहा गया कि तुम कहो कि जो तुमने कहा है वह असत्य है। कहो कि पृथ्वी स्थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। गैलीलियों ने कहा जैसी आपकी मर्जी। उसने कागज पर लिखा दिया कि आप कहते हैं तो मैं लिखे देता हूँ कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नही लगाती। लेकिन मैं कुछ भी लिखूँ इससे फर्क नही पडता, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं क्या कर सकता हूँ? यानी मैं चक्कर लगाना थोडे ही रोक सकता हूँ। गैलीलियो भी इन्कार कर दे तो क्या फर्क पडता है? गैलीलियो थोडे ही चक्कर लगवा रहा है। लेकिन बाइबल हार गई, गैलीलियो जीत गया। क्योकि सत्य जीतता है। न बाइबल

जीतता है, न गैलीलियो जीतता है, न क्राइस्ट जीतते हैं, न कृष्ण, न महावीर, न मुहम्मद। जीतना सत्य है, असत्य हारता है। लेकिन वक्त लग सकता है।

असत्य अपने को बचाने की सारी कोशिश करता है, अपनी सुरक्षा करता है और उसकी सबसे बड़ी सुरक्षा है स्वीकृति, लोगो में स्वीकृति पैदा कर देना। इसलिए असत्य स्वीकृति में जीता है। सत्य स्वीकृति की चिन्ता भी नहीं करता। वह अस्वीकृति में जी लेगा क्योंकि उसके पास अपने पैर है, अपनी श्वांस है, अपने प्राण हैं और वह प्रतीक्षा करता है अनन्तकाल तक। कभी तो आँखें खुलती हैं और चीजें दिखाई पडती हैं।

मुझे चिन्ता नही है जरा भी कि जो मैं कह रहा हूँ उसे कौन मानेगा। जिस व्यक्ति को यह चिन्ता होती है, वह कभी सत्य बोल नही सकता। क्योंकि तब यह पहले आपकी तरफ देख लेता है कि आप क्या मानोगे? उसको मान्यता ज्यादा मूल्यवान् है। और मान्यता जिन लोगो मे पानी है अगर वे सत्य को ही उपलब्ध होते तो बात करने की कोई जरूरत न थी। अंधेरे में खडे लोगो से सूरज के लिए मान्यता लेनी है तो वे अंधेरे में खडे लोग कहते है कि सूरज से अंधेरा निकलता है। उनकी स्वीकृति लेनी हो तो कहो कि बहुत घना अंधेरा सूरज से निकलता है। वे ताली पीट देगें। या उनसे कहो कि सूरज से अंधेरा कभी निकला ही नही। सूरज तो अंधेरे को तोडता है तो इसका मतलब हुआ कि तुम अकेले, आँख वाले पैदा हुए हो, हम सब अंधे हैं। और यह बात बडी अपमानजनक है कि कोई आदमी कहे कि मेरे पास आँख है और सब अंधे हैं। इसमे बडा दुःख होता है। फिर सब मिलकर आँख वाले की आँख फोडने की कोशिश करे तो उसमें कुछ हर्जा भी नही है। वह ठीक ही प्रतिकार ले रहे हैं। वह उनको चोट पहुँची, उनके मन का अपमान हुआ, उनके अहकार को धक्का पहुँचा। लेकिन सत्य प्रतीक्षा करता है और प्रतीक्षा करने का धैर्य रखता है।

प्रश्न आप कहते हैं कि समाज असत्य में जीता है तो क्या असत्य समाज के लिए अनिवार्य है, जीने के लिए?

उत्तर : जैसा समाज है हमारा, उस समाज के जीने के लिए असत्य अनिवार्य है। जैसा हमारा समाज है दुःख से भरा हुआ, पीड़ा से भरा हुआ, शोषण, अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष से भरा हुआ, इस समाज को जिलाना हो तो यह असत्य पर ही जी सकता है। अगर बदलना हो, नया बनाना हो—आनन्द से, प्रकाश से, प्रेम से भरा हुआ, जहाँ ईर्ष्या न हो, महत्त्वाकाक्षा न हो, घृणा न हो, द्वेष न हो, क्रोध न हो तो फिर सत्य लाना पडेगा?

प्रश्न : यह तो सबकी इच्छा है ही ?

उत्तर : यह सबकी इच्छा है कि आनन्द मिले। लेकिन मैं जैसा हूँ वैसा ही मिल जाए, मैं न बदलूँ। लेकिन आनन्द वैसी हालत में नही मिलता और मैं बदलने की तैयारी में नहीं हूँ। बदलने की तैयारी दिखाऊँगा तो आनन्द मिल सकता है। यानी मैं कहता हूँ कि प्रकाश तो मिले लेकिन मुझे आँख न खोलनी पड़े। तो फिर मुश्किल है। सबकी इच्छा है कि आनन्द मिले। हर आदमी आनन्द की ही कोशिश में लगा हुआ है और सिर्फ दुःख पा रहा है। हर आदमी आनन्द पाना चाहता है, शान्ति पाना चाहता है लेकिन जो कर रहा है शान्ति पाने के लिए, आनन्द पाने के लिए, उस सबसे दु:ख पाता है, अशान्ति पाता है। लेकिन वह करने को नही बदलना चाहता है। अब जैसे एक आदमी महत्वाकांक्षी है और कहता है कि मुझे आनन्द चाहिए। लेकिन महत्वाकांक्षी चित्त कभी भी आनन्दित नही हो सकता क्योंकि जो भी मिल जाएगा उससे वह सन्तुष्ट नही होगा और जो नही मिलेगा उसके लिए पीड़ित हो जाएगा। कितना ही कुछ मिल जाए उसको, उसका महत्वाकांक्षी चित्त आगे के लिए पीड़ा से भर जाएगा। वह कहता है कि मैं आनन्दित होना चाहता हूँ और वह यह भी कहता है कि मैं महत्वाकांक्षी सिर्फ इसलिए हूँ कि मुझे आनन्द चाहिए। अब महत्वाकांक्षा और आनन्द में विरोध है, यह देखने को वह राजी नही है। सिर्फ गैर महत्वाकांक्षी व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध हो सकता है। लेकिन महत्वाकांक्षा चलाए रखना चाहते हैं हम और आनन्दित होना भी चाहते हैं।

अब एक आदमी है जो कहता कि मैं प्रेम चाहता हूँ और प्रेम कभी देता नही। और यह ऐसी हालत है जैसे एक गाव में सभी भिखमंगे हो, सभी एक दूसरे के सामने हाथ जोड़े खड़े हो और सभी मागना चाहते हो, देना कोई भी न चाहता हो। उस गाँव की जो हालत हो जाए वैसी हम सबकी हालत होगी? प्रेम देना कोई भी नही चाहता, प्रेम मागना चाहता है। और यह भी ध्यान रहे जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी माँगता नही। मिलना शुरू हो जाता है, उसके माँगने का सवाल ही नही रह जाता। माँगता सिर्फ वही है जो दे नही पाता। अब बुनियाद यह है कि हम सब प्रेम चाहते हैं। ठीक है, इसमें कुछ बुरा भी नही है। लेकिन प्रेम सिर्फ उन्हें मिलता है जो चाहते नहीं और देते हैं। वह सूत्र है पाने का। और वह सूत्र हमारी समझ में नही आता इसलिए भूल हो जाती है, भटकन हो जाती है।

हम आनन्द चाहते हैं, शान्ति चाहते हैं, प्रेम चाहते हैं। चाहते हम सब कुछ हैं लेकिन जैसे हम हैं वैसे में चाहते हैं जोकि असम्भव है। हम सब चाहते हैं कि पहुँच जाएँ आकाश में लेकिन पृथ्वी से पांव न छोडना पडे। गडे रहना चाहते हैं जमीन में, पहुँचना चाहते हैं आकाश में। अगर कोई यह कहे कि आकाश में जाना है तो मैं कहता हूँ कि आकाश की फिक्र छोडो, पहले जमीन छोडो। पर वह आदमी कहता है कि जमीन हम पीछे छोडेंगे, पहले हम आकाश पर पहुँच जाएँ। क्योंकि आप हमसे जमीन भी छीन लो और आकाश भी न मिले, तो हम मुश्किल में पड जाएँगे। लेकिन बात यह है कि जमीन छोडने से आकाश मिल ही जाता है क्योंकि जाओगे कहाँ? यह हमारी कठिनाई है कि हमेशा से हम यही चाहते रहे हैं कि आनन्द हो, शांति हो, प्रेम हो, लेकिन जो हम करते रहे हैं वह एकदम उल्टा है। उससे न शांति हो सकती है, न प्रेम और न आनन्द।

प्रत्येक व्यक्ति के साथ यह कठिनाई है, प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या में जी रहा है, वह चाहता है कि आनन्द हो जाए। मगर ईर्ष्यालु चित्त कैसे आनन्द पायेगा? ईर्ष्यालु चित्त सदा दुखी है। सडक पर बडा मकान दिखता है, बगिया लगी दिखती है, कार दिखती है, किसी की स्त्री दिखती है, किसी के कपडे दिखते हैं तो वह दुखी है। हर चीज उसे दु ख देती है। और ऐसा भी नहीं कि बडा मकान ही उसे दुःख दे। कभी-कभी यह भी दु ख देता है कि यह आदमी झोपडी में रह रहा है और खुश है। कभी एक भिखारी भी आनन्दित दिख जाता है तो वह दु खी है कि मेरे पास सब है और मैं सुखी नहीं हूँ, यह भिखारी है और आनन्दित है। वह ईर्ष्या चित्त मे दुःख पैदा करने की कीमिया है।

ईर्ष्यालु चित्त दु ख पैदा करता है और ईर्ष्यालु चित्त सुख चाहता है। अब बड़ी मुश्किल हो गई। इस विरोध को अगर न देखा जाए तो हम फँस गए। हम फिर जी नही सकते, चाहते रहेंगे सुख और पैदा करेंगे दुःख। और जितना दु ख पैदा होगा उतना ज्यादा सुख चाहेंगे। और जितना ज्यादा दु ख पैदा होगा, सुख की मांग बढेगी उतने ही ज्यादा जोर से ईर्ष्यालु होते चले जाएँगे और दुःख होता चला जाएगा। ऐसा एक-एक व्यक्ति भीतरी विरोध में फँसा हुआ है। इस विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरुआत है कि इस विरोध के प्रति कि मैं जो चाह रहा हूँ, मैं जो कर रहा हूँ वह सही है। मैं चाह तो रहा हूँ कि मकान के ऊपर चढ जाऊँ लेकिन उतर रहा हूँ नीचे की तरफ, वह तो मैं उल्टा काम कर रहा हूँ। तो ईर्ष्या मुझे नीचे की तरफ ले जा रही है। ईर्ष्या

मुझे दु ख दे रही है। मगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या से मुझे मुक्त हो जाना चाहिए ताकि मुझे कोई भी दु ख न दे सके, वडा मकान भी न दे सके, आनन्दित आदमी भी न दे सके, कार भी न दे सके, स्त्री भी न दे सके, कोई भी चीज दु ख न दे सके क्योकि मेरे पास वह जो तरकीव थी दु ख पैदा करने की, वह विदा हो गई। अव मैं ईर्ष्यालु नही हूँ। और जव मैं ईर्ष्यालु नही हूँ तो मुझे हर चीज सुख दे सकती है क्योकि अब तो दुःख का कोई कारण नही रहा। वह व्यवस्था टूट गई, वह यंत्र ही टूट गया जो दुःख पैदा कर देता था।

जोवन के विरोध के प्रति जाग जाना कि हम जो चाहते हैं, उससे उल्टा कर रहे हैं, साधना की शुरूआत है। और जव हमें दिखाई पड जाय तो हम उल्टा न कर सकेंगे। हम कैसे उल्टा करेगे? उदाहरण के लिए एक आदमी सोना चाहता है। नीद उसे आती नही। वह नीद लाने की तरकीवें करता है। पैर धोता है, आंख धोता है, पानी पीता है, राम-नाम जपता है, माला फेरता है, करवट वदलता है, टहलता है, भेड-वकरियाँ गिनता है, हजार तरकीवें करता है कि किसी तरह उसे नीद आ जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि जितनी तरकीवे वह कर रहा है, वह नीद न आने देने की हैं। क्योकि कोई भी प्रयास हो वह नींद को तोडने वाला है। वह कुछ भी न करे तो शायद नीद आ जाए। उसने कुछ भी किया तो फिर नीद नही आ सकती क्योकि करना नीद के विल्कुल उल्टा है। नीद आती है न करने से। इसलिए एक वार एक आदमी की नींद गडवड़ हो गई फिर वह वुरे चक्कर में पड गया क्योंकि अव वह नीद लाने का उपाय करेगा। उपाय नीद को तोडेंगे। जितनी नीद टूटेगी उतने ज्यादा उपाय करेगा, जितने ज्यादा उपाय करेगा उतनी ज्यादा नीद टूटेगी। और वह एक चक्कर में पड जाएगा जिसके वाहर निकलना मुश्किल है। उसको यह विरोध दिखाई पड जाएगा किसी दिन कि प्रयास से नीद नही आ सकती है। नीद तो तव आती है जव कोई कुछ नही करता। चाहे वह मंत्र पढे, चाहे माला फेरे, चाहे कुछ भी करे। करना मात्र नीद का उल्टा है। लेकिन हम पूरी जिन्दगी मे विरोधाभास में जोते हैं। जैसे ही कोई इस वोध को उपलब्ध हो जाता है और अपने भीतर विरोध देखने लगता है, वैसे ही क्रान्ति शुरू हो जाती है क्योंकि विरोध दिख जाए तो फिर उसमें जीना मुश्किल है। फिर आप जी नही सकते। यह कैसे सम्भव है कि एक आदमी को जाना छत पर है और वह नीचे उतर आए और उसे दिख जाए कि उतर रहा हूँ नीचे की ओर, जाना है ऊपर तो क्या वह फिर नीचे उतर सकता है? वात खत्म हो गई। ऊपर जाएगा ही वह। और

जब विरोध मिटता है तो योग पैदा होता है जीवन में। हम जो करना चाहते है, वही करते है, जो होना चाहते हैं, वहा होते हैं। तब एक सरलता, सहजता आ जाती है क्योकि विरोध गए, चिन्ता गई। अपने ही भीतर खण्ड-खण्ड उल्टे-उल्टे जा रहे थे, वे बिदा हो गए।

हमारी हालत ऐसी है जैसे कि किसी ने बैलगाडी में दोनो ओरबैल जोड दिए हो और दोने ओर से बैलगाडी चलने की कोशिश कर रही है। अब इसमें सिर्फ अस्थि-पंजर बैलगाडी को खीचे चले जा रहे हैं। बैलगाडी कही जाती नही। कभी एक तरफ के बैल मजबूत हो जाते है तो दस कदम अपनी ओर खीच लेते हैं। जब तक वे दस कदम खीचते हैं तब तक थक जाते है। फिर उल्टी ओर के बैल मजबूत हो जाते हैं तो दस कदम दूसरी ओर खीच लेते हैं और ऐसा चल रहा है। एक चौराहे पर बैलगाडी है। दोनो तरफ बैल जुते हैं। यहीं-वही होती रहती है। करीब-करीब हम उसी जगह मरते हैं, जहाँ हम पैदा होते हैं। कोई फर्क नही पडता, क्योकि हमें विरोध ही दिखाई नही पडता कि चार बैल पास है तो एक ही तरफ जोत दे, दो तरफ क्यो जोते हुए हैं। विरोध दिख जाए तो एक नया जीवन शुरू हो जाता है जिसे हम पहचानते भी नही, जानते भी नही। तब आदमी वही करता है जो उसे करना चाहिए। वह उसी तरफ जाता है जहाँ जाना है। तब स्वभावत शान्ति आ जाती है क्योकि अशांति का कोई कारण नहीं रह जाता।

प्रश्न : आसक्ति अथवा राग जैसा कर्मबन्ध का कारण है वैसे द्वेष और घृणा भी। महावीर ने ससार, शरीर—इन सबके प्रति घृणा का भाव पैदा करके संसारत्याग का क्यो उपदेश दिया ?

उत्तर राग, द्वेष—ये दोनो एक ही तरह के उपद्रव के कारण है। राग, द्वेष ऐसे ही हैं जैसे एक आदमी सीधा खडा हो और एक आदमी शीर्पासन करता हुआ खडा हो। इन दोनो में कोई फर्क नही है। एक सिर नीचा करके खड़ा है, एक सिर ऊँचा करके खडा है। राग का ही उल्टा जो है, वह द्वेष है। राग शीर्पासन करता हुआ द्वेष है। दोनो फाँसते हैं। दोनो बांध लेते हैं क्योंकि जिससे हम राग करते है, उससे भी हम बंध जाते हैं। जिनसे हम द्वेष करते हैं, उनसे भी हम बँध जाते हैं। मित्र भी बाँधता है, शत्रु भी बाँधता है। हम शत्रु को भी भूल नही पाते, मित्र को भी भूल नही पाते। वे दोनो हमें बांध लेते हैं। अगर हमारा एक मित्र मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है। अगर हमारा एक शत्रु मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है। और कई बार

तो ऐसा होता है कि शत्रु के मरने से आपका बल ही खो जाए क्योकि बल उसके विरोध में बनकर आता था। दोनो बांधते हैं, दोनो जिन्दगी को भरते है। और ऐसा भी नही है कि शत्रु ही दुख देते है। मित्र भी दुख देते है। फर्क थोडा-सा पड जाता है। मित्र भी दु:ख देते हैं, शत्रु भी सुख देते हैं। ढग अलग-अलग है लेकिन बांधते दोनो हैं। और जिसे बंधन ही दुख हो गया, वह न मित्र बनाता है, न शत्रु बनाता है वह न राग बांधता है, न द्वेष बांधता है। वह न किसी के पक्ष में होता है, न किसी के विपक्ष में होता है। वह प्रत्येक चीज के प्रति एक साक्षी का भाव लेता है। अपनी ही जिन्दगी को दूर खडा होकर देखने लगता है। खुद द्रष्टा हो जाता है और राग द्वेप के बाहर हो जाता है। जब तक कोई द्रष्टा नही तब तक वह राग-द्वेप के बाहर नही होता। कर्त्ता कभी राग-द्वेप के बाहर नही होता। क्योंकि करेगा कुछ तो मित्र बनेंगे, शत्रु बनेंगे। किसी को बचाना होगा, किसी को मिटाना होगा। कर्त्ता हमेशा राग-द्वेप से घिरा है, अकर्ता साक्षी है।

यह पूछा जा सकता है कि महावीर ऐसा तो कहते हैं कि राग-द्वेप बांध लेते हैं लेकिन शरीर और संसार के प्रति वह घृणा सिखाते हैं, शरीर असार है, संसार असार है, ऐसा सिखाते हैं। तो फिर यह द्वेप शुरू हो गया शरीर और संसार के प्रति। महावीर ससार के या शरीर के प्रति द्वेप नही सिखाते हैं। लेकिन जिन्होने महावीर को नही समझा है, वे जरूर ऐसा ही सिखा रहे हैं। शरीर को ऐसा प्रेम करने वाला आदमी मुश्किल से पैदा हुआ होगा। न वह ससार के प्रति द्वेप सिखाते हैं न राग सिखाते हैं क्योकि वह तो कहते ही यह हैं कि द्वेप बांध लेता है, प्रेम बांध लेता है। अगर हम राग से भरे हैं तो हम राग से ऊब जाते है। अगर हम द्वेप से भरे है तो हम द्वेप से ऊब जाते हैं। हर चीज ऊबा देती है। जब राग ऊब जाता है तो घडी का पेंडुलम दूसरी ओर शुरू हो जाता है। वह द्वेप की ओर चलना शुरू हो जाता है। जिस चीज से हम ऊब जाते है उनसे हम द्वेप करने लगते हैं। राग खत्म हो जाता है। फिर उससे आप मुक्त होना चाहते है। कल तक उसको आप पकडना चाहते थे। आज आप हटाना चाहते है। लेकिन कल तक जब आपने उसको पकडा था तो पकड़ने का अभ्यास हो गया। अब ऊब गए पकडने मे तो अब हटना चाहते हैं। अभ्यास बाधा डाल रहा है। पकडने की आदत बन गई है। अब भागना चाहते है। द्वन्द्व खडा हो गया है।

महावीर द्वेष नही सिखाते किसी के प्रति, न संसार के प्रति। क्योंकि महावीर द्वेष सिखा ही नही सकते। महावीर सिखाते हैं कि अपने द्वेष, अपने राग, अपनी घृणा, अपने प्रेम—इन सबके प्रति जाग जाओ। इन सबको जाग कर देख लो। जिस दिन पूरी तरह तुम देख लोगे उस दिन तुम पाओगे कि राग-विराग, मित्रता-शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं। तब तुम समझ जाओगे कि जैसे एक सिक्का हो किसी के पास रुपये का और वह चाहता हो कि एक पहलू बचा ले और दूसरे को फेंक दे तो वह पागल है क्योंकि वह दोनो पहलू एक ही सिक्के के है। या तो वह दोनों फेंक सकता है, या दोनो बच जाएँगे। हाँ फर्क हो सकता है कि कौन-सा पहलू आप ऊपर रखें। यह हो सकता है कि सिक्के का सिर वाला पहलू आप ऊपर रखें या पीठ वाला ऊपर रखे। सिर वाला ऊपर रखेंगे तो पीठ वाला नीचे रहेगा। तो जो आदमी प्रेम करता है उसके ठीक नीचे ही घृणा छिपी बैठी रहती है, मौके की तलाश में कि कब सिक्का पलटे। जब इससे ऊब जाते हैं तो आप सिक्के पलट लेते हैं, पीछे की ओर देखने लगते हैं। इसलिए मित्र के शत्रु हो जाने में देर नही लगती। असल में बात यह है कि अगर कोई मित्र न हो तो उसको शत्रु बनाना ही मुश्किल है। पहले उसका मित्र होना जरूरी है, तभी वह शत्रु बनाया जा सकता है। शत्रु के भी मित्र बनने में कोई कठिनाई नही है। ये दोनों बातें घट सकती है क्योंकि एक ही चीज के दो पहलू हैं।

राग है किसी को, वह विराग बन जाता है और जिस चीज से विराग है, अगर आप विराग ही करते चले जाएँ तो आप पाएँगे कि विराग शिथिल होने लगा और राग पकड़ने लगा। असल में जैसे घडी का पेंडुलम बाईं ओर गया तो जब वह बाईं ओर जा रहा है तब आपको ख्याल भी नही है कि वह दाईं ओर जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। और जब वह दाईं ओर गया तो आंख देख रही है कि दाईं ओर गया। लेकिन जो गहरे में देख रहे हैं, वे कह रहे हैं कि वह बाईं ओर जाने की तैयारी कर रहा है और वह फिर बाईं ओर जाएगा। ऐसे चित्त द्वन्द्व के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता रहता है। जिससे हम प्रेम करने जाते हैं, हमें ख्याल नही कि उससे हम घृणा करने की शक्ति अर्जित कर रहे हैं। इसलिए प्रेमी जल्दी घृणा करने वाले बन जाते हैं। कल तक जो प्रेयसी थी, परसो वही भारी पड़ जायेगी। कल तक हम कहते थे कि वह अगर न मिले तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा, आत्महत्या कर लेंगे। कल तक जिसके न मिलने से आत्महत्या कर रहे थे हो सकता है कि कल उसके मिलने से ही आत्म-हत्या करनी पड़े।

मैंने सुना है कि एक मनोवैज्ञानिक एक पागलखाने में पागल देखने गया। डाक्टर एक कटघरे में एक आदमी दिखलाता है जो बिल्कुल पागल है। मनोवैज्ञानिक पूछता है 'इसको क्या हो गया है।' तो डाक्टर रजिस्टर में उसकी केस हिस्ट्री निकालता है और कहता है कि यह आदमी एक लडकी को प्रेम करता था। वह लडकी इसको नही मिली इसलिए पागल हो गया। दूसरी कोठरी में एक दूसरा आदमी बन्द है। मनोवैज्ञानिक पूछता है 'इसको क्या हो गया है।' वह डाक्टर केस हिस्ट्री उलटकर देखता है। वह कहता है इसको वह लडकी मिल गई जो इसको नही मिलनी चाहिए थी। तो एक न मिलने से पागल हो गया है, एक मिलने से पागल हो गया है। महावीर यह नही सिखा सकते। वे बाएँ जाना नही सिखा सकते क्योकि वे जानते हैं कि जो बाएँ जाएगा, उसे दाएँ जाना पडेगा। वह दाएँ जाना नही सिखा सकते क्योकि वह जानते हैं कि जो दाएँ जाएगा उसे बाएँ जाना पडेगा। एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम दाएँ जाओ, न तुम बाएँ जाओ, तुम ठहर जाओ, बीच मे खड़े हो जाओ। न द्वेष रहे न घृणा, न राग न विराग।

तो महावीर विरागी नही हैं और जो विरागी उनके पीछे पडे हुए है, वह बिल्कुल गल्ती में पडे हुए हैं। महावीर को कुछ लेना-देना नही है उन विरागियों से। क्योकि विरागी हुए कि उन्होंने राग अर्जित करना शुरू कर दिया। महावीर कहते है, खडे हो जाओ, ठहर जाओ। प्रेम, द्वेष दोनो को देख लो, जाओ कहीं मत, दोनो को पहचान लो, फिर तुम कही नही जाओगे, फिर तुम अपने मे आ जाओगे। तीन दिशाएँ है। एक प्रेम की ओर ले जाती है, एक घृणा की ओर। ये सारे द्वन्द्व हैं और जो द्वन्द्वो से बच जाता है वह त्रिकोण के तीसरे बिन्दु पर आ जाता है जहाँ जाना नही है, आना नही है, सिर्फ ठहर जाना है। वहाँ प्रज्ञा स्थिर हो जाती है। वहाँ ठहर कर हम देख पाते हैं। या जो देखने लगता है, वह ठहर जाता है क्योकि देखने के लिए ठहरना अनिवार्य तत्त्व है। अगर राग और द्वेष को देखना है तो जाओ मत किसी की ओर। ठहर कर देख लो कि राग क्या हैं। द्वेष क्या है, क्रोध क्या है।

प्रश्न . यह केवल ध्यान की भूमिका है क्या ?

उत्तर . हाँ, यह केवल ध्यान की भूमिका है। जैसे ही कोई स्वय में खडा हो जाता है, वह उस द्वार पर पहुँच जाता है जहाँ से ज्ञान की शुरुआत है। लेकिन स्वय में खडा होना पहला बिन्दु है। फिर वही से यात्रा भीतर की ओर

हो सकती है। हम या तो राग मे होते है, या द्वेष में होते है, स्वयं के बाहर होते हैं। राग द्वेष मे होने का अर्थ है स्वयं के बाहर होना, कहीं और होना। मित्र पर हो, चाहें शत्रु पर हो। लेकिन हमारी चेतना, कही और होगी—राग मे भी, द्वेष में भी। जो आदमी धन इकट्ठा करने में पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा, जो आदमी धन त्याग करने पर पागल है उसका ध्यान भी धन पर होगा। धन पर ही दृष्टि-बिन्दु होगी उन दोनो की। और सब द्वन्द्वो से जिसकी दृष्टि लौट आती है, अपने पर खडी हो जाती है वह चुपचाप देखने लगता है कि यह रहा त्याग, यह रहा क्रोध। न मैं भोग करता हूँ, न मैं त्याग करता हूँ। मैं खडे होकर देखता हूँ। ऐसी स्थिति में स्वयं का द्वार खुल जाता है जहाँ से ज्ञान की परम भूमिका में जाया जा सके।

प्रश्न . निगोद का क्या अर्थ है ?

उत्तर : निगोद की धारणा महावीर की अपनी है, बडी मौलिक, बहुत जटिल। निगोद का अर्थ है ससार है, मोक्ष है। दो शब्द हमारी समझ में हैं। मोक्ष का मतलब है वे आत्माएँ जो सब बन्धनो के पार चली जाएँ। संसार का अर्थ है वे आत्माएँ जो अभी बंधनो में है, पार जा सकती है। निगोद का अर्थ है वे आत्माएँ जो बंधन मे प्रसुप्त हैं। निगोद प्रथम है, मोक्ष अन्त में है, ससार मध्य में है। निगोद से आत्मा उठती है, ससार में आती है, ससार से उठती है मोक्ष में जाती है। मोक्ष है मुक्ति, निगोद है पूर्ण अमुक्ति जहाँ बिल्कुल अंधकार है, जहाँ गहरी निद्रा है यानी जहाँ इसका भी होश नही है कि बन्धन है, जहाँ यह भी पता नही कि हाथ में जजीरें है, जो मूर्छित आत्माओ का लोक है, जहाँ से धीरे-धीरे आत्माएँ उठती हैं, इस मध्यम लोक में आती हैं, जहाँ, अर्द्ध मूर्छा, अर्द्ध अमूर्छा चलती है, कभी चित्त जागता है, कभी सो जाता है, कभी हम जगे लगते है, कभी सोए, कभी होश आती है, कभी बेहोशी, कभी विवेकपूर्ण होते हैं, कभी अविवेकपूर्ण, जहाँ निद्रा और जागृति के बीच हम डोलते रहते है। जैसे रात निद्रा है, दिन जागरण है और दोनो के बीच में एक स्वप्न की अवस्था है, जहाँ न तो हम पूरी तरह सोए होते हैं, न पूरी तरह जागे होते हैं। स्वप्न का मतलब है, आधा जागना, आधा सोना। इतने जाग भी होते है कि सुबह याद रह जाती है कि सपना देखा। इतने सोए भी होते है कि पता भी नही चलता कि सपना चल रहा है। लगता है कि सब चल रहा है। संसार है स्वप्न, निगोद है निद्रा, मोक्ष है जागृति। ये तीन अवस्थाएँ है।

अब सवाल यह उठा कि सारी आत्माएँ कहाँ से आती हैं। महावीर नही मानते कि इनका सृजन होता है। आत्माएँ सदा से हैं। प्रश्न उठता है कि वे आती कहाँ से हैं। महावीर कहते हैं कि अमूर्छित का एक लोक है, जहाँ अमूर्छित अनन्त असख्य आत्माएँ हैं। ध्यान में रहे कि इस जगत् में ऐसा कुछ भी नही है जो अनन्त न हो। यह भी समझ लेना जरूरी है कि इसमें अनन्त (इनफाइनेट) होना अनिवार्य है। कोई भी चीज संख्या में हो ही नही सकती। क्योंकि सख्या में अगर चीजें हो तो फिर जगत् असीम नही हो सकेगा, और जगत् सीमित नही है। निगोद का अर्थ है अनन्त आत्माएँ जहाँ प्रसुप्त हैं अनन्त काल से। आत्माएँ एक-एक उठती हैं। उठने वाली आत्माओ की संख्या है। ससार उससे बनता है, फिर संसार से आत्माएँ मुक्त होती चली जाती हैं, दूसरे लोक में, जहाँ वह परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं। प्रश्न यह है कि क्या कभी ऐसा होगा कि सब आत्माएँ मुक्त हो जाएँ। ऐसा कभी नही होगा क्योंकि आत्माएँ अनन्त है।

'अनन्त' शब्द हमारे ख्याल में नही आता। क्योकि हमारा मस्तिष्क अनन्त की धारणा को नहीं पकड पाता। हम बडी से बडी सख्या सोच सकते हैं लेकिन अनन्त नही। क्योंकि अनन्त का मतलब है जहाँ सख्या होती ही नही। लेकिन असख्य का मतलब अनन्त नहीं होता। असख्य का मतलब होता है जिसकी सख्या गिनी न जा सके, सख्या हम गिने तो थक जाएँ। जैसे कि कोई आपसे पूछे कि आपकी खोपडी पर कितने बाल हैं तो आप कहे असंख्य यानी कोई गिनती नही। लेकिन तथ्य ऐसा नही है। बालो की गिनती है। गिनना कठिन हो सकता है थोडा बहुत लेकिन गिना जा सकता है। अनन्त का मतलब है कि जहाँ सख्या अर्थहीन है। जहाँ हम कितना ही गिने तो भी गिनने को शेष रह जाएगा। जहाँ शेष रहना अनिवार्य है। जहाँ कभी कोई चीज अशेष होती ही नही।

तो निगोद है मूर्छित आत्माओ का लोक। संसार है अर्द्ध मूर्छित आत्माओं का लोक। मोक्ष है परम अमूर्छित आत्माओ का लोक। मोक्ष है पूर्ण जागृत आत्माओ का लोक। पर हमारा मन चूकि सख्याओ में ही सोचता है इसलिए सवाल निरन्तर उठता है कि कितनी अमूर्छित आत्माएँ है? कितनी मुक्त हो गई हैं? इसका भी कोई सवाल नही है क्योकि अनन्त काल से आत्माएँ मुक्त हो रही है, अनन्त आत्माएँ मुक्त हो गई हैं।

अनन्त के साथ एक मजा है कि उसमें से कितना ही निकालो, पीछे उतना ही शेष रहता है जितना था। इसको थोडा समझ लेना जरूरी है। क्योकि वह जो हमारा आम गणित है वह कहता है कि इस कमरे में कितने ही लोग हो लेकिन अगर दो आदमी बाहर निकल गए तो फिर पीछे उतने तो नही रहे जितने थे। हमारा गणित कहता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि पीछे उतने ही रह जाएँ जितने थे क्योकि दो निकल गए। और अगर हम यह मान लें कि दो के निकलने से पीछे कुछ कम हो गए तो फिर सख्या हो सकती है क्योकि कम होते चले जाएँगे। एक वक्त आएगा, शून्य भी हो सकता है।

यह गणित की बडी पहेलियो में से एक है कि अनन्त में से हम कुछ भी निकालें, अनन्त ही शेष रहता है। इसलिए निगोद उतने का ही उतना है जितना था; उतना ही रहेगा जितना था, और उतना ही सदा है, उतना ही सदा रहेगा। मुक्त आत्माएँ रोज होती चली जाएँगी, मोक्ष में कोई भीड नहीं बढ जाएगी। इसमें भीड़ बढने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन हमारा जो गणित है सख्या का उसे समझना बडा मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए, हम एक सीधी रेखा खीचते हैं जमीन पर। दो बिन्दुओ के बीच निकटतम जो दूरी है, वह सीधी रेखा बन जाती है। लेकिन जो नयी ज्योमेट्री इसके खिलाफ में विकसित हुई है, कहती है कि सीधी रेखा होती ही नही क्योकि जमीन गोल है। इसलिए कितनी ही सीधी रेखा खीचो, अगर तुम उसको दोनों तरफ बढाते चले जाओ, तो अन्त मे वह वृत्त बन जाएगी। इसलिए सब सीधी रेखाएँ किसी बडे वृत्त के खड हैं। और वृत्त के खड कभी सीधी रेखाएँ नही हो सकते। इसका मतलब हुआ कि सीधी रेखा होती ही नही। वह हमको सीधी लगती है। अगर हम उसे फैलाते चले जाएँ तो अन्तत वह एक बडा सर्किल बन जाएगी। और जब वह बडा सर्किल बन सकती है तो वह बडे सर्किल का हिस्सा है। और सर्किल का हिस्सा, सीधा नही हो सकता। इसलिए कोई रेखा जगत् में सीधी नहीं है। यह हमारे ख्याल में आना मुश्किल है कि कोई भी रेखा जगत् में सीधी खीची ही नही जा सकती। क्योकि जितना ही तुम खीचते चले जाओगे, अन्त में वह मिल ही जाएगी। इसलिए कोई सीधी रेखा नही है, सब वृत्त हैं। सब वृत्त खड हैं। साधारण गणित कहता है कि बिन्दु वह है जिसमें लम्बाई चौडाई नहीं है मगर ज्योमेट्री कहती है कि जिसमें लम्बाई-चौडाई न हो वह तो हो ही नहीं सकता, इसलिए कोई बिन्दु नही है। सब रेखाओ के खंड है—छोटे खड। रेखा है बड़े वृत्त का खंड, और बिन्दु है रेखा का खड। सब बिन्दुओं में लम्बाई-

चौडाई है। लेकिन यह बात जब तक मानी जाती रही तब तक बिल्कुल ठीक लगती थी। अब एकदम गडबड हो गई।

जैसी कि हमारी संख्या की, गणित की व्यवस्था है। हम सब मानते हैं कि एक से नौ तक संख्या होती है। कोई कभी नही पूछता कि इससे ज्यादा क्यों नही होती, इससे कम में क्यो नही होती। यह एक परम्परा है। किसी पहले आदमी को फतूर सवार हो गया। उसने नौ का हिसाब बना डाला। वह चल पडा। और चूँकि गणित एक जगह पैदा हुआ फिर सारी दुनिया में फैल गया इसलिए कभी किसी ने नही सोचा। लेकिन पीछे कई लोग पैदा हुए जिन्होने कुछ बदला जैसे लीबनिस हुआ। लीबनिस ने तीन अंको से काम चलाया। उसने कहा कि तीन से ज्यादा की जरूरत नही—एक, दो, तीन। फिर तीन के बाद आता है—१०-११-१२-१३, फिर बीस आ जाता है। बाकी सब विदा कर दिये उसने। सब गणित हल कर ली उतने में ही। आइस्टीन ने कहा कि तीन की भी क्या जरूरत है। दो से ही काम चल जाता है। १-२-१०-११-१२, २०, २१, २२ ऐसे चलता-चला जाता है। अगर हम पुराना गणित मानते हैं तो एक, दो, तीन, चार, पाँच होते हैं। अगर आइस्टीन का गणित मान लेते हैं, १,२,१०,११,१२ इस तरह का तो ये पाँच हैं ही नही। यह पाँच सिर्फ हमारा गणित का हिसाब है। गणित का हिसाब बदल दे तो ये सब बदल जाएँगे।

तो हमारा संख्या का हिसाब है जगत् में और हम सब चीजो को सख्या से तोलते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि सख्या बिल्कुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है। क्योकि यहाँ कोई भी ऐसी चीज नही जिसकी सख्या हो। प्रत्येक चीज असंख्य है। और अगर असंख्य का हम ख्याल करें तो गणित बेकार हो जाता है। फिर गणित का कोई मतलब ही नही रह जाता। जब असख्य है, गिना ही नही जा सकता, गिनने योग्य ही नही है और कितना ही निकाल लो बाहर, उतरना ही फिर पीछे रह जाता है तो जोड का क्या मतलब, घटाने का क्या मतलब? भाग का क्या मतलब? गुणा का क्या मतलब? अगर हम जगत् की पूरी व्यवस्था को ख्याल मे लाएँ तो गणित एकदम गिर जाता है, क्योकि गणित बना है काम चलाऊ हिसाब से कि हम उसमें गिनती करके काम चला ले। और उसी काम चलाऊ गणित से अगर हम जगत् के सत्य को जानने जाएँ तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। तो महावीर की बात एकदम गणित से उल्टी है और जो भी सत्य के खोजी है उनकी बातें निरन्तर गणित से उल्टी है। इसलिए उपनिषद् कहते हैं कि वह पूर्ण ऐसा है कि उससे अगर तुम पूर्ण को भी

बाहर निकाल लो तो भी पूर्ण ही शेष रह जाता है। उससे जरा भी कमी नहीं पडती। मगर हमारे दिमाग में मुश्किल हो जाती है कि हम जब भी कुछ निकालते है तो पीछे कमी पड जाती है। क्योकि हमने सीमित से ही कुछ निकाला है सदा। अगर हमने असीमित में से कुछ निकाला होता तो हमें पता चलता। असीमित का हमको कोई अनुभव नही है।

इसलिए निगोद अनन्त है। उसमें कमी कभी नही पडती, मोक्ष अनन्त है, वहाँ कभी भीड नही होती। दोनो के बीच का संसार एक अपना अनन्त है क्योंकि दो अनन्तो को जोडने वाली चीज अनन्त हो सकती है। वह भी सख्या में नही हो सकती क्योकि दो अनन्तो का जो सेतु बनता है, वह कैसे सीमित हो सकता है। अनन्तो को अनन्त ही जोड सकता है। उस तल पर जाकर गिनती का कोई मतलब नही है। मोक्ष की धारणा बहुत लोगो को है। काल में निगोद की धारणा महावीर की अपनी है और मैं मानता हूँ कि बिना निगोद की धारणा के मोक्ष की धारणा बेमानी है क्योकि वहाँ आत्माएँ चलती चली जाएँगी। आएँगी कहाँ से ?

प्रश्न : निगोद से आत्मा मोक्ष तक नहीं पहुँच सकती क्या ?

उत्तर : नहीं, मूछित आत्मा मोक्ष तक कैसे पहुँच सकती है ? उसे अमूर्छा के रास्तों से गुजरना पडेगा। आप जब निद्रा से जगते है तो एकदम नही जग जाते। बीच में तन्द्रा का एक काल है, जिसमें आप गुजरते हैं। जैसे सुबह आप उठ गए हैं। आपको लगता है कि उठ गए लेकिन फिर करवट बदल कर आँखे बंद कर ली हैं। फिर घडी की आवाज सुनाई पडी है। फिर किसी ने कहा उठिए, तो आप फिर उठ गए हैं। फिर आँख खोली है, फिर करवट बदलकर सो गए हैं। सोने और जागने के बीच में, चाहे कितना ही छोटा हो, तन्द्रा का एक काल है जब न तो आप ठीक जाग गए होते हैं, न ठीक सोए हुए होते है। सोने की तरफ भी झुकाव होता है, जागने की तरफ भी मन होता है। इन दोनो के बीच एक तनाव होता है।

निगोद से सीधा कोई मोक्ष में नही जा सकता। ससार से गुजरना ही पडेगा। कितनी देर गुजरना है, यह दूसरी बात है। कोई पन्द्रह बीस मिनट बिस्तर पर करवट बदल कर उठता है, कोई पाँच मिनट, कोई एक मिनट, कोई एक सैकेंड और जो बिल्कुल छलांग लगा कर उठ आता है वह भी सिर्फ हमको दिखाई पडता है। बिल्कुल, काल का कोई सूक्ष्म अंश उसको भी बिस्तर पर

गुजारना पडता है जागने के बाद। संसार छोटा बडा हो सकता है। जीवन में कोई मुक्त हो सकता है। लेकिन ससार से गुजरना ही पडेगा। वह अनिवार्य मार्ग है, जहाँ से मोक्ष का द्वार है।

प्रश्न : जैसे समुद्र है। समुद्र से बादल उठते हैं, उसका पानी बरसता है, बर्फ बनती है, लेकिन फिर वह समुद्र मे चली जाती है तो एक चक्कर है। इस तरह मुक्त आत्मा निगोद मे किसी तरीके से जाती रहती होगी। ऐसा भी हो सकता है?

उत्तर : नही, ऐसा चक्र नही है क्योंकि पानी, भाप, समुद्र, तीन चीजें नही हैं। यह एक ही चीज का यान्त्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूंद मुक्त होकर पानी के बाहर नही हो पाती। चक्र घूमता रहता है जहाँ तक मोक्ष का सम्बन्ध है, वहाँ से लौटना मुश्किल है। क्योंकि यान्त्रिकता छूट जाए, चित्त पूर्ण चेतन हो जाए, तो ही मोक्ष को जा सकता है। पूर्ण चेतना से लौटना असम्भव है। हाँ ससार में कोई चक्कर लगा सकता है। एक मनुष्य, हजार बार मनुष्य हो कर चक्कर लगा सकता है। वही-वही चक्कर लगा सकता है क्योंकि सोया हुआ है। अगर जग जाय तो चक्कर लगाना बन्द कर दे, बाहर हो जाए चक्कर के। चूँकि मोक्ष समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए वापस चक्कर नही लगाया जा सकता।

पानी की बूंद मूर्छित है, उसमें जो आत्माएँ हैं, वे निगोद में ही है। पदार्थ का जगत् निगोद मे ही है। वही तो पूरा चक्कर है। हम कह सकते हैं कि पानी गरम करेंगे तो भाप बनेगा। ऐसा पानी कभी नही देखा गया जो इन्कार कर दे कि मैं भाप नही बनता हूँ उसके पास कोई चेतना नही है। हम पूर्वसूचित कर सकते हैं पानी के बाबत। लेकिन आदमी के बाबत पूर्वसूचित करना मुश्किल है। ऐसा जरूरी नही कि प्रेम करेंगे तो वह प्रेम करेगा ही। बिल्कुल जरूरी नही, साधारणत जरूरी है। लेकिन एकदम जरूरी नही है। और इसलिए आदमी प्रिडिक्शन के थोडा बाहर है क्योंकि उसमें चेतना है। उसका पक्का नही बताया जा सकता कि वह क्या करेगा? पदार्थ के बाबत पक्का बताया जा सकता है। इसलिए पदार्थ का विज्ञान बन गया है। और आदमी का विज्ञान अभी तक नही बन पा रहा है। न बनने का कारण यह है कि पदार्थ की सारी व्यवस्था यान्त्रिक है, नियम पक्का है। इतने पर गर्म करो पानी भाप बन जाएगा, इतने पर ठंडा करो बर्फ बन जाएगा। इसमें कोई सदेह ही नही है—चाहे तिब्बत में करो,

प्रश्न आपने कहा कि महावीर की आत्मा मुक्त होकर भी वापिस आ गयी थी—कृपया इसे स्पष्ट करें। क्या मुक्त आत्मा घूम कर फिर निगोद अवस्था मे नहीं पहुँच जाती ?

उत्तर महायान में एक बहुत मधुर कथा का उल्लेख है। बुद्ध का निर्वाण हुआ। वह मोक्ष के द्वार पर पहुँच गए। द्वारपाल ने द्वार खोल दिया। बुद्ध को कहा : स्वागत है आप भीतर आएं। लेकिन बुद्ध उस द्वार की ओर पीठ करके खड़े हो गए। और उन्होंने द्वारपाल से कहा : जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है, तब तक मैं भीतर कैसे आ जाऊँ। अशोभन है यह। लोग क्या कहेंगे ? अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बँधे हैं, दु खी हैं, और बुद्ध आनन्द में प्रवेश कर गए ! तो मैं रुकूँगा। मैं इस द्वार से सभी के बाद ही प्रवेश कर सकता हूँ।

यह कहानी महायान बौद्धों में प्रचलित है। इसका अर्थ यह है कि एक व्यक्ति मुक्त भी हो सकता है, लेकिन मुक्त हो जाना ही मोक्ष में प्रवेश नहीं है। इस बात को समझ लेना जरूरी है कि मुक्त होना मोक्ष का प्रवेश-द्वार है। मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश पा सकता है, मुक्त हुए बिना प्रवेश नहीं पा सकता है। लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवेश नहीं है। ठेठ द्वार पर भी खड़े होकर कोई वापिस लौट सकता है और जैसा कि मैंने पीछे कहा कि एक बार वापिस लौटने का उपाय है। वह मैंने पीछे समझाया भी कि क्यों ऐसा उपाय है। जो उपलब्ध हुआ है वह अगर अभिव्यक्त नहीं हो पाया, जो पाया है अगर वह बाटा नहीं जा सका, जो मिला है अगर वह दिया नहीं जा सका तो एक

जीवन की वापिस उपलब्धि की सम्भावना है। यह सम्भावना वैसी ही है जैसा मैंने कहा कि कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैडल चलाता हो, फिर पैडल चलाना बन्द कर दे तो साइकिल उसी क्षण नही रुक जाती। एक प्रवाह है गति का कि पैडल रुक जाने पर भी साइकिल थोडी दूर बिना पैडल चलायी जा सकती है, लेकिन अन्तहीन नही जा सकती, बस थोडी दूर जा सकती है। यह जो थोडी देर का वक्त है, जब कि पैडल चलाना बन्द हो गया तब भी साइकिल चल जाती है, ठीक ऐसे ही वासना से मुक्ति हो जाए तो भी थोडी देर जीवन चल जाता है। वह अनन्त जीवन का मोमेंटम है पैडल चलाना बन्द कर देने के बाद, कोई चाहे तो थोडी देर साइकिल पर सवार रह सकता है, कोई चाहे तो ब्रेक लगाकर नीचे उतर सकता है। सवार रहना पडेगा, ऐसी भी कोई अनिवार्यता नही है। पैडल चलाना बन्द हो गया है तो व्यक्ति उतर सकता है। लेकिन न उतरना चाहे तो थोडी देर चल सकता है, बहुत देर नही चल सकता।

जैसा मैंने कहा कि जीवन की व्यवस्था में एक जीवन समस्त वासना के क्षीण हो जाने पर भी चल सकता है। मगर यह जरूरी नही है। कोई व्यक्ति सीधा मोक्ष में प्रवेश करना चाहे तो कर जाए लेकिन मुक्त व्यक्ति चाहे तो एक जीवन के लिए वापस लौट आता है। ऐसे जो व्यक्ति लौटते है इन्ही को मै तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, ईश्वरपुत्र कह रहा हूँ यानी ऐसा व्यक्ति जो स्वयं मुक्त हो गया है और अब सिर्फ खबर देने, वह जो उसे फलित हुआ है, घटित हुआ है उसे बाटने, उसे बताने चला आया है। हम भोगने आते है, वह बाटने आता है। इतना ही फर्क है। और जो स्वय न पा गया हो, वह न तो बाट सकता है, न इशारा कर सकता है।

एक जीवन के लिए कोई भी मुक्त व्यक्ति रुक सकता है लेकिन जरूरी नही है। सभी मुक्त व्यक्ति रुकते है, ऐसा भी नही है। लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं इस भांति, वे हमें बिल्कुल ऐसे लगते हैं जैसे कि वे ईश्वर के भेजे गए दूत हो क्योकि वे पृथ्वी पर हमारे बीच मे नही आते। वे उस दशा से लौटते हैं, जहाँ से साधारणत कोई भी नही लौटता है। इसलिए अलग-अलग धर्मो मे अलग-अलग धारणा शुरू हो गई। हिन्दू मानते हैं कि वह अवतरण है परमात्मा का, ईश्वर स्वय उतर रहा है। क्योकि यह जो व्यक्ति है, इसे अब मनुष्य कहना किसी भी अर्थ म सार्थक नही मालूम पडता। क्योंकि न तो इसकी कोई वासना है, न इसकी कोई तृष्णा है, न इसकी कोई दौड है, न कोई महत्वाकाक्षा है। यह अपने लिए जीना भी नही मालूम पडता। अपने लिए श्वास भी नही लेता। तो

सिवाय ईश्वर के यह कौन हो सकता है ? और मुक्त व्यक्ति करीब-करीब ईश्वर हो गया है।

तो हिन्दुओं ने उसे अवतरण कहा है, यानी ऊपर से उतरना जहाँ हम जाना चाहते हैं। स्वभावत जिन्होंने भी अवतरण की यह धारणा बनाई, उन्हें वह ख्याल नहीं है कि यह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा तो ही यह वापस लौटा है। इस आधे हिस्से पर उनकी दृष्टि नहीं है। इसलिए हिन्दुओं ने अवतरण कहा है। जैनों ने अवतरण की बात ही नहीं कही, उन्होंने तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर का मतलब है शिक्षक, गुरु। तीर्थंकर का अर्थ है जिसके मार्ग पर चलकर कोई पार जा सकता है, जिसके इशारे को समझकर कोई पार उतर सकता है। लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है जो पार तक हो आया हो। अगर मैं इस किनारे पर खडा होकर बता सकूँ कि वह रहा दूसरा किनारा तो अगर इसी किनारे से वह किनारा दिखता हो तो आपको भी दिखता होगा। तब मुझे बताने की जरूरत नहीं है। किनारा कुछ ऐसा है कि दिखता नहीं है। और जब भी कोई इशारा कर सकता है कि वह रहा किनारा तो एक अर्थ है उसका कि वह उस किनारे से होकर लौटा हुआ व्यक्ति है, नहीं तो उसकी ओर इशारा कैसे कर सकता है। अगर सबको दिखाई पडता होता तो हमको भी दिखाई पड़ जाता। हम सब को दिखाई नहीं पड़ता। सिर्फ उस व्यक्ति का इशारा दिखाई पडता है, व्यक्ति की आँखों की शांति दिखाई पडती है, उसके प्राणो के चारों ओर झरता हुआ आनन्द दिखाई पड़ता है, उसकी ज्योति दिखाई पडती है। किनारा नहीं दिखाई पडता लेकिन उसका इशारा दिखाई पडता है और वह आदमी आश्वासन देता हुआ दिखाई पडता है। उसका सारा व्यक्तित्व आश्वासन देता हुआ मालूम पडता है कि वह किसी दूसरे किनारे का अजनबी है, किसी और तल को छूकर लौटा है। कुछ उसने देखा है जो हमें दिखाई नहीं पड रहा है। लेकिन वह व्यक्ति भी उस किनारे की ओर इशारा कैसे कर सकता है जहाँ वह हो न आया हो ?

तीर्थंकर का मतलब ही यह हुआ कि जो उस पार को छूकर लौट आया है इस पार खबर देने को। और मैं मानता हूँ कि उचित ही है कि जीवन में ऐसी व्यवस्था हो कि जो उस पार जा सके, कम से कम एक बार तो लौट कर खबर दे सके। अगर यह व्यवस्था न हो, अगर जीवन के अन्तर्नियम का यह हिस्सा न हो तो शायद हमें कभी भी खबर न मिले। आज कोई व्यक्ति चाँद से होकर लौट आया है तो चाँद के सम्बन्ध में हमें बहुत सी खबर मिली है। चाँद यहाँ

मे दिखाई भी पड़ता है। परमात्मा तो यहाँ से दिखाई भी नही पड़ता। उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल ही नहीं। लेकिन कभी कोई उसको छूकर लौट आए तो खबर दे सकता है। तीर्थंकर का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो छूकर लौट आया है शायद खबर देने ही, जो उसे मिला उसे बाँटने, जो उसने पाया उसे बताने। जैनो ने अवतरण की बात नही की। क्योकि ईश्वर की धारणा उन्होंने स्वीकार नही की। इसलिए एक ही रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक वह वापस लौटकर खबर देने आ गया हो।

ईसाई है। वे न तीर्थंकर की कोई धारणा करते हैं, न अवतार की। वे तो सीधे ईश्वरपुत्र की धारणा करते हैं—ईश्वर के बेटे की। क्योकि ईश्वर के सम्बन्ध मे जो खबर देता हो वह ईश्वर के इतना निकट होना चाहिए जितना की बाप के निकट बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नही है। उसका मतलब इतना है कि जो उसके प्राणो का हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमें, वही तो खबर देगा। जगत् में इस तरह की अन्य धारणाएँ है। लेकिन उन सब में एक बात सुनिश्चित है और वह यह कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जिया है, वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है।

मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नही है। महावीर लौट चुके है। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय के नाम से कभी भविष्य में उनका एक अवतरण होगा। क्योकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन मे हुई है। इसके पहले जीवन में नही। बुद्ध ने जो पाया है इसी जीवन में पाया है। एक जीवन का उन्हें उपाय और मौका है और बहुत सदियो से, जब से बुद्ध गए तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हें जानने वाले प्रतीक्षा करते है उस अवसर की जब कि बुद्ध अवतरित होगे। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है। जीसस की भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई वह इसी जन्म में हुई। दुबारा जन्म हो सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है और प्रतीक्षा भी हो सकती है।

फिर हमें ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते हैं। जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष होते है। तो दो हजार वर्ष तक यह जन्म नही हुआ। हमारी समय की जो धारणा है उसकी वजह से हमको ऐसी कठिनाई है। तो थोड़ी-सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है। आप रात

सोए, रात में एक सपना देखा। सपने में सैकड़ो वर्ष बीत जाते है। नीद टूटती है और आप पाते हैं कि झपकी लग गई थी और घडी मे अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। सपने में वर्षों बीत गए। और अभी आँख खुली है तो देखते है कि घडी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और एक लम्बा सपना देख गए। तब सवाल उठता है कि इतना लम्बा सपना वर्षों बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका? देखा जा सका इसलिए कि जागने के समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है। सोने के समय की गति अलग है।

मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नही रह जाता। वहाँ समय की गति है हो नही। हमारे तल पर समय की गति है। हम ऐसा सोच सकते है कि अगर हम एक वृत्त खीचे और एक वृत्त पर, परिधि पर तीन बिन्दु बनाएँ, वे तीनो काफी दूर पर हैं, फिर हम तीनो बिन्दुओ से वृत्त के केन्द्र की तरफ रेखायें खीचे। जैसे-जैसे केन्द्र के पास रेखाएँ पहुँचती जाती है, वैसे-वैसे करीब होती जाती हैं। परिधि पर इतना फासला था। केन्द्र के पास आते-आते फासला कम हो गया। केन्द्र पर आकर दोनो रेखाएँ मिल गई। परिधि पर दूरी थी, केन्द्र पर एक ही बिन्दु पर आकर मिल गई हैं। केन्द्र पर परिधि से खीची गई सभी रेखाएँ मिल जाती हैं। और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं वैसे वैसे मिलती चली जाती है। समय का बडा विस्तार है जितना हम जीवन केन्द्र से दूर हैं, समय उतना बड़ा है। और जितना हम जीवन केन्द्र के करीब आते-जाते हैं, उतना समय छोटा होता जाता है।

कभी शायद आपने ख्याल नही किया होगा कि दुःख में समय बहुत लम्बा होता है, सुख में बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन बिदा हो गया है तो वह कहता है कि कितनी जल्दी रात बीत गई। इस घडी को क्या हो गया कि आज जल्दी चली जाती है। घडी अपनी चाल से चली जाती है। घडी को कुछ मतलब नही है कि किस का प्रियजन मिला है किसका नही मिला है, घर में कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठकर आप प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते है बचेगा नही। रात बडी लम्बी हो गई है। ऐसा कि घडी के काटे चलते हुए भी मालूम नही पडते। ऐसा लगने लगता है कि घडी आज चलती ही नही, रात बडी लम्बी हो गई है। दुःख समय को बहुत बना देता है, सुख समय को एकदम सिकोड़ देता है। उसका कारण है क्योकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुःख परिधि पर है।

से दिखाई भी पड़ता है। परमात्मा तो यहाँ से दिखाई भी नही पडता। उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल ही नही। लेकिन कभी कोई उसको छूकर लौट आए तो खबर दे सकता है। तीर्थंकर का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो छूकर लौट आया है शायद खबर देने ही, जो उसे मिला उसे बांटने, जो उसने पाया उसे बताने। जैनो ने अवतरण की बात नही की। क्योकि ईश्वर की धारणा उन्होने स्वीकार नही की। इसलिए एक ही रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक वह वापस लौटकर खबर देने आ गया हो।

ईसाई है। वे न तीर्थंकर की कोई धारणा करते हैं, न अवतार की। वे तो सीधे ईश्वरपुत्र की धारणा करते हैं--ईश्वर के बेटे की। क्योकि ईश्वर के सम्बन्ध में जो खबर देता हो वह ईश्वर के इतना निकट होना चाहिए जितना की बाप के निकट बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नही है। उसका मतलब इतना है कि जो उसके प्राणो का हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमे, वही तो खबर देगा। जगत् में इस तरह की अन्य धारणाएँ हैं। लेकिन उन सब में एक बात सुनिश्चित है और वह यह कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जिया है, वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है।

मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नही है। महावीर लौट चुके है। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय के नाम से कभी भविष्य में उनका एक अवतरण होगा। क्योकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन में हुई है। इसके पहले जीवन में नही। बुद्ध ने जो पाया है इसी जीवन में पाया है। एक जीवन का उन्हें उपाय और मौका है और बहुत सदियो से, जब से बुद्ध गए तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हें जानने वाले प्रतीक्षा करते है उस अवसर की जब कि बुद्ध अवतरित होगे। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है। जीसस की भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई वह इसी जन्म में हुई। दुबारा जन्म हो सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है और प्रतीक्षा भी हो सकती है।

फिर हमें ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते है। जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष होते है। तो दो हजार वर्ष तक वह जन्म नही हुआ। हमारी समय की जो धारणा है उसकी वजह से हमको ऐसी कठिनाई है। तो थोडी-सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है। आप रात

सोए, रात में एक सपना देखा। सपने में सैकडो वर्ष बीत जाते हैं। नीद टूटती है और आप पाते हैं कि झपकी लग गई थी और घड़ी में अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। सपने में वर्षों बीत गए। और अभी आँख खुली है तो देखते हैं कि घडी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और एक लम्बा सपना देख गए। तब सवाल उठता है कि इतना लम्बा सपना वर्षों बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका? देखा जा सका इसलिए कि जागने के समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है। सोने के समय की गति अलग है।

मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नही रह जाता। वहाँ समय की गति है ही नही। हमारे तल पर समय की गति है। हम ऐसा सोच सकते है कि अगर हम एक वृत्त खीचे और एक वृत्त पर, परिधि पर तीन बिन्दु बनाएँ, वे तीनो काफी दूर पर है, फिर हम तीनो बिन्दुओ से वृत्त के केन्द्र की तरफ रेखायें खीचे। जैसे-जैसे केन्द्र के पास रेखाएँ पहुँचती जाती है, वैसे-वैसे करीब होती जाती है। परिधि पर इतना फासला था। केन्द्र के पास आते-आते फासला कम हो गया। केन्द्र पर आकर दोनों रेखाएँ मिल गई। परिधि पर दूरी थी, केन्द्र पर एक ही बिन्दु पर आकर मिल गई है। केन्द्र पर परिधि से खींची गई सभी रेखाएँ मिल जाती है। और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं वैसे वैसे मिलती चली जाती है। समय का बडा विस्तार है जितना हम जीवन केन्द्र से दूर हैं, समय उतना बड़ा है। और जितना हम जीवन केन्द्र के करीब आते-जाते हैं, उतना समय छोटा होता जाता है।

कभी शायद आपने ख्याल नही किया होगा कि दुःख में समय बहुत लम्बा होता है, सुख में बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन विदा हो गया है तो वह कहता है कि कितनी जल्दी रात बीत गई। इस घडी को क्या हो गया कि आज जल्दी चली जाती है। घडी अपनी चाल से चली जाती है। घडी को कुछ मतलब नही है कि किस का प्रियजन मिला है किसका नही मिला है, घर में कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठकर आप प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते हैं बचेगा नही। रात बडी लम्बी हो गई है। ऐसा कि घडी के काटे चलते हुए भी मालूम नही पडते। ऐसा लगने लगता है कि घडी आज चलती ही नही, रात बड़ी लम्बी हो गई है। दुःख समय को बहुत बना देता है, सुख समय को एकदम सिकोड़ देता है। उसका कारण है क्योंकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुःख परिधि पर है।

आनन्द समय को बिल्कुल मिटा देता है। इसलिए आनन्द कालातीत (टाइमलैस) है, वहाँ समय है ही नही, साधारण से सुख में समय छोटा हो जाता है, साधारण से दु.ख में समय बडा हो जाता है।

आइस्टीन से कोई पूछ रहा था कि आप सापेक्षता का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) हमें समझाएँ। आइस्टीन ने कहा कि बहुत मुश्किल है समझाना क्योंकि जमीन पर थोडे से लोग हैं, जो सापेक्षता की बात समझ सके है क्योंकि उसे समझना बहुत कठिन है। सापेक्ष का मतलब है कि जो प्रत्येक परिस्थिति में छोटा-बडा हो सकता है। चौडा-संकरा हो सकता है, जिसका कोई स्थिर होना नही है। फिर उसने कहा कि उदाहरण के लिए मैं कहता हूँ कि तुम अपनी प्रेयसी के पास बैठे हो, आधा घंटा बीत जाता है, कितना लगता है। तो उस आदमी ने कहा कि क्षण भर। तो आइस्टीन ने कहा : छोडो प्रेयसी को। तुम एक जलते हुए स्टोव पर बैठा दिये गये हो और आधा घटा रखे गए हो। उसने कहा कि आधा घंटा, क्या आप कह रहे हैं? तब तक तो मैं मर ही चुकूँगा। आधा घटा! जलते हुए स्टोव पर। अनन्त हो जाएगा, समय का एक-एक क्षण गुजारना मुश्किल हो जाएगा, बहुत लम्बा हो जाएगा। आधा घटा बहुत ज्यादा हो जाएगा। तो आइंस्टीन ने कहा कि सापेक्ष से मेरा यही प्रयोजन है।

समय वही है लेकिन तुम्हारे चित्त की अवस्था के अनुसार बडा-छोटा हो जाता है। स्वप्न में एकदम छोटे समय में कितनी लम्बी यात्रा हो जाती है। जागरण में नही हो पाती। जागने में समय की परिधि पर हम खडे हैं। सोने में हम अपने भीतर आए हैं। तो स्वप्न भीतर की ओर है, जागृति बाहर की ओर है। स्वप्न में हम अपने भीतर बन्द हैं, केन्द्र के ज्यादा निकट है। जागने मे ज्यादा दूर है। जब कोई व्यक्ति केन्द्र पर पहुँच जाता है, उसका नाम समाधि है। तब समय एकदम मिट जाता है, एकदम लीन हो जाता है। समय होता ही नही। सब ठहर गया होता है। फिर क्षण हो जाता है। यह समय रहित कालातीत क्षण है। इस क्षण में ठहरे हुए पच्चीस सौ साल बीत गए कि पच्चीस हजार साल बीत गए, कोई फर्क नही होता। सब फर्क परिधि पर है, केन्द्र पर कोई फर्क नही है। वहाँ सब परिधि से खीची गई रेखाएँ संयुक्त हो गई हैं।

तो ऐसा व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है उस क्षण की जब वह सर्वाधिक उपयोगी हो सके और ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते-करते

ही मोक्ष में विदा ले लेते हो। शायद उनके योग्य पृथ्वी पर समय न वन पाता हो। वहुत वार ऐसा भी हुआ है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते हुए विदा हो गए हैं क्योंकि वह वन नही पाई बात। और इसलिए इस तरह की चेष्टाएँ चलती हैं कि शिक्षक के जन्म लेने के पहले कुछ और व्यक्ति जन्म लेते हैं, जो हवा और वातावरण तैयार करते हैं। जैसा जीसस के पहले एक व्यक्ति पैदा हुआ—सन्त जोन। उसने सारे यहूदी मुल्को में जेरूसलम में, इजरायल में, सव ओर खवर पहुँचाई कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। उसने हजारो लोगो को दीक्षित किया कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। लोग पूछते कि कौन आ रहा है तो वह कहता कि प्रतीक्षा करो, क्योंकि तुम उसे देखकर ही समझ सकोगे, मैं कुछ वता नहीं सकता। लेकिन कोई आ रहा है। उसकी उसने तैयारी की। उसने पूरी अपनी जिन्दगी गांव-गांव घूमकर जीसस के लिए हवा तैयार की। और जव जीसस आ गए तो जोन ने जीसस का आशीर्वाद दिया और इसके वाद वह चुपचाप विदा हो गया। फिर उसका कोई पता नही चला। फिर जोन कहाँ गए ? वह जो हवा उसने बनाई थी, जीसस ने उसका पूरा उपयोग किया। वहुत वार ऐसा भी हुआ है कि जब कोई शिक्षक वापस लौटे तो वह कुछ प्राथमिक शिक्षको को भेजे जो हवा पैदा कर दें।

थियोसॉफी ने अभी एक वहुत वडी मेहनत की थी लेकिन वह असफल हो गई। जैसा कि मैंने कहा था कि वुद्ध के एक जन्म की सम्भावना है। थियोसाफिस्टो ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया। यह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। इस प्रयास में वडी साधना चली। इसमें कुछ लोगों ने प्राणों को सकट में डालकर आमंत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया कि मैत्रेय की आत्मा उसमें प्रविष्ट हो जाए। और कोई वीस-पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति को तैयारी में लगे। कृष्णमूर्ति की जैसी तैयारी हुई, दुनिया में वैसी किसी आदमी की शायद ही हुई हो। अत्यन्त गूढ साधनाओ से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर तैयारियाँ पूरी हुईं। सारी दुनिया में कोई छ हजार लोग एक स्थान पर एकत्र हुए जहाँ कृष्णमूर्ति में मैत्रेय की आत्मा के प्रविष्ट होने की घटना घटने वाली थी। लेकिन शायद भूल चूक हो गई। वह घटना नहीं घटी। और कृष्णमूर्ति अत्यन्त ईमानदार आदमी हैं। अगर कोई वेईमान आदमी उसकी जगह होता तो वह शायद अभिनय करने लगता कि घटना घट गई है। कृष्णमूर्ति ने इन्कार कर दिया गुरु होने से।

कृष्णमूर्ति का सवाल ही न था। सवाल तो किसी और आत्मा का था। आत्मा के लिए तैयारी थी उनके शरीर की। क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने में बड़ी बाधा पड़ रही है। कोई शरीर इस योग्य नहीं मिल रहा है कि मैत्रेय उतर जाएँ। और कोई गर्भ ऐसा निर्मित नही हो रहा है कि मैत्रेय के लिए अवसर बन जाए। तो हो सकता है कि दो चार हजार वर्ष प्रतिक्षा करनी पड़े। हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त हो जाए, और बस चेतना विदा हो जाए। लेकिन आशा कम है। वह प्रतीक्षा जारी रहेगी। कृष्ण-मूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया। और अब ऐसा कोई प्रयोग पृथ्वी पर नही किया जा रहा है। अब तक सदा आकस्मिक शिक्षक ही उतरे थे, कभी-कभी तैयारियाँ भी हुई थी। तो वह जो मैंने कहा एक बार लौटने का उपाय है मुक्त आत्मा को और यह उसका हक है, उसका अधिकार है क्योंकि जिसने जीवन में इतना पाया उसे अगर बाटने का और खबर देने का अधिकार भी न मिलता हो तो वह जीवन बड़ा असंगत और तर्कहीन है। उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यन्त जरूरी है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म में उपलब्ध किए हैं, इस जन्म में बाटे हैं, उनकी चेतना के लौटने का कोई सवाल नही है।

दूसरी एक बात आपने पूछी है कि हम प्रकृति में तो चक्रीय गति देखते हैं। सब चीजे दौड़ती है, घूमती है। सब चीजे लौट कर फिर घूम जाती हैं। तो मन में सम्भावना उठती है, कल्पना उठती है कि कही ऐसा तो नहीं है कि निगोद से आत्माएँ मोक्ष तक जाती हो, फिर वापस निगोद में पहुँच जाती हो। क्योंकि जहाँ सभी कुछ चक्र में घूमता हो, वहाँ सिर्फ एक आत्मा की गति को चक्रीय न माना जाए यह कुछ नियम का खंडन होता मालूम पड़ता है। सब चीजें लौट आती हैं, बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष में बीज आ जाते हैं। फिर बीज वृक्ष बनते है, फिर वृक्ष के बीज आ जाते है। सब लौटता चला जाता है।

किसी वैज्ञानिक को कोई पूछ रहा था कि मुर्गी और अंडे में कौन पहले है। बहुत जमाने से आदमियो ने यह बात पूछी है। उस वैज्ञानिक ने कहा कि पहले का तो सवाल ही नहीं है क्योंकि मुर्गी और अंडा दो चीजें नही हैं। तो उस आदमी ने पूछा कि अगर दो चीजे नहीं हैं तो मुर्गी क्या है? अंडा क्या है? वैज्ञानिक ने फिर बहुत बढ़िया बात कही कि मुर्गी है अंडे का रास्ता, अंडे पैदा करने के लिए। या इससे उल्टा कह सकते हैं कि अंडा मुर्गी का रास्ता है, मुर्गी पैदा करने के लिए। सब चीजें घूम रही हैं। घड़ी के कांटे की तरह सब

घूम रहा है। फिर काँटे बाहर पर आ जाते हैं। सिर्फ आत्मा के लिए ही इस नियम को तोडना उचित नही मालूम पडता क्योकि विज्ञान बनता है निरपवाद नियमो से। अगर जीवन के सब पहलुओ पर यह सच है कि बच्चा जवान होता है, जवान बूढा होता है, बूढा मरता है, बच्चे पैदा होते है, फिर जवान होते हैं, फिर बूढे होते है, फिर मरते है। अगर जीवन की चक्रीय गति इस तरह चल रही है और आत्मा का पुनर्जन्म मानने वाले भी इस चक्रीय गति को स्वीकार करते हैं कि जो अभी मरा वह फिर बच्चा होगा, वह फिर जवान होगा, फिर बूढा होगा, फिर मरेगा, फिर बच्चा होगा, फिर वह चक्र घूमता रहेगा तो सिर्फ आत्मा को यह चक्र क्यो लागू नही होगा। साधारणत लागू नही होता। नियम यही है और ऐसे ही सब घूमता चलता है।

मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नही है। सामान्य नियम लागू भी नही होते। असल में चक्र के बाहर जो कूद जाता है, उसी को मुक्त आत्मा कहते हैं। नही तो मुक्त कहने का कोई मतलब नही है। ससार का मतलब है जो घूम रहा है, तो घूमता ही रहता है। मुक्त का मतलब है जो इस घूमने के बाहर छलाग लगा जाता है। मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते हैं तो मुक्ति व्यर्थ हो गई। अगर मोक्ष से फिर निगोद में आत्मा को आना है तो पागल हैं वे जो मुक्त होने को कोशिश कर रहे हैं। क्योंकि इससे कोई मतलब ही नही। अगर काँटे को बारह पर लौट ही आना है—वह कुछ भी करे, चाहे मुक्त हो, चाहे न हो—फिर तो मोक्ष अर्थहीन हो गया।

अगर छलाग लगानी है तो हमें सजग होना पडेगा इस चक्र के प्रति। जैसे कि कल आपने क्रोध किया, फिर पश्चात्ताप किया। आज फिर आप क्रोध कर रहे हैं, फिर पश्चात्ताप कर रहे हैं। फिर क्रोध है, फिर पश्चात्ताप है। हर क्रोध के पीछे पश्चात्ताप, हर पश्चात्ताप के आगे फिर क्रोध है। एक चक्र मे आप घूम रहे है। और अगर इस चक्र में आप खड़े रहते है, तो घूमना जारी रहेगा। लेकिन यह भी हो सकता है कि आप चक्र के बाहर छलाग लगा जाएँ। छलाग लगाने का मतलब है कि एक आदमी न तो क्रोध करता है न पश्चात्ताप करता है, बाहर हो जाता है। जब उसे कोई गाली देता है तो न वह क्षमा करता है, न वह पश्चात्ताप करता है। वह कुछ करता ही नही, वह एकदम बाहर हो जाता है। यह जो बाहर हो जाना है, यह जो छिटक जाना है, चक्र के बाहर, यह तो चक्र में नही गिना जा सकता। अगर इसे भी चक्र में गिना जा सकता है तो महावीर नासमझ हैं, बडी भूल में पड़े है। बुद्ध नासमझ है,

नासमझी में पड़े है। क्राइस्ट भी गल्ती कर रहे हैं। असल में तब मोक्ष की बात करने वाले सब पागल है। क्योकि अगर सबको घूमते ही रहना है तो सब बात व्यर्थ हो गई। अगर हम मोक्ष की धारणा को, जो सतत (कान्स्टेन्ट) है, समझ ले तो उसका मतलब ही कुल इतना है कि चक्र के बाहर कूदा जा सकता है और जो व्यक्ति इस चक्र के प्रति सचेत हो जाएगा, वह बिना कूदे नही रह सकता क्योकि चक्र बिल्कुल कोल्हू के बैल की तरह घूम रहा है। और कोल्हू के बैल में कौन जुता रहना चाहेगा।

जीवन की जो साधारण यात्रा है, उसकी जो लोहपटरी है, उससे कोई अगर छलाग लगा जाता है, तो वह मुक्त हो जाता है। उसको वापस चक्र में रखने का कोई उपाय नही है। हाँ, जैसा मैंने कहा, एक बार वह स्वय, अपनी इच्छा से चाहे तो उस चक्र में लौट सकता है जिसमें अपने प्रियजनो को, अपने मित्रो को, उन सबको जिनके लिए वह आया है आनन्द में लाना चाहता है। एक बार फिर वापस आकर बैठ सकता है उस चक्र पर लेकिन चक्र पर बैठा हुआ भी वह घूमेगा नहीं। घूमेगा वह इसलिए नही कि अब घूमने का कोई मतलब न रहा। और इसलिए हम उसे पहचान भी पाएँगे कि कुछ अजब तरह का आदमी है, कुछ भिन्न तरह की बात है, यह कुछ और अनुभव करके लौटा है। तब वह खड़ा भी होगा हमारे बाजार में लेकिन हमारे बाजार का हिस्सा नही होगा। अब वह हमारे बीच भी खडा होगा लेकिन ठीक हमारे बीच नही होगा। कही हमसे दूर फासले पर होगा। उस व्यक्ति में दोहरी घटना घट रही होगी। वह होगा हमारे बीच और हमसे बिल्कुल अलग होगा। यह हम प्रतिपल अनुभव कर पाएँगे कि कही उससे हमारा मेल होता भी है, कही नही भी होता और कही बात बिल्कुल अलग हो जाती है। वह कुछ और ही तरह का आदमी है। यह जो वैज्ञानिक है, भौतिकवादी है, वह यही कह रहा है कि यहाँ तो सब नियम वही पहुँच जाते है जहाँ से हम आते है। आपका जाने का कोई उपाय नहीं है। सागर का पानी सागर में पहुँच जाता है, पत्तो में आई मिट्टी वापिस मिट्टी में पहुँच जाती है। पत्ते गिर कर फिर मिट्टी हो जाते है। वही वैज्ञानिक कहता है, वही भौतिकवादी कहता है लेकिन धार्मिक खोजी यह कह रहा है कि एक ऐसी भी जगह है जहाँ से हम नही आए हैं और जहाँ जा सकते हैं और जहाँ हम चले जाएँ तो फिर इस चक्कर में गिर जाने का कोई उपाय नहीं है।

अगर यह सम्भव नहीं है तो धर्म की सम्भावना खत्म हो गई; साधना का प्रयोजन व्यर्थ हो गया। फिर कुछ बात ही नही। फिर तो चक्र में हम घूमते

रहेंगे। आवागमन से छूटने की जो कामना है, यह उन लोगो को उठी है जिन्हें इस घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड गई कि जन्मो-जन्मो से एक-सा घूमना हो रहा है, हम घूमते चले जा रहे हैं और इससे छलाग लगाने का ख्याल नही आता। छलाग लग सकती है, छलाग यह घटना है जिसके लिए फिर वे नियम लागू नही होते। जैसे आप छत पर खडे हैं। दस आदमी छत पर खडे हैं। कोई भी छत से नही गिर रहा है। एक आदमी छत पर छलाग लगाता है। यह आदमी छत से बाहर हो गया। छत इसे जमीन की कशिश से बचा रही थी। अब जमीन इसे खीचेगी अपनी तरफ जो कि छत पर खडे हुए किन्ही लोगो को नही खीच सकती है। अभी जो हमने चांद पर आदमी भेजा इसके लिए सबसे भारी कठिनाई एक ही है। और वह यह कि जमीन की कशिश मे कैसे छूटें। दो सौ मील तक जमीन के ऊपर चारो तरफ जमीन की कशिश का प्रभाव है। इसके बाद एक इंच बाहर हो गए कि जमीन का खीचना खत्म हो गया। तो जो सैकडो वर्षों से चिन्तना चलती थी कि चाद पर कैसे पहुँचे, उसमें सबसे बडी कठिनाई यह थी कि जमीन से कैसे छूटें ? क्योकि जमीन का गुरुत्वाकर्पण इतनी जोर से खीचता है कि उसके बाहर कैसे हो जाएँ ? यह पहले सम्भव नही हो सकता था, अब सम्भव हो गया है। क्योकि हम इतना बडा विस्फोट पैदा कर सके रोकेट के पीछे कि उस विस्फोट के धक्के में यह रोकेट गुरुत्वाकर्पण के घेरे के बाहर हो गया। एक बार बाहर हो गया पृथ्वी की जकड के कि अब वह कही भी जा सकता है। अब कोई सवाल नही है कही जाने का। दूसरा डर चांद पर उतारने का था कि पता नही कितनी दूरी से चांद खीचेगा या नही खीचेगा। तो हर एक कशिश का क्षेत्र है एक, हर नियम का एक क्षेत्र है। और उस नियम के बाहर उठने का उपाय है। अपवाद के रूप में बाहर जा सकते हैं उस क्षेत्र के।

जीवन की जो गहरी परिधि है उसके केन्द्र में पृथ्वी की कशिश है, एसे जीवन के चक्र का केन्द्र वासना है। अगर जीवन के बाहर छिटकना है तो किसी न किसी रूप मे वासना के बाहर निकलना होगा। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो तृष्णा है, जिसको बुद्ध तृष्णा कहते हैं, वह जो वासना है, जो हमें स्थिर नही होने देती और कहती है, वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ, हमें चक्कर में दौडाती रहती है। वह इशारे करती है चक्र के भीतर और कहती है कि धन कमाओ, यश कमाओ, स्वास्थ्य लाओ। वह कहती है और जियो, ज्यादा जियो, ज्यादा उम्र बनाओ। वह जो भी कहती है, वह सब उस चक्र के भीतर के

पहलू हैं। जो व्यक्ति एक क्षण भी वासना के बाहर हो जाए, वह अन्तरिक्ष में यात्रा कर गया—उस अन्तरिक्ष में, जो हमारे भीतर है। वह जीवन के चक्र के बाहर छलाग लगा गया। क्योंकि उसने कहा कि न मुझे यश चाहिए, न धन चाहिए, न कोई काम चाहिए, मुझे कुछ चाहिए ही नही ? मैं जो हूँ, हूँ। मैं कुछ होना नही चाहता। वासना का मतलब है कि मैं जैसा हूँ वैसा नही, जो मेरे पास है वह काफी नही, कुछ और चाहिए। छोटा क्लर्क बडा होना चाह रहा है, छोटा मास्टर बडा मास्टर होना चाह रहा है। छोटा मिनिस्टर बडा मिनिस्टर होना चाह रहा है।

तो सारे खोजियो की खोज यह है कि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के बाहर ठहर जाओ और वह क्षेत्र जो चक्कर लगवाता था, उसके आप बाहर हो जाओगे। और एक क्षण भी आप बाहर हो गए तो आप हैरान हो जाओगे यह जानकर कि जिसे हम अनन्त जन्मो से पाने की आकाक्षा कर रहे हैं वह हमारे पास ही था, वह मिला ही हुआ था। वह हमें उपलब्ध ही था। अपने तरफ देखने भर की जरूरत थी। लेकिन जैसे अन्तरिक्षयात्रा नहीं हो सकती जब तक कि जमीन की कोशिश से छूट न जाएँ, वैसे ही अन्तर्यात्रा नही हो सकती जब तक हम वासना की कोशिश से छूट न जाएँ। और वासना की कशिश जमीन की कशिश से ज्यादा मजबूत है। क्योंकि जमीन की जो कशिश है वह एक जड शक्ति है खीचने की। वासना की जो कशिश है वह एक सजग चेतनशक्ति है खींचने की।

आप रास्ते पर चलते हैं, आपको कभी पता नही चलता कि जमीन आपको खीच रही है। यह जब पता चले तब हम कशिश से बाहर हो जाएँ। अभी अन्तरिक्ष में जो यात्री गए उनको पता चला कि यह तो बडा मुश्किल मामला है। एक सैकेंड भी कुर्सी पर बिना बेल्ट बाँधे नही बैठा जा सकता। बेल्ट छूटा कि आदमी उठा, छप्पर से लग गया एकदम। और उनको पहली दफा जाकर पता लगा कि वजन जैसी कोई चीज ही नही है। जमीन की कशिश है, जमीन का खिचाव है। चूँकी चांद पर जमीन की कशिश बहुत कम है, इसलिए कोई भी आदमी छलांग लगाकर ऊँची दीवार से निकल सकता है। चांद की कशिश आठ गुनी कम है। जो आदमी जमीन पर आठ फीट छलाग लगा सकता है वह वहाँ आठ गुनी छलांग लगा सकेगा क्योंकि उसका वजन कम हो गया है। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हमें पूरे वक्त, जमीन खीचे हुए है क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं, उसी में पड़े होते हैं और उसी में हम निर्धारित हो जाते हैं। हमको

यह भी पता नही है कि वासना हमें चौबीस घंटे खींचे हुए हैं क्योंकि हम उसी में पैदा होते है। पैदा हुआ बच्चा कि वासना की दौड़ शुरू हुई। वासना ने उसे पकड़ना शुरू किया। उसे यह चाहिए, उसे वह चाहिए। उसे यह बनाना है, उसे वह बनाना है—दौड शुरू हो गयी और चक्र जोर से घूमने लगा।

इस चक्र के बाहर, जिसे भी छलांग लगानी हो, उसे वासना के बाहर होना पडता है और साक्षी का भाव वासना के बाहर ले जाता है। जैसे कोई व्यक्ति साक्षी हो गया वह वासना के बाहर चला जाता है और हमारी कठिनाई यह है कि जीवन में साक्षी होना बहुत कठिन है। हम नाटक, फिल्म तक में साक्षी नही हो सकते। फिल्म के परदे पर, जहाँ कुछ भी नही है, जहाँ सिवाय प्रकाश के, कम ज्यादा फेंके गए किरण-जाल के और कुछ भी नही है, वहाँ हम कितने दुःखी, सुखी, क्या-क्या नही हो जाते? तीन आयामों (थ्री डायमैन्शन) में एक फिल्म बनी है। जब पहली बार उसका प्रदर्शन हुआ तो बडी हैरानी हुई क्योंकि उसमें तो बिल्कुल ऐसा दिखाई पडा कि आदमी पूरा है। यह जो फिल्में हैं दो आयामो में बनी हैं, लम्बाई-चौडाई गहराई नही है इनमें। गहराई फिल्म में आ जाती है तो फिर सच्चे आदमी में और फिल्म के आदमी में कोई फर्क नही रहता। पर्दे पर जो दिखाई पड रहा है, वह बिल्कुल सच्चा हो गया है। जब पहली बार यह फिल्म बनी, लन्दन में उसका प्रदर्शन हुआ। उसमें एक घोडा है, एक घुडसवार है जो भागा चला आ रहा है। हाल के सारे लोग एकदम झुक गए कि वह घोडा एकदम हाल के अन्दर से निकल जाए। एक भाला फेंका उस घुडसवार ने और सब लोग अपनी खोपडी बचाने की फिक्र में पड गए कि कहीं वह खोपडी में न लग जाए। तब पता चला कि आदमी उस पल में कितना भूल जाता है कि यह परदा है। और हम सब रोज भूलते हैं। हम साक्षी नही रह पाते।

टालस्टाय ने लिखा है "मैं बडा हैरान हुआ। मेरी माँ रोज थियेटर जाती थी। रूस की सर्दी! बाहर थियेटर के बग्घी खडी रहती, बग्घी पर दरबान खडा रहता क्योंकि मेरी माँ कब बाहर आ जाए, पता नही। मैं देखकर हैरान हुआ कि मेरी माँ थियेटर में इतना रोती कि उसके रूमाल भीग जाते। बाहर हम आते और अक्सर ऐसा होता कि कोचवान बर्फ की वजह से मर जाता, तो उसे बाहर फिकवा दिया जाता और माँ आसू पोछती रहती फिल्म के। मैं दंग रह जाता, हैरान रह जाता यह देखकर कि एक जिन्दा आदमी मर जाय हमारी कोच पर बैठा हुआ सिर्फ इसलिए कि हम उसको छुट्टी नही कर सकते, न हटा

सकते, उसको कोच रखनी पडती क्योकि माँ किसी वक्त बाहर आ सकती है। तो कोचवान बर्फ की ठड में मर गया है माँ के सामने उसकी लाश फिकवा दी गई है और दूसरा कोचवान सडक से पकड कर बैठा दिया गया है और कोच घर की तरफ चली गई है। माँ पूरे रास्ते रोती रही है उस फिलम के लिए, या उस नाटक के लिए जहाँ कोई मर गया था, या जहाँ कोई प्रेमी बिछुड गया था, या जहाँ कोई और दुर्घटना घट गई थी।

कई बार ऐसा हो जाता है कि बाहर की जिन्दगी हमें उतनी ज्यादा नहीं पकडती जितनी चित्र की कहानी पकड लेती है) क्योकि बाहर की जिन्दगी बहुत अस्त व्यस्त है और चित्र की कहानी बहुत व्यवस्थित है और आपके मन को कितना डूबा सके, उसकी सारी व्यवस्था की गई है। बाहर की जिन्दगी में यह सब व्यवस्था नही है। तो नाटक तक में, फिल्म तक में, हम साक्षी नही रह पाते। बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो फिलम और जीवन में फर्क ज्यादा नहीं है। यह शरीर उसी तरह विद्युत कणो से बना है, जिस तरह फिलम के परदे पर बना हुआ शरीर विद्युत कणो से बना है। फिल्म या नाटक की कहानी जितना अर्थ रखती है, उससे ज्यादा हमारे जीवन की कहानी अर्थ नही रखती है। हाँ, फर्क इतना ही है कि वह तीन घटे की मंच है, यह शायद सत्तर साल की, सौ साल की मच है। इसमें अभिनेता बदलते चले जाते है, आते हैं, चले जाते है, यह नाटक चलता ही रहता है। इस नाटक में दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नही है।

अगर हमे स्मरण आ सके कि यह एक लम्बा नाटक खेला जा रहा है, तो शायद हम भी साक्षी हो सकें। और फिर शायद नाटक के इन पात्रो में क्या मैं हो जाऊँ यह ख्याल टूट जाए। जो हम हैं, शायद हम उसी को चुपचाप निभाकर विदा हो जाएँ। ऐसी चित्त की दशा में जहाँ वासना टूट जाती है, तृष्णा टूट जाती है, जहाँ हम दौड़ से बाहर खडे हो जाते हैं और दौड सिर्फ नाटक रह जाती है व्यक्ति छलांग लगा लेता है। फिर भी क्योकि हम नाटक में जो खोए हैं, नाटक में जो भटके है, अभिनय ही जीवन रहा, है, तो हमें वास्तविक जीवन की खबर समझ में नही आती। जैसे कि नाटक के मच के पीछे ग्रीन रूम है जहाँ कोई राम बना था कोई रावण बना था, मच पर लड रहे थे, झगड रहे थे, मगर पीछे ग्रीन रूम में जाकर एक दूसरे को चाय पिला रहे है और गपशप कर रहे है।

जिस दिन कोई देख पाता है वास्तविक जिन्दगी को तब हैरान होता है कि असली जिन्दगी के नाटक में राम और रावण जब पर्दे के पीछे चले जाते हैं तब चाय पीते हैं और गपशप करते हैं। सब झगडे खत्म हो जाते हैं। लेकिन वह ग्रीन रूम जरा गहरे मे छिपा है और पर्दा बहुत लम्बा है। और पर्दे के बाहर ही हम पूरे वक्त रहते हैं कि हमें पता ही नही है कि पीछे ग्रीन रूम भी है। तो हम एक बडे नाटक के हिस्से हैं, कभी आपने सोचा, एक नाटक के पात्र की तरह कभी देखा, कभी सुबह उठकर ख्याल किया कि एक नाटक शुरू होता है— रोज सुबह। रात थक जाते हैं, एक नाटक का अन्त हो जाता है, फिर सुबह उठने हैं, नाटक शुरू हो जाता है। और कभी आपने सोचा कि कई बार आपको ध्यान रखना पडता है कि नाटक में भूल-चूक न हो जाए।

एक फ्रेंच चित्रकार अमेरिका जा रहा था। उसके भुलक्कड होने की बडी कहानियाँ हैं। उसकी पत्नी और उसकी नौकरानी, दोनो उसको बिदा देने एयरपोर्ट आईं। उसने जल्दी में नौकरानी को चूम लिया और पत्नी को कहा कि खुश रहना, बच्चो का ख्याल रखना, और वे दोनो घबडा गईं। उसकी पत्नी ने कहा : यह क्या करते है। ख्याल नही करते कि वह नौकरानी है, उसको आप चूमते हैं और मुझे नौकरानी बनाते है, मैं आपकी पत्नी हूँ। उसने कहा : चलो, बदले देता हूँ। फिर पत्नी को चूम लिया और नौकरानी को कहा बच्चो का ख्याल रखना और कहा कि कभी-कभी चूक जाता हूँ, ख्याल नही रख पाता। तो कुछ लोग ख्याल रख पाते हैं, कुछ लोग चूक जाते हैं।

यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा बेटा है इसका हमें ख्याल रखना पडता है चौबीस घंटे और अगर न ख्याल रखे तो दूसरे हमें ख्याल दिला देते हैं कि वह तुम्हारे पिता हैं, या खुद आदमी ख्याल दिला देता है कि मैं तुम्हारा पिता हूँ। वह नाटक हमें पूरे वक्त याद रखना पडता है कि कही भूल न जाएँ, कही चूक न हो जाए। और जो इस नाटक को जितना अच्छी तरह से निबाह लेता है, उतना कर्तव्यनिष्ठ है। मैं यह नही कहता हूँ कि नाटक न निभाएँ। नाटक निभाने के लिए ही है और बडा मजेदार भी है। इसमें कुछ ऐसी तकलीफ भी नही है। बस एक ख्याल न भूल जाएँ, और चाहे सब भूल जाएँ कि यह सिर्फ नाटक है और कही भीतर हमारे एक बिन्दु है जहाँ हम सदा बाहर हैं।

स्वामी रामतीर्थ हुए हैं। उनकी बडी अजीब सी आदत थी। अमरीका में लोगो को बडी मुश्किल हुई क्योकि वह हमेशा अन्य पुरुष (थर्ड पर्सन) में ही बोलते थे। यहाँ तो उनके मित्र उन्हें पहचानने लगे थे। वहाँ तो बडी कठिनाई हुई। और हम अजीव-अजीव तरह के लोगो के थोडे आदी भी हैं। सारी दुनिया इतनी आदि नही है। यहाँ महावीर, बुद्ध जैसे अजीव-अजीव लोग हुए हैं। उन्होने हमें बहुत सी बातो की आदत डलवा दी है जोकि दुनिया में बहुत लोगो को नही है। राम जब वहाँ पहुँचे तो लोग बडी मुश्किल में पड गए। क्योकि वह कहते कि राम को इस वक्त बहुत भूख लगी है। अब जो आदमी सामने बैठा है वह चारो ओर देखता है कि कौन है राम ? क्योकि अगर मुझे भूख लगी है तो मैं कहूँगा कि मुझे भूख लगी है और राम कहते हैं कि राम को बडी भूख लगी है, देखते क्या हो, कुछ इन्तजाम करो, राम बडा परेशान हो रहा है। उन लोगो ने कहा : कौन राम ? तो उन्होने कहा कि यह राम। तो लोगो ने कहा कि आप ऐसा क्यो नही कहते कि 'मैं'। उन्होने कहा, वैसा मै कैसे कह सकता हू क्योकि मैं तो खुद ही देख रहा हूँ कि 'राम' को तकलीफ हो रही है, 'राम' को भूख लगी है। 'राम' को मुश्किल हो रही है। 'राम' को ठड लगी है। मैं देख रहा हूँ। कई दफा ऐसा होता है कि कई लोग 'राम' को खूब गाली देते हैं, हम बहुत हँसते है। कहते हैं . देखो ! राम को कैसी पडी ? राम कैसा मुश्किल में फँसे ? आ गया न मजा ? अब यह जो ख्याल कि कही मैं अलग हूँ, सारे खेल से कही दूर हू, साक्षी बना देता है। तब वासना की दौड टूट जाती है। खेल फिर भी चलता है क्योंकि आप अकेले खिलाडी नही। खेल फिर भी चलता है क्योकि खिलाडी बहुत है। और फिर खेलकर क्या बिगाडना है ? बडे बूढे छोटे बच्चो के साथ गुडिया का खेल भी खेल लेते है।

एक मेरे मित्र जापान में किसी के मेहमान थे। उनको पता न था। सुबह ही घर मे बडी सज-धज शुरू हो गई और घर के बडे-बूढे भी बडे उत्तेजित मालूम पड़े। उन्होंने पूछा कि बात क्या है। तो उन्होंने कहा कि आज विवाह है। आप भी सम्मिलित हों। उन्होंने कहा . जरूर सम्मिलित हो जाऊँगा। साझ आ गई। घर में बडी तैयारी चलती रही। बच्चो से लेकर बूढो तक सब तैयारी में लगे हैं। वह भी बेचारे बहुत तैयार हो गए। तब देखा तो बहुत हैरान हुए। जो विवाह था, वह एक गुडिया और एक गुड्डे का था। पडोस के घर की एक लडकी ने गुडिया की शादी रचाई थी। और पडोस के दूसरे घर के एक लडके ने अपने गुड्डे का विवाह रचाया था। उन दोनो का विवाह

हो रहा था। गाँव के बड़े-बूढ़े मौजूद थे। लेकिन मेरे मित्र ने कहा कि यह क्या पागलपन है। और इतना साज-सवार चल रहा था, इतने बैंड-बाजे बज रहे थे, तो मेरे मित्र ने उस घर के बूढ़े को कहा कि यह क्या पागलपन है कि आप लोग इस गुडिया के विवाह में सम्मिलित हुए। तो उन्होंने कहा कि इस उम्र में पता चल जाना चाहिए कि सभी विवाह गुडियों के हैं। उस बूढ़े ने कहा कि इसमें भी क्या फर्क है। उसमें और इसमें कोई फर्क नहीं है। अभी बच्चे खेल खेल रहे हैं, हम उसमें सम्मिलित होते हैं और हम उतनी गम्भीरता से ही सम्मिलित होते हैं जितनी गम्भीरता से हम असली विवाह में सम्मिलित होते हैं ताकि बच्चे समझ लें कि असली विवाह भी गुडियों के खेल से ज्यादा नहीं है। बूढ़े दोनों में एक ही गम्भीरता से सम्मिलित होते हैं।

उस बूढ़े का ख्याल देखिए। वह कह रहा है कि बच्चों को अभी से पता चल जाए कि हमारी गम्भीरता में कोई फर्क नहीं है। गुडिया के विवाह में भी हम उसी गम्भीरता से आते हैं जैसे हम असली विवाह में आते हैं। दोनों में कोई फर्क नहीं है। दोनों में हम कोई भेद भी नहीं करते हैं। ठीक है। वह एक तल की गुडियों का विवाह है, वह दूसरे तल की गुडियों का विवाह है। लेकिन विवाह हो रहा है। लोग मजा ले रहे हैं और हम भागीदार हो जाते हैं। हम क्यों नाहक लोगों के इस रस में, इस राग-रंग में बाधा बन जाएँ।

जहाँ बुद्धिमत्ता आती है वहाँ जगत् माया से अलग नहीं हो जाता, वहाँ जगत् नाटक से अलग नहीं हो जाता। वह नाटक और जगत् एक ही हैं। कोई निन्दा नहीं आ जाती कि नाटक गलत है। ऐसा कुछ भी नहीं हो जाता। वहाँ सब बराबर है, जगत् और नाटक एक हो जाते हैं। सिर्फ एक घटना घट जाती है कि साक्षी अलग खड़ा हो जाता है। जिस दिन साक्षी अलग खड़ा हो जाए जीवन से, उसी दिन दौड़ के बाहर हो जाता है। तो महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है। सभी साधनाएँ मौलिक रूप से साक्षी की साधनाएँ हैं कि हम किस भाँति देखने वाले न रह जाएँ, भागने वाले न रह जाएँ, करने वाले न रह जाएँ, दर्शक, द्रष्टा, साक्षी हो जाएँ, किस भाँति सिर्फ साक्षी रह जाएँ।

एपीटेक्टस एक अद्भुत व्यक्ति हुआ है। बीमारी भी आती, दुःख भी आता, चिन्ता भी आती तब भी लोग उसे वैसा ही पाते जैसा जब वह स्वस्थ था, निश्चिन्त था, शांत था, सुखी था। लोगों ने हर हालत में उसे देखा लेकिन वैसा ही पाया जैसा वह था। उसमें कोई फर्क नहीं देखा कभी भी। कुछ लोग उसके

पास गये और कहा कि एपीटेक्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढे हो गए। तो उसने कहा : जरूर आए, देखेंगे। जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई तो मौत को देखने की ताकत भी आ गई। जो जिन्दगी को नही देख पाते, वे मौत को भी नही देख पाते। जो जिन्दगी को देख लेता है वह मौत को भी देख लेता है। लेकिन एपीटेक्टस ने कहा, देखेंगे। बड़ा मजा आयेगा, क्योकि बड़े दिन हो गए, मौत को नही देखा।

मौत आई है। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये है। एपीटेक्टस मर रहा है लेकिन घर में संगीत हो रहा है क्योकि उसने अपने मित्रो और शिष्यो को कहा है कि मरते क्षण मे मुझे रोकर विदा मत देना क्योकि रोकर हम उसको विदा देते हैं जो जानता नही था। मुझे तुम हँसकर विदा देना क्योकि मैं जानता हूँ, कि मैं मर नही रहा हूँ। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति को देखना सीख लिया है और जिस स्थिति को मैंने देखना सीखा मैं उसके बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दु:ख को देखा, मैं दु:ख के बाहर हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूँ कि मैं देखने को कला जानता हूँ। मैं मौत को देख लूँगा और मौत के बाहर हो जाऊँगा। तुम इसकी फिक्र ही मत करो, मैंने जिस चीज को देखा मैं उसके बाहर हो गया। यह मेरे जीवन भर का अनुभव है कि देखो और बाहर हो जाओ। मगर हम देख ही नही पाते।

इसलिए इस देखने के तत्त्व-विचार को 'दर्शन' का नाम दिया है। दर्शन का मतलब है देखने की क्षमता। पश्चिम में जो दर्शन है उसे मीमांसा कहना चाहिए, तत्त्व-विचार कहना चाहिए। भारत मे जिसे हम दर्शन कहते है—महावीर, बुद्ध, पतञ्जलि, कपिल, कणाद का दर्शन, वह पश्चिम का दर्शन नही है। भारत का दर्शन है देखने की कला देख लो और बाहर हो जाओ। सोचने का सवाल नही है यहां। और जिस चीज को आप देखोगे उसी के बाहर हो जाओगे। यह कभी सोचा आपने कि जिस चीज को आप देखने में समर्थ हो जाते है, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते है। हम यहां इतने लोग बैठे है और अगर आप गौर से देखेंगे, आप फौरन बाहर हो जाएँगे। आप इतने लोगो को गौर से देखेंगे और आप पाएँगे कि भीड नही रही। आप अकेले रह गए। कभी किसी भी भीड मे आप खड़े हो और गौर से चारों तरफ देखें और जाग जाएँ तो आप पाएँगे कि भीड चली गई, आप अकेले ही रह गए, भीड मे भी आप बिलकुल अकेले रह गए है। जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुटा

लेंगे उसी के बाहर हो जाएँगे। तो इस चक्र में सब चीजें एक सी घूमती चली जाती हैं अगर द्रष्टा हो जाएँ तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।

/ पाम्पई के शहर में आग लगी क्योंकि पाम्पई का ज्वालामुखी फूट गया था। सारा गाँव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचाकर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही खाते, फर्नीचर, कपडे मोती, जवाहर—जो जिसके पास था, लिया और भागा। फिर भी कोई पूरा नही बचा सका क्योंकि जब आग लगती हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिन्दगी मुश्किल में पडी हो तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा में खुद को अटकाया भी नही जा सकता। लोग भागे। आधी रात थी। एक सिपाही चौरास्ते पर खडा है जिसकी सुबह छ बजे ड्यूटी बदलेगी। तब दूसरा आदमी आएगा। रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है। पुलिस वाला अपनी जगह पर खडा है। जो भी उसके करीब से निकलता है उससे कहता है, भागो, यह कोई वक्त है खडे रहने का ! वह कहता है लेकिन अभी छ कहाँ बजा है ? और अगर तुम भी खडा होना सीख जाओ तो भागने की जरूरत नही। आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खडा हो रहूँ और देखता ही रहूँ तो आग सदा ही बाहर रहेगी क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे ही, अलग ही, छूट जाऊँगा हर बार। आग करीब आ सकती है, शरीर मे लग सकती है लेकिन अगर मैं देखता ही गया तो मैं छूट जाऊँगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो क्योंकि जहाँ तुम भाग रहे हो आग वहाँ भी लग सकती है और कही भी भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही। \

हम सब भाग रहे हैं और खडे नही हो पाते हैं। भागने की जो दौड है वह चक्रीय है। हम उसमें चक्कर लगाते चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कही पहुँच रहे हैं, मगर कही भी नही पहुँच पाते क्योंकि चक्कर और आगे दिखाई पडने लगता है। लेकिन कोई खडा भी हो जाता है अभी पटरी से नीचे उतर कर और देखने लगता है उस चक्कर को तब बहुत हँसी आती है कि यह लोग व्यर्थ पागल की तरह दौडे चले जाते हैं। और जिस जगह को छोडकर वे भाग रहे हैं थोडी देर में उसी जगह पर आ जाएँगे क्योंकि चक्कर गोल है और उसमें वे गोल घूम रहे हैं। कही कोई जा नही सकता, और सब भागे चले जा रहे हैं एक दूसरे के पीछे। जो व्यक्ति बाहर खडा हो जाता है, वह वैसा ही हो जाता है जैसे एक बडा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खडा होकर देखे।

पास गये और कहा कि एपीटेक्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढे हो गए। तो उसने कहा जरूर आए, देखेंगे। जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई तो मौत को देखने की ताकत भी आ गई। जो जिन्दगी को नही देख पाते, वे मौत को भी नही देख पाते। जो जिन्दगी को देख लेता है वह मौत को भी देख लेता है। लेकिन एपीटेक्टस ने कहा, देखेंगे। बड़ा मजा आयेगा, क्योंकि बडे दिन हो गए, मौत को नही देखा।

मौत आई है। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये है। एपीटेक्टस मर रहा है लेकिन घर मे संगीत हो रहा है क्योंकि उसने अपने मित्रो और शिष्यो को कहा है कि मरते क्षण में मुझे रोकर विदा मत देना क्योंकि रोकर हम उसको विदा देते है जो जानता नही था। मुझे तुम हँसकर विदा देना क्योंकि मैं जानता हूँ, कि मैं मर नही रहा हूँ। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति को देखना सीख लिया है और जिस स्थिति को मैंने देखना सीखा मैं उसके बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दुःख को देखा, मैं दुःख के बाहर हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूँ कि मैं देखने की कला जानता हूँ। मैं मौत को देख लूँगा और मौत के बाहर हो जाऊँगा। तुम इसकी फिक्र ही मत करो, मैंने जिस चीज को देखा मैं उसके बाहर हो गया। यह मेरे जीवन भर का अनुभव है कि देखो और बाहर हो जाओ। मगर हम देख ही नही पाते।

इसलिए इस देखने के तत्त्व-विचार को 'दर्शन' का नाम दिया है। दर्शन का मतलब है देखने की क्षमता। पश्चिम में जो दर्शन है उसे मीमासा कहना चाहिए, तत्त्व-विचार कहना चाहिए। भारत में जिसे हम दर्शन कहते है—महावीर, बुद्ध, पतञ्जलि, कपिल, कणाद का दर्शन, वह पश्चिम का दर्शन नही है। भारत का दर्शन है देखने की कला देख लो और बाहर हो जाओ। सोचने का सवाल नही है यहाँ। और जिस चीज को आप देखोगे उसी के बाहर हो जाओगे। यह कभी सोचा आपने कि जिस चीज को आप देखने में समर्थ हो जाते है, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते है। हम यहाँ इतने लोग बैठे है और अगर आप गौर से देखेंगे, आप फौरन बाहर हो जाएँगे। आप इतने लोगों को गौर से देखेंगे और आप पाएँगे कि भीड़ नहीं रही। आप अकेले रह गए। कभी कितनी ही भीड़ में आप खड़े हो और गौर से चारो तरफ देखे और जग जाएँ तो आप पाएँगे कि भीड़ चली गई, आप अकेले ही रह गए; भीड़ है पर आप बिल्कुल अकेले रह गए है। जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुटा

लेंगे उसी के बाहर हो जाएँगे। तो इस चक्र में सब चीजें एक सी घूमती चली जाती हैं अगर द्रष्टा हो जाएँ तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।

पाम्पई के शहर में आग लगी क्योंकि पाम्पई का ज्वालामुखी फूट गया था। सारा गाँव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचाकर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही खाते, फर्नीचर, कपडे मोती, जवाहर—जो जिसके पास था, लिया और भागा। फिर भी कोई पूरा नही बचा सका क्योंकि जब आग लगती हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिन्दगी मुश्किल में पडी हो तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा में खुद को अटकाया भी नही जा सकता। लोग भागे। आधी रात थी। एक सिपाही चौरास्ते पर खडा है जिसकी सुबह छ बजे ड्यूटी बदलेगी। तब दूसरा आदमी आएगा। रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है। पुलिस वाला अपनी जगह पर खडा है। जो भी उसके करीब से निकलता है उससे कहता है, भागो, यह कोई वक्त है खड़े रहने का! वह कहता है लेकिन अभी छ कहाँ बजा है? और अगर तुम भी खडा होना सीख जाओ तो भागने की जरूरत नही। आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खडा हो रहूँ और देखता हो रहूँ तो आग सदा ही बाहर रहेगी क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे ही, अलग ही, छूट जाऊँगा हर बार। आग करीब आ सकती है, शरीर में लग सकती है लेकिन अगर मैं देखता हो गया तो मैं छूट जाऊँगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो क्योंकि जहाँ तुम भाग रहे हो आग वहाँ भी लग सकती है और कहीं भी भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही।[1]

हम सब भाग रहे हैं और खडे नही हो पाते हैं। भागने की जो दौड है वह चक्रीय है। हम उसमें चक्कर लगाने चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कही पहुँच रहे हैं, मगर कही भी नही पहुँच पाते क्योंकि चक्कर और आगे दिखाई पडने लगता है। लेकिन कोई खडा भी हो जाता है अभी पटरी से नीचे उतर कर और देखने लगता है उस चक्कर को तब बहुत हँसी आती है कि यह लोग व्यर्थ पागल की तरह दौडे चले जाते हैं। और जिस जगह को छोडकर वे भाग रहे हैं थोडी देर में उसी जगह पर आ जाएँगे क्योंकि चक्कर गोल है और उसमें वे गोल घूम रहे हैं। कही कोई जा नही सकता, और सब भागे चले जा रहे हैं एक दूसरे के पीछे। जो व्यक्ति बाहर खडा हो जाता है, वह वैसा ही हो जाता है जैसे एक बडा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खडा होकर देखे।

जीवन की कला जीवन में खडे हो जाने की कला ही है। धर्म का विज्ञान द्रष्टा बन जाने का ही विज्ञान है, और सारे शास्त्रो का सार है। और उन सारे व्यक्तियों की वाणी का अर्थ एक ही सत्य है और वह यह है कि खडे हो जाओ, दौडो मत, देखो, डूबो मत। पास खडे हो जाओ, दूर खडे हो जाओ। अगर कोई अनडूबा खडा रह जाए एक क्षण भी तो आप जो पूछ रहे हैं कि क्या फिर लौटना नहीं हो जाएगा? मैं कहता हूं नही। एक बार कोई खडा हो गया तो वहाँ से लौटने का सवाल ही नहीं है। मगर हम चूंकि दौड रहे हैं, लौटेंगे। बहुत बार लौट चुके है, लौटते रहेंगे और दौडते ही रहेंगे। और कई बार ऐसा होता है कि थोडा दौडकर हम उपलब्ध नही हो पाते तो हम सोचते है कि और तेजी से दौडे।

छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात पूरी करूँ। एक आदमी को अपनी छाया से डर पैदा हो गया। वह अपनी छाया से भयभीत होने लगा। वह अपनी छाया से बचने के लिए भागा। वह जितनी तेजी से भागा, छाया उसके पीछे भागी। उसने देखा कि छाया बडी तेज भाग सकती है। इतनी तेजी से काम नहीं चलेगा और तेजी से भागना पडेगा। उसने अपनी सारी जान लगा दी। जितनी तेजी से वह भागा, छाया उतनी तेजी से भागी। क्योंकि छाया उसकी ही थी जिससे वह भाग रहा था। वह स्वयं ही से भाग रहा था। पहुँच कहाँ सकता था? छाया से छूट कैसे सकता था? अपने से ही छूटने का उपाय क्या था? लेकिन गाँव-गाँव में खबर फैल गई। और गाँव-गाँव मे लोग उसके दर्शन करने लगे और फूल फेंकने लगे। उसको रुकने की फुरसत कहाँ थी? क्योंकि रुकता है तो छाया और जोर से पकड लेती है, रुके और छाया फिर पकड ले।

तो वह गाँव-गाँव में भागता रहता। उसकी पूजा होने लगी। उस पर फूल बरसाने लगे। उसके चरणो में लाखो लोग झुकने लगे और जितने लोग ज्यादा झुकने लगे, जितने फूल गिरने लगे वह उतनी ही तेजी से भागने लगा। और गाँव-गाँव में खबर हो गई कि ऐसा तपस्वी कभी नही देखा गया जो एक क्षण भी नहीं ठहरता, जो रुकता ही नहीं, जो रात बेहोश होकर गिर पडता और जब उसकी आँख खुलती और छाया दिखती तो वह फिर भागना शुरू कर देता। आखिर ऐसे आदमी का क्या हाल हो सकता है? वह आदमी मरा। वह छाया साथ ही रही और मरा। जब मरा तब उसकी लाश की भी छाया बन गई। फिर लोगो ने उसको दफना दिया, एक कब्र बना दी बडे दरख्त के नीचे और

एक फकीर के पास लोग पूछने गए कि हम उसकी कब्र पर क्या लिख दें। तो वह फकीर आया, उसने कब्र देखी दरख्त की छाया में। कब्र की कोई छाया न थी। तो उस फकीर ने कब्र पर लिखा कि जो तू जी कर न पा सका, वह तेरी कब्र ने पा लिया है और पा लिया है इसलिए कि तू भागता था और कब्र तेरी खड़ी है। उसकी छाया खो गई है। तू भागता था धूप में और तेजी से, छाया तेरा पीछा करती थी। अपनी कब्र से तू सीख ले तो अच्छा है, नहीं तो ऐसी तेरी बहुत बार कब्र बनेगी और तू कभी न सीखेगा, भागता ही रहेगा। खड़ा हो जाना सूत्र है, छाया में ठहर जाना सूत्र है। हम सब धूप में दौड़ रहे हैं। वासना और तृष्णा की गहरी धूप है और हम सब की दौड़ है तो फिर हम चक्र के बाहर नहीं हो सकते।)

१६

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक २८ सितम्बर, १९६९

१९

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक २८ सितम्बर, १९६९

प्रश्न भगवान् महावीर ने इन्द्र को स्पष्ट कहा कि मुझे स्वयं कर्मों से युद्ध करना है। तो भी वह एक देवता को उनकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर गए। इस घटना मे क्या कोई औचित्य है ?

उत्तर इसमें दो बाते समझने योग्य है। एक तो कर्मों से युद्ध, दूसरा अज्ञान से युद्ध। महावीर इस बात की तैयारी में नही थे कि कोई भी उनके संघर्ष में सहयोगी बने। चाहे स्वय देवता ही सहयोग के लिए क्यो न कहें, महावीर सहयोग के लिए राजी नही। उनकी दृष्टि यह है कि खोज मे कोई संगी-साथी नहीं हो सकता। अगर खोज में कोई संगी-साथी के लिए रुकेगा तो वह खोज से वंचित रह जाएगा। नितान्त अकेले की खोज है। और जिसे नितान्त अकेले होने का साहस है, वही इस खोज पर जा सकता है। मन तो हमारा चाहता है कि कोई साथ हो, कोई गुरु, कोई मित्र, कोई जानकार, कोई मार्गदर्शक, कोई सहयोगी साथ हो। अकेले होने के लिए हमारा मन नहीं करता है। लेकिन जब तक कोई अकेला नही हो सकता तब तक आत्मिक खोज की दशा में इंच भर भी आगे नही बढ सकता। अकेले होने की शक्ति सबसे कीमती बात है। हम तो दूसरे को साथ लेना चाहेंगे।

महावीर को कोई निमन्त्रण देता है आकर कि मुझे साथ ले लो, मैं सहयोगी बन जाऊँगा तो वह सधन्यवाद निमन्त्रण वापस लौटा देते हैं। देव इन्द्र कहता है आकर कि मैं सहयोगी बनूँ तो वह कहते हैं क्षमा करिए ! यह खोज ऐसी नही है कि इसमें कोई साथी हो सके। यह खोज नितान्त अकेले की है। क्यो ? यह अकेले का इतना आग्रह क्यो ? अकेले के आग्रह में बडी गहरी बाते हैं।

पहली बात यह है कि जब हम दूसरे का साथ मांगते हैं तभी हम कमजोर हो जाते हैं। असल में साथ मांगना ही कमजोरी है। वह हमारा कमजोर चित्त ही है जो कहता है कि साथ चाहिए। और कमजोर चित्त क्या कर पाएगा जो पहले से ही साथ मांगने लगा। तो पहली जरूरत यह है कि हम साथ की कमजोरी छोड दें और पूरी तरह जो अकेला हो जाता है, जिसके चित्त से संग की मांग, सहयोग की इच्छा मिट जाती है सारा जगत् उसे सग देने को उत्सुक हो जाता है।

कहानी का दूसरा मतलब है यह कि खुद देवता भी उत्सुक है उस व्यक्ति को सहारा देने के लिए जो अकेला खडा हो गया। दूसरी ओर जो साथ मांगता है उसे साथ मिलता नही—नाममात्र को लोग साथी हो जाते है। असल में मांग से कोई साथ पा ही नही सकता। लेकिन जो मांगता ही नही साथ, जो मिले हुए साथ को भी इन्कार कर देता है, उसके लिए सारे जगत् की शुभ शक्तियां आतुर हो जाती हैं साथ देने को। कहानी तो काल्पनिक है, पुराण है, गाथा है किन्तु प्रबोध कथा है। वह कहती है कि जब कोई व्यक्ति नितान्त अकेला खडा हो जाता है तो जगत् की सारी शुभ शक्तियां उसको साथ देने को आतुर हो जाती हैं। लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति उनका साथ लेने को भी तैयार हो जाए तो वह भटक जाता है क्योंकि उसकी यह साथ लेने की बात इस तथ्य की खबर है कि मन के किसी अँधेरे कोने में, संग और साथ की इच्छा शेष रह गई है। इसलिए निमंत्रण तो मिला है महावीर को कि हम साथ देते है लेकिन वह कहते है कि हम साथ लेते नही।

तो जब जगत् की सारी शुभ शक्तियां भी साथ देने को तत्पर हो तब भी वैसा आदमी अकेला होने की हिम्मत कायम रखता है। यह बडी उत्प्रेरणा है कि भीतर कही छिपा हो कोई भाव, साथी का, संगी का, समाज का, तो वह प्रकट हो जाए। महावीर उसे भी इन्कार कर देते हैं। इस भांति वे अकेले खडे हो जाते है। और यह इतनी बडी घटना है मनोजगत् में व्यक्ति का पूर्णतया अकेले खडे हो जाना, जिसके मन के किसी भी परत पर किसी तरह के साथ की कोई आकांक्षा नही रह गई। यह व्यक्ति एक अर्थ मे अद्भुत रूप से मुक्त हो गया है क्योंकि जो हमारी साथ की इच्छा हमे बांधती है, गहरे में वही हमारा बन्धन है। समाज को छोडकर भागना बहुत आसान है। लेकिन समाज की इच्छा से मुक्त हो जाना बहुत कठिन है। आदमी अकेला नहीं होना चाहता। कोई भी कारण खोज कर वह किसी के साथ होना चाहता है। अकेले में बहुत

भयभीत होता है कि कोई भी नही है, मैं बिल्कुल अकेला हूँ। हालांकि सच्चाई यह है कि जब सब है तब भी हम अकेले हैं। तब भी कौन साथ है किसका ? आस-पास हो सकते है, निकट हो सकते है, साथ कैसे हो सकते हैं।

हमारी यात्राएँ अकेली हैं लेकिन हम एक साथ का भ्रम पैदा कर लेते है, पति-पत्नी, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य साथ का एक भ्रम पैदा कर लेते हैं। आदमी इसी भ्रम में है कि कोई मेरे साथ है, मैं अकेला नही हूँ। दोनो इस भ्रम को पोस कर बडे सुख में है कि कोई साथ है, कोई डर नही। लेकिन साथ कौन किसके है ? मैं मरूँगा तो बस मैं मरूँगा, मैं जिऊँगा तो बस मैं जिऊँगा और आज भी अपने मन की गहराइयो में वहाँ मैं अकेला हूँ। वहाँ कौन साथ है मेरे ? तो जब तक मैं साथ माँगता रहूँगा तब तक मैं अपने मन की गहराइयो में भी नही उतर सकता। क्योकि साथ हो सकता है परिधि पर, केन्द्र पर साथ नही हो सकता। वहाँ तो मैं कभी अकेला ही जाऊँगा।

उस परिधि पर, जहाँ हमारे शरीर होते हैं, बस वहाँ, उतनी दूर तक हम साथ हो सकते हैं। और जो व्यक्ति साथ के लिए आतुर है, वह परिधि पर ही जिएगा, वह कभी केन्द्र पर नही सरक सकता। क्योकि जैसे-जैसे भीतर गया, वैसे-वैसे साथ खोया और गया। अभी हम इतने लोग यहाँ बैठे हैं। हम सब आँख बंद करके शात हो जाएँ और भीतर जाएँ तो यहाँ एक-एक आदमी ही रह जाता है। सब अकेले रह जाते हैं यहाँ। फिर कोई दूसरा साथ नही रह जाता। दो व्यक्ति एक साथ ध्यान में थोडे ही जा सकते हैं। एक साथ बैठ सकते हैं जाने के लिये, जाएँगे तो अकेले-अकेले। और जैसे भीतर सरके कि वहाँ कोई भी नहीं है, फिर हम अकेले रह गए। जो व्यक्ति साथ के लिए बहुत आतुर है, वह आदमी परिधि के भीतर नही जा सकता। साथ को पूरी तरह कोई इन्कार कर दे, अस्वीकार कर दे तो ही वह अपने भीतर जा सकता है। क्योकि तब परिधि पर होने का कोई रस नही रह जाता। यह थोडी समझने की बात है।

हम अपनी परिधि पर जीते हो है इसलिए कि यहाँ दूसरो के होने की सुविधा है। हम अपने केन्द्र पर इसीलिए नही होते कि वहाँ हमारे अकेले होने का उपाय है, वहाँ कोई दूसरा साथ नही हो सकता। समाज को छोडने का जो मतलब है, वह यह नही है कि एक आदमी जगल में भाग जाए क्योकि हो सकता है कि जगल में वह वृक्षो के साथ दोस्ती कर ले, पक्षियो के साथ दोस्ती कर ले, जानवरो के साथ दोस्ती कर ले, पहाडो के साथ दोस्ती कर ले। यह सवाल नही

कि वह भाग जाए क्योंकि वहाँ भी वह संग खोज लेगा। वहाँ भी वह साथ खोज लेगा। सवाल गहरे में यह है कि कोई व्यक्ति परिधि से भीतर जाने का उपाय करे तो उसे दिखाई पडेगा कि परिधि के सम्बन्धों की जो आकांक्षा है, वह छोड देनी पड़ेगी। इससे यह सवाल नही उठता है कि वह सम्बन्ध तोड देगा। सम्बन्ध रह सकते हैं, लेकिन अब उनकी कोई आकांक्षा उनके भीतर नही रह गई। अब वह परिधि के खेल हैं, और जो लोग परिधि पर जी रहे हैं, वह व्यक्ति उनके लिए परिधि पर खड़ा हुआ भी मालूम पडेगा, लेकिन अपने आप में वह अकेला हो गया है, और अपने भीतर जाना शुरू कर दिया है।

महावीर की जो अन्तर्यात्रा है, उसमें चूंकि कोई संगी साथी नहीं हो सकता इसलिए वह सब संग को अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन जैसे ही कोई सब संग अस्वीकार करता है जीवन की सारी शक्तियाँ, उसका साथी होना चाहती हैं। जो अकेला है, जो असहाय है, जो असुरक्षित है, जीवन उसके लिए सुरक्षा भी बनता है, सहायता भी बनता है। जीवन के आन्तरिक नियम ऐसे है कि अगर पूर्णतया कोई असहाय है तो सारा जीवन उसका सहायक बन जाता है। यह जीवन के भीतरी नियम है। यह नियम वैसे ही है जैसे कि चुम्बक लोहे को खींच लेता है और हम कभी नहीं पूछते कि क्यों खींच लेता है। हम कहते हैं कि यह नियम है। चुम्बक में ऐसी शक्ति है कि वह लोहे को खींच लेता है। यह भी नियम है कि जो व्यक्ति भीतर में पूर्णत असहाय खड़ा हो गया, सारे जगत् की सहायता उसकी तरफ चुम्बक की तरह खिंचने लगती है। क्यों खिंचने लगती है यह सवाल नहीं, यह नियम है। नियम का मतलब यह है कि असहाय होते ही, कोई व्यक्ति बेसहारे नहीं रह जाता, सब सहारे उसके हो जाते हैं। और जब तक कोई अपना सहारा खोज रहा है तब तक वह गहरे अर्थों में असहाय होता है। तो हम ऐसा कुछ करें जिसमें सुरक्षा रहे, असुरक्षित न हो जाएं क्योंकि असुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती क्योंकि वह परमात्मा के लिए मौका ही नहीं दे रहा है। वह खुद का अपना इन्तजाम खुद कर रहा है।

एक कहानी है कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं, दो चार कौर लिए हैं और भागे हैं थाली छोड़ कर। रुक्मिणी ने उनसे पूछा : आपको क्या हो गया है? कहाँ जा रहे हैं? लेकिन उन्होंने सुना नहीं। वह द्वार पर जाकर गए हैं और फिर वहीं से वापस लौट गए हैं। रुक्मिणी भी उठी है, उसने दो चार कदम पीछे

गई है । फिर वह दरवाजे से ठिठक गए, वापस लौट आए । थाली पर बैठ कर चुपचाप भोजन करने लगे । रुक्मिणी ने कहा कि मुझे बडी पहेली में डाल दिया आपने । एक तो आप ऐसे भागे कि मैंने पूछा 'कहाँ जा रहे हैं तो उसका उत्तर देने तक की भी आपको सुविधा न थी । और फिर आप ऐसे दरवाजे से लौट आए कि जैसे कही भी न जाना था । हुआ क्या ? तो कृष्ण ने कहा कि मुझे प्रेम करने वाला, मेरा एक प्यारा एक रास्ते से गुजर रहा है । लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं और वह मंजीरे बजाए चला जा रहा है, मेरा ही गीत गाए चला जा रहा है । लोग पत्थर फेंक रहे हैं । उसने उत्तर भी नही दिया है उनका । मन में भी सिर्फ देख रहा है कि वे पत्थर फेक रहे हैं । खून की धारा वह रही है । तो मेरे जाने की जरूरत पड गई थी । इतने बेसहारे के लिए अगर मैं न जाऊँ तो फिर मेरा अर्थ क्या है ? तो रुक्मिणी ने पूछा कि फिर लौट क्यो आए ? उन्होने कहा कि जब तक मैं दरवाजे पर गया, वह बेसहारा नही रह गया था । उसने मंजीरें नीचे फेंक दी और पत्थर हाथ में उठा लिया । उसने अपना इन्तजाम खुद ही कर लिया । अब मेरी कोई जरूरत नही है । उसने मेरे लिए मौका नही छोडा है ।)

जब व्यक्ति अपना इन्तजाम स्वय कर लेता है तो जीवन की शक्तियो के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता । और हम सब अपना इन्तजाम स्वय कर लेते हैं और इसीलिए वंचित रह जाते हैं । सन्यासी का मतलब ही सिर्फ इतना है कि जो अपने लिए इन्तजाम नही करता, छोड देता है सब इन्तजाम और असुरक्षा में खडा हो जाता है । बडी कठिन बात है मन को इस बात के लिए राजी करना कि 'असुरक्षा में खडे हो जाओ, मत करो इन्तजाम ।'

मलूक ने कहा है कि पछी काम नही करते, अजगर चाकरी नही करता, सबको देने वाले हैं राम । समझी नही गई बात । लोगो ने समझा कि बडे आलस्य की बात सिखाई जा रही है । इसका मतलब हुआ कि कोई कुछ न करे और जैसे पक्षी और अजगर पडे है, ऐसा पडा रह जाए । तब तो सब खत्म हो जाए । लेकिन मलूक कुछ आलस्य की बात नही कर रहा है । वह कह रहा है कि करो या न करो, भीतर से जैसा पछी असुरक्षित है, कि कल का कोई पता नही, साझ का कोई भरोसा नही, जैसे अजगर असुरक्षित पडा है, कोई इन्तजाम नही, कोई सुरक्षा नहीं—ऐसा भी चित्त हो सकता है, और जब ऐसा चित्त हो जाता है तो फिर राम ही हो जाता है सहारा, फिर कोई सहारा नहीं

खोजना पड़ता। यह आलस्य की शिक्षा नहीं है, बहुत गहरे में असुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है।

ऐसी असुरक्षा में महावीर असंग खड़े हो गए हैं। न कोई संगी है, न कोई साथी है क्योंकि वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है। एक स्त्री अकेली होने में डरती है। जगत् भय देने वाला है। एक पति चाहिए जो उसकी सुरक्षा बन जाए। पति भी शायद असुरक्षित है क्योंकि स्त्रियाँ उसको आकर्षित करेंगी, स्त्रियाँ उसे खींचेंगी और तब बड़ी असुरक्षा पैदा हो सकती है। इसलिए एक स्त्री चाहिए जो उसे दूसरी स्त्रियों के खिंचाव से बचाने के लिए सुरक्षा बन जाए और जो दूसरे खिंचावों से रोक सके, और कोई खतरा, कोई उपद्रव जिन्दगी में न हो। जिन्दगी व्यवस्थित हो जाए। जब अहंकार इंतजाम करता है तब परमात्मा को इंतजाम छोड़ देना पड़ता है। जब अहंकार छोड़ देता है तो परमात्मा के हाथ व्यवस्था चली जाती है।

महावीर इसमें किसी तरह के सहयोग, संग, साथ, सुरक्षा लेने को तैयार नहीं है। लेकिन फिर बिल्कुल अकेले-अकेले ही खोजेंगे, भटकेंगे, उसमें कुछ हर्ज नहीं है क्योंकि भटकना भी खोज में अनिवार्य हिस्सा है और भटकने में ही वह प्राण, वह चेतना जागती है जो पहुँचाएगी। तो भटकने का कोई भय नहीं है। इसलिए वे सब तरह के सहारे को इन्कार करते हैं। लेकिन ध्यान रहे कि ऐसे व्यक्ति को सब तरह के सहारे स्वयं आकर उपलब्ध होते हैं। जो भागते हैं चीजों के पीछे उन्हीं को वे उपलब्ध नहीं कर पाते और जो ठहर जाते हैं या विपरीत चल पड़ते हैं, उसके पीछे चीजें चलने लगती हैं।

जीवन की गहराइयों में कहीं कोई बहुत शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उसमें एक नियम यह भी है कि जिसके पीछे आप भागेंगे, वह आपसे भागता चला जाएगा और जिसका मोह आप छोड़ेंगे और अपनी राह चल पड़ेंगे आप अचानक पाएँगे कि वह आपके पीछे चला आया। धन को जो छोड़ते हैं उनके पास धन चला आता है। मान को जो छोड़ते हैं उनके पास मान की वर्षा होने लगती है। सुरक्षा जो छोड़ते हैं, उन्हें सुरक्षा उपलब्ध हो जाती है। सब जो छोड़ देते हैं, शायद उन्हें सब उपलब्ध हो जाता है। एक घर वे छोड़ते हैं, शायद सब घर उनके हो जाते हैं। जो एक प्रेमी को फिर छोड़ देते हैं, शायद सबका प्रेम उनका हो जाता है। और महावीर इसे बहुत देख रहे हैं। इसलिए वह कहीं बीच में कोई पड़ाव नहीं डालना चाहते और इन्द्र के निमन्त्रण को अस्वीकार करने में उनकी यही भावना प्रकट हुई है।

प्रश्न यह कथा है या फिर वास्तव मे बातचीत हुई है इन्द्र और महावीर मे ?

उत्तर नही, यह बिल्कुल कथा है ।

प्रश्न तो फिर इसका उल्लेख क्यो आया है कि महावीर ने इन्द्र से बातचीत की ।

उत्तर । हम कहानियाँ ही समझ पाते हैं और वह भी तब जब वे ऐतिहासिक है, ऐसा कहा जाए । अगर कोई कहानी ऐतिहासिक नही तो हम कहेंगे कि बस यह कहानी है । फिर हम उसे समझ ही नही पाएँगे ।

मैं एक शिविर में एक पहाड पर था । एक दिन की बात है । पर्वत के एक शिखिर पर सूर्यास्त देखने की इच्छा हुई । बडी धूप थी । सूर्य ढल रहा था । दो बहनें मेरे साथ थी । एक बेंच पर उन्होने बिठा दिया मुझे । फिर उन्हें चिंता हुई कि बहुत धूप में वे मुझे लाई हैं । दोनो मेरे सामने आकर खडी हो गईं और कहा कि हम आपके लिए छाया बनी जाती हैं । मैंने कहा ठीक, मगर एक दिन यह बात ऐतिहासिक तथ्य बन जाएगी कि मैं धूप में था और दो बहनें मेरे लिए छतरी बन गईं । वे मेरे लिए छाया बन गईं । उन्होंने धूप झेली और मैं छाया में बैठा रहा । लेकिन कभी यह उपद्रव की बात हो सकती है कि दो स्त्रियाँ छतरी बन गई थी ।

तो हम काव्य को नही समझ पाते । बडी जडता से हम चीजों को पकडते हैं । जो भी अद्भुत व्यक्ति पैदा होता है वह इतना अद्भुत होता है कि उसके आस-पास काव्य बन जाता है, कथाएँ बन जाती हैं । कथाएँ सच हैं, ऐसा नही है । व्यक्ति ऐसा था कि उसके आस-पास कथाएँ पैदा होंगी । उसके व्यक्तित्व से ढेर काव्य पैदा होंगे । लेकिन बहुत जल्दी काव्य नही रह जाएगा और जब हम उसे जोर से पकड लेंगे तब कविता मर जाएगी और तथ्य निकालने की चेष्टा शुरू हो जाएगी । वही जाकर जीवन झूठे हो जाते हैं । महावीर का, बुद्ध का, मुहम्मद का, जीसस का—सारा जीवन झूठा हो गया । झूठा होने का कुल कारण इतना है कि जो काव्य था, जो कविता थी और बडे प्रेम में कही गई थी वह मर गई । और बहुत बार ऐसा होता है ।

इतनी अनूठी हैं जीवन की घटनाएँ कि उन्हें शायद तथ्यों में कहा ही नही जा सकता । उनके साथ हमें काव्य जोडना ही पडता है । और जब हम काव्य जोडते हैं तभी कठिनाई हो जाती है । जैसा मैंने कहा अभी । मुहम्मद के संबंध

में कहानी है कि जहाँ भी मुहम्मद जाते, एक बदली सदा उनके ऊपर छाया किए रहती। अब जिन लोगों ने भी मुहम्मद को जाना है, जो उनके पास जिए होंगे, उनको लगा होगा कि ऐसे आदमी पर सूरज भी धूप करे, यह ठीक नही। ऐसे आदमी पर बदली भी ख्याल रखे यह बिल्कुल ठीक है। यह बडा गहरा भाव है जो कवि ने, देखने वाले ने, प्रेम करने वाले ने बदली पर फैला दिया है जो उनके मन में था। कविता तो ठीक थी लेकिन फिर यह तथ्य की तरह हो गई।

तो मैं मानता हूँ कि सभी महापुरुषों के, सभी उन अद्वितीय व्यक्तियो के, आस-पास हजार तरह के काव्य को जन्म मिलता है। उस काव्य को बाद के लोग इतिहास समझ लेते हैं और तब उन व्यक्तियों का जीवन ही झूठा हो जाता है। और अगर हम सिर्फ तथ्य लिखें तो तथ्य रूखे मालूम पडते हैं। उन पर काव्य चढाना ही पडता है, नही तो वह बडे रूखे-सूखे हो जाते हैं। जैसे समझें हम कि एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता हो तो प्रेम में वह ऐसी बातें कहे जो तथ्य नहीं है लेकिन फिर भी सत्य हैं। और जरूरी नही कि कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य न हो। नही तो काव्य खत्म ही हो जाएगा, फिर काव्य का कोई सत्य ही नही रह जाएगा। और कुछ लोग ऐसे हैं, जैसे प्लेटो। वह कहता है कि कवि नितान्त झूठे हैं और दुनिया से जब तक कविता नही मिटती तब तक झूठ नही मिटेगा। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि कविता नितान्त झूठी है। लेकिन उनके विपरीत लोग भी हैं और उनकी पकड़ ज्यादा गहरी है। वे कहते हैं अगर कविता ही झूठी है तो फिर जीवन में कोई सच ही नही रह जाता, फिर जीवन सब व्यर्थ है। अब एक युवक एक युवती को प्रेम करता हो तो वह कहता है तेरा चेहरा चाँद की तरह है। अब यह बात बिल्कुल अतथ्य है, इससे झूठी कोई बात हो सकती है क्या? किसी स्त्री का चेहरा चांद की तरह कैसे हो सकता है? अगर आइंस्टीन से जाकर कहो कि हम ऐसा मानते हैं कि एक स्त्री का चेहरा चाँद की तरह है तो वह कहेगा कि तुम पागल हो गए हो। चाँद का इतना वजन है कि एक स्त्री क्या, पृथ्वी की सारी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर उस वजन को नही झेल पाएँगी। तो स्त्री का चेहरा चांद-सा कैसे हो सकता है। चाँद पर बडे खाई-खड्ड हैं। कहाँ का बेहूदा ख्याल तुम्हारे दिमाग में आया है कि तुम एक स्त्री को चांद-सा बता रहे हो। लेकिन जिसने कहा है, वह फिर भी कहेगा कि नही! चेहरा तो चाँद ही है। असल में वह कुछ और ही कह रहा है। वह कह रहा है कि चांद को देखकर जैसे मन में छाया छू जाती है, चांद की धार छूट जाती है, किसी का चेहरा देखकर भी वैसा हो सकता है।

इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कसौटी पर कसने चले गए तो तुम गल्ती में पड जाओगे। इसलिए मैं इन सारी बातो को रूपक कथाएँ कहता हूँ जिनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं जो कि शायद और माध्यम से कही नही जा सकती।

जीसस से किसी ने पूछा कि आप कहानियाँ क्यों कहते हैं, सीधा क्यों नही कह देते। तो जीसस ने कहा कि सीधी बात समझने वाले लोग अभी पैदा कहाँ हुए हैं? तो कहानी कहनी पडती है। फिर जीसस ने कहा कि कहानी कहने में एक और फायदा है। जो नही समझ पाते उनका नुकसान नही होता क्योंकि सिर्फ एक कहानी उन्होने सुनी है। लेकिन जो समझ पाते हैं वे कहानी में से निकाल लेते हैं जो निकालना था। और कभी-कभी सीधे सत्य नुकसान भी पहुँचा सकते हैं! अगर न समझ में आएँ तो कठिनाई में डाल सकते हैं। क्योंकि उनको कहानी कह कर आप टाल नही सकते। तो वे आपकी जिन्दगी पर भारी भी हो सकते हैं। कहानी है तो आप टाल भी देते हैं। लेकिन जो देख सकता है वह खोज लेता है। कहानियाँ सत्य को कहने का एक ढग है कि सत्य रूखा भी न रह जाए, मृत भी न हो जाए, जीवन्त हो जाए। लेकिन अगर नासमझ आदमी के हाथ में कहानियाँ पड जाएँ तो वह उनको सत्य बना लेता है। और सत्य बना कर सारे व्यक्तित्व को झूठ कर देता है। तो मैं उनको रूपक कथाएँ, बोध कथाएँ ही कहता हूँ। उनमें बडा बोध छिपा है लेकिन वे ऐतिहासिक तथ्य नही हैं।

प्रश्न : महावीर ने किसी दूसरे का सहारा लेने से इन्कार कर दिया। सही बात है। लेकिन साथ ही साथ प्रश्न उठता है कि सहारा न लेना जितना महत्त्वपूर्ण है सहारा न देना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति और उसके बाद फिर श्रावक, और श्रमण यह सब है—यह दूसरे को सहारा देने वाली बातें हैं। तो इस पहलू पर क्यों नहीं विचार किया गया कि मैं जब सहारा नहीं लेता हूं तो मैं सहारा देने वाला भी कौन हूँ ?

उत्तर : इसे भी समझना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। और साधारणतः ऐसा ही दिखाई पड़ेगा कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नही ले रहा है तो बिल्कुल ठीक बात यह है कि वह किसी को सहारा भी न दे। यह बिल्कुल तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा लेकिन यह तर्क एकदम भ्रान्त है भ्रांति कहाँ है यह समझ लेना चाहिए।

जब हम कहते हैं कि सहारा नही लेना है तो इसका कुल मतलब इतना है कि भीतर जाने में मैं किसी को साथ नहीं ले सकता हूँ। भीतर मुझे अकेला ही जाना होगा। अकेले ही जाने का एकमात्र मार्ग है वहाँ पहुँचने का। इसलिए मैं सब सहारे इन्कार करता हूँ। लेकिन अगर यह बात मैं किसी को कहने जाऊँ कि सहारा लोगे तो भटक जाओगे तो एक अर्थ में मैं उसको सहारा दे रहा हूँ और एक अर्थ में उसे सहारे से बचा रहा हूँ। यह दोनो बातें है। महावीर जो सहारा दे रहे हैं वह इसी तरह का सहारा है। वह लोगों को कह रहे है कि मैं अकेला भीतर गया। जब तक मैंने सहारा पकडा तब तक मैं भीतर नही गया, तुम भी तो कही सहारा नही पकड रहे हो? अगर सहारा पकड रहे हो तो भीतर नही जा सकोगे। बेसहारे हो जाओ। मैं जो कहता हूँ लोगो से कि किसी विधि से तुम न जा सकोगे यह केवल मैं खबर कर रहा हूँ कि विधि के चक्कर में मत पडना, नही तो भटक जाओगे। मैं भटका हूँ। यह खबर मैं तुम्हें दे देता हूँ। यह मुझे हक है कि मैं किसी को इतनी बात कह दूँ कि विधि से कभी कोई नही पहुँचा है, इसलिए तुम विधि मत पकडना। और मेरी भी बात मत पकडना। इसकी भी तुम खोज-बीन करना क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकडा तो यह तुम्हारी विधि हो जाएगी।

यूनान के नीचे सिसली एक छोटा सा द्वीप है। वहाँ सूफिस्ट विचारक हुए जो बडे अद्भुत थे एक अर्थ में और एक अर्थ में बिल्कुल फिजूल थे। अद्भुत इस अर्थ में थे कि जितना तर्क उन्होने किया किसी ने भी नही किया और फिजूल इस अर्थ में थे कि उन्होंने सिर्फ तर्क किया और कुछ भी नही किया। तो वे प्रत्येक चीज को खडित कर सकते थे और प्रत्येक चीज का समर्थन कर सकते थे। क्योकि उनका कहना था कि कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो एक पहलू से खंडित न की जा सके और दूसरे पहलू से समर्थित न की जा सके। इसलिए वे कहते थे कि यह सवाल ही नही है कि सत्य क्या है। सवाल यह है कि तुम्हारा दिल क्या है, तुम्हारो मर्जी क्या है? तो वे कहते थे कि हम पैसे पर भी सत्य को सिद्ध करते है। उनको कोई नौकरी पर रख ले तो वह जो कहेगा वे उसको सत्य सिद्ध कर देंगे और कल उससे विपरीत आदमी उनको नौकरी पर रख ले तो वह उसकी बात सिद्ध कर देंगे।

उनका कहना था कि कोई चीज सिद्ध ही नहीं है। जिन्दगी इतनी जटिल है कि उसमे सब पहलू मौजूद हैं और तर्क देने वाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है और शेप पहलुओं

को पीछे हटा देता है और कुछ भी नही करता। लेकिन अगर हमें पूरी जिन्दगी देखनी हो तो हमें ख्याल रखना होगा कि यह वात सच है कि किसी का सहारा कभी मत लेना क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। और यह वात तो फिर उसके साथ ही जुड गई कि मैं आपको सहारा दे रहा हूँ यह वात कह कर। अव आप क्या करेंगे ?

सूफिस्ट एक उदाहरण देते थे कि सिसली से एक आदमी आया और उसने ऐथन्स में आकर कहा कि सिसली में सव लोग झूठ वोलने वाले हैं। तो एक आदमी ने खडे होकर उससे पूछा कि तुम कहाँ के रहने वाले हो। उसने कहा कि मैं सिसली का रहने वाला हूँ। तो उसने कहा : हम वडी मुश्किल में पड गए। तुम कहते हो सिसली मे सव झूठ वोलने वाले हैं। तुम सिसली के रहने वाले हो। तुम एक झूठ बोलने वाले आदमी हो। अव हम तुम्हारी वात को क्या कहें ? अगर हम यह वात मान लें कि सिसली में कम से कम एक आदमी है जो सच वोलता है तो भी तुम्हारी वात गलत हो जाती है कि सिसली में सव झूठ वोलने वाले लोग हैं। अगर हम तुम्हें झूठ मानते हैं तो मुश्किल हो जाती है। तो एक आदमी ने खडे होकर कहा कि अव हम करें क्या ? अव उस आदमी को शायद कुछ भी नही सूझा कि अव वह क्या करे, क्या कहे ?

जिन्दगी इतनी जटिल है कि दोनो वातें सही हो सकती हैं। सिसली में सव झूठ वोलने वाले लोग भी हो सकते हैं। इस आदमी का वक्तव्य भी सही हो सकता है। क्योकि सव लोग सव समय झूठ न वोलते हों। वस मौके पर सिसली का यह आदमी झूठ न वोल रहा हो। जिन्दगी इतनी जटिल है कि हम जव कभी उसे एक कोने से पकड कर आग्रह करने लगते हैं तभी हमारा आग्रह झूठा हो जाता है।

परसो कोई पूछ रहा था अनेकान्त के लिए। तो इस सन्दर्भ में यह समझ लेना जरूरी है। महावीर कहते हैं कि जीवन के एक पहलू को पकडकर कोई दावा करे तो यह है एकान्त। एकान्तवादी वह है जिसने जीवन का एक ही कोना देखा है, एक ही कोने को देखकर पूरी जिन्दगी के निष्कर्ष निकाले हैं। इसने सव कोने अभी नही देखे हैं। और अगर यह सव कोने देख लेगा तो यह दावा छोड देगा। क्योंकि इसे ऐसे कोने मिलेंगे जो ठीक इससे विपरीत हैं और इतने ही सही हैं जितना यह सही है। और तव यह दावा नहीं करेगा। महावीर वडे अद्‌भुत व्यक्ति हैं। वह कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी गलत है क्योकि

वह भी एकान्त है : क्योंकि सत्य के अनेक पहलू हैं और सत्य इतनी बडी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही हो सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकान्तवादी हूँ यानी सब एकान्तों को स्वीकार करता हूँ। अगर एक आदमी आकर महावीर को पूछता है . आत्मा शाश्वत है कि अशाश्वत ? तो महावीर कहेंगे शाश्वत भी, अशाश्वत भी। वह आदमी कहेगा कि ये दोनो कैसे हो सकते हैं। तो महावीर कहेंगे ' किस कोने में खडे होकर तुम देखते हो। अगर तुम शरीर को ही आत्मा समझते हो जैसा कि नास्तिक समझता है तो अशाश्वत है। अगर तुम आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हो जैसा आत्मवादी समझता है तो आत्मा शाश्वत है और मैं कोई एक वक्तव्य न दूँगा। क्योकि एक वक्तव्य एकान्त होगा। अनेकान्त का अर्थ है जीवन के सब पहलुओं की एक साथ स्वीकृति।

हम सब कहानी जानते हैं कि एक हाथी के पास पाँच अन्धे खडे हो गए। और जिसने हाथी का पैर छुआ उसने कहा : हाथी खम्भे की तरह है, केले के वृक्ष की तरह है। जिसने कान छुए उसने कहा कि हाथी गेहूँ साफ करने वाले सूप की तरह है और उन सबने अपने-अपने दावे किए हैं क्योंकि हाथी न तो खम्भे की तरह है, न सूप की तरह है। और हाथी में कुछ है जो सूप की तरह है और कुछ है जो खम्भे की तरह है। महावीर कहते हैं कि अगर कोई आदमी दिया जलाकर वहाँ पहुँच जाए और उन पाँच अन्धो को विवाद करते देखे तो वह आदमी जिसने दिया जला लिया है वह क्या करे, वह किसका साथ दे। वह प्रत्येक अन्धे से कहेगा कि तुम ठीक कहते हो लेकिन पूरा ठीक नहीं कहते हो। और वह प्रत्येक अन्धे से कहेगा कि तुम जिसे विरोधी समझ रहे हो वह तुम्हारा विरोधी नही है। वह भी हाथी के एक अंग के बाबत बात कर रहा है। पूरा हाथी—तुम जो कहते हो उन सब का जोड और उससे ज्यादा भी है। अगर हर पाँचों अन्धो के अनुभवो को भी हम जोड लें तो भी असली हाथी नही बनेगा। असली हाथी उन सबके अनुभव से ज्यादा भी है क्योकि कुछ तो ऐसा है जो कि हाथी ही अनुभव कर सकता है कि वह क्या है, जिसको न अन्धा अनुभव कर सकता है, न दिया जलाने वाला अनुभव कर सकता है। यानी पूरी तरह देख लो हाथी को तो वह भी हाथी नही है। हाथी का एक अपना अनुभव है। और हो सकता है कि हाथी का वह अनुभव अगर हाथी कभी कह सके तो न पाँच अन्धो से मेल खाए और न दिए जलाने वाले से मेल खाए।

महावीर कहते हैं कि अनुभव के अनन्त कोण हैं और प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। बस भूल यहाँ हो जाती है कि वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है। वह कहता है कि जो मैंने जाना, वही ठीक है। और हम जल्दी करते हैं इस बात की कि अगर हमने एक ही कोना जान लिया और पूरी तरह से जान लिया तो हम सोचते हैं कि बस जानना पूरा हो गया।

यहाँ समझ लें कि एक बिजली का बल्ब जला हुआ है। उस बिजली के बल्ब को बुझाना हो तो एक आदमी डंडे से बल्ब को चोट कर दे तो बल्ब बुझ जाएगा। दूसरा आदमी कैंची लाए और वायर को काट दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। तीसरा आदमी बटन दबा दे तो भी बल्ब बुझ जाएगा। जिस आदमी ने वायर काटा वह कह सकता है कि बिजली वायर थी। जिस आदमी ने बल्ब फोड़ा वह आदमी कह सकता है कि बिजली बल्ब थी। तीसरा आदमी कह सकता है कि बटन बिजली थी और वह भी हो सकता है कि बटन भी न दबे, बल्ब भी न फूटे, तार भी कायम रहे और बिजली भी खो जाए। किसी ने यह भी देखा हो तो वह कहेगा कि इस सबमें कोई बिजली नहीं है। ये चारों आदमी अपनी-अपनी दृष्टि से बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं और प्रत्येक की दृष्टि ऐसी लगती है कि दूसरे की दृष्टि के विरोध में है। लेकिन महावीर कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है और सब एक दूसरे के परिपूरक हैं और सब एक ही सत्य के कोने हैं। सिर्फ हमारी सीमित दृष्टि के कारण ही यह सब विरोधी दिखाई पड रहा है। अगर हम पूरे को देख सकें तो वह भी एक सहयोगी दृष्टि है।

महावीर कहते हैं कि हम सब दृष्टियाँ जोड लें तो भी सत्य पूरा नहीं हो जाता क्योंकि और दृष्टियाँ भी हो सकती हैं जो हमारे ख्याल में न हो। इसलिए महावीर अनेक की सम्भावना रखते हैं, एक का आग्रह नहीं करते। और उसी युग में उनके कम से कम प्रभाव पड़ने का कारण यही था। बुद्ध की एक दृष्टि है। उनकी दृष्टि पक्की है। वह अपनी दृष्टि पर सख्ती से खड़े हैं। उस दृष्टि में वह इंच मात्र यहाँ-वहाँ नहीं हिलते। और जब कोई एक आदमी सख्ती से एक दृष्टि पर बात करता है तो लगता है कि वह आदमी कुछ जानता है, ढीला ढाला नहीं है दिमाग उसका, हर किसी बात में 'हाँ' नहीं कह देता। बहुत साफ दृष्टि है उसकी। अब यह बड़े मजे की बात है कि साफ दृष्टिवाला हम जिसको कहते हैं वह एकान्तवादी होता है। क्योंकि वह बिल्कुल एक बात पक्की कह देता है कि सूप जैसा है हाथी, इसमें रत्ती भर गुंजाइश नहीं रह जाती शक की। और जो इससे अन्यथा कहता है, वह पागल है, नासमझ है, अज्ञानी

है, झूठ है। वह साफ कह देता है और वह बिल्कुल पक्का है। उसने हाथी को सूप की तरह जाना है और बात खत्म हो गई है। लेकिन एक आदमी है जो कहता है : हाथी सूप की तरह भी है, हाथी सूप की तरह नहीं भी है, हाथी खम्भे की तरह भी है, हाथी खम्भे की तरह नहीं भी है। जो सब दृष्टियों में कहता है कि ऐसा भी है, ऐसा नहीं भी है।

मेरे पिता हैं। मुझे निरन्तर बचपन में उनसे बड़ी परेशानी भी रही। मेरी समझ के ही बाहर था यह। मेरे घर में सब तरह के लोग थे। नास्तिक भी थे घर में। कोई कम्युनिस्ट भी था, कोई सोशलिस्ट भी था, कोई कांग्रेसी भी था, बड़ा परिवार भी था। उसमें सब तरह के लोग थे। घर पूरी की पूरी एक तरह की जमात थी जिसमें अपनी-अपनी दृष्टि पर पक्के लोग थे, और जिसको ठीक समझते थे ठीक ही समझते थे, जिसको गलत समझते थे, गलत ही समझते थे। इसमें कोई समझौते का उपाय भी न था। और मैं बहुत हैरान था कि अगर मेरे पिता को जाकर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है तो वह कहते कि ठीक कहते हैं। अगर कोई कहे कि ईश्वर है वह कहते कि ठीक कहते हैं। यह मैंने बहुत बार सुना उनके मुख से। सब तरह की बात में स्वीकृति देखी। मैंने उनसे पूछा कि यह बात क्या है ? आप सब बातों को स्वीकार कर लेते हैं यह तो बड़ी मुश्किल बात है। सब ठीक कैसे हो सकती हैं। उन्होंने कहा कि सत्य बहुत बड़ा है, इतना बड़ा कि वह सबको समा लेता है। उसमें आस्तिक भी समा जाता है, नास्तिक भी। और सत्य अगर इतना छोटा है कि उसमें सिर्फ आस्तिक समाता है तो ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं।

असत्य बहुत छोटा है, अत्यन्त संकीर्ण है। और सत्य संकीर्ण नहीं हो सकता है। सत्य होगा विराट्। उसमें सब समा जाएँगे। इसलिए सबके लिए 'हाँ' कहा जा सकता है। और कोई चाहे तो सब के लिए 'न' भी कह सकता है। 'न' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे को नहीं घेरेगा। और 'हाँ' इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे सत्य का हिस्सा होगा। तो इसलिए जो जानता है वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा कि वह क्या कहे, 'हाँ' कहे या 'न' कहे या दोनों कहे, या चुप रह जाए। तो महावीर साफ नहीं मालूम पड़ते। हर किसी बात में 'हाँ' कहते हैं, हर किसी बात में 'न' कहते हैं। इसका मतलब है कि या तो इन्हें पता नहीं या पता है तो साफ-साफ पता नहीं।

२०

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः दिनांक २९ सितम्बर, १९६९

प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय विचारकों मे बुद्ध या कनफ्युसियस का नाम लिया जाता है, महावीर का नाम नहीं लिया जाता है। करोडो लोग मिल जाएँगे पृथ्वी पर जिन्होंने महावीर के नाम को कभी नहीं सुना। इतना अद्भुत व्यक्ति और इतने कम लोगों तक उसकी खबर पहुंचे तो इसका क्या कारण हो सकता है ?

उत्तर ठीक पूछा आपने। इसका कारण है। महावीर वादी नही है। और जो वादी नहीं है उसकी बात हमारी समझ मे आनी बहुत मुश्किल है। जो वादी नही है वह सुबह कुछ, साँझ कुछ, दोपहर कुछ कहेगा। उसका हर वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का विरोधी मालूम होगा। और हम चाहते हैं सुसंगति कि वह एक बार जो बात कहे फिर वही कहता रहे। टालस्टाय ने कहा है कि जब मैं जवान था तो मैं सोचता था कि वही असली विचारक है जो सुसंगत चीज कहता है। जब एक चीज कहता है तो उसके विरोध में कभी दूसरी बात नही कहता है। लेकिन अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूँ तो मैं जानता हूँ कि सुसगति है, उसने विचार ही नही किया क्योंकि जिन्दगी सारे विरोध से भरी है। जो विचार करेगा उसके विचार में भी विरोध आ जाएँगे। वह ऐसा सत्य नही कह सकता जो एकागी, पूर्ण और दावेदार हो। उसके प्रत्येक सत्य की घोषणा में भी झिझक होगी। लेकिन झिझक उसके अज्ञान की सूचक बन जाएगी जबकि झिझक उसके ज्ञान की सूचक है।

अज्ञानी जितनी तीव्रता से दावा करता है उतना ज्ञानी के लिए करना मुश्किल है। असल में अज्ञानी सदा दावा करता है, दावा कर सकता है क्योंकि समझ इतनी कम है, देखा इतना कम है, जाना इतना कम है, पहचाना इतना

कम है कि उस कम में वह व्यवस्था वना सकता है। लेकिन जिसने सारा जाना है और जिन्दगी के सब रूप देखे हैं उसे व्यवस्था बनाना मुश्किल है।

महावीर के अनेकान्त का यही अर्थ है कि कोई दृष्टि पूरी नही है, कोई दृष्टि विरोधी नही है; सब दृष्टियाँ सहयोगी हैं और सब दृष्टियाँ किसी बडे सत्य में समाहित हो जाती हैं। जो विराट् सत्य को जानता है, न वह किसी के पक्ष में होगा, न वह किसी के विपक्ष में होगा। ऐसा व्यक्ति निष्पक्ष हो सकता है। यह बडे मजे की बात है कि सिर्फ वही व्यक्ति, अनेकान्त की जिसकी दृष्टि हो, निष्पक्ष हो सकता है और इसलिए मैं कहता हूँ कि जैनी अनेकान्त की दृष्टि वाले लोग नहीं हैं क्योंकि वे पक्ष पर हैं, उनका पक्ष है। वे कहते हैं कि हम महावीर के पक्ष में है। और महावीर का कोई पक्ष नही हो सकता क्योंकि अनेकान्त जिसकी दृष्टि है, उसका पक्ष कहाँ? सब पक्ष उसके हैं, कोई पक्ष उसका नही। सब पक्षो से अनुस्यूत सत्य उसका है लेकिन किसी पक्ष का दावा नही। तो महावीर का पक्ष कैसे हो सकता है?

महावीर को दोहरा नुकसान पहुँचा। पहला नुकसान तो यह पहुँचा कि बहुजन तक उनकी बात नही पहुँच सकी। दूसरा नुकसान यह पहुँचा कि जिन तक उनकी बात पहुँची, वे पक्षधर हो गए। कुछ मित्र न बन पाए और जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए। यह इतनी दुर्घटनापूर्ण बात है कि एक तो मित्र न बन पाए बहुत क्योंकि बात ऐसी थी कि इतने मित्र खोजने मुश्किल थे। दूसरे, जो मित्र बने वे शत्रु सिद्ध हुए क्योंकि वे पक्षधर हो गए। और महावीर पक्षधरता के विपरीत हैं।

अब यह बडे मजे की बात है कि अनेकान्त को भी उनके अनुयायियों ने अनेकान्तवाद बना दिया। अनेकान्त का मतलब है 'वाद' का विरोध क्योंकि 'वाद' हमेशा पक्ष होगा, दृष्टि होगी, नय होगा, एक दावा होगा। वाद का मतलब ही होता है दावा। अनेकान्त को वाद के साथ जोड देना, फिर दावा शुरू हो गया। यानी फिर 'अनेकान्त' के पीछे चलने वाले लोगों ने एक नया दावा बनाया जबकि वह दावे का विरोधी था।

इसी ख्याल में यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार दो हजार वर्ष बाद पुन प्रभावी हो सकें, उनका विचार बहुत से लोगों के काम आ सके। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ रही है एक बहुत अद्भुत घटना घट रही है। वह यह है कि 'वादी' चित्त नष्ट हो रहा है, पक्षधर बेमानी होता

जा रहा है। जितनी बुद्धिमत्ता और विवेक बढ़ रहा है उतना आदमी निष्पक्ष होता चला जा रहा है। सम्प्रदाय जाएगा, वाद जाएगा। आज नही कल, ज्यादा दिन टिकने वाला नही है। जिस दिन 'वाद' चला जाएगा उस दिन हो सकता है कि आज जो नाम बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पडते हैं, कम महत्त्वपूर्ण हो जाएँ और जो नाम आज तक एकदम ही गैर महत्त्व का मालूम पड रहा है वह एकदम पुन महत्त्व स्थापित कर ले। लेकिन जैन अगर महावीर के पीछे इसी तरह पडे रहे तो महावीर के विचार की क्रान्ति सब लोगों तक कभी नही पहुँच सकती।

प्रश्न ' आन्तरिक जीवन मे असुरक्षा का भाव कठिन है लेकिन व्यावहारिक जीवन में असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ किया जा सकता है ? यानी यह जो बाह्य जीवन है इसमें असुरक्षा का भाव कैसे प्रारम्भ कर सकते हैं ?

उत्तर असल में सवाल बाहर और भीतर का नही है। सवाल इस सत्य को जानने का है कि हम क्या असुरक्षित हैं या सुरक्षित हैं, बाहर या भीतर या कही भी। सम्बन्ध सुरक्षित हैं ? नही। कल जो अपना था, वह आज भी अपना होगा ? नही। जो आज अपना है, वह कल सुबह अपना होगा ? नही। सम्मान सुरक्षित है ? नहीं। कल जिसके पीछे भीड थी, आज वह आदमी जिन्दा है या मर गया इसका भी कोई पता नही चल रहा। कौन सी चीज सुरक्षित है ? कोई भी नही। तो असुरक्षा इस सत्य का बोध है कि **जीवन असुरक्षित है।** न जन्म का भरोसा, न जीवन का भरोसा, न शरीर का भरोसा, किसी भी चीज का कोई भरोसा नही है। इस सत्य का बोध और इस सत्य के बोध के साथ जीना, भीतर और बाहर दोनो तलो पर।

मैं यह नही कहता हूँ कि एक आदमी मकान न बनाए। लेकिन मैं यह कहता हूँ कि मकान बनाते वक्त भी जान ले कि असुरक्षा खत्म नही होती। असुरक्षा अपनी जगह खडी है। मकान रहे तो भी, मकान न रहे तो भी। ज्यादा से ज्यादा जो फर्क पडता है, वह इतना कि जिसके पास मकान नही है, उसे असुरक्षा प्रतीत होती है, और जिसके पास मकान है, उसे असुरक्षा प्रतीत नही होती लेकिन वह खडी अपनी जगह है, उससे कोई फर्क नही पडता है।

गरीब भी असुरक्षित है, अमीर भी। लेकिन अमीर को **सुरक्षा का भ्रम** पैदा होता है। यह मैं नही कहता हूँ कि परिवार न बसाएँ, विवाह न करें, मित्र न बनाएँ। यह मैं नही कहता हूँ। यह जानते हुए कि सब असुरक्षित है आपकी

पकड नही होगी। तब आप जी जान से नही पकडेंगे क्योंकि आप जानते हैं कि पकडो, या न पकडो, असुरक्षा अपनी जगह खडी है। तब धन भी होगा, आप धनी नही हो पाएँगे। क्योंकि धनी होने का कोई कारण नही है। तब धन भी होगा और आप दरिद्र बने रहेंगे। क्योंकि आप जानते हैं कि दरिद्रता अपनी जगह खडी है; वह धन से नही मिट जाती। तब जितना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा तो भी मौत भूल नही लाएगी क्योंकि आप जानेंगे कि अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का सवाल नहीं है। मौत है। वह खड़ी है। वह बीमार के लिए भी खडी है, स्वस्थ के लिए भी खडी है। असुरक्षा का बोध, असुरच्छा की भावना आपको करनी नही है। हम सुरक्षा की भावना कर-करके असुरक्षा के बोध को मिटाते हैं। लेकिन असुरच्छा सत्य है।

अभी मैं भावनगर में था। एक चित्रकार युवक मेरे पास आया। वह कई वर्ष अमेरीका रह कर लौटा है और बडी प्रतिभा का युवक है। लेकिन परेशान हो गए हैं माँ-बाप। पत्नी परेशान है। वे सब मेरे पास आए। पत्नी, माँ, बाप, बूढे—और यह एक ही लडका है उनका। उसी पर सब लगा दिया है और अब बडी मुश्किल हो गई है। उन्होने मुझे आकर कहा कि हम बडी मुश्किल में पड़ गए हैं। हमारा लड़का बिल्कुल ही व्यर्थ की असुरक्षाओं से परेशान है, व्यर्थ के भय से पीडित है। जो घटना कभी नही हो सकती उसके साथ वह मरा जा रहा है। यह लडका अगर बाहर जाए, किसी को अन्धा देख ले तो एकदम घर लौट आता है, बिस्तर पर लेट जाता है, कपने लगता है और कहता है कि कहीं मैं अंधा न हो जाऊँ। कोई मर जाए पडोस में तो उसकी हमें फिक्र नही होती जितनी हमें इसकी फिक्र होती है कि इसको पता न चल जाए क्योंकि इसे पता चला कि यह दो चार दिन के लिए बिल्कुल ठंडा हो जाता है और कहता है कि मैं मर तो नही जाऊँगा। हम समझा-समझा कर परेशान हो गए। अमेरिका में उसका मनोविश्लेपण भी करवाया है। उससे भी कुछ हित नहीं हुआ। हिन्दुस्तान के भी कुछ डाक्टरों को दिखा चुके हैं, उससे भी कुछ फायदा नहीं हुआ। जिसके पास ले जाते हैं वह कहता है कि ये फिजूल के भय हैं। अभी तुम पूरे जवान हो, कहाँ मर जाओगे, तुम्हारी आँखे बिल्कुल ठीक हैं। हम परीक्षाएँ करवा देते हैं, आँखें तुम्हारी बिल्कुल ठीक हैं। वह कहता है : यह सब तो ठीक है लेकिन क्या यह पक्का है कि आँख ठीक हो तो अन्धा नही हो सकता आदमी। क्या यह बिल्कुल पक्का है कि आदमी जवान हो तो नही मरता। वह कहता है कि हम यह सब समझ जाते हैं लेकिन फिर भी

भय पकड़ता है। एक आदमी लंगड़ा हो गया है तो मुझे डर लगता है कि मैं लंगडा तो नही हो जाऊँगा।

वह युवक मेरे पास बैठा है। वह डरा हुआ है। मैंने उसके पिता को, उसकी माँ को, उसकी पत्नी को कहा कि तुम सरासर झूठी बातें इस युवक को सिखा रहे हो। एकदम बिल्कुल झूठी बातें। वह युवक एकदम ठीक कह रहा है। मैंने इतना कहा कि वह युवक जो सिर झुकाए, रीढ नीचे किए बैठा था सीधा होकर बैठ गया। उसने सिर ऊँचा किया। उसने मुझे गौर से देखा। उसने कहा, क्या कहते है आप कि मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने कहा - हाँ तुम ठीक कह रहे हो। आँख का कोई भरोसा नहो, जिन्दगी का भी कोई भरोसा नही। तुम्हारे माँ-बाप सरासर झूठी बातें करके तुम्हें एक भ्रम में रखना चाहते हैं जबकि तुम सच ही कह रहे हो। लेकिन मैंने कहा कि तुम इससे भागना क्यो चाहते हो ? भाग कहाँ सकते हो ? क्या तुम मरने से बच सकते हो ? कोई रास्ता है बचने का ? उसने कहा कि कैसे बच सकता हूं ? मैंने कहा कि मृत्यु की जो स्थिति है, इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। जिससे बच ही नही सकते हो वह मृत्यु है। फिर इसमें चिन्ता की क्या बात है ? उस युवक ने कहा कि नही, ऐसी चिन्ता की बात नही मालूम होती। लेकिन यह सब मुझे समझाते हैं कि यह बात ही झूठ है। तब मैं द्वन्द्व में पड जाना हूँ। उधर मुझे लगता है कि मौत होगी और ये लोग कहते हैं कि नही होगी। तो मैं द्वन्द्व में पड जाता हूँ। आप कहते हैं मौत होगी।

मैंने कहा बिल्कुल पक्का है। कल सुबह भी पक्का नही कि तुम जिन्दा उठोगे। इसलिए आज की रात में ही ठीक से सो जाओ। कल सुबह का कोई भरोसा नही। मैंने उससे पूछा कि तुम्हें आँख जाने का डर क्यों है। उसने कहा तो फिर मैं पेन्ट कैसे करूँगा ? अगर मेरी आँख चली गई तो मैं पेन्ट कैसे करूँगा ? मैंने कहा कि जब तक आँख है तब तक पेन्ट करना। क्योकि आँख का कोई भरोसा नही। जब तुम्हारी आँख नही होगी तब तुम पेन्ट नही कर सकोगे। अभी तुम्हारी आँख है तो भी तुम पेन्ट नही कर रहे हो। आँख नही होगी इस चिन्ता में नष्ट किए दे रहे हो। आँख खत्म हो सकती है अगर यह पक्का है तो तुम शीघ्रता से पेन्ट करो।

माँ बाप लाए थे उसे मेरे पास कि मैं उसे आश्वासन दूँ। वे बहुत घबड़ा गए और बोले कि यह आप क्या कर रहे हैं, हम तो और मुश्किल में पड

जाएँगे। मैंने कहा : मुश्किल में आप नही पड़ेंगे। वह युवक दूसरे दिन सुबह मेरे पास आया। उसने कहा कि चार साल बाद मैं पहली बार सो पाया। क्योंकि जब मैंने कहा कि ऐसा है और ऐसा हो सकता है तो अब क्या सवाल है। अब ठीक है। बात खत्म हो गई।

अगर मौत है और उसकी स्वीकृति है तो संघर्ष कहाँ है ? मौत है और स्वीकृति नही, तो हम मौत नही है ऐसे भाव पैदा करते हैं। और इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि पता ही न चले कि मौत है। मरघट गाँव के बाहर बनाते है कि पता ही न चले कि मौत जिन्दगी का कोई हिस्सा है। गाँव में किसी को पता ही नही चलता कि कोई मरता है। मरघट होना चाहिए ठीक गाँव के बीच में जहाँ से दिन में दस बार निकलना पड़े और दस बार खबर आए कि मौत खड़ी है। उसको बनाते हैं गाँव के बाहर ताकि किसी को पता ही न चले कि मौत है। अगर कोई मर जाए तो उनको भेज आते हैं लेकिन जिन्दा आदमी को बचाते हैं। कोई मर जाए, रास्ते से अर्थी निकल रही हो तो बच्चे को माँ भीतर घर में बुला लेती है, दरवाजा बन्द कर लेती है कि अर्थी निकल रही है बेटा, भीतर आ जाओ। जबकि माँ को थोडी समझ हो तो बच्चो को बाहर ले आना चाहिए कि बेटा अर्थी निकल रही है, इसको ठीक से देखो और समझो कि कल मैं मरूँगी, परसों तुम मरोगे। यह जीवन का सत्य है। इससे भागने का, बचने का कोई उपाय नही है।

असुरक्षा के बोध का यह मतलब है कि उसके अन्दर पूरी चेतनता होनी चाहिए। वह अचेतन में दबा न रह जाए। चेतन हमें ख्याल में हो तो हमारी जिन्दगी बिल्कुल दूसरी हो। जो कुछ चल रहा है उसमें कुछ भी फर्क नही होगा लेकिन आप बिल्कुल बदल जाएँगे। आपकी पकड बदल जाएगी, आसक्ति बदल जाएगी, राग बदल जाएगा, द्वेष बदल जाएगा, आप दूसरे आदमी हो जाएँगे, क्योंकि क्या राग करना, क्या द्वेष करना ? अगर जिन्दगी इतनी असुरक्षित है तो इस सब पागलपन का क्या अर्थ है ? क्यों ईर्ष्या करनी ? क्यों आकांक्षा करनी ? क्यों महत्त्वाकाक्षा ? वह बोध आपकी इन सारी चीजो को मिटा देगा।

मेरा सारा जोर इस बात पर है कि अगर हम जीवन के तथ्य को देख लें तो हम सत्य की ओर अपने आप गति कर जाएँगे। हम क्या किये हैं कि तथ्य तक को झुठला दिया है और सब ओर से लीप पोतकर ऐसा कर दिया है कि

वह तथ्य ही नही रहा है। और झूठ से सत्य की यात्रा नही हो सकती। तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है लेकिन तथ्य को छिपा कर, वदल कर, तोड-मरोड कर, हम कभी सत्य तक नही जा सकते।

महावीर भी उसी असुरक्षा के वोध को सन्यास कहते हैं। लेकिन अव जिसको हम सन्यासी कहते हैं, वह हमारा बिल्कुल उल्टा आदमी है। संन्यासी हमारे गृहस्थ से ज्यादा सुरक्षित है। गृहस्थ का दिवाला निकल चुका है, सन्यासी का कोई दिवाला निकलने का कोई सवाल ही नही उठता। तो गृहस्थ के ऊपर हजारों चिन्ताएँ और झझटें हैं। सन्यासी के ऊपर वे चिन्ताएँ और झझटें नहीं हैं। सन्यासी विल्कुल सुरक्षित है। अगर आज संन्यासी को हम देखें तो आज जो उल्टी वात दिखाई पडती है वह यह कि सन्यासी ज्यादा सुरक्षित है। उसे न बाजार के भाव से कोई चिन्ता है, न किसी दूसरी वात से कोई चिन्ता है। उसे न कोई दिक्कत है, न कोई कठिनाई है। खाने-पीने का सव इन्तजाम है, भक्त है, समाज है, मन्दिर है, आश्रम है। सब इन्तजाम है। संन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित है जबकि संन्यासी का मतलब यह है कि जिसने सुरक्षा का मोह छोड दिया, जो इस वोध के प्रति जाग गया कि सभी असुरक्षित है और जब सुरक्षा के ख्याल में भी नही रहा, अव जो असुरक्षा में ही जीने लगा, कल की वात ही नही करता, भविष्य का विचार ही नहीं करता, योजना नही बनाता, बस क्षण-क्षण जिए चला जाता है, जो होना होगा, वह उसके लिए राजी है। मौत आए तो राजी है, जीवन हो तो राजी है, दुःख हो तो राजी है, सुख हो तो राजी है। ऐसी चित्त-दशा का नाम संन्यास है और ऐसा व्यक्ति अगृही है। अगर वहुत गहरे में खोजने जाएँ तो सुरक्षा 'गृह' है, असुरक्षा 'अगृह' है! सुरक्षा में जीने वाला, सुरक्षा में जीने की व्यवस्था करने वाला 'गृहस्थ' है। सुरक्षा मे न जीने वाला, असुरक्षा की स्वीकृति मे जीने वाला सन्यासी है, अगृही है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न किसी ने पूछा है कि महावीर ने संन्यासियो से यह क्यो कहा कि तुम गृहस्थों को विनय मत देना, उनको तुम नमस्कार मत करना, उनका तुम आदर मत करना। यह बात महावीर ने क्यों कही ? इसे सन्यासी और गृहस्थ के वीच वना लेने से भूल हो जाती है। असल में अगर हम वहुत ध्यान से देखें तो जो असुरक्षित व्यक्ति है, वह ऐसे जी रहा है जैसे हवा-पानी जी रहा है। वह जो सुरक्षा के भ्रम में, सपने में और नीद में खोया है वह ऐसा ही है जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को कि तू सोए हुए आदमी

को नमस्कार मत करना। क्योकि कहीं ऐसा न हो कि आदर उसके सोए हुए होने को और बढ़ाए। लगता तो ऐसा है लेकिन महावीर के पीछे आने वाले साधुओ ने उसका दूसरा ही मतलव निकाला है। उन्होने इसे विल्कुल अहंकार की प्रतिष्ठा वना ली है। यानी वे कुछ ऊँचे हैं, अहंकार में प्रतिष्ठित हैं, सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे को उनकी पूजा करनी है। लेकिन वड़े मजे की बात है कि महावीर ने यह कही नही कहा कि सावु गृहस्थ से पूजा ले, सन्यासी गृहस्थ से विनय माँगे। इतना ही कहा है कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे। क्योंकि गृहस्थ से मतलव ही इतना है कि जो अज्ञान मे घिरा हुआ खड़ा है इसके अज्ञान की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है। इसके अहंकार को बढ़ाना उचित नही है।

अहंकार न वढ़ जाए गृही का इसलिए महावीर कहते हैं कि साधु उसे विनय न दे। लेकिन उन्हें पता नही था शायद कि उनका साधु ही इसको अहंकार का पोपण वना लेगा और साधु ही इस अहंकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए और वह अविनीत हो जाएगा। महावीर की कल्पना भी नही है कि साधु अविनीत हो सकता है, इसलिए वह कहते हैं कि सावुता का तो मतलव ही है पूर्ण विनम्रता में जीना चौवीस घंटे। यानी कोई न भी हो पास में तो भी विनम्रता में ही जीना। वह तो सावुता का मतलव ही है। क्योकि सावुता का मतलव है सरलता और सरलता अविनम्र कैसे होगी ?

महावीर को यह कल्पना ही नहीं कि साधु भी अविनम्र हो सकता है। हाँ, गृहस्थ अविनम्र हो सकता है क्योकि वह अहंकार में जीता है, वहीं उसका घर है। उसे विनय मत देना। लेकिन भूल हो गई। मालूम होता है कि भूल ऐसी हो गई कि उन्हें पता नही कि सावु भी एक प्रकार का गृहस्थ हो सकता है। इसका कोई ख्याल नही है उन्हें कि साधु भी वदला हुआ गृहस्थ हो सकता है। सिर्फ कपडे वदल कर साधु हो सकता है और उसकी चित्तवृत्तियो की सारी माँग वही हो सकती है जो गृहस्थ की है। असल वात यह है कि जिसे हम गृहस्थ कह रहे हैं वह तो गृहस्थ है लेकिन जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु नहीं है।

जापान के एक सम्राट् ने एक वार अपने वजीरो को कहा कि तुम जाकर पता लगाओ कि अगर कही कोई साधु हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ। वजीरों ने कहा कि यह वहुत मुश्किल काम है। सम्राट् ने कहा मुश्किल ? मैं

तो रोज सडक से भिक्षुओ को, साधुओं को निकलते देखता हूँ। वजीरो ने कहा कि यह बहुत कठिन है, वर्षों लग सकते हैं। फिर भी हम खोज करेंगे। उन्होने बहुत खोज-बीन की। आखिर वह खबर लाए कि एक पहाड पर एक बूढ़ा है। वह आदमी साधु है। सम्राट् वहाँ गया। वह बूढा एक वृक्ष के पास दोनो पैर फैलाए हुए आराम से बैठा था। सम्राट् जाकर खडा हो गया। साधु ने न तो उठकर सम्राट् को नमस्कार किया जैसी सम्राट् की अपेक्षा थी, न उसने पैर सिकोडे। वह पैर फैलाए ही बैठा रहा। न उसने इसकी कोई फिक्र की कि सम्राट् आया है। वह जैसा बैठा था, बैठा रहा। सम्राट् ने कहा आप जाग तो रहे हैं न ? खडे होकर नमस्कार करने का शिष्टाचार भी नही निभाते हैं आप ! पैर फैलाकर अशिष्ट ग्रामीणो की तरह बैठे हैं ? मैं तो यह सुनकर आया कि मैं एक साधु के पास जा रहा हूँ। वह बूढा खूब खिलखिलाकर हंसने लगा। उसने कहा कि **कौन सम्राट् और कौन साधु ? यह सब नींद के हिस्से हैं।** कौन किसको आदर दे ? कौन किससे आदर ले ? **अगर साधु के पास आना हो तो सम्राट् होना छोडकर आओ।** क्योंकि सम्राट् और साधु का मेल कैसे होगा ? बडा मुश्किल हो जाएगा। तुम कहो पहाड पर खडे हो, हम कहीं गड्ढे में विश्राम कर रहे हैं। मेल कहाँ होगा ? मुलाकात कैसे होगी ? साधु से मिलना है तो सम्राट् होना छोड कर आओ। और रही पैर सिकोड़ने, फैलाने की बात। अगर शरीर पर ही नजर है तो यहाँ तक आने की कोशिश व्यर्थ हुई। अगर इसी पर ही दृष्टि अटकी है तो नाहक तुम यहाँ चढे, वापिस लौट जाओ।

सम्राट् को सुन कर लगा कि आदमी असाधारण है। उसके पास कुछ दिन रुका, उसके जीवन को देखा, परखा, पहचाना, बहुत आनन्दित हुआ। जाते वक्त एक बहुमूल्य मखमल का कोट, जिसमें लाखो रुपयों के हीरे-जवाहरात जडे थे, भेंट करना चाहा। उस साधु ने कहा कि तुम भेंट करो और मैं न लूँ तो तुम दुखी होगे। लेकिन तुम तो भेंट करके चले जाओगे। इस जंगल के पशु-पक्षी ही यहाँ मेरे जान-पहचान के हैं। यह सब मुझ पर बहुत हँसेंगे कि बुढापे में भी मुझे बचपन सूझा है। तुम सोचते हो कि करोडो की चीज दिए जा रहे हो, लेकिन वे आँखें कहाँ हैं जो इसको करोडो का समझती हैं। इधर मैं निपट अकेला हूँ। यह पशु-पक्षी मेरे साथी हैं। ये इनको कंकड-पत्थर समझेंगे और मुझको पागल समझेंगे। यह कोट तो ले जाओ। किसी दिन कोई बहुमूल्य चीज तुम्हें लगे तो ले आना जिसको यहाँ भी बहुमूल्य समझा जा सके। ये पक्षी, ये आकाश, ये चाँद और तारे भी जिसे बहुमूल्य समझें।

सम्राट् वापस लौटा। उसने अपने वजीरों से कहा कि उन्हें कुछ न कुछ तो भेंट देनी ही चाहिए। लेकिन ऐसी कौन सी बहुमूल्य चीज है जिसे मैं वहाँ ले जा सकूं। तो उन वजीरों ने कहा कि वह तो सिर्फ आप ही हो सकते हैं। लेकिन आपको बदल कर जाना पड़ेगा, साधु होकर जाना पड़ेगा क्योंकि वह बहुमूल्य चीज सिर्फ साधुता ही हो सकती है जो उस पहाड़ पर, उस एकान्त जगल में भी पहचानी जा सके। आदमी के मूल्य तो राजधानी की सड़कों पर पहचाने जा सकते हैं। परमात्मा के मूल्य एकान्त में ही पहचाने जा सकते हैं। जहाँ कोई भी पारखी नही है वही वे परखे जा सकते हैं। साधुता का अर्थ ही खो गया है आजकल। तो साधु के नाम से बैठे हैं वे आमतौर से बदले हुए गृहस्थ हैं, जिन्होने कपडे बदल लिए हैं मगर गृहस्थी का ही काम कर रहे हैं।

एक साधु मुझसे मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि आप मुँहपट्टी क्यो बांधे हुए हैं ? यह सच में आपको लगती है कुछ बाँधने जैसी ? उन्होने कहा : बिल्कुल नही लगती। मैंने कहा कि इसे छोड दें आप। उन्होने कहा कि अगर छोड दें तो कल खाने, पीने का क्या होगा ? कौन सम्मान देगा ? यह मुँहपट्टी की वजह से सब व्यवस्था है। यह गई कि सब व्यवस्था चली जाएगी।

अब यह मुंह-पट्टी की व्यवस्था का इन्तजाम है। हम मुँह-पट्टी बांधते हैं, हम गेरूआ वस्त्र पहनते हैं क्योकि ये सब हमारी सुरक्षा के साधन हैं। जैसे हम कुछ इन्तजाम कर रहे हैं, ऐसा यह साधु भी इन्तजाम कर रहा है। यह भी हिम्मत करने को राजी नहीं है कि खडा हो जाय कि कोई दे देगा तो ठीक, नहीं देगा तो ठीक, रोटी मिलेगी तो ठीक, नही मिलेगी तो ठीक। इतनी हिम्मत जुटाकर खडा न हो जाए तो इसे गृहस्थ से भिन्न कहने का क्या कारण है ? सिर्फ एक ही कारण है कि गृहस्थ दूसरो का शोषण करता है, यह गृहस्थो का शोषण करता है। गृहस्थ शोषण करता है तो वह उसकी वजह से पापी हुआ जा रहा है। और यह उन पापियों का शोषण करता है तो उसकी वजह से पापी नहीं हो रहा है। यह किसी बन्धन में नही है। इसने बंधन में न होने का भी इन्तजाम किया हुआ है। लेकिन इन्तजाम ही बन्धन है यह इसे ख्याल में नहीं है।

तो यह साधु की जो कल्पना महावीर के मन में है, उस कल्पना का साधु इतना विनम्र होगा कि उसे विनीत होने की जरूरत ही नही है। विनीत होना पडता है सिर्फ अहंकारियों को। वह इतना सरल होगा कि कौन साधु है, कौन गृहस्थ है इसकी पहचान मुश्किल हो जाएगी। लेकिन जो उन्होंने कहा है, वह

सिर्फ यह है कि मूर्छित व्यक्ति को, जागृत व्यक्ति सम्मान न दे। लेकिन मजा यह है कि बिना इसकी फिक्र किए कि हम जागृत है या नही, सम्मान न दिया जाए तो सब गडबड हो जाता है। उसमें आधी शर्त ख्याल में रखी गई है कि जागृत व्यक्ति मूर्छित को सम्मान न दे। दूसरा व्यक्ति मूर्छित है, यह पक्का है ? लेकिन हम जागृत हैं या नहीं, यह अगर पक्का नही है तो शर्त कहाँ पूरी हो रही है ? और दूसरा मूर्छित है यह पता भी हमें तभी चल सकता है जब हम जागृत हो। लेकिन पता ही नही चलता है कि आदमी सोया हुआ है। अब दस आदमी कमरे में सोए हुए हैं तो सिर्फ जागे हुए आदमी को ही पता चल सकता है कि बाकी लोग सोए हुए हैं। सोए हुए को पता नही चल सकता कि कौन सोया हुआ है और जागृत व्यक्ति को कैसी विनम्रता, कैसा अविनय, यह सवाल ही नही है। पर ध्यान उनका यही है कि मूर्छित को सम्मान कम हो, अमूर्छित को सम्मान हो ताकि समाज अमूर्छा की ओर बढ़े और व्यक्ति अमूर्छित दिशा की तरफ अग्रसर हो। साधु के लिए सम्मान का बडा ध्यान उन्होने किया है सिर्फ इसीलिए कि साधु वह है जो सम्मान नही माँगता। जो समाज ऐसे व्यक्तियों को सम्मान देता है, वह समाज धीरे-धीरे निरहंकारिता की ओर बढने का कदम उठा रहा है।

२१

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक २९ सितम्बर, १९६९

प्रश्न : महावीर प्राकृत भाषा मे क्यो बोले ? सस्कृत में क्यो नहीं ?

उत्तर : यह प्रश्न सच में गहरा है। सस्कृत कभी भी लोकभाषा नही थी। सदा से पडित की भाषा रही—दार्शनिक की, विचार की। प्राकृत लोकभाषा थी—साधारण जन की, अशिक्षित की, ग्रामीण की।। शब्द भी बडे अद्भुत हैं। प्रकृति का मतलब है स्वाभाविक· संस्कृत का मतलब है परिष्कृत। प्रकृति से ही जो परिष्कृत रूप हुए थे, वे सस्कृत बने। प्राकृत मूलभाषा है। सस्कृत उसका परिष्कार है। इसलिए संस्कृत शब्द शुरू हुआ उस भाषा के लिए जो परिष्कृत थी।

सस्कृत धीरे-धीरे इतनी परिष्कृत होती चली गई कि वह अत्यन्त थोडे से लोगों की भाषा रह गई। लेकिन पंडित, पुरोहित के यह हित में है कि जीवन में जो कुछ भी मूल्यवान् है वह सब ऐसी भाषा में हो जिसे साधारण जन न समझ सके। साधारण जन जिस भाषा को समझता हो, अगर वह उस भाषा में होगा तो पडित पुरोहित और गुरु बहुत गहरे अर्थों में अनावश्यक हो जाएँगे। उनकी आवश्यकता शास्त्र का अर्थ करने में है। साधारण जन की भाषा में ही अगर सारी बातें होंगी तो पडित का क्या प्रयोजन ? वह किस बात का अर्थ करे ? पुराने जमाने में विवाद को हम कहते थे शास्त्रार्थ। शास्त्रार्थ का मतलब है—शास्त्र का अर्थ। दो पडित लडते हैं। विवाद यह नही है कि सत्य क्या है। विवाद यह है कि शास्त्र का अर्थ क्या है ?

पुराना सारा विवाद सत्य के लिए नही है, शास्त्र के अर्थ के लिए है कि व्याख्या क्या है शास्त्र की ? इतनी दुरुह और इतनी परिष्कृत शब्दावली विकसित की गई जो साधारण जन की हैसियत के बाहर है और जिस बात को

साधारण जन कम से कम समझ पाए, वह अनिवार्य-रूपेण जनता का नेता और गुरु हो सकता है। इसलिए इस देश में दो परम्पराएँ चल पड़ीं। एक परम्परा थी जो संस्कृत में ही लिखती और सोचती थी। वह बहुत थोड़े से लोगों की थी। एक प्रतिशत लोगो का भी उसमें हाथ न था। बाकी सब दर्शक थे। ज्ञान का जो आन्दोलन चलता था वह बहुत थोड़े से अभिजातवर्गीय लोगों का था। जनता अनिवार्य रूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी। महावीर और बुद्ध—दोनो ने जन-भाषाओं का उपयोग किया। जिस भाषा में लोग बोलते थे उसी भाषा में वे बोले। और शायद यह भी एक कारण है कि हिन्दू ग्रन्थों में महावीर के नाम का कोई उल्लेख नही है। न उल्लेख होने का कारण है क्योंकि सस्कृत में न उन्होने कोई शास्त्रार्थ किए, न उन्होने कोई दर्शन विकसित किया। न उनके ऊपर, उनके सम्बन्ध में, कोई शास्त्र निर्मित हुआ। आज भी हिन्दुस्तान में अँग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है। हो सकता है कि मैं हिन्दी में ही बोलता चला जाऊँ तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूँ। वे अँग्रेजी मे पढने और सुनने के आदी हैं।

महावीर चूँकि अत्यन्त जन-भाषा में बोले, इन पडितो का जो वर्ग था, उसने उनको बाहर ही रखा। जनसाधारण ग्राम्य ही थे, उनको उसने भीतर नही लिया। इसलिए किसी भी हिन्दू ग्रन्थ में महावीर का उल्लेख नही है। यह बडे आश्चर्य की बात है कि महावीर जैसी प्रतिभा का व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बडी परम्परा में, उसके शास्त्र में, उस समय के लिपिबद्ध ग्रन्थो में उसका कोई उल्लेख भी न हो, विरोध में भी नही। अगर कोई हिन्दू ग्रन्थों को पढ़े तो शक होगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी हुआ भी या नहीं। अकल्पनीय मालूम पडता है कि ऐसे व्यक्ति का नाम भी नही है।

मैं उसके बुनियादी कारणों में एक कारण यह मानता हूँ कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं जो जनता की है। पडितो से शायद उनका बहुत कम सम्पर्क बन पाया। हो सकता है कि हजारों पडित अपरिचित ही रहे हों कि यह आदमी क्या बोलता है। क्योंकि पंडितो का अपना एक अभिजात भाव है। वे साधारण जन नही हैं। वे साधारण जन की भाषा में न बोलते हैं न सोचते हैं। वे असाधारण जन हैं। वे चुने हुए लोग हैं। उन चुने हुए लोगों की दुनिया का सब कुछ न्यारा है। साधारण जन से कुछ लेना-देना नही। साधारण जन तो भवन के बाहर हैं, मन्दिर के बाहर हैं। कभी-कभी दया करके, कृपा करके साधारण जन को भी वे कुछ बता देते हैं। लेकिन गहरी और गम्भीर चर्चा

तो वहाँ मन्दिर के भीतर चल रही है जहाँ साधारण जन को प्रवेश निषिद्ध है।

महावीर और बुद्ध की बडी से बडी क्रान्तियों में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होंने धर्म को ठेठ बाजार में लाकर खडा कर दिया, ठेठ गाँव के बीच। वह किसी भवन के भीतर बन्द चुने हुए लोगो की बात न रही, वह सबकी—जो सुन सकता है, जो समझ सकता है, बात हो गई।

इसलिए उन्होंने सस्कृत का उपयोग नही किया। और भी कई कारण हैं। असल में प्रत्येक भाषा जो किसी परम्परा से सम्बद्ध हो जाती है, उसके अपने सम्बन्ध हो जाते हैं। उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। और उसके किसी भी शब्द का प्रयोग खतरे से खाली नही है। क्योंकि जब उस शब्द का प्रयोग करते हैं तो उस शब्द के साथ जुडी हुई परम्परा का सारा भाव पीछे खडा हो जाता है। इस अर्थ में जनता की जो सीधी-सादी भाषा है, वह अद्‌भुत है। वह काम करने की, व्यवहार करने की, जीवन की भाषा है। उसमें बहुत शब्द ऐसे हैं जिनको नए अर्थ दिए जा सकते हैं। और महावीर को जरूरी था कि वह जैसा सोच रहे थे, वैसे अर्थ के लिए नई शब्दावली लें। कठिन था कि वह संस्कृत शब्दावली को उपयोग में ला सकें। क्योंकि संस्कृत सैकडो वर्षों से, हजारो वर्षों से, परम्पराबद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित हो गया था। तो उचित यह था कि ठीक अनपढ़ जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाए। उसे नए अर्थ, नए तराश, नए कोने दिए जा सकते थे। तो उन्होने सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस जनता की भाषा में अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दी।

यह इस बात का भी प्रमाण हो सकता है कि महावीर का मन, शास्त्रीय नही है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनका मन शास्त्रीय होता है, जो सोचते हैं शास्त्र में, समझते हैं शास्त्र में, जीते हैं शास्त्र में। शास्त्र के बाहर उन्हें कोई जीवन लगता ही नही। अगर उनकी बातचीत सुनने जाएँगे तो पता चलेगा कि शास्त्र के बाहर कही कुछ है ही नही, और शास्त्र बडी संकीर्ण चीज है, जिन्दगी बड़ी विराट् चीज है। उनके प्रश्न भी उठते हैं तो जिन्दगी से नही आते, किताब से आते हैं। वे अगर कुछ पूछेंगे भी तो वह इसलिए कि उन्होंने किताबे पढ़ी हैं। उनकी सीधी जिन्दगी से कोई प्रश्न नही उठते। और इस लिहाज से यह बडी हैरानी की बात है कि कभी ग्रामीण से ग्रामीण व्यक्ति भी

जीवन से सम्बन्धित प्रश्नो की बात उठा देता है जबकि पंडित से वैसी आशा असम्भव है ।

पण्डित प्रश्न भी उधार ही पूछता है यानी प्रश्न भी उसका अपना नही होता। उत्तर तो बहुत दूर की बात है। वह प्रश्न भी उसने किताब में पढा होगा। और जब वह प्रश्न पूछता है तब उसके पास उत्तर तैयार होता है। यानी वह आपसे कोई बडे प्रश्न के उत्तर की आकाक्षा नही कर रहा है। वह शायद आपका परीक्षण ही कर रहा है कि आपको भी यह उत्तर पता है या नही। उत्तर भी उसके पास है, प्रश्न भी उसके पास है। प्रश्न से भी पहले वह उत्तर को पकड कर बैठा हुआ है। और अब वह जो प्रश्न उठा रहा है, वह प्रामाणिक नही है, उत्तर प्राणो से नही आ रहे हैं।

तो शास्त्रीय लोग भी हैं जिनकी सारी जिन्दगी किताबो के द्वन्द्व-फदो के भीतर गुजरती है। महावीर खुली जिन्दगी के पक्षपात हैं, खुले आकाश के नीचे नग्न खडे हैं। खुली जिन्दगी, सच्ची जिन्दगी, जैसी है वह उसको छूना चाहते है, इसलिए शास्त्र को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीयता को बिल्कुल हटा देते हैं, शास्त्रीय व्यवस्था को ही हटा देते हैं और हमेशा ऐसी जरूरत पड जाती है कि कुछ लोग वापिस जिन्दगी का हमें स्मरण दिलाएँ। नही तो किताबें बडो खतरनाक हैं। धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि जिन्दगी कुछ और है और किताब कुछ और है। एक घोड़ा वह है जो बाहर सडक पर चल रहा है।

एक घोडा वह है जो शब्दकोष में लिखा हुआ है। जिन्दगी भर जो किताब में उलझे रहते हैं, वे किताब के घोडे को ही असली घोडा समझने लगें तो आश्चर्य नही है। यहाँ, इतना जरूर है कि किताब के घोड़े पर चढने की भूल कोई कभी नही करता। लेकिन किताब के परमात्मा पर प्रार्थना करने की भूल निरन्तर हो जाती है। किताब का परमात्मा इतना ही सही मालूम पडने लगता है जितना कि असली परमात्मा होगा। लेकिन किताब का परमात्मा बात ही और है। शब्द 'आग' आग नही है। किसी मकान पर 'आग' लिख देने से मकान नही जल जाता। 'आग' बात ही और है। 'आग' तो कुछ बात ऐसी है कि 'आग' शब्द भी जल जाएगा उसमें। वह भी नही बच सकेगा। लेकिन भूल होने का डर है कि शब्द 'आग' को कही हम 'आग' न समझ लें और शब्द 'परमात्मा' को कही हम परमात्मा न समझ लें। और जो शब्दों की दुनिया में जीते हैं, उनमें यह भूल होती ही है। उन्हें याद ही नहीं रह जाता कि कब जिन्दगी से वे खिसक गए हैं और एक शब्दों की दुनिया में भटक गए हैं।

पंडित का अपना जगत् है। महावीर उस शब्द जाल से भी बाहर आ जाना चाहते हैं। इसलिए पंडित का शब्द-जाल है संस्कृत का। आम जनता की बात-चीत तो सीधी-सादी है उसमें जाल नही है। न व्याख्या है, न परिभाषा है। जिंदगी को इंगित करने वाले शब्द है। तो उन्होंने वे शब्द पकड लिए और सीधी जनता से बात शुरू कर दी। वह जनता के आदमी हैं। इन अर्थों में वे पंडित नहीं है। और उन्होंने यह भी न चाहा कि उनके शास्त्र निर्मित हों।

किसी ने पूछा भी है एक सवाल कि महावीर के बहुत पूर्व काल से लिखने की कला विकसित हो गई थी और जैन कहते हैं कि खुद प्रथम तीर्थंकर ने लोगो को लिखने की कला सिखाई। प्रथम तीर्थंकर को हुए कितना काल व्यतीत हो चुका था। लोग लिखना जानते थे, पढना जानते थे, किताब बन सकती थी फिर महावीर के जीते जी महावीर ने जो कहा उसका शास्त्र क्यो नहीं बना ?

हमें ऐसा लगता है कि लिखने की कला न हो तो शास्त्र निर्मित होने में बाधा पडती है। लिखने की कला हो तो शास्त्र निर्मित होना ही चाहिए। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर चूंकि शास्त्रीय-बुद्धि नही है, उन्होने नही चाहा होगा कि उनका शास्त्र निर्मित हो और जब तक उनका बल चला शास्त्र न बन पाये। शास्त्रीय व्यक्ति की बुद्धि जीवन से पृथक् होकर शब्दों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है और एक विचित्र काल्पनिक लोक में भटकने लगती है। तो महावीर ने सुनिश्चित रूप से, शास्त्र को रोकने की कोशिश की होगी। इसलिए मर जाने के दो-तीन चार सौ वर्षो तक, जब तक लोगो को उनका स्पष्ट स्मरण रहा होगा कि शास्त्र नही लिखने हैं तब तक शास्त्र नही लिखा जा सका होगा। लेकिन हमारा मोह भारी है, हम प्रत्येक चीज को स्मृति मे रख लेना चाहते हैं। तो कही ऐसा न हो कि महावीर का कहा हुआ विस्मरण हो जाए, कही ऐसा न हो कि महावीर विस्मरण हो जाएँ, तो हमारे पास उपाय क्या है ? हम लिपिबद्ध कर लें, शास्त्रबद्ध कर लें, फिर नही खोएगा। महावीर खो जाएँगे लेकिन शास्त्र बचेगा। लेकिन कभी हमें सोचना चाहिए कि जब महावीर जैसे जीवन्त व्यक्ति भी खो जाते हैं तो शास्त्र को तुम बचा कर क्या महावीर को बचा सकोगे।

महावीर जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही विदा हो जाता है, और वहाँ चीजें परिवर्तनीय हैं, सभी आती हैं और चली जाती हैं वहाँ कुछ भी स्थिर न हो, वहाँ शब्द और शास्त्र भी स्थिर न हो, वह भी खो जाएँ। क्योंकि जीवन का नियम जब यह है—जन्म लेना और मर जाना, होना और

मिट जाना, और महावीर को भी जब वह जीवन का नियम नही छोडता है तो महावीर की वाणी पर भी यह क्यों न लागू हो ?

हम क्यो आशा बाँधें कि हम शब्दो को बचा कर महावीर को बचा लेंगे। क्या बचेगा हमारे हाथ में ? अंगारा कभी नही बचता। अगारा तो बुझ ही जाता है। राख बच जाती है। अंगारे को आप सदा नहीं रख सकते, राख को आप सदा रख सकते है। राख बड़ी सुविधापूर्ण है। अंगारे को थोडी देर रखा जा सकता है। क्योंकि वह जीवन्त है इसलिए वह बुझेगा। असल में अगारा जिस क्षण चलना शुरू हुआ है, उसी क्षण बुझना भी शुरू हो गया है। एक पर्त जल गई है, वह राख हो गई है। दूसरी पर्त जल रही है, वह राख हो रही है। तीसरी पर्त जलेगी, वह राख हो जाएगी। अंगार जो है वह थोडी देर में राख हो जाएगा। राख बचाई जा सकती है करोडो वर्षों तक क्योंकि राख मृत है। हम उसे बांध कर रख सकते हैं और खतरा यह है कि कभी हम राख को कही अंगार न समझ लें। कभी राख अंगार थी लेकिन राख बनी ही तब जब अगार 'न' हो गया। अब इसमें सोचने की दो बातें हैं।

राख अगार थी और राख अगार नहीं थी। राख अंगार थी—इसका मतलब यह हुआ कि अंगार से ही राख आई है। अगार के जीने से ही राख का आना हुआ है। लेकिन एक अर्थ में राख कभी भी अंगार नहीं थी क्योंकि जहाँ-जहाँ राख हो गई थी, वहाँ-वहाँ अगार तिरोहित हो गया था। राख जो है वह जीवित अंगार की छूटी हुई छाया है। अंगार तो गया, राख हाथ में रह गई। राख को सजोकर रखा जा सकता है।

महावीर ने चाहा होगा कि राख को मत बचाना। क्योकि असली सवाल अंगार का है। वह तो बचेगा नहीं। उसे तो तुम संभाल नही सकोगे। राख संभाल कर रख लोगे। और कल यह धोखा होगा तुम्हारे मन को कि यही है अंगार। और तब इतनी बडी भ्रान्ति पैदा होगी जितनी महावीर की सब वाणी खो जाए तो भी पैदा होने को नही है। हिम्मतवर आदमी रहे होंगे। अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना बडे साहस की बात है। मृत्यु के विरोध में हम सभी यह उपाय करते हैं कि किसी तरह तो मरेंगे—लेकिन किसी तरह स्मृति की एक रेखा हमारे पीछे रह जाए, बची ही रहे। फिर वह शब्द जो पत्थर पर लगा हुआ नाम है, शास्त्र है, रह जाए।

हमारा मन न मरने की आकाक्षा करता है। न मरने के लिए हम कुछ व्यवस्था कर जाते हैं। महावीर ने जीते जी न मरने की कोई व्यवस्था नही की

है। क्योंकि महावीर की दृष्टि में जो मरने वाला है, वह मरेगा ही। जो नही मरने वाला है वह नही मरता है। और जो मरने वाले को बचाने की कोशिश करते हैं वे बडी भ्रान्ति में पड जाते हैं। वह अक्सर राख को अंगार समझ लेते हैं।

शास्त्र से जो धर्म है, वह राख है। जीवन में जो धर्म है, वह अंगार है। तो जीते जी उन्होंने शास्त्र निर्मित नही होने दिया। तीन चार सौ वर्षों तक, जब तक कि लोगों को ख्याल रहा होगा उस आदमी का, उसके निषेध का, उसके इन्कार का, तब तक उन्होंने प्रलोभन को रोका होगा लेकिन जब वह स्मृति शिथिल पड गई होगी, धीरे-धीरे विस्मरण के गर्त में चली गई होगी, तब उनके सामने सबसे बडा सवाल यही रह गया होगा कि हम कैसे सुरक्षित कर लें जो भी उन्होने कहा।

यह ध्यान रखने की बात है कि आज तक जगत् में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी सत्य है, जो भी सुन्दर है, वह लिखा नही गया है, वह कहा ही गया है। कहने में एक बडी जीवन्त बात है, लिखने में वह मुर्दा हो जाती है। क्योकि जब हम कहते हैं तो काई जीवन्त सामने होता है जिससे कहते हैं। अकेले में तो कह नही सकते, लिखने वाले के समक्ष कोई भी मौजूद नही है, सिर्फ लिखने वाला मौजूद है। बोलने वाले के समक्ष, बोलने वाले से भी ज्यादा सुनने वाला मौजूद है। और एक जीवन्त सम्पर्क है। इस जीवन्त सम्पर्क के कारण न तो उन्होंने शास्त्रो की भाषा उपयोग का, न शास्त्रीयता का उपयोग किया, न अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने दी।

और लोकमानस का, सामान्य जन का बहुत पुराना संघर्ष है यह जोकि अभी पूर्ण नही हो पाया है। ऐसी धारणा रही है कि धर्म थोडे से चुने हुए लोगों की बात है। और सत्य थोडे से लोगो की समझ की बात है। मुझसे लोग आकर कहते हैं कि आप ऐसी बातें लोगों से मत कहिए। ये बातें तो थोडे लोगो के लिए है। सामान्य आदमी को मत कहिए। सामान्य आदमी इनसे भटक जाएगा। अब यह बडे मजे की बात है कि सामान्य आदमी को सत्य भटकाता है और असत्य मार्ग पर लाता है। और मेरी दृष्टि यह है कि वह बेचारा सामान्य ही इसीलिए है कि उसे सत्य की कोई खबर नही मिलती।

प्रश्न : क्या अनधिकारी को ज्ञान नहीं मिलना चाहिए ?

उत्तर : कोई भी अनधिकारी नही है ज्ञान की दृष्टि से। कौन निर्णायक है कि कौन अधिकारी है। निर्णय कौन करेगा ? फूल नही कहता कि अधिकारी

को सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को सुगंध देंगे। सूरज नही कहता कि अधिकारी को प्रकाश मिलेगा। स्वाँस नही कहती कि अधिकारी के हृदय में पलूँगा ? खून नही कहता कि अधिकारी के भीतर वहूँगा। जगत् अधिकारी की माँग नही करता। सिर्फ ज्ञान के सम्बन्ध में पडित कहता है कि अधिकारी पहले पक्का हो जाए। क्यो ? सारा जीवन अनधिकारी को मिला हुआ है, सिर्फ ज्ञान भर अधिकारी को मिलेगा। तो भगवान् बडा नासमझ है। अनधिकारियों को जीवन देता है और पडित वडा समझदार है। और अधिकारी को पक्का कर ले तव ज्ञान देगा।

अधिकारी की वात ही अत्यन्त व्यापारिक और तरकीव की बात है। तव वह उसको देना चाह रहा है, जिससे उसे कुछ मिलता हो। वह मिलना किसी भी तल पर हो सकता है। इज्जत, आदर, श्रद्धा, धन, मान-सम्मान, किसी भी तरकीव से उसको देगा जिससे कुछ मिलने का पक्का होगा। और उसको देगा, जो उसका अपना है। सवको नही देगा खुले हाथ। अपरिचित, अनजान, अजनवी ले जाए, ऐसा नही देगा। इसी वजह से ज्ञान को गुरु-शिष्य की परम्परा में वाँधने की तरकीव है। उस तरकीव में कभी भी ज्ञान विस्तीर्ण नही हो सका।

एडीसन को अगर पता चल गया कि बिजली कैसे वनता है तो वह ज्ञान सवके लिए हो गया। और एडीशन ने नही पूछा कि अधिकारी कौन है जिसके घर में विजली जले। वह सवके लिए खुली किताव हो गई, जो भी उपयोग में लाना चाहें, ले आए। विज्ञान इसीलिए जीता है धर्म के खिलाफ कि धर्म था थोडे से लोगों के हाथ में, और विज्ञान ने सत्य दे दिया सवके हाथ में। विज्ञान की जीत का कारण यह है कि विज्ञान ने पहली दफा ज्ञान को सार्वलौकिक वना दिया। और धार्मिक लोगो ने ज्ञान को वना लिया विल्कुल ही सीमित दायरे में रहने वाला यानी सोच-विचार कर किसको देना, किसको नही देना। और कई वार ऐसा होता है कि जानने वाला आदमी पात्र को, अधिकारी को खोजते-खोजते ही मर जाता है और उसे अधिकारी नहीं मिल पाता है।

मैंने सुना है कि एक फकीर हिमालय की तराई पर रहता था और नव्वे वर्ष का हो गया था। कई वार लोगों ने आकर कहा कि हमें ज्ञान दो, पर उसने कहा कि अधिकारी के सिवाय ज्ञान तो किसी को नही मिल सकता। अधिकारी लाओ। शर्त उसकी ऐसी थी कि वैसा आदमी पूरी पृथ्वी पर खोजना

मुश्किल था। अधिकारी की शर्तें ऐसी थी। यानी ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी से कहे कि हम बीमार को दवा नही देते, हम तो स्वस्थ आदमी को दवा देंगे। स्वस्थ आदमी ले आओ। अब मेरी अपनी समझ है कि स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास जाएगा ही नही। अधिकारी जो हो गया है, वह किसी से लेने क्यो जाएगा ? क्योंकि जिस दिन अधिकार उपलब्ध होता है उसी दिन अपनी उपलब्धि हो जाती है। जिस दिन पात्रता पूरी होती है। उसी दिन परमात्मा खुद ही उतर आता है। अनधिकारी ही खोजता है। अधिकारी खोजेगा ही क्यों ? अधिकारी का मतलब है कि जिसका अधिकार हो गया। अब तो ज्ञान उसे मिलेगा ही। वह सीधी माँग कर सकता है इस बात की। तो अधिकारी किसी के पास नही जाता है।

तो लोग थक गये थे। फिर वह बूढ़ा हो गया, बहुत बूढ़ा। फिर एक दिन उसने एक आदमी को जो रास्ते से गुजर रहा था, कहा : सुनो ! ज्यादा नही, मैं तीन दिन में मर जाऊँगा। गाँव में जितने लोगों को खबर हो सके, पहुँचा दो। जिसको भी ज्ञान चाहिए वह एकदम चला आए। उस आदमी ने कहा लेकिन मेरा गाँव बहुत छोटा है, अधिकारी वहाँ कोई भी नही। फकीर ने कहा, अब अधिकारी, गैर-अधिकारी का सवाल नही रहा। क्योकि तीन दिन बाद मैं मर जाने को हूँ। जाओ, जो भी आए, उसको ले आओ। वह आदमी गाँव में गया, और डोंडी पीट दी। उस बूढ़े से तो लोगो का कभी कुछ सम्बन्ध नही था। फिर भी किसी को दूकान पर आज काम नही था तो उसने कहा कि चलो, मैं भी चल सकता हूँ। किसी की पत्नी मर गई थी तो उसने कहा कि चलो, हम भी चलते हैं। किसी को कुछ और हो गया था। कोई दस बारह लोग मिल गए और वे पहाड़ पर चढकर वहाँ जा पहुँचे। लेकिन वह जो ले जा रहा था मन में बडा चिन्तित था कि इन सबको वह फौरन ही बाहर निकाल देगा। इनमें कोई भी अधिकारी नही है, कोई भी पात्र नही है। उसने डरते-डरते जाकर कहा कि दस-बारह लोग आए हैं लेकिन मुझे शक है कि कोई आपके अधिकार के नियम में उतरेगा। फकीर ने कहा : वह बात ही मत करो। एक-एक को भीतर लाओ। तो उसने पूछा : आपने अब अधिकार की बात छोड दी। तो फकीर ने कहा कि सच बात यह है कि जब तक मेरे पास कुछ नही था, तब तक मैं इस भाँति अपने को बचाता था कि अनधिकारी को कैसे दूँ ? मेरे पास ही नही था देने को कुछ। लेकिन यह मानने की हिम्मत नहीं पडती थी कि मेरे पास कुछ नहीं है। तो मैंने यह तरकीब निकाली थी कि पात्र कहाँ है

जिसको मैं दूँ। लेकिन अब जब मुझे ज्ञान हो गया है, तब प्राण ऐसे आतुर हैं कि कोई अपात्र भी आ जाए तो उसको लेकर पात्र हो जाएगा क्योंकि अपात्र रह कैसे सकेगा ? तो अब मेरी फिक्र नही है कि तुम किसको लाते हो।

महावीर ने इस सम्बन्ध में बडी भारी क्रान्ति की। ठेठ बाजार में पहुँचा दी सारी बात। इससे क्रोध भी बहुत हुआ। रहस्य की बातें तो हैं ये। पंडित का धंधा चलता था कि बातें गुप्त थी। आप जानते हैं कि जब डाक्टर प्रिसक्रिप्शन लिखता है दवाई का तो लैटिन और ग्रीक-भाषा का उपयोग करता है, सीधी-सादी अंग्रेजी का भी उपयोग नही करता, हिन्दी की तो बात दूर है। लैटिन और ग्रीक शब्दों का उपयोग दवाइयो के नाम के लिए किया जाता है। कारण कि अगर आपको उसका ठीक-ठीक नाम, पता चल जाए तो आप उसके लिए पाँच रुपये देने को राजी नही होंगे। आपको वह दवा बाजार में दो पैसे में मिल सकती है। रहस्य यह है कि जो उसने लिखा है, वह आपकी पकड के बाहर है। हो सकता है उसने लिखा हो अजवाइन। लेकिन लिखा है लैटिन में। अजवाइन का सत तो हम घर में ही निकाल लेंगे। इसके लिए लिए हम पाँच या दस रुपए क्यो देंगे बाजार में ? लेकिन अजवाइन का सत लिखा है ग्रीक में। आपको पता चलता नही कि क्या मतलब है ? आप दो पैसे की चीज को पाँच या दस रुपए में खरीद कर लाते हैं।

पूरा मेडिकल धन्धा बेईमानी का है। क्योंकि अगर सीधी-सीधी बातें लिख दी जाएँ तो सब दवाई की दूकानें खत्म होने के करीब पहुँच जाएँ। क्योंकि दवाइयाँ बहुत सस्ती हैं और उन्ही चीजो से बनी हैं जो बाजार में आम मिल रही है लेकिन एक तरकीब उपयोग की जा रही है निरन्तर कि नाम अंग्रेजी में भी नही हैं, लैटिन और ग्रीक में हैं। अंग्रेजी पढ़ा लिखा आदमी भी नहीं समझ सकता। डाक्टर जिस ढंग से लिखते हैं, वह ढंग भी कारण है उसमें। यानी वह लैटिन और ग्रीक भी आप ठीक से नही समझ सकते कि वह क्या लिखा हुआ है। वह भी सिर्फ दूकानदार ही समझता है जो बेचता है दवा। वह भी शायद नही समझता है। बडे अज्ञान में काम चलता है। मैंने सुना है कि एक आदमी को किसी डाक्टर की चिट्ठी आई थी। किसी डाक्टर ने चिट्ठी लिखी थी। घर पर उसने भोज बुलाया हुआ था और डाक्टर नहीं आ सकता था तो उसने क्षमा माँगी थी लेकिन निरन्तर आदत के वस उसने उसी ढंग से लिखा दिया था, जैसा वह प्रिस्क्रिप्शन लिखता था। उस आदमी ने बहुत पढा। उसे समझ में नही आया कि वह आ रहा है कि नही आ रहा है।

तो उसने सोचा कि छोडो, मेरी समझ में नही आएगा, जरा चल कर केमिस्ट को दिखा लूँ। वह तो कम से कम डाक्टरों की भाषा समझता है। वह बता देगा कि क्या लिखा है। उसने जाकर वह चिट्ठी एक केमिस्ट को दी। केमिस्ट ने चिट्ठी देखी : कहा रुकिए, भीतर गया। दो बोतलें निकाल कर ले आया। उसने कहा . माफ करिए! बोतल का सवाल ही नही है। इसमें सिर्फ उसने क्षमा माँगी है कि मैं आज भोज में आ सकूँगा, कि नही। यह मेरी समझ में नही आ रहा है कि बात क्या है? यह सारा का सारा खेल चलता है।

तो पडित ने एक तरकीब निकाली है बहुत पुराने दिन से। वह यह कि जनता की भाषा में सीधी-सीधी बात मत कहना कभी भी। उसको ऐसी शब्दावली में कहना कि वह रहस्य हो जाए, वह उसकी समझ से बाहर पड जाए और तब लोग तुमसे समझने आएँगे। इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हुए हैं। एक जो जीवन के रहस्य के लिए द्वार बनाना चाहते हैं ताकि प्रत्येक के लिए द्वार खुल जाए और एक जीवन में जो रहस्य नही भी है, उसको जबरदस्ती चारों तरफ से गोल-गोल करके उसे ऐसी स्थिति में खडा कर देना चाहते हैं कि वह किसी के लिए सीधा-सरल तथ्य न रह जाए।

उमर खय्याम ने लिखा है कि जब मैं जवान था तो साधुओं के पास गया, ज्ञानियों के पास गया, पण्डितो के पास गया। और उसी दरवाजे से बाहर आया जिस दरवाजे से भीतर गया था, क्योंकि मेरी कुछ पकड में ही नही पडा कि वहाँ क्या हो रहा है। वही का वही वापस लौटा जो मैं था क्योंकि मेरी कुछ पकड में नही पडा कि वहाँ क्या हो रहा है? कौन शब्द वहाँ चल रहा है? किन शब्दों की वे बातें कर रहे हैं? किन लोगों की वे चर्चा कर रहे हैं? जीवन से उनका कोई सम्पर्क नही है।

महावीर की क्रान्तियों में एक क्रान्ति यह भी है कि उन्होने धर्म के गुह्य रूप को जो छिपा हुआ था, उघडा हुआ कर दिया। इसलिए पडित उन पर नाराज रहे हो तो कोई आश्चर्य नही। क्योंकि उन्होंने वह काम किया जैसे कोई डाक्टर सीधी हिन्दी में लिखने लगे कि अजवाइन का सत ले आओ तो दूसरे सारे डाक्टर उस पर नाराज हो जाएँगे कि तुम क्या कर रहे हो, तुम सब धधा चौपट करवा दोगे। तो महावीर पर पण्डितों की नाराजगी बडी अर्थपूर्ण है। इसलिए उन्होंने सीधी-सीधी जनभाषा का उपयोग किया है, शास्त्रों की भाषा को एकदम छोड दिया है जैसे कि शास्त्र हो ही नहीं। महावीर इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे शास्त्र रहे ही नहो। उनका वह उल्लेख भी नहीं करते। ऐसा

नही है कि उन शास्त्रो में कुछ भी न था। उन शास्त्रो में बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं वह यह है कि कोई खोज करेगा तो उसे शास्त्रों में भी मिल जाएगा, लेकिन महावीर उन शास्त्रों को बीच में लाना ही नही चाहते क्योकि उन शास्त्रो को लाते ही शास्त्रीयता आती हैं, पाण्डित्य आता है, सारी दूकान आती है, सारी व्यवस्था आती है। वह ऐसे बोल रहे हैं जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खडा होकर बोल रहा हो जिसको किसी शास्त्र का कोई पता भी न हो।

प्रश्न : गोशालक की कथा का क्या महत्त्व है? महावीर ने प्रथम दो मुनियो को न बचा कर तीसरे को ही क्यों बचाया?

उत्तर : असल में कहानियों को समझना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि वे प्रतीक हैं। और उन प्रतीको में बडो बातें हैं जो खोली जाएँ तो ख्याल में आ सकती हैं, न खोली जाएँ तो बडी कठिनाइया पैदा करती हैं। महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है। वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का, एक योग का प्रयोग कर रहा है कि जिसमें कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए। महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा, वह नष्ट हो गया। दूसरा उठा वह मर गया। महावीर देखते रहे। तीसरा उठा उसको महावीर ने रोक लिया। क्या दो के समय महावीर तटस्थ रहे और तीसरे के समय तटस्थता छोड दी? यानी दो के समय उनमें कोई करुणा न आई। तीसरे के समय उन पर करुणा आ गई। अगर रोकना था तो पहली ही बार रोक देना था ताकि दो व्यक्ति न मर पाते। या नही रोकना था, तटस्थ ही रहना था तो तटस्थ ही रहना था। कोई मरता या जीता, इसकी चिन्ता न थी।

इसमें बहुत बातें हो सकती हैं। पहली बात यह कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बडा महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति उठा पहले, जरूरी नही कि महावीर को बचाने उठा हो। सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हूँ, सिर्फ अहंकार से उठा हो और अहकार को कोई भी नही बचा सकता, महावीर भी नही बचा सकते हैं। अहंकार तो जलेगा और नष्ट होगा। कहानी तो सीधी-सीधी होती है लेकिन पीछे हमें उतरने की जरूरत होती है। पहला आदमी किसलिए उठा? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा गोशालक मेरा? मैं उससे ज्यादा प्रबल हूँ, अभी उसे पछाड कर रख दूँगा। तो महावीर चुपचाप बैठे रहे होंगे। क्योकि असल में वहाँ एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक—ऐसा नही रहा होगा। वहाँ दो गोशालक थे। दो अहंकार थे जो लडने को खडे हो गए।

महावीर चुप रह गए। चुप रहना ही पडा होगा और कोई उपाय न रहा होगा। तीसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में हो सकता है कि वह किसी अहकार से न उठा हो। विनम्र सीधा-साधा आदमी रहा हो, सिर्फ आहूति देने उठा हो। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएँ, इसलिए उठा हो। महावीर ने रोका उसे।

असल में कहानी सब नही कह पाती और हजारो साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नही रह जाती। क्या कारण होगा ? लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते है तो हमें बहुत कठिनाई नही मालूम पडती। जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए वे कुछ नही कहे हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होगे जिनको बचाने के लिए कुछ किया ही नही जा सकता होगा। वे दो व्यक्ति ऐसे होगे जो महावीर के लिये खडे ही नही हो रहे हैं, अपने लिए ही खडे हो रहे हैं जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के और कोई उपाय नही रहा होगा। तीसरे व्यक्ति को उन्होने रोका, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति अहकार से उठा हो, सिर्फ इसलिए कि जितनी देर तक मैं मरूँगा उतनी देर तक महावीर बचते हैं। वह इतनी विनम्रता से उठा हो कि महावीर को कुछ कहना पडा, रोकना पडा।

महावीर के चित्त में क्या हुआ यह समझना हमें कठिन हो जाता है। क्योकि हम ऊपर से तथ्य देखते हैं—कि दो को मर जाने दिया, एक को बचा लिया। हमें ख्याल में नही आता कि भीतर क्या कारण हो सकता है। भीतर से महावीर देखते खडे होंगे तो सिवाय इसके कुछ भी नही दिखाई पडा होगा। उन दोनो के प्रति भी करुणा रही हो क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबंद चीज नही है कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उनके लिए नहीं रहेगी। लेकिन वे दोनो करुणा के पात्र रहे होंगे। महावीर यह भी जानते होंगे कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नहीं है। क्योकि कुछ लोग हैं जो रोकने से और बढते हैं। न रोके जाएँ तो शायद रुक जाएँ। अहकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है। उसे रोको तो और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे होंगे। एक घटना से मैं तुम्हें समझाऊँ।

मैं जब पढता था तो एक युवक मेरे साथ पढ़ता था। उसका एक बंगाली लडकी से प्रेम था। इतना दीवाना था, इतना पागल था कि वह दो साल

नहीं है कि उन शास्त्रो में कुछ भी न था। उन शास्त्रों में बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं वह यह है कि कोई खोज करेगा तो उसे शास्त्रो में भी मिल जाएगा, लेकिन महावीर उन शास्त्रो को बीच में लाना ही नही चाहते क्योंकि उन शास्त्रों को लाते ही शास्त्रीयता आती है, पाडित्य आता है, सारी दूकान आती है, सारी व्यवस्था आती है। वह ऐसे बोल रहे हैं जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खडा होकर बोल रहा हो जिसको किसी शास्त्र का कोई पता भी न हो।

प्रश्न : गोशालक की कथा का क्या महत्त्व है? महावीर ने प्रथम दो मुनियो को न बचा कर तीसरे को ही क्यों बचाया?

उत्तर : असल में कहानियो को समझना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि वे प्रतीक हैं। और उन प्रतीको में बडी बातें हैं जो खोली जाएँ तो ख्याल में आ सकती हैं, न खोली जाएँ तो बडी कठिनाइया पैदा करती हैं। महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है। वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का, एक योग का प्रयोग कर रहा है कि जिसमें कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए। महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा, वह नष्ट हो गया। दूसरा उठा वह मर गया। महावीर देखते रहे। तीसरा उठा उसको महावीर ने रोक लिया। क्या दो के समय महावीर तटस्थ रहे और तीसरे के समय तटस्थता छोड दी? यानी दो के समय उनमें कोई करुणा न आई। तीसरे के समय उन पर करुणा आ गई। अगर रोकना था तो पहली ही बार रोक देना था ताकि दो व्यक्ति न मर पाते। या नही रोकना था, तटस्थ ही रहना था तो तटस्थ ही रहना था। कोई मरता या जीता, इसकी चिन्ता न थी।

इसमें बहुत बातें हो सकती हैं। पहली बात यह कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बडा महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति उठा पहले, जरूरी नही कि महावीर को बचाने उठा हो। सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हूँ, सिर्फ अहकार से उठा हो और अहकार को कोई भी नही बचा सकता, महावीर भी नही बचा सकते हैं। अहकार तो जलेगा और नष्ट होगा। कहानी तो सीधी-सीधी होती है लेकिन पीछे हमें उतरने की जरूरत होती है। पहला आदमी किसलिए उठा? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा गोशालक मेरा? मैं उससे ज्यादा प्रबल हूँ, अभी उसे पछाड कर रख दूँगा। तो महावीर चुपचाप बैठे रहे होंगे। क्योंकि असल में वहाँ एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक—ऐसा नही रहा होगा। वहाँ दो गोशालक थे। दो अहंकार थे जो लड़ने को खडे हो गए।

महावीर चुप रह गए। चुप रहना ही पडा होगा और कोई उपाय न रहा होगा। तीसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में हो सकता है कि वह किसी अहंकार से न उठा हो। विनम्र सीधा-साधा आदमी रहा हो, सिर्फ आहूति देने उठा हो। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएँ, इसलिए उठा हो। महावीर ने रोका उसे।

असल में कहानी सब नही कह पाती और हजारो साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नही रह जाती। क्या कारण होगा ? लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते हैं तो हमें बहुत कठिनाई नही मालूम पडती। जिन दो व्यक्तियो को बचाने के लिए वे कुछ नही कहें हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होगे जिनको बचाने के लिए कुछ किया ही नही जा सकता होगा। वे दो व्यक्ति ऐसे होगे जो महावीर के लिये खडे ही नही हो रहे हैं, अपने लिए ही खडे हो रहे हैं जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के और कोई उपाय नही रहा होगा। तीसरे व्यक्ति को उन्होने रोका, तो इसका मतलब यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति अहंकार से उठा हो, सिर्फ इसलिए कि जितनी देर तक मैं मरूँगा उतनी देर तक महावीर बचते हैं। वह इतनी विनम्रता से उठा हो कि महावीर को कुछ कहना पडा, रोकना पडा।

महावीर के चित्त में क्या हुआ यह समझना हमें कठिन हो जाता है। क्योकि हम ऊपर से तथ्य देखते हैं—कि दो को मर जाने दिया, एक को बचा लिया। हमें ख्याल में नही आता कि भीतर क्या कारण हो सकता है। भीतर से महावीर देखते खड़े होंगे तो सिवाय इसके कुछ भी नही दिखाई पडा होगा। उन दोनो के प्रति भी करुणा रही हो क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबद्द चीज नही है कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उनके लिए नही रहेगी। लेकिन वे दोनों करुणा के पात्र रहे होंगे। महावीर यह भी जानते होंगे कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नही है। क्योकि कुछ लोग हैं जो रोकने से और बढते हैं। न रोके जाएँ तो शायद रुक जाएँ। अहंकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है। उसे रोको तो और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे होंगे। एक घटना से मैं तुम्हें समझाऊँ।

मैं जब पढता था तो एक युवक मेरे साथ पढ़ता था। उसका एक बगाली लडकी से प्रेम था। इतना दीवाना था, इतना पागल था कि वह दो साल

यूनिवर्सिटी छोड़ कर कलकत्ता जाकर रहा, ताकि ठीक बंगाली हावभाव, बंगाली भाषा, बंगाली कपड़ा, बंगाली उठना-बैठना, सब बंगाली हो जाए। वह दो साल बाद बंगाली होकर लौटा और इतना बंगाली हो गया कि हिन्दी भी बोलता तो ऐसे बोलता जैसे बंगाली हिन्दी बोलता है। लेकिन ठीक वक्त पर उस लडकी ने इन्कार कर दिया। उस लड़की को मैंने पूछा कि क्या बात हो गई है? इन्कारी का क्या कारण है? तो उस लडकी ने कहा कि वह मेरे पीछे इतना पागल है और इतनी गुलाम वृत्ति से भरा हुआ है कि ऐसे गुलाम को पति बनाना मुझे पसन्द नही है। व्यक्ति ऐसा तो चाहिए जिसमें कुछ तो अपना हो, कुछ व्यक्तित्व तो हो?

अब बडी मजेदार घटना घटी। वह बेचारा इसलिए झुका चला आ रहा था और सब स्वीकार करता चला जाता था कि लडकी उसे पसन्द करे। वह लडकी कहे रात तो रात, दिन तो दिन—ऐसा सब भाव ले लिया था लेकिन यही कारण उस लडकी का विवाह से इन्कार करने का था। उसने इन्कार कर दिया। एक रात मुझे खबर आई, नौ बजे होंगे कि उसने कमरे में अपने को बंद कर लिया है, ताला अन्दर से लगा लिया है और जो भी बाहर से कहे 'दरवाजा खोलो' तो वह कहता है कि मेरी लाश निकलेगी, अब मुझसे बात मत करो। अब जिन्दा मेरे निकलने की कोई जरूरत नही है। यह बात फैल गई। भीड इकट्ठी हो गई। सब प्रियजन इकट्ठे हो गए। बूढ़ा बाप रोया। जितना रोया उतनी उसकी जिद् बढती गई। मुझे खबर आई, मैं गया। मैंने देखा वहाँ बाहर का सब इन्तजाम। मैंने कहा: यह सब मिल कर उसको मार डालेंगे क्योंकि उसका जोश बढता चला जा रहा था। जितना वह समझाते थे कि अच्छी लडकी ला देंगे वह कहता. अच्छी लडकी! मेरे लिए कोई अच्छी लडकी ही नही है दूसरी। अच्छे-बुरे का सवाल ही नही है। जितना वह समझाते कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे दरवाजा खोलो, वह बढता चला जा रहा है, वह रुकता नहीं। मैंने उनसे कहा: अगर आप उसे बचाना चाहते हैं तो कृपा करके दरवाजे से हट जाएँ, मुझे बात करने दें।

मैं दरवाजे पर गया। मैंने उससे कहा: अरुण! अगर मरना है तो इतना शोर-गुल मचाने की जरूरत नही। मरने वाले इतना शोर-गुल नहीं मचाते। यह तो जीने वालों के ढंग हैं। मरने वाले चुपचाप मर जाते हैं। तुम्हें तीन घंटे हो गए। क्या तीन चार साल लगेंगे मरने में? तुम जल्दी मरो ताकि हम सब तुम्हें मरघट पर पहुँचा कर निश्चिन्त हो जाएँ। उसने चुपचाप सुना, वह

कुछ नही वोला। अभी वह बड़ा चिल्ला-चिल्ला कर वोल रहा था। मैंने कहा : वोलते क्यो नही ? उसने कहा ' हां ! मैं मर जाऊँगा। मैंने कहा : इसमें हमें कोई एतराज ही नही है। कौन किसको रोक सकता है ? आज रोकेंगे, कल मर जाओगे। इसलिये रोकें भी क्यो ? दरवाजा खोलो। मरने वाले क्या ऐसा दरवाजा वन्द करके भयभीत दिखाई पडते हैं ? एक ही तो भय है जिन्दगी में मर न जाएँ, और तो कोई भय ही नही। और तुमने जव वह भय भी त्याग दिया तो अव तुम किससे डर कर अन्दर वन्द हो। दरवाजा खोलो। उसने दरवाजा खोला और मुझे नीचे से ऊपर तक ऐसा देखा जैसे मैं उनका दुश्मन हूँ। मैंने कहा : तुम मेरे साथ गाडी में वैठ जाओ, चलो। उसने कहा : कहाँ जाना है ? मैंने कहा : भेडाघाट जबलपुर में अच्छी जगह है मरने के लिए। समझदार आदमी कम से कम मरने के लिए अच्छी जगह तो चुन ले। नासमझ तो जिन्दा रहने के लिए भी अच्छी जगह नहीं चुनता। तो तू भेडाघाट मर। और मैं तेरा मित्र रहा इतने दिन तक तो मेरा कर्त्तव्य है कि तुझे आखिरी विदा करने जाऊँ। यानी मित्र का यही मतलव है कि जो हर वक्त काम आए। इस वक्त कोई तेरे काम नही पडेगा, इस वक्त मैं ही तेरे काम पड सकता हूँ। समझने लगा कि यह आदमी पागल हो गया है। लेकिन अव मुझसे कहने की कोई हिम्मत न रही। क्योंकि अव धमकी देने का कोई सवाल न था कि मर जाऊँगा। यह धमकी तो वेमानी थी।

वह चुपचाप चला आया। रात हम सोए। दोनों तरफ विस्तर लगा कर, एक वीच में अलार्म घडी रखकर मैंने कहा कि ठंडी रात है और हो सकता है कि मेरी नींद न खुले। और अलार्म वजे तो तुम कृपा करके मुझे उठा देना क्योंकि तीन वजे हमें निकल चलना है। एक घंटे का रास्ता है। तुम वहाँ कूद जाना। मैं अन्तिम नमस्कार करके लौट आऊँगा और मुझे फिर वापस भी आना है। और भोर होने के पहले आना चाहिये नही तो तुम मरोगे, फँसूँगा मैं। तो तीन वजे ही ठीक होगा। सव वातें वह मेरी ऐसे सुनता रहा चौंक कर लेकिन वह मुझसे कुछ कहता नही था। रात हम सो गए। अलार्म वजा। उसने जल्दी से वन्द किया। जव मैं हाथ ले गया तो वह अलार्म वन्द कर रहा था। उसका हाथ मैंने अपने हाथ में ले लिया। मैंने कहा : ठीक है अव मेरी भी नीद खुल गई है। उसने कहा लेकिन अभी मुझे वहुत ठंड मालूम हो रही है। मैंने कहा : यह तो जीने वालों की भाषा है। ठंड मालूम होना, गरमी मालूम होना, यह कोई मरने वालो के ख्याल नही है। ठंड का क्या मतलव है ? यह आखिरी ठंड है। घंटे

मर का सवाल है। सब खत्म। और मुझे वापस भी लौटना है। मैंने उससे कहा कि ठंड तो मुझे लगेगी क्योकि तू जब डूब जाएगा तब मुझे वापस भी फिर आना है।

वह एकदम गुस्से में बैठ गया और बोला कि आप मेरे दोस्त हो कि दुश्मन ? आप मेरी जान लेना चाहते हो, मैंने आपका क्या बिगाडा है ? मैंने कहा : मैं तुम्हारी जान नही लेना चाहता हूँ और न तुमने मेरा कभी कुछ बिगाडा है। लेकिन अगर तुम जीना चाहते हो तो मैं जीने में साथी हो जाऊँगा। अगर तुम मरना चाहते हो तो मैं उसमें साथी हो जाऊँगा। मैं तुम्हारा साथी हूँ। तुम्हारी क्या मर्जी है। उसने कहा मैं जीना चाहता हूँ। मैंने कहा, तो इतना शोरगुल क्यों मचा रहे थे ?

अब इस आदमी को क्या हुआ ? देखिए। यह आदमी अब भी जी रहा है। और जब भी मुझे मिलता है तो कहता है आपने मुझे बचाया है, नही तो मैं मर जाता। वे सारे बाहर के लोग मुझे मारने की तैयारी करवा रहे थे। वे जितना मुझे बचाने की बातें करते उतना मेरा जोश बढ़ता चला जाता। आदमी के मन को समझना बडा मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और यह भी समझना मुश्किल है कि किस भाँति आदमी का चित्त काम करता है।

क्यों महावीर किसी को रोकते हैं, किसी को नही रोकते हैं, इसे एकदम ऊपर से नही पकड़ लेना है। इसे बहुत भीतर से देखना चाहिए कि महावीर के लिएं क्या कारण हो सकता है। करुणा उनकी समान है। लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। रोकना किसके लिए सार्थक होगा, किसके लिए नही सार्थक होगा, यह भी वह जानते हैं। कौन रोकने से रुकेगा, कौन रोकने से बढेगा यह भी वह जानते है। कौन किस कारण से बढ रहा है, यह भी वह जानते है। इसलिए हो सकता है कि दो व्यक्तियो को नही, दो सौ व्यक्तियो को भी न रोकते। एक एक व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। उनकी सारी व्यवस्था भिन्न-भिन्न है। और उस व्यक्ति को अगर हम गौर से देखेंगे तो उस व्यक्ति के साथ हमें भिन्न-भिन्न व्यवहार करना पडेगा। इसका यह मतलब नही है कि मैं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न हो जाता हूँ। मैं न भी भिन्न-भिन्न होऊँ तब भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और उसे देख कर मुझे कुछ करना जरूरी है।

फिर और भी बहुत सी बातें महावीर देखते हैं, जो कि साधारणतः नहीं देखी जा सकती। उनकी मैं इसलिए बात नहीं करता हूँ कि वह एकदम अदृश्य

की बातें हैं। महावीर यह देख सकते हैं कि इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है। यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का, इसलिए चुप भी रह सकते हैं। और कोई कारण भी न हो, सिर्फ इतना ही दिखता हो कि इस आदमी की उम्र तो समाप्त हो गई है और यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का और कोई निमित्त सुन्दर है तो इसे मर जाने दें। और एक व्यक्ति की उम्र समाप्त नही हुई है, और व्यर्थ उलझाव में पडा है, व्यर्थ उपद्रव में पडा है, सोच सकते हैं रोक लें तो वह उसे रोक लेते हैं।

किन्ही क्षणों में मरना भी हितकर है लेकिन उतने क्षण की अनुभूति और उतनी गहराई हमें ख्याल में नही आ सकती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो कोई ऐसा भी क्षण हो सकता है जब मैं चाहूँ कि वह मर ही जाए। हालाकि यह कैसी अजीब बात है क्योकि जिसको हम प्रेम करते है, उसे हम कभी भी मरने नही देना चाहते। चाहे जीना उसके मरने से ज्यादा दु खदाई हो जाए तो भी हम उसे जिन्दा रखना चाहते हैं किसी भी हालत में। एक बूढ़ा बाप है, नब्बे साल का हो गया है, बीमार है, दु खी है, आंख नही है, उठ नही सकता, बैठ नहीं सकता। फिर भी बेटे, बहू, बेटियाँ, प्रेम में उसको जिन्दा रखे चले जा रहे हैं, चेष्टा कर रहे हैं उसको जिन्दा रखने की। अब पता नही यह प्रेम है या बहुत गहरे में सताने की इच्छा है। कहना बहुत मुश्किल है। अगर सब में यह प्रेम है तो बडा अजीब प्रेम मालूम पडता है कि मेरे सुख के लिए आप जिन्दा रहें। मैं आपको दुःख में भी जिन्दा रखना चाहूँ तो यह प्रेम नही है। मैं दु खी होना पसंद करूँगा। आप मर जाएँगे, मुझे दु ख होगा, पीडा होगी। एक खाली घाव रह जाएगा। वह कभी नही भरेगा। वह मैं पसन्द करूँगा। लेकिन यह पीडा और दु.ख आपका नही सहूँगा। मगर ऐसे प्रेम का शायद पाना बहुत कठिन होगा कि कोई बेटा अपने बाप को जहर दे दे और कहे कि अब नही जीना है आपको क्योंकि मेरा प्रेम नही कहता है कि आपको जीना है। मुझे दु ख होगा आपके मरने का। वह दु ख मैं सहूँगा। लेकिन आप—मुझे दु ख न हो—इसलिए जिएँ यह तो ठीक नही। ऐसे क्षण हो सकते हैं मगर ऐसे बेटे का प्रेम समक्ष में आना बहुत मुश्किल है। लेकिन कभी वह वक्त आएगा दुनिया में जब बेटे इतना प्रेम भी करेंगे, पत्नियाँ इतना प्रेम भी करेंगी, पति इतना प्रेम भी करेंगे। प्रेम का मतलब ही यह है कि हम दूसरे को दु ख में न डाल सकें, उसे हम सुख में ले जा सकें।

तो इसलिए किसी भी घटना में बहुत गहरे उतरने की जरूरत है। अब तक हमें ख्याल में आ सकता है कि क्या प्रयोजन रहा होगा। और न भी ख्याल में आए तो भी जल्दी निष्कर्ष बहुत मंहगी चीज है। और महावीर जैसे व्यक्ति के प्रति तो जल्दी निष्कर्ष बहुत ही मंहगा है क्योंकि उन्हें समझना बहुत कठिन है। जिस जगह हम खडे होते हैं, वहाँ से जो हमें दिखाई पड़ता है, हम वही तक सोच सकते हैं। जिन्हें दूर तक दिखाई पडता होगा, वे क्या सोचते हैं, कैसे सोचते हैं, वे सोचते भी हैं कि नही सोचते हैं यह सब हमारे लिए विचार करना मुश्किल है। वे किसी भाँति जीते हैं, क्यों उस भाँति जीते हैं, अन्यथा क्यो नही जीते यह भी हमें सोचना मुश्किल हो जाता है। हम ज्यादा से ज्यादा अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यही सोच सकते हैं कि इस हालत में हम होते तो क्या करते, दो आदमियों को न मरने देते, या फिर तीनों को ही मरने देते। ये दो ही उपाय थे हमारे सामने। पर हमें उस चेतनास्थिति का कोई अनुभव नही है, जो बहुत दूर तक देखती है, और जिसका हमें कोई ख्याल नही है।

महावीर और गोशालक एक गाँव से गुजर रहे थे। गोशालक ने कहा : जो होने वाला है वही होता है। महावीर कहते हैं : ऐसा ही है, जो होने वाला है वही होता है। पास में ही जिस खेत से वे गुजर रहे हैं, दो पंखुडियों वाला एक पौधा लगा हुआ है, जिसमें अभी कलियाँ हैं जो कि कल फूल बनेंगी। गोशालक उस पौधे को उखाड़ कर फेंक देता है और कहता है कि यह पौधा फूल होने वाला था, और अब नही होगा। वे दोनों गाँव से भिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। इस बीच पानी गिर गया है, पानी गिरने से कीचड़ हो गया है और उस पौधे ने कीचड में फिर जडें पकड ली हैं, वह फिर खडा हो गया है। जब वह उस जगह से वापस लौटते हैं, तो महावीर उससे कहते हैं कि देख! वह कली फूल बनने लगी। वह पौधा लग गया है जमीन से और कली फूल बन गई है।

जिसे दूर तक दिखाई पडता है उसे बहुत सी बात दिखाई पडती हैं जो हमारे ख्याल में भी नहीं आती और जिन्दगी बहुत लम्बा विस्तार है। जैसे कोई एक उपन्यास के पन्ने को फाड डाले और उस पन्ने को पढ़े तो क्या तुम सोचते हो कि उस पन्ने से पूरे उपन्यास के बाबत कोई नतीजा निकल सकता है। हो सकता है कि उपन्यास का बिल्कुल उल्टे नतीजों पर अन्त हो। जो उस पन्ने पर लिखा हो उससे भिन्न चला जाए क्योंकि यह पन्ना सिर्फ उस लम्बी पुस्तक का

छोटा सा हिस्सा है। जिन्दगी में हम भी क्या करते हैं। एक टुकडे को उठा लेते हैं और उस टुकड़े को फैला कर पूरी जिन्दगी को जाँचने चल पडते हैं। मुश्किल है, ऐसा नही जाँचा जा सकता। पूरी जिन्दगी को देखना होगा और पूरी जिन्दगी को देखेंगे तो हम एक टुकडे को भी समझ सकते हैं। नही तो यह टुकडा भी हमारी समझ में नही आ सकता।

प्रश्न : ध्यान के लिए शुद्धीकरण की आवश्यकता है और जब भी किसी का मन केन्द्र पर है, तो उसकी बाह्य क्रिया, उठना-बैठना अनायास स्वय हो जाती है। जब महावीर ध्यान के लिए बैठते हैं तो कुकुरासन और गोदोहासन यह विचित्र बात क्यो ?

उत्तर यह भी समझने जैसी बात है। महावीर को ज्ञान भी हुआ गोदोहासन में। जैसे कोई गाय को दोहते वक्त बैठता है, ऐसे बैठे-बैठे महावीर को परम ज्ञान की उपलब्धि हुई। यह बडा अजीब आसन है। न तो वह गाय दोह रहे थे, गाय भी दोह रहे होते तो एक बात थी। वह गाय भी नही दोह रहे थे। बैठे थे ऐसे। क्यो बैठे थे ? ऐसे कोई साधारणत बैठता नही। यह बडी विचित्र स्थिति मालूम पडती है। इसे समझना चाहिए। इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं।

पहली बात तो यह कि गोदोहासन हमें असहज लगता है। लेकिन सहज और असहज हमारी आदतों की बातें हैं। पश्चिमी व्यक्ति को जमीन पर बैठना असहज है। पालथी मारकर बैठना तो ऐसी असहज बात है कि पश्चिमी व्यक्ति को सीखने में छः महीने भी लग सकते हैं। और छ' महीने मालिश चले उसकी और वह बेचारा हाथ पैर भी सिकोडे तभी वह ठीक से पालथी मार सकता है और फिर भी वह सहज नही होने वाला। क्योंकि पश्चिम में नीचे बैठता ही नही कोई। सब कुर्सी पर बैठते हैं। इसलिए नीचे बैठने की जो हमारी अत्यन्त सहज बात मालूम पडती है वह जो लोग नही बैठते उनके लिए अत्यन्त असहज है। जो अभ्यास में है, वही सहज मालुम पडता है। जिसका अभ्यास नही है, वह असहज मालूम होने लगता है। हो सकता है महावीर निरन्तर पहाड में, जंगल में, वर्षा में, धूप में, ताप में रहे—न कोई घर, न कोई द्वार, न बैठने के लिए कोई आसन, न कोई कुर्सी, न कोई गद्दी। कुछ भी नही है तो, यह बहुत कठिन नही है कि महावीर जगल में रोज सहज उकडू ही बैठते रहे हो। यह बहुत कठिन नही है।

फिर महावीर की एक धारणा और अद्भुत है। महावीर कहते हैं जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जाए उतना अच्छा है। क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की सम्भावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नही बदलते क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो दूसरी करवट विलासपूर्ण है। अकारण दूसरी करवट लेने में कोई चीटी, कोई मकोडा मर सकता है। किसी वृक्ष के तले, जंगल में वह सो रहे हैं। करवट बदली है। चीटियाँ मर सकती हैं। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं। और दूसरी करवट बदलते नही रात भर। ऐसा जो व्यक्ति है, वह उकडू ही बैठता रहा होगा।

जीवन में उनकी जो दृष्टि है, वह यह है कि क्यो व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुँचाएँ। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढंग से उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हैं। जो हमें बिल्कुल सहज लगता है, वह दूसरे को बिल्कुल असहज लगेगा। तुम हाथ जोड कर नमस्कार करते हो, बिल्कुल सहज लगता है। कुछ लोग हैं जो जीभ निकाल कर नमस्कार करते हैं। दो आदमी मिलेंगे तो दोनो जीभ निकालेंगे। अब हम सोच भी नही सकते कि किसी को नमस्कार करो तो जीभ निकालो। लेकिन दो आदमी मिले तो हाथ जोडें यह कौन सी बात है। अगर हाथ जोडे जा सकते हैं तो जीभ भी निकाली जा सकती है। कुछ कौमो में जब आदमी मिलते हैं तो नाक से नाक रगडकर नमस्कार करते हैं। यह बिल्कुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियो को सडक पर नाक से नाक लगाते देखें तो हमें हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम में चुम्बन सहज-सरल सी बात है। हमारे लिये भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सडक पर दूसरे आदमी को चूम ले। जो अभ्यास में हो जाता है वह सहज लगने लगता है। जो अभ्यास में नही है वह असहज लगने लगता है।

महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पंजो पर बैठते रहे होंगे। सर्वाधिक, न्यूनतम हिंसा उसमें है। दूसरा उनके लिए यह सहज भी हो सकता है। अगर दस आदमियों को रात सोते देखें तो आप उन्हें अलग-अलग ढग से सोते देखेंगे। चूँकि अभी अमेरिका में एक प्रयोगशाला बनाई गई है जिसमें अब तक वे दस हजार लोगो को सुलाकर देख चुके है। कोई बीस साल से परीक्षण चलता है जिसमें अजीब-अजीब नतीजे निकाले गए हैं। कोई दो आदमी एक जैसे सोते नहीं। सोने का ढंग, उठने का ढंग अपना-अपना है।

दूसरी बात यह कि जगत् में सहज कुछ भी नही है। परिस्थिति अनुकूल, प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने, समझने का ढग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितियाँ ला सकती हैं। जैसे आम तौर पर महावीर खडे होकर ध्यान करते है। वह भी साधारण नही लगता क्योंकि साधारणत' लोग बैठ कर ध्यान करते हैं। शायद खडे होकर ध्यान करने मे ज्यादा सरल पडता हो क्योकि उसमें मूर्च्छा और तन्द्रा का कोई उपाय नहीं है और हो सकता है कि उकडू वैठने में भी वही दृष्टि हो। उकडू बैठ कर भी आप सो नही सकते। महावोर कहते हैं भीतर पूर्ण सजग रहना है। पूर्ण सजगता के लिए अथक श्रम जरूरी है। हो सकता है कि निरन्तर प्रयोग से उन्हें पता चला हो कि उकडू बैठ कर नीद आने का कोई उपाय नही तो वह उकडू वैठने लगे हो। फिर महावीर का मस्तिष्क परम्परागत नही हैं।

महावीर का मार्ग परम्परा-मुक्त ही नहीं वल्कि एक अर्थ मे परम्परा-निरोधक भी है। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण नही करते। उन्हें जो सरल और आनन्दपूर्ण लगेगा, वह वैसा ही करेंगे। जगत् में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नही है। हम सव परम्परा के अनुयायी हैं। सब जैसे बैठते हैं, वैसे ही हम वैठते हैं। सव जैसे खडे होते हैं, वैसे ही हम खडे होते हैं। सब जैसे वस्त्र पहनते हैं, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं। सब जैसी बातें करते हैं, वैसी ही हम बातें करते हैं। क्योकि सवके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खडे होना अत्यन्त कठिन है इसलिए सबके साथ चलना सरल मालुम पडता है।

महावीर इस तरह के व्यक्ति नही हैं। वे कहते हैं : सब क्या करते हैं, यह सवाल नही है। मुझे क्या करने जैसा लगता है यह सवाल है। और हो सकता है कि मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो और हो सकता है कि मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे, लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका मुझे अधिकार है। मैं वैसा ही जिऊँगा, वैसा ही करूँगा। इन अर्थों में यह निपट व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अपूर्व पक्षपाती हैं। ऐसी-ऐसी बातों में भी, जिनमें कि हम कहेंगे कि इनमें स्वातत्र्य की क्या जरूरत है।

यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसग में कि हमारे शरीर की, और हमारे मन की दशाओ के बीच में एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा होगा कि अगर कोई आदमी चिन्तित है तो वह सिर खुजलाने लगेगा। सभी नही खुजलाने लगते। कोई चिन्तित होगा तभी सिर खुजलायेगा। अगर यह आदमी विना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएँगे कि वह चिन्तित

फिर महावीर की एक धारणा और अद्भुत है। महावीर कहते हैं जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जाए उतना अच्छा है। क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की सम्भावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नही बदलते क्योंकि जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो दूसरी करवट विलासपूर्ण है। अकारण दूसरी करवट लेने में कोई चींटी, कोई मकोडा मर सकता है। किसी वृक्ष के तले, जंगल में वह सो रहे हैं। करवट बदली है। चीटियाँ मर सकती हैं। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं। और दूसरी करवट बदलते नहीं रात भर। ऐसा जो व्यक्ति है, वह उकडू ही बैठता रहा होगा।

जीवन में उनकी जो दृष्टि है, वह यह है कि क्यों व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुँचाएँ। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढग से उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते हैं। जो हमें बिल्कुल सहज लगता है, वह दूसरे को बिल्कुल असहज लगेगा। तुम हाथ जोड कर नमस्कार करते हो, बिल्कुल सहज लगता है। कुछ लोग हैं जो जीभ निकाल कर नमस्कार करते हैं। दो आदमी मिलेंगे तो दोनो जीभ निकालेंगे। अब हम सोच भी नही सकते कि किसी को नमस्कार करो तो जीभ निकालो। लेकिन दो आदमी मिले तो हाथ जोडें यह कौन सी बात है। अगर हाथ जोडे जा सकते हैं तो जीभ भी निकाली जा सकती है। कुछ कौमो में जब आदमी मिलते हैं तो नाक से नाक रगडकर नमस्कार करते हैं। यह बिल्कुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियों को सडक पर नाक से नाक लगाते देखें तो हमें हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम में चुम्बन सहज-सरल सी बात है। हमारे लिये भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। जो अभ्यास में हो जाता है वह सहज लगने लगता है। जो अभ्यास में नही है वह असहज लगने लगता है।

महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पंजो पर बैठते रहे होंगे। सर्वाधिक, न्यूनतम हिंसा उसमें है। दूसरा उनके लिए यह सहज भी हो सकता है। अगर दस आदमियों को रात सोते देखें तो आप उन्हें अलग-अलग ढग से सोते देखेंगे। चूँकि अभी अमेरिका में एक प्रयोगशाला बनाई गई है जिसमें अब तक वे दस हजार लोगो को सुलाकर देख चुके हैं। कोई बीस साल से परीक्षण चलता है जिसमें अजीब-अजीब नतीजे निकाले गए हैं। कोई दो आदमी एक जैसे सोते नहीं। सोने का ढंग, उठने का ढंग अपना-अपना है।

दूसरी बात यह कि जगत् में सहज कुछ भी नही है। परिस्थिति अनुकूल, प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने, समझने का ढग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितियाँ ला सकती हैं। जैसे आम तौर पर महावीर खडे होकर ध्यान करते हैं। वह भी साधारण नही लगता क्योंकि साधारणत' लोग बैठ कर ध्यान करते हैं। शायद खडे होकर ध्यान करने मे ज्यादा सरल पडता हो क्योकि उसमें मूर्च्छा और तन्द्रा का कोई उपाय नहीं है और हो सकता है कि उकडू बैठने में भी वही दृष्टि हो। उकडू बैठ कर भी आप सो नही सकते। महावीर कहते है . भीतर पूर्ण सजग रहना है। पूर्ण सजगता के लिए अथक श्रम जरूरी है। हो सकता है कि निरन्तर प्रयोग से उन्हें पता चला हो कि उकडू बैठ कर नीद आने का कोई उपाय नही तो वह उकडू बैठने लगे हो। फिर महावीर का मस्तिष्क परम्परागत नही है।

महावीर का मार्ग परम्परा-मुक्त ही नहीं बल्कि एक अर्थ में परम्परा-निरोधक भी है। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण नही करते। उन्हें जो सरल और आनन्दपूर्ण लगेगा, वह वैसा ही करेंगे। जगत् में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नही है। हम सब परम्परा के अनुयायी हैं। सब जैसे बैठते हैं, वैसे ही हम बैठते है। सब जैसे खड़े होते हैं, वैसे ही हम खडे होते हैं। सब जैसे वस्त्र पहनते है, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं। सब जैसी बातें करते हैं, वैसी ही हम बातें करते हैं। क्योकि सबके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खडे होना अत्यन्त कठिन है इसलिए सबके साथ चलना सरल मालुम पडता है।

महावीर इस तरह के व्यक्ति नही हैं। वे कहते हैं . सब क्या करते हैं, यह सवाल नही है। मुझे क्या करने जैसा लगता है यह सवाल है। और हो सकता है कि मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो और हो सकता है कि मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे, लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका मुझे अधिकार है। मैं वैसा ही जिऊँगा, वैसा ही करूँगा। इन अर्थों में यह निपट व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अपूर्व पक्षपाती हैं। ऐसी-ऐसी बातो में भी, जिनमें कि हम कहेंगे कि इनमें स्वातन्त्र्य की क्या जरूरत है।

यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसंग में कि हमारे शरीर की, और हमारे मन की दशाओं के बीच में एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा होगा कि अगर कोई आदमी चिन्तित है तो वह सिर खुजलाने लगेगा। सभी नही खुजलाने लगते। कोई चिन्तित होगा तभी सिर खुजलायेगा। अगर यह आदमी बिना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएँगे कि वह चिन्तित

हो जाएगा। प्रत्येक चीज जुड जाती है। आदमी की शारीरिक गतिविधि में भी उसकी मानसिक गतिविधि जुड जाती है। अगर शरीर की गतिविधि बदल दी जाए तो उसके मन की पुरानी गतिविधि के तोडने में सहायता मिलती है। तो कई बार साधक ऐसी व्यवस्था करता है जिसमें उसका पुराना मन अभिव्यक्ति न पा सके क्योंकि पुराने मन की जो-जो आदतें थी, वह उनके बिल्कुल विपरीत चलने लगता है। वह उस पुराने मन को मौका नही देता सबल होने का।

हमें यह ख्याल में नही कि हमारी छोटी-छोटी बातें जुडी हैं। हमें यह भी ख्याल में नही है कि हम जब खास तरह के कपडे पहनते हैं तो खास तरह के आदमी हो जाते हैं। और दूसरी तरह के कपडे पहनते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। एक ढंग से बैठते हैं तो एक तरह के आदमी हो जाते हैं। दूसरे ढंग से बैठते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि हमारा जो मस्तिष्क है, वह इन छोटे-छोटे संकेतों पर जीता है और चलता है। बहुत छोटे-छोटे संकेत उसने पकड रखे हैं। अब हो सकता है कि महावीर का उकडू बैठना एक अजीब घटना है। साधारणत: कोई उकडू नही बैठता। उनका उकडू बैठना, गोदोहासन में ध्यान करना मेरी दृष्टि में गहरे से गहरा अर्थ रखता है कि चित्त को इस तरह बैठने की कोई जोड नही है पुरानी। इस शरीर की स्थिति में पुराना चित्त जोर नही डाल सकता।

/ एक जेन फकीर हुआ। उसकी मृत्यु करीब आई। सब मित्र और प्रियजन पास बैठे हैं। लोग उसे प्रेम करते हैं। उन तक खबर पहुँच गई है। झोपडे के चारो तरफ मेला लग गया है। निकटतम शिष्य खाट के पास खडे हैं। वह खाट से उठ कर खडा हो गया है और उसने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूँ कि कभी तुमने किसी आदमी के खडे-खडे मर जाने की खबर सुनी। उन्होने कहा : खड़े-खड़े मर जाने की? कोई खडा-खड़ा मरेगा? लोग सोए-सोए ही मरते हैं क्योंकि मरने के पहले ही लोग लेट जाते हैं। तब भीड में से एक आदमी ने कहा : नहीं, नही, ऐसा नही है। मैंने एक फकीर के सम्बन्ध में सुना है कि वह खडा-खडा ही मर गया था। तो उसने कहा : फिर जाने दो। तुमने कभी किसी आदमी के चलते-चलते मरने की खबर सुनी है। तो लोगों ने कहा : आप ये बातें क्यों पूछ रहे है? चलते-चलते मरना! चलते-चलते किसलिए मरेगा? असल में, चलना ही रुक जाता है इसीलिए तो मरता है। फिर भी भीड में से एक आदमी ने कहा : नही, नही, यह भी हमने सुना है कि कभी प्राचीन समय में एक आदमी हुआ है जो चलते-चलते मर गया। तो उस फकीर ने कहा यह

भी जाने दो। मतलब कि अपने लिए कोई नया ढंग खोजना पड़ेगा, उस फकीर ने कहा, जैसा कोई भी न मरा हो। तो लोगों ने कहा : यह आप क्या बातें कर रहे हैं। उस फकीर ने कहा : अच्छा तो ऐसा करो, शीर्षासन करते हुए किसी के मरने की खबर सुनी है ? लोगो ने कहा कि यह तो नही सुना और न सोचा कभी कि कोई आदमी शीर्षासन करते हुए मर जाएगा। उस फकीर ने कहा तो चलो फिर यही ठीक रहेगा। क्योंकि दूसरो जैसा क्या मरना ? मरने में एक प्रामाणिकता चाहिए। दूसरे जैसा क्या मरना ? वह आदमी शीर्षासन के बल खड़ा हो गया और मर गया। लेकिन लोग बहुत डरे उसकी लाश को कौन उतारे, यह भी भय समा गया। आदमी मर ही गया सचमुच लेकिन शीर्षासन वह अब भी कर रहा है। मर तो गया है। साथ लोगों ने जाँच ली, हृदय के पास जाकर देखा। धक-धक बन्द है। फिर भी लोगो को लगा कि आदमी अभी शीर्षासन कर रहा है।

भीड़ में बड़ी शंका फैल गई। तो लोगों ने कहा : अच्छा ठहरो थोडा। इसको कुछ मत करो। इसकी बहन पास में रहती है, वह भी भिक्षुणी है, पास के मन्दिर में है। उसको बुला लाओ। वह इसकी आदतों से परिचित है। बहन भागी आई। उसने आकर उसको जोर का धक्का दिया और कहा : अभी तक तुम शरारत नहीं छोड़ते हो। मरते वक्त भी कोई ऐसी बातें करनी पड़ती हैं। जिन्दगी भर अपने जैसे होने की दौड़ थी। मरने में भी उसको कायम रखोगे। तो वह आदमी खिलखिलाया, हँसा, गिर गया और मर गया। अभी तक वह मरा नही था। अभी तक वह मजाक कर रहा था मरने के लिए। एकदम से सोचोगे तो फौरन ख्याल में आ जाएगा कि क्या ऐसा भी आदमी अहंकारी हो सकता है ?

हम अपनी जिन्दगी के साथ कभी मजाक नहीं कर सकते। असल में हम सदा दूसरे के साथ मजाक करते हैं। अहंकार सदा दूसरे के साथ मजाक करता है। सिर्फ निरहंकारी भी अपने साथ मजाक कर सकता है। जिन्दगी की बात तो दूर रही, मरते वक्त भी मजाक करता है। अहंकारी सदा गम्भीर है। सब चीजें गम्भीर हैं वहाँ। मगर निरहंकारी आदमी कैसा बच्चों के खेल जैसा मरने को ले रहा है और उसमें भी खिलवाड़ कर रहा है। और जब वह गिर पड़ा हँसते हुए तो उस भीड़ में हँसी का फव्वारा छूट गया कि क्या अद्भुत आदमी है यह जो मरते वक्त भी खिलखिला कर हँसा है।

अहकार हमें जल्दी से ख्याल में आ सकता है। जब भी कोई व्यक्ति, व्यक्ति होने की कोशिश करता है तो वह अहकारी है। और जिस व्यक्ति के पास व्यक्तित्व नही होता उसी के पास अहंकार होता है। इसे ठीक से समझ लें। लेकिन जिसके पास व्यक्तित्व होता है, उसे अहंकार होता ही नही क्योंकि वह आदमी जैसा है वैसा ही होगा। वह इस दुनिया में कोई फिक्र नही करेगा। लेकिन न फिक्र करना उसकी चिन्ता नही है, उसकी इच्छा नही है। वह तो जो होना चाहता है, वह है। अगर इसमें इन्कार हो जाता है सारे जगत् को तो हो जाए।

जब कोई व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है वही हो जाता है, तभी वह अहकार से मुक्त होता है। और अहंकार है क्या असल में? जो हमारे भीतर होना चाहिए और नही है उसकी जगह हम अहकार को बनाए हुए हैं। अहंकार आत्मा को धोखा देने का काम कर रहा है। जैसा किसी आदमी के पास असली हीरे नहीं हैं तो उसने नकली हीरे की अँगूठी पहन ली है। नकली हीरे की अँगूठी जो है वह असली हीरे की झलक पैदा करती है दूसरो की आँखों में। लेकिन जिसके पास असली हीरे की अँगूठी है वह नकली हीरों की अँगूठी किसलिए पहने? वह उसे फेंक देगा। वह दो कौड़ी की हो गई।

जिसके पास आत्मा है, अहकार से उसका सम्बन्ध ही क्या क्योकि अहंकार की जरूरत ही इसलिए थी। और न वह किसी से हाथ जुड़वाने की चिन्ता रखेगा। वह जैसा चाहेगा वैसा जिएगा। और वैसा आदमी दुनिया को कहेगा कि तुम जैसा जीना चाहो, जियो। लेकिन ऐसे व्यक्ति को पहचानना मुश्किल हो जाएगा। बहुत बार ऐसा व्यक्ति हमें अहंकारी मालूम पड़ेगा क्योंकि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी ही हमारे अहंकार को चोट पहुँचाएगी। और ऐसा व्यक्ति चूकि विनम्रता ग्रहण नही करेगा, इसलिए अहंकार को ऐसे व्यक्ति से कोई तृप्ति नही मिलेगी।

विनम्रता है क्या? दूसरे के अहंकार को तृप्ति देना। तो जो व्यक्ति दूसरे के अहकार को तृप्ति देता है, हम कहते हैं कि यह बड़ा विनीत आदमी है, बहुत विनम्र आदमी है। लेकिन उसकी विनम्रता हम पहचानते कैसे है? पहचानते इस तरह हैं कि वह झुककर हमें नमस्कार करता है। असल में विनम्रता की भाषा अहंकारियों ने खोजी है। अब वे दूसरों को कहते हैं कि सब विनम्र हो जाओ, विनम्रता बड़ी ऊँची चीज है, क्योंकि अगर विनम्र हो जाओगे तो ही अहंकार को खड़ा कर सकोगे, नही तो उनका अहंकार कहाँ खड़ा होगा। सभी

अविनम्र हो गए तो मुश्किल हो जाएगी। लेकिन जो व्यक्ति 'होने' की खोज है, उसमें न कोई अहंकार है न कोई विनम्रता है। वह यह कह रहा है कि 'मैं' 'मैं', हूँ 'आप', आप रहें इसमें कोई झगडा नही है। वह न विनम्रता पाल रहा है, न अहकार पाल रहा है। वह दोनों एक ही चीजें हैं। वह यह कह रहा है कि 'मैं' मैं हूँ, 'तुम' तुम हो। अब बीच में झझट क्या लेनी है? 'तुम' तुम रहो, 'मुझे' मुझे रहने दो। लेकिन यह हमें बहुत कठिन मालूम पडेगा क्योकि हमारे अहंकार से इसका कोई सम्बन्ध नही मिलता है। हम चाहते हैं कि या तो हमारी गर्दन दबाएँ तो हम समझें कि यह कुछ है, या हम इसकी गर्दन दबाएँ तो यह समझे कि हम कुछ हैं। लेकिन वह कहता है कि कोई किसी की गर्दन मत दबाओ। 'तुम' तुम हो, 'मैं' मैं हूँ। कृपा करो। तुम्हें जैसा रहना है तुम रहो, मुझे जैसा रहना है मैं रहूँ। लेकिन न हम खुद रह सकते हैं न हम दूसरे को रहने देना चाहते हैं।

और फिर जो आदमी अपने पर मजाक कर ले, वह आदमी बहुत अद्भुत है। अपने पर मजाक करना बहुत कठिन बात है। दूसरे पर मजाक हम करते हैं, मजाक एक शिष्ट तरकीब है दूसरे को अपमानित करने की। एक शिष्ट तरकीब है जिसमें दूसरा हम से झगड भी नही सकता, क्योंकि मजाक ही तो हम कर रहे हैं, और हम उसे गहरी चोट भी पहुँचा रहे हैं। तो हम दूसरे पर हँस सकते हैं लेकिन अपने पर हँसने वाला आदमी, अपनी जिन्दगी पर हँसने वाला आदमी और अपनी मौत पर हँसने वाला-आदमी बहुत अनूठा है। बहुत ही अनूठा है क्योंकि वह बुनियादी खबर दे रहा है कि अब दूसरे का तो सवाल ही नही रहा, अब हम खुद ही अपने पर हँसने जैसी हालत पा रहे हैं। यानी यह जो मेरा व्यक्तित्व है यह भी हँसने योग्य है। इसमें कुछ ऐसी बात नही है। इसे गम्भीरता से लेने का सवाल नही है। लेकिन दुनिया में साधु सन्त बडे गम्भीर होकर बैठे हैं। उनकी गम्भीरता का बुनियादी कारण यह है कि उन्होने दूसरों का मजाक करना बन्द कर दिया है और अपना मजाक करना वे सीख नही पाए। उनकी गम्भीरता का बहुत गहरे में कारण है 'हँसे कैसे?' दूसरे की मजाक बन्द कर दी क्योंकि वह ठीक नही थी और अपनी मजाक का शुरू करना बहुत कठिन बात है। वह हो नही सकती। तो वे गम्भीर हो गए हैं। यह जो गम्भीरता दिखती है साधुओ की, उसका कारण यही है। मगर जो अपने पर हँस सकता है, वह अगर दूसरे पर हँसता है तो चोट नहीं पहुँचाता। क्योकि दूसरे को लगता है कि यह आदमी हमको भी अपना ही मानता है।

अद्‌भुत बात है इस फकीर की। वह उनमें से है जो मरने का भी अपना ढग खोजते है, जो मृत्यु को भी एक प्रामाणिकता और व्यक्तित्व देना चाहते हैं। और महावीर इन व्यक्तियो में अद्‌भुत है। वह प्रत्येक चीज को अपना व्यक्तित्व देना चाहते हैं। यानी ससार के शास्त्र कहें कि गोदोहासन में किसी को ज्ञान हुआ है तो महावीर गोदोहासन में बैठकर ज्ञान पा लेंगे।

कबीर के मरने का वक्त आया। मरते वक्त तक कबीर काशी में रहा। काशी के पास थोडी दूर पर मगहर एक गाँव है। कथा यह है कि काशी में अगर गधा भी मरे तो देवता हो जाता है। मगहर में अगर देवता भी मरे तो गधा हो जाता है। मगहर के लोग काशी में मरने आते हैं क्योंकि मगहर में तो बडा डर रहता है। दस-पांच दिन पहले मरने के करीब कोई हुआ तो उसे काशी में ले आते है। कबीर जिन्दगी भर काशी रहे। मरने का वक्त आया तो कहा कि मुझे मगहर ले चलो। लोगो ने कहा कि आप पागल हो गये हैं क्या। मगहर से लोग मरने यहाँ आते हैं। जिन्दगी भर तो यहाँ जिये, अब मगहर जाते हो मरने। मगहर में मरता है जो आदमी वह गधा हो जाता है। कबीर ने कहा : वह ठीक है। अगर मगहर में मरने से गधा हुए तो वह मगहर की वजह से हुए, अगर काशी में मरने से कोई देवता हुआ तो वह काशी की वजह से हुआ। दोनो में कोई फर्क नहीं है क्योकि किसी और ही वजह से बात हो गई। बात तो अपनी वजह से होनी चाहिए। तो मुझे पता कैसे चले कि अपनी ही वजह से देवता हुए हूँ। तो कबीर मरे मगहर में।

महावीर कह रहे हैं कि यह कोई सवाल नहीं है कि इस आसन से ध्यान होगा कि उस आसन से ध्यान होगा। आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नही। तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ : आसन से ध्यान का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि ध्यान है आन्तरिक घटना, आसन है बाहर शरीर की स्थिति। जो जिसको आसान हो वही आसन है। सभी को एक जैसा आसन नही भी होता तो महावीर यह भी सूचना देना चाह रहे हैं कि यह धारणा भूल है कि पद्मासन से, सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी। क्योकि इस भांति तो हम ज्ञान को शरीर की बैठक से बांध रहे हैं : असल में शरीर से क्या लेना-देना है। भीतर जो है वह किसी आसन में हो सकता है।

महावीर के गोदोहासन की मूर्तियाँ जैनियों के मन्दिरों में नही मिलती। मूर्तियाँ बनी हैं पद्मासन में क्योंकि पुरानी धारणा है कि ज्ञानी को पद्मासन में

ज्ञान होता है। किन्तु महत्वपूर्ण घटना तो केवल ज्ञान की है। वह आदमी आसन में बैठकर केवल ज्ञान को उपलब्ध हुआ इसकी नही है। निर्वाण वगैरह मूल्य की बातें नहीं हैं। अच्छे अदमी को हम, "मर गया है" ऐसा कहना ठीक नही समझते, इसलिए निर्वाण वगैरह कहते हैं। अच्छा आदमी मरता है तो मर गया, उसे कैसे कहें ? तो उसे निर्वाण कहते हैं ? निर्वाण सिर्फ शरीर का छूटना है। मगर उससे गहरे में भी शरीर पहले छूट चुका है। मगर जैसे महावीर हमें जँचना चाहिए, हम वैसा उनको बना लेते हैं। अब दिगम्बर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएँगे तो एक झाड के पास बनाएँगे ताकि झाड़ की शाखाओ मे उनकी नग्नता छिप जाए। मगर उन्हें सीधा नग्न खडा न कर सकेंगे।

ये महावीर से ज्यादा होशियार लोग हैं। अगर झाड़ के पास ही महावीर खडे रहते हो कि कही नगापन न दिख जाए तो फिर झंझट क्या है ? उससे तो लंगोटी अच्छी है कि कहीं जा भी तो सकते हैं उसको पहनकर। झाड के पास खडे होना बहुत ही बेमानी है। मगर हमारा जो दिमाग है अत्यन्त क्षुद्र, वह सब फौरन ढाल लेता है अपने हिसाब में। फिर जो शक्ल हम बनाते हैं, व्यवस्था हम देते हैं, वह हमारी होती है। वह सच्ची नही होती। अब एक आदमी अगर नगा होने की हिम्मत करे तो उसके अनुयायी उसे नगा न होने देंगे। अगर वह हो ही जाए, न माने तो वे कई तरकीबें निकालेंगे, पीछे उसे लीप-पोतकर बराबर कर देंगे कि वह आदमी नंगा नही था।

इस तरह चलता है, क्रान्तियाँ पैदा होती है और मर जाती हैं। रोज-रोज क्रान्ति की जरूरत पड जाती है। रोज-रोज उन लोगो की जरूरत है जो फिर से आकर चीजों को तोड दें। और यह बडी दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। लेकिन यही होता रहा है कि जितना बडा क्रान्तिकारी होगा उसको उतना ही ज्यादा लीप-पोत दिया जाएगा। यह ख्याल में रखना चाहिए कि दुनिया में जो क्रान्तिकारी नही हुए उनकी प्रामाणिक स्थिति हमें उपलब्ध है। वे जैसे थे हमें उपलब्ध हैं। लेकिन दुनिया में जो बडे क्रान्तिकारी हुए उनको हमने लीप-पोत दिया। उनका हमें कोई पता नही कि वे कैसे थे। बिल्कुल और ही शक्ल उपलब्ध है जो कि वे कभी नही रहे होंगे।

तो प्रश्न ठीक ही है। वह सब चीजें, वह सब जो उन्हें ठीक लगता है, वैसे ही करते हैं। वह किसी देवता से नही पूछेंगे, किसी गुरु से नही पूछेंगे, वे यह नही कहेंगे कि आसन में नही होगा। अगर कोई पूछता है उनसे कि कैसे बैठे

हो, ऐसे कही ज्ञान मिला है किसी को, तो वे कहेंगे : तुम अपने रास्ते जाओ, क्योंकि ज्ञान को अगर आना है तो मेरी शर्तों पर, मैं कोई ज्ञान की शर्तें मानने वाला नही हूँ। मेरी शर्तों पर, मैं जैसा हूँ, उसको वैसे में आना है तो ठीक। अगर कोई व्यक्ति इतना हिम्मतवर और साहसी है तो परमात्मा को उसी की शर्तों पर आना होगा। कोई रुकावट उसमें नही पड सकती। यह अगर ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य की धारणा स्पष्ट हो जाती है।

अब मैं कहता हूँ कि किसी भी आसन में सोए, बैठे, लेटे, खडे ध्यान हो सकता है। यह अपने-अपने चुनाव की बात है कि उसके लिए कैसा सरल हो सकता है। क्योंकि गोदोहासन तक में एक व्यक्ति मोक्ष में जा चुका है। इसलिए अब कोई चिन्ता की बात नही। अब किसी भी आसन में यह घटना घट सकती है। लेकिन शायद ही कोई जैन मुनि गोदोहासन में बैठा मिल जाए क्योंकि आज-कल का जैन मुनि परम्परागत ढंग बाँध कर बैठा है। उसको चलाए जाता है। महावीर का गोदोहासन परम्परा को तोड़ने का प्रतीक है सिर्फ। महावीर जैसा व्यक्ति छोटी-मोटी चीजो में भी परम्परा को तोड देना चाहेगा। यानी ऐसी छोटी बातों में भी वह कहेगा, नही, मैं जैसा हूँ वैसा हूँ। और प्रत्येक व्यक्ति में इतना साहस आना चाहिए तो ही व्यक्ति साधक हो सकता है। और जिस दिन परम साहस प्रकट होता है उसी दिन सिद्ध होने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती।

प्रश्न : आपने पिछले दिनो महावीर के सम्बन्ध मे एकान्त की बात कही थी। तो क्या महावीर का आत्मदर्शन भी एकान्त ही था, सम्पूर्ण नहीं था ?

उत्तर : इस सम्बन्ध में दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक शब्द है 'दृष्टि' और दूसरा शब्द है 'दर्शन'। दृष्टि एकांकी, अधूरी और खण्ड-खण्ड होगी। दृष्टि का मतलब है कि मैं एक जगह खडा हूँ, वहाँ से जैसा दिखाई पड रहा है, जो दिखाई दे रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है और जिस जगह मैं खड़ा हूँ वह जगह भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। जहाँ से खडे होकर मैं देख रहा हूँ, जैसा मुझे दिखाई पडेगा वह दृष्टि होगी और इसी के सम्बन्ध में दर्शन शब्द को समझना बडा कीमती है।

दर्शन का मतलब है जहाँ सब दृष्टियाँ मिट गई, जहाँ मेरे खडे होने की कोई जगह न रही, सच में जहाँ मैं ही न रहा। वहाँ जो होगा, उसका नाम दर्शन है। दर्शन सदा ही समग्र होगा। दृष्टि सदा ही खण्डित होगी। तो

जिसे हम आत्मानुभूति कहें यहाँ जब दृष्टियाँ सब मिट गईं, असल में देखने वाला भी मिट गया, असल में वह जगह भी मिट गई जहाँ हम खड़े थे, वह भी मिट गया जो खडा हो सकता है, सब मिट गया, मेरी तरफ से कुछ भी न बचा, अब जो मुझे प्रतीति होगी, अब जो अनुभव घटित होगा वह समग्र घटित होगा। तो महावीर का जो दर्शन है, या बुद्ध का या कृष्ण का या क्राइस्ट का या मुहम्मद का वह सदा ही समग्र होगा।

दर्शन कभी भी अधूरा नहो हो सकता क्योंकि अधूरा बनाने वाली जो भी बातें थीं, वे सब समाप्त हो गईं। और एक तरफ से समझें।

जब तक मेरे चित्त में विचार हैं, तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दर्शन नहीं होगा। क्योंकि मैं अपने विचार के चश्में से देखूँगा। मेरे विचार का जो रंग होगा, वही उस चीज पर भी पड जाएगा, जिसे मैं देखूँगा। और दर्शन होगा तब जब मैं निर्विचार हो जाऊँगा, जब कोई विचार मेरे पास नहो होगा। जब विचार मात्र नहीं होगा, खाली जगह से मैं देखूँगा, जहाँ मेरा कोई पक्ष नहो, कोई विचार नहीं, कोई शास्त्र नहो, कोई सिद्धान्त नहीं, मैं हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहो, जैन नहो। जब मैं कोई भी नहो, निपट खाली मन रह गया है वहाँ से जब देखूँगा तो वह जो होगा दर्शन होगा। **विचार, दृष्टि तक ले जाता है, निर्विचार, दर्शन तक।**

एक बात और भी समझनी उपयोगी है। दर्शन कितना ही समग्र हो—समग्र होगा ही—**लेकिन जब दर्शन को कोई प्रकट करने जाएगा तब फिर दृष्टि शुरू हो जाएगी।** क्योंकि दर्शन को फिर प्रकट करने के लिए विचार का उपयोग करना पडेगा। और जैसे ही विचार का उपयोग किया कि समग्र नहीं हो सकता। असल में विचार की एक व्यवस्था है, वह कभी भी पूरी नहो हो सकती। विचार चीजों को तोडकर देखता है। और वस्तु में, सत्य में, सब चीजें जुडी हुई हैं। अगर हम विचार से देखने जाएँगे तो जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। जन्म और मृत्यु को विचार में जोडना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि जन्म बिल्कुल उल्टी चीज है, मृत्यु बिल्कुल उल्टी चोज है। लेकिन वस्तुतः जीवन में जन्म और मृत्यु, एक ही चीज के दो छोर हैं। वहाँ जन्म अलग नहो, मृत्यु अलग नहो। जो जन्म पर शुरू होता है, वही मृत्यु पर विदा होता है। वह एक ही यात्रा के दो बिन्दु हैं। पहला बिन्दु जन्म है, अन्तिम बिन्दु मृत्यु है। अगर हम जीवन को देखेंगे तो ये इकट्ठे हैं और अगर विचार से सोचने जाएँगे तो जन्म और मृत्यु अलग-अलग हो जाएँगे। अगर विचार में सोचेंगे तो काला

और सफेद बिल्कुल अलग-अलग हैं। ठंडा और गर्म बिल्कुल अलग-अलग हैं। लेकिन अगर अनुभव में सोचने जाएँगे तो ठंडा और गर्म एक ही चीज के दो रूप हैं, काला और सफेद भी एक ही नमूने के दो छोर हैं। लेकिन जब भी हम प्रकट करने चलेंगे तो हमें फिर विचार का उपयोग करना पड़ेगा।

मुहम्मद को, महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को जो अनुभूति हुई है वह तो समग्र है लेकिन जब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं तो वह समग्र नही रह जाती। तब वह एक दृष्टि रह जाती है। और इसीलिए जो प्रकट दृष्टियाँ हैं, उनमें विरोध पड जाता है। दर्शन मे कोई विरोध नहीं है लेकिन प्रकट दृष्टि में विरोध है।

मैं और आप श्रीनगर आ रहे हैं। श्रीनगर तो एक ही है जिसमें मैं आऊंगा और आप आएँगे। फिर हम दोनों श्रीनगर से गए। फिर कोई हमसे कहेगा कि क्या देखा? जो मैं कहूँगा वह भिन्न होगा, जो आप कहेंगे उससे। श्रीनगर एक था। हम आए एक ही नगर से थे। लेकिन हो सकता है कि मुझे झील पसन्द हो और मैं झील की बात करूँ, और आपको पहाड पसन्द हो और आप पहाड़ की बात करें। और हो सकता है कि मुझे दिन पसन्द हो मैं सूरज की बात करूँ और आपको रात पसन्द हो आप चाँद की बात करें। और हमारी दोनो बातें ऐसी मालूम पडने लगें कि हम दो नगरो में गए होंगे। क्योंकि एक चाँद की बात करता है एक सूरज की, एक अंधेरे को बात करता है एक उजाले की, एक सुबह की बात करता है एक साँझ की, एक पहाड़ की बात करता है एक झील की। शायद सुनने वाले को मुश्किल हो जाए यह बात कि यह पहाड और झील, यह चाँद और सूरज, यह रात और दिन—ये सब किसी एक ही नगर के हिस्से हैं। ये इतने विरोधी भी मालूम पड सकते हैं कि ताल-मेल बिठाना मुश्किल हो जाए। वे जो खबरें हम ले जाएँगे, वे दृष्टियाँ होंगी, वे विचार होंगे। लेकिन जो हमने जाना और जिया था, वह दर्शन था। उस दर्शन में श्रीनगर एक था। वहाँ रात और दिन जुडे थे, पहाड और झील जुडी थी, वहाँ अच्छा-बुरा जुडा था, वहाँ सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए, चुनाव हमने किया, छाँटा तो हम अलग खडे हो गए। और हमने एक दृष्टि से चुनाव किया।

जैसे ही कोई बात बोली जाएगी वैसे ही दृष्टि बन जाएगी। और यही बहुत खतरा रहा है कि दृष्टियों को दर्शन समझने की भूल होती रही है और इसलिए जैनो की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिन्दुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; मुसल-

मानो की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर दर्शन की हम बात करते हैं तो हिन्दू, मुसलमान जैन—सब खो जाएँगे। वहाँ तो एक ही रह जाएगा। वहाँ कोई दृष्टि नहीं है, कोई विचार नही है।

महावीर का जो अनुभव है, वह तो समग्र है लेकिन अभिव्यक्ति समग्र नहीं हो सकती। जब भी हम कहने जाते हैं, तभी समग्र को हम कह नही सकते। परमात्मा का अनुभव तो बहुत बडी बात है। छोटे से, सरल अनुभव भी समग्ररूपेण प्रकट नही होते। आपने फूल को देखा। यह बहुत सुन्दर है—ऐसा अनुभव किया। फिर आप कहने गए। फिर जब आप कहते हैं तो आपको लगता है कि कुछ बात अधूरी रह गई। यानी बहुत-बहुत सुन्दर है, ऐसा कहने पर भी पता नही चलता फूल जैसा था उसका। वह जो आपको अनुभव हुआ जीवन्त, वह जो आपका सम्पर्क हुआ फूल से, वह जो सौन्दर्य आप पर प्रकट हुआ, वह जो सुगन्ध आई, वह जो हवाओ ने फूल का नृत्य देखा, वह जो सूरज की किरणों ने फूल की खुशी देखी वह कितनी ही बार कहें कि बहुत-बहुत सुन्दर है तब भी लगता है कि बात कुछ अधूरी रह गई, कुछ बेस्वाद, बिना सुगन्ध की, मृत, मुर्दा रह गई। कुछ पता नही चलता। वह जो देखा था उसका कोई पता नहीं चलता। जब हम साधारण सी भी बात कहते हैं तो जो हमने अनुभव किया उसके वर्णनो में बहुत कमी पड जाती है। और जब कोई असाधारण अनुभव को कहने जाता है, तब इतनी कमी पड जाती है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। और दुनिया मे जो सम्प्रदाय हैं, वह कही हुई बात पर निर्भर हैं—जानी हुई बात पर नहीं। जानी हुई बात पर कभी सम्प्रदाय निर्मित हो जाएँ यह असम्भव है क्योंकि जो जाना गया है, वह भिन्न है ही नहीं।

एक बार ऐसा हुआ कि फरीद यात्रा कर रहा था। कुछ मित्र साथ थे। और कबीर का आश्रम निकट आया। फरीद के मित्रो ने कहा कि कितना अच्छा हो कि हम कबीर के पास दो दिन रुक जाएँ। आप दोनों की बातें होंगी तो हम धन्य हो जाएँगे। शायद ही जन्मो में ऐसा अवसर मिले कि कबीर और फरीद का मिलना हो और लोग सुन लें। फरीद ने कहा कि तुम कहते हो तो हम जरूर रुक जाएँगे, लेकिन बात शायद ही हो। उन्होने कहा लेकिन बात क्यों नही होगी ? फरीद ने कहा कि वह तो चलकर ठहरेंगे तो ही पता चल सकता है। कबीर के मित्रो को भी खबर लग गई और उन्होंने कहा कि फरीद निकलता है इधर से, रोक लें। प्रार्थना करें हमारे आश्रम में रुक जाएँ दो दिन। आप दोनों की बातें होंगी तो कितना आनन्द होगा। कबीर ने कहा :

रोको जरूर, आनन्द बहुत होगा लेकिन बातें शायद ही हों। पर उन्होंने कहा : बातें क्यों न होंगी? कबीर ने कहा कि वे तो फरीद आ जाए तो पता चले। फरीद को रोक लिया गया। वे दोनों गले मिले। वे दोनों हँसे। वे दोनों पास बैठे। दो दिन बीत गए लेकिन कोई बात नहीं हुई। सुनने वाले बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए हैं। फिर विदाई भी हो गई। फिर कबीर गाँव के बाहर जाकर छोड़ भी आए। वे गले मिले, रोए भी लेकिन फिर भी नहीं बोले। छूटते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा : यह क्या पागलपन है? दो दिन आप बोले ही नहीं। कबीर के शिष्यों ने पूछा : यह क्या हुआ? हम तो घबड़ा गए। दो दिन कैसे चुप रहे? कबीर ने कहा : जो मैं जानता हूं, वही फरीद जानते हैं। अब बोलने का उपाय क्या है?

दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी और एक अज्ञानी बोल सकता है। दो ज्ञानियों के बोलने का उपाय क्या है? और जो बोलता है वह नाहक अज्ञानी बन जाता है क्योंकि वह जो बोल कर कहता है वह दूसरे ने जो जाना है उससे छोटा होता है। और एक बोल कर कहता है तो जानते हुए कि सामने बोल कर कहना बहुत कठिन बात है। क्योंकि उसको लगता है कि उसका जाना हुआ तो अपार है और बोला हुआ छोटा है। तो जो बोलता है वह नासमझ होता है।

फरीद के शिष्यों ने पूछा तो फरीद ने कहा क्या बोलते? कबीर के सामने क्या बोलते? बोल कर मैं फँसता। क्योंकि जो बोलता है वह बोलने से ही गलत हो जाता है। जो जान गया है उसके सामने बोला हुआ सब गलत है। सब न जाना गया हो तो तभी बोला हुआ सच मालूम पड़ता है। लेकिन जिसने जाना हो उसके सामने बोला हुआ इतना फीका है, जैसे मैंने आपको देखा हो निकट से, जाना हो, पहचाना हो और फिर मुझे कोई सिर्फ आपका नाम बता दे और नाम का ही परिचय बता दे तो नाम क्या परिचय बनेगा? जिस व्यक्ति को मैं जानता हूँ उसका नाम क्या परिचय बनेगा? हाँ, जिसको हम नहीं जानते उसके लिए नाम भी परिचय बन जाता है। लेकिन जिसको हम जानते हैं उसके नाम से क्या फर्क पड़ता है? नाम कोई परिचय नहीं बनाता। नाम कोई परिचय है क्या? फरीद ने कहा कि जरूरी था कि मैं चुप रह जाऊँ क्योंकि बोल कर जो मैं कहता, वह सिर्फ नाम होता। और उस आदमी ने जो जाना उसका नाम लेना एकदम बड़ी भूल होती।

तो जहाँ ज्ञान हो वहाँ भेद नहीं है और जहाँ शब्द है वहाँ भेद है। जैसे ही शब्द का प्रयोग करना शुरू हुआ, भेद पड़ने शुरू हो गए। जैसे हम सूरज की

किरण को देखें वहाँ कोई भेद नही है। सूरज की किरण सीधी और साफ है। लेकिन एक प्रिज्म लें और फिर सूरज की किरण को देखें तो प्रिज्म किरण को सात टुकडो में तोड देता है। प्रिज्म के इस पार सूरज की इकहरी किरण देखनी मुश्किल है। प्रिज्म के उस पार सूरज की सात खण्डों में विभाजित किरण देखनी मुश्किल है। शब्द प्रिज्म का काम कर रहा है। जो जाना गया है वह शब्द के उस पार है, जो कहा गया है वह शब्द के इस पार है। शब्द के इस पार सब टूट जाता है खण्ड खण्ड। शब्द के उस पार सब अखण्ड है।

इसलिए महावीर ने जो जाना है वह तो समग्र है लेकिन जो कहा है वह चाहे महावीर कहें, चाहे कोई भी कहे, समग्र नहीं हो सकता। वह एकान्त ही होगा, वह खड ही होगा। और इसीलिए जैन खडित होगा; वह एकांती होगा। क्योंकि महावीर ने जो कहा है, वह उसे पकडेगा। महावीर का समग्र उसकी पकड में नही आने वाला। इसलिए वह जैन होकर बैठ जाएगा। वह अनेकान्त को भी 'वाद' बना लेगा। वह महावीर के दर्शन को भी दृष्टि बना लेगा और उसको पकड कर बैठ जाएगा। इसलिए सभी अनुयायी खड सत्य को पकडने वाले होते हैं।

और यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसने खड सत्य को पकडा है, वह जाने-अनजाने अखड-सत्य का दुश्मन हो जाता है क्योंकि उसका आग्रह होता है कि मेरा खड ही समग्र है। और सभी खडवालो का यही आग्रह होता है कि मेरा खड समग्र है। सभी खड मिलकर समग्र हो सकते हैं लेकिन प्रत्येक खंड का यह दावा है कि मैं समग्र हूँ, दूसरे खड का भी यही दावा है कि मैं समग्र हूँ। यह दावे मिलकर समग्र नही हो सकते। यह दावे सारी मनुष्य जाति को खंड-खंड में बांट देते हैं। मनुष्य जो कि अखड है, इसी तरह टुकडों में, सम्प्रदायो में बटकर टूट गया है।

दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदाय होंगे। दर्शन पर हमारा जोर होगा तो सम्प्रदायो का कोई उपाय नहीं। मेरा सारा जोर दर्शन पर है, दृष्टि पर जरा भी नहीं। महावीर का भी जोर दर्शन पर है और बडे मजे की बात है कि जितनी दृष्टियों से हम मुक्त होते चले जाते हैं उतना ही हम दर्शन के निकट पहुँच जाते हैं। आमतौर से शब्दों से ऐसा भ्रम होता है कि दृष्टि ही दर्शन देती है। लेकिन दृष्टि ही सबसे बडी बाधा है दर्शन में। अगर मेरी कोई भी दृष्टि है तो मैं सत्य को कभी नही जान सकता हूँ। अगर मेरी कोई दृष्टि नहीं है, मैं

दृष्टिमुक्त, दृष्टिशून्य होकर खड़ा हो गया हूँ तो ही मैं पूर्ण को जान सकता हूँ क्योंकि तब पूर्ण को मेरे तक आने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न : दर्शन और अनुभूति एक बात है ?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल ही एक बात है।

प्रश्न : महावीर ने घर में ही रहकर साधना क्यों नहीं की ? बाहर जाने की क्या आवश्यकता थी ?

उत्तर ये सवाल भी हमें उठते हैं। ये प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि घर और बाहर हमें दो विरोधी चीजें मालूम पड़ती हैं। हमें ऐसा लगता है कि घर एक अलग दुनिया है, और बाहर एक अलग दुनिया है। हमें कभी भी ख्याल नहीं आता कि घर और बाहर, एक ही विराट् के दो हिस्से हैं। एक स्वांस भीतर गई तो मैं कहता हूँ कि भीतर गई। और एक क्षण भीतर रही नहीं कि बाहर हो गई। जो एक क्षण पहले बाहर थी वह एक क्षण बाद भीतर हो जाती है। जो एक क्षण भीतर थी वह एक क्षण बाद बाहर हो जाती है। क्या बाहर है और क्या भीतर है ? कौन सा घर है, और कौन सा घर से अतिरिक्त अन्यथा है ?

हमारी जो दृष्टि है वह हमने बड़ी सीमित बना रखी है। घर से हमारा मतलब है जो अपना है और बाहर से हमारा मतलब है जो अपना नहीं है। लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो जो अपना नहीं है। और अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाए कि कुछ भी ऐसा नहीं है जो अपना नहीं है तो घर और बाहर का सवाल समाप्त हो गया। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा। या उल्टा भी कह सकते हैं कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तय है कि जिस व्यक्ति को दिखाई पड़ना शुरू होगा उसे बाहर और भीतर की जो भेद रेखा है, वह मिट जाएगी। वही बाहर है, वही भीतर है।

ये हवाएँ हमारे घर के भीतर भर गई हैं तो हम कह रहे हैं घर के भीतर। और हमें ख्याल नहीं है कि प्रतिपल ये हवाएँ बाहर हुई चली जाती हैं और प्रतिपल जो बाहर थीं वे भीतर चली आती हैं। घर के भीतर हवाएँ कुछ अलग हैं घर के बाहर से ? यह जो प्रकाश घर में आ गया है वह कुछ अलग है उस प्रकाश से जो बाहर है। हाँ, इतना ही फर्क है कि दिवालों ने इसकी प्रखरता छीन ली है। दीवालों ने इसे उतना ताजा और जीवन्त नहीं रहने दिया है

जितना वह बाहर है। हवाएँ जो घर के भीतर आ गई हैं थोडी गदी हो गई हैं। दीवालो ने, सीमाओ ने उनकी स्वच्छता छीन ली है, ताजगी छीन ली है। और अगर कोई व्यक्ति घर के भीतर बैठे-बैठे पाता है कि अस्वच्छ हो गया है सब और द्वार के बाहर जाकर आकाश खुले नीचे खडा हो जाता है तो हम नही कहते हैं कि उसने घर छोड दिया है, हम इतना ही कहते हैं कि घर के बाहर और बडा घर है जहाँ और स्वच्छ हवाएँ हैं और स्वच्छ सूरज है, और साफ सुन्दर जगह है। आदमी की बनाई हुई दीवालें हैं और गौर से हम देखें तो हमारे मोह की दीवाले हैं जो हमारा घर बनाती हैं।

तो मकान बाँधे हुए हैं या हमारा 'मेरा' बाँधे हुए हैं ? इसे हम जरा ठीक से समझ लें तो हमें दिखाई पडेगा 'मेरा' हमारा घेरा है। बहुत गहरे में 'मेरे' का भाव, महत्त्व हमारा मकान है। और ध्यान रहे जो कहता है 'मेरा' वह अनिवार्य रूप से शेष को 'तेरे' मे बदल देता है। जो कहता है 'मेरा' वह शेष को शत्रु बना लेता है। जो कहता है 'अपना' वह दूसरे को पराया बना देता है।

गांधी जी के आश्रम में एक भजन गाया जाता था। 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने।' कोई मुझे पढकर सुना रहा था, तो मैंने कहा कि इसमें थोडा सुधार कर लेना चाहिए। असल में वैष्णव जन तो वह है जो पराए को ही नही जानता। पराई पीर तो बहुत दूसरी बात है। पराए की पीर को जानना हो तो पराए को मानना जरूरी है, और अपने को भी मानना जरूरी है। वैष्णव जन तो वह है जो जानता ही नही कि कोई पराया है, और तभी यह सम्भव भी है कि पराए की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे, तभी जबकि पराया न रह जाए।

तो जो एक हमारे 'मैं' का घेरा है, वही हमारा घर है—'मेरा घर', 'मेरी पत्नी', 'मेरे पिता', 'मेरा बेटा', 'मेरा मित्र', एक 'मेरे' की हमने दुनिया बनाई हुई है। उस 'मेरे' की दुनिया में हमने कई तरह की दीवालें उठाई हुई हैं—पत्थर की भी उठाई हैं, प्रेम की भी उठाई हैं, घृणा की भी उठाई हैं, द्वेष की भी, राग की भी। और एक घर बनाया है। जबकि पूछा जाता है कि महावीर ने घर क्यों छोड दिया है। क्या घर में ही सम्भव नही था ? नही, घर ही सम्भव नही था। घर ही असम्भावना थी। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे तो वह जो 'मेरे' का भाव था वही तो असम्भावना थी। वही रोकता था, वही समस्त से नहीं जुडने देता था। लेकिन अगर किसी को दिखाई पड गया हो कि

सब ही 'मेरा' है, या कुछ भी ऐसा नही जो 'मेरा' है और 'तेरा' है तो फिर कौन-सा घर है जो अपना है और कौन-सा घर है जो अपना नहीं है।

हमें एक ही बात दिखाई पडती है कि महावीर ने घर छोड़ा। वह क्यो दिखाई पड़ती है क्योकि हम घर को पकड़े हुए हैं। हमारे लिए जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, वह यह कि इस आदमी ने घर क्यो छोडा क्योकि हम घर को पकडे हुए लोग हैं। घर को छोड़ने की बात ही असह्य है। यह कल्पना भी असह्य है कि घर छुडा लिया जाए। इस आदमी ने घर क्यो छोडा? लेकिन हम समझ नही पा रहे कि घर की धारणा क्या है?

महावीर ने घर छोडा या कि घर मिट गया? जैसे ही जाना तो घर मिट गया। जैसे ही समझा तो मेरा और अपना कुछ भी न रहा। सबका सब हो गया। यह अगर हमें दिखाई पड जाए तो बडा फर्क पड जाता है। हम यहाँ बैठे हुए हैं। दस करोड मील दूर पर सूरज है। वह अगर ठंडा हो जाए तो हमें पता भी नही चलेगा कि वह ठंडा हो गया क्योकि उसी के साथ हम सब ठंडे हो जाएंगे। दस करोड मील जो सूरज है, वह भी हमारे प्राण के स्पन्दन को बांधे हुए है, वह भी हमारे घर का हिस्सा है। उसके बिना हम हो ही नही सकते। वह हमारे होने को भी संभाले हुए है। लेकिन कब हमने सूरज को घर का साथी समझा है? कब हमने माना है कि सूरज भी अपना है मित्र और अपने परिवार का है? लेकिन जिसे हमने कभी परिवार का नही समझा है उसके बिना हम कोई भी नही होंगे। न परिवार होगा न हम होंगे। वह दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारे हृदय की धड़कन का हिस्सा है। घर के भीतर है या बाहर अगर यह सवाल पूछा जाए तो क्या उत्तर होंगे?

सूरज घर के भीतर है या घर के बाहर? अगर सूरज को घर के बाहर करते है तो हम जीवित नही रहते। सूरज अगर हमारे घर के भीतर हो तो ही हम जीवित हैं। हवाएँ, जो सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं, हमारे घर के भीतर हैं, अगर एक क्षण को न हो जाएँ तो हम उसी क्षण 'न' हो जाएंगे। सूरज तो पास है। दूर के चांद तारे भी, दूर के यह ग्रह उपग्रह भी, दूर के सूरज और महासूरज भी—वे सब भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा हैं।

पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है। लेकिन एक गाय ने घास चरी है और आपके लिए दूध बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर नही है। और घास को सीधा आप चर कर दूध नहीं बना

सकते हैं। बीच में एक गाय चाहिए जो घास को उस स्थिति में बदल दे जहाँ से वह आपके योग्य हो जाए। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने भी मिट्टी को बदला है और घास बन गया। घास आपके घर के भीतर है या बाहर? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की कोई सम्भावना नही है। और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती। और घास मिट्टी ही है लेकिन उस रूप में जहाँ से गाय उसका दूध बना सकती है और जहाँ से दूध आपका भोजन बन सकता है।

क्या हमारा घर है? क्या हमारे घर के बाहर है? अगर हम आँख खोल कर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमें एक कडी न हो तो कुछ भी नहीं होगा। जीवन मात्र एक परिवार है एक सामने पडा हुआ पत्थर भी किसी न किसी अर्थ में हमारे जीवन का हिस्सा है। अगर वह भी न हो तो हम नही कह सकते कि क्या होगा? सब बदल सकता है। तो जिसको जीवन की इतनी विराटता का दर्शन हो जाएगा, वह कहेगा कि सभी सब हैं, सभी मेरे हैं, सभी अपने हैं या कोई भी अपना नहीं है। ये दो भाषाएँ रह जाएँगी उसके पास। अगर वह विधायक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा 'मेरा ही परिवार है सब और अगर वह निषेधात्मक ढग से बोलेगा तो वह कहेगा कि 'मैं ही नही हूँ, परिवार कैसा?' ये दो उपाय रह जाएँगे और ये दोनों उपाय एक ही अर्थ रखते हैं।

तो महावीर ने छोडा घर, परिवार यह बिल्कुल भूल है। असल में बडे परिवार के दर्शन हुए, छोटा परिवार खो गया। और जिसको सागर मिल जाए, वह बूँद को कैसे पकडे बैठा रहेगा? बूंद को तभी तक कोई पकड सकता है जब तक सागर न मिला हो और सागर मिल जाए तो हम कहेंगे कि बूद को आपने छोडा। असल में हमें सागर दिखाई नही पडता, सिर्फ बूंद ही दिखाई पडती है। बूंद को पकडे हुए लोग, बूंद को छोडते हुए लोग—ऐसे हमें दिखाई पडते हैं। हमें सागर नहीं दिखाई पडता। लेकिन जिसे सागर दिखाई पड जाए, वह कैसे बूंद को पकडे रहे। तो बूंद को पकडना निपट अज्ञान हो जाएगा। ज्ञान विराट् में ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बाँध कर पकडा देता है। अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है, ज्ञान निरन्तर विराट् से विराट् हो जाता है।

महावीर ने घर नही छोडा, घर को पकडना असम्भव हो गया। और इन दोनो बातों में फर्क हैं। जब हम कहते हैं कि घर छोडा तो ऐसा लगता है कि घर से कोई दुश्मनी है। और जब मैं कहता हूँ कि घर को पकडना असम्भव

हो गया तो ऐसा लगता है कि और बडा घर मिल गया, विराट् सा घर। उसमें पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ वह बड़े घर का हिस्सा हो गया। यह हमारे ख्याल में आ जाए तो त्याग का एक नया अर्थ ख्याल में आ जाएगा।

त्याग का अर्थ कुछ छोडना नही, त्याग का बहुत गहरा अर्थ विराट् को पाना है। लेकिन त्याग शब्द में खतरा है। उसमें छोडना छिपा हुआ है। उसमें लगता है कि कुछ छोडा है। मेरी दृष्टि में, महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगो को त्यागी कहने में बुनियादी भूल है। इनसे बडा भोगी खोजना असम्भव है। अगर अर्थ समझ लें तो त्याग का अर्थ है कुछ छोडना, भोगी का अर्थ है कुछ पाना।

महावीर से बडा कोई भोगी होना असम्भव है क्योंकि जगत् में जो भी है सब उसका ही हो गया है, उसका भोग भी अनन्त हो गया है, उसका घर भी अनन्त हो गया है, उसकी स्वाँस भी अनन्त हो गई है, उसका प्राण भी अनन्त हो गया है, उसका जीवन भी अनन्त हो गया है। इतने विराट् को भोगने की सामर्थ्य क्षुद्र चित्त में नही होती। क्षुद्र, क्षुद्र को ही भोग सकता है इसलिए वह क्षुद्र को पकड लेता है। लेकिन जब विराट् होने लगे तो ?

एक नदी है, वह चलती है हिमालय से और सागर में गिर गई है। दो तरह से देखी जा सकती है यह बात। कोई नदी से पूछ सकता है . तूने पुराने किनारे क्यो छोड दिए ? तूने पुराने किनारो का त्याग क्यो किया ? ऐसे भी पूछा जा सकता है नदी से : किनारे क्यो छोडे तूने ? और नदी ऐसा भी कह सकती है कि किनारे मैंने छोडे नही, किनारे अनन्त हो गए है। किनारे अब भी हैं। लेकिन अब उनकी कोई सीमा नही है। अब वे असीम हो गए है। अब जो छोटे-छोटे किनारे थे, एक छोटी सी धारा बहती थी और रोज छोटे किनारे छोडती चली आई है इसलिए बडी होती चली गई। गगोत्री पर बडा छोटा किनारा था गगा का। फिर आकर सागर के पास बड़े-बडे किनारे हो गए। लेकिन फिर भी किनारे थे। फिर सागर में उसने अपने को छोड दिया। सागर के बडे किनारे हैं, लेकिन फिर भी किनारे है। कल वह भाप बनेगी और आकाश में उठ जाएगी और किनारे छोड देगी, कोई किनारा नही रह जाएगा।

जीवन की खोज मूलतः किनारों को छोड़ने की या बड़े किनारों को पाने की खोज है। लेकिन जिसको असीम और अनन्त मिल जाता हो उससे जब हम पूछने जाते है कि तुमने किनारे क्यो छोडे तो क्या उत्तर होगा उसके पास ? वह

सिर्फ हँसेगा और कहेगा कि तुम भी आओ और छोड़कर देखो क्योकि जो मैंने पाया है वह वहुत ज्यादा है और उसमें वह पुराना मौजूद ही है।

जो तुम कहते हो छोड दिया, वह कही छोडा नही। घर छूटा नहीं है महावीर का, सिर्फ बडा हो गया है। इतना बड़ा हो गया है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता क्योकि हमें छोटे घर ही दिखाई पड सकते हैं। अगर घर वहुत बडा हो जाए तो फिर हमें दिखाई नही पडता।

त्याग से हटा देनी चाहिए वात और विराट् भोग पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए। और मेरी अपनी समझ है कि जो त्याग से हमने वाँध लिया है इन सव महापुरुषो को इसलिए हम इनके निकट नही पहुँच पाए क्योकि त्याग बहुत गहरे में किसी व्यक्ति को भी अपील नही कर सकता है। वहुत गहरे में, त्याग की वात ही निषेध की वात है। यह छोडो वह छोड़ो, छोडने की भाषा ही मरने की भाषा है। छोडना आत्मघाती है। इसलिए अगर धर्म इस वात पर जोर देता हो कि छोडो, छोड़ो, तो वहुत थोडे से लोग हैं जो उसमें उत्सुक हो सकते हैं। और अक्सर ऐसा होगा कि रुग्ण लोग उत्सुक हो जाएँगे और स्वस्थ लोग उत्सुक नही रह जाएँगे। स्वस्थ भोगना चाहता है, रुग्ण छोडना चाहता है क्योकि वह भोग नही सकता। वीमार, आत्मघाती चित्त के लोग इकट्ठे हो जाएँगे धर्म के नाम पर। स्वस्थ, जीवन्त, जीवन जानने वाले अलग चले जाएँगे, कहेंगे धर्म हमारा नही है। इसलिए तो लोग कहते हैं : युवावस्था में धर्म की क्या जरूरत ? वह तो वृद्धावस्था के लिए है। जवकि चीजें अपने से छूटने लगती हैं तो उन्हें छोड ही दो। फिर अव क्या दिक्कत है ? छोड ही दो, छूट ही रहा है, छीना ही जा रहा है, लेकिन जव जीवन भोग रहा है, पा रहा है, उपलब्ध कर रहा है तव छोडने की भाषा समझ में नही आती। इसलिए मन्दिरों में, मस्जिदों में, गिरजो में वूढ़े लोग दिखाई पडते हैं, जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ते।

वह जो छोडने पर जोर था उसने दिक्कत डाल दी है। मैं इस जोर को एकदम वदलना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ : भोगो और ज्यादा भोगो ? परमात्मा को भोगो और उसका भोग वहुत अनन्त है, क्षुद्र पर मत रुक जाना। क्षुद्र को छोडना तो इसलिए कि विराट् को भोगना है। जितना हम विराट् होते चले जाएँगे, उतना हमारा अस्तित्व मिटता चला जाएगा। लेकिन असल में, 'अस्तित्व

मिट जाता हूँ', ऐसा कहना भूल है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है इतना ही कहना सही है। ईगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्न : नदी सागर में गई तो नदी का कैसे पता लगेगा ?

उत्तर : पता नही लगेगा लेकिन नदी है। अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, वह खोया नही है, वह सब है। हाँ, नदी की तरह नही है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नही खोजा जा सकता। नदी मर गई लेकिन नदी का जो अस्तित्व था वह पूरा का पूरा सुरक्षित है।

प्रश्न : फिर आप कहते हैं कि छोडना तो आत्मघाती है।

उत्तर : हाँ, बिल्कुल आत्मघाती है। छोड़ने की भाषा ही आत्मघाती है। नदी से मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो कि सागर होना सीखो। नदी से मत कहो कि छोड़ो, नदी से कहो कि भोगो। विराटता के पहले रुको मत। दौडो, कूद जाओ सागर में, भोगो, सागर को भोगो। मुझे लगता है कि जगत् को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योकि जो हमारा सामान्य चित्त है और सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नही है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की ओर उठाना है तो उसे विराट् भोग का आमत्रण बनाना चाहिए। अभी उल्टा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है उसके भी निषेध करने का आमंत्रण बना हुआ है। उसे भी इन्कार करो। और यह मैं मानता हूँ कि अगर हम विराट् को भोगने जाएँगे तो क्षुद्र का निषेध करना पडेगा। नदी को सागर बनना है तो वह नदी नही रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नही है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोडना ही होगा। लेकिन इस बात पर जोर मत दो।

दो घटनाएँ घट रही हैं। नदी मिट रही है—एक घटना। नदी सागर हो रही है—दूसरी घटना। किस पर जोर देते हैं आप ? अगर सागर होने पर जोर देते है तो मैं मानता हूँ कि ज्यादा नदियो को आप आकर्षित कर सकते हैं कि वे सागर बन जाएँ। अगर आप कहते हैं कि नदी मिट जाओ, सागर की बात मत करो तो शायद ही कोई एक आध नदी को आप तैयार कर लें जो मिटने को राजी हो जाए, जो नदी होने से घबडा गई हो। बाकी नदियाँ तो रुक जाएँगी और कहेंगी : हम बहुत आनन्दित है। हमें नहीं मिटना है। हाँ मिटना तभी सार्थक है जब विराट् का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ दे रहा हो।

तो मेरा जोर इस बात पर है कि धर्म का त्याग मत करो। **धर्म को विराट् भोग बनाओ।** त्याग आएगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पिछली सीढी छूटेगी। लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोडनी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढ़ी पानी है।

प्रश्न : जैसे त्याग शब्द ने गलती की अब तक, वैसे आपका भोग शब्द भी गलती कर सकता है?

उत्तर : बिलकुल कर सकता है। सब शब्द गलती करते हैं। शब्द कोई हो इससे कोई फर्क नही पडेगा। सब शब्द गलती कर सकते हैं क्योंकि अन्ततः **शब्द गलती नहीं करते, अन्तत लोग गलती करते हैं।** लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। और त्याग के विपरीत कोई शब्द नही है सिवाय भोग के। लेकिन जो मैं कह रहा हूँ अगर उसे ठीक से समझा जाए तो मेरा भोग त्याग के विपरीत नही है। मेरा भोग त्याग में से ही है क्योंकि मैं कह रहा हूँ कि दूसरी सीढी पर पैर रखना है तो पहली सीढी छोडनी ही पडेगी। लेकिन मेरा जोर दूसरी सीढी पर पैर रखने पर है। **मेरा जोर आगे बढ़ने पर है। मेरा जोर पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नहीं है।** जोर इस बात पर है कि अगली सीढी पाओ। इसे मैं भोग कह रहा हूँ। पिछला जोर इस बात पर था कि जिस सीढ़ी पर खडे हो उसे छोडो। वह जोर छोडने पर था। पिछली सीढी छोडो—इसके लिए बहुत कम लोगों को राजी किया जा सकता है क्योंकि जिस तरह हम खडे हैं, उसे भी छोड दें यह कठिन है। हाँ, जो उस सीढ़ी पर अत्यन्त दु:ख में है, शायद वह छोड़ने को राजी हो जाए। वह कहे कि इससे बुरा तो कुछ नही हो सकता, यह तो छोड ही देते हैं फिर जो होगा, होगा।

रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेता है, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकता। वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नही समझ सकेगा। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि पिछले पाँच हजार वर्षों में धर्म ने जो भी रूपरेखा ली है, वह रुग्ण, विक्षिप्त, वृद्ध, बीमार—इस तरह के लोगों को आकृष्ट करने का कारण बनी। 'त्याग' शब्द पर जोर देने का परिणाम यह हुआ कि जो स्वस्थ, जीवन्त, जीने के लिए लालायित हैं वह उस ओर नही गया है। उसने कहा : जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमें जीना है।

मिट जाता है', ऐसा कहना भूल है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है इतना ही कहना सही है। ईगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्न : नदी सागर में गई तो नदी का कैसे पता लगेगा ?

उत्तर पता नही लगेगा लेकिन नदी है। अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, वह खोया नही है, वह सब है। हाँ, नदी की तरह नही है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नही खोजा जा सकता। नदी मर गई लेकिन नदी का जो अस्तित्व था वह पूरा का पूरा सुरक्षित है।

प्रश्न ' फिर आप कहते हैं कि छोडना तो आत्मघाती है।

उत्तर : हाँ, बिल्कुल आत्मघाती है। छोडने की भाषा ही आत्मघाती है। नदी से मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो कि सागर होना सीखो। नदी से मत कहो कि छोड़ो, नदी से कहो कि भोगो। विराटता के पहले रुको मत। दौडो, कूद जाओ सागर में, भोगो, सागर को भोगो। मुझे लगता है कि जगत् को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योंकि जो हमारा सामान्य चित्त है और सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नही है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की ओर उठाना है तो उसे विराट् भोग का आमत्रण बनाना चाहिए। अभी उल्टा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है उसके भी निषेध करने का आमत्रण बना हुआ है। उसे भी इन्कार करो। और यह मैं मानता हूँ कि अगर हम विराट् को भोगने जाएँगे तो क्षुद्र का निषेध करना पडेगा। नदी को सागर बनना है तो वह नदी नही रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नहीं है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोडना ही होगा। लेकिन इस बात पर जोर मत दो।

दो घटनाएँ घट रही हैं। नदी मिट रही है—एक घटना। नदी सागर हो रही है—दूसरी घटना। किस पर जोर देते हैं आप ? अगर सागर होने पर जोर देते हैं तो मैं मानता हूँ कि ज्यादा नदियो को आप आकर्षित कर सकते हैं कि वे सागर बन जाएँ। अगर आप कहते हैं कि नदी मिट जाओ, सागर की बात मत करो तो शायद ही कोई एक आध नदी को आप तैयार कर लें जो मिटने को राजी हो जाए, जो नदी होने से घबडा गई हो। बाकी नदियाँ तो रुक जाएँगी और कहेंगी : हम बहुत आनन्दित है। हमें नही मिटना है। हाँ मिटना तभी सार्थक है जब विराट् का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ दे रहा हो।

तो मेरा जोर इस बात पर है कि धर्म का त्याग मत करो। **धर्म को विराट् भोग बनाओ।** त्याग आएगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पिछली सीढी छूटेगी। लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोडनी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढी पानी है।

प्रश्न जैसे त्याग शब्द ने गलती की अब तक, वैसे आपका भोग शब्द भी गलती कर सकता है?

उत्तर : बिल्कुल कर सकता है। सब शब्द गलती करते हैं। शब्द कोई हो इससे कोई फर्क नही पडेगा। सब शब्द गलती कर सकते हैं क्योंकि अन्ततः **शब्द गलती नहीं करते, अन्तत. लोग गलती करते हैं।** लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। और त्याग के विपरीत कोई शब्द नही है सिवाय भोग के। लेकिन जो मैं कह रहा हूँ अगर उसे ठीक से समझा जाए तो मेरा भोग त्याग के विपरीत नही है। मेरा भोग त्याग में से ही है क्योंकि मैं कह रहा हूँ कि दूसरी सीढी पर पैर रखना है तो पहली सीढी छोडनी ही पडेगी। लेकिन मेरा जोर दूसरी सीढी पर पैर रखने पर है। मेरा जोर आगे बढ़ने पर है। **मेरा जोर पिछली सीढ़ी छोडने पर नहीं है।** जोर इस बात पर है कि अगली सीढी पाओ। इसे मैं भोग कह रहा हूँ। पिछला जोर इस बात पर था कि जिस सीढ़ी पर खडे हो उसे छोडो। वह जोर छोडने पर था। पिछली सीढी छोडो—इसके लिए बहुत कम लोगों को राजी किया जा सकता है क्योंकि जिस तरह हम खडे हैं, उसे भी छोड दें यह कठिन है। हाँ, जो उस सीढी पर अत्यन्त दुःख में है, शायद वह छोडने को राजी हो जाए। वह कहे कि इससे बुरा तो कुछ नही हो सकता, यह तो छोड ही देते हैं फिर जो होगा, होगा।

रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेता है, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकता। वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नही समझ सकेगा। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि पिछले पाँच हजार वर्षों में धर्म ने जो भी रूपरेखा ली है, वह रुग्ण, विक्षिप्त, वृद्ध, बीमार—इस तरह के लोगों को आकृष्ट करने का कारण बनी। 'त्याग' शब्द पर जोर देने का परिणाम यह हुआ कि जो स्वस्थ, जीवन्त, जीने के लिए लालायित है वह उस ओर नही गया है। उसने कहा : जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमें जीना है।

मैं यह कह रहा हूँ कि यह जो जीवन्त धारा है, इसे आकृष्ट करो। और यह तभी आकृष्ट होगी जब विराट् जीवन का ख्याल इसके सामने होगा कि छोड़ना नही है, पाना है। और छोड़ना होगा ही इसमें क्योकि बिना छोडे कुछ भी पाया नहीं जा सकता है। असम्भव ही है कि हम बिना छोडे कुछ भी पा लें। कुछ भी हम पाने चलेंगे तो कुछ छोडना पड़ेगा। और इसलिए सवाल छोडने के विरोध का नही है। सवाल जोर का है, हम किस चीज पर जोर दें।

भोग शब्द में बहुत निन्दा छिप गई है। वह त्यागियों ने पैदा की है। इसलिए मैं भोग का ही उपयोग करना चाहता हूँ, जानबूझ कर। क्योकि वह जो भोग की निन्दा है, वह इन त्यागियो ने ही पैदा की है। वे कहते हैं कि भोग की बात ही मत करो, रस की बात ही मत करो, सुख की बात ही मत करो, क्योकि त्याग करना है। मेरा कहना है कि यह पूरी की पूरी भाषा गलत हो गई है। इसने गलत तरह के आदमी को आकृष्ट किया है, स्वस्थ आदमी को आकृष्ट नही किया है।

जीवन को भोगना है उसकी गहराइयो में। जीवन को जीना है उसकी आत्यन्तिक उपलब्धियों मे, उसके पूर्ण रस में, उसके पूर्ण सौन्दर्य में। परमात्मा इन अर्थों में प्रकट होना चाहिए कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा में जा रहा है उतने जीवन की गहराइयो में जा रहा है। अभी तक का जो त्यागवादी रुख था वह ऐसा था कि जो व्यक्ति परमात्मा की ओर जा रहा है, वह जीवन की ओर पीठ कर रहा है, वह जीवन को छोडकर भाग रहा है, वह जीवन की गहराइयो में नहीं आ रहा है, वह जीवन को इन्कार कर रहा है। वह कहता है कि जीवन हमें नही चाहिए, हमें मृत्यु चाहिए इसलिए; वह मोक्ष की बातें करता है। दूसरी ओर अगर कोई जीवन को मानकर चलेगा तो भी सब छूट जाएगा लेकिन तब उस छूटने पर जोर नही होगा।

मेरा जोर यह है कि आपके हाथ में पत्थर है तो मैं आपसे नही कहता कि आप पत्थर फेंक दो। मैं आपसे कहता हूँ : सामने हीरो की खदान है। मैं नही कहता कि पत्थर फेंको। मैं कहता हूँ कि हीरे बड़े पाने योग्य हैं और सामने चमक रहे है। मैं यह जानता हूँ कि हाथ खाली करने पडेंगे। क्योंकि बिना हाथ खाली किए हीरों से हाथ भरेंगे कैसे ? पत्थर छूट जाएँगे, लेकिन यह छूटना बडा सहज होगा। आपको शायद पता भी नही चलेगा कि अब आपने हाथ से पत्थर गिरा दिए और हीरे हाथ में भर लिए। शायद आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि मैंने पत्थर छोड़े क्योंकि जिसे हीरे मिल गए वह पत्थर छोड़ने की

बात ही नहीं कर सकता। लेकिन पुराना जोर इस बात पर था कि पत्थर छोडो और इसलिए ऐसे लोग हैं जो पत्थर छोड़ने के आधार पर ही जिन्दगी भर जी रहे हैं कि हमने पत्थर छोडे। उन्हें कुछ मिला कि नही, इसका कुछ पता नही, उन्हें आगे की सीढ़ी मिली कि नही, इसका कुछ पता नही क्योंकि मैं यह कहता हूँ कि यह हो सकता है कि पत्थर छोड दिए जाएँ और हीरे न मिलें। लेकिन यह कभी नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएँ और पत्थर न छोड़े जाएँ। हाथ खाली भी रह सकते हैं।

त्याग की भाषा में बहुत से लोगों के हाथ खाली भी करवा दिए हैं। तो जिसके हाथ खाली हैं, वह उन लोगो पर क्रोध से भर जाता है जिनके हाथ भरे हैं। इसलिए हमारा साधु-सन्यासी बहुत ग्लानि में जीता है। वह चौबीस घंटे उनकी निन्दा कर रहा है जिनके हाथ भरे हैं, जो भोग रहे हैं, जो जीवन में सुख पा रहे हैं। वह उन सब को गालियाँ दे रहा है; उनको नरक भेजने का इन्तजाम कर रहा है। उनको आग में जलवा डालेगा, वह इन्तजाम कर रहा है। यह उसकी मानसिक तृप्तियाँ हैं। वह खाली हाथ का आदमी उन लोगों से बदला ले रहा है, जिनके हाथ भरे हुए हैं और जो राजी नही है खाली हाथ करने को। और जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हुए हैं उनको भी उसके हाथ खाली दिखाई पडते हैं, भरा हुआ कुछ दिखाई पडता नहीं। क्योकि मेरा मानना यह है कि अगर भरा हुआ कुछ दिखाई पडे तो स्वाभाविक होगा कि हम भी उसी यात्रा पर निकल जाएँ जहाँ आदमी और भी भर गया है।

आप एक संन्यासी के पास जाते हैं, एक त्यागी के पास जाते हैं तो आप भला कितनी ही प्रशंसा करें उसके त्याग की, आप कितना ही कहें कि 'बडे हिम्मत का आदमी है, इसने यह छोडा, वह छोडा, लेकिन न तो उसकी आँखों में, न उसके व्यक्तित्व में, न उसके जीवन में, यह सुगंध दिखाई पड़ती है जो कुछ आने की है।' मेरा मानना है कि अगर उसके जीवन में कुछ आ जाए तो वह भी त्याग की बातें बन्द कर दे क्योंकि वह भूल जाएगा उन पत्थरों को जो छोडे हैं। अब हीरों की चर्चा होगी जो पाए हैं। लेकिन जो भी त्याग की बातें वह करते चला जा रहा है, अभी भी पत्थर छोडने की बातें करता चला जा रहा है, निश्चित है कि उसके हाथ में कुछ और नही आया है। पत्थर छूट गए हैं। अब एक ही रस रह गया है कि मैंने इतने पत्थर छोडे, मैंने यह छोडा, वह छोडा। यही उसका रस रह गया है। और हम जो चारो ओर इकट्ठे लोग हैं, हमें भी और कुछ दिखाई नही पडता है उसमें। सिर्फ छोड़ना दिखाई पडता है।

छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नही बन सकता। असहज सहज नहीं है। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है। तो अगर वह हमारे ख्याल में हो जाए, अगर वह साफ हो जाए तो महावीर ने घर छोड़ा—इस भाषा को हम नही बोलेंगे। महावीर ने घर छोडा यह तथ्य है। तथ्य इतना है कि महावीर घर में नही रहे। लेकिन इसको हम किस तरह से देखें यह हम पर निर्भर है यह महावीर पर निर्भर नहीं है अब। और मेरी दृष्टि यह है कि महावीर घर छोडकर जितने आनन्दित दिखाई पडते हैं, जितने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, उनके जीवन में जैसी सुगंध मालूम पड़ती है, वह खबर देती है कि घर छोडो नही, बड़ा घर मिल गया है। अगर घर ही छूटता और बाहर रह गए होते सडक पर तो यह हालत नही होने वाली थी। बडा घर मिल गया, महल मिल गया, झोपडा ही छूटा है। इसलिए जो छूटा है, उसकी बात ही नही। जो मिल गया है, वह चारों ओर से उसको आनन्द से भर रहा है।

लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें। ऐसा लगता है कि वह सड़क पर खडा है, जो था वह खो दिया और जो मिलना था वह मिला नही। तो एक अधूरे में अटक गया है। वह एक कष्ट में जी रहा है, वह एक परेशानी में जी रहा है। और हमें जरा सोच लेना चाहिए कि हम किसी को परेशानी में जीते देखकर आदर क्यों देते हैं ?

असल में यह भी बडी गहरी हिंसा का भाव है। एक आदमी जब परेशानी में होता है तो हम उसको आदर देते हैं। और परेशानी अगर खुद ही स्वेच्छा से ली है तब हम और आदर देते हैं। लेकिन यह हमारा आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरे को दु.ख देना चाहते हैं, भीतर से हमारे चित्त में यही होता है कि हम किसको कितना दु.ख दे दें। और जब कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो दु:ख खुद ही वरण करता है तो हम बडे आदर से भर जाते हैं कि यह आदमी बिल्कुल ठीक है। यह हमारे भीतर की किसी बहुत गहरी आकांक्षा को तृप्त करता है। अगर एक आदमी सुखी हो जाए तो आप सुखी नही होते। एक आदमी ज्यादा से ज्यादा सुख में जाने लगे तो आप दु:ख में जाने लगते हैं।

किसी का सुख में जाना आपका दु ख में जाना बन जाता है लेकिन किसी का दु.ख में जाना आपका दु:ख में जाना नहीं बनता। हालांकि कभी हो जाता है कि कोई आदमी दुःख में पडा हो तो आप बहुत सहानुभूति प्रकट करते हैं लेकिन अगर थोडा भीतर झाकेंगे तो आप पाएंगे कि सहानुभूति में भी रस आ रहा है। हो सकता है कोई आदमी बड़ा सुखी हो गया है, या बड़े मकान में जीने

लगा है तो आप प्रशंसा भी करते हो और कहते हो कि बहुत अच्छा है, भगवान् की कृपा है लेकिन इसमें भी भीतर ईर्ष्या घाव कर रही होगी लेकिन जब कोई आदमी स्वेच्छा से दु ख में जाता है तब हम उसको बडा आदर देते हैं क्योंकि वह वही काम कर रहा है जो हम चाहते थे कि करे। इसलिए त्यागियो, तपस्वियों, तथाकथित छोडने वाले लोगों को जो इतना सम्मान मिला है उसका यही कारण है। आप किसी सुखी आदमी को कभी सम्मान नही दे सकते। दु खी हो, और दु ख ओढा गया हो, तब हम उसके पैरों में सिर रख देंगे कि आदमी अद्भुत् हैं।

यह भी मेरा मानना है कि मनुष्य जाति भीतर से रुग्ण है, इसकी वजह से त्यागियो को सम्मान मिलता है। अगर मनुष्य जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगो को सम्मान मिलेगा। जो स्वेच्छा से ज्यादा से ज्यादा सुखी हो गए हैं, उनका सम्मान होगा। और यह भी ध्यान रहे कि हम **जिसको सम्मान देते हैं, धीरे-धीरे हम भी वैसे होते चले जाते हैं।** दु'ख को सम्मान दिया जाएगा तो हम दु खी होते चले जाएँगे, सुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम सुख की यात्रा पर कदम बढ़ाएँगे। लेकिन अब तक सुखी आदमियो को सम्मान नही दिया गया। अब तक सिर्फ दुःखी आदमियों को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य जाति के भीतर दूसरे को दु'ख देने की प्रबल आकाक्षा का हिस्सा है।

प्रश्न . क्या त्यागी आपस मे एक दूसरे को सम्मान नहीं देंगे ?

उत्तर : सम्मान देंगे। अगर बडा त्यागी मिल जाए, अपने को ज्यादा दु'ख देने वाला मिल जाए तो सम्मान देंगे। कारण वही होगा। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा। क्योंकि छोटा त्यागी पन्द्रह दिन खाता है, बडा त्यागी महीने भर भूखा बैठा हुआ है। छोटा त्यागी बडे त्यागी को सम्मान देगा लेकिन बात वही है। दूसरे का दुःख देख कर हमारे मन में सम्मान पैदा होने की बात ही एक भयंकर भूल है।

२२

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक ३० सितम्बर, १९६९

यूरोप में ईसाइयो का एक पन्थ था जो जूतों में लोहे की कीलें लगा लेता था और उनके पैरो में घाव हो जाते थे। उनमें जो गुरु होते, वे सिर्फ जूतों में ही कीलें न लगाते, वे एक पट्टा बाँधते कमर में और उस पट्टे में भी गहरे कील गड़े रहते जो पूरे वक्त छिदते रहते। उठें, बैठें, हिलें और करवट लें, तो खून बहता रहता। जो जितना ज्यादा खून बहाता वह उतना परम गुरु हो जाता। यानी इस बात का नापजोख रखना पडता कि कितने घाव हुए हैं। तुम दस कीलें गडाए हुए हो कि पन्द्रह। तो दस वाला पन्द्रह वाले को आदर देता। एक दूसरा कोडे मारने वालो का सम्प्रदाय था। इस सम्प्रदाय का साधु सुबह उठकर अपने शरीर को नगा करके कोडे मारता था। इसकी चर्चा होती गाँव भर में कि फलाँ आदमी एक सौ कोडे मारता है सुबह। हमको यह बात अजीब लगती है। लेकिन हम भी कहते हैं कि फला साधु ने पन्द्रह दिन का उपवास किया, फलाँ आदमी ने इक्कीस दिन का उपवास किया, फलाँ आदमी महीने भर से उपवास पर है। हम अखबार में फोटो भी निकालते हैं, जुलूस भी निकालते हैं कि इस आदमी ने दो महीने उपवास किया है। यह बडा अद्भुत आदमी है। दो महीने भूखा मरा है। यह भी कोडा ही मारना है। यह भी कीले ही ठोकना है। लेकिन हमें ख्याल भी नही है कि आज तक मनुष्य जाति क्यों खुद को दुःख देने वाले लोगों को इतना आदर देती रही है। जरूर कहीं रुग्ण भाव काम कर रहा है।

चूंकि हमने त्याग के बावत चिन्तन किया इसलिए ये ग्रेडेशन बन गए। अगर हम भोग के लिए चिन्तन करेंगे तो भी ग्रेडेशन बन जाएँगे। भोग भी दिखता है; यह भी दिखता है कि कौन आदमी कितना आनन्दित है, कौन आदमी

कितना शान्त है, कौन आदमी प्रत्येक चीज से कितना सुख लेता है। समझ लें कि एक आदमी फूल के पौधे के पास खडा हुआ है, गुलाव के पास खडा हुआ है तो दिखता है कि वह अपना हाथ कांटे में चुभो रहा है। वह आदमी हमें नही दिखेगा जो फूल की सुगन्ध ले रहा है। वह भी दिख सकता है लेकिन हमने उसे देखा नही है। अव तक हमने उस आदमी को आदर दिया है जिसने गुलाव के कांटे को हाथ में चुभो लिया है और खून वहा लिया है। हमने कहा कि यह आदमी अद्भुत है। हमने उस आदमी को आदर दिया। जिसने फूल की सुगंध ली है हमने कहा कि यह आदमी तो साधारण है, फूल की सुगंध कोई भी लेता है। असली सवाल तो कांटे चुभोने का है। मगर वास्तविक स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। कांटा चुभोने वाला भी वीमार है, रुग्ण है और कांटा चुभोने वाले को आदर देने वाला भी खतरनाक है, रुग्ण है। फूल सूंघने वाला भी स्वस्थ है और फूल सूंघने वाले को सम्मान देने वाला भी स्वस्थ है।

एक ऐसा समाज चाहिए जहाँ सुख का समादर हो, दुःख का अनादर हो। लेकिन हुआ उल्टा है और इस समाज ने इस तरह का धर्म पैदा कर लिया कि इस जगत् में जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे उनको सबसे ज्यादा दुःखी लोगों की श्रेणी में रख दिया। इसलिए महावीर जैसे व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोगों में से गिना जाना चाहिए। यानी उनके आनन्द की कोई सीमा लगानी मुश्किल है। यह आदमी चौवीस घटे आनन्द में है। लेकिन हमारी त्याग की दृष्टि ने वह सारा आनन्द क्षीण कर दिया। हमने यह कहना शुरू किया कि यह आदमी इतने आनन्द में इसलिए है क्योंकि इसने इतना-इतना त्याग किया। जो इतना-इतना त्याग करेगा वह इतने आनन्द में हो सकता है लेकिन वात उल्टी है। यह आदमी इतने आनन्द में है इसलिए इससे इतना त्याग हो गया। यह त्याग हो जाना इतने आनन्द में होने का परिणाम है। कोई आदमी इतने आनन्द में होगा तो उससे इतने त्याग हो जाएँगे। लेकिन हमने उल्टा पकडा। हमने पकडा कि इतने-इतने त्याग किए तो महावीर इतने आनन्द में हुए। तुम भी इतने त्याग करोगे तो इतने आनन्द में हो जाओगे। वहीं वात एकदम गलत हो गई।

त्याग करने से कोई आनन्द में नहीं हो जाता। हाथ के पत्थर छोड देने से हीरे नही आ जाते। लेकिन हीरे आ जाएँ तो पत्थर छूट जाते हैं। त्याग पीछे है, पहले नहीं। और अगर महावीर को हम इस भाषा में देखें और मुझे लगता है कि यही सही भाषा है उनको देखने की, तो हमारा धर्म के प्रति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग होगा। महावीर ने घर नही छोड़ा, वडा घर पाया।

मैं छोडने की भाषा के ही विरोध में हूँ। बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। लेकिन इसका मतलब यह नही कि वह उसके दुश्मन हो गए। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब छोटे घर में रहना असम्भव हो गया है। जब बड़ा घर मिल गया है तो छोटा घर उसका हिस्सा हो गया है।

मैं मानता हूँ कि प्रत्येक चीज भ्रान्ति ला सकती है। यह सवाल नही है। अगर इसमें भी चुनाव करना हो तो मैं कहता हूँ कि भोग भी भ्रान्ति ला सकता है। अगर भोग या त्याग दोनों में ही चुनाव करना हो तो मैं कहता हूँ कि फिर भोग ही ठीक है क्योंकि वह जीवन के स्वस्थ, सहज और सरल होने का प्रतीक है। और यह भी बडे मजे की बात है कि जो आदमी भोगने चलेगा उससे त्याग धीरे-धीरे अनिवार्य हो जाएँगे। वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा वैसे-वैसे बडे भोग की सम्भावनाएँ प्रकट होगी। और त्याग उससे अनिवार्य हो जाएँगे। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भोग की सम्भावनाएँ छिन जाएँगी और नये भोग की सम्भावनाएँ प्रकट नही होगी। वह आदमी सूखता चला जाएगा। यानी यह बात सच है कि ज्यादा खाना भी खतरनाक है, न खाना भी खतरनाक है। फिर भी अगर दोनों में चुनाव हो तो मैं कहूँगा ज्यादा खाना चुन लेना क्योंकि न खाने वाला तो मर ही जाएगा नाहक। ज्यादा खाने वाला बीमार ही पड सकता है। और ज्यादा खाने वाला आज नही, कल इस अनुभव को पहुँच जाएगा कि कम खाना सुखद है। लेकिन न खाने वाला कभी इस अनुभव पर नही पहुँचेगा क्योंकि वह मर ही जाएगा।

मेरा कहना यह है कि अगर भूल भी चुननी हो तो सोच-समझकर चुननी चाहिए। भूल सब जगह सम्भव है क्योकि आदमी अज्ञान में है। इसलिए जो कुछ भी पकडता है तो वह भ्रान्ति ला सकता है लेकिन फिर भी भ्रान्ति ऐसी चुननी चाहिए जिससे लौटने का उपाय हो। जैसे न खाने से लौटने का कोई उपाय नही है, लेकिन ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है। मेरा मतलब आप साफ समझ रहे हैं न? ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है और ज्यादा खाना खुद दु.ख देगा फिर लौटना पड़ेगा। लेकिन न खाना दु ख नही देगा, समाप्ति कर देगा, मिटा ही डालेगा। उससे लौटने की सम्भावना कम हो जाएगी।

फिर यह बात तो ठीक ही है कि सभी शब्द हमें भरमा सकते हैं, भटका सकते हैं क्योंकि हम शब्दों से वही अर्थ निकाल लेना चाहते हैं, जो हम चाहते हैं कि निकले। हम यह नही देखना चाहते कि जो कहा गया है वह हमेशा

रहेगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि साथ देनी चाहिए। मैं कह रहा हूँ कि भोग अन्तत' त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अन्ततः भोग नहीं बनता। एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है लेकिन जो जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोप कर साध्वी बन गई है, उसका ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक वेश्या का अनुभव निरन्तर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान करता है। लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरतर वासना की दिशा में गतिमान करता है।

प्रश्न . वे लोग जो खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोडे मारते हैं, स्वयं को दुःख देते हैं अथवा दूसरो को दु ख देते हैं वे सारे लोग कामशक्ति के विकृत रूप (सेक्स परवर्ट्स) हैं। इसी ढंग से इधर हम जिन्हें त्यागी कहते हैं वे कामशक्ति के विकृत रूप हैं और निर्माता हैं साधु के। दोनों सेक्स परवर्ट्स मे क्या अन्तर है ? क्या हम दोनों को एक ही स्तर पर रख सकते हैं ?

उत्तर . आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दु.ख देना या अपने को दुःख देना या दु खियो को आदर देना या दु ख की सम्भावना को सहारा देना किसी न किसी प्रकार को कामशक्ति का विकृत रूप है। यह बिल्कुल ही सच बात है। इसे समझना जरूरी है। असल में काम या सेक्स निम्नतम सम्भावना है सुख की। समझना चाहिए कि काम प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख है इससे कोई ऊपर उठे, और बडे सुख को खोज ले तो फिर काम के सुख की जरूरत नही रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपान्तरित हो जाता है और अन्तत ब्रह्मचर्य बन सकता है लेकिन इससे बडे सुख को न खोजें और इस सुख को भी इन्कार कर दें तो फिर दु ख की सम्भावनाएँ शुरू हो जाती हैं। यह सीमारेखा है। कामवासना के नीचे दु.ख की सम्भावनाएँ हैं, कामवासना के ऊपर सुख की सम्भावनाएँ हैं। अगर कोई बडे सुख को खोज ले तो कामवासना से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बडे सुख को न खोजे और कामवासना को इन्कार कर दे तो नीचे दु खो में उतर आता है।

तो कामवासना बीच की रेखा है जहाँ से हमारे सुख दु खों में रूपान्तरित होते हैं। यह सीमारेखा है, जहाँ नीचे दुःख है, ऊपर सुख है। इसलिए दुःखी आदमी कामी हो जाता है। सुखी आदमी कामी नही होता। क्योंकि दु खी के लिए ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दु खी समाज है तो वह एकदम बच्चा पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर

आदमी नही करता। अमीर आदमी को अक्सर गोद लेने पडते हैं। उसका कारण है कि गरीब आदमी के पास एक ही सुख है बाकी सब दुःख ही दु.ख हैं। इस दुःख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह कामवासना में चला जाए। एकमात्र सुख का जो अनुभव उसे हो सकता है, वह वही है। अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख फैल जाता है तो कामवासना तीव्र नहीं रह जाती। उसकी तीव्रता कम हो जाती है। सुख कई जगहो में फैल जाता है। वह बहुत तरह के सुख लेता है—सगीत का भी, साहित्य का भी, नृत्य का भी, विश्राम का भी। उसका सुख और तलों पर फैलता है। फैलने की वजह से काम की तीव्रता कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नहीं लेता। बस एक ही तरह का सुख रह जाता है। वह सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दु.ख है दिन भर। सिर्फ मेहनत, गिट्टी फोडना, तोडना—वही सब है।

सेक्स है प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख। अगर कोई आदमी इसमें ही जीता चला जाए तो सामान्यत. जीवन दु ख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुःख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे ऊपर उठना शुरू हो जाए यानी और सुख खोजें, वही धर्म का जगत् है, सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत् है। जैसे-जैसे सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है वह शक्ति जो सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, नये द्वारो से झाक कर सुख पाने लगती है और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से विदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है। इसको कोई कुडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नही पडता।

मामला केवल इतना है कि सेक्स सेण्टर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है। वह रिजरवायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जा सकते हैं तो वह रिजरवायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बंद कर देगा। और अगर आप ऊपर नही ले जा सकते तो वह रिजरवायर रिलीज करेगा। और बडे मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है साधारणतः वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि वह भारी हो जाती है तो वह उसको रिलीज कर देता है। अब समझ लो एक आदमी ऊपर भी नही गया और सेक्स के रिजरवायर को भी उसने रिलीज करना बद कर दिया तो अब उसकी शक्तियाँ नीचे उतरनी शुरू होगी, सेक्स से भी नीचे क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है। उसके नीचे दु ख की सीमाएँ हैं। और ये शक्तियाँ क्या करेंगी? अब ये शक्तियाँ क्या करेंगी?

रहेगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दो का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि साथ देनी चाहिए। मैं कह रहा हूँ कि भोग अन्ततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अन्ततः भोग नही बनता। एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है लेकिन जो जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोप कर साध्वी बन गई है, उसका ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक वेश्या का अनुभव निरन्तर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान करता है। लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरतर वासना की दिशा में गतिमान करता है।

प्रश्न : वे लोग जो खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोडे मारते हैं, स्वयं को दुःख देते हैं अथवा दूसरों को दुःख देते हैं वे सारे लोग कामशक्ति के विकृत रूप (सेक्स परवर्ट्स) हैं। इसी ढंग से इधर हम जिन्हें त्यागी कहते हैं वे कामशक्ति के विकृत रूप हैं और निर्माता हैं साधु के। दोनों सेक्स परवर्ट्स में क्या अन्तर है ? क्या हम दोनों को एक ही स्तर पर रख सकते हैं ?

उत्तर : आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दुःख देना या अपने को दुःख देना या दुखियों को आदर देना या दुख की सम्भावना को सहारा देना किसी न किसी प्रकार की कामशक्ति का विकृत रूप है। यह बिलकुल ही सच बात है। इसे समझना जरूरी है। असल में काम या सेक्स निम्नतम सम्भावना है सुख की। समझना चाहिए कि काम प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख है इससे कोई ऊपर उठे, और बडे सुख को खोज ले तो फिर काम के सुख की जरूरत नही रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपान्तरित हो जाता है और अन्ततः ब्रह्मचर्य बन सकता है लेकिन इससे बडे सुख को न खोजें और इस सुख को भी इन्कार कर दें तो फिर दुख की सम्भावनाएँ शुरू हो जाती हैं। यह सीमारेखा है। कामवासना के नीचे दुःख की सम्भावनाएँ हैं, कामवासना के ऊपर सुख की सम्भावनाएँ हैं। अगर कोई बड़े सुख को खोज ले तो कामवासना से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बडे सुख को न खोजे और कामवासना को इन्कार कर दे तो नीचे दुखो में उतर आता है।

तो कामवासना बीच की रेखा है जहाँ से हमारे सुख दुखों में रूपान्तरित होते हैं। यह सीमारेखा है, जहाँ नीचे दुःख है, ऊपर सुख है। इसलिए दुःखी आदमी कामी हो जाता है। सुखी आदमी कामी नही होता। क्योंकि दुःखी के लिए ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दुखी समाज है तो वह एकदम बच्चा पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर

आदमी नहीं करता। अमीर आदमी को अक्सर गोद लेने पड़ते हैं। उसका कारण है कि गरीब आदमी के पास एक ही सुख है बाकी सब दुःख ही दुःख हैं। इस दुःख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह कामवासना में चला जाए। एकमात्र सुख का जो अनुभव उसे हो सकता है, वह वही है। अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख फैल जाता है तो कामवासना तीव्र नहीं रह जाती। उसकी तीव्रता कम हो जाती है। सुख कई जगहो में फैल जाता है। वह बहुत तरह के सुख लेता है—संगीत का भी, साहित्य का भी, नृत्य का भी, विश्राम का भी। उसका सुख और तलों पर फैलता है। फैलने की वजह से काम की तीव्रता कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नही लेता। बस एक ही तरह का सुख रह जाता है। वह सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दु ख है दिन भर। सिर्फ मेहनत, गिट्टी फोड़ना, तोड़ना—वही सब है।

सेक्स है प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख। अगर कोई आदमी इसमें ही जीता चला जाए तो सामान्यतः जीवन दु ख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुःख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे ऊपर उठना शुरू हो जाए यानी और सुख खोजें, वही धर्म का जगत् है, सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत् है। जैसे-जैसे सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है वह शक्ति जो सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, नये द्वारो से झाक कर सुख पाने लगती है और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से विदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है। इसको कोई कुडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नही पड़ता।

मामला केवल इतना है कि सेक्स सेण्टर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है। वह रिजरवायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जा सकते हैं तो वह रिजरवायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बद कर देगा। और अगर आप ऊपर नही ले जा सकते तो वह रिजरवायर रिलीज करेगा। और बड़े मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है साधारणतः वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि वह भारी हो जाती है तो वह उसको रिलीज कर देता है। अब समझ लो एक आदमी ऊपर भी नही गया और सेक्स के रिजरवायर को भी उसने रिलीज करना बद कर दिया तो अब उसकी शक्तियाँ नीचे उतरनी शुरू होंगी, सेक्स से भी नीचे क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है। उसके नीचे दु ख की सीमाएँ हैं। और ये शक्तियां क्या करेंगी? अब ये शक्तियां क्या करेंगी?

या तो ये दु.ख को सताएँगी या दूसरे को सताएँगी। और मजे की बात यह है कि जो मजा आएगा वह सेक्सुअल जैसा ही है। यानी जो आदमी अपने को कोड़े मार रहा है, वह कोड़े मार कर उतनी शक्ति रिलीज कर देगा जितनी सेक्स से रिलीज होती तो सुख देती। उतनी शक्ति रिलीज होने पर वह थक कर विश्राम करेगा। उसको बड़ा आराम मिलेगा। हमको लगेगा कि उस आदमी ने बड़ा कष्ट दिया अपने को। उसके लिए एक तरह का आराम है क्योंकि वह शक्ति रिलिज हो गई।

ऐसा आदमी खुद को दु ख देने में सुख पाने लगेगा। यह एक तरह का खुद को दु ख देने मे सुख पाना है। जो आदमी खुद को दुःख देने में सुख पाने लगेगा, वह दूसरो को दु ख देने में भी सुख पाने लगेगा। वह दूसरो को भी सताएगा। वह दूसरो को भी परेशान करेगा। वह दूसरो को भी परेशान करने के कई उपाय खोजेगा।

आपने पूछा है कि क्या धार्मिक विकृत परवर्ट) व्यक्ति और साधारण विकृत व्यक्ति में कोई फर्क है। मेरा कहना है कि थोड़ा फर्क है। साधारण विकृत व्यक्ति उस धार्मिक विकृत व्यक्ति से अच्छी हालत मे इसलिए है कि उसको भी यह बोध निरन्तर होगा कि कुछ पागलपन हो रहा है, कुछ गलती हो रही है, कुछ भूल हो रही है, मैं कुछ बीमार हूँ। धार्मिक विकृत को यह बोध भी नही होता। वह समझता है कि उससे गलती हो ही नही रही। वह साधना कर रहा है। वह सही कर रहा है। और जो वह कर रहा है उसके लिए उसने न्याययुक्त कारण खोज रखे हैं। इसलिए वह कभी अपने को पागल, विक्षिप्त या रुग्ण नहीं समझेगा। दूसरी बात यह है कि साधारण विक्षिप्त आदमी अपनी विक्षिप्तता को छिपाएगा, प्रकट नही करेगा। हो सकता है कि वह रात में अपनी पत्नी की गर्दन दबाए, कांटे चुभोए।

'दी सादे' एक बहुत बडा लेखक हुआ। उसके प्रेम करने का ढग ही यही था। उसी से दु.खवादी (सैडिस्ट) शब्द बना। वह जब भी किसी स्त्री को प्रेम करता उसके लिए कोड़ा, चाकू, कांटे अपने साथ रखता। एक ही बैग था उसके पास। जब वह किसी स्त्री को प्रेम करता तब वह दरवाजे बन्द कर देता। उसका पहला काम यह था कि वह उसको नग्न कर देता और कोड़े मारना शुरु कर देता। वह भागती और चिल्लाती। वह जितनी चीखती और चिल्लाती उतना उसको आनन्द आने लगता। वह कांटे चुभोता। आम तौर से हमको ख्याल में

नहीं आता है कि अगर प्रेम में कोई व्यक्ति किसी स्त्री को नाखून खपा रहा है, नोच रहा है तो किसी अंश में यह सैडिज्म है। अब एक आदमी जरा इसमें आगे चला गया, उसको नाखून काफी नही मालूम पडते, तो उसने कांटे बना रखे हैं। लेकिन मजे की बात यह है कि 'डी सादे' से सैकड़ो स्त्रियो का सम्बन्ध रहा। वह बहुत अद्भुत आदमी था। उसको न मालूम कितनी स्त्रियाँ प्रेम करती थी—वह ऐसा आदमी था। वह बडा प्रतिभाशाली भी था। जिन स्त्रियो ने उसको प्रेम किया उनका भी कहना है कि जो आनन्द उसके साथ आया वह कभी किसी के साथ नही आया। अब यह बडे मजे की बात है कि उसका कोडा मारना भी स्त्रियाँ पसद करती थी। कारण कि वह कोडे मार कर इतनी वेदना पैदा कर देता कि वे दौड रही हैं, वह कोडे मार रहा है, काटे चुभो रहा है, बाल खीच रहा है, नाखून चुभो रहा है, काट रहा है तो स्त्री के पूरे शरीर को वह इतना कम्पन से भर देता कि जब वह सेक्स में जाता उसके साथ तो स्त्री आनन्द की चरम सीमा को उपलब्ध होती जो कि साधारणत· स्त्रियाँ नही छू पाती। सम्भोग में सौ में से निन्यानवें स्त्रियाँ आनन्द की चरम सीमा को कभी नही पहुँच पाती क्योंकि उनका पूरा शरीर ही नहीं जग पाता। तो इतना सताने के बाद भी वे उसको पसद करती। वह आदमी अद्भुत था। और उसका कहना था कि जब तक मैं सता न लूँ तब तक मुझे कुछ आनन्द आता ही नही।

ठीक डी सादे जैसा एक दूसरा आदमी था 'मेसोच' जिसके नाम पर 'मैसोचिज्म' चला है। वह अपने को सताता था। और सता कर बडा सुखी होता था। असल में हमारे पास जो शक्ति बच जाती है, या तो हम उसे सुख को दिशा में गतिमान कर सकते हैं या फिर दु.ख की दिशा में। दो ही दिशाएँ हैं। तीसरी कोई दिशा नही। आप ठहर नही सकते बीच में। या तो आप सुख की दिशा में अपने को ले जाएँ, नही तो फिर शक्तियाँ दु.ख की दिशा में जाना शुरू हो जाएँगी।

अब एक तीसरा आदमी भी है जो थोडा अपने को भी सताता है, थोडा दूसरे को भी सताता है। सताने के कई ढंग हो सकते हैं जो हमको ख्याल में नही आते। असल में आदमी कैसे-कैसे सताता है, वह हमें पता ही नही चलता। जब वह सीमा के बाहर हो जाता है तब पता चलना शुरू होता है कि मामला गडबड हो गया, यह आदमी कुछ गडबड हो गया। मैं यह कह रहा हूँ कि दो ही दिशाएँ हैं। अगर आप बीच में ठहरते हैं तो दोनों दिशाओ का गोलमोल आपके व्यक्तित्व में होगा। कभी आप सताएँगे, कभी न सताएँगे। इसलिए यह

होता है कि पति कभी पत्नी को सताएगा भी, कभी प्रेम भी करेगा। सताएगा फिर प्रेम करेगा, प्रेम करेगा फिर सताएगा। पत्नी भी सताएगी। एक दिन प्रेम करती दिखाई पडेगी, दूसरे दिन सताती दिखाई पडेगा। सुबह उपद्रव मचाएगी, सांझ पैर दावेगी। यह कुछ समझ में आना मुश्किल होता है कि यह दोनो वातें एक साथ क्यों चलती हैं। और ध्यान रहे कि जिससे हमने थोड़ी देर प्रेम किया, थोड़ी देर वाद हम उसको सताएँगे। अक्सर यह होता है कि पति-पत्नी लडते-लड़ते प्रेम में आ जाते हैं और प्रेम में आते-आते लडना शुरू कर देते हैं। यह तो रही साधारण व्यक्ति की वात लेकिन जो असाधारण (एवनार्मल) व्यक्ति है वह या तो सुख की दिशा में चला जाता है या दुःख की दिशा में चला जाता है। लेकिन सुख की दिशा में जाने से शायद वह अन्तत परमात्मा तक पहुँच जाता है क्योकि परमात्मा परम सुख है। और दु ख की दिशा में जाने से शायद वह शैतान तक पहुँच जाता है क्योकि शैतान होना अन्तिम दु ख है।

यहाँ एक और वात को भी समझ लेना जरूरी है कि धार्मिक आदमी इन कामो को प्रकट में करेगा; अधार्मिक आदमी इनको अप्रकट में करेगा। धार्मिक आदमी ज्यादा खतरनाक भी है क्योकि वह प्रकट में करके उनको फैलाता भी है, उनका विस्तार भी करता है। वह लोगो में यह भाव भी पैदा करता है कि जो वह काम कर रहा है वे कोई विक्षिप्तता के नहीं। वे काम वडी साधना के हैं। और पागल आदमी को यह ख्याल में आ जाए कि वह ऊँची वात कर रहा है तो पागलपन के ठीक होने की सम्भावना ही नही रहती। हिन्दुस्तान में पागलो की सख्या कम है, यूरोप में पागलों की संख्या ज्यादा है। लेकिन अभी संन्यासी, साधुओ और अपने को सताने वालों की संख्या हिन्दुस्तान के पागलो से जोड दी जाए तो संख्या वरावर हो जाती है। वहाँ जो आदमी पागल है वह पागल है, जो आदमी पागल नही है वह पागल नही है। यहाँ पागल और गैर पागल के पीछे एक रास्ता दूसरा ही है।

जवलपुर में एक आदमी है जो एक सौ आठ वार वर्तन साफ करेगा तव पानी भर कर लाएगा। यह आदमी यूरोप में हो तो पागल समझा जाएगा। यह आदमी हिन्दुस्तान में है तो धार्मिक समझा जाता है। लोग कहते हैं कि परम धार्मिक आदमी है, शुद्धि का कैसा ख्याल है। यह आदमी एक सौ आठ वार वर्तन साफ करता है। और इसमें भी अगर कोई स्त्री निकल गई वीच में तो

टूट गई पहली शृंखला। वह फिर एक से शुरू करेगा। यह आदमी धार्मिक है। कई लोग इसके पैर छुएँगे और कहेंगे कि आदमी परम धार्मिक है। कभी-कभी उसका दिन-दिन लग जाएगा इसी में क्योंकि वह नल पर बर्तन धो रहा है, और स्त्री फिर निकल गई, अशुद्ध हो गया बर्तन। अब वह फिर शुद्ध कर रहा है। अब यह आदमी अगर यूरोप में हो तो फौरन पागलखाने में भेज दिया जाएगा। मगर यहाँ वह मन्दिर में बैठ जाएगा, पुजारी हो जाएगा, साधु हो जाएगा। इसको आदर मिलने लगेगा। तो धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक है।

महावीर के जीवन की एक घटना है। महावीर ने सब तरह के उपकरण बन्द कर दिए हैं। वह साथ में कोई सामान नही रखेंगे क्योंकि साधन भी एक बोझ हो जाता है। जिस व्यक्ति ने सारे जीवन को अपना ही मान लिया है वह समझ गया कि अब ठीक है, कल सुबह जो होगा, होगा। तो महावीर कुछ साथ न रखेंगे। कौन बोझ को ढोता फिरे? वह बाल बनाने का उस्तरा भी नही रखते। जब बाल बहुत बढ जाते हैं तो उनको उखाड देते हैं। महावीर के लिए यह बाल का उखाडना भी विक्षिप्तता का कारण नही है। यह अत्यन्त सहज बात है क्योंकि कुछ रखना नही है साथ। सरलतम यही है कि बाल उखाड दिए, साल-दो साल में बढ गए, फिर उखाड दिए, यात्रा चलती रही। इतना भी सामान साथ क्यो रखकर बाँधना? क्यों बोझ लेना है? क्योंकि सामान का बोझ नही है गहरे में लेकिन सामान को पकड कर रखने में सुरक्षित होने की कामना है। और वह असुरक्षित ही पूरा जीते हैं। कोई सुरक्षा का भाव नही, कुछ रखने का भाव नही। जहाँ जो मिल गया वही हाथ में लेकर खा लेते हैं। कौन बर्तन का उपद्रव साथ में करे? लेकिन महावीर का यह बाल उखाडना कुछ पागलो के लिए बहुत आकर्षक मालूम पडा होगा। पागलों का एक वर्ग है जो बाल उखाडता है, जो बाल उखाडने में रस लेता है। वह भी एक तरह का सताना है अपने को। तो इसमें कठिनाई नही है कि महावीर का बाल उखाडना देखकर कुछ पागल बाल उखाडने में रस लेने लगे हों, महावीर के पीछे साधु हो गए होंगे इसलिए कि अब बाल उखाडने से कोई उनको पागल नही कह सकता।

महावीर नग्न हो गए हैं क्योंकि अगर कोई व्यक्ति इतना सरल हो जाए, इतना निर्दोष हो जाए कि उसे नग्नता का बोध ही न रहे तो कोई बात नही। खुद की नग्नता का बोध हमें तभी तक होता है जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं। जब तक हमारा शरीर कोई नग्न देख ले इससे भयभीत

होते हैं। यह दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक हम दूसरे के कपड़े उघाड़ना चाहते हैं तब तक हम खुद पर कपडे ढाँकना चाहते हैं। लेकिन जिस आदमी का दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव चला गया हो वह खुद नग्न खडा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हो गए। लेकिन कुछ लोग हैं जो अपने को नंगा दिखाना चाहते हैं। यह पागलो का वर्ग है। तो महावीर के पास-पास ऐसे संन्यासी हो गए हैं जो यह चाहते हैं कि कोई उन्हें नंगा देखे यानी उनकी चाह बिल्कुल दूसरी है। लेकिन घटना एक सी मालूम होती है।

अभी यूरोप में और कई मुल्कों में ऐसे लोग हैं जो रास्ते के किनारे पर खडे रहेंगे। जब कोई अकेला निकल रहा है तो पेन्ट खोलकर, नंगा होकर एकदम भाग जाएँगे उसको दिखाकर। इन पर रोक है कि ये आदमी खतरनाक हैं। अब इनको क्या हो रहा है? इनको क्या रस आ रहा है? दूसरा इनको नंगा देख ले यह इनका रस है। और ये पागल हैं। ये निपट पागल हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में ये नगे साधु हो सकते हैं और तब इनका पागलपन हमको पता ही नही चलेगा।

अब कठिनाई यह है कि जीवन में दोनो घटनाएँ घट सकती हैं। एक आदमी इसलिए नग्न हो सकता है कि अब उसके मन में नग्नता को छिपाने, ढाँकने, देखने का कोई भाव ही नही रहा। वह परम सरल हो गया है तो बच्चे की तरह नग्न हो सकता है। और एक आदमी पागल की तरह नग्न हो सकता है लेकिन नग्न होने में उसे रस है कि लोग उसे नंगा होते हुए देखें। और यह दोनो घटनाएँ एक साथ घट सकती हैं। इसलिए बडी कठिनाई है जीवन को साफ-साफ समझने में। लेकिन कठिनाई पहचानी जा सकती है, नियम बनाए जा सकते हैं। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सो में भी सरल होगा। मगर जिसे नग्नता का आनन्द है उसके लिए यह भोग का ही हिस्सा है। उसके लिए, कपडे छोडे, जोर इस पर नही, लेकिन नग्नता आई, जोर इस पर है। दूसरी ओर एक आदमी ऐसा है जिसका जीवन इतना सरल हो गया जैसे एक बच्चे का, पशु-पक्षी का—सरल और निर्दोष कि वह नग्न खडा हो गया। लेकिन यह आदमी जीवन के दूसरे हिस्सो में एकदम सरल होगा, निष्कपट होगा, निर्दोष होगा। इसके जीवन के दूसरे हिस्सों में कही पागलपन के लक्षण नहीं होंगे। लेकिन जो आदमी सिर्फ इसलिए नग्न हुआ है कि दूसरे लोग उसको नगा देखें, यह उसकी बीमारी है। वह आदमी दूसरे

हिस्सो में सरल नही होगा। दूसरे हिस्सों में भी उसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी, उसका पागलपन प्रकट होगा।

और इस देश में निर्णय लेने की जरूरत पड गई है अब। क्योंकि यह कोई पाँच हजार साल से उपद्रव चल रहा है। उस उपद्रव में तय करना मुश्किल हो गया है कि कौन आदमी प्रामाणिक है और कौन आदमी पागलपन की ओर झुक रहा है। ये दोनो ही हो सकते हैं, इसलिए बहुत साफ रेखा खीचना जरूरी है।

धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक चीज है क्योकि उसमें धर्म भी जुडा हुआ है। पागलपन सीधा हो तो एक अर्थ में सरल होता है। क्योकि पागल आदमी निरीह हो जाता है। धार्मिक पागल निरीह नही होता, दूसरों को निरीह करता है। खुद तो उनके ऊपर खडा हो जाता है। अब जैसे कि सेंट जोन आफ आर्क को एक पोप ने आग में जलाए जाने की सजा दी। आग में जला दी गई वह औरत। जलाई इसलिए गई कि वह धर्म के विपरीत बातें कर रही थी। पोप को पूरा मजा था इस बात का कि वह धार्मिक आदमी है और एक औरत को जला रहा है क्योंकि वह बहुत अधार्मिक बातें कर रही है और वह भगवान् का काम कर रहा है। अब एक स्त्री को जलाना और जोन जैसी सरल स्त्री को जलाना एकदम अधार्मिक कृत्य था। लेकिन पोप को एक तृप्ति है। अगर कोई दूसरा आदमी ऐसा काम कर दे तो वह आदमी पागल सिद्ध होता है, अपराधी सिद्ध होता है। पोप अपराधी नहीं हुआ।

सात साल बाद, दूसरे पोप जब सत्ता में आए तो उन्होंने विचार किया और पाया कि यह तो ज्यादती हो गई, जोन तो बडी सरल औरत थी और उसे तो सन्त की पदवी दी जानी चाहिए। तो वह सेन्ट जोन बनी। जिस पोप ने आग लगवाई थी वह पोप अपराधी हो गया था लेकिन वह मर चुका था। अब क्या किया जाए? तो इस पोप ने उसको सजा दी कि उसकी हड्डियों को निकाल कर जूते मारे जाएँ और सडक पर घसीटा जाए। उस मरे हुए पोप की हड्डियाँ निकाली गईं, उसकी कब्र खोली गई, उसको जूते मारे गए, उसके ऊपर थूका गया और उसकी हड्डियों को सडक पर घसीट कर अपमानित किया गया। अब यह आदमी उससे भी ज्यादा पागल है। लेकिन इसका पागलपन दिखाई नहीं पडता। इसका पागलपन एक धार्मिक परिभाषा ले रहा है। यह धार्मिक एक जाल पैदा करेगा शब्दो का जो कि बिल्कुल ठीक मालूम पडेगा। धर्म इसकी विक्षिप्तता को औचित्य दे रहा है।

धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। पर इस औचित्य को तोड देने की जरूरत है और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए कि यह तभी टूटेगा जब हम दु:ख को धर्म से अलग करेंगे। नही तो वह टूटेगा नही। क्योंकि वह जो दुख:वाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दु.ख देना भी, अपने को दु:ख देना भी सब उसमें छिप जाता है। इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है, परम सुख की। और धार्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं भी आनन्द की ओर निरन्तर गति करता है और चारो ओर भी निरन्तर आनन्द बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दु:ख देता है, न वह दूसरे को दु.ख देने की आकाक्षा करता है। न उसके मन में दुःख का कोई आदर है न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर हम धार्मिक कहें तो धर्म परम आनन्द की दिशा बनता है। नही तो अब तक वह परम दु ख की दिशा बना हुआ है।

प्रश्न : महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान की ही मुद्रा है ?

उत्तर : यह बडी महत्त्वपूर्ण बात है। नासाग्र दृष्टि का मतलब है—आंख आधी बद, आधी खुली। अगर नाक के अग्रभाग को आप आंख से देखेंगे तो आधी आंख बंद हो जाएगी, आधी खुली रहेगी। न तो आंख बद न आंख खुली। साधारणतः हम दो ही काम करते हैं। या तो आंख बंद होती है नीद में या आंख खुली होती है जागरण में। नासाग्र दृष्टि होती ही नही। इसका कोई कारण नही है। आंख या तो पूरी खुली होती है या पूरी बंद होती है। दोनों के बीच में एक बिन्दु है जहाँ आंख आधी खुली है, आधी बंद है। अगर हम खड़े होंगे और नासाग्र दृष्टि होगी तो करीब चार फुट तक जमीन हमें दिखाई पडेगी। तो साधारणत. कोई भी नासाग्र नहीं होता।

इसमें दो तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आंख, आंखों के जो स्नायु हैं भीतर उनको निद्रा में ले जाए। पूरी बद आंख निद्रा में ले जाती है। आंख जिसकी बन्द होती है पूरी तो मस्तिष्क के जो स्नायु आंख से जुडे हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आंख जागरण लाती है। ध्यान दोनों से अलग अवस्था है। न तो वह निद्रा है, न वह जागरण है। वह निद्रा जैसा शिथिल है, जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नींद नही है वह और जागरण भी नही है वह। और नींद भी है और जागरण भी है। उसमें दोनों के तत्त्व हैं। नींद में जितनी

शिथिलता होती है उतनी ध्यान में होनी चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है उतना ध्यान में होना चाहिए। तो ध्यान एक मध्य अवस्था है और नासाग्र दृष्टि आँख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड़ देती है। उस हालत में न तो स्नायु इतने तने होते है जितने कि जागरण में तने होते हैं, न इतने शिथिल होते हैं जितने कि निद्रा में शिथिल होते हैं और सो जाते है। मध्य में होते हैं। एक मध्य विन्दु, सम विन्दु होता है। नासाग्र दृष्टि का यौगिक मूल्य हैं, फिजियोलॉजिकल मूल्य है और ध्यान के लिए वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।

दूसरी बात समझने की यह है कि पूरी आंख वन्द कर लेने पर व्यक्ति सब ओर से वन्द हो जाता हैं, जगत् से टूट जाता है। पूरी आंख वन्द है तो व्यक्ति का जगत् से सब सम्बन्ध टूट गया। पूरी आंख खुली है तो व्यक्ति को बाहर के जगत् से जोड देती है और वह अपने को भूल जाता है। उसे अपना कोई पता ही नही रहता। बन्द आँख में सब मिट जाता है, वही खुद रह जाता है। खुली आँख में सब सत्य हो जाता है और वह खुद ही मिट जाता है।

आधी वन्द, आधी खुली आंख का यह भी अर्थ है कि न तो हम टूटे हुए हैं सब से और न जुडे हुए हैं सबसे। और न ही यह बात सच है कि सब सच है और हम झूठे हैं और न ही यह बात कि सब झूठे हैं और हम सच हैं। हम भी हैं और सब भी है। महावीर का सारा जोर सम पर है निरन्तर। 'सम्यक्' शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है। प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहाँ खड़े हो जाना जहाँ अतियाँ न हों। आंख के मामले में भी उनकी अनति है। न तो पूरी खुली आंख और न पूरी बंद।

ससार भी सत्य है आधा। जितना हमें दिखाई पडता है उतना सत्य नहीं है। हम भी सत्य हैं लेकिन आधे, जितना वन्द आंख से मालूम पडते हैं उतने ही। शकर कहते हैं . सब जगत् असत्य है, सत्य है ही नही। आंख वन्द हो तो जगत् एकदम असत्य हो जाता है। क्या सत्य है ? तो जो व्यक्ति आंख वन्द करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा वह माया के किसी न किसी सिद्धान्त के करीब पहुँच जाएगा। क्योकि जब वन्द आंख में उसे आत्मा का अनुभव होगा तो जगत् एकदम असत्य मालूम पडेगा। तो जिन लोगों ने कहा है कि जगत् माया है, वह वन्द आंख का अनुभव है। अगर वन्द आंख से ध्यान किया गया तो जगत् असत्य ही हो जाएगा क्योंकि कुछ बचता ही नही वहाँ। सिर्फ स्वयं

धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। पर इस औचित्य को तोड देने की जरूरत है और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए कि यह तभी टूटेगा जब हम दु:ख को धर्म से अलग करेंगे। नही तो वह टूटेगा नही। क्योंकि वह जो दुख:वाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दु:ख देना भी, अपने को दु ख देना भी सब उसमें छिप जाता है। इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है, परम सुख की। और धार्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं भी आनन्द की ओर निरन्तर गति करता है और चारो ओर भी निरन्तर आनन्द बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दु:ख देता है, न वह दूसरे को दु ख देने की आकांक्षा करता है। न उसके मन में दु ख का कोई आदर है न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर हम धार्मिक कहें तो धर्म परम आनन्द की दिशा बनता है। नही तो अब तक वह परम दु:ख की दिशा बना हुआ है।

प्रश्न : महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान की ही मुद्रा है ?

उत्तर : यह बडी महत्त्वपूर्ण बात है। नासाग्र दृष्टि का मतलब है—आँख आधी बंद, आधी खुली। अगर नाक के अग्रभाग को आप आँख से देखेंगे तो आधी आँख बंद हो जाएगी, आधी खुली रहेगी। न तो आँख बंद न आँख खुली। साधारणत: हम दो ही काम करते हैं। या तो आँख बंद होती है नींद में या आँख खुली होती है जागरण में। नासाग्र दृष्टि होती ही नही। इसका कोई कारण नही है। आँख या तो पूरी खुली होती है या पूरी बंद होती है। दोनो के बीच में एक बिन्दु है जहाँ आँख आधी खुली है, आधी बंद है। अगर हम खड़े होंगे और नासाग्र दृष्टि होगी तो करीब चार फुट तक जमीन हमें दिखाई पडेगी। तो साधारणत: कोई भी नासाग्र नही होता।

इसमें दो तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आँख, आँखों के जो स्नायु हैं भीतर उनको निद्रा में ले जाए। पूरी बंद आँख निद्रा में ले जाती है। आँख जिसकी बन्द होती है पूरी तो मस्तिष्क के जो स्नायु आँख से जुडे हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आँख जागरण लाती है। ध्यान दोनो से अलग अवस्था है। न तो यह निद्रा है, न यह जागरण है। यह निद्रा जैसा शिथिल है, जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नींद नही है यह और जागरण भी नही है वह। और नींद भी है और जागरण भी है। उसमें दोनों के तत्त्व हैं। नींद में जितनी

शिथिलता होती है उतनी ध्यान में होनी चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है उतना ध्यान में होना चाहिए। तो ध्यान एक मध्य अवस्था है और नासाग्र दृष्टि आँख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड़ देती है। उस हालत में न तो स्नायु इतने तने होते हैं जितने कि जागरण में तने होते हैं, न इतने शिथिल होते हैं जितने कि निद्रा में शिथिल होते हैं और सो जाते हैं। मध्य में होते हैं। एक मध्य बिन्दु, सम बिन्दु होता है। नासाग्र दृष्टि का यौगिक मूल्य है, फिजियोलॉजिकल मूल्य है और ध्यान के लिए वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।

दूसरी बात समझने की यह है कि पूरी आँख बन्द कर लेने पर व्यक्ति सब ओर से बन्द हो जाता है, जगत् से टूट जाता है। पूरी आँख बन्द है तो व्यक्ति का जगत् से सब सम्बन्ध टूट गया। पूरी आँख खुली है तो व्यक्ति को बाहर के जगत् से जोड़ देती है और वह अपने को भूल जाता है। उसे अपना कोई पता ही नहीं रहता। बन्द आँख में सब मिट जाता है, वही खुद रह जाता है। खुली आँख में सब सत्य हो जाता है और वह खुद ही मिट जाता है।

आधी बन्द, आधी खुली आँख का यह भी अर्थ है कि न तो हम टूटे हुए हैं सब से और न जुड़े हुए हैं सबसे। और न ही यह बात सच है कि सब सच है और हम झूठे हैं और न ही यह बात कि सब झूठे हैं और हम सच हैं। हम भी है और सब भी है। महावीर का सारा जोर सम पर है निरन्तर। 'सम्यक्' शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है। प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहाँ खड़े हो जाना जहाँ अतियाँ न हों। आँख के मामले में भी उनकी अनति है। न तो पूरी खुली आँख और न पूरी बंद।

संसार भी सत्य है आधा। जितना हमें दिखाई पड़ता है उतना सत्य नहीं है। हम भी सत्य हैं लेकिन आधे, जितना बन्द आँख से मालूम पड़ते हैं उतने ही। शंकर कहते हैं : सब जगत् असत्य है, सत्य है ही नहीं। आँख बन्द हो तो जगत् एकदम असत्य हो जाता है। क्या सत्य है? तो जो व्यक्ति आँख बन्द करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा वह माया के किसी न किसी सिद्धान्त के करीब पहुँच जाएगा। क्योंकि जब बन्द आँख में उसे आत्मा का अनुभव होगा तो जगत् एकदम असत्य मालूम पड़ेगा। तो जिन लोगों ने कहा है कि जगत् माया है, वह बन्द आँख का अनुभव है। अगर बन्द आँख से ध्यान किया गया तो जगत् असत्य ही हो जाएगा क्योंकि कुछ बचता ही नहीं वहाँ। सिर्फ स्वयं

बच जाता है। बन्द आँख में बाहर के जगत् का कोई अनुभव नहीं रह जाता, स्वयं की अनुभूति रह जाती है। वह इतनी प्रखर होती है कि कोई भी कह देगा कि बाहर जो था सब असत्य था।

अगर कोई बाहर के जगत् में पूरी आँख खुली करके जी रहा है जैसा चार्वाक तो वह कहता है : "भीतर कुछ भी नहीं है, आत्मा की सब झूठी बातें हैं, खाओ, पियो, मौज करो।" यह बाहर पूरी खुली आँख का अनुभव है कि बाहर ही सब कुछ है। खाओ, पियो, मौज करो, भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर गए कि मरे, भीतर है ही नहीं कुछ, आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है, अगर कोई पूरी खुली आँख के अनुभव से जिये तो इन्द्रियों के रस ही शेष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है, तब जगत् सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है।

'महावीर कहते हैं : जगत् भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है।' जगत् असत्य नहीं है और आत्मा भी असत्य नहीं है। यह एक दृष्टि है : आँख बन्द करके अगर कोई अनुभव करेगा तो स्वयं सत्य मालूम पड़ेगा, जगत् असत्य मालूम पड़ेगा। और अगर कोई आदमी ध्यान में नहीं बैठेगा और बाहर के जगत् में ही जिएगा तो वह कहेगा : आत्मा असत्य है, जगत् ही सत्य है।

ये दो दृष्टियाँ हैं। यह दर्शन नहीं है। महावीर कहते हैं . जगत् भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है, पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं। दोनों सत्य हैं। और प्रतीक है वह नासाग्र दृष्टि। यानी महावीर कभी पूरी आँख बन्द करके ध्यान नहीं करेंगे, पूरी खुली आँख रखकर भी ध्यान नहीं करेंगे। आधी आँख खुली और आधी बन्द ताकि बाहर और भीतर एक सम्बन्ध बना रहे। जागे भी, न जागे भी। बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का। ऐसी स्थिति में जो ध्यान को उपलब्ध होगा उस ध्यान में उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि मैं ही सत्य हूँ। ऐसा भी नहीं लगेगा कि बाहर असत्य है या बाहर ही सत्य है। ऐसा लगेगा कि सत्य दोनों में है। वह दोनों में जोड़ रहा है। वह आधी खुली आँख प्रतीकात्मक रूप से भी अर्थ रखती है और ध्यान के लिए सर्वोत्तम है लेकिन थोड़ी कठिन है। क्योंकि दो अनुभव हमें बहुत सरल हैं—खुली आँख, बन्द आँख। लेकिन आधी खुली आँख थोड़ी कठिन है लेकिन सर्वोत्तम है।

प्रश्न : आप चार्वाक को भी उसी श्रेणी में लेते हैं जिस श्रेणी में शंकर हैं?

उत्तर : नहीं, उससे बिल्कुल उल्टी श्रेणी है वह।

प्रश्न : स्तर दोनों का एक ही है ?

उत्तर : नही, स्तर भी एक नही है। दोनों अधूरे सत्यों को कह रहे हैं इस मामले भर में एक हैं।

प्रश्न : शंकर ने बन्द आँख में ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर : असत्य मालूम पड़ेगी।

प्रश्न : चार्वाक ने खुली आँख मे ध्यान किया तो उसको दुनिया कैसी मालूम पड़ेगी ?

उत्तर ध्यान किया नही, वस खुली आँख रखी। खुली आँख में ध्यान करने का उपाय नही है। खुली आँख में तो बाहर का जगत् ही सब कुछ है। और उसी में जिया, पिया, मौज किया और कभी भीतर गया नही क्योंकि भीतर जाना पडता तो आँख बन्द करनी पडती। अभी पश्चिम में एक था जोड नाम का विचारक। उससे कई बार लोगो ने कहा कि कभी ध्यान भी करो। गुरजिएफ से वह मिलने गया। तो गुरजिएफ ने कहा कि कभी आँख भी वन्द करो। उसने कहा . फुरसत कहाँ, लेकिन सुबह उठता हूँ तो भाग दौड शुरू हो जाती है। साँझ जब सोता हूँ तब तक भागता रहता हूँ। ध्यान की फुरसत कहाँ ? अलग वक्त कहाँ ? या मैं जागता हूँ या सोता हूँ। फुरसत कहाँ है ? और तीसरी बात यह कि उपाय कहा है ? कहां या तो जागो या सोयो। सोओ तो तुम ही रह जाते हो, जागो तो सब रह जाते हैं, तुम नहीं रह जाते ।

जोड ने जो कहा, वह ठीक कहा। ऐसे अगर चार्वाक से कोईकहता तो वह कहता . कैसा ध्यान ! जब थक जाते हैं, सो जाते हैं। जब थकान मिट जाती है फिर जग जाते हैं। जीते हैं इन्द्रियों में, इसलिए जीते हैं। अगर जाग सकते हो तो जिओ। जितनी देर जाग सकते हो जिओ। जितना जाग कर जी सको जिओ, जितना भोग सको भोगो। प्रत्येक चीज का रस लो। और भीतर क्या है ? भीतर कुछ भी नही है। भीतर एक झूठ है। क्योंकि भीतर जो कभी गया नही है, भीतर झूठ ही हो जाएगा। तो चार्वाक बाहर ही जी रहा है। वही उसके लिए सत्य है। शकर जैसे व्यक्ति भीतर ही जी रहे हैं। तो जो भीतर है वही सत्य है और बाहर का सब असत्य हो गया है। एक अर्थ में ये दोनों समान हैं, इस अर्थ में कि ये आधे सत्य को पूरा सत्य कह रहे हैं। फिर भी चुनाव करना हो तो शंकर चुनने योग्य हैं, चार्वाक चुनने योग्य नही है क्योंकि

चार्वाक कह रहा है कि बस इतना ही जीवन है। खाओ, पियो। बस इतना ही जीवन है। महावीर कह रहे हैं कि दोनों बातें सत्य हैं।

प्रश्न : यह तो आप दोनों बातों को उल्टा कह रहे हैं ?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न : आप कह रहे हैं कि चुनने योग्य हो तो चार्वाक को नहीं, शंकर को चुना जाए।

उत्तर : हाँ, हाँ ! बिल्कुल ही।

प्रश्न : तो क्या शंकर त्याग की ओर गया ?

उत्तर : नहीं। मैं कहता हूँ कि वह ज्यादा गहरे योग की ओर गया क्योंकि भीतर में जितना योग है, उतना बाहर नहीं है।

प्रश्न : क्या चार्वाक भोग की ओर गया ?

उत्तर : नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। ऐसी भूल हो जाती है, मेरी निरन्तर बातों से। साधारणत हम चार्वाक को भोगी कहेंगे। साधारणत मैं चार्वाक को त्यागी कहूँगा। मैं कहूँगा कि वह, जो अन्तर्योग है, बडा योग है उसको छोड रहा है। चार्वाक कह रहा है कि घी भी ऋण लेकर पीना पडे तो पियो। ऋण की चिन्ता मत करो। बस घी मिलना चाहिए। तो वह घी पर ही जी रहा है। लेकिन बहुत बाहर जी रहा है। खाने-पीने तक उसका योग है। लेकिन एक अन्तर्योग भी है। उस ओर कोई दृष्टि नहीं है। उस ओर कोई ध्यान नहीं है। शंकर भी बडे योगी हैं। क्योंकि शकर ज्यादा गहरे योग में जा रहे है। और महावीर चूंकि प्रत्येक चीज में एक सन्तुलन और समता का ध्यान रखते है, वे कहेंगे चार्वाक को कि तुम बिल्कुल ठीक कहते हो कि बाहर सत्य है' लेकिन अगर तुम भीतर जाओगे तो तुम पाओगे कि वहाँ भी सत्य है। शकर को भी यही कहेंगे कि तुम बिल्कुल ही ठीक कहते हो, एकदम ठीक ही बात है कि भीतर सत्य है। लेकिन तुम्हारे आँख बंद करने से बाहर असत्य नहीं हो जाता। सिर्फ इतना ही है कि तुम्हें पता चलना बंद हो जाएगा।

पूरा जीवन बाहर और भीतर से मिलकर बना है। एक को तोड देना दूसरे के हित में अधूरा है। इस दृष्टि से महावीर अनेकान्ती है। और प्रत्येक पहलू पर क्या-क्या विरोध है वह दोनों में से सत्य को निचोड लेना चाहते हैं।

२३

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक ३० सितम्बर, १९६९

प्रश्न . जब चेतना आत्मा का स्वभाव है तो मूर्छा का क्या अर्थ है ?

उत्तर : मूर्छा का अर्थ है, जागृति का और कही उपस्थित होना। यह ख्याल में आ जाए तो कठिनाई नही रह जाती। हमें ऐसा लगता है कि अगर स्वभाव जागृत है तो फिर मूर्छा कहाँ है ? समझ लो कि एक टार्च हमारे पास है जिसका स्वभाव प्रकाश है और समझ लो कि टार्च जल रही है। फिर हम कहते हैं कि टार्च जल रही है और टार्च का स्वभाव प्रकाश है। फिर अंधेरा कहाँ है ? लेकिन टार्च का एक फोकस है और जिस बिन्दु पर पड़ता है वहाँ तो प्रकाश है। शेष सब जगह अंधेरा हो जाता है। और यह भी हो सकता है कि टार्च खुद अंधेरे में हो। इसमें कुछ विरोध नही है। टार्च का फोकस बाहर की तरह पड रहा है। यद्यपि टार्च का स्वभाव प्रकाश है लेकिन टार्च खुद अंधेरे में खडी है।

हमारा स्वभाव जागरण है लेकिन हमारी जागृति बाहर की तरफ फैली हुई है। हम तब भी जागृत हैं। एक आदमी सड़क पर चल रहा है, चारों तरफ देखता है। दूकानें दिखाई पड रही हैं। लोग दिखाई पड रहे हैं। नही तो चलेगा कैसे अगर सोया हुआ हो ? सब दिखाई पड रहा है, केवल एक आदमी को छोडकर जो वह स्वयं है। सब तरफ जागृति फैली हुई है, सब दिखाई पड रहा है—सडक, दूकान, मकान, तांगा, कार, रिक्शा सब। सिर्फ एक बिन्दु भर दिखाई नहीं पड रहा है वह जो स्वयं है।

इसका मतलब यह हुआ कि जागृति दो तरह से हो सकती है। बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी। अगर बहिर्मुखी जागृति होगी तो अन्तर्मुखता अन्धकारपूर्ण हो जाएगी। वहाँ मूर्छा हो जाएगी। मूर्छा का कुल मतलब इतना है कि प्रकाश की

धारा उस तरफ नही बह रही है। अगर जागृति अन्तर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मूर्छा हो जाएगी। साधारणतः जागृति के दो ही रूप हो सकते हैं : अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता। अगर कोई बहिर्मुखी है तो अन्तर्मुखता में बाधा पडेगी। अगर कोई अन्तर्मुखी है तो बहिर्मुखता में बाधा पडेगी। लेकिन अन्तर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति की उपलब्ध होती है जहाँ अन्तर और बाह्य मिट जाता है, जहाँ सिर्फ प्रकाश रह जाता है। वह है पूर्ण जागृत स्थिति जहाँ बाहर और भीतर का भेद मिट जाता है। लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति में नही पहुँच सकता है।

पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अन्तर्मुखता। तीसरी स्थिति है दोनों के पार हो जाना। और इस पार हो जाने का जो बिन्दु है, वह अन्तर्मुखता है। इस पार हो जाने का बिन्दु बहिर्मुखता नहीं है। क्योंकि जब हम बाहर हैं तब हम अपने पर भी नही है। अपने से और ऊपर जाने की कोई सम्भावना नही है। बाहर से लौट आना है अपने पर और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है। उस स्थिति में बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं।

मूर्छा का अर्थ, अभी जिसे हम समझ लें, इतना ही है कि हम बाहर हैं। बाहर हैं का मतलब है कि हमारा ध्यान बाहर है। और जहाँ हमारा ध्यान है वहाँ जागृति है और जहाँ हमारा ध्यान नही वहाँ मूर्छा है। समझो कि तुम भागे चले जा रहे हो। मकान में आग लग गई है। पैर में काटा गड गया है। पैर में पता नही चलता कि पैर में काटा गडा है। मकान में आग लगी है तो पैर में गडे काटे का पता कैसे चले? सारा ध्यान आग लगे हुए मकान पर अटक गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की छोटी सी किरण भी नही है जो शरीर से पैर तक पहुँच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि काटा गड गया है। फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठी[illegible] है। और अब [illegible]र का काटा दुखने लगता है। इतने देर तक पैर [illegible] कोई पता न[illegible] [illegible]कि ध्यान वहाँ नही था। ध्यान कहीं और [illegible] [illegible]। ध्यान [illegible] जागृत थे। जहाँ हमारा ध्यान नही था, [illegible] [illegible]।

काशी न[illegible] [illegible] वर्ष पहले तरह का आ[illegible] वह किसी न थे। और [illegible] की दवा [illegible] करने को तैया[illegible] का प[illegible]

जब मैं गीता पढ़ूंगा तो फिर कोई खतरा नहीं होगा क्योंकि तब फिर मेरा सारा चित्त वहां होगा। तो मूर्छित करने की अलग से जरूरत क्या है। मैं वहां मूर्छित रहूँगा ही पेट के प्रति। लेकिन डाक्टर मानने को राजी न थे। इसमें खतरा था। एक सैकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी। बड़ा आपरेशन था। तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जाच-पडताल की और पाया कि जब वह गीता पढते हैं तब वह कहीं भी नहीं रह जाते। बस वह गीता पर ही हो जाते हैं।

तो यह पहला आपरेशन था अपनी तरह का जो एक व्यक्ति के ध्यान को एक तरफ बहाने से किया गया। आपरेशन हुआ और सफल हुआ। वह अपनी गीता पढ़ते रहे और पेट का आपरेशन किया गया। किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नही दी गई। और जिन डाक्टरो ने किया वे चकित रह गए। अब हुआ इतना कि अगर किसी का चित्त गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नही है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले क्योकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहां तक जाए तो पता चलता है। नही तो पता नही चलता है।

एक आदमी दो तीन वर्षों से पैरेलिसस से बीमार था। वह हिल भी नही सकता था। चिकित्सक परेशान थे। क्योंकि वस्तुत उस आदमी को लकवा नही था, कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह का उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ पैर हिला-डुला भी नही सकता था और उठ भी नही सकता था। फिर तीन साल से निरन्तर पड़ा था बिस्तर पर और ध्यान निरन्तर लकवा पर ही रहा तीन वर्षों तक। वह लकवा मजबूत हो चला था। तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान में आग लग गई। और एक सैकेंड को उसका ध्यान लकवे से हटकर आग पर चला गया जो बिल्कुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकल कर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगों ने उसे देखा तो लोगो ने कहा 'अरे तुम!' तो उसने देखा। वह वापिस लकवा खा कर गिर पडा।

हुआ क्या? यह आदमी बाहर आया कैसे? अगर यह लकवा सच में था तो यह आदमी मकान के बाहर नहीं आ सकता था। उसका पूरा ध्यान लकवे से हट गया। इतने जोर से हट गया कि मकान में आग लगी और उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। वह बाहर आ गया।

धारा उस तरफ नही बह रही है। अगर जागृति अन्तर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मूर्छा हो जाएगी। साधारणत जागृति के दो ही रूप हो सकते है . अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता। अगर कोई बहिर्मुखी है तो अन्तर्मुखता में बाधा पडेगी। अगर कोई अन्तर्मुखी है तो बहिर्मुखता में बाधा पडेगी। लेकिन अन्तर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति की उपलब्ध होती है जहाँ अन्तर और बाह्य मिट जाता है, जहाँ सिर्फ प्रकाश रह जाता है। वह है पूर्ण जागृत स्थिति जहाँ बाहर और भीतर का भेद मिट जाता है। लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति में नही पहुँच सकता है।

पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अन्तर्मुखता। तीसरी स्थिति है दोनों के पार हो जाना। और इस पार हो जाने का जो बिन्दु है, वह अन्तर्मुखता है। इस पार हो जाने का बिन्दु बहिर्मुखता नहीं है। क्योंकि जब हम बाहर हैं तब हम अपने पर भी नही है। अपने से और ऊपर जाने की कोई सम्भावना नही है। बाहर से लौट आना है अपने पर और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है। उस स्थिति में बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं।

मूर्छा का अर्थ, अभी जिसे हम समझ ले, इतना ही है कि हम बाहर हैं। बाहर हैं का मतलब है कि हमारा ध्यान बाहर है। और जहाँ हमारा ध्यान है वहाँ जागृति है और जहाँ हमारा ध्यान नही वहाँ मूर्छा है। समझो कि तुम भागे चले जा रहे हो। मकान में आग लग गई है। पैर में काटा गड गया है। पैर में पता नहीं चलता कि पैर में काटा गड़ा है। मकान में आग लगी है तो पैर में गडे काटे का पता कैसे चले ? सारा ध्यान आग लगे हुए मकान पर अटक गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की छोटी सी किरण भी नही है जो शरीर से पैर तक पहुँच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि कांटा गड गया है। फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठीक हो गया है। और अचानक पैर का काटा दुखने लगता है। इतने देर तक पैर के कांटे का कोई पता नही था क्योंकि ध्यान वहाँ नहीं था। ध्यान कही और था। जहाँ हमारा ध्यान था, वहाँ हम जागृत थे। जहाँ हमारा ध्यान नहीं था, वहाँ हम मूर्छित थे।

काशी नरेश ने कोई पचास वर्ष पहले एक आपरेशन कराया। वह अपनी तरह का आपरेशन था क्योंकि वह किसी तरह की मूर्छा की दवा लेने को तैयार न थे। और डाक्टर बिना मूर्छा की दवा दिए इतना बड़ा पेट का आपरेशन करने को तैयार न थे। लेकिन नरेश का कहना था कि मुझे गीता पढने दी जाए।

जब मैं गीता पढ़ूंगा तो फिर कोई खतरा नही होगा क्योंकि तब फिर मेरा सारा चित्त वहाँ होगा। तो मूर्छित करने की अलग से जरूरत क्या है। मैं वहाँ मूर्छित रहूँगा ही पेट के प्रति। लेकिन डाक्टर मानने को राजी न थे। इसमें खतरा था। एक सैकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी। बडा आपरेशन था। तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जाच-पड़ताल की और पाया कि जब वह गीता पढ़ते हैं तब वह कही भी नही रह जाते। बस वह गीता पर ही हो जाते हैं।

तो यह पहला आपरेशन था अपनी तरह का जो एक व्यक्ति के ध्यान को एक तरफ बहाने से किया गया। आपरेशन हुआ और सफल हुआ। वह अपनी गीता पढते रहे और पेट का आपरेशन किया गया। किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई। और जिन डाक्टरो ने किया वे चकित रह गए। अब हुआ इतना कि अगर किसी का चित्त गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नही है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले क्योंकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहाँ तक जाए तो पता चलता है। नही तो पता नही चलता है।

एक आदमी दो तीन वर्षों से पैरेलिसस से बीमार था। वह हिल भी नही सकता था। चिकित्सक परेशान थे। क्योंकि वस्तुत उस आदमी को लकवा नही था, कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह का उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ पैर हिला-डुला भी नही सकता था और उठ भी नही सकता था। फिर तीन साल से निरन्तर पडा था बिस्तर पर और ध्यान निरन्तर लकवा पर ही रहा तीन वर्षों तक। वह लकवा मजबूत हो चला था। तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान में आग लग गई। और एक सैकेंड को उसका ध्यान लकवे से हटकर आग पर चला गया जो बिल्कुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकल कर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगों ने उसे देखा तो लोगो ने कहा : 'अरे तुम !' तो उसने देखा। वह वापिस लकवा खा कर गिर पड़ा।

हुआ क्या ? यह आदमी बाहर आया कैसे ? अगर यह लकवा सच में था तो यह आदमी मकान के बाहर नहीं आ सकता था। उसका पूरा ध्यान लकवे से हट गया। इतने जोर से हट गया कि मकान में आग लगी और उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। वह बाहर आ गया।

लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया, वह वापस गिर पड़ा। और यह खुद ही नही मान सकता कि यह कैसे हुआ ? यह गिर जाना क्या ? फिर पूरा का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया।

हमारा ध्यान जहाँ है, वहाँ हम जागृत हो जाते हैं। जहाँ से हमारा ध्यान हट जाता है, वहाँ हम मूर्छित हो जाते हैं। अगर हम ठीक से समझें तो मूर्छा हमारी जागृति की छाया है। जहाँ मूर्छा होती है वहाँ जागृति नही होती, जहाँ जागृति होती है वहाँ मूर्छा नही होती। लेकिन जिस ओर जागृति का रुख होगा उससे ठीक उल्टी तरफ मूर्छा का रुख होगा।

तो एक तरफ से देखने में प्रश्न ठीक मालूम पड़ता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है। तो यह अचेतना कैसी, यह मूर्छा कैसी ? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पड़ने वाली हम रास्ते पर चलते हैं। सूरज निकला हुआ है। हम पूरे प्रकाशित हैं। हमारे पीछे एक छाया बनती है सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई दूसरा नही है और हमारे प्रकाशित होने का कारण भी कोई दूसरा नही है। लेकिन हम पूछ सकते है कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नहीं करता। असल में जितने हिस्से में हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से में पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम काँच के व्यक्ति हों तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि फिर हमारे आर-पार किरणें निकल जाएँगी। जितना पारदर्शी होगा उतनी छाया नही बनेगी। और अगर थोड़ा भी अपारदर्शी है तो उतनी छाया बन जाएगी।

इसे इस तरह भी समझना चाहिए। हमारा स्वभाव तो प्रकाश है लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केन्द्रों पर प्रवाहित होता है। वह दिए की भाँति कम, टॉर्च की भाँति ज्यादा है। टॉर्च भी दिया बन सकती है। सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर के फोकस को अलग करके अगर हम टॉर्च को रख देंगे तो टॉर्च दिया बन जाएगी। असल में टॉर्च दिया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दिए पर भी फोकस लगा लें तो प्रकाश बंध जाएगा और उस धारा में बहेगा।

हमारा चित्त भी फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है,

चित्त भीतर भी ले जा सकता है। लेकिन अगर चित्त बिल्कुल मिट जाए तो फोकस टूट जाएगा। फिर भीतर-बाहर कुछ न रह जाएगा, सिर्फ प्रकाश रह जाएगा। तो चित्त को तोडने की साधना ही अन्तत. लक्ष्य है क्योंकि चित्त बीच का माध्यम है।

पूरे वक्त हमारी आँखो की पुतली छोटी-बडी होती रहती है। जितने प्रकाश की जरूरत है, वह उस मात्रा में छोटी या बडी हो जाती है। धूप में तुम जाओ तो पुतली सिकुड कर छोटी हो गई क्योंकि उतनी रोशनी को भीतर ले जाने की कोई जरूरत नही है। अँधेरे में तुम आए तो पुतली बडी हो गई क्योंकि अब ज्यादा प्रकाश भीतर जाए तो ही दिखाई पड सकता है। तो पूरे वक्त, आँख की जो पुतली है, उसका जो लेंस है वह छोटा हो रहा है; बडा हो रहा है—जैसी जरूरत है, वैसा हो रहा है। हमारा चित्त भी वैसा है। वह भी छोटा-बडा हो रहा है पूरे वक्त। और जैसी जरूरत है, वैसा उसका फोकस बन जाता है। अगर मकान में आग लगी है, तो फोकस एकदम छोटा हो जाता है। सब तरफ से प्रकाश को खीच कर मकान पर ही रोक देता है। अगर ध्यान जाए कि सिनेमा देखने जाना है, परीक्षा देनी है, किताब पढनी है तो फिर मकान की आग को कौन बचाएगा ? तो चित्त सब चीजों को अलग कर देता है और फोकस बिल्कुल छोटा हो जाता है जो सिर्फ मकान को देखता है। बस मकान में आग लगी है। तुम एक खतरे से गुजर रहे हो। नीचे खाई है, खड्ड है। एक पैर फिसल जाए, नीचे गिर जाओगे। चित्त का फोकस एकदम छोटा हो जाएगा। अब तुम्हें कुछ नही दिखाई पडेगा। अब रहा दो फुट का छोटा सा रास्ता, और तुम। सारा का सारा फोकस वही हो जाएगा। सब ओर से चित्त हट जाएगा। ऊपर चाँद तारे भी होंगे। चित्त के लिए इतनी जरूरत है अभी कि वह सजग रहे, छोटा फोकस हो, थोडी जगह पर ज्यादा प्रकाश पडे। खतरे के बाहर हो।

एक आदमी आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। अभी वह घोडे पर सवार था और पहाड की एक पतली पगडंडी से निकल रहा था जहाँ से गिरे तो प्राण निकल जाएँ। बस एक-एक कदम दिखाई पड रहा था। वह आदमी घर लौट आया। अब वह आराम कुर्सी पर बैठा हुआ है। चित्त का फोकस खूब बडा हो गया। अब वह जमाने भर की बातो को एक साथ सोच रहा है, घर की, दूकान की, मित्रों की। अब चित्त का पूरा फोकस बडा हो गया है। बड़ा परदा हो गया है जैसे फिल्म का, जिसमें हजारो चीजें चल रही हैं एक साथ और कोई

लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया, वह वापस गिर पड़ा। और वह खुद ही नही मान सकता कि यह कैसे हुआ ? यह गिर जाना क्या ? फिर पूरा का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया।

हमारा ध्यान जहाँ है, वहाँ हम जागृत हो जाते हैं। जहाँ से हमारा ध्यान हट जाता है, वहाँ हम मूर्छित हो जाते हैं। अगर हम ठीक से समझें तो मूर्छा हमारी जागृति की छाया है। जहाँ मूर्छा होती है वहाँ जागृति नही होती; जहाँ जागृति होती है वहाँ मूर्छा नही होती। लेकिन जिस ओर जागृति का रुख होगा उससे ठीक उल्टी तरफ मूर्छा का रुख होगा।

तो एक तरफ से देखने में प्रश्न ठीक मालूम पडता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है। तो यह अचेतना कैसी, यह मूर्छा कैसी ? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पडने वाली हम रास्ते पर चलते है। सूरज निकला हुआ है। हम पूरे प्रकाशित हैं। हमारे पीछे एक छाया बनती है सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई दूसरा नही है और हमारे प्रकाशित होने का कारण भी कोई दूसरा नही है। लेकिन हम पूछ सकते हैं कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नही करता। असल में जितने हिस्से में हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से में पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम काँच के व्यक्ति हों तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि फिर हमारे आर-पार किरणें निकल जाएँगी। जितना पारदर्शी होगा उतनी छाया नही बनेगी। और अगर थोडा भी अपारदर्शी है तो उतनी छाया बन जाएगी।

इसे इस तरह भी समझना चाहिए। हमारा स्वभाव तो प्रकाश है लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केन्द्रों पर प्रवाहित होता है। वह दिए की भाँति कम, टॉर्च की भाँति ज्यादा है। टॉर्च भी दिया बन सकती है। सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर के फोकस को अलग करके अगर हम टॉर्च को रख देंगे तो टॉर्च दिया बन जाएगी। असल में टॉर्च दिया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दिए पर भी फोकस लगा लें तो प्रकाश बंध जाएगा और उस धारा में बहेगा।

हमारा चित्त भी फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है,

एकाग्र चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिन्दु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वही हो गया है, सिकुड कर एक जगह आ गया है, शेष के प्रति बन्द हो गया है, शेष के प्रति सो गया है। तो एकाग्रता एक बिन्दु के प्रति जागरण और शेष सब बिन्दुओं के प्रति सो जाना है। लेकिन चंचलता और एकाग्रता में थोडा फर्क है। एकाग्रता का बिन्दु बदलता नही, चंचलता का बिन्दु बदलता चला जाता है। फर्क नहीं है दोनों में। एकाग्रता में एक बिन्दु रह गया है। शेष सब सो गया है। सब तरह मूर्छा है। बस एक बिन्दु की तरफ जागृति रह गई है। चचलता में भी यह है लेकिन फर्क इतना है कि चचलता में एक बिन्दु तेजी से बदलता रहता है, अभी यह है, अभी वह है, और शेष के प्रति सोया रहता है।

ध्यान का मतलब है ऐसा कोई बिन्दु नहीं है जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान चंचलता भी नहीं है। ध्यान बस जागरण है।

इसे और गहराई में समझें। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समग्र के प्रति नही जाग सकते। अगर तुम मेरी बात सुन रहे हो तो शेष सारी आवाजें जो इस जगत् में चारों ओर हो रही हैं, तुम्हें सुनाई नही पडेंगी। मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी तो बाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई आदमी निकला, उसका तुम्हें पता नही चलेगा। यह एकाग्रता हुई। जागरूकता का अर्थ यह है कि एकसाथ जो भी हो रहा है, वह सब पता चल रहा है। हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नही हैं। समस्त जो हो रहा है उसके प्रति जागे हुए हैं। मेरी बात भी सुनाई पड रही है; कौआ आवाज लगा रहा है वह भी सुनाई पड रहा है, कुत्ता भौंका वह भी सुनाई पड रहा है। और यह सब अलग-अलग नही क्योंकि काल में ये सभी एक साथ घट रहे हैं। यानी अभी जब हम बैठे हैं तो हजार घटनाएँ घट रही हैं। इन सब के प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। और ऐसा जागरण इतना बडा हो जाए कि न केवल बाहर की आवाज सुनाई पडे, बल्कि अपने श्वास की धडकन भी सुनाई पडे, अपनी आँख के पलक का हिलना भी पता चल रहा हो, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हों, जो भी हो रहा है इस क्षण में मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है वह सब मुझे पता चल रहा हो, अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है—भीतर से लेकर बाहर तक तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया। यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई।

चिन्ता नहीं है। चित्त को जहाँ भागना है, भागता है, दौड़ना है दौड़ता है। चित्त फोकस ले रहा है और इस चित्त को बाहर देखने की निरन्तर जरूरत है।

बहिर्मुखता जीवन की व्यर्थता में उलझा देती है एकदम और भीतर से तोड़ देती है। दूसरी बात, अन्तर्मुखता जीवन से तोड़ देती है भीतर डुबो देती है कि सब तरफ से दरवाजे बंद हो गए। पहली बात भी अधूरी है। दूसरी बात भी अधूरी है। असल में एक तीसरी स्थिति है जबकि हम फोकस को तोड़ देते हैं। न हम भीतर देखते हैं न बाहर देखते हैं। सिर्फ देखना रह जाता है, न बाहर की तरफ बढ़ता हुआ, न भीतर की तरफ बढ़ता हुआ। सिर्फ प्रकाश रह जाता है जिसका कोई फोकस नहीं है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। सब ओर एक-सा प्रकाश फैलता है। पर दिए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। क्योंकि दिए का भी बहुत गहरे में छोटा-सा फोकस है। इसलिए दिया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। एक तीसरी स्थिति है जहाँ न व्यक्ति अन्तर्मुखी है, न बहिर्मुखी है। जहाँ व्यक्ति सिर्फ है, न बाहर की ओर देख रहा है, न भीतर की ओर देख रहा है, बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति—पूर्ण जागृति।

तो महावीर कहते हैं : ऐसा जो पूरी तरह जाग गया वह साधु है। जो सोया है वह असाधु है। असाधु दो तरह के हो सकते हैं : एक जो बाहर की ओर सोया हुआ है, एक जो भीतर की ओर सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता है जो सोया हुआ ही नहीं है, जिसकी मूर्छा कहीं भी नहीं है। और इसलिए एक छोटा सा, फर्क ख्याल में लेना चाहिए कि एकाग्रता और ध्यान में बुनियादी फर्क है।

एकाग्रता का मतलब है कि ध्यान किसी एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाए। जैसा कि महाभारत में कथा है कि द्रोण ने पूछा अपने शिष्यों से कि वृक्ष पर तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है। तो किसी ने कहा पूरा वृक्ष। किसी ने कहा कि वृक्ष के पीछे सूरज भी दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा कि दूर गाँव भी दिखाई पड़ रहा है, पूरा आकाश दिखाई पड़ता है, बादल दिखाई पड़ते हैं, सब दिखाई पड़ता है। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। सिर्फ यह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आँख दिखाई पड़ती है। तो द्रोण कहते हैं कि तू ही एकाग्र चित्त है।

एकाग्र चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिन्दु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वही हो गया है, सिकुड़ कर एक जगह आ गया है, शेष के प्रति बन्द हो गया है, शेष के प्रति सो गया है। तो एकाग्रता एक बिन्दु के प्रति जागरण और शेष सब बिन्दुओं के प्रति सो जाना है। लेकिन चंचलता और एकाग्रता में थोड़ा फर्क है। एकाग्रता का बिन्दु बदलता नही, चंचलता का बिन्दु बदलता चला जाता है। फर्क नहीं है दोनों में। एकाग्रता में एक बिन्दु रह गया है। शेष सब सो गया है। सब तरह मूर्छा है। बस एक बिन्दु की तरफ जागृति रह गई है। चचलता में भी यह है लेकिन फर्क इतना है कि चचलता में एक बिन्दु तेजी से बदलता रहता है, अभी यह है, अभी वह है, और शेष के प्रति सोया रहता है।

ध्यान का मतलब है ऐसा कोई बिन्दु नही है जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान चंचलता भी नहीं है। ध्यान बस जागरण है।

इसे और गहराई में समझें। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समग्र के प्रति नही जाग सकते। अगर तुम मेरी बात सुन रहे हो तो शेष सारी आवाजें जो इस जगत् में चारों ओर हो रही हैं, तुम्हें सुनाई नही पड़ेंगी। मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी तो बाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई आदमी निकला, उसका तुम्हें पता नही चलेगा। यह एकाग्रता हुई। जागरूकता का अर्थ यह है कि एकसाथ जो भी हो रहा है, वह सब पता चल रहा है। हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नही हैं। समस्त जो हो रहा है उसके प्रति जागे हुए हैं। मेरी बात भी सुनाई पड़ रही है, कौआ आवाज लगा रहा है वह भी सुनाई पड रहा है, कुत्ता भौंका वह भी सुनाई पड रहा है। और यह सब अलग-अलग नही क्योंकि काल में ये सभी एक साथ घट रहे हैं। यानी अभी जब हम बैठे हैं तो हजार घटनाएँ घट रही हैं। इन सब के प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। और ऐसा जागरण इतना बड़ा हो जाए कि न केवल बाहर की आवाज सुनाई पडे, बल्कि अपने श्वास की धड़कन भी सुनाई पडे, अपनी आंख के पलक का हिलना भी पता चल रहा हो, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हों, जो भी हो रहा है इस क्षण में मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है वह सब मुझे पता चल रहा हो, अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है—भीतर से लेकर बाहर तक तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया। यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई।

चिन्ता नहीं है। चित्त को जहाँ भागना है, भागता है, दौड़ना है दौड़ता है। चित्त फोकस ले रहा है और इस चित्त को बाहर देखने की निरन्तर जरूरत है।

बहिर्मुखता जीवन की व्यर्थता में उलझा देती है एकदम और भीतर से तोड़ देती है। दूसरी बात, अन्तर्मुखता जीवन से तोड़ देती है भीतर डुबो देती है कि सब तरफ से दरवाजे बंद हो गए। पहली बात भी अधूरी है। दूसरी बात भी अधूरी है। असल में एक तीसरी स्थिति है जबकि हम फोकस को तोड़ देते हैं। न हम भीतर देखते हैं न बाहर देखते हैं। सिर्फ देखना रह जाता है, न बाहर की तरफ बढ़ता हुआ, न भीतर की तरफ बढ़ता हुआ। सिर्फ प्रकाश रह जाता है जिसका कोई फोकस नहीं है। जैसे कि एक दिया जल रहा है। सब ओर एक-सा प्रकाश फैलता है। पर दिए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। क्योंकि दिए का भी बहुत गहरे में छोटा-सा फोकस है। इसलिए दिया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। एक तीसरी स्थिति है जहाँ न व्यक्ति अन्तर्मुखी है, न बहिर्मुखी है। जहाँ व्यक्ति सिर्फ है, न बाहर की ओर देख रहा है, न भीतर की ओर देख रहा है, बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति—पूर्ण जागृति।

तो महावीर कहते हैं : ऐसा जो पूरी तरह जाग गया वह साधु है। जो सोया है वह असाधु है। असाधु दो तरह के हो सकते हैं : एक जो बाहर की ओर सोया हुआ है, एक जो भीतर की ओर सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता है जो सोया हुआ ही नहीं है, जिसकी मूर्छा कहीं भी नहीं है। और इसलिए एक छोटा सा, फर्क ख्याल में लेना चाहिए कि एकाग्रता और ध्यान में बुनियादी फर्क है।

एकाग्रता का मतलब है कि ध्यान किसी एक बिन्दु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाए। जैसा कि महाभारत में कथा है कि द्रोण ने पूछा अपने शिष्यों से कि वृक्ष पर तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है। तो किसी ने कहा पूरा वृक्ष। किसी ने कहा कि वृक्ष के पीछे सूरज भी दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा कि दूर गाँव भी दिखाई पड़ रहा है, पूरा आकाश दिखाई पड़ता है, बादल दिखाई पड़ते हैं, सब दिखाई पड़ता है। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। सिर्फ वह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आँख दिखाई पड़ती है। तो द्रोण कहते हैं कि तू ही एकाग्र चित्त है।

एकाग्र चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस विन्दु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वही हो गया है, सिकुड कर एक जगह आ गया है, शेष के प्रति वन्द हो गया है, शेष के प्रति सो गया है। तो एकाग्रता एक बिन्दु के प्रति जागरण और शेष सब विन्दुओं के प्रति सो जाना है। लेकिन चचलता और एकाग्रता में थोडा फर्क है। एकाग्रता का विन्दु वदलता नही, चंचलता का बिन्दु वदलता चला जाता है। फर्क नहीं है दोनो में। एकाग्रता में एक विन्दु रह गया है। शेष सब सो गया है। सब तरह मूर्छा है। बस एक बिन्दु की तरफ जागृति रह गई है। चंचलता में भी यह है लेकिन फर्क इतना है कि चचलता में एक बिन्दु तेजी से बदलता रहता है, अभी यह है, अभी वह है, और शेष के प्रति सोया रहता है।

ध्यान का मतलब है ऐसा कोई बिन्दु नही है जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान चंचलता भी नहीं है। ध्यान बस जागरण है।

इसे और गहराई में समझें। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समग्र के प्रति नही जाग सकते। अगर तुम मेरी वात सुन रहे हो तो शेष सारी आवाजें जो इस जगत् में चारो ओर हो रही हैं, तुम्हें सुनाई नही पडेंगी। मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी तो वाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई आदमी निकला, उसका तुम्हें पता नही चलेगा। यह एकाग्रता हुई। जागरूकता का अर्थ यह है कि एकसाथ जो भी हो रहा है, वह सब पता चल रहा है। हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नही हैं। समस्त जो हो रहा है उसके प्रति जागे हुए हैं। मेरी वात भी सुनाई पड रही है, कौआ आवाज लगा रहा है वह भी सुनाई पड रहा है, कुत्ता भौंका वह भी सुनाई पड़ रहा है। और यह सब अलग-अलग नही क्योंकि काल में ये सभी एक साथ घट रहे हैं। यानी अभी जब हम बैठे हैं तो हजार घटनाएँ घट रही हैं। इन सब के प्रति एक साथ जागा हुआ होने को महावीर अमूर्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। और ऐसा जागरण इतना वडा हो जाए कि न केवल वाहर की आवाज सुनाई पडे, बल्कि अपने श्वास की धडकन भी सुनाई पडे, अपनी आँख के पलक का हिलना भी पता चल रहा हो, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हों, जो भी हो रहा है इस क्षण में मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है वह सव मुझे पता चल रहा हो, अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है—भीतर से लेकर वाहर तक तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया। यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई।

यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है। हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता। बल्कि अपूर्ण बिन्दुओं पर हम पूरी ताकत लगा कर सीमित कर लेते हैं। जागरण हमारे पास है लेकिन हमने कभी जागरण समग्र के प्रति प्रयोग नहीं किया है। न प्रयोग करने के कारण शेष के प्रति मूर्छा है, कुछ के प्रति जागरूकता है और इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्छा कहाँ से आई? मूर्छा कहीं से भी नहीं आई। मूर्छा हमारे द्वारा निर्मित है। और निरन्तर अनुभव दिखाई पड़ जाएगा तो मूर्छा विसर्जित हो जाएगी। तब हम पारदर्शी हो जाएँगे। तब सिर्फ जागरण होगा और उसकी कोई छाया नहीं बनेगी। कहीं भी कोई छाया नहीं बनेगी।

प्रश्न : तीर्थंकरों के जीवन में हम पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा के आचार्य नहीं देखते। किन्तु महावीर के समय पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य थे। वह परम्परा बाद में भी चलती रही। इसका क्या कारण था? नये तीर्थंकर का जन्म तो पुरातन परम्परा के लुप्तप्राय होने पर होता है। जब पार्श्वनाथ की परम्परा प्रचलित थी तब नवीन तीर्थंकर की स्थापना क्यों की गई और पुराने की कैसे चलती रही?

उत्तर : पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि परम्परा बनती है तब जब जीवित सत्य खो जाता है। परम्परा जीवित सत्य की अनुपस्थिति पर रह गई सूखी रेखा है। परम्परा तो चल सकती है करोड़ों वर्षों तक। परम्परा बनती ही तब है जब हमारे हाथ में अतीत का मृत बोझ रह जाता है। मैंने सुना है कि एक घर से बूढ़ा बाप था। उसके छोटे बच्चे थे। बाप भी मर गया, माँ भी मर गई। बच्चे बहुत ही छोटे थे। देर उम्र में बच्चे हुए थे। फिर वे बड़े हुए। उन बच्चों ने निरन्तर देखा था अपने पिता को कि रोज भोजन के बाद आले पर जाकर वह कुछ उठाता-रखता था। पिता के मर जाने पर उन्होंने सोचा कि यह काम रोज का था। यह कोई साधारण काम न होगा। जरूर कोई अनुष्ठान होगा। तो उन्होंने जाकर देखा तो वहाँ बाप ने दाँत साफ करने के लिए एक छोटी सी लकड़ी रख छोड़ी थी। वह पिता रोज भोजन के बाद उठता, आले पर जाकर दाँत साफ करता। उन बच्चों ने सोचा : इस लकड़ी का जरूरी कोई अर्थ है। यह तो उन्हें पता नहीं था कि अर्थ क्या हो सकता है। यह भी पता नहीं था कि पिता बूढ़ा था। उसे दाँत साफ करने के लिए लकड़ी की जरूरत थी।

तो बच्चे नियमित रूप से आले के पास जाते, लकड़ी को उठाकर देखते और रख देते। पिता का नियम रोज पालन करते रहे। फिर वे बड़े हुए। फिर उन्होंने बहुत कमाई की, फिर उन्होने नया मकान बनाया तो सोचा कि इतनी छोटी सी लकडी भी क्या रखनी ? अब उन्हें कुछ भी पता न था कि वह लकडी किसलिए थी तो उन्होंने एक सुन्दर कारीगर से एक बडा लकड़ी का डंडा बनवाया, उस पर खुदाई करवाई। और उसे आले में उन्होंने उसे स्थापित कर दिया। बडा आला बनवाया, अब रोज उठाने की बात न रही। उनके भी बच्चे पैदा हो गए। उन बच्चो ने भी अपने पिता को बडे आदर-भाव से उस आले के पास जाते देखा था। फिर उनके पिता भी चल बसे। फिर बच्चे वहाँ जाकर रोज नमस्कार कर लेते क्योंकि उनके पिता उस आले के पास भोजन के बाद जरूर ही जाते थे। यह नियमित कृत्य हो गया था। परम्परा बन गई थी। अब इसमें कुछ भी अर्थ न रह गया था। एक जड लीक पड जाती है जो पीछे चलती है।

महावीर के समय में विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे लेकिन मृत थी धारा। मृतधारा कितने समय तक चल सकती है ? और मृतधारा जिद्दी हो जाती है। महावीर ने नयी विचारदृष्टि को जन्म दिया, नयी हवा फैली। नया सूरज निकला। लेकिन पुरानी लीक पर चलने वाले लोगों ने नये को स्वीकार नहीं किया। वह अपनी लीक को बाँधे हुए चलते गए। ऐसा भी हुआ कि महावीर ने जो कहा था वह भी चला और जो पिछली परम्परा थी, वह भी चलती रही। एक मृतधारा की तरह उसकी थोडी सी रूपरेखा भी चलती रही।

यह प्रश्न सार्थक दिखाई पडता है लेकिन सार्थक नहीं है। परम्परा मात्र होने से कोई जीवित नही होता। बल्कि उलटी ही बात है। जब कोई चीज परम्परा बनती है तब मर गई होती है। और आचार्यों के होने से जरूरी नहीं है कि वे किसी जीवित परम्परा के वंशधर हों। सच तो यह है कि उनका होना इसी बात की खबर है कि अब कोई जीवित अनुभवी व्यक्ति नहीं रह गया जो जानता हो। इसलिए जो जाना गया था उसको जानने वाले लोग गुरु का काम निवाहने लगते हैं। साधु भी हैं लेकिन न तो साधु से कुछ होता है, न शिक्षको से कुछ होता है, न गुरुओं से कुछ होता है जब तक कि जीवित अनुभव को लिए हुए कोई व्यक्ति न हो। और वे व्यक्ति खो गए थे। वे व्यक्ति न रहे थे। इसलिए महावीर के मार्ग-दर्शन में इस बात से कोई अवरोध नही पड़ता है

यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है। हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता। बल्कि अपूर्ण बिन्दुओं पर हम पूरी ताकत लगा कर सीमित कर लेते हैं। जागरण हमारे पास है लेकिन हमने कभी जागरण समग्र के प्रति प्रयोग नहीं किया है। न प्रयोग करने के कारण शेष के प्रति मूर्छा है, कुछ के प्रति जागरूकता है और इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्छा कहाँ से आई? मूर्छा कहीं से भी नहीं आई। मूर्छा हमारे द्वारा निर्मित है। और निरन्तर अनुभव दिखाई पड जाएगा तो मूर्छा विसर्जित हो जाएगी। तब हम पारदर्शी हो जाएँगे। तब सिर्फ जागरण होगा और उसकी कोई छाया नही बनेगी। कहीं भी कोई छाया नही बनेगी।

प्रश्न : तीर्थंकरों के जीवन में हम पूर्व तीर्थंकरों की परम्परा के आचार्य नहीं देखते। किन्तु महावीर के समय पार्श्वनाथ की परम्परा के आचार्य थे। वह परम्परा बाद मे भी चलती रही। इसका क्या कारण था? नये तीर्थंकर का जन्म तो पुरातन परम्परा के लुप्तप्राय होने पर होता है। जब पार्श्वनाथ की परम्परा प्रचलित थी तब नवीन तीर्थंकर की स्थापना क्यों की गई और पुराने की कैसे चलती रही?

उत्तर : पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि परम्परा बनती है तब जब जीवित सत्य खो जाता है। परम्परा जीवित सत्य की अनुपस्थिति पर रह गई सूखी रेखा है। परम्परा तो चल सकती है करोड़ों वर्षों तक। परम्परा बनती ही तब है जब हमारे हाथ में अतीत का मृत बोझ रह जाता है। मैंने सुना है कि एक घर से बूढा बाप था। उसके छोटे बच्चे थे। बाप भी मर गया, माँ भी मर गई। बच्चे बहुत ही छोटे थे। देर उम्र में बच्चे हुए थे। फिर वे बड़े हुए। उन बच्चों ने निरन्तर देखा था अपने पिता को कि रोज भोजन के बाद आले पर जाकर वह कुछ उठाता-रखता था। पिता के मर जाने पर उन्होंने सोचा कि यह काम रोज का था। यह कोई साधारण काम न होगा। जरूर कोई अनुष्ठान होगा। तो उन्होंने जाकर देखा तो वहाँ बाप ने दाँत साफ करने के लिए एक छोटी सी लकड़ी रख छोड़ी थी। वह पिता रोज भोजन के बाद उठता, आले पर जाकर दाँत साफ करता। उन बच्चों ने सोचा : इस लकड़ी का जरूरी कोई अर्थ है। यह तो उन्हें पता नहीं था कि अर्थ क्या हो सकता है। यह भी पता नहीं था कि पिता बूढ़ा था। उसे दाँत साफ करने के लिए लकड़ी की जरूरत थी।

तो बच्चे नियमित रूप से आले के पास जाते, लकड़ी को उठाकर देखते और रख देते। पिता का नियम रोज पालन करते रहे। फिर वे बड़े हुए। फिर उन्होने बहुत कमाई की, फिर उन्होंने नया मकान बनाया तो सोचा कि इतनी छोटी सी लकडी भी क्या रखनी? अब उन्हें कुछ भी पता न था कि वह लकडी किसलिए थी तो उन्होंने एक सुन्दर कारीगर से एक बडा लकड़ी का डडा बनवाया, उस पर खुदाई करवाई। और उसे आले में उन्होंने उसे स्थापित कर दिया। बडा आला बनवाया, अब रोज उठाने की बात न रही। उनके भी बच्चे पैदा हो गए। उन बच्चो ने भी अपने पिता को बडे आदर-भाव से उस आले के पास जाते देखा था। फिर उनके पिता भी चल बसे। फिर बच्चे वहाँ जाकर रोज नमस्कार कर लेते क्योंकि उनके पिता उस आले के पास भोजन के बाद जरूर ही जाते थे। यह नियमित कृत्य हो गया था। परम्परा बन गई थी। अब इसमें कुछ भी अर्थ न रह गया था। एक जड लीक पड जाती है जो पीछे चलती है।

महावीर के समय में विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे लेकिन मृत थी धारा। मृतधारा कितने समय तक चल सकती है? और मृतधारा जिद्दी हो जाती है। महावीर ने नयी विचारदृष्टि को जन्म दिया, नयी हवा फैली। नया सूरज निकला। लेकिन पुरानी लीक पर चलने वाले लोगों ने नये को स्वीकार नहीं किया। वह अपनी लीक को बाँधे हुए चलते गए। ऐसा भी हुआ कि महावीर ने जो कहा था वह भी चला और जो पिछली परम्परा थी, वह भी चलती रही। एक मृतधारा की तरह उसकी थोडी सी रूपरेखा भी चलती रही।

यह प्रश्न सार्थक दिखाई पडता है लेकिन सार्थक नही है। परम्परा मात्र होने से कोई जीवित नहीं होता। बल्कि उलटी ही बात है। जब कोई चीज परम्परा बनती है तब मर गई होती है। और आचार्यों के होने से जरूरी नहीं है कि वे किसी जीवित परम्परा के वंशधर हों। सच तो यह है कि उनका होना इसी बात की खबर है कि अब कोई जीवित अनुभवी व्यक्ति नहीं रह गया जो जानता हो। इसलिए जो जाना गया था उसको जानने वाले लोग गुरु का काम निबाहने लगते हैं। साधु भी हैं लेकिन न तो साधु से कुछ होता है, न शिक्षको से कुछ होता है, न गुरुओं से कुछ होता है जब तक कि जीवित अनुभव को लिए हुए कोई व्यक्ति न हो। और वे व्यक्ति खो गए थे। वे व्यक्ति न रहे थे। इसलिए महावीर के मार्ग-दर्शन में इस बात से कोई अवरोध नहीं पडता है

कि पिछले तीर्थंकर के लोग शेष थे। उनमें जो भी थोड़े समझदार जीवित साधक थे, वे महावीर के साथ आ गए। जो नहीं थे, जिद्दी थे, अन्धे थे, आग्रह रखते थे वे अपनी लीक को पकड़ कर चलते गए।

फिर महावीर जैसे व्यक्तियों का जन्म पिछले व्यक्तियों से नहीं जोड़ा जा सकता। जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी जगत् में जरूरत होती है, प्राण पुकार करते हैं, तब कोई न कोई उपलब्ध चेतना करुणावश वापस लौट आती है। जरूरत पर निर्भर है, हमारी पुकार पर निर्भर है। जैसे इस युग में धीरे-धीरे पुकार कम होती चली गई है। एक वक्त था कि लोग ईश्वर को इन्कार करने का भी कष्ट करते थे। अब लोग ऐसे हैं जो इन्कार करने का कष्ट भी नहीं उठाना चाहते। ईश्वर को इन्कार करने में भी उत्सुकता थी। जो इन्कार करता था, वह रस लेता था। अब ऐसे लोग हैं जो कहेंगे : 'बस छोड़ो, ठीक है। हो तो हो, न हो तो न हो ईश्वर का अस्तित्व इन्कार करने की भी किसी को फुरसत नहीं है। स्वीकार करने की आशा तो बहुत दूर है। लेकिन इन्कार करने के लिए भी फुरसत नहीं है। नीत्से ने कहा है कि वह वक्त जल्दी आएगा जब ईश्वर को कोई इन्कार भी न करेगा। तुम उस दिन के लिए तैयार रहो। ठीक कहा उसने। पूरे युग की भावदृष्टि बताती है कि स्थिति क्या है।

जिसकी हमारे गहरे प्राणों में आकांक्षा और प्यास होती है, वह आकांक्षा और प्यास ही उसका जन्म बनती है। एक गड्ढा है। पहाड़ पर पानी गिरता है। पहाड़ पर नहीं भरता पानी। गिरता पहाड़ पर है, भरता गड्ढे में है। गड्ढा तैयार है, प्रतीक्षा कर रहा है। पानी भागा हुआ चला आता है, गड्ढे में भर जाता है। शायद हम में से कोई यह कहे कि पानी की बड़ी करुणा है कि वह गड्ढे में भर गया, गड्ढे की बड़ी पुकार है। क्योंकि वह खाली है इसलिए पानी को आना पड़ा। बाकी गहरे में दोनों बातें एक साथ सच हैं। जब भी जरूरत है, जब भी प्राण प्यासे हैं तब कोई भी उपलब्ध चेतना, इस गड्ढे को भरने के लिए उतर आती है। महावीर के वक्त पुरानी परम्परा चलती थी, पुराने गुरु थे। पर वे मृत थे। कोई जीवन उनमें न था। इसलिए उनके आविर्भाव पर कोई असंगति की बात नहीं कही जा सकती।

प्रश्न : महावीर ने हमें नया क्या दिया? प्रेम की चर्चा तो जब से मनुष्यजाति है तब से ही होती आई है।

उत्तर : सत्य न तो नया है न पुराना। सत्य सदा है। जो सदा है वह न कभी पुराना होगा और न कभी नया हो सकता है। जो नया होता है, वह कल

पुराना हो जाएगा। जो आज पुराना दीखता है, वह कल नया था। असल में सत्य के सम्बन्ध में नये और पुराने शब्द एकदम व्यर्थ हैं। नया वह होता है जो जन्मता है, पुराना वह होता है जो बूढा होता है। सत्य न जन्मता है, न बूढ़ा होता है, न मरता है।

लहर नयी हो सकती है, लहर पुरानी भी हो सकती है। लेकिन सागर न नया है, न पुराना हैं। बादल नये हो सकते हैं, पुराने भी हो सकते हैं। लेकिन आकाश न नया है न पुराना है। असल में आकाश वह है जिसमें नया बनता पुराना होता, पुराना मिटता नया बनता है। लेकिन स्वयं आकाश न तो नया है न पुराना है। सत्य भी नया पुराना नहीं है। इसलिए जब भी कोई दावा करता है कि सत्य प्राचीन है या नया तब भी वह मूर्खतापूर्ण दावा करता है। नये-पुराने के दावे ही नासमझी से भरे हैं।

दो ही तरह के दावेदार दुनिया में हुए हैं। एक वे हैं जो कहते हैं कि सत्य पुराना है, हमारी किताब में लिखा हुआ है। हमारी किताब इतने हजार वर्ष पुरानी है। दूसरे दावेदार हैं जो कहते हैं कि सत्य बिल्कुल नया है क्योंकि किसी किताब में नही लिखा हुआ हैं। लेकिन सत्य के सम्बन्ध में ऐसे कोई दावे नही किये जा सकते। फिर भी क्या कहा जा सकता है? फिर यही कहा जा सकता है कि जो सत्य निरन्तर है उससे भी हमारा निरन्तर सम्बन्ध नही रहता। सम्बन्ध कभी-कभी होता है। सत्य निरन्तर है। सत्य एक निरन्तरता है, शाश्वतता है, लेकिन जरूरी नही कि आकाश हमारे ऊपर निरन्तर है तो हम आकाश को देखते ही रहें। और अगर कोई ऐसा गांव हो जहाँ के सारे लोग जमीन की ओर देखते ही वक्त गुजारते हों और उस गाँव में किसी को पता ही न हो कि आकाश भी है और अगर एक आदमी आकाश की ओर आँख उठाए और चिल्ला कर लोगो को पुकारे कि देखते हो आकाश है, तुम क्यों जमीन की ओर आँखें गडाये हुए मरे जा रहे हो तो शायद उनमें से कोई कहे कि इसने बड़ा नया सत्य बताया है या शायद उनमें से कोई कहे कि इसमें क्या नया है, हमारे बाप-दादों ने, आकाश की बातें किताबों में लिखी है। लेकिन ये दोनों ही ठीक नही कह रहे।

सवाल यह नही है कि आकाश के सम्बन्ध में कुछ कहा गया है या नहीं कहा गया है। सवाल यह भी नही है कि आकाश के सम्बन्ध में जो कहा गया है वह नया है या पुराना। सवाल यह है कि क्या उससे हमारा निरन्तर सबंध है।

महावीर जो कहते हैं, बुद्ध जो कहते हैं, जीसस जो कहते हैं, कृष्ण जो कहते हैं वह शायद वही है जो निरन्तर मौजूद है। लेकिन उससे हमारा निरन्तर सम्बन्ध छूट जाता है। वह फिर चिल्ला-चिल्ला कर, पुकार-पुकार कर, उस ओर आँखें उठवाते हैं। आँखें उठ भी नहीं पातीं कि हमारी आँखें फिर वापिस लौट आती हैं।

इस अर्थ में अगर हम देखेंगे तो जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो कहना चाहिए नया ही उपलब्ध होता है। सत्य कोई नया पुराना नहीं है लेकिन व्यक्ति को जब भी उपलब्ध होता है तो वह नया है। इस अर्थ में भी सत्य को नया कहा जा सकता है क्योंकि दूसरे का सत्य बासी हो जाता है और हमारे लिए कभी काम का नहीं होता। हमारे लिए तो तब काम का होगा जब वह फिर नया होगा।

महावीर ने क्या नया दिया यह सवाल नहीं है क्योंकि अगर नया दिया भी होगा तो अब एकदम पुराना हो गया। सवाल यह नहीं है कि महावीर ने क्या नया दिया ? सवाल यह है कि सामान्य जन जैसा जीता है क्या महावीर उससे भिन्न जिए हैं। वह जीना बिल्कुल नया था। नया इस अर्थ में नहीं कि वैसा पहले कभी कोई नहीं जिया होगा। कोई भी जिया हो, करोड़ों लोग जिए हों, तो भी फर्क नहीं पड़ता। जब मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो वह प्रेम नया ही है। मुझसे पहले करोड़ों लोगों ने प्रेम किया है लेकिन कोई भी प्रेमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं जो प्रेम कर रहा हूँ, वह बासी या पुराना है। वह नया है। उसके लिए बिल्कुल नया है। और दूसरे का प्रेम किसी दूसरे के काम का नहीं है। वह अनुभूति अपने ही काम की है।

तो महावीर बिल्कुल ही अपने सत्य को उपलब्ध होते हैं, जो उन्हें उपलब्ध हुआ है, वह बहुतों को उपलब्ध हुआ होगा, बहुतों को उपलब्ध होता रहेगा। लेकिन उस उपलब्धि पर किसी व्यक्ति की कोई सील-मोहर नहीं लग जाती। यानी मैं अगर कल सुबह उठकर सूरज को देखूँ तो आप आकर मुझसे यह नहीं कह सकते हैं कि तुम बासी सूरज को देख रहे हो क्योंकि मैं भी इस सूरज को देख चुका हूँ। इसे करोड़ों लोग देख चुके हों तब भी सूरज बासी नहीं हो जाता आपके देखने से। और जब मैं देखता हूँ तब नया ही देखता हूँ। उतना ही ताजा, जितना ताजा आपने देखा होगा। सूरज पर कुछ बासे होने की छाप नहीं बन जाती। सत्य पर भी नहीं बन जाती।

ठीक है, प्रेम की चर्चा बहुत लोगों ने की है, बहुत लोग करते रहेंगे। लेकिन फिर भी जब कोई प्रेम को उपलब्ध होगा तब वह नया ही उपलब्ध

होगा। महावीर जब प्रेम को उपलब्ध हुए हैं, जिसे अहिंसा कहते हैं, ता वे नये ही उपलब्ध हुए हैं। सत्य के सम्बन्ध में तो नया पुराना नहीं होता लेकिन अनुभूति के सम्बन्ध में नया पुराना होता है और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में तो बहुत नया पुराना होता है। महावीर ने जो अभिव्यक्ति दी है अहिंसा को वह एकदम अनूठी और नयी है। शायद वैसी किसी ने भी पहले नहीं दी थी। अभिव्यक्ति नयी हो सकती है क्योंकि अभिव्यक्ति पुरानी पड़ जाती है। अब महावीर की अभिव्यक्ति भी पुरानी पड़ गई है। आज अगर मैं कुछ कहूँगा कल पुराना पड़ जाएगा। कल तो बहुत दूर है, अभी मैंने कहा और वह अभी पुराना हो गया।

अभिव्यक्ति नयी भी होती है, अभिव्यक्ति पुरानी भी पड़ जाती है। 'सत्य' न नया होता है और न पुराना पडता है। लेकिन फिर भी जब सत्य किसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है तो एकदम नया ही उपलब्ध होता है—ताजा, युवा, अछूता, एकदम कुँवारा। इसलिए जिसको उपलब्ध होता है, वह अगर चिल्ला कर कहता है कि नया सत्य मिल गया तो उस पर नाराज भी नहीं होना है। क्योंकि उसे ऐसा ही लगा है। उसके जीवन में पहली बार ही यह सूरज निकला है। किसी और के जीवन में निकला हो, इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उसे बिल्कुल ही नया हुआ है। वह एकदम ताजा हो गया है उसके स्पर्श से कि वह चिल्लाकर कह सकता है कि यह बिल्कुल नया है।

शास्त्रों में भी खोजी जा सकती है वह बात जो उसे हुई है। और शास्त्र का अधिकारी कह सकता है कि क्या नया है? यह तो हमारी किताब में लिखा है। मगर सारी किताबों में भी लिखा हो तब भी जब व्यक्ति को सत्य मिलेगा तो उसकी प्रतीति ताजे की, नये की उपलब्धि की ही होगी। उसे हम यों भी कह सकते हैं कि सत्य सदा जीवन्त है, ताजा और नया है। यह हमारे कहने की दृष्टि पर निर्भर करता है कि हम क्या कहते हैं।

मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य नया ही उपलब्ध होता है। सत्य सदा से है लेकिन जब कोई व्यक्ति सत्य से सम्बन्धित होता है तब सत्य उसके लिए नया हो जाता है और प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति जिसे वह अभिव्यक्त करता है नयी होती है क्योंकि वैसी अभिव्यक्ति कोई दूसरा नहीं दे सकता क्योंकि वैसा कोई दूसरा व्यक्ति न हुआ है, न है, न हो सकता है।

अब हम कितनी साधारण सी बात समझते हैं एक व्यक्ति का पैदा होना। मेरे पैदा होने में या आपके पैदा होने में कितना बड़ा जगत् सम्बन्धित है, इसका

हमें कोई ख्याल नही है। मेरे पैदा होने में आज तक, इस समय के बिन्दु तक, विश्व की जो भी स्थिति थी, वह सबकी सब जिम्मेदार है और अगर मुझे फिर से पैदा करना हो तो ठीक इतनी ही विश्व की स्थिति पूरी की पूरी पुनरुक्त हो तो ही मैं पैदा हो सकता हूँ, नही तो पैदा नही हो सकता। मेरे पिता चाहिए, मेरी माँ चाहिए। वे भी उन्हीं पिताओ और माताओ से पैदा होने चाहिए जिनसे वे पैदा हुए।

इस तरह हम पीछे लौटते चले जाएँगे तो हम पाएँगे कि पूरी विश्व की स्थिति एक छोटे से व्यक्ति के पैदा होने में संयुक्त है, जुड़ी हुई है। और अगर इसमें एक इंच भी इधर-उधर हो जाए तो मैं पैदा नही हो सकूँगा। जो भी पैदा होगा, वह कोई दूसरा होगा। और अगर मुझे पैदा करना हो तो इतने जगत् का पूरा का पूरा अतीत फिर से पुनरुक्त हो तभी मैं पैदा हो सकता हूँ। इसकी कोई सम्भावना नही दिखाई पडती। यह कैसे पुनरुक्त होगा? तो एक व्यक्ति को दुबारा पैदा नही किया जा सकता। और इसलिए एक व्यक्ति के अनुभव को, उसकी अभिव्यक्ति को भी दुबारा पैदा नही किया जा सकता। इस अर्थ में अगर हम देखते चले तो सत्य का अनुभव व्यक्तिगत है। वह एकदम एक ही अनुभव प्रत्येक को भिन्न-भिन्न होता है।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि एक बूढा आदमी था जो मेरे पड़ोस में रहता था। पिता के दोस्तों में एक था जो अक्सर उनके पास आता और मुझे बहुत परेशान करता। जब मैं आत्मा, परमात्मा की कविताएँ लिखता तो वह खूब हँसता और हाथ पकड कर हिला देता कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है, क्या ईश्वर को देखा है और इतना खिल-खिल कर हँसता कि उस आदमी से डर पैदा हो जाता। और वह कही सडक पर मिल जाता तो बचकर निकल जाता क्योंकि वह वहीं पकड लेता। अनुभव हुआ है ईश्वर का? ईश्वर को देखा है? और मेरी हिम्मत न पड़ती कहने की कि सच में अनुभव क्या हुआ है। कविताएँ लिख रहा था। वह आदमी बहुत ज्यादा परेशान करने लगा था।

एक बार वर्षा के दिन मैं घर के बाहर समुद्र की तरफ गया। सूरज निकला है। सुबह का वक्त है। समुद्र के जल पर भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। रास्ते के किनारे जो गन्दे पानी के गड्ढे बने हैं उनमें भी सूरज का प्रतिबिम्ब बना है। लौटते वक्त मुझे अचानक ऐसा लगा कि सागर का जो प्रतिबिम्ब है और इस गन्दे गड्ढे में जो प्रतिबिम्ब है इन दोनों में कोई भेद नहीं है। मुझे लगा कि प्रतिबिम्ब को गंदा गड्ढा कैसे छू सकता है? प्रतिबिम्ब कैसे गदा

होगा ? वह चाहे शुद्ध जल में बने, चाहे गंदे जल में वह तो वही है। लेकिन फिर भी सागर में वह और दिखाई पड रहा है, गंदे डबरे में और दिखाई पड रहा है।

उस दिन मैं इतनी खुशी से लौटा कि रास्ते पर जो भी मिला मैं आनन्द से भर गया। मैं उसे गले लगाता, आलिंगन करता। वह आदमी भी मिल गया जिससे मैं बचकर निकलता था। मुझे पहली बार लगा कि वह आदमी भी ईश्वर है। और आज मैंने उसे भी गले लगा लिया। उस आदमी ने कहा ठीक है, अब मैं पहचाना कि तुझे अनुभव हो गया है, अब नहीं पूछूँगा। क्योंकि जब मैं तेरे पास आता था तो तू ऐसे बचता था मुझसे कि मुझे लगता था कि इसको कैसे ईश्वर का अनुभव हुआ होगा। मैं भी तो ईश्वर ही हूँ। अगर ईश्वर का अनुभव हो गया है तो अब किससे बचना है, किससे भागना है ? अब तुझे अनुभव हो गया, अब ठीक है। अब मैं देखता हूँ तेरी आँख में। तीन दिन तक यह हालत रही। आदमी चुक गए तो गाय, भैंस, घोडे जो भी मिल जाते, उनसे भी गले लगता। वे भी चुक जाते तो वृक्षों के गले लगता। तीन दिन यह अवस्था थी। उन तीन दिनों में जो जाना बस फिर वह जीवन भर के लिए सम्पदा बन गया। सब चीज में वही दिखाई पडने लगा।

यह एक छोटी सी घटना है। गंदे डबरे में बना हुआ प्रतिबिम्ब सागर मे बने हुए प्रतिबिम्ब से भिन्न थोडे ही हो जाएगा। वह तो वही है। फिर भी, सागर का प्रतिबिम्ब सागर का ही है, गड्ढे का गड्ढे का है। महावीर में जो प्रतिबिम्ब बनेगा सत्य का, वह वही है जो मुझ में बने, आप में बने, किसी में बने। लेकिन फिर भी महावीर का महावीर का होगा, मेरा मेरा होगा, आपका आपका होगा। चाँद वही है, सूरज वही है, सत्य वही है, प्रतिबिम्ब भी वही है। लेकिन जिन-जिन में बनता है, वह अलग-अलग है। और फिर जब वे उसकी अभिव्यक्ति देने जाते हैं तब और अलग हो जाते हैं। महावीर के पहले भी चर्चा थी प्रेम की और बाद में भी रहेगी। लेकिन महावीर में जो प्रतिबिम्ब बना है, वह निपट महावीर का है। वैसा प्रतिबिम्ब न कभी बना था, न बन सकता है।

प्रश्न : क्या आप मत-मतान्तरों के पक्षपाती हैं ? क्या बुद्ध के बौद्ध, महावीर के जैन, ईसा के ईसाई आदि सम्प्रदाय समाप्त करके एक मानव धर्म की स्थापना नहीं की जा सकती ?

उत्तर : मैं मत-मतान्तरों का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूँ। न कोई जैन है, न कोई बौद्ध है, न कोई हिन्दू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है।

दुनिया में दो तरह के ही लोग हैं सिर्फ—धार्मिक और अधार्मिक। जो धार्मिक है, वह बुद्ध हो सकता है, महावीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है। लेकिन वह हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई नही हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वही हो पाता है जो बुद्ध और महावीर हो सकता है। अधार्मिक व्यक्ति न बुद्ध हो पाता है न महावीर हो पाता है। वह जैन हो जाता है और बुद्ध हो जाता है। अधार्मिक आदमियों के सम्प्रदाय हैं। धार्मिक आदमी का कोई सम्प्रदाय नहीं।

इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म का कोई सम्प्रदाय नही है, सब सम्प्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, जीसस नहीं हो सकता, बुद्ध नहीं हो सकता, कृष्ण नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमी क्या करे? अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि धार्मिक हो जाना एक बड़ी क्रान्ति से गुजरना है। तब वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है कि महावीर तो हम नहीं हो सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। वह कहता है कि महावीर को हम मान तो सकते हैं, अगर महावीर नहीं हो सकते। मानने में तो कोई कठिनाई नहीं है। हम महावीर के अनुयायी तो हो सकते हैं। तो हम जैन हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि जिन हुए बिना कोई जैन कैसे हो सकता है? जिसने जीता नही सत्य को वह जैन कैसे हो सकता है? महावीर इसलिए जिन हैं क्योंकि उन्होंने सत्य को जीता है। यह इसलिए जैन है कि यह महावीर को मानता है।

जागे बिना कोई बौद्ध कैसे हो सकता है? बुद्ध जागकर बुद्ध हुए हैं। बुद्ध का अर्थ है जागा हुआ यानी जो जाग गया। बुद्ध को जगाना पड़ा बुद्ध होने के लिए लेकिन हम जागने की हिम्मत नही जुटा पाते तो हम बुद्ध को मान लेते हैं और बौद्ध हो जाते हैं। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा था क्राइस्ट होने के लिए लेकिन सूली पर लटकना बहुत मुश्किल है। हम एक सूली बना लेते हैं लकड़ी की, चाँदी की, सोने की, गले में लटका लेते हैं और क्रिश्चियन हो जाते हैं। ये तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की।

सम्प्रदाय तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई पक्ष नहीं है। सब अधार्मिक आदमी के झगड़े

हैं। मेरा तो कोई पक्ष नही, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है, इसलिए मैं महावीर की बात करता हूँ, बुद्ध से मुझे प्रेम है, मैं बुद्ध की बात करता हूँ, कृष्ण से मुझे प्रेम है, मैं कृष्ण की बात करता हूँ, क्राइस्ट से मुझे प्रेम है, मैं क्राइस्ट की बात करता हूँ। मैं किसी का अनुयायी नही हूँ। किसी का मत चलना चाहिए, इसका भी पक्षपाती नही हूँ। इस बात का जरूर आग्रह मन में है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। क्योंकि इन्हें समझने से बहुत परोक्षरूप से हम अपने को समझने में समर्थ होते चले जाते हैं। इनके पीछे चलने से कोई कही नही पहुँच सकता। लेकिन इन्हें अगर कोई पूरी तरह से समझ ले तो स्वयं को समझने के लिए बड़े गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि क्या मानवधर्म की स्थापना नहीं की जा सकती। यह सब नासमझी की बातें हैं। दुनिया में कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। असल में सभी धर्मों ने यह कोशिश की है। और इस कोशिश ने इतना पागलपन पैदा किया जिसका कोई हिसाब नही। इस्लाम भी यही चाहता है कि एक ही धर्म—इस्लाम—स्थापित हो जाए। ईसाई भी यही चाहते हैं कि उन्हीं का धर्म स्थापित हो जाए। बौद्ध भी यही चाहते हैं। जैन भी यही चाहेंगे कि उन्हीं का धर्म रह जाए। मानवधर्म वही होगा जो उनका धर्म है। अपने धर्म को वह मानव मात्र का धर्म बना लेना चाहते हैं। यह कोशिश असफल होने को बनी हुई है। क्योंकि मनुष्य-मनुष्य इतना भिन्न है कि कभी एक धर्म होना असम्भव है। धार्मिकता हो सकती है एक में। इस दोनो बातों के भेद को भी समझ लीजिए।

मैं किसी मानव धर्म के पक्ष में नही हूँ। क्योंकि अगर मैं मानव धर्म की कोशिश में लगूँ तो वह सिर्फ हजार धर्मों में एक हजार एक और होगा। इससे ज्यादा कुछ नही होगा। सभी धर्म मानव-धर्म की आवाज लेकर आए और मनुष्य का एक धर्म स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन उन्होंने एक की संख्या और बढा दी और कोई अन्तर नही पड सका। मेरी दृष्टि यह है कि मानव धर्म एक हो यह बात ही बेमानी है। धार्मिकता हो जीवन में। धार्मिकता के लिये किसी सगठन की जरूरत नहीं कि सारे मनुष्य इकट्ठे हों, एक ही मस्जिद में, एक ही मन्दिर में, एक ही झंडे के नीचे। यह सब पागलपन की बातें हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नही। हाँ पृथ्वी धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। मनुष्य धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। कोई एक मनुष्य धर्म निर्मित करता है तो फिर वहीं पागलपन शुरू होगा और फिर एक सम्प्रदाय खडा होकर

उत्तर : मैं मत-मतान्तरों का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूँ। न कोई जैन है, न कोई बौद्ध है, न कोई हिन्दू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है।

दुनिया में दो तरह के ही लोग हैं सिर्फ—धार्मिक और अधार्मिक। जो धार्मिक है, वह बुद्ध हो सकता है, महावीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है। लेकिन वह हिन्दू, जैन, मुसलमान और ईसाई नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति वही हो पाता है जो बुद्ध और महावीर हो सकता है। अधार्मिक व्यक्ति न बुद्ध हो पाता है न महावीर हो पाता है। वह जैन हो जाता है और बुद्ध हो जाता है। अधार्मिक आदमियों के सम्प्रदाय हैं। धार्मिक आदमी का कोई सम्प्रदाय नहीं।

इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है, सब सम्प्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता, जीसस नहीं हो सकता, बुद्ध नहीं हो सकता, कृष्ण नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमी क्या करे? अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि धार्मिक हो जाना एक बड़ी क्रान्ति से गुजरना है। तब वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है कि महावीर तो हम नहीं हो सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। वह कहता है कि महावीर को हम मान तो सकते हैं, अगर महावीर नहीं हो सकते। मानने में तो कोई कठिनाई नहीं है। हम महावीर के अनुयायी तो हो सकते हैं। तो हम जैन हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि जिन हुए बिना कोई जैन कैसे हो सकता है? जिसने जीता नहीं सत्य को वह जैन कैसे हो सकता है? महावीर इसलिए जिन हैं क्योंकि उन्होंने सत्य को जीता है। वह इसलिए जैन है कि वह महावीर को मानता है।

जागे बिना कोई बौद्ध कैसे हो सकता है? बुद्ध जागकर बुद्ध हुए हैं। बुद्ध का अर्थ है जागा हुआ यानी जो जाग गया। बुद्ध को जगाना पड़ा बुद्ध होने के लिए लेकिन हम जागने की हिम्मत नहीं जुटा पाते तो हम बुद्ध को मान लेते हैं और बौद्ध हो जाते हैं। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा था क्राइस्ट होने के लिए लेकिन सूली पर लटकना बहुत मुश्किल है। हम एक सूली बना लेते हैं लकड़ी की, चाँदी की, सोने की, गले में लटका लेते हैं और क्रिश्चियन हो जाते हैं। ये तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की।

सम्प्रदाय तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई पक्ष नहीं है। सब अधार्मिक आदमी के झगड़े

हैं। मेरा तो कोई पक्ष नहीं, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है, इसलिए मैं महावीर की बात करता हूँ, बुद्ध से मुझे प्रेम है, मैं बुद्ध की बात करता हूँ; कृष्ण से मुझे प्रेम है, मैं कृष्ण की बात करता हूँ, क्राइस्ट से मुझे प्रेम है, मैं क्राइस्ट की बात करता हूँ। मैं किसी का अनुयायी नही हूँ। किसी का मत चलना चाहिए, इसका भी पक्षपाती नही हूँ। इस बात का जरूर आग्रह मन में है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। क्योंकि इन्हें समझने से बहुत परोक्षरूप से हम अपने को समझने में समर्थ होते चले जाते हैं। इनके पीछे चलने से कोई कही नही पहुँच सकता। लेकिन इन्हें अगर कोई पूरी तरह से समझ ले तो स्वयं को समझने के लिए बडे गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि क्या मानवधर्म की स्थापना नही की जा सकती। यह सब नासमझी की बातें हैं। दुनिया मे कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। असल में सभी धर्मों ने यह कोशिश की है। और इस कोशिश ने इतना पागलपन पैदा किया जिसका कोई हिसाब नहीं। इस्लाम भी यही चाहता है कि एक ही धर्म—इस्लाम—स्थापित हो जाए। ईसाई भी यही चाहते हैं कि उन्ही का धर्म स्थापित हो जाए। बौद्ध भी यही चाहते हैं। जैन भी यही चाहेंगे कि उन्हीं का धर्म रह जाए। मानवधर्म वही होगा जो उनका धर्म है। अपने धर्म को वह मानव मात्र का धर्म बना लेना चाहते हैं। यह कोशिश असफल होने को बनी हुई है। क्योंकि मनुष्य-मनुष्य इतना भिन्न है कि कभी एक धर्म होना असम्भव है। धार्मिकता हो सकती है एक में। इस दोनो बातों के भेद को भी समझ लीजिए।

मैं किसी मानव धर्म के पक्ष में नही हूँ। क्योंकि अगर मैं मानव धर्म की कोशिश में लगूँ तो वह सिर्फ हजार धर्मों में एक हजार एक और होगा। इससे ज्यादा कुछ नहीं होगा। सभी धर्म मानव-धर्म की आवाज लेकर आए और मनुष्य का एक धर्म स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन उन्होने एक की संख्या और बढ़ा दी और कोई अन्तर नही पड सका। मेरी दृष्टि यह है कि मानव धर्म एक हो यह बात ही बेमानी है। धार्मिकता हो जीवन में। धार्मिकता के लिये किसी सगठन की जरूरत नही कि सारे मनुष्य इकट्ठे हों, एक ही मस्जिद में, एक ही मन्दिर में, एक ही झंडे के नीचे। यह सब पागलपन की बातें हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नही। हाँ पृथ्वी धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। मनुष्य धार्मिक हो इसकी चेष्टा होनी चाहिए। कोई एक मनुष्य धर्म निर्मित करता है तो फिर वहीं पागलपन शुरू होगा और फिर एक सम्प्रदाय खडा होकर

भी, हिन्दू से भी, मुसलमान से भी—सबसे ले लेते हैं। सबको जोड़कर हम एक मानव धर्म बना लेते हैं। उससे कोई सम्प्रदाय खंडित न हुआ। सम्प्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसॉफी एक नया सम्प्रदाय बन गई। उससे कुछ फर्क नही पड़ा। थियोसॉफिस्ट का अपना-अपना मन्दिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसॉफिस्ट का अपनी पूजा का ढंग अपना हिसाब हो गया। एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब हिसाब हुआ। लेकिन उससे किसी पुराने सम्प्रदाय को कोई चोट नही पहुँची।

दो कोशिशें की गईं। एक, धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नही हुआ। दूसरा, सभी धर्मों में जो सार है उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी नही हो सका। अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हूँ और वह यह कि सम्प्रदाय मात्र का विरोध किया जाए, सम्प्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की जाए—धर्म की नहीं, धार्मिकता की। अगर वह सम्भव हो सका तो मानव धर्म तो नहीं बनेगा, कोई एक धर्म, एक चर्च नहीं होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झंडा नही होगा लेकिन फिर भी; बहुत गहरे अर्थों में मानव धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ पर ही मेरी दृष्टि है।

२४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक १ अक्टूबर, १९६९

भी, हिन्दू से भी, मुसलमान से भी—सबसे ले लेते हैं। सबको जोड़कर हम एक मानव धर्म बना लेते हैं। उससे कोई सम्प्रदाय खंडित न हुआ। सम्प्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसॉफी एक नया सम्प्रदाय बन गई। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ा। थियोसॉफिस्ट का अपना-अपना मन्दिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसॉफिस्ट का अपनी पूजा का ढंग अपना हिसाब हो गया। एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब हिसाब हुआ। लेकिन उससे किसी पुराने सम्प्रदाय को कोई चोट नहीं पहुँची।

दो कोशिशें की गईं। एक, धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नहीं हुआ। दूसरा, सभी धर्मों में जो सार है उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी नहीं हो सका। अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हूँ और वह यह कि सम्प्रदाय मात्र का विरोध किया जाए, सम्प्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की जाए—धर्म की नहीं, धार्मिकता की। अगर वह सम्भव हो सका तो मानव धर्म तो नहीं बनेगा, कोई एक धर्म, एक चर्च नहीं होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झंडा नहीं होगा लेकिन फिर भी; बहुत गहरे अर्थों में मानव धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ पर ही मेरी दृष्टि है।

२४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक १ अक्टूबर, १९६९

भी, हिन्दू से भी, मुसलमान से भी—सबसे ले लेते हैं। सबको जोड़कर हम एक मानव धर्म बना लेते हैं। उससे कोई सम्प्रदाय खंडित न हुआ। सम्प्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसॉफी एक नया सम्प्रदाय बन गई। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ा। थियोसॉफिस्ट का अपना-अपना मन्दिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसॉफिस्ट का अपनी पूजा का ढंग अपना हिसाब हो गया। एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब-हिसाब हुआ। लेकिन उससे किसी पुराने सम्प्रदाय को कोई चोट नहीं पहुँची।

दो कोशिशें की गई। एक, धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नहीं हुआ। दूसरा, सभी धर्मों में जो सार है उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी नहीं हो सका। अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हूँ और वह यह कि सम्प्रदाय मात्र का विरोध किया जाए, सम्प्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की जाए—धर्म की नहीं, धार्मिकता की। अगर वह सम्भव हो सका तो मानव धर्म तो नहीं बनेगा, कोई एक धर्म, एक चर्च नहीं होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झंडा नहीं होगा लेकिन फिर भी; बहुत गहरे अर्थों में मानव धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ पर ही मेरी दृष्टि है।

२४

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक १ अक्टूबर, १९६९

प्रश्न : जब आत्मा अमर है, ज्ञानस्वरूप है, फिर वह कैसे अज्ञान मे गिरती है, कैसे बन्धन मे गिरती है, कैसे शरीर लेती है? जबकि शरीर छोडना है, शरीर से मुक्त होना है तो यह कैसे सम्भव हो पाता है?

उत्तर यह सवाल महत्त्वपूर्ण है और बहुत ऊपर से देखे जाने पर समझ में नही आ सकता। थोडा भीतर गहरे झाकने से बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसा क्यो होता है। जैसे इस कमरे में आप हैं और आप इस कमरे के बाहर कभी नही गए, बडे आनन्द में हैं, बडे सुरक्षित हैं, न कोई भय, न कोई अधकार, न कोई दु:ख। लेकिन इस कमरे के बाहर आप कभी नही गए। तो इस कमरे में रहने की दो शर्तें हो सकती हैं। एक तो यह कि आपको इस कमरे से बाहर जाने की स्वतन्त्रता ही नही है। यानी आप जाना भी चाहें तो नही जा सकते। आप परतत्र हैं इस कमरे में रहने को। एक तो शर्त यह हो सकती है। दूसरी शर्त यह हो सकती है कि अगर आप परतत्र हैं बाहर जाने के लिए तो आपका सुख, आपकी शाति, आपकी सुरक्षा सभी थोडे दिनो में आपको कष्टदायी हो जाएगी क्योंकि परतंत्रता से बडा कष्ट और कोई भी नहीं है। अगर आपको सुख में रहने के लिए बाध्य किया जाए तो सुख भी दु:ख हो जाएगा। एक आदमी को हम कहें कि हम तुम्हें सारे सुख देते हैं सिर्फ स्वतंत्रता नही, यानी यह भी स्वतंत्रता नही कि अगर तुम चाहो तो उन सुखों को भोगने से इन्कार कर सको, तुम्हें भोगना ही पडेगा तो वह सुख भी दुःख में बदल जाएगा। परतंत्रता बडा दु:ख है। वह सारे सुखो को मिट्टी करी देती है। अगर यह शर्त हो इस कमरे के भीतर रहने की कि बाहर नहीं जा सकते, सुख नही छोड सकते तो यह सब सुख दु:ख हो जाएँगे और बाहर निकलने की प्यास

इतनी तीव्र हो जाएगी, दु ख इतना गहरा हो जाएगा जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि बाहर नही जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण बनेगी। यह भी हो सकता है कि फिर बाहर दु ख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसन्द न करें। क्योंकि भीतर से बाहर जाने की कोई आशा नही है। एक स्थिति यह है।

दूसरी स्थिति यह है कि आप को पूरी स्वतन्त्रता है कि आप बाहर जाएँ, या भीतर रहें। लेकिन आप कभी बाहर नही गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शान्ति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन बाहर अज्ञान है और आप बाहर जाते हैं और जाएँगे तभी आप जान सकेंगे कि बाहर क्या है। जाएँगे जानने के लिए, यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दु ख भोगेंगे तो फिर वापस लौटेंगे। और जब आप वापस आएँगे तो पहले का सुख आपको करोड गुना ज्यादा मालूम पडेगा क्योंकि बीच में दु ख का एक अनुभव है। पीडा से आप गुजरे हैं। हो सकता है कि पहले उस कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पडे हों क्योंकि आपको कोई दु ख न था। और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पडा हो क्योंकि आपने अँधेरा ही नही देखा। अब जब आप बाहर के जगत् से वापस लौटते हैं तो आप जानते है कि प्रकाश क्या है क्योंकि आपने अँधेरा जाना है, क्योंकि आपने पीडा जानी है, इसलिए आप अब आनन्द को पहचानते हैं तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी बोधपूर्वक न रहा होगा। जागृत नही हो सकते हैं उसके प्रति आप। आप मूर्छित ही रहे होंगे। उस सुख में भी मूर्छित रहे होंगे। लेकिन जब बाहर के सारे दुःखो को झेलकर, कठिनाइयों से वापिस कदम उठा-उठा कर अपने घर पर पहुँचते हैं तो आप सचेतन पहुँचते हैं।

यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था में पुनः पहुँचती है जिस अवस्था में वह थी। इस संसार की पूरी यात्रा उसे किसी नयी जगह पहुँचा देती। लेकिन इस यात्रा के बाद पहुँचना अनुभव को सचेतन, गहरा व अद्भुत बना देती है। यानी वही स्थिति अब मोक्ष मालूम होती है। वह स्थिति तब भी थी लेकिन तब वह मोक्ष न थी। हो सकता है कि तब वह बन्धन जैसी मालूम पडी हो क्योंकि आपके विपरीत कोई अनुभव न था। आत्मा स्वतन्त्र है, स्वय के बाहर जाने के लिए। इसके लिए कोई परतन्त्रता नही है। आत्मा स्वतन्त्र है भटकने के लिए और जहाँ भूल करने की स्वतंत्रता न हो वहाँ स्वतन्त्रता नही। भूल करने की स्वतंत्रता गहरी से गहरी स्वतत्रता है।

आत्मा स्वतन्त्र है पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है, उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतंत्र है। उस पर कोई परतंत्रता नही है। स्वतंत्रता का मतलब है कि वह चाहे तो सुख उठाए चाहे तो दु.ख उठाए, चाहे तो ज्ञान में जिए चाहे तो अंधकार में खो जाए, चाहे तो वासना में जिए और चाहे तो वासना से मुक्त हो जाए। स्वतंत्रता का मतलब है कि दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले हैं। और इसलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतन्त्रता की यह सम्भावना उसे उन स्थितियों में ले जाएगी जो दुःखदायी हैं। और तभी उस अनुभव से आप वापिस लौट सकते हैं।

तो मैंने जैसा कहा कि निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नही किया है। निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने स्वतंत्रता का उपयोग नही किया है। इसलिए निगोद एक परतन्त्रता की स्थिति है। संसार वह स्थिति है जहाँ आत्मा ने स्वतन्त्रता का उपयोग करना शुरू किया है। वह भटकी है, उसने भूलें की हैं, उसने दु ख पाए हैं, उसने शरीर ग्रहण किए हैं, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किये हैं। उसने हजारों तरह की वासनाएँ पाली और पोसी हैं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरों को ग्रहण किया है—यह भी उसकी स्वतंत्रता है।

मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा निर्णय है। इसमें कोई दुनिया में धक्के नही दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतंत्रता की सम्भावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करूँ। फिर मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करूँ ? यह भी मेरी स्वतंत्रता है कि मैं चीटी बनूँ, कि मैं हाथी बनूँ, कि मैं आदमी बनूँ, कि मैं देवता बनूँ, कि मैं प्रेत बनूँ—मैं क्या बनूं ? यह भी सवाल मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे धक्के नहीं दे रहा है। लेकिन चूंकि मेरी आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजों का उपयोग कर सकता हूँ और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हूँ। इसके पहले मुक्त भी नही हो सकता।

इसलिए निगोद में जो आत्मा है, वह मुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना है कि उसने स्वतंत्रता का उपयोग ही नही किया है। निगोद मे आत्मा मूर्छित रहती है। मूर्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष में होगी। और सचेतन वह तभी होगी जब दु ख उठाएगी, पीडा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

इतनी तीव्र हो जाएगी, दु ख इतना गहरा हो जाएगा जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि वाहर नही जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण वनेगी। यह भी हो सकता है कि फिर वाहर दु ख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसन्द न करें। क्योंकि भीतर से वाहर जाने की कोई आशा नही है। एक स्थिति यह है।

दूसरी स्थिति यह है कि आप को पूरी स्वतंत्रता है कि आप वाहर जाएँ, या भीतर रहें। लेकिन आप कभी वाहर नही गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शान्ति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन वाहर अज्ञान है और आप वाहर जाते है और जाएँगे तभी आप जान सकेंगे कि वाहर क्या है। जाएँगे जानने के लिए, यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दु ख भोगेंगे तो फिर वापस लौटेंगे। और जव आप वापस आएँगे तो पहले का सुख आपको करोड गुना ज्यादा मालूम पडेगा क्योंकि वीच में दु.ख का एक अनुभव है। पीड़ा से आप गुजरे हैं। हो सकता है कि पहले उस कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पड़े हों क्योकि आपको कोई दु ख न था। और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पडा हो क्योंकि आपने अँधेरा ही नहीं देखा। अव जव आप वाहर के जगत् से वापस लौटते हैं तो आप जानते है कि प्रकाश क्या है क्योकि आपने अँधेरा जाना है, क्योकि आपने पीडा जानी है, इसलिए आप अव आनन्द को पहचानते हैं तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी वोधपूर्वक न रहा होगा। जागृत नही हो सकते हैं उसके प्रति आप। आप मूर्छित ही रहे होंगे। उस सुख में भी मूर्छित रहे होंगे। लेकिन जव वाहर के सारे दुःखो को झेलकर, कठिनाइयो से वापिस कदम उठा-उठा कर अपने घर पर पहुँचते हैं तो आप सचेतन पहुँचते हैं।

यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था में पुनः पहुँचती है जिस अवस्था में वह थी। इस संसार की पूरी यात्रा उसे किसी नयी जगह पहुँचा देती। लेकिन इस यात्रा के वाद पहुँचना अनुभव को सचेतन, गहरा व अद्भुत वना देती है। यानी वही स्थिति अव मोक्ष मालूम होती है। वह स्थिति तव भी थी लेकिन तव वह मोक्ष न थी। हो सकता है कि तव वह वन्धन जैसी मालूम पडी हो क्योंकि आपके विपरीत कोई अनुभव न था। आत्मा स्वतन्त्र है, स्वयं के वाहर जाने के लिए। इसके लिए कोई परतंत्रता नही है। आत्मा स्वतन्त्र है भटकने के लिए और जहाँ भूल करने की स्वतंत्रता न हो वहाँ स्वतन्त्रता नही। भूल करने की स्वतंत्रता गहरी से गहरी स्वतंत्रता है।

आत्मा स्वतंत्र है पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है, उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतंत्र है। उस पर कोई परतंत्रता नही है। स्वतंत्रता का मतलब है कि वह चाहे तो सुख उठाए चाहे तो दु:ख उठाए, चाहे तो ज्ञान में जिए चाहे तो अंधकार में खो जाए, चाहे तो वासना में जिए और चाहे तो वासना से मुक्त हो जाए। स्वतन्त्रता का मतलब है कि दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले है। और इसलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतन्त्रता की यह सम्भावना उसे उन स्थितियों में ले जाएगी जो दुःखदायी हैं। और तभी उस अनुभव से आप वापिस लौट सकते हैं।

तो मैंने जैसा कहा कि निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नही किया है। निगोद वह स्थिति है जहाँ उन्होंने स्वतंत्रता का उपयोग नही किया है। इसलिए निगोद एक परतन्त्रता की स्थिति है। संसार वह स्थिति है जहाँ आत्मा ने स्वतंत्रता का उपयोग करना शुरू किया है। वह भटकी है, उसने भूलें की हैं, उसने दु ख पाए हैं, उसने शरीर ग्रहण किए हैं, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किये हैं। उसने हजारों तरह की वासनाएँ पाली और पोसी हैं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरो को ग्रहण किया है—यह भी उसकी स्वतंत्रता है।

मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा निर्णय है। इसमें कोई दुनिया में धक्के नही दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतंत्रता की सम्भावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करूँ। फिर मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करूँ ? यह भी मेरी स्वतंत्रता है कि मैं चींटी बनूँ, कि मैं हाथी बनूँ, कि मैं आदमी बनूँ, कि मैं देवता बनूँ, कि मैं प्रेत बनूँ—मैं क्या बनूं ? यह भी सवाल मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे धक्के नही दे रहा है। लेकिन चूँकि मेरी आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजो का उपयोग कर सकता हूँ और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हूँ। इसके पहले मुक्त भी नही हो सकता।

इसलिए निगोद में जो आत्मा है, वह मुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना है कि उसने स्वतंत्रता का उपयोग ही नही किया है। निगोद मे आत्मा मूर्छित रहती है। मूर्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष मे होगी। और सचेतन वह तभी होगी जब दु ख उठाएगी, पीड़ा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

तो मैं कह रहा हूँ कि स्वतंत्रता आत्मा का मूलभूत हिस्सा है और स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है मैं जहाँ जाना चाहूँ, मेरे ऊपर कोई बन्धन नही है। अगर मैं वासना में उतरना चाहूँ, तो मैं गहरी से गहरी वासना में उतर सकता हूँ। संसार की कोई भी शक्ति मुझे रोकने को नहीं है। वल्कि, चूँकि आत्मा स्वतन्त्र है इसलिए संसार की प्रत्येक शक्ति मुझे साथ देगी। मैं वासना में उतरना चाहता हूँ, संसार मुझे सीढियाँ बना देगा। परमात्मा की सारी शक्तियाँ मेरे हाथ में मुझे उपलब्ध हो जाएँगी। मैं शरीर ग्रहण करूँ, कैसा शरीर ग्रहण करूँ, तो मेरी वासना जैसी होगी वैसा मैं शरीर ग्रहण कर लूँगा। यह सारी की सारी स्वतंत्रता का ही हिस्सा है। लेकिन जब यह शरीर ग्रहण करना, यह दु:ख, यह पीडा, यह परेशानी, यह भटकन, यह अनन्त यात्रा, यह आवागमन, यह पुनरुक्ति, बार-बार यह चक्कर जब जोर पकडने लगेगा, जब कष्ट गहरा होगा तो मुझे कुछ न कुछ याद पड़ना शुरू हो जाएगा।

कोई घर जो मैंने कभी छोड दिया, यह जो हमें स्मृति है वह निगोद की है। यानी यह जो हमको स्मरण है कि कही कुछ भूल हो रही है, अशान्त नही होना, शान्त होना है, शान्ति अच्छी लगती है, अशान्ति बुरी लगती है, शान्ति में हम किसी क्षण में रह चुके हैं अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि दुःख बुरा लगता है, आनन्द अच्छा लगता है, आनन्द की कोई गहरी स्मृति कही भीतर है जो कहती है कि वापस लौट चलो, वही अच्छा था। लेकिन उसको भी अनन्तकाल व्यतीत हो गया है इस यात्रा में गए हुए कि बहुत चित्र नहीं है कि हम कहाँ लौट जाएँ, क्या करें। लेकिन बार-बार ऐसा अनुभव होता है कि कही हम भूल में हैं, कहीं किसी विजातीय, किसी विदेशी जगत् में हैं। जहाँ हमें होना चाहिए, वहाँ हम नहीं हैं। कुछ न कुछ चीज कही और रखी गई है, ऐसा प्रतिपल प्रतीत होता रहता है। यह प्रतीति धर्म बनती है। इस प्रतीति की गहरी से गहरी जिज्ञासा फिर खोज बनती है उस जगह की जहाँ से हमने स्वतंत्रता का उपयोग शुरू किया था, उस बिन्दु को जहाँ हम थे और जहाँ से हम चल पडे और अब हम फिर वापस लौटे हैं।

यह जो वापिस लौटना है, यह भी हमारा निर्णय है। यह उसी स्वतंत्रता का सहयोग है। हम वापिस लौटते हैं। हम उसी बिन्दु को जब फिर उपलब्ध होंगे तो यह बिन्दु यद्यपि वही होगी लेकिन हम बदल गए होंगे। इसे समझ लेना जरूरी है। उसी जगह हम फिर वापिस पहुँच जाएँगे जहाँ से हमने यात्रा शुरू की थी। लेकिन जब हम पहुँचेंगे, जगह वही होगी, हम बदल गए होंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अद्भुत घटना है। वह एक गाँव के बाहर बैठा हुआ है, अपने गाँव के बाहर एक झाड के नीचे। चाँदनी रात है। एक व्यक्ति उसके पास आया जिसने हजारों रुपयों से भरी थैली उसके सामने पटकी, और कहाः "नसरुद्दीन, मैं करोड़पति हूँ। मेरे पास रुपयों के अम्बार हैं। लेकिन सुख नही है। तो मैं सारी पृथ्वी पर घूम रहा हूँ कि सुख कैसे पाऊँ, कहाँ पाऊँ? और मुझे कही सुख नही मिला। हाँ लोगों ने मुझे बारम्बार कहा कि नसरुद्दीन से मिलो, शायद वह तुम्हें सुख का कोई रास्ता बता दे। तो मैं कैसे सुख पाऊँ। सब मेरे पास है लेकिन सुख नही है। मुझे कोई रास्ता बताओ।" नसरुद्दीन ने दो क्षण उसे देखा। आँख बन्द की। फिर एकदम से उठा और उसकी जो लाखो रुपयो की थैली थी, उसको लेकर भागा। वह आदमी चिल्ला कर उसके पीछे भागा कि नसरुद्दीन यह तुम क्या कर रहे हो? तुमसे ऐसी आशा न थी। यह तुम क्या कर रहे हो? तुम मेरा रुपया चुराकर भागे जा रहे हो।

नसरुद्दीन तेजी से भागा। गाँव उसका परिचित है। वह आदमी अपरिचित है। वह गली, कूचों में चक्कर देने लगा। आधी रात का वक्त है। गाँव सन्नाटे में है। वह आदमी चिल्लाता है। लोग उठते भी हैं तो भी किसी की समझ में नही आता कि क्या हो गया है। पूरे गाँव में चक्कर देकर नसरुद्दीन ने उस आदमी को थका मारा। वह चिल्ला रहा है कि हाय लुट गया! भगवान् बचाओ। मैं मर गया! अब मेरा क्या होगा? और वह भागता हुआ पूरे गाँव का चक्कर लगवा रहा है। आखिर वह नसरुद्दीन उसी झाड के नीचे आकर थैली को पटक कर खड़ा हो गया। वह आदमी आया, उसने थैली को हाथ लगाया और कहाः धन्यवाद! नसरुद्दीन ने कहा कि यह भी एक तरकीब है सुख पाने की। उसने कहा कि देख, यह थैली तेरे पास पहले भी थी। लेकिन तूने इसे ऐसे पटक दिया जैसे कि यह कचरा हो। यह थैली अब भी है। लेकिन बीच के अनुभव हैं। यह भी सुख पाने का एक तरकीब है। नसरुद्दीन ने कहा।

मेरी अपनी समझ यह है कि मोक्ष और निगोद में इतना ही फर्क है। जो थैली थी वह खो भी गई। थैली थी—यह निगोद है। यह मोक्ष की यात्रा का पहला बिन्दु है जहाँ हम थे। थैली खो भी गई—यह संसार है। थैली वापिस पा लेते हैं—यह मोक्ष है। और यह खो जाना बहुत अनिवार्य है। नही तो इस थैली में क्या है, इसका अर्थ ही भूल जाएँगे। यह खो देना अनिवार्य हिस्सा है

और खोकर जब आप दुबारा पाते हैं तब आपको पता चलता है कि आनन्द क्या है। निगोद में भी वही था, पर उसे खोना जरूरी था ताकि वह पाया जा सके। असल में जो मिला ही हुआ है, उसका हमें पता होना बन्द हो जाता है। जो हमें मिला ही हुआ है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति अचेतन हो जाते हैं, मूछित हो जाते हैं क्योंकि उसे याद रखने की कोई जरूरत ही नही होती। ये सवाल ही मिट जाता है हमारे मन से कि वह है क्योंकि वह है ही। वह इतना है कि जब हम थे तब वह था। तो जरूरी है कि उसे फिर से सचेतन होने के लिए खो दिया जाए। संसार आत्मा की यात्रा मे खोने का बिन्दु है। और वह भी हमारी स्वतंत्रता है।

पर निगोद और मोक्ष में जमीन आसमान का फर्क है। बात बिल्कुल एक ही है। लेकिन निगोद बिल्कुल मूछित है, मोक्ष बिल्कुल अमूछित है। और निगोद को मोक्ष बनाने की जो प्रक्रिया है, वह संसार है। यानी इस प्रक्रिया के बिना निगोद मोक्ष नहीं बन सकता। इसलिए अगर हम स्वतंत्रता के तत्त्व को समझ लें तो हमें सब समझ में आ जाएगा कि यह सारी यात्रा हमारा निर्णय है, यह हमारा चुनाव है। हमने ऐसा चाहा है, इसलिए ऐसा हुआ है। हमने जो चाहा है, वही हो गया है। कल अगर हम न चाहेंगे इसे तो यह होना बन्द हो जाएगा। परसों अगर हम बिल्कुल न चाहेंगे सब निर्णय छोड देंगे, तो वही संन्यास का अर्थ है। जब हम न चाहेंगे, हम छोड देंगे। हम नहीं चाहते हैं अब, हम वापिस लौटना शुरू हो जाएँगे। वही बिन्दु हमें फिर उपलब्ध होगी लेकिन हम बदल गए हैं।

इस खोने की यात्रा में हमने विपरीत का अनुभव किया होगा, हमने दरिद्रता जानी होगी। अब सम्पत्ति हमें सम्पत्ति मालूम पड़ेगी, आनन्द हमें आनन्द मालूम पडेगा। इसलिए प्रत्येक आत्मा के जीवन में यह अनिवार्य है कि वह संसार में घूमे और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि जो संसार में जितने गहरे उतर जाते हैं, जिनको हम पापी कहते हैं, वे उतनी ही तीव्रता से वापिस लौट आते हैं। और दूसरी ओर जो साधारण जन पाप भी नहीं करते, जो संसार में भी गहरे नहीं उतरते, वे शायद मोक्ष की ओर भी उतनी जल्दी नहीं लौटते क्योंकि लौटने मे तीव्रता तभी होगी जब दुःख और पीड़ा भी तीव्र हो जाएगी। जब हम इतनी पीडा से गुजरेंगे कि लौटना जरूरी हो जाए—लेकिन अगर हम बहुत पीड़ा से नहीं गुजरे हैं तो शायद लौटना जरूरी न हो। जैसे वह थैली लेकर नसरुद्दीन भागा था—पूरी थैली लेकर भागा था। पीडा भारी थी। वह दो

रुपये लेकर भागा होता तो हो सकता है कि उस आदमी ने थैली बाँध ली होती और वह अपने घर चला गया होता कि ठीक है लेकिन तव इस थैली की उपलब्धि का वह रस नही हो सकता था क्योंकि थैली फिर वही की वही थी और आदमी फिर गाँव-गाँव में पूछता कि आनन्द का रास्ता क्या है ?

सुख कैसे मिले ? नसरूद्दीन ने कहा कि 'सुख को खोओ तो सुख मिलेगा।' अब यह बडा अजीब मालूम पडता है। जिसे पाना है, उसे खोओ क्योंकि अगर वह पाया ही हुआ है तो उसका पता ही नही चलेगा। तो संसार में हम वही खोते हैं जो हमें मिला हुआ है। मोक्ष मे हम वही पाते हैं जो हमें मिला हुआ है। और यह सारा का सारा चक्र स्वतन्त्रता के केन्द्र पर घूमता है। जितना ज्ञान, जितना आनन्द, उससे भी गहरी स्वतन्त्रता—इसलिए मुक्ति की हमारी इतनी आकाक्षा है, बंधन का इतना विरोध है और हम मुक्त होना चाहते हैं लेकिन बन्धन को अनुभव कर लेंगे तभी।

प्रश्न आत्मा स्वतन्त्र है। लेकिन वासना के कारण परतन्त्र हो रही है ?

उत्तर : वासना भी उसकी स्वतन्त्रता है। वासना को भी वही चुनती है, बंधन को भी वही चुनती है। यानी मैं स्वतन्त्र होकर चाहूँ तो हथकडी अपने हाथ में बाँध लूँ। कोई मुझे रोकने वाला नही है। और इसके लिए भी स्वतन्त्र हूँ कि चावी से ताला लगाकर चावी को फेंक दूँ, कि उसको खोजना ही मुश्किल हो जाए। मैं इसके लिए भी स्वतन्त्र हूँ कि अपनी हथकडी पर सोना चढ़ा लूँ। लेकिन अन्तिम निर्णय मेरा ही है। यहाँ कोई किसी को परतन्त्र नही कर रहा है। हम होना चाहते हैं तो हो रहे हैं। हम नही होना चाहते तो नहीं होगे।

वहुत गहरे में जो वासना का है वह भी हमारा चुनाव है। कौन तुमसे कहता है कि वासना करो। तुम्हें लगता है कि वासना को जानें, पहचानें, शायद उसमें भी सुख हो, तो उसे खोजें तो तुम यात्रा करो। यात्रा जरूरी है ताकि तुम जानो कि सुख वहाँ नही था और दुःख ही था। और अगर वासना का दुःख प्रकट हो जाएगा तो तुम वासना छोड दोगे। तव तुम्हें कोई रोकने नही आएगा कि क्यों वासना छोडी जा रही है। कोई तुम्हें कहने नही आएगा कभी कि क्यों तुम वासना पकड रहे हो।

मनुष्य की स्वतन्त्रता परम है और स्वतन्त्रता तभी पूर्ण है जब बुरा करने का भी हक हो। अगर कोई कहे कि अच्छा करने की स्वतन्त्रता है, बुरा करने

को नही तो स्वतन्त्रता कैसी है यह ? एक बाप अपने बेटे से कहे कि तुझे मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता है, वेश्यालय जाने की नही तो यह मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता कैसी स्वतन्त्रता हुई ? यह तो परतन्त्रता हुई । अगर आप कहें कि मन्दिर जाने की हो तुझे स्वतन्त्रता है बस तू मन्दिर ही जा सकता है, वेश्यालय जाने की स्वतन्त्रता नहीं है, वहाँ तू नहीं जा सकता तो यह स्वतन्त्रता कैसी हुई ? यह मन्दिर जाने की स्वतन्त्रता को स्वतन्त्रता का नाम देना झूठा है । यह बाप परतन्त्रता को स्वतन्त्रता के नाम से लाद रहा है । लेकिन अगर बाप स्वतन्त्रता देता है तो वह कहता है कि तुझे हक है कि तू चाहे तो मधुशाला जा, चाहे तो मन्दिर जा । तू अनुभव कर, सोच, समझ, जो तुझे ठीक लगे, कर । परम स्वतन्त्रता का मतलब होता है सदा भूल करने की स्वतन्त्रता भी ।

प्रश्न : और हमें स्वतन्त्रता के कारण ही भूल होती है ?

उत्तर : स्वतन्त्रता के कारण भूल नही होती ।

प्रश्न : चुनाव बुरे का ही होता है ?

उत्तर : यह जरूरी नहीं है । क्योंकि बुरे का चुनाव करने के बाद जिन्होंने भले का चुनाव किया है, वह भी उन्ही का है । यानी जो मोक्ष गए हैं, मोक्ष जाने में वे उतना ही चुनाव कर रहे हैं जितना कि ससार में आकर वे चुनाव कर रहे हैं । असल में जो मन्दिर की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है; जो वेश्यालय की ओर जा रहा है वह भी उसका चुनाव है । जहाँ तक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, दोनों बराबर है । स्वतन्त्रता का दोनों उपयोग कर रहे हैं । यह दूसरी बात है कि एक बन्धन बनाने के लिए उपयोग कर रहा है, एक बंधन तोडने के लिए उपयोग कर रहा है । यह बिल्कुल दूसरी बात है। और इसके लिए भी हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि अगर मैं बधन ही बनाना चाहता हूँ और हथकडियाँ ही डालना चाहता हूँ तो दुनिया में मुझे कोई रोक न सके । नहीं तो वह भी परतंत्रता होगी । यानी मान लो कि मैं हथकडी डालकर बैठना चाहता हूँ, जंजीरें बाँधकर पैरो में और दुनिया मुझे कहे कि यह हम न करने देंगे तो यह परतंत्रता हो जाएगी क्योंकि हथकड़ियाँ डालने की मुझे स्वतंत्रता है । क्योंकि अन्तिम निर्णायक मैं हूँ और जो मैं कह रहा हूँ वह यह कि अगर सुख को जानना हो तो दु:ख की स्वतन्त्रता भोगनी ही पड़ेगी । उस की ही पृष्ठभूमि में सुख की सफेद रेखाएँ उभरेंगी । हम वहीं लौट जाते हैं जहाँ से हम आते है लेकिन न तो हम वही रह जाते हैं, न वही बिन्दु

वही रह जाता है क्योंकि हमारी सब दृष्टि बदल जाती है। एक सन्त फिर बच्चा हो जाता है लेकिन एक बच्चा सन्त नही हो जाता।

प्रश्न . तो फिर मोक्ष की अवस्था में अगर वह वापिस आना चाहे—समझो करुणावश, फिर वह चुन सकता है, चुनाव तो फिर भी हो सकता है ?

उत्तर . बिल्कुल चुनाव हो सकता है। लेकिन सिर्फ करुणावश ही। लेकिन फिर वह संसार में आता नही है। हमें दिखता भर है आया हुआ। यह भी समझ लेना जरूरी है कि हम जिस भाँति ससार में आते हैं फिर वह उस भाति ससार में नही आता।

मैंने पीछे कही एक वक्तव्य दिया है। जापान में एक फकीर था जो कुछ चोरी कर लेता और जेलखाने चला जाता। उसके घर के लोग परेशान थे। वे कहते थे कि हमारी बदनामी होती है तुम्हारे पीछे और तुम आदमी ऐसे हो कि तुम्हें प्रेम करना पडता है और तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम होते हैं। अब तुम बूढे हो गए, अब तुम चोरी बद करो। लेकिन फिर वह कहता है कि वह जो जेल में बंद हैं, उनको खबर कौन देगा कि बाहर कैसा मजा है। मैं उन्हें खबर देने जाता हूँ और कोई रास्ता नहीं इसलिए कुछ चोरी कर लेता हूँ और जेल चला जाता हूँ। और वहाँ जो बद हैं उनको खबर देता हूँ कि बाहर स्वतन्त्रता कैसी है। उनको कौन खबर देगा अगर वहाँ चोर ही चोर जाते रहेंगे ? लेकिन इस फकीर का जाना भिन्न है। और यह फकीर एक अर्थ में वहाँ जाता ही नही। क्योंकि यह चोरी चोरी के लिए नही करता। जब इसके हथकडियाँ डाली जाती हैं तब भी यह कैदी नही है और जब यह जेल में बद किया जाता है तब भी यह कैदी नही है। यह कैद से बाहर का आदमी है बल्कि और कैदियो को भी मुक्त करने के ख्याल से आया हुआ है।

तो जब बुद्ध या महावीर या जीसस जैसा आदमी जमीन पर आता है तो हमें लगता है कि वह आया। सच में वह आता नही है। यह संसार अब उसके लिए ससार नही है। अब यह उसके अनुभव की यात्रा नही है। अब इसमें उसकी कोई पकड नही है, कोई जकड नही है। अब इसमें कोई रस नही है। इसमें कुल करुणा इतनी है कि वे जो और भटक रहे हैं उनको वह खबर दे जाए कि एक और लोक है जहाँ पहुँचना हो सकता है। यहाँ करुणावश उतरना हो सकता है। लेकिन यह करुणा अन्तिम वासना है क्योंकि अगर बहुत गौर से देखें तो करुणा में भी थोडा सा अज्ञान शेष है जिसको अज्ञान नही कह

सकते लेकिन जिसको ज्ञान भी नही कहा जा सकता। बहुत बारीक अज्ञान की रेखा शेष है। वह यह है कि किसी को मुक्त किया जा सकता है क्योकि जो अपनी स्वतन्त्रता से अमुक्त हुए हैं उनको तुम कैसे मुक्त करोगे ? कोई दु:ख में है, यह भी अज्ञान है। क्योकि वह दु:ख उसके स्वयं का निर्णय है। और किसी को उसके समय के पहले वापिस लौटाया जा सकता है यह भी सम्भव नही। उसका अनुभव तो पूरा होगा ही। यानी अगर इस शर्त पर हम गौर करें तो करुणा अन्तिम वासना है। पर उसे वासना कहने में, अज्ञान कहने में भी बुरा लगता है। इसलिए वह एक आध बार जन्म ले सकता है, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि तब वह करुणा भी क्षीण हो जाएगी। वह भी जल जाएगी। वह भी विलीन हो जाएगी।

प्रश्न : यह बात आप कहते हैं कि समय के पहले नहीं लौटता है ?

उत्तर : समय के पहले का मतलब यह नही है कि किसी का समय कोई तय है। समय के पहले का मतलब यह है कि उसका पूरा भोग हो जाए। समय के पहले का मतलब यह नही है कि एक तारीख तय है कि उस तारीख को तुम लौटोगे। तारीख तय नही है लेकिन तुम्हारा अनुभव तो पूरा हो जाए। उसके पहले तुम्हें नही लौटाया जा सकता।

प्रश्न : क्या मेरे पर ही निर्भर करता है कि कब लौटें ?

उत्तर : बिल्कुल तुम पर ही निर्भर करता है, नही तो परतंत्र हो जाओगे तुम। फिर मुक्ति नही हो सकती तुम्हारी कभी भी। अगर किसी ने तुम्हें मुक्त कर दिया तो वह नयी तरह की परतंत्रता होगी। फिर तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते। और इसलिए मैं कहता हूँ कि परम स्वतंत्रता है आत्मा को दु:ख भोगने की, नरकों की यात्रा करने की, पीडाओं में उतरने की, ईर्ष्याओं में जलने की—सब में उतर जाने को उसे पूरी स्वतन्त्रता है और कोई उसे लौटा नही सकता।

प्रश्न : उतरने की जरूरत क्या है वापस ? जिन आत्माओं को करुणा की अन्तिम इच्छा रहती है वही उतरती हैं। सभी को उतरने की जरूरत नहीं है।

उत्तर : यही तो मैं कह रहा हूँ। उतरने की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह कह रहा हूँ कि करुणा अन्तिम वासना है और यह उसका चुनाव है। यानी यह जो मैं कह रहा हूँ कि स्वतंत्रता, परम स्वतंत्रता है हमें। और अगर मैं आज मुक्त हो जाता हूँ और फिर भी लौट आना चाहता हूँ तो दुनिया में मुझे कोई

रोकने को नहीं है। यानी अगर मुझे ऐसा लगता है कि मैं आपके द्वार पर खटखटाऊँ यह भी जानते हुए कि किसी को जगाया नही जा सकता उसके पहले। यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊँ कि किसी को जागने के पहले जगाया नही जा सकता, सब को अपनी सुवह है और वक्त पर सबकी नीद पूरी होगी तभी वे जागेंगे और बीच में जगाना दु खद भी हो क्योकि वे फिर सो जाएँ, यानी नीद तो पूरी हो जानी चाहिए किसी की। मैं जाकर पाँच बजे उसका दरवाजा खटखटा दूँ और वह जाग भी जाए, करवट बदले और फिर सो जाए। और शायद पहले वह पाँच बजे उठा था, अब वह आठ बजे उठे क्योंकि यह बीच का जो अन्तर पडा, वह नुकसान दे जाए उसे।

आप जगेंगे कि नही, सवाल यह नही है। सवाल यह है कि मैं जाग कर जो आनन्द अनुभव कर रहा हूँ, वह मुझे परेशान किए जा रहा है। वह आनन्द मुझे कह रहा है : जाओ, किसी के द्वार खटखटा दो। यानी अब बहुत गहरे में हम समझें तो आप नही हैं केन्द्र करुणा के। यानी आप जगेंगे कि नही यह विचारणीय नही है। लेकिन जो जग गया है, वह एक ऐसे आनन्द को अनुभव करता है कि अन्तिम वासना उसकी यह होगी कि वह अपने प्रियजनो को खबर कर दे, भले ही प्रियजन उसको गाली दें कि बेवक्त नीद तोड दी, दुश्मन दरवाजा खटखटा रहा है।

बहुत गहरे में देखने पर पता चलेगा कि यह करुणा अपना चुनाव है। हमसे, आपसे कोई गहरा सम्बन्ध नही है। वासना भी अपना चुनाव है। जैसे समझ लें कि मैं आपको प्रेम करने लगू यह मेरा चुनाव है। जरूरी नही कि आप मुझसे प्रेम करें और जरूरी नही कि मेरे प्रेम से आपको आनन्द भी मिले। और हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको दु ख दे और मेरा प्रेम आपको परेशानी में डाले। फिर भी मैं आपके लिए प्रेम से भरा हूँ। यह मेरी भीतरी बात है। और मैं प्रेम करूँगा और यह प्रेम आपके लिए क्या लाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालाँकि मेरा प्रेम कोशिश करे कि आपके लिए हित आए, मगल आए, लेकिन यह जरूरी नहीं।

करुणा को मैं कह रहा हूँ अन्तिम वासना। जिसकी सारी वासनाएँ क्षीण हो गई, उस आदमी को आनन्द उपलब्ध हो गया। अन्तिम वासना एक रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए। अब अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नही रहा। उसने आनन्द पा लिया। अब एक अन्तिम

वासना शेष रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए और वह भी एक तीव्र भाव है, हालांकि वह भी चुनाव है।

तो जरूरी नही कि सभी शिक्षक वापिस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में, कोई ठिठक जाए, वापिस लौट आए। हालाँकि वह भी एक जन्म, दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा कही लेकिन वह अन्तिम उपाय कर सकता है। यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है बहुत गहरे में, क्योंकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खत्म हो जाने वाली है। जो जा रहा है, अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपरी यात्रा है। लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें कठोर मालूम पड़ेगा। क्योंकि राह चलता अगर कोई प्यासा पडा है तो शायद उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालाँकि वह तुम्हें कठोर मालूम पडेगा।

तो अपनी-अपनी यात्रा है। त्याग भी तुम्हारा चुनाव है, तुमने जो पीछे किया, जैसे जो हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुँचे। जब तक जरा सी क्षीण आत्मा है विशेष करुणा की जरूरत होगी और तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। तो पूर्ण जैसा व्यक्ति तुम्हें बहुत कठोर मालूम होगा। यानी शायद हम समझ ही न पाएँ कि यह आदमी कैसा है? कोई आदमी कुएँ में डूब कर मर रहा होगा तो वह खड़ा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको पकडना मुश्किल हो जाएगा, इसको पहचानना मुश्किल हो जाएगा। कोई आदमी आग में हाथ डाल रहा होगा तो वह खडा देखता रहेगा कि अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है; आग में हाथ डालोगे तो अनुभव होगा कि हाथ जलता है; तो मैं कह कर क्यो व्यर्थ बात करूँ? मेरे कहने से कुछ होगा नही, तुम जब हाथ डालोगे, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है कि और कष्ट में तुम पड जाओ। क्योंकि मैं तुम्हें कह दूँ कि आग में डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम सोचो कि कौन जलता है तो जिम्मेदार कौन होगा? यानी मैं ही हूँगा? इससे तो अच्छा होता कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, कल तुम्हारे घर में आग लगती तो तुम निकल कर बाहर हो जाते क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता।

अपना अनुभव ही काम करता है। और इसलिए व्यक्तित्व के विदा होने की जो अन्तिम वेला होगी उस वेला में करुणा प्रकट होगी। यह ऐसे ही है जैसे

सूर्यास्त की लालिमा है। कभी ख्याल ही नहीं किया कि सूर्यास्त की लालिमा का क्या मतलब है। सुबह भी लालिमा होती है। अभी सूरज बढ़ेगा और चढ़ेगा, अभी फैलेगा और विस्तीर्ण होगा, अभी जलेगा और तपेगा। अभी दोपहर पाएगा और जवान होगा। सुबह की लालिमा सिर्फ खबर है जन्म की। वह भी वासना है लेकिन विकासमान, फैलने वाली। साँझ को फिर आकाश लाल हो जाएगा। यह सूर्यास्त की लालिमा है लेकिन वह अन्तिम लालिमा है। लेकिन फैलने की नहीं, सिकुड़ने की है। अब सब सिकुड़ता जा रहा है। सूरज सिकुड़ रहा है, किरणें वापस लौट रही हैं, सूरज डूबता चला जा रहा है। लेकिन लौटती किरणें भी लालिमा फेंकेंगी, उगती किरणों ने भी फेंकी थी और अगर किसी को पता न हो तो उगते और डूबते सूरज में भेद करना मुश्किल हो सकता है। अगर पता न रहा हो, एक आदमी दो चार दिन बेहोश रहा हो और एकदम होश में लाया जाए और उससे कहा जाय कि सूरज डूब रहा है कि उठ रहा है तो उसे थोड़ा वक्त लग जाएगा क्योंकि उगता और डूबता सूरज एक-सा लगता है। किरणों का जाल एक में फैलता होता है, एक में सिकुड़ता होता है। एक में लालिमा घटती है, एक में बढ़ती है। लेकिन लालिमा दोनों में होती है, किरणें दोनों में होती हैं। थोड़ी देर लग सकती है उसको पहचानने में कि यह लालिमा सिकुड़ने की है या फैलने की है।

तो व्यक्ति का पहला जन्म किरण होता है जहाँ से वासना फैलती है। वासना ही फैलती हुई इच्छाएँ हैं—फैलता हुआ सूर्योदय। जब सब इच्छाएँ सिकुड़ जाती हैं और सूरज का सिर्फ गोल हिस्सा रह जाता है डूबता हुआ आखिरी—इसकी फिर भी लालिमा है।

डूबते की है यह आखिरी लालिमा। यह करुणा है। यह डूब जाएगा। और कई बार चूक हो जाती है। हम समझते हैं कि सूरज उग रहा है और जब तक हम समझ पाते हैं तब तक वह डूब जाता है। और हम उससे कुछ लाभ नहीं ले पाते हैं। यह बहुत बार होता है। बुद्ध गाँव में आते हैं, महावीर गाँव में आते हैं, जीसस भी आते हैं, कृष्ण भी आते हैं। लेकिन हो सकता है कि अभी सूर्योदय हो रहा है। और तुम वासनाग्रस्त हो और तुम चूक गए हो और तब तक सूरज डूब गया। फिर रोते बैठे रहो। फिर कुछ भी नहीं हो सकता। तब जानने के लिए उपाय नहीं रह जाता। लेकिन उगता, डूबता सूरज एक जैसे मालूम पड़ते हैं। हो सकता है कि बुद्ध जिस गाँव में आए हों, लोगों ने सोचा हो कि यह सब भी वासना है।

वासना शेप रह जाती है कि यह आनन्द दूसरों को भी उपलब्ध हो जाए और वह भी एक तीव्र भाव है, हालांकि वह भी चुनाव है।

तो जरूरी नही कि सभी शिक्षक वापिस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में, कोई ठिठक जाए, वापिस लौट आए। हालांकि वह भी एक जन्म, दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा कही लेकिन वह अन्तिम उपाय कर सकता है। यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है बहुत गहरे में, क्योकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खत्म हो जाने वाली है। जो जा रहा है, अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपनी यात्रा है। लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें कठोर मालूम पड़ेगा। क्योंकि राह चलता अगर कोई प्यासा पडा है तो शायद उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालांकि वह तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगा।

तो अपनी-अपनी यात्रा है। त्याग भी तुम्हारा चुनाव है, तुमने जो पीछे किया, जैसे जो हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुँचे। जब तक जरा सी क्षीण आत्मा है विशेप करुणा की जरूरत होगी और तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। तो पूर्ण जैसा व्यक्ति तुम्हें बहुत कठोर मालूम होगा। यानी शायद हम समझ ही न पाएँ कि यह आदमी कैसा है? कोई आदमी कुएँ में डूब कर मर रहा होगा तो वह खडा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको पकडना मुश्किल हो जाएगा, इसको पहचानना मुश्किल हो जाएगा। कोई आदमी आग में हाथ डाल रहा होगा तो वह खडा देखता रहेगा कि अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है; आग में हाथ डालोगे तो अनुभव होगा कि हाथ जलता है, तो मैं कह कर क्यों व्यर्थ बात करूँ? मेरे कहने से कुछ होगा नही; तुम जब हाथ डालोगे, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है कि और कष्ट में तुम पड जाओ। क्योकि मैं तुम्हें कह दूँ कि आग में डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम सोचो कि कौन जलता है तो जिम्मेदार कौन होगा? यानी मैं ही हूँगा? इससे तो अच्छा होता कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, कल तुम्हारे घर में आग लगती तो तुम निकल कर बाहर हो जाते क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता।

अपना अनुभव ही काम करता है। और इसलिए व्यक्तित्व के विदा होने की जो अन्तिम वेला होगी उस वेला में करुणा प्रकट होगी। यह ऐसे ही है जैसे

बाहर आ गए वृक्ष के पीछे से और उन्होंने कहा कि ऐसा मत करो, नही तो सदियों तक लोग मेरा नाम धरेंगे कि बुद्ध जिन्दा थे और एक आदमी पूछने आया और द्वार से खाली हाथ लौट गया। अभी नहीं ? क्या तुझे पूछना है ?

यह जो लौटना है यह उतना ही लौटना है जितना कि सच में कोई मोक्ष से लौट आए। इससे कुछ बहुत फर्क नही है। लेकिन यह अन्तिम वासना है और यह अन्तिम वासना भी अर्थपूर्ण है। इसलिए कि जगत् मे इससे ज्ञान की सम्भावना होती है, इतने विचार का जन्म होता है। अगर यह न हो तो जगत् मे प्रकाश की कोई खबर ही न पाए। अगर कोई इतना करुणावान् न हो कि इसलिए चोरी करे कि जेलखाने जाए तो हो सकता है कि जेलखाने के लोग भूल ही जाएँ कि बाहर कोई जगत् भी है। लेकिन एक बात पक्की है कि जगे हुए लोग हमारे मन में जागने की कोई न कोई सूक्ष्म वासना पैदा कर जाते हैं। जगे हुए लोगों की मौजूदगी, इनकी बात, इनका चलना, इनका उठना, इनका बैठना—हमारे भीतर कही कोई धक्का दे जाता है, शायद अपने घर की याद दिला जाता है। यह करुणा इसलिए अर्थपूर्ण है।

मेरी दृष्टि में तो जगत् में कुछ भी अर्थहीन नही है। वासना भी अर्थपूर्ण है, करुणा भी अर्थपूर्ण है, निगोद भी अर्थपूर्ण है, मोक्ष भी अर्थपूर्ण है। संसार के सब काम अर्थपूर्ण हैं। लेकिन सबसे पीछे जो परम सत्य है वह स्वतन्त्रता का है। वह हम स्वतन्त्रता के तत्त्व का प्रयोग कर रहे हैं। कैसा कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। हित के लिए कर रहे हैं, अहित के लिए कर रहे हैं यह हम पर निर्भर है। अपने सुख के लिए कर रहे हैं, दु ख के लिए कर रहे हैं इसकी भी स्वतन्त्रता है।

महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियो ने ईश्वर को जो इन्कार किया उसमें एक कारण यह भी है। ईश्वर के इन्कार में, भगवान् के इन्कार में भगवत्ता का इन्कार नहीं है। ईश्वर को इन्कार किया है लेकिन ईश्वरपन में पूर्ण स्वीकृति है। अगर ईश्वर को मानें तो स्वतन्त्रता फिर पूरी नही हो सकती और अगर उसके रहते स्वतन्त्रता पूरी हुई तो वह बेमानी है। यानी अगर वह है और उसको हम कहते हैं स्रष्टा, नियम और फिर कहते हैं कि आदमी पूर्ण स्वतन्त्र है तो महावीर कहते हैं कि दोनों में मेल नही है। उसकी मौजूदगी ही बाधा बनेगी। उसका नियमन भी किसी तरह की परतन्त्रता होगी।

इसलिए वे परमात्मा का इन्कार करते हैं ताकि परतन्त्रता का कोई उपाय न रह जाए। इसका यह मतलब नही कि वह परमात्मा से इन्कार करते हैं।

एक गांव में बुद्ध तीन बार गुजरे जीवन में। तो गांव में एक आदमी था जो अपनी दूकान पर बैठा रहा। लोगों ने उससे कहा कि बुद्ध आए हैं। उसने कहा कि अभी तो बहुत ग्राहक हैं, दुबारा जब आएँगे तब सुन लूँगा। बुद्ध तीन बार उस गांव से गुजरे। आखिर बुद्ध भी क्या कर सकते हैं, कितनी बार उस गांव से गुजर सकते हैं? बुद्ध की सीमा है और गांव भी बहुत हैं। और बुद्ध भी क्या कर सकते हैं? अगर ग्राहकी चलती ही रहे और वह कहे आज तो बहुत काम है, दुबारा जब आएँगे तब देखा जाएगा।

फिर बुद्ध दुबारा उस गांव में नही आते। लेकिन एक दिन उस गांव से खबर आती है कि पडोस के गांव में बुद्ध का अन्तिम दिन है, लोग इकट्ठे हो रहे हैं। वे मरने के करीब हैं और उन्होंने कह दिया कि जल्दी ही डूब जाएँगे, अस्त हो जाएँगे, जिन्हें जो पूछना हो, भागो। उस आदमी ने दूकान बन्द की, शायद दूकान भी बन्द नही कर पाया। घर के लोगो ने कहा : क्या करते हो, अभी बहुत वक्त है, अभी काम है, अभी दूकान पर काफी लोग हैं। उसने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन फिर उस आदमी से मिलना नही हो पाएगा। वह आदमी भागता हुआ दूसरे गांव गया। वहाँ लोग इकट्ठे थे। बुद्ध ने उनसे पूछा : तुम्हें कुछ और पूछना है? उन सब ने कहा कि हमने इतना पूछा और इतना जाना कि अब कुछ भी पूछने को नही है, अब तो करने को है कि हम कुछ करें। तो बुद्ध ने कहा कि फिर मैं विदा लूँ। तीन बार उन्होने पूछा जैसी कि उनकी आदत थी। लोगो ने कहा : कुछ भी नही पूछना, अब क्या पूछने को है?

तब बुद्ध ने कहा कि मैं विदा लूँ और वृक्ष के पीछे चले गए। ध्यान में बैठे और डूबने लगे। तब वह आदमी भागा हुआ पहुँचा। तब उसने कहा कि बुद्ध कहाँ हैं? लोगों ने कहा चुप, अब बात मत करना। अब वह वृक्ष के पीछे चले गए हैं। अब वह शान्ति से अपने में उतर रहे हैं, वापिस डूब रहे हैं, व्यक्तित्व छोड़ रहे हैं, निर्वाण में जा रहे हैं। उस आदमी ने कहा : मेरा क्या होगा? क्योंकि मैं चूक ही गया हूँ, उनसे कुछ पूछना था। लोगों ने कहा, पागल हो गए हो। चालीस साल से इसी इलाके में वह चक्कर लगाते थे तब तुम कहाँ थे? उसने कहा तब दूकान पर बहुत भीड थी। भीड तो आज भी थी। लेकिन तब मैंने समझा था सूरज उग रहा है। तब मुझे यह ख्याल न था कि डूबने का वक्त भी आ जाएगा। पर मुझे पूछना है, देर मत करो क्योंकि सूरज तो डूबा जा रहा है। लेकिन लोगों ने कहा कि तुम जोर से आवाज मत करना, नहीं तो वह इतने करुणावान् हैं कि वापिस लौट सकते हैं। लेकिन तभी बुद्ध

स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है, जो अजीब आदमी है, हिम्मतवर भी है, साहसी भी है, क्योकि दुःख उठाता है और दुःख में जाने के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग भी कर रहा है। हो सकता है कि वह इतना दुःख जानकर लौटे कि उसके लिए सुख की गहराइयो का अन्त न रहे।

सभी को जाना पडेगा अधकार में ताकि वे प्रकाश में आ सके और सभी को स्वयं को खोना पड़ेगा ताकि वे स्वयं को पा सकें। यह बहुत अजीब बात मालूम पडती है लेकिन बात यही है और अगर कोई इसको भी पूछे कि ऐसा क्यों है तो वह बेमानी पूछता है। ऐसा है और इससे अन्यथा नहीं है। इसके सिवाय जानने का कोई उपाय नही है। आग जलाती है। कोई पूछे कि क्यो जलाती है तो हम कहेंगे बस आग जलाती है। बस एक ही उपाय है। न जलना हो तो हाथ मत डालो आग में। जलना हो तो हाथ डाल दो आग में। आग जलाती है। और आग क्यो जलाती है, इसका कोई उपाय नहीं है। और बर्फ क्यों ठंडी है, इसका कोई उपाय नही है। बर्फ ठंडी है, आग आग है। चीजें जैसी हैं, वैसी हैं।

स्वतन्त्रता जगत् की मौलिक स्थिति है। इससे अन्यथा नही है। आगे जाने का कोई उपाय नहीं है क्योंकि अगर कोई कहे कि किसने यह स्वतन्त्रता दी, तो दी गई स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता नहीं होगी। किसी ने स्वतन्त्रता नहीं दी। अगर किसी ने स्वतन्त्रता ली तो स्वतन्त्रता तभी लेनी पडती है जब कि परतन्त्रता हो, नहीं तो स्वतन्त्रता लेने का कोई सवाल ही नही। अगर स्वतन्त्रता है तो उसे न कोई देता है न कोई लेता है। यह जगत् का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है। और उसके उपयोग की बात है। कोई उसको दुःख के लिए उपयोग करता है, करे, कोई सुख के लिए उपयोग करता है, करे। सुख वाला चिल्ला कर कह सकता है भाई, देखा, उस तरफ जाकर दुःख होगा। फिर भी दुःख वाला कह सकता है कि आप गए तब मैं नहीं चिल्लाया। आप क्यो परेशान होते हैं? मुझे जाने दें। तो बात खत्म हो जाती है। इससे ज्यादा कोई मतलब नही है।

इसलिए मुझसे निरन्तर लोग पूछते हैं कि आप इतना लोगों को समझाते हैं, क्या हुआ? तो मैं कहता हूँ कि यह पूछना ही ठीक नहीं है। अगर हम पूछते हैं तो हम उनकी स्वतन्त्रता में बाधा डालते हैं। यानी मेरा काम था कि मैं चिल्ला दिया। मेरा काम था चिल्लाना। उन्होंने मुझसे कहा भी नही था कि चिल्लाओ।

इसका मतलब है कि परमात्मा के व्यक्तित्व को इन्कार करते हैं और परमात्मा को सब मे व्याप्त मानते हैं लेकिन नियामक नहीं। परमात्मा के ऊपर वह किसी को नहीं बिठाते हैं। फिर हो सकता है कि परतन्त्रता परमात्मा की इच्छा हो जैसा कि साधारण आस्तिक मानता है कि उसकी इच्छा हुई तो उसने जगत् बनाया। फिर हम बिल्कुल परतंत्र मालूम होते हैं। यानी हमारी इच्छा से हम जगत् में नही हैं, उसकी इच्छा से हम जगत् में है। फिर उसकी इच्छा होगी तो वह जगत् मिटा देगा। हम मोक्ष में हो जाएँगे और जब तक उसकी इच्छा नही होगी तब तक कोई उपाय भी नही है। तब जगत् बहुत बेमानी है, वह कठपुतलियो का खेल हो जाता है, जिसमें कोई अर्थ नही रह जाता। जहाँ स्वतन्त्रता नहीं है वहाँ कोई अर्थ नही है। जहाँ परम स्वतन्त्रता है वह प्रत्येक चीज में अर्थ है। और परम स्वतन्त्रता की घोषणा के लिए ईश्वर को इन्कार कर देना पड़ा कि उसको हम कोई जगह नही देंगे, वह है ही नही।

साधारण आस्तिक की दृष्टि में परमात्मा नियामक है, नियन्ता है, स्रष्टा है तो स्वतन्त्रता खत्म हो गई। मगर गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर स्वतन्त्रता है। वह जो परम स्वतन्त्रता का व्याप्त कण-कण है, उस सबका समग्र नाम ही परमात्मा है। अगर इसको हम समझ पाएँ तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं। इतना ही कहना काफी है कि तूने स्वतन्त्रता को जिस ढग से चुना है वह दु:ख लाएगी। इससे ज्यादा कुछ भी कहने को नही। लेकिन वह कह सकता है कि अभी मुझे दु:ख अनुभव करने हैं। निन्दा का कोई कारण नही, कोई सवाल नहीं। मैं कहता हूँ कि मुझे गड्ढे में उतरना है। आप कहते हैं गड्ढे में प्रकाश नही होगा। सूरज की किरणें गड्ढे तक नही पहुँचेंगी। वहाँ अँधेरा है। मैं कहता हूँ लेकिन मुझे गड्ढे का अनुभव लेना है। तो अगर आपने अनुभव लिया हो गड्ढे का तो गड्ढे में जाने की सीढियाँ मुझे बता दें। अगर आप गए हो गड्ढे में, और आप जरूर गए होंगे क्योंकि आप कहते हैं कि वहाँ सूरज की किरणें नही पहुँचतीं तो मैं भी गड्ढे को जानना चाहता हूँ ताकि गड्ढे में जाने की वासना विदा हो जाए। तो निन्दा कहाँ है ?

मेरी दृष्टि में पापी व्यक्ति की कोई निन्दा नहीं है और पुण्यात्मा व्यक्ति की कोई प्रशंसा नहीं है। क्योंकि सवाल यह नही है कि वह अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहा है और तुम अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहे हो। और मजा यह है तुम तो सुख के लिए स्वतन्त्रता का उपयोग कर रहे हो। प्रशंसा की बात क्या है ? प्रशंसा करनी हो तो उसकी करो जो दु:ख के लिए अपनी

अब एक आदमी ने निर्णय किया है कि मैं धूप में बैठूंगा। तो धूप का जो भी फल होने वाला है, वह उसे मिलने वाला है। इसमें धूप जिम्मेदार नही है। इसमें कोई जिम्मेदार नहीं है। धूप का काम धूप है। आपका काम है कि आपने निर्णय किया धूप में बाहर बैठने का। आपका चेहरा काला हो जाएगा। वह जिम्मेदारी आपकी है। वह आपका प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएँगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा क्योंकि वह जो हो गया उसका क्रम होगा। तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं वह हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा साराश है। वह निर्णय हमने किए थे, उनकी व्यवस्था हो गई है। वे हमें करने पड रहे हैं।

प्रश्न . और अभी पुरुषार्थ करेंगे, सोचेंगे ?

उत्तर : बिल्कुल नहीं, वह तो सवाल ही नही, पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। तुम स्वतन्त्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगे वह फिर निर्णय बनेगा और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे। बहुत गौर से देखे तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। जो आदमी स्वतन्त्र होने का निर्णय करता है अन्त में मुक्त हो जाता है। संसार भी एक प्रारब्ध है। प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता है कि तुमने कुछ निर्णय किया फिर उस निर्णय का फल भोगो।

प्रश्न : शास्त्रों में पुरुषार्थ मानी हुई भवितव्यता बताई है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर ' शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नही। शास्त्रो से क्या लेना-देना है। शास्त्र लिखने वाले की मौज थी। तुम्हारी मौज है पढो या न पढ़ो। वह कही बांधता नही। उससे क्या लेना-देना ? उससे क्या प्रयोजन ?

प्रश्न . क्या वासना की उन्मत्तता के समय मुक्तात्मा स्वतंत्रता का उपयोग संसार मे आने के लिए कर सकता है ?

उत्तर . नही कर सकता क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली बार स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकता है। लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। एक बच्चा है वह दिए पर हाथ रखकर लौ पकड सकता है। स्वतंत्रता का उपयोग उसने किया, हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि दिए की लौ पकडे, क्योंकि इसका

यह मेरी मौज थी कि मैं चिल्लाया। यह मेरा चुनाव था। यह उनकी मौज थी कि उन्होने सुना या उनकी मौज थी कि नहीं सुना। या उनकी मौज थी कि सुना और अनसुना कर दिया। इस बात में वे स्वतन्त्र थे। इससे आगे पूछने की कोई जरूरत ही नही।

हम सब अपनी स्वतन्त्रता में जी रहे हैं और दुःख या सुख हमारे निर्णय हैं। और इसलिए बडी मौज है, और जिन्दगी बड़ी रसपूर्ण है। कही कोई रोकने वाला नही है, कहीं कोई मालिक नहीं है। हम ही मालिक हैं। और इतना समझ में आ जाए तो फिर और क्या समझाने को शेष रह जाता है ?

कोई निर्णायक हैं ही नही सिवाय आपके। वह आपका निर्णय है। अब जैसे कि नसरुद्दीन थैली लेकर भाग गया। वह आदमी यह भी निर्णय कर सकता है कि ठीक है, ले जाओ, हम नही आते पीछे और कभी न लौटे। वह उसका निर्णय है कि वह पीछा करता है और तब तक पीछा करता है जब तक पा नही लेता। लेकिन वह कह सकता है कि ठीक है, ले जाओगे तो हो सकता है कि तुम्हें खोजना पडे कि मैं कहाँ गया। हालत यह हो जाए कि तुम खोजते थक जाओ, दुःखी हो जाओ, परेशान हो जाओ क्योंकि तुम कोई चोर तो थे नही। वह थैली तो लौटाना है।

प्रश्न . यह निर्णय करना कौन कराता है ? इसका कोई उत्तर नहीं ?

उत्तर : कोई नहीं कराता। आप करते हैं। स्वतन्त्रता का मतलब ही यही है कि आप निर्णायक हैं और आप ही निर्णय करते हैं।

प्रश्न . प्रारब्ध क्या है ?

उत्तर : प्रारब्ध कुछ भी नही। अपने किए हुए निर्णय प्रारब्ध बन जाते हैं। जैसे कि मैंने एक निर्णय किया कि मैं इस कमरे में बैठूंगा। तो एक ही बात हो सकती है कि या तो मैं इस कमरे में बैठूं, या बाहर बैठूं। निर्णय करते ही प्रारब्ध शुरू हो जाता है। निर्णय का मतलब है कि मैं प्रारब्ध निर्मित कर रहा हूँ। अब मैं एक ही काम कर सकता हूँ—बाहर बैठूं कि भीतर। भीतर बैठता हूँ तो यह प्रारब्ध हो गया। मेरा निर्णय शुरू हो गया। अब मैं बाहर नही हो सकता एक ही साथ। अगर बाहर जाऊँगा तो भीतर नही होऊँगा। भीतर के सुख दुःख भीतर मिलेंगे, बाहर के सुख दुःख बाहर मिलेंगे। अब यह फिर मेरा प्रारब्ध हो गया क्योंकि जो मैंने निर्णय किया वह मैं भोगूंगा।

अब एक आदमी ने निर्णय किया है कि मैं धूप में बैठूँगा। तो धूप का जो भी फल होने वाला है, वह उसे मिलने वाला है। इसमें धूप जिम्मेदार नही है। इसमें कोई जिम्मेदार नही है। धूप का काम धूप है। आपका काम है कि आपने निर्णय किया धूप में बाहर बैठने का। आपका चेहरा काला हो जाएगा। वह जिम्मेदारी आपकी है। वह आपका प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएँगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा क्योंकि वह जो हो गया उसका क्रम होगा। तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं वह हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा साराश है। वह निर्णय हमने किए थे, उनकी व्यवस्था हो गई है। वे हमें करने पड रहे हैं।

प्रश्न : और अभी पुरुषार्थ करेंगे, सोचेंगे ?

उत्तर : बिल्कुल नहीं, वह तो सवाल ही नही, पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। तुम स्वतन्त्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगे वह फिर निर्णय बनेगा और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे। बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। जो आदमी स्वतन्त्र होने का निर्णय करता है अन्त में मुक्त हो जाता है। संसार भी एक प्रारब्ध है। प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता है कि तुमने कुछ निर्णय किया फिर उस निर्णय का फल भोगो।

प्रश्न : शास्त्रों में पुरुषार्थ मानी हुई भवितव्यता बताई है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नही। शास्त्रों से क्या लेना-देना है। शास्त्र लिखने वाले की मौज थी। तुम्हारी मौज है पढो या न पढ़ो। वह कही बाँधता नहीं। उससे क्या लेना-देना ? उससे क्या प्रयोजन ?

प्रश्न : क्या वासना की उन्मत्तता के समय मुक्तात्मा स्वतंत्रता का उपयोग संसार मे आने के लिए कर सकता है ?

उत्तर : नही कर सकता क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली बार स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकता है। लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। एक बच्चा है वह दिए पर हाथ रखकर लौ पकड सकता है। स्वतंत्रता का उपयोग उसने किया, हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि दिए की लौ पकडे, क्योंकि इसका

अनुभव भी इसके साथ खड़ा हो गया। अब स्वतन्त्रता का वैसा उपयोग करना मुश्किल है।

तो जो मुक्त हो गया वह संसार का दुःख झेलने के लिए वासना करे यह असम्भव है। चाहे तो आ जाए, कोई रोकने वाला नहीं है उसको, लेकिन वह चाह नहीं सकता। महावीर अगर सिद्धशिला छोड़कर वापिस आना चाहें तो कोई उन्हें रोक नहीं सकता। कौन रोकने वाला है? लेकिन महावीर नहीं आ सकते क्योंकि अब अनुभव भी साथ है। यहाँ का अनुभव काफी भोग लिया, वह दुःख काफी झेल लिया। वह अनुभव इतना गहरा हो गया कि उसका कोई अर्थ नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

२५

प्रश्नोत्तर-प्रवचन

पहलगांव, रात्रि, दिनांक १ अक्टूबर, १९६९



दु.ख, सुख, और आनन्द इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी होगा। दु ख और सुख भिन्न चीजें नही हैं बल्कि उन दोनों के बीच में जो भेद है वह ज्यादा से ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का है। और इसलिए दु ख सुख बन सकता है और सुख दु ख बन सकता है। जिसे हम सुख कहते हैं वह भी दु.ख बन सकता है और जिसे हम दु ख कहते हैं वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच का जो फासला है, भेद है, वह भेद विरोधी का नही है, वह भेद मात्रा का है। एक आदमी को हम गरीब कहते हैं, एक आदमी को हम अमीर कहते हैं। गरीब और अमीर में भेद किस बात का है ? विरोध है दोनो में ? आमतौर से ऐसा दिखता है कि गरीब और अमीर विरोधी व्यवस्थाएँ हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि गरीबी-अमीरी एक ही चीज की मात्राएँ हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है, एक करोड रुपया है तो अमीर है। अगर एक रुपए में गरीब है तो एक करोड़ में अमीर कैसे हो सकता है ? इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड़ गुना कम गरीब है। और एक करोड वाला अमीर है तो एक रुपए वाला गरीब कैसे ? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि यह एक करोड गुना कम अमीर है। इन दोनो में जो भेद है, वह ऐसा नही है जैसा दो विरोधियो में होता है। वह भेद ऐसा है जैसे एक ही चीज की मात्रा में होता है। लेकिन गरीबी दु ख हो सकती है और अमीरी सुख हो सकती है। गरीब दु.खी है और अमीर होना चाहता है। तो दु ख और सुख में जो भी भेद है, वह भेद सिर्फ मात्रा का ही है। इसी भाँति हमारी सारी सुख की अनुभूतियाँ दु.ख से जुड़ी हुई हैं और हमारी सारी दु ख की अनुभूतियाँ भी सुख से जुडी हुई हैं। इन दोनों के बीच जो डोल रहा है वह ससार में है। ससार में

होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ दु:खानुभूति। अगर संसार में सिर्फ दु:ख की अनुभूति हो तो कोई भटक ही नहीं। फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है, अनुभूति दुःख की होती है। और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दु:ख में बदल जाता है।

ससार की अनुभूति को दो तीन तरह से देखना चाहिए। एक तो यह कि सुख सदा भविष्य में होता है कि कल मिलेगा। और कल मिलने वाले सुख के लिए आज हम दु:ख झेलने को तैयार होते हैं। आज के दु:ख को हम इस आशा में झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुःख को एक क्षण भी झेलना कठिन है। उमरखय्याम ने एक गीत लिखा है और उस गीत में वह कहता है कि मैं कई जन्मों से भटक रहा हूँ और सबसे पूछ चुका हूँ कि आदमी भटकता क्यों है। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। और तब मैंने थक कर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगों को देखा है और उन सबको भी देखा है जो भटकने के बाहर हो गए, और उन सबको भी देखता रहेगा जो भटकन में आएँगे और उनको भी देखता रहेगा जो भटकन के बाहर होंगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यों है? तो चारों ओर आकाश से, वह अपने गीत में कहता है, मुझे आवाज सुनाई पड़ी : आशा के कारण। आदमी भटकता क्यों है? आशा के कारण। और आशा क्या है? इस बात की सम्भावना और आश्वासन कि कल सुख मिलेगा, आज दुःख झेल लो।

आज का दु:ख हम झेलते हैं कल के सुख की आशा में। फिर जब कल सुख मिलता है तो बड़ी अजीब घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दु:ख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है वह कुछ भी नहीं होती। कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, वह होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को थोड़ा जाँचेगा तो हैरान होगा कि उसने कितने-कितने सपने संजोए हैं। फिर वह चीज मिल गई और पाया कि कुछ भी न हुआ। वह सबके सब सपने कहाँ खो गए, यह पता ही न चला। वह सब की सब कल्पनाएँ कैसे विलीन हो गईं, कुछ पता न चला। चीज हाथ में आई कि जो-जो उसके मिलने की सम्भावना में छिपा हुआ सुख था, वह एकदम तिरोहित हो गया। जब तक नहीं मिला था तब तक प्रतीक्षा में सुख था। जब मिल जाता है तब सब सुख समाप्त हो जाता है। फिर दौड़ शुरू हो जाती है क्योंकि जहाँ दु:ख है, वहाँ से हम भागेंगे।

यह भी समझ लेना चाहिए कि जहाँ दु ख है, वहाँ हम रुक नही सकते। वहाँ से हम भागेंगे क्योकि जहाँ दु ख है वहाँ कैसे रुका जा सकता है। सुख भागता है, दुःख से हम हट जाना चाहते हैं और दु.ख से हटने का उपाय क्या है ? एक ही उपाय दिखाई पडता है साधारणत और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दु ख को भुला दें, विस्मरण कर दें। तो फिर जैसे ही दु ख शुरू होता है, हम नयी आशा में बंध जाते हैं। इस तरह आदमी जीता दुःख में है, होता दु ख में है लेकिन उसकी आँखें सुख में लगी होती हैं। जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर है, देखता आकाश को है। आकाश पर देखने में सुविधा हो सकती है कि पृथ्वी पर होना भूल जाए। फिर भी होंगे पृथ्वी पर। हम खड़े हुए दु ख में हैं लेकिन आँखें सदा सुख में हैं। इससे हमें सुविधा हो जाती है कि हम दुःख को भूल जाते हैं और दु ख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं।

अब अगर बहुत गहरे में देखा जाए तो सुख सिर्फ सम्भावना है, सत्य कभी नहीं। दुःख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है लेकिन दुःख कैसे झेला जाए ? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं। कल का सुख आज के दुःख को सहनीय बना देता है। और वह सुख जो कल का है, कभी मिलता नही। और जिस दिन मिल जाता है भूल-चूक से उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रान्ति टूट गई। वह जो आशा हमने बाँधी थी, सही सिद्ध नही हुई। लेकिन इससे सिर्फ इतना ही हम समझ पाते हैं कि यह सुख सही नही था। दूसरे सुख सही होंगे। उनकी आशा में आगे दौड़ते रहो। यह भूल भ्रान्ति सिद्ध हो गई, टूट गई, दु ख आ गया तो अब फिर चित्त भागेगा।

हम एक आशा से उखडते हैं, आशा-मात्र से नहीं उखड़ते हैं। एक सुख की व्यर्थता को जानते हैं लेकिन सुखमात्र की व्यर्थता को नही जान पाते। इसलिए यह होड जारी रहती है। अगर दु ख ही है जीवन में और सुख की कोई सम्भावना नही है तो एक व्यक्ति क्षणमात्र भी संसार में नही रह सकता। एक क्षण भर रहना भी मुश्किल है। एक क्षण में ही वह मुक्त हो जाएगा। लेकिन आशा उसे आगे गतिमान् रखती है। और मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है उसे सुख नही कहना चाहिए। उसे जो मिलता है, वह सुख और दु ख दोनों से भिन्न है। इसलिए उसे आनन्द कहना चाहिए।

अब यह बड़े मजे की बात है कि आनन्द से विपरीत कोई शब्द नही है। सुख दु.ख एक दूसरे के विपरीत हैं लेकिन आनन्द के विपरीत कोई अवस्था ही

नही। आनन्द सुख नही है। अगर उसे सुख बनाया तो फिर दु ख की दुनिया शुरू हो गई। साधारणतः हम कहते हैं कि वह व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होता है जो दु ख से मुक्त हो जाता है। लेकिन यह कहने में थोडी भ्रान्ति है। कहना ऐसा चाहिए कि आनन्द को वह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख दु ख से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जो सुख दु ख है, वह कोई दो चीज नही है। इसलिए साधारण जन को निरन्तर यह भूल हो जाती है समझने में और वह आनन्द को सुख ही समझ लेता है। समझता है कि दु ख से मुक्त हो जाना ही सुख है। इसलिए बहुत से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में वस्तुतः सुख की ही खोज में होते हैं। इसलिए महावीर ने एक बहुत बढिया काम किया है। सुख के खोजी को उन्होंने कहा है कि वह स्वर्ग का खोजी है। आनन्द के खोजी को उन्होने कहा कि वह मोक्ष का खोजी है।

दु ख का खोजी नरक का खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है। लेकिन दोनो से अलग जो मुक्ति का खोजी है, वह आनन्द का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नही है। महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है। उसके आगे क्या उपलब्धि है? सब सुख मिल गया तो परम उपलब्धि हो गई। लेकिन मनोवैज्ञानिक रीति से समझना चाहिए कि जहाँ सुख होगा, वहाँ दु.ख अनिवार्य है। जैसे, जहाँ उष्णता होगी, वहाँ शीत अनिवार्य है। जहाँ प्रकाश होगा, वहाँ अंधकार अनिवार्य है। असल में ये एक ही सत्य के दो पहलू है और एक साथ ही जीते हैं। और इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंक देना असम्भव है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाए। जब हम सुख के भ्रम में होते है तब दुःख नीचे छिपा है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रकट हो जाऊँ। और जब हम दुःख में होते हैं तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिए जाता है कि अभी प्रकट होता हूँ, अभी प्रकट होता हूँ। लेकिन दोनो चीजें एक ही है और अगर यह समझ में आ जाए तो सुख का भ्रम टूट जाता है।

सुख का भ्रम टूटे तो दु ख का साक्षात् होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दु ख का साक्षात् नही होता। क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दु ख को सहनीय बना लेते हैं। हम उसे झेल लेते है। सुख का भ्रम दु ख का पूर्ण साक्षात् नहीं होने देता, जैसा दु.ख है उसे पूरा प्रकट नही होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नही पाती। सुख, दु.ख की धार को खोथला कर देता है। असल में हम दुःख की ओर देखते ही नही। हम सुख की ओर ही देखे चले जाते हैं।

दु ख इधर पैरों के नीचे से निकलता है लेकिन हम कभी आंख गडा कर दु ख को नहीं देखते हैं। दुःख से सुख की आशा में हम सदा भागे चले जाते हैं।

वही व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा जिसे यह दिखाई पड़ेगा कि सुख जैसा कुछ भी नही है। लौटकर पीछे देखो तो ख्याल में आ सके। लेकिन हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए ख्याल में नही आता। लौटकर पीछे देखो : ऐसा कौन सा क्षण था जब सुख पाया। तो बडी हैरानी होगी पीछे लौटकर देखने से। एकदम मरुस्थल मालूम पडता है, जहाँ सुख का कोई फूल कभी नही खिला। हालाँकि बहुत बार जब अतीत नहीं था, भविष्य था तो हमने सोचा था कि सुख मिलेगा। फिर वह अतीत हो गया और हमारी आशा भविष्य में चली गई। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया। आज जो भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। और अतीत को लौटकर देखो तो सुख कभी न था। हालाँकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी—मिलने की, पाने की, उपलब्धि की। और इतनी ही धारणा अब भी है। और आगे भी हम वही कर रहे हैं जो हमने पीछे किया था। आज झेल रहे हैं कल की आशा में। इसलिए आज को देख नहीं पाते। इस सूत्र को समझ लेना चाहिए कि जो व्यक्ति सुख के भ्रम में है वह दु ख का साक्षात्कार नहीं कर सकता है। भविष्य मे सुख का भ्रम दु ख का साक्षात्कार नहीं होने देता। बल्कि असलियत यह है कि हम सुख का भ्रम इसलिए पैदा करते हैं ताकि दुःख का साक्षात्कार न हो सके।

एक आदमी भूखा पडा है। वह भूख का साक्षात्कार नही कर पाता क्योंकि वह उस वक्त कल जो भोजन बनेगा, मिलेगा उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पडा है। वह बीमारी का साक्षात्कार नही कर पाता क्योंकि वह कल के उन सपनों में सोया है जब वह स्वस्थ हो जाएगा।

हम पूरे समय चूक गए हैं उस जगह से जहाँ हम हैं। और जहाँ हम हैं वहाँ निरन्तर दु ख है। शायद उस दु.ख को झेलना इतना कठिन है कि हमें चूकना पडता है, भागना पडता है। हम पलायन करते हैं। सुख का भ्रम टूट जाए तो भागोगे कहाँ, यह कभी सोचा है ? हमें दुःख में जीना पडेगा, दु ख भोगना पडेगा, दु ख जानना पडेगा, दुःख के साथ आँखें गडानी पडेंगी, क्योंकि कोई उपाय नही है कही और जाने का। हम हैं और दुःख है। जो व्यक्ति दुःख का साक्षात्कार कर लेता है वह उस तीव्रता पर पहुँच जाता है, जहाँ से वह लौटता है। जब सब ओर दु ख के काँटे उसे छेद लेते हैं और भविष्य में कोई

आशा नही रह जाती और आगे कोई उपाय भी नही रह जाता तब वह जाएगा कहाँ ? फिर वह अपने मे लौटता है । जिस दिन दु ख का पूर्ण साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापसी शुरू हो जाती है । उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है । इसे समझ लेना ।

दु ख से भागोगे तो सुख में पहुँच जाओगे । दु ख में जाओगे तो आनन्द में पहुँच जाओगे । दुःख से नही भागे, दुःख में खडे हो गए, दु.ख को पूरा देखा और दु ख को साक्षात् किया तो रूपान्तरण शुरू हुआ । क्योंकि जैसे ही दु ख का पूर्ण साक्षात्कार हुआ, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे जिससे दु'ख आए । फिर हम उन्ही ढगों से कैसे जी सकेंगे जिनसे दु.ख आता है । फिर हम उन्हीं वासनाओं, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे फिरेंगे जिनका फल दुःख है । फिर हम वे बीज कैसे बोएँगे जिनके फलों में दुःख आता है । लेकिन दुःख को हमने कभी देखा नही । दुःख का साक्षात् आनन्द की यात्रा बन जाता है । बुद्ध कहते हैं यह किया तो इससे यह हुआ; यह मत करो, उससे यह नही होगा । ऐसा नियम है । मैंने गाली दी, गाली लौटी । मैंने दुःख दिया, दु'ख आया । अब अगर इस दुःख का पूरा-पूरा बोध मुझे हो जाए तो कल मैं गाली नहीं दूँगा कल मैं दु ख नही पहुँचाऊँगा क्योंकि पहुँचाया हुआ दुःख वापिस लौट आता है और तब दुःख की सम्भावना क्षीण हो जाती है । इसी तरह जीवन के प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे दु ख पैदा होता है, वह मुझे दिखाई पडना शुरू हो जाए तो कोई आदमी दु ख में कभी नही उतरता ।

सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं, दु.ख की नाव पर कोई सवार नही होता । कौन दु.ख की नाव पर सवार होने को राजी होगा । अगर पक्का पता है कि यह नाव दु ख के घाट उतार देगी तो इस पर कौन सवार होगा । हम दु.ख की नाव में सवार होते हैं लेकिन घाट सदा सुख का होता है । नाव अगर राह में कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी है तो भी कोई फिक्र नही । घाट के उस पार सुख है । लेकिन दुःख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुँच सकती है ? असल में दुःख देने वाला साधन सुख का साथी कैसे बन सकता है ? असल में प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अन्तिम पर भी होगा । अगर मैंने ऐसा कदम उठाया है जो अभी दु.ख दे रहा है तो यह कैसे सम्भव है कि यही कदम कल और आगे चलकर सुख देगा । इतना ही सम्भव है कि कल और आगे बढ़कर दुःख देगा । क्योंकि आज जो छोटा है, कल और बडा हो जाएगा । कल

मैं दस कदम और उठा लूँगा, परसों दस कदम और उठा लूँगा और यह रोज बढ़ता चला जाएगा।

यह दु:ख का छोटा सा बीज रोज वृक्ष होता चला जाएगा। इसमें और शाखाएँ निकलेंगी, इसमें और फल लगेंगे, इसमें और फूल लगेंगे। और न केवल फूल बल्कि एक बीज बहुत जल्दी वृक्ष होकर करोड़ बीज हो जाएगा। बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे और यह अन्तहीन फैलाव है। यानी एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाए। शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं उन्हें एक ही बीज पैदा कर सकता है। शायद सारे ब्रह्माण्ड में जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की फैलने की कितनी अनन्त सम्भावना है, इसको सोचने जाओगे तो एकदम घबड़ा जाओगे। अनन्त सम्भावना इसलिए है कि एक ही बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है, इसके फैलाव का कोई रुकाव नहीं है।

हम जो पहला कदम उठाते हैं वह बीज बन जाता है और अन्तिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम बीज जहर के बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे। वे कभी अमृत के नही होते। बार-बार हमने यह अनुभव किया है। निरन्तर प्रतिपल हमने यह जाना है कि जो बीज बोए थे, वही फल आ गए। लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं: जरूर कही कोई भूल हो गई है। जरूर परिस्थितियाँ अनुकूल न थी। हवाएँ ठीक न थी। सूरज वक्त पर न निकला, वर्षा ठीक समय पर न हुई, ठीक समय पर खाद नहीं डाला गया। इसलिए फल कड़वे आ गए।

हम दूसरी सब चीजों पर दोष देते हैं। लेकिन हम एक चीज को छोड़ जाते हैं कि बीज जहरीला था। और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा ठीक समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त पर खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो तो हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो। हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला वह छोटा ही रहा हो। इसे थोड़ा समझना चाहिए। जितना दु:ख हमें मिलता है, आम तौर से हम कह देते हैं कि यह परिस्थितियो के ऊपर निर्भर है। यह परिस्थितियाँ हमें दु:ख दे रही हैं। मैं तो ठीक हूँ लेकिन मित्र, पत्नी, पिता, पति, संसार, परिस्थितियाँ अनुकूल नही हैं। ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया वह तो ठीक है, लेकिन साथ अनुकूल न मिला। हवाएँ उल्टी

वह गई, सूरज न निकला, सब गड़बड़ हो गया। लेकिन ध्यान रहे कि अगर प्रतिकूल परिस्थिति में इतना कड़ुवा फल आया तो अनुकूल परिस्थितियों में कितना कड़ुवा फल आता है इसका कोई हिसाब नहीं। हम जो इच्छाएँ करते हैं अगर वे पूरी की पूरी हो जाएँ तो हम इतने बड़े दुःख में गिरेंगे जितने दुःख में हम कभी भी नहीं गिरे। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुःखी हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं। हमारा तर्क यह है, हमारे दुःख का कारण यह है कि हम इच्छा करते हैं, वह पूरी नहीं होती। जबकि सच्चाई यह है, हमारे दुःख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह दुःख का बीज है और वह बिना पूरा हुए इतना दुःख दे जाती है तो अगर पूरी हो जाए तो कितना दुःख दे जाएगी, बहुत मुश्किल है कहना। समझ लें कि एक व्यक्ति की अभी इच्छा पूरी नहीं हुई, वह बहुत दुःखी रहता है। उससे पूछो तो वह कहेगा कि मैं इतना दुःखी हूँ जिसका कोई हिसाब नहीं क्योंकि जिसे पाना है वह नहीं मिल रहा है। हजार बाधाएँ आ रही हैं। एक प्रेमी है जो अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है। वह नहीं मिली है। एक प्रेयसी है जो अपने प्रेमी को पाने की खोज में लगी है, वह नहीं मिला है। लेकिन प्रेयसी मिल जाए तो एक इच्छा पूरी हुई मिलने की और मिलते ही जो आशाएँ हैं वे सब तत्काल क्षीण हो जाएँगी क्योंकि पाने का, जीतने का, सफल होने का जो भी सुख है वह सब चला गया। वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, वह होगा, वह आशा चली गई क्योंकि वह सब आशा पाने से सम्बन्धित न थी। वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएँ थी जो हमने आरोपित की हुई थी।

और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है वैसी पास से नहीं। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। दूर की चीजें सुहावनी होती हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है। जितनी दूरी उतनी सुखद क्योंकि दूर से हम चीजों को पूरा नहीं देख पाते। जो नहीं देख पाते हैं वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं। दूर से एक व्यक्ति को हम देखते हैं। दिखती है एक रूप-रेखा लेकिन बहुत कुछ हम अपने सपने से उसमें जोड़ देते हैं। इसमें दूसरे व्यक्ति का कहीं कसूर नहीं है। लेकिन जो हमने जोड़ा था वह पिघलकर बहने लगे निकट आने पर, और जो हमने सपना जोड़ दिया था, काव्य जोड़ दिया था वह मिटने लगे, जैसा व्यक्ति था वैसा प्रकट हो जाए ऐसा हमने कभी नहीं सोचा।

असल में हम सोच भी कैसे सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति कैसा है। हम सिर्फ कामना कर सकते हैं कि ऐसा हो। लेकिन हमारी कामनाओं के अनुकूल किसी व्यक्ति का जन्म नही हुआ है। व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओ के अनुकूल हुआ है। कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओ के अनुकूल पैदा नही हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएँ आरोपित की थी। वे मिलते ही खडित हो जाएँगी और वह व्यक्ति प्रकट होगा जैसा हमने उसे कभी नही जाना था और जितने हमने सपने जोडे थे वास्तविकता उन सबको तोड़ देगी, एक-एक चीज़ में तोड देगी।

फिर मैंने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाए। यानी मैं कहूँ रात तो वह कहे रात, मैं कहूँ दिन तो वह कहे दिन। यह इच्छा कभी पूरी नही होगी। और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएँ की थी कि मैं कहूँ रात तो वह कहे रात और मैं कहूँ दिन तो वह कहे दिन। दोनो के प्रेम की कसौटी यही थी। तब बडी मुश्किल हो गई बात क्योकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहता है। सोचा था शान्ति, होगा संघर्ष, सोचा था सुख, और होगा विषाद। लेकिन मजे की बात यह है कि यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था वह नही हो सका है। मैंने कहा था रात और चाहा था कि वह भी कहे रात। यह नही हो सका, इसलिए मैं दु खी हूँ। इच्छा के कारण दुखी नही हूँ। ठीक व्यक्ति नही मिला, इच्छा पूरी नही हुई, इसलिए मैं दुखी हूँ। पूरी हो जाए तो मैं सुखी हो जाऊँ। लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति मिल जाए जो तुम कहो रात तो वह भी कहे रात हालाकि दिन हो। तुमने उसके पैर में जंजीरें बाँधी तो भी तुमने कहा आभूषण, उसने कहा आभूषण। तुमने उस व्यक्ति को पाया कि वह तुम्हारे बिल्कुल ही अनुकूल है, तुम जैसे हो वैसा ही है—तुम्हारी छाया। और ऐसे व्यक्ति को पाकर तुम्हें जितना दु ख होगा उसका अनुमान तुम लगा ही नही सकते क्योकि वह व्यक्ति ही नही होगा, वह एक मशीन होगा, वह एक यंत्र होगा। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होगा, उसमें कोई आत्मा नहीं होगी और जिस व्यक्ति में कोई व्यक्तित्व नहीं होगा, कोई आत्मा नही होगी उससे क्या तुम प्रेम कर पाओगे? उससे तुम एक क्षण प्रेम नही कर सकते। यह इच्छा पूरी हो जाए तो इतना दु ख होगा जितना इच्छा के न पूरी होने से कभी भी नही हुआ है। कोई भी छाया नही खरीदना चाहता। हम व्यक्ति चाहते हैं लेकिन हमारी इच्छा बडी अनूठी है। हम ऐसा व्यक्ति चाहते हैं जो हमारी बात माने। इन दोनों बातों में कोई

मेल ही नहीं है। अगर वह व्यक्ति होगा तो अपने ढंग से जिएगा। और अगर हमारी बात मानेगा तो व्यक्ति नहीं होगा, उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। वह मरी हुई चीज होगी, वह फर्नीचर की तरह होगा जिसे कही भी उठाकर रख दिया, वह वही रखा रह गया।

एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि मैं इसलिए गरीब हूँ कि जितना धन मैं चाहता हूँ, वह मुझको नही मिलता। अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूँ। ठीक है उसे उतना धन दे दिया गया। पहली बात यह है कि उसे इतना धन मिलने पर उसकी इच्छा और आगे चली जायगी। वह कहेगा : इतने से क्या होता है, यह तो कुछ भी नहीं है। समझ लीजिए कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत् का धन उसे मिल जाए और उसकी यह इच्छा पूरी हो जाय कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाए तो क्या आपको पता है कि वह कितना दुःख झेलेगा ? आपको कल्पना भी नही है। धनी होने का मजा ही इसमें था कि दूसरे धनियो को पीछे छोड़ा। धनी होने का मजा ही यह था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्धा थी कि उसमें हम जीतें। अगर एक व्यक्ति को सारी दुनिया का धन मिल जाए उसकी इच्छा के अनुकूल तो वह बिल्कुल उदास हो जाएगा क्योंकि न कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाए तो वह व्यक्ति आत्महत्या कर लेगा क्योंकि वह कहेगा अब क्या करें ? और वह बहुत उदास हो जाएगा।

सिकन्दर के सम्बन्ध में एक कथा है कि सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा कि अगर तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर सोचा है कि क्या होगा ? सिकन्दर ने कहा कि अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा कि समझ लें, जीत ही ली, फिर क्या होगा ? और कहानी है कि सिकन्दर एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि यह मैंने कभी ख्याल नही किया। लेकिन सच ही अगर पूरी पृथ्वी जीत ली तो फिर ? वह डायोजनीज से पूछने लगा कि फिर क्या करूँगा ? डायोजनीज ने कहा कि मान लो कि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तब तू सुखी होगा कि दुखी होगा ? यह भी दूर रहा। तू तो अभी दुःखी हो गया यह बात सोचकर कि सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर ? फिर सवाल ही क्या रहा ? हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती तो हम दुख पाते हैं, हमारी इच्छाएँ पूरी हो

जाए तो हम परम दुःख पाएँगे। लेकिन हम यही समझते हैं कि हम इसलिए दुःख पाते हैं कि हमारी इच्छाएँ पूरी नही होती।

टालस्टाय ने एक कहानी लिखी है। एक बाप की तीन बेटियाँ हैं। तीनों की अलग-अलग जगह शादियाँ हो गई हैं। एक लडकी किसान के घर है, एक लडकी कुम्हार के घर है, एक लडकी जुलाहे के घर है। वर्षा आने के दिन हैं लेकिन वर्षा नही आई। कुम्हार बडा खुश है। उसकी पत्नी भगवान् को धन्यवाद देती है कि भगवान् तेरा धन्यवाद क्योकि हमारे सब घडे बनाए हुए रखे थे। यदि वर्षा आती तो हम मर जाते। एक आठ दिन पानी रुक जाए तो हमारे सब घडे पक जाएँ और बाजार चले जाएँ। लेकिन किसान की पत्नी बडी परेशान है क्योकि खेत तैयार हैं, पानी नही गिर रहा है। अगर आठ दिन की देरी हो गई तो फिर फसल बोने में देरी हो जाएगी और हमारे बच्चे भूखे मर जाएँगे। तीसरी लडकी जुलाहे के घर है। उसके कपड़े तैयार हो गए हैं। उसने रंग कर लिया है और वह भगवान् से कहती है कि अब तेरी मर्जी। चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा, अब हमें कोई फर्क नही पडता है। कहानी कहती है कि भगवान् अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो मैं क्या करूँ? मैं किसकी इच्छा पूरी करूँ। और ये तो सिर्फ तीन लोग हैं। अगर सारी पृथ्वी के लोगो की इच्छाएँ पूछी जाएँ और पूरी कर दी जाएँ इसी वक्त तो पृथ्वी समाप्त हो जाए।

हमारी इच्छाएँ और उनके दौर से हम क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नही है लेकिन भ्रान्ति चलती चली जाती है क्योंकि हमारा ख्याल यह होता है कि दु.ख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नही हुई। सुख मिलता अगर इच्छा पूरी हो जाती। लेकिन जो गहरे इस विचार में उतरेगा उसे पता चल जाएगा कि कोई इच्छा की पूर्ति सुख नहीं लाती है बल्कि वह बड़ा दुःख लाती है। अपूर्ति इतना दु.ख लाती है तो पूर्ति कितना दुःख लाएगी। बीज को जब इतनी सुविधा मिली तो वह इतना जहरीला फल लाया है। पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहरीला फल लाता।

तो प्रत्येक इच्छा दुःख में ले जाती है लेकिन सुख में ले जाने का आश्वासन देती है। प्रत्येक नाव दुःख की है लेकिन सुख के घाट उतार देने का वचन है। और हजार बार हम नाव में बैठते हैं रोज और हजार बार दु.ख की नाव दुःख के घाट पर उतार देती है। लेकिन हम कहते हैं कि कही कोई भूल हो गई है

अन्यथा यह कैसे हो सकता है कि जो नाव सुख के घाट की ओर चली थी वह दुःख के घाट पर पहुँच जाए। लेकिन हम यह कभी नही पूछते कि कही नाव ही तो दुःख की नही है।

सवाल यह नही है कि आप कहाँ पहुँचेंगे। सवाल यह है कि आप कहाँ से चलते हैं, आप किस पर सवार हैं। यह सवाल ही नही कि फल कैसा होगा। सवाल यह है कि बीज कैसा बोया? जीसस कहते हैं कि जो बोओगे वही तुम काटोगे लेकिन काटते वक्त पछताना मत। पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल? फिर तो काटना ही पड़ेगा, लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और हैं। और यह जो द्वन्द्व है चित्त का कि बोते कुछ और हैं और काटना कुछ और चाहते हैं, हमें भटका सकता है अनन्त काल तक, अनन्त जन्मो तक, और इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है—इससे जाग जाने की जरूरत है और एक सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं वही हम काटते हैं। हो सकता है कि बीज पहचान में न आता हो। क्योंकि बीज जाहिर नही है, अप्रकट है, अभी अभिव्यक्त नही हुआ है। यहाँ एक बीज रखा है। हो सकता है न पहचान सकें कि इसका वृक्ष कैसा होगा? क्योंकि बीज में वृक्ष है लेकिन दिखाई नही पड़ता।

जीसस कहते हैं कि जो तुम बोते हो वही तुम काटते हो। मैं इससे उल्टी बात भी जोड़ देना चाहता हूँ कि जो तुम काटो समझ लेना कि वही तुमने बोया था क्योंकि हो सकता है कि बोते वक्त तुम न पहचान सके हो। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है क्योंकि बीज में कुछ दिखाई नही पड़ता साफ-साफ। बीज क्या होगा? जहर होगा कि अमृत होगा? तो हो सकता है कि बोते वक्त भूल हो गई हो लेकिन काटते वक्त तो भूल नही हो सकती। हो सकता है कि नाव में बैठते वक्त ठीक से न समझ पाए हो कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ पाओगे कि घाट कैसा है। नाव ने कहाँ पहुँचा दिया है, यह तो समझ में आ जाएगा।

तो काटते वक्त देख लेना। अगर दुःख कटा हो तो जान लेना कि दुःख बोया था और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुःख के बीज को तुम पहचान सको कि वह कौन-कौन से बीज है जो दुःख ले आते है। कितनी बार ईर्ष्या दुःख लाती है, कितनी बार घृणा दुःख लाती है, कितनी बार क्रोध दुःख लाता है। लेकिन हम हैं कि फिर उन्ही का बीज बोए चले जाते है। और

वार-वार हम पछताते हैं कि यह दु:ख क्यो ? दु ख हमें झेलना नहीं और बीज दु ख के ही बोते हैं। और इस द्वन्द्व में कितना समय हम व्यतीत करते हैं, कितने जन्म और कितने जीवन। लेकिन द्वन्द्व हमें दिखाई नही पडता क्योंकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारी आत्मवचना यह है कि हम सिर्फ जो काटता है उस वक्त नाराज होते हैं कि यह कैसी चीज कटी। लेकिन जो हमने बोया है, हम उसका ख्याल ही नही करते।

अगर सही नहीं कटा है तो समझना कि सही नहीं बोया था। और दोनो के तारतम्य को समझ लेना जरूरी है ताकि कल हम सही बोएँ। जिस घाट पर उतरे हैं, वहाँ खतरा है हमारी नाव को लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठ गये हैं और दूसरे घाट पर उतरने की घटना फिर घटती है। और हैरानी यह है कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है, नयी भूलें नही करता। नयी भूल भी कोई करे तो कही पहुँच जाएँ। भूल भी पुरानी ही करता है। लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो हमने किया उसे हम भूल जाते हैं और फिर से हम वही सोचने लगते हैं।

एक आदमी ने अमेरिका में आठ विवाह किए। उसने पहला विवाह किया बडी आशाओं से जैसा कि सभी लोग करते हैं। लेकिन सब आशाएँ महीने में मिट्टी में मिल गईं। तो उसने सोचा कि औरत ठीक नही मिली जैसा कि सभी आदमी समझते हैं। उसकी सभी आशाएँ धूमिल हो गईं। तो उसने तलाक दे दिया। फिर साल भर लगाकर उसने दूसरी स्त्री बामुश्किल खोजी और वह अब बडा खुश था क्योंकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोज-बीन की थी। फिर उतनी आशाओं के साथ उसने पाया कि छ महीने में सब गडबड हो गया है। तो उसने समझा कि फिर स्त्री ठीक नही मिली है।

इस आदमी ने आठ शादियाँ की जीवन में और हर बार यही हुआ। आठवी शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और कहा कि मैं बडी मुश्किल में पड़ गया हूँ। मैं आठ विवाह कर चुका और जिन्दगी गंवा चुका लेकिन हर बार वैसी की वैसी औरत मिली। तब वैज्ञानिक ने कहा कि वह तो ठीक है लेकिन तुम्हारी खोजबीन का मापदण्ड क्या था? अगर कसौटी वह थी जिससे तुमने पहली औरत को कसा था तो कसौटी फिर भी वही रही होगी जिससे तुमने दूसरी औरत को कसा और हर बार तुम उस टाइप की स्त्री को खोज लाए जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के

आदमी हो उस तरह का आदमी जैसी स्त्री को खोज सकता था, तुम खोज लाए।

हो सकता है कि बहुत पुराने दिनों में इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गई हो। क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्रिया खोज सकता है साधारणतः यानी इससे कोई फर्क नही पड़ता। हर बार नाप बदल जाएगा, शकल बदल जायगी लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लाएगा जैसा उसका दिमाग है। उस दिमाग से वह वैसी ही स्त्री फिर खोज लाएगा। फिर बार-बार फिजूल की परेशानी में क्यों पड़ेगा। कुछ समझदार लोगो ने कहा है कि एक ही विवाह काफी है, एक ही दफा खोज लो वही बहुत है। और यह भी हो सकता है कि उसी अनुभव के आधार पर व्यक्ति खोजेगा जो उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए उसमें भूल हो जाना निश्चित है। इसलिए मा बाप जिन्हें ये अनुभव हो चुके हैं उसके लिए खोजते हैं। जो इस अनुभव से गुजर चुके हैं और वेवकूफी भोग चुके हैं और ना समझी झेल चुके हैं, वे शायद ज्यादा ठीक से खोज सकें। और आदमी की जो पहली खोज होगी वह उसमें भूल करेगा। इसलिए हो सकता है कि वह मा-बाप पर छोड दिया गया हो।

इधर निरन्तर अनुभव के बाद कुछ मनोवैज्ञानिक अमेरिका में यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो। यह बात भी दुखद है कि मा-बाप बच्चे का विवाह तय करें। लेकिन जैसी स्थिति है उससे यही सुखद मालूम पड़ता है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है और यह हो सकता है कि जब हम दुख के चीजों को समझ लें तो हम जो खोज करें वह और तरह की हो। हम जिस नाव पर सवार हों वह और तरह की हो जीवन के सब मामलों में।

सुख दुःख को अलग मत समझना। सुख दुख को एक समझना। हा, जरा देरी लगती है दोनों को मिलने में। फासला है। फासले की वजह से दो समझ लिए जाते हैं। दृष्टि छोटी है और फासला बड़ा है। हमको कमरे की दोनों दीवारें दिखाई पड़ती है। और हम जानते है कि दोनो दीवारें इसी कमरे की है और हम ऐसी भूल न करेंगे कि यह दीवार बचा लें और यह मिटा दें। क्योंकि ऐसी भूल हम करेंगे तो दीवार भी गिरेगी और मकान भी गिरेगा। अगर दीवारें गिरानी हो तो दोनों को गिरा दो, न गिरानी हों तो दोनो को बचने दो क्योंकि दोनों दीवारें दिखाई पड़ती हैं। लेकिन कमरा इतना बड़ा हो सकता है कि जब भी हमें दिखाई पड़ती हो एक ही दीवार दिखाई पड़ती हो।

दूसरी दीवार इतने फासले पर है कि हम कभी सोच ही न पाते हों कि यह कमरा और यह दीवार उसी दीवार से जुड़े हैं और यह वही कमरा है। उसमें फासले बडे हैं और आदमी की दृष्टि वडी छोटी है। ज्यादा देर तक वह देख नहीं पाता, उसे खबर नही हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हूँ। यह दूसरी दीवार है। और ये दोनो एक हैं।

आदमी को ठीक से दृष्टि मिल जाए दूर तक देखने को तो हम उसे अपने सुखों की आकांक्षा में घिरा हुआ पाएंगे। हमारे सब दु ख हमारे सुख की आशाओं में ही पैदा किए गए हैं। हमारे सब दु ख हमने ही सुख की सम्भावनाओ में बोए हैं। काटते वक्त दु ख निकलें, सम्भावनाए सुख की हैं। बीज हमने दुःख के ही बोए हैं। इसे हम देखें, अपनी जिन्दगी में खोजें। अपने दु ख को देखें और पीछे लौट कर देखें कि हम कैसे उनको बोते चले आए हैं। और कहीं ऐसा तो नहीं कि आज भी हम वही कर रहे हैं।

आखिर यह दिखाई पड़ जाए तो तुम सुख की आशा को छोड दोगे। सुख की आशा एक दुराशा है, असम्भावना है। अगर ऐसा दिखाई पड जाए कि जीवन में सुख की सम्भावना ही नही है, दु.ख ही होगा चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नही कल वह दु ख हो जाएगा। अगर जिन्दगी में दु.ख की ही सम्भावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की आशा छूट जाती है वह दुःख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहा दु ख है, और यहा मैं हूं और हम आमने-सामने हैं। और मजे की बात यह है कि जो आदमी दु ख के सामने खडा हो जाता है उसका दुःख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नही। तब दुःख नही जीत पाता क्योंकि तब दु ख के जीतने की तरकीब ही गई। तरकीब थी सुख की सम्भावनाओ में। दु ख के जीत की जो तरकीब थी, वह थी सुख को सम्भावना में। वह सुख की सम्भावना नही रही। दु ख यहां सामने खड़ा है और मैं यहां खडा हूं और अब कोई उपाय नही है, न मेरे भागने का, न दु.ख के भागने का। दुःख और हम हैं आमने-सामने। यह साक्षात्कार है। इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह है कि दुःख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने में वापिस लौट आता हूं क्योकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड देता हूँ। सुख में जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड दिया है। अब दु ख के सामने सीधा खडा हो गया हूँ। अब यह एक ही रास्ता है कि मैं अपने में लौट आऊं क्योंकि दु ख में तो कोई रह ही नही सकता, या तो सुख की आशा में भागेगा या अपने पर लौट

आएगा, या आनन्द में चला जाएगा या सुख में चला जाएगा। सुख में हम जाते रहे हैं। और आनन्द में नही पहुँच पाए हैं। अगर दुःख में हम सीधे खड़े हो जाएं तो हम आनन्द में पहुँच जाते हैं।

आनन्द सुख में नही है। आनन्द सुख दुःख का अभाव है। आनन्द में न सुख है, न दुःख है। इसलिए बुद्ध ने आनन्द शब्द का प्रयोग नही किया है। बुद्ध ने बहुत समझ कर शब्दों का प्रयोग किया है। इतनी समझ किसी आदमी ने नही दिखाई क्योंकि आनन्द में कितना ही समझाओ सुख का भाव छुआ हुआ है। यानी कितना भी मैं समझाऊं कि आनन्द सुख नहीं है आप फिर भी कहेंगे कि आनन्द कैसे मिले ? और जब आप कहेंगे तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले ? शब्द बदल लेंगे लेकिन भाव सुख का ही रहेगा तो आप कहेंगे कि ठीक है, फिर तरकीब बताइए कि आनन्द कैसे पाया जाए। दुःख है तो दुःख से कैसे बचा जाए ? कोई विधि बताइये कि हम आनन्द कैसे पा लें और आनन्द तो पाना जरूरी है। और अगर गहरे में देखेंगे तो आप आनन्द शब्द का प्रयोग ठीक नही कर रहे हैं आप कह रहे हैं कि सुख पाना जरूरी है। सुख कैसे पाया जाए ? दुःख से कैसे बचा जाए ?

बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनन्द सुख नही है और आमतौर पर हम दोनो का पर्यायवाची प्रयोग करते हैं कि आदमी सुखी है, बड़े आनन्द में है। बुद्ध ने इसलिए प्रयोग किया 'शांति'। वह आनन्द नही कहते हैं। आनन्द शब्द ठीक नहीं है, खतरनाक है। शांति में भाव बिल्कुल दूसरा है। शांति का अर्थ है न सुख न दुःख, सब शान्त। कोई तरंग नही है न दुःख की, न सुख की। न सुख का भाव है न दुःख का भाव है। न कहीं जाना है, न कहीं आना है। ठहर गया है सब। रुक गए हैं, मौन हैं, चुप हैं। झील पर एक भी लहर नही है। इसलिए बुद्ध कहते हैं : मैं आनन्द का आश्वासन नही देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनन्द का आश्वासन दूँगा और तुम सुख का आश्वासन लोगे। कठिनाई यह है कि बात आनन्द की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है।

२६

समापन प्रवचन

पहलगांव, प्रातः, दिनांक २ अक्टूबर, १९६९

महावीर पर इतने दिनों तक आनन्दपूर्ण बात की। यह ऐसे ही था जैसे मैं अपने सम्बन्ध में बात कर रहा हूँ : पराये के सम्बन्ध में बात नही की जा सकती। दूसरे के सम्बन्ध में कुछ कहा नही जा सकता। अपने सम्बन्ध में ही सत्य कहा जा सकता है। अब महावीर पर इस भांति मैंने बात नही की जैसे वे कोई दूसरे और पराये हैं। जैसे हम अपने आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में ही बात कर रहे हों ऐसा ही मैंने उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है और उनके चारों ओर उन सारे प्रश्नो पर चर्चा की है जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्य रूप से खड़े हो जाते हैं। महत्त्वपूर्ण भी यही है।

महावीर एक दार्शनिक की भांति नहीं हैं। वे एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठकर विचार करता है जीवन के सम्बन्ध में। योगी जीता है जीवन में। दार्शनिक पहुँचता है सिद्धान्तो पर, योगी पहुँचता है सिद्धावस्था पर। सिद्धान्त बातचीत है, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसी ही बात की है जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नही हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन मे कोरे विचारक न रह जाएँ। विचार अद्भुत हैं लेकिन पर्याप्त नही। विचार कीमती है, लेकिन कहीं पहुँचाता नही। विचार से ऊपर उठे बिना कोई भी व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नही पहुँचता है।

महावीर कैसे विचार से उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से ये सब बातें हमने कीं, कैसे महावीर को परम जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापिस लौट आए— ऐसी करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले

लौट कर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपनी अनन्त जीवन की यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पीछे लौट कर देखा है। लेकिन उनके पीछे लौटकर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अन्तिम यात्रा की ओर आगे देख रहे हैं। महावीर पीछे लौटकर उन्हें देखें लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं जब हम भी अपने जीवन के आगे के पडाव की ओर देख रहे हो। अन्यथा महावीर को नही समझा जा सकता।

साधारणत. महावीर को दो हजार पाँच सौ वर्ष हुए। वह अतीत की घटना है। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नही कहूँगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना है। उसके जीवन में आने वाले किसी क्षण में वह वहाँ पहुँचेगा जहाँ महावीर पहुँचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुँच जाएँ तब तक महावीर को समझा नही जा सकता है। क्योंकि उस अनुभूति को हम कैसे समझेंगे जो अनुभूति हमें नही हुई है। अन्धा कैसे समझेगा प्रकाश के सम्बन्ध में। और जिसने कभी प्रेम नही किया वह कैसे समझेगा प्रेम के सम्बन्ध में।

हम उतना ही समझ सकते हैं जितने हम हैं, जहाँ हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नही होती। इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी में रहें। महापुरुष को समझना अत्यन्त कठिन है बिना स्वयं महापुरुष हुए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति में खडा न हो जाए जहाँ कृष्ण है, जहाँ क्राइस्ट है, जहाँ मुहम्मद हैं, जहाँ महावीर हैं तब तक हम समझ नही पाते। और जो हम समझते हैं वह अनिवार्य रूपेण भूल भरा होता है। इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए।

महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना सम्भव नही है। महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे में स्वयं को समझना और रूपान्तरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते हैं और तब भूल हो जाती है। शब्द से, सिद्धान्त से, परम्परा से समझने जाते हैं तब भूल हो जाती है। हम तो स्वयं के भीतर उतरेंगे तो उस जगह पहुँचेंगे जहाँ महावीर कभी पहुँचे हो। तभी हम समझ पाएँगे।

मैंने जो बातें की इन दिनो में, उन बातों का शास्त्रों से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए हो सकता है कि बहुतों को ये बातें कठिन भी मालूम पड़ें, स्वीकार-योग्य भी न हों, जिनकी शास्त्रीय बुद्धि है, उन्हें अत्यन्त अजीब मालूम पड़ें और वे शायद पूछें कि शास्त्रों में यह सब कहाँ है तो उनसे मैं पहले ही कह देना

चाहता हूँ कि शास्त्रो में हो या न हो, जो स्वयं में खोजेगा वह इनको पा लेगा और स्वयं से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आसता है।

वे मुझसे यह भी पूछ सकते हैं कि मैं किस अधिकार से कह रहा हूँ। तो उनसे पहले यह भी कह देना उचित है कि मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नहीं है। मैं शास्त्रो का विश्वासी नही हूँ बल्कि जो शास्त्र में लिखा है, -वह मुझे इसीलिए संदिग्ध हो जाता है कि शास्त्र में लिखा है। क्योकि वह लिखने वाले के चित्त की खबर देता है। मगर जिसके सम्बन्ध में लिखा गया है, उसके चित्त की नही। फिर हजारो वर्षो की धूल उस पर जम जाती है। और शास्त्रो पर जितनी धूल जम गई है उतनी किसी और चीज पर नही जमी है।

मुझे एक घटना स्मरण आती है। एक आदमी एक घर में 'शब्दकोष' बेचने गया। घर की गृहिणी ने उसे टालने के लिए उससे कहा कि 'शब्दकोष' हमारे घर में है। वह सामने टेबिल पर रखा है। लेकिन उस आदमी ने कहा देवी जी क्षमा करें, वह कोई शब्दकोष नही है, वह कोई धर्मग्रन्थ मालूम होता है। स्त्री बड़ी परेशान हुई। वह धर्मग्रन्थ था। पर दूर से टेबिल पर रखी किताब को कैसे वह व्यक्ति पहचान गया। उस देवी ने पूछा कैसे आप जान गये कि वह धर्मग्रन्थ है। उसने कहा उस पर जमी हुई धूल बता रही है। शब्दकोष पर धूल नही जमती। उसे कोई रोज खोलता है, देखता है,पढ़ता है। उसका उपयोग होता है। उस पर इतनी धूल जमी है कि यह निश्चित ही धर्मग्रन्थ है।

सब धर्मग्रन्थों पर धूल जम जाती है क्योंकि न तो हम उनसे जीते है, न जानते है। फिर धूल इकट्ठी होती चली जाती है। सदियों की धूल इकट्ठी होती चली जाती है। उस धूल में से पहचानना मुश्किल हो जाता है कि क्या-क्या है? इसलिए मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्र को नहीं लिया है। उसे अलग ही रखा है। महावीर को सीधा देखने की कोशिश की है। और सीधा हम उसे ही देख सकते हैं जिससे हमारा प्रेम हो। जिससे हमारा प्रेम न हो उसे हम कभी सीधा नही देख सकते। और वही हमारे सामने पूरी तरह प्रकट होता है जिससे हमारा प्रेम हो। जैसे सूरज के निकलने पर कली खिल जाती है और फूल बन जाती है। ऐसा ही जिससे भी हम आत्यन्तिक रूप से प्रेम कर सकें, उसका जीवन बन्द कली से खिले फूल का जीवन हो जाता है। जरूरत है कि हम प्रेम कर पाएँ।

ज्ञान की जरूरत कम है, ज्ञान तो दूर ही कर देता है और ज्ञान से शायद ही कोई किसी को जान पाता हो। सूचनाएँ बाधा डाल देती हैं। सूचनाओं से शायद ही कोई कभी किसी से परिचित हो पाता हो। वे बीच में खड़ी हो जाती हैं। वे पूर्वाग्रह बन जाती हैं, पक्षपात बन जाती हैं। हम पहले से ही जानते हुए होते हैं। जो हम जानते हुए होते हैं वही हम देख भी लेते हैं। जो महावीर को भगवान् मानकर जाएगा उसे महावीर में भगवान् भी मिल जाएँगे। लेकिन वह उसके अपने आरोपित भगवान् हैं। जो महावीर को नास्तिक, महा-नास्तिक मान कर जाएगा उसे नास्तिक, महानास्तिक भी मिल जाएगा। वह नास्तिकता उसकी अपनी रोपी हुई होगी। जो महावीर को मान कर जाएगा वही पा लेगा। क्योंकि गहरे में हम अन्ततः अपनी मान्यता को निर्मित कर लेते हैं और खोज लेते हैं, और व्यक्ति इतनी बड़ी घटना है कि उसमें सब मिल सकता है। फिर हम चुनाव करते हैं। जो हम मानते जाते हैं, वह हम चुन लेते हैं। और तब जो हम जानते हैं वह जानते हुए लौटना नहीं है। वह हमारी ही मान्यता की प्रतिध्वनि है।

प्रेम के जानने का रास्ता दूसरा है, ज्ञान के जानने का रास्ता दूसरा है। ज्ञान पहले जान लेता है, फिर खोज पर निकलता है। प्रेम जानता नहीं। खोज पर निकल जाता है—अज्ञान में, अपरिचित में। प्रेम सिर्फ अपने हृदय को खोल लेता है, प्रेम सिर्फ दर्पण बन जाता है कि जो भी उसके सामने आएगा, जो भी जो है, वही उसमें प्रतिफलित हो जाएगा। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त कोई कभी किसी को नहीं जान सका है। हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानते हैं, जीते हैं इसलिए नहीं जान पाते। महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएँगे, कृष्ण को प्रेम करेंगे तो पहचान जाएँगे।

और भी एक मजे की बात है कि जो महावीर को प्रेम करेगा, वह कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को प्रेम करने से बच नहीं सकता। अगर महावीर को प्रेम करने वाला ऐसा कहता हो कि महावीर से मेरा प्रेम है, इसलिए मैं मुहम्मद से कैसे प्रेम करूँ, तो जानना चाहिए कि प्रेम उसके पास नहीं है। क्योंकि अगर महावीर से प्रेम होगा तो जो उसे महावीर में दिखाई पड़ेगा वही बहुत गहरे में मुहम्मद में, कृष्ण में, क्राइस्ट में, कनफ्यूसियस में भी दिखाई पड़ जाएगा, जरथुस्त्र में भी दिखाई पड़ जाएगा। प्रेम प्रत्येक कली को खोल लेता है जैसे सूरज प्रत्येक कली को खोल लेता है। पखुड़ियाँ खुल जाती हैं। और तब अन्त में सिर्फ फूल का खिलना रह जाता है। पखुड़ियाँ गैर अर्थ की हो जाती हैं, सुगंध

बेमानी हो जाती है, रग भूल जाते हैं। और अन्ततः प्रत्येक फूल में जो घटना गहरी रह जाती है, वह है उसका खिल जाना।

महावीर खिलते हैं एक ढंग से, कृष्ण खिलते हैं दूसरे ढग से। लेकिन जिसने इस फूल के खिलने को पहचान लिया वह इस खिलने को सारे जगत् में सब जगह पहचान लेगा। इन व्यक्तियों में से एक से भी कोई प्रेम कर सके तो वह सबके प्रेम में उतर जाएगा, लेकिन दिखाई उल्टा पडता है। मुहम्मद को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करना तो दूर, घृणा करता है। बुद्ध को प्रेम करने वाला, क्राइस्ट को प्रेम नही करता है। तब हमारा प्रेम सदिग्ध हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि हमारा प्रेम, प्रेम नही है। शायद यह भी गहरे में कोई स्वार्थ है, कोई सौदा है। शायद हम अपने प्रेम के द्वारा भी महावीर से कुछ पाना चाहते हैं।

शायद हमारा प्रेम भी एक गहरे सौदे का निर्णय है कि हम इतना प्रेम तुम्हें देंगे, तुम हमें क्या दोगे। और तब हम अपने प्रेम में सकीर्ण होते चले जाते हैं और तब प्रेम इतना सीमित हो जाता है कि घृणा में और प्रेम में कोई फर्क नही रह जाता। क्योंकि जो प्रेम एक पर प्रेम बनता हो, और शेष पर घृणा बन जाता हो वह एक पर भी कितने दिन प्रेम रहेगा! घृणा हो जाएगी बहुत। महावीर को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करेगा और शेष को अप्रेम करेगा। अप्रेम इतना ज्यादा हो जाएगा कि वह प्रेम का बिन्दु कब विलीन हो जाएगा, पता भी नही चलेगा। घृणा के बडे सागर में प्रेम की छोटी सी बूँद को कैसे बचाया जा सकता है। वह तो प्रेम के बडे सागर में ही प्रेम की बूँद बच सकती है। घृणा के बडे सागर में प्रेम की बूँद नही बचाई जा सकती। लेकिन हम चाहते हैं कि हमारे प्रेम की बूँद बच जाए और शेष घृणा का सागर हो।

एक मुसलमान फकीर औरत हुई राबिया। कुरान में एक जगह वचन आता है : "शैतान को घृणा करो।" तो उसने उस वचन पर स्याही फेर दी। लेकिन कुरान में कोई सुधार करे, यह तो उचित नही है। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह उसने कुरान पढने को उठाई तो देखा उसमें सुधार किया गया है। तो उसने कहा कि यह कौन नासमझ है जिसने कुरान में सुधार किया है। कुरान में तो सुधार नही किया जा सकता। राबिया ने कहा कि मुझ को ही सुधार करना पडा।

हसन ने कहा कि तू नास्तिक मालूम होती है। कुरान और सुधार करने की तेरी हिम्मत! यह तो बडा पाप है। राबिया ने कहा : पाप हो या नहीं,

मुझे पता नहीं। उसमें एक वाक्य था। लिखा है कि शैतान को घृणा करो। लेकिन मेरे मन से तो घृणा चली गई। शैतान भी मेरे सामने खडा हो जाए तो मैं घृणा करने में असमर्थ हूँ। मैं शैतान को भी प्रेम ही कर सकती हूँ। यह अब अनिवार्यता हो गई है क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे हृदय में कुछ नही रहा है। शैतान के लिए भी घृणा कहाँ से लाऊँ ? और राबिया ने कहा कि एक नई बात तुम्हें बताऊँ कि जब तक मेरे मन में घृणा थी तब तक परमात्मा के लिए भी प्रेम करने का उपाय न था। क्योंकि हृदय में घृणा हो तो परमात्मा के लिए प्रेम कैसे लाओगे ? प्रेम आएगा कहाँ से, आसमान से तो नही आएगा, हृदय से आएगा। और एक ही हृदय में दोनो का अस्तित्व साथ-साथ नही होता। जिस हृदय में घृणा है वहाँ प्रेम का निवास नहीं और जिस हृदय में प्रेम है वहाँ घृणा का निवास नही। वह ऐसे ही है कि जिस कमरे में उजाला है वहाँ अधकार नही, जिस कमरे में अँधेरा है वहाँ उजाला नही। तो राबिया ने कहा कि मैं बडी मुश्किल में पड गई हूँ। अगर शैतान को घृणा करनी है तो मैं चाहे मानूँ या न मानूँ, परमात्मा को भी घृणा करती रहूँगी। नाम प्रेम के दूँगी लेकिन वे झूठे होंगे क्योंकि घृणा करने वाले चित्त में प्रेम कहाँ ? और अगर मुझे परमात्मा को प्रेम करना है तो मुझे शैतान को भी प्रेम करना पडेगा। क्योंकि प्रेम करने वाले हृदय में घृणा की सम्भावना कहाँ ? इसलिए मुझे यह लकीर काट देनी पडी। भले इसके लिए कितना ही पाप लगे अब इसके लिए कोई उपाय नही।

यह राबिया ने ठीक कहा। या तो हमारा हृदय प्रेमपूर्ण होगा या घृणापूर्ण होगा। यह असम्भव है कि एक व्यक्ति महावीर को प्रेम करता हो और बुद्ध को प्रेम न करे। महावीर की बात दूसरी है, सच तो यह है कि एक व्यक्ति प्रेम करता हो तो वह प्रेम ही कर सकता है। बुद्ध, महावीर का भी सवाल नही, साधारण जनों को भी प्रेम कर सकता है। यह प्रेम करना अब कोई सौदा नही है। अब यह उसका स्वभाव है। अब कोई [illegible] है। अब वह प्रेम [illegible] करेगा जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल [illegible] ल से सुगन्ध गिर [illegible] हो। रास्ते से कौन निकलता है यह फूल थ [illegible]। अच्छा कि बु [illegible] अपना कि पराया, मित्र कि शत्रु—फूल नहीं [illegible] सुगन्ध रा [illegible] फैलती र [illegible] भी रास्ते से [illegible] गन्ध मिलत [illegible] ऐसा भी [illegible] व चाहे सुगन्ध को [illegible] छोड दे। भी नहीं है [illegible] हो जाए तो फूल [illegible] रोक ले। रास्ते पर [illegible] गिरती रहती है [illegible] का स्व

जिस दिन प्रेम स्वभाव हो जाता है, उस दिन हम प्रेम ही कर सकते है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर प्रेम सीमित और सकीर्ण हो तो जानना कि वह प्रेम नही है। वह घृणा का ही एक रूप है। और इसलिए अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नही होता। अनुयायी कभी प्रेमपूर्ण नही होता क्योकि जो प्रेमपूर्ण है, वह कैसे अनुयायी होगा ? या तो वह सबका अनुयायी होगा या किसी का अनुयायी नही होगा। उसका प्रेम इतना विस्तीर्ण है कि वह किसके पीछे जाएगा ? क्योंकि एक के पीछे जाने में दूसरे को छोडना पडता है और एक के पीछे जाने में हजार को छोडना पडता है। और जिसका प्रेम इतना बडा है वह किसी को भी नही छोड सकता, वह किसी के भी पीछे नही जाता। वह अनुयायी नहीं रह जाता।

इसलिए मैंने कहा कि मैं महावीर का अनुयायी नही हूँ, न बुद्ध का, न कृष्ण का। क्योंकि किसी एक के पीछे जाने से सबको छोडे बिना कोई रास्ता नही। इसलिए मैं किसी के पीछे नही गया हूँ और न कहता हूँ कि कोई किसी के पीछे जाए। और भी एक मजे की बात है कि जो किसी के पीछे जाएगा, वह अपने भीतर नही जा सकता। क्योकि पीछे जाने की दिशा होती है बाहर, और भीतर जाने की दिशा होती है भीतर। तो जो किसी का भी अनुयायी है, वह आत्म-अनुभव को उपलब्ध नही हो सकता क्योकि उसे जाना पडता है किसी के पीछे। और आत्म-अनुभव में सबको छोडकर उसे जाना है स्वय के भीतर, इसलिए मैं कहता हूँ कि जो सबको प्रेम करता है उसे किसी को पकडने का उपाय नही रहता। सब छूट जाते हैं और वह अपने भीतर जा सकता है।

यह भी समझ लेने की बात है कि प्रेम अकेला मुक्त करता है। घृणा बाँधती है और जो प्रेम भी बाँधता हो, मैं कहता हूँ, वह भी घृणा का ही रूप है। क्योकि प्रेम बाँधता ही नहीं, प्रेम एकदम मुक्त कर देता है। प्रेम का कोई बँधन नही है। प्रेम न किसी पर ठहरता है न किसी पर रुकता है, न किसी को रोकता है न किसी को ठहराता है। प्रेम की न कोई शर्त है, न कोई सौदा है। प्रेम तो परम मुक्ति है।

एक को भी अगर हम प्रेम कर लें तो हम पाएँगे कि एक जो था वह द्वार बन गया अनेक का। और कब एक मिट गया और प्रेम अनेक पर पहुँच गया है, कहना कठिन है। पर हम एक को भी प्रेम नहीं कर पाते। क्योंकि हम प्रेमपूर्ण नही हैं। हम ज्ञानपूर्ण है किन्तु प्रेमपूर्ण बहुत कम हैं। कारण कि ज्ञान संग्रह

करना पडता है और प्रेम बांटना पडता है। जो चीज संग्रह करनी पडती है वह हम कर लेते हैं क्योंकि उससे हमारे अहंकार की तृप्ति मिलती है। हम धन इकट्ठा कर लेते हैं, ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, त्याग इकट्ठा कर लेते हैं, जो भी चीज हम इकट्ठी कर सकते हैं, कर लेते हैं। लेकिन प्रेम का मामला उल्टा है। प्रेम अकेली घटना है जिसे हम इकट्ठी नही कर पाते, जिसको बांटना पडता है। प्रेम को आप इकट्ठा नही कर सकते। एक आदमी धन को इकट्ठा करके धनी हो जाएगा। लेकिन ऐसे ही कोई आदमी प्रेम को इकट्ठा करके प्रेमी नही हो सकता। प्रेम की धारा ठीक उल्टी है। जितना बांटो, उतना प्रेम। जितना इकट्ठा करो उतना कम। जिसकी इकट्ठी करने की वृत्ति है, वह प्रेमी नही हो सकता।

पडित की प्रवृत्ति इकट्ठी करने की होती है। वह ज्ञान इकट्ठा कर लेता है। ज्ञान इकट्ठा किया जा सकता है और फिर वह महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को जानने में असमर्थ हो जाता है। सच बात तो यह है कि फिर वह कृष्ण या बुद्ध या महावीर को जानता नही बल्कि अपने ज्ञान के आधार पर पुन. निर्मित करता है। वह फिर एक नया आदमी खडा कर लेता है जो कि कभी था ही नही। वह उसके ज्ञान के अनुकूल व्यक्ति बना लेता है। इसलिए सभी महापुरुषो का चित्र झूठा हो जाता है। उन सबकी जो पीछे स्मृति बनती है, वह झूठी हो जाती है। वह हमारे द्वारा बनाई गई होती है। ज्ञान से कोई द्वार नही है किसी को समझने का, प्रेम से द्वार है। क्योंकि प्रेम नही कहता कि तुम ऐसे हो तो ही मैं मानूंगा। प्रेम कहता है तुम जैसे हो, उसको मैं प्रेम करने के लिए तैयार हूँ। प्रेम कहता ही नहीं कि तुम ऐसे हो तो मैं प्रेम करूँगा। अगर मैं महावीर को प्रेम करता हूँ तो वह मुझे कपडे पहने हुए भी मिल जाएँ तो भी मैं प्रेम करूँगा और वह नंगे भी मिल जाएँ तो भी मैं प्रेम करूँगा। लेकिन एक अनुयायी है। वह कहता है कि महावीर अगर नग्न हैं तो ही मैं प्रेम करूँगा। अगर वह नग्न नही हैं तो प्रेम नही है।

एक घटना घटी। मेरी एक मित्र महिला हालैंड गई थी। वहाँ कृष्णमूर्ति का एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था। कुल छ सात हजार लोग सारी दुनिया से इकट्ठे हुए थे कृष्णमूर्ति को सुनने। वह मेरी परिचित महिला एक दूकान पर साँझ को गई और उसके साथ दो और यूरोपियन महिलाएँ थी। वे तीनो एक छोटी-सी दूकान पर कुछ खरीदने गई हैं, वहाँ वह देखकर हैरान रह गई हैं क्योंकि कृष्णमूर्ति वहाँ टाई खरीद रहे हैं। तो केवल यही बात बडी अजीब मालूम पडी कि कृष्णमूर्ति जैसा ज्ञानी एक साधारण सी दूकान पर टाई खरीदता

हो। ज्ञानी तो खत्म हो ही गया उसी क्षण। और फिर न केवल टाई खरीद रहे हैं बल्कि यह टाई लगाकर देखते हैं, वह टाई लगाकर देखते हैं, यह भी पसद नही पडती, 'वह भी पसंद नहीं पडती। सारी दूकान की टाई फैला रखी हैं। तो वे तीन महिलाओं के मन में बडा सन्देह भर गया कि हम किस व्यक्ति को सुनने इतनी दूर से आई और वह व्यक्ति साधारण सी दूकान पर टाई खरीद रहा है। और वह भी टाई में अभी रंग मिला रहा है कि कौन सा मेल खाता है, कौन सा मेल नही खाता है। उन दो यूरोपियन महिलाओं ने मेरी परिचित महिला को कहा कि हम अब सुनने नही आएँगी। बात खत्म हो गई है। एक साधारण आदमी को सुनने के लिए इतनी दूर से व्यर्थ परेशान हुई। जिसको अभी कपडों का भी ख्याल है इतना, उसको क्या ज्ञान मिला होगा। दोनों महिलाएँ सम्मेलन में सम्मिलित हुए बिना लौट गईं।

उस मेरी परिचित महिला ने जाकर कृष्णमूर्ति से कहा कि आपको पता नही है कि आपके टाई खरीदने से कितना नुकसान हुआ। दो महिलाएँ सम्मेलन छोडकर चली गईं क्योंकि वे यह नही मान सकती कि एक ज्ञानी व्यक्ति टाई खरीदता हो। कृष्णमूर्ति ने कहा . चलो ! दो का मुझ से छुटकारा हुआ; दो का भ्रम टूटा, यह भी क्या कम है ? कृष्णमूर्ति ने कहा कि क्या मैं टाई न खरीदूं तो ज्ञानी हो जाऊंगा ? अगर ज्ञानी होने की इतनी सस्ती शर्त है तो कोई भी नासमझ उसे पूरी कर सकता है। अगर इतनी सस्ती शर्त से कोई ज्ञानी हो जाता तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता। लेकिन इतनी सस्ती शर्त पर मैं ज्ञानी नहीं होना चाहता। और इतनी सस्ती शर्त पर जो मुझे ज्ञानी मानने के लिए तैयार हैं, वे न मानें यही अच्छा है, यही शुभ है।

लेकिन हम सब की ऐसी शर्तें होती हैं और शर्तें इसीलिए होती हैं कि हमारा कोई प्रेम नहीं है। हमारी अपनी धारणाएं हैं। इन धारणाओं पर हम कसने की कोशिश करते हैं आप ही को। और ध्यान रहे जितना अद्भुत व्यक्ति होगा उतना ही सारी धारणाओं को तोड देगा। वह किसी धारणा पर कसा नहीं जा सकता। असल में अद्भुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि पुरानी कसौटियां उस पर काम नहीं करती। प्रतिभाशाली व्यक्ति न केवल खुद को निर्मित करता है बल्कि खुद को मापे जाने की कसौटिया भी निर्मित करता है। और इसलिए ऐसा हो जाता है कि महावीर जब पैदा होते हैं तो पुराने महापुरुषों के अनुयायी महावीर को पहचान नहीं पाते क्योंकि उनकी कसौटिया महावीर पर लागू नहीं

पड़ती । पुराने महापुरुषो का जो अनुयायी है उसने धारणाएं बना रखी हैं जिन्हें वह महावीर पर कसने की कोशिश करता है । महावीर उस पर नही उतर पाते इसलिए व्यर्थ हो जाता है । लेकिन महावीर का अनुयायी वही बातें बुद्ध पर कसने की कोशिश करता है और तब फिर मुश्किल हो जाती है । हमारा चित्त अगर पूर्वाग्रह से भरा है, महापुरुष तो दूर एक छोटे से व्यक्ति को भी हम प्रेम नही कर सकते । एक पत्नी पति को प्रेम नही कर पाती क्योंकि पति कैसा होना चाहिए, इसकी धारणा पक्की मजबूत है । एक पति पत्नी को प्रेम नही कर पाता क्योंकि पत्नी कैसी होनी चाहिए, शास्त्रो से सब उसने सीख कर तैयार कर लिया है और वही अपेक्षा कर रहा है । वह इस व्यक्ति को, जो सामने पत्नी या पति की तरह मौजूद है, देख ही नही रहा ।

मैंने जो बातें महावीर के सम्बन्ध में कही हैं, उन पर मेरा कोई पूर्वाग्रह नही है । किन्ही सूचनाओं के, किन्ही धारणाओं के, किन्ही मापदण्डो के आधार पर मैंने उन्हें नही कसा । मेरे प्रेम में वह जैसे दिखाई पडते हैं, वैसी मैंने बात की । और जरूरी नही है कि मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं वैसे आपके प्रेम में भी दिखाई पड़ते हों । अगर वैसा भी मैं आग्रह करू तो मैं फिर आपसे धारणाओं की अपेक्षा कर रहा हूँ ।

मैंने अपनी बात कही जैसा वे मुझे दिखाई पडते हैं, जैसा मैं उन्हें देख पाता हूँ । और इसलिए एक बात निरन्तर ध्यान में रखनी जरूरी होगी कि महावीर के सम्बन्ध में जो भी मैंने कहा है, वह मैंने कहा है । और मैं उसमें अनिवार्य रूप से उतना ही मौजूद हूं जितने महावीर मौजूद हैं । वह मेरे और महावीर के बीच हुआ लेन-देन है । उसमें अकेले महावीर नही हैं । उसमें अकेला मैं भी नही हूँ । उसमें हम दोनों हैं । और इसलिए बिल्कुल ही असम्भव है कि जो मैंने कहा है ठीक बिल्कुल वैसा ही किसी दूसरे को भी दिखाई पडे । मैं किसी दूर वस्तु की तरह खड़े हुए व्यक्ति की बात नही कर रहा हूँ । मैं तो उस महावीर की बात कर रहा हूं जिसमे मैं भी सम्मिलित हो गया हूं, जो मेरे लिए एक आत्मगत अनुभूति बन गया है ।

जो मेरी बात को पढेंगे उन्हें समझने में बहुत कठिनाई और मुश्किल हो सकती है । सबसे बडी मुश्किल यह होगी कि वे उस जगह खडे नहीं हो सकते, जहा मैं खडे होकर देख रहा हूं । लेकिन इतनी ही उनकी कृपा काफी होगी कि वे उनकी चिन्ता न करें । एक व्यक्ति ने एक जगह खडे होकर कैसे महावीर को देखा है, यह समझ भर लें । और फिर अपनी जगह से खड़े होकर देखने की

कोशिश करें। यह जरूरी नही कि उनका जो ख्याल होगा, वह मुझसे मेल खाए। मेल खाने की कोई जरूरत भी नही है। लेकिन अगर इतने निष्पक्ष भाव से मेरी बातो को समझा गया तो जो भी व्यक्ति इतने निष्पक्ष भाव से समझेगा, उसे महावीर को समझने की बडी अद्‌भुत कुशलता उपलब्ध होगी। अगर उसने बहुत गौर से समझा है तो वह महावीर को ही नही, बुद्ध को भी, मुहम्मद को भी, कृष्ण को भी समझने में इतना ही समर्थ हो जाएगा।

इतिहास जो बाहर से दिखाई पडता है, लिखा जाता है। और जो बाहर से दिखाई पड़ता है, वह एक अत्यन्त छोटा पहलू होता है। इसलिए इतिहास बडी सच्ची बातें लिखते हुए भी बहुत बार असत्य हो जाता है। वर्क नाम का एक इतिहासज्ञ कोई पन्द्रह वर्षों से विश्व इतिहास लिख रहा था। दोपहर की बात है कि घर के पीछे शोर-गुल हुआ, दरवाजा खोलकर वह पीछे गया। उसके मकान के बगल से गुजरने वाली सडक पर झगडा हो गया था। एक आदमी की हत्या कर दी गई थी। बडी भीड थी, सैकडो लोग इकट्ठे थे। आखों देखे गवाह मौजूद थे और वह एक-एक आदमी से पूछने लगा कि क्या हुआ। एक आदमी कुछ कहता है, दूसरा कुछ कहता है तीसरा कुछ कहता है। आखों देखे गवाह मौजूद हैं। लाश सामने पडी है, खून सडक पर पडा हुआ है। अभी पुलिस के आने में देर है। हत्यारा पकड लिया गया है। लेकिन हर आदमी अलग-अलग बात करता है। किन्ही दो आदमियों की बातों में कोई ताल-मेल नहीं कि क्या हुआ ? झगडा कैसे हुआ ? कोई हत्यारे को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई मृतक को जिम्मेदार ठहरा रहा है, कोई कुछ कह रहा है और कोई कुछ रहा है। वे सब आखों देखे गवाह हैं। वर्क खूब हसने लगा। लोगो ने पूछा, आप किसलिए हस रहे हैं। आदमी की हत्या हो गई है। उसने कहा कि मैं और किसी कारण से हस रहा हूँ। अन्दर आया और वह पन्द्रह वर्षों की जो मेहनत थी उसमें आग लगा दी और अपनी डायरी में लिखा कि मैं हजारों साल पहले की घटनाओं पर इतिहास लिख रहा हूँ। मेरे घर के पीछे एक घटना घट गई है जिसमें चश्मदीद गवाह मौजूद हैं। फिर भी किसी का वक्तव्य मेल नही खाता। हजार-हजार साल पहले जो घटनाएं घटीं उनके लिए किस हिसाब से हम मानें कि क्या हुआ, क्या नही हुआ, कौन सही है कौन सही नही। कहना मुश्किल है। वर्क ने लिखा है कि इतिहास भी एक कल्पना हो सकती है अगर हमने बहुत ऊपर से पकडने की कोशिश की।

और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नहीं है। सवाल आत्मपरक है।

तो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं ? जैसे एक मा अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं ? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नहीं कह रहे हैं, अपने बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पड़ोस से एक आदमी निकले, और कहे : "क्या सुन्दर है इसमें ! इसमें तो कुछ भी सुन्दर नहीं है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चाद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में।

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चाद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य अब तक मुझे चाद में सदा स्त्रियों के चेहरे दिखाई पड़े थे और पहली दफा मुझे चाद रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी-रोटी जैसा दिखाई-पड़ सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड़ सकता है।" तीन दिन के भूखे आदमी को चाद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश में तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चांद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमें फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नहीं है अकेले जितना आंख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पड़ी हो।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध में ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हूँ और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नहीं समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नही समझ पाएगा। यहां दो

व्यक्ति, जैसे दो नदियाँ हैं, संगम पर आकर घुल-मिल जाए और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूँ कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचान पाता है, नहीं तो पहचान नहीं पाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकडने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुँचेगा तब उसे ऐसे ही पहुँचना पडेगा। उसे फिर प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनो में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णत. निषेध करता हूँ।

फ़कीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कही हैं जो शास्त्रों में नही हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कही भी कोई उल्लेख नही हैं। पडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहाँ हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रो में ये नही हैं। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। या कोई साधारण हिम्मत नही है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पडे।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढकर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन

और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नही है। सवाल आत्मपरक है।

तो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं ? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं ? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल के बावत ही नही कह रहे हैं, अपने बावत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पड़ोस से एक आदमी निकले, और कहे : "क्या सुन्दर है इसमें ! इसमें तो कुछ भी सुन्दर नही है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चाद उसे रोटी की तरह मालूम पडता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में।

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चाद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य अब तक मुझे चाद में सदा स्त्रियों के चेहरे दिखाई पडे थे और पहली दफा मुझे चाद रोटी दिखाई पडी। मैंने कभी सोचा ही नही था कि चाद भी रोटी जैसा दिखाई पड सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड सकता है।" तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश में तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चाद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमें फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नही है अकेले जितना आख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पडी हो।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध में ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हूँ और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नही समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नहीं समझ पाएगा। यहा दो

व्यक्ति, जैसे दो नदियाँ हैं, संगम पर आकर घुल-मिल जाए और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ हैं। और मैं मानता हूँ कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचान पाता है, नही तो पहचान नहीं पाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुँचेगा तब उसे ऐसे ही पहुँचना पड़ेगा। उसे फिर प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रो के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णत. निषेध करता हूँ।

(फ़कीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कही हैं जो शास्त्रों में नही हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कही भी कोई उल्लेख नहीं हैं। पडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहाँ हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रों में ये नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नही है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। या कोई साधारण हिम्मत नही है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पडे।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढ़कर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन

और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नही है। सवाल आत्मपरक है।

तो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं ? जैसे एक मा अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं ? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नही कह रहे हैं, अपने बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पडोस से एक आदमी निकले, और कहे : "क्या सुन्दर है इसमें ! इसमें तो कुछ भी सुन्दर नही है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चाद उसे रोटी की तरह मालूम पडता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में।

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य अब तक मुझे चाद में सदा स्त्रियो के चेहरे दिखाई पडे थे और पहली दफा मुझे चांद रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नही था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड सकता है।" तीन दिन के भूखे आदमी को चाद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश में तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चांद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमें फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नहीं है अकेले जितना आंख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पडी हों।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध में ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हूँ और जो हम दोनो को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नहीं समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नहीं समझ पाएगा। यहां दो

व्यक्ति, जैसे दो नदियाँ हैं, संगम पर आकर घुल-मिल जाए और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूँ कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचान पाता है, नहीं तो पहचान नहीं पाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकडने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुँचेगा तब उसे ऐसे ही पहुँचना पडेगा। उसे फिर प्राण डाल देने पडेंगे। अपने ही प्राण उडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रो के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रो के आधार को पूर्णतः निषेध करता हूँ।

फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कही हैं जो शास्त्रों में नहीं हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं हैं। पंडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहाँ हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रों में ये नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। या कोई साधारण हिम्मत नहीं है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पडे।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढकर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन

और कल्पना भी सत्य हो सकती है अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल वस्तुपरक नहीं है। सवाल आत्मपरक है।

तो महावीर उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना महावीर को देखने वाला है। और वह वही देख पाएगा जितना देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं ? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम जिसे प्रेम करते हैं उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं ? उस जीने से जो निखर आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, हम भी होते हैं। यह इतना ही गहरा है जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देखकर कहते हैं 'बहुत सुन्दर' तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नहीं कह रहे हैं, अपने बाबत भी कह रहे हैं। क्योंकि हो सकता है कि पड़ोस से एक आदमी निकले, और कहे : "क्या सुन्दर है इसमें ! इसमें तो कुछ भी सुन्दर नहीं है। साधारण-सा फूल है, घास का फूल।" वह आदमी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के सम्बन्ध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है। आकाश की तरफ देखता है। चांद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है। जैसे रोटी तैर रही हो आसमान में।

हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था। वह तीन दिन तक भूखा भटक गया जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, "आश्चर्य अब तक मुझे चांद में सदा स्त्रियों के चेहरे दिखाई पड़े थे और पहली दफा मुझे चांद रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड़ सकता है लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड़ सकता है।" तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा जैसे रोटी आकाश में तैर रही हो। आकाश में रोटी तैर रही है। चांद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुन्दर है, इसमें फूल तो है ही, एक सौन्दर्य बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुन्दर नहीं है अकेले जितना आंख उसे सुन्दर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुन्दर बना देता है और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी दिखाई न पड़ी हों।

तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के सम्बन्ध में ही कहा है। लेकिन मैं उसमें मौजूद हूं और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है वह नहीं समझ पाएगा। जो सिर्फ शास्त्र से महावीर को समझता है वह भी नहीं समझ पाएगा। यहां दो

व्यक्ति, जैसे दो नदियाँ हैं, सगम पर आकर घुल-मिल जाए और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन-सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूँ कि ऐसा मिलना हो तो ही नदी को पहचान पाता है, नही तो पहचान नहीं पाता। और इसलिए इस निवेदन के साथ महावीर की जड प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूपरेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने एक जीवित महावीर को पकडने की कोशिश की है और यह कोशिश तभी सम्भव है जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनर्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुँचेगा तब उसे ऐसे ही पहुँचना पडेगा। उसे फिर प्राण डाल देने पडेंगे। अपने ही प्राण उडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड सकेगा कि क्या है लेकिन फिर भी इस बात को निरन्तर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है—दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि वह और तरह से देख सके और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है और न किसी विवाद की कोई जरूरत है।

आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रो के आधार को पूर्णत· निषेध करता हूँ।

फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के सम्बन्ध में बहुत सी बातें उसने कही हैं जो शास्त्रों में नही हैं। और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं जिनका कही भी कोई उल्लेख नही हैं। पडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहाँ हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रो में ये नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, 'जोड लेना।' किन्तु उन्होंने कहा, 'बुद्ध ने यह कहा ही नही है।' तो बोकोजू ने कहा कि बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है। और न कहा हो तो कह देंगे। यह बोकोजू अद्‌भुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। या कोई साधारण हिम्मत नही है। यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को सुधार करना पडे।

एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे और रोज शाम पढ़कर सुनाते थे। कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने के लिए। अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था लेकिन

कथा इतनी रसपूर्ण हो रही थी कि हनुमान भी छिपकर उसे सुनते थे। वह जगह आई, जहाँ हनुमान अशोक वाटिका में गए सीता से मिलने। तो संत ने कहा। हनुमान गए, अशोक वाटिका में, वहाँ सफेद फूल खिले थे। सुनकर हनुमान अपने से बाहर हो गए क्योंकि फूल सब लाल थे। हनुमान ने खुद देखा था। इस आदमी ने देखा भी नहीं था। हजारों साल बाद कहानी कह रहा था यह संत। हनुमान ने खडे होकर कहा : माफ करें—इसमें जरा सुधार कर लें। फूल सफेद नहीं, लाल थे। उस आदमी ने कहा कि फूल सफेद ही थे। हनुमान ने कहा कि मुझे स्पष्ट करना पडेगा कि मैं खुद हनुमान हूँ और मैं गया था। अब तो सुधार कर लो। तो उसने कहा, नहीं, तुम्हीं सुधार कर लेना। फूल सफेद ही थे।

हनुमान ने कहा, 'यह तो हद हो गई। हजारों साल बाद तुम कथा कह रहे हो और मैं मौजूद था, मैं खुद गया था। तुम मेरी कथा कह रहे हो और मुझे इन्कार कर रहे हो।' उस आदमी ने कहा, लेकिन फूल सफेद ही थे; तुम सुधार कर लेना अपनी स्मृति में। हनुमान बहुत नाराज हुए। कथा कहती है कि उस संत को लेकर वे राम के पास गए। राम से उन्होंने कहा, 'हद हो गई है। इस आदमी की जिद देखो! मुझसे सुधार करवाता है। मेरी स्मृति में फूल बिल्कुल लाल थे। राम ने कहा कि वह सन्त ही ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना। तो हनुमान ने कहा, हद हो गई। राम ने कहा कि तुम इतने क्रोध में थे कि तुम्हारी आँखें खून से भरी थी, फूल लाल दिखाई पडे होंगे। फूल सफेद थे।

बहुत बार देखा हो तो भी जरूरी नहीं कि सच हो। और बहुत बार न देखा हो तो भी हो सकता है कि सच हो। सच बडी रहस्यपूर्ण बात है। अभी मैं एक नगरी में था। एक बौद्ध भिक्षु मिलने आए। कुछ बात चल रही थी तो मैंने कहा कि बुद्ध के सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था। वह पैर का अँगूठा हिला रहा था। बुद्ध बोल रहे थे। बुद्ध ने उससे कहा कि 'मित्र, तेरे पैर का अँगूठा क्यों हिलाता है?' उस आदमी ने अपने पैर का अँगूठा हिलाना रोक लिया और कहा कि अपनी बात आप जारी रखिए, फिजूल की बातों से क्या मतलब! बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं पीछे बात शुरू करूँगा, पहले पता चल जाए कि पैर का अँगूठा क्यों हिलता है? उस आदमी ने कहा कि मुझे पता ही नहीं। मैं क्या बताऊँ क्यों हिलता है। बुद्ध ने कहा कि तू बड़ा पागल आदमी है। तेरा अँगूठा हिलता है और तुझे पता नहीं। जब शरीर की होश नहीं रखेगा तो

आत्मा की होश बहुत दूर की बात है। तब बौद्ध भिक्षु ने कहा कि यह किस ग्रन्थ में लिखा हुआ है। मैंने कहा : मुझे पता नहीं, हो सकता है न हो। लेकिन न भी हो तो घटना घटनी चाहिए। क्या फर्क पडता है कि घटी कि न घटी। यह भी बहुत मूल्य का नही है कि कौन सी घटना घटती है कि नहीं घटती। बहुत मूल्य का यह है कि वह घटना क्या कहती है। बुद्ध ने बहुत मौको पर यह बात लोगों को कही होगी कि जो शरीर के प्रति नही जगा हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जगेगा ? और बहुत बार उन्होंने लोगो को टोका होगा उनकी मूर्छा में। घटना कैसी घटी होगी यह बहुत गौण बात है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बुद्ध जागरण के लिए निरन्तर आग्रह करते हैं। और जो शरीर के प्रति सोया हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जागेगा, और बहुत बार वे लोगो को मूर्छा में पकड लेते हैं और कहते हैं कि 'देखो ! तुम बिल्कुल सोए हो।' और सोए हुए आदमी को बताना पडता है कि 'यह रही नीद !' और नीद तभी टूट सकती है। घटना बिल्कुल सच है, ऐतिहासिक न हो तब भी। ऐतिहासिक होने से भी क्या होता है ? इतिहास भी क्या है ? जहाँ घटनाएँ पर्दे पर साकार हो जाती हैं, इतिहास बन जाता है। और घटनाएँ अगर पर्दे के पीछे ही रह जाएँ तो इतिहास नहीं बनता है। इस देश में और सारी दुनिया में जो लोग जानते हैं, वे बडे अद्भुत हैं।

कहानी है कि वाल्मीकि ने राम की कथा राम के होने के पहले लिखी। यह बडी मधुर और बड़ी अद्भुत बात है। राम हुए नहीं तब वाल्मीकि ने कथा लिखी और फिर राम को कथा के हिसाब से होना पडा। फिर कोई उपाय न था क्योंकि वाल्मीकि ने लिख दी तो फिर राम को वैसा होना पडा। सब सत्र करना पडा जो वाल्मीकि ने लिख दिया था। यह बडी अद्भुत बात है, इतनी अद्भुत कि इसे सोचना भी हैरान करने वाला है। पहले राम हो जाएँ फिर कथा लिखी जाए, यह समझ में आता है। लेकिन वाल्मीकि कथा लिख दें और फिर राम को होना पडे और सब वैसा ही करना पडे, जो वाल्मीकि ने लिख दिया था, मुश्किल है। वाल्मीकि ने लिख दिया है तो अब वैसा करना पडेगा। तो उस बोकूजो ने जो कहा कि कह देना बुद्ध को कि वह फिर यह कह दें, अगर न कहा हो तो वह दें तो वह उसी अधिकार से कह रहा है जिस अधिकार से वाल्मीकि कथा लिख गए हैं।

इतिहास पीछे लिखा जाता है। सत्य पहले ही लिखा जा सकता है क्योंकि सत्य का मतलब है जिससे अन्यथा हो ही नही सकता। इतिहास का मतलब है,

जैसा हुआ लेकिन इससे अन्यथा हो सकता था। सत्य का मतलब है जैसा हो सकता है, जिससे अन्यथा कोई उपाय नही है। महावीर, बुद्ध, जीसस इन जैसे लोगों के प्रति इतिहास की फिक्र नही करनी चाहिए। इतिहास इतनी मोटी बुद्धि की बात है कि ये बारीक लोग उससे निकल ही जाएँ, पकड में हो न आएँ। उन्हें तो किसी और आँख से देखने की जरूरत है, सत्य की आँख से। और उस आँख से देखने पर बहुत सी बातें उद्घाटित होंगी जो शायद इतिहास नहीं पकड पाया है। और इसलिए मैंने जो कहा है और आगे भी कृष्ण, बुद्ध, कनफ्यूसियस, लाओत्से और क्राइस्ट के सम्बन्ध में जो कहूँगा, उसका ऐतिहासिक होने से कोई सम्बन्ध नही है। इसलिए जिनकी ऐतिहासिक बुद्धि हो उनसे कोई झगड़ा ही नही है, उनसे कोई विवाद ही नही है। जगत् को एक कवि की दृष्टि से भी देखा जा सकता है और तब जगत् इतने रहस्य खोल देता है जितने इतिहास की दृष्टि से देखने वालो के सामने उसने कभी भी नही खोले हैं।

काव्य का अपना दर्शन है। चूँकि वह ज्यादा प्रेम से भरा है इसलिए ज्यादा सत्य के निकट है। शास्त्र उससे मेल भी पड सकते है, बेमेल भी पड़ सकते हैं। चूँकि हमें ख्याल में नही रहा है इसलिए जिन लोगों ने अतीत में इन सारे महापुरुषों की गाथाएँ लिखी हैं उनको समझना मुश्किल हो गया। क्योंकि उन गाथाओं को लिखते वक्त भी सत्य पर दृष्टि ज्यादा थी, तथ्य पर बहुत कम। तथ्य तो रोज बदल जाते हैं; सत्य कभी नहीं बदलता। इतिहास तथ्यों का लेखा-जोखा रखता है। सत्य का लेखा-जोखा कौन रखेगा? इसलिए जिनको सत्य की बहुत फिक्र थी उन्होंने इतिहास लिखा तक नही। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब पैदा हुआ, किस तारीख में, किस तिथि में। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब मरा। यह बात भी अर्थहीन थी कि कौन आदमी कब उठा, कब चला, कब क्या किया। महत्त्वपूर्ण तो वह अन्तर्घटना थी जिसने सत्य के निकट पहुँचा दिया और सत्य उस घटना को प्रकट कर सके, ऐसी पूरी की पूरी व्यवस्था की। व्यवस्था बिलकुल ही काल्पनिक हो सकती है तो भी कठिनाई नही है। इतिहास बिल्कुल ही वास्तविक है तो भी व्यर्थ हो सकता है।

इतिहास यह है कि जीसस एक बढई के बेटे थे। और सत्य यह है कि वे ईश्वर के पुत्र हैं। इतिहास खोजने जाएगा तो बढई के बेटे से ज्यादा क्या खोज पाएगा? लेकिन जिन्होंने जीसस को देखा उन्होंने जाना कि वे परमात्मा के बेटे है। यह किसी और आँख से देखी गई बात है और इन दोनों बातों में ताल-मेल

नही हो सकता है क्योंकि बढई के बेटे और ईश्वर के बेटे में बहुत फर्क है। इससे ज्यादा फर्क क्या हो सकता है। फिर भी मैं कहूँगा कि उन्होंने बढई का बेटा ही देखा वे पहचान नही पाए उस आदमी को जो बढई से आया था, लेकिन बढई का बेटा नहीं था। इसका आना और बडे जगत् से था और वह नहीं पहचान पाया कोई भी, क्योंकि जब जीसस ने कहा कि सारा राज्य मेरा है और जो मेरे साथ चलते हैं, वे साम्राज्य के मालिक हो जाएँगे तो जो तथ्यो को जानने वाले थे वे चिन्तित हो गए। उन्होंने कहा मालूम होता है कि जीसस कोई क्रान्ति, कोई बगावत करना चाहता है और जो सच में राजा है उस पर हावी होना चाहता है। जब जीसस को पकडा गया और उसको काँटे का ताज पहनाया गया और पूछा गया कि क्या तुम राजा हो तो उसने कहा, हाँ ! लेकिन फिर भी समझ में नही आ सका कि वह आदमी क्या कह रहा है ? फिर उससे पूछा गया, क्या तुम सम्राट् होने का दावा करते हो ? तो उसने कहा, 'हाँ, क्योंकि मैं सम्राट् हूँ।' लेकिन यह बात बिल्कुल असत्य थी क्योंकि जीसस सम्राट् नही थे। एक गरीब आदमी के बेटे थे। उस लाख आदमियो की भीड में जो सूली देने इकट्ठे हुए थे, दस-पाँच ही थे जो पहचान पाए कि हाँ वह सम्राट् है। बाकी ने कहा 'खत्म करो, इस आदमी को। यह कैसी झूठी बातें बोल रहा है।' और पायलट ने, जो गवर्नर था, जिसकी आज्ञा से सूली दी गई थी, मरते वक्त जीसस के पास खडे होकर पूछा : सत्य क्या है ? जीसस चुप रह गए। कुछ उत्तर नही दिया। सूली हो गई। प्रश्न वही खडा रह गया। जीसस ने उत्तर इसलिए नही दिया कि सत्य दिखाई पड़ता है या नहीं दिखाई पडता है पूछा नही जा सकता है। तथ्य पूछे जा सकते हैं। बताया जा सकता है कि यह तथ्य है। जो कोई पूछे सत्य क्या है तो बताया नही जा सकता। वह देखा जा सकता है। तो जीसस चुपचाप खडे रह गए कि देख लो अगर दिखाई पड जाए तो तुम्हें पता चल जाएगा कि सत्य क्या है, यह आदमी सम्राट् है या नही। और अगर तथ्य की बात पूछते हो तो फिर ठीक है, आदमी बढई का लडका है, सूली पर लटका देने योग्य है क्योंकि दिमाग खराब हो गया है और अपने को सम्राट् घोषित कर रहा है।

इधर मैं निरन्तर इस सम्बन्ध में चिन्तन करता रहा हूँ कि तथ्य को पकडने वाली बुद्धि सत्य को पकड़ सकती है या नहीं। और मुझे लगता है कि नही पकड सकती। सत्य को पकडने के लिए और गहरी आँख चाहिए जो तथ्यो के भीतर उतर जाता है और तब ऐसे सत्य हाथ लगते हैं जिनकी तथ्य कोई खबर नही दे पाता। इसी दृष्टि से यह सारी बात मैंने कही है।

परिशिष्ट १ : अहिंसा

परिशिष्ट २ : ध्यान

परिशिष्ट (१)

अहिंसा[1]

अहिंसा एक अनुभव है, सिद्धान्त नहीं। और अनुभव के रास्ते बहुत भिन्न हैं, सिद्धान्त को समझने के रास्ते बहुत भिन्न हैं—अक्सर विपरीत। सिद्धान्त को समझना हो तो शास्त्र में चले जाएँ, शब्द की यात्रा करें, तर्क का प्रयोग करें। अनुभव में गुजरना हो तो शब्द से, तर्क से, शास्त्र से क्या प्रयोजन है? सिद्धान्त को शब्द से बिना नहीं जाना जा सकता और अनुभूति शब्द से कभी नहीं पाई गई। अनुभूति पाई जाती है निःशब्द में और सिद्धान्त है शब्द में। दोनों के बीच विरोध है। **जैसे ही अहिंसा सिद्धान्त बन गई वैसे ही मर गई।** फिर अहिंसा के अनुभव का क्या रास्ता हो सकता है?

अब महावीर जैसा या बुद्ध जैसा कोई व्यक्ति है तो उसके चारों तरफ जीवन में हमें बहुत कुछ दिखाई पडता है। जो हमें दिखाई पड़ता है, उसे हम पकड़ लेते हैं· महावीर कैसे चलते हैं, कैसे खाते हैं, क्या पहनते हैं, किस बात को हिंसा मानते हैं, किस बात को अहिंसा, महावीर के आचरण को देखकर हम निर्णय करते हैं और सोचते हैं कि वैसा। आचरण अगर हम भी बना लें तो शायद जो अनुभव है वह मिल जाए। लेकिन यहाँ भी वही भूल हो जाती है। **अनुभव मिले तो आचरण आता है, लेकिन आचरण बना लेने से अनुभव नहीं आता।** अनुभव हो भीतर तो आचरण बदलता है, रूपान्तरित होता है। लेकिन आचरण को कोई बदल ले तो अभिनय से ज्यादा नही हो पाता। महावीर नग्न खडे हैं तो हम भी नग्न खडे हो सकते हैं। महावीर की नग्नता किसी निर्दोष तल पर नितान्त सरल हो जाने से आई है। हमारी नग्नता हिसाब से, गणित से, चालाकी से आएगी। हम सोचेंगे नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। तो फिर एक-एक बात को उतारते चले जाएँगे। हम नग्नता का अभ्यास करेंगे। अभ्यास से कभी कोई सत्य आया है? अभ्यास से अभिनय आता है।

---

१. दिल्ली-विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय अहिंसा-गोष्ठी में दिया गया भगवान् श्री का यह प्रवचन मूल पुस्तक के विषय से सम्बद्ध होने के कारण यहाँ दिया जा रहा है—सम्पादक।

एक गाँव के पास से मैं गुजर रहा था। एक मित्र संन्यासी हो गए हैं। उनका झोपडा पडता था पास, तो मैं देखने गया। जंगल में, एकान्त में झोपड़ा है। पास पहुँच कर देखा मैंने कि अपने कमरे में वह नग्न टहल रहे हैं। दरवाजा खटखटाया तो देखा वह चादर लपेट कर आए हैं। मैंने उनसे पूछा। भूलता नही हूँ, खिड़की से मुझे लगा कि आप नगे टहल रहे थे। फिर चादर क्यों पहन ली है ? उन्होंने कहा : नग्नता का अभ्यास कर रहा हूँ। धीरे-धीरे एक-एक वस्त्र छोडता गया हूँ। अब अपने कमरे में नग्न रहता हूँ। फिर धीरे-धीरे मित्रों में, प्रियजनों में, फिर गाँव में, फिर राजधानी में नग्न रहने का इरादा है, धीरे-धीरे नग्नता का अभ्यास कर रहा हूँ क्योंकि नग्न हुए बिना मोक्ष नहीं है।

यह व्यक्ति भी नग्न खड़े हो जाएँगे। महावीर की नग्नता से इनकी नग्नता का क्या सम्बन्ध होगा ? मैंने उनसे कहा कि सन्यासी होने के बजाय सरकस में भर्ती हो जाओ तो अच्छा है। ऐसे भी संन्यासियो में अधिकतम सरकस में भर्ती होने की योग्यता रखते हैं। अभ्यास से साधी हुई नग्नता का क्या मूल्य है ? भीतर निर्दोषता का कोई अनुभव हो, कोई फूल खिले सरलता का और बाहर वस्त्र गिर जाएँ और पता न चले तो यह समझ में आ सकता है। लेकिन हमें तो दिखाई पडता है आचरण, अनुभव तो दिखाई नही पड़ता। महावीर को हमने देखा तो दिखाई पड़ा आचरण। अनुभव तो दिखाई नहीं पड सकता। लेकिन महावीर का आचरण सबको दिखाई पड सकता है। फिर हम उस आचरण को पकड़ कर नियम बनाते हैं, सयम का शास्त्र बनाते हैं, अहिंसा की व्यवस्था बनाते हैं और फिर उसे साधना शुरू कर देते हैं। फिर क्या खाना, क्या पीना, कब उठना, कब सोना, क्या करना, क्या नहीं करना—उस सबको व्यवस्थित कर लेते हैं, उसका एक अनुशासन थोप लेते हैं। अनुशासन पूरा हो जाएगा और अहिंसा की कोई खबर न मिलेगी। अनुशासन से अहिंसा का क्या सम्बन्ध ? सच तो यह है कि ऊपर से थोपा गया अनुशासन भीतर की आत्मा को उघाड़ता कम है, ढाँकता ज्यादा है। जितना बुद्धिहीन आदमी हो उतना अनुशासन को सरलता से थोप सकता है। जितना बुद्धिमान् आदमी हो उतना मुश्किल होगा, उतना वह उस स्रोत की खोज में होगा जहाँ से आचरण आया छाया की भाँति।

इसलिए पहली बात मैंने कही : अहिंसा अनुभव है। दूसरी बात आपसे कहता हूँ कि अहिंसा आचरण नहीं है। आचरण अहिंसा बनता है लेकिन

अहिंसा स्वयं आचरण नही है। इस घर में हम दिए को जलाएं तो खिडकियों के बाहर भी रोशनी दिखाई पडती है। लेकिन दिया खिडकी के बाहर दिखाई पडती रोशनी का ही नाम नहीं है। दिया जलेगा तो खिडकी से रोशनी भी दिखाई पडेगी। अब उसके पीछे आने वाली घटना है जो अपने आप घट जाती है।

एक आदमी गेहूँ बोता है तो गेहूँ के साथ भूसा अपने आप पैदा हो जाता है, उसे पैदा नही करना पड़ता। लेकिन किसी को भूसा पैदा करने का ख्याल हो और वह भूसा बोने लगे तो फिर कठिनाई शुरू हो जाएगी। बोया गया भूसा भी सड जाएगा, नष्ट हो जाएगा। उससे भूसा तो पैदा होने वाला ही नही। गेहूँ बोया जाता है, भूसा पीछे से अपने-आप साथ-साथ आता है। अहिंसा वह अनुभव है, वह आचरण है जो पीछे से अपने आप आता है, लाना नही पडता। जिस आचरण को लाना पडे वह आचरण सच्चा नही है। जो आचरण आए, उतरे, प्रकट हो, फैले, पता भी न चले, सहज वही आचरण सत्य है। तो दूसरी बात यह है कि आचरण को साध कर हम अहिंसा को उपलब्ध न हो सकेंगे। अहिंसा आए तो आचरण भी आ सकता है। फिर अहिंसा कैसे आए? हमें सीधा-सरल यही दिखाई देता है कि जीवन को एक व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा हो जाएगी। लेकिन अमल में जीवन को व्यवस्था देने से अहिंसा पैदा नही होती। चित्त के रूपान्तरण से अहिंसा पैदा होती है। और यह रूपान्तरण कैसे आए, इसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझनी उपयोगी होगी।

पहला तो यह शब्द अहिंसा बहुत अद्भुत है। यह शब्द बिल्कुल नकारात्मक है। महावीर प्रेम शब्द का भी प्रयोग कर सकते थे, नही किया। जीसस तो प्रेम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद प्रेम शब्द का प्रयोग करने के कारण ही जीसस जल्दी समझ में आते हैं बजाय महावीर के। महावीर निषेधात्मक शब्द का प्रयोग करते हैं। अहिंसा में वह कहना चाहते हैं 'हिंसा नही है।' वह और कुछ भी नही कहना चाहते। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा, वह अहिंसा होगी। अहिंसा को लाने का सवाल ही नही है। वह उस शब्द में ही छिपा है। अहिंसा को विधायक रूप से लाने का कोई सवाल ही नही है, कोई उपाय ही नहीं है।

इसे और एक तरह से देखना जरूरी है। हिंसा और अहिंसा विरोधी नही हैं, प्रकाश और अंधकार विरोधी नही हैं। अगर प्रकाश और अंधकार विरोधी

हो तो हम अंधकार को लाकर दिए के ऊपर डाल सकते हैं; दिए को बुझना पड़ेगा। नही, अंधकार विरोधी नही है प्रकाश का, अंधकार अभाव है प्रकाश का। अभाव और विरोध में कुछ फर्क है। विरोधी का अस्तित्व होता है, अभाव का अस्तित्व नही होता। अंधेरे का कोई अस्तित्व नही होता प्रकाश का अस्तित्व है। अगर अंधेरे के साथ कुछ करना हो तो सीधा अंधेरे के साथ कुछ नहीं किया जा सकता। न तो अंधेरा लाया जा सकता है न निकाला जा सकता है। नही तो दुश्मन के घर में हम अंधेरा फेंक आए। कुछ भी करना हो अंधेरे के साथ तो प्रकाश के साथ करना पड़ेगा। अंधेरा लाना हो तो प्रकाश बुझाना पडेगा। अंधेरा हटाना हो तो प्रकाश जलाना पडेगा। इसलिए जब यहाँ अंधेरा मिटता है तो प्रकाश हो जाता है। हम कहते हैं, अंधेरा मिट गया, इससे ऐसा लगता है जैसे अंधेरा था। लेकिन अंधेरा है सिर्फ प्रकाश का अभाव। प्रकाश आ गया—इतना सार्थक है। और प्रकाश आ गया तो अंधेरा कैसे रह सकता है? वह अब नही है। न वह कभी था।

महावीर निषेधात्मक अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। वह कहते हैं कि हिंसा है, हिंसा में हम खड़े हुए हैं। हिंसा न हो जाए तो जो शेष रह जाएगा उसका नाम अहिंसा है। लेकिन अगर किसी ने अहिंसा को विधायक बनाया तो वह हिंसक रहते हुए अहिंसा साधने की कोशिश करेगा। हिंसक रहेगा और अहिंसा साधेगा। हिंसक के द्वारा अहिंसा कभी नही साधी जा सकती। और अगर साध भी लेगा तो उसकी अहिंसा में हिंसा के सब तत्त्व मौजूद रहेंगे। वह अहिंसा से भी सताने का काम शुरू कर देगा। इसलिए मैं गांधीजी की अहिंसा को अहिंसा नही मानता हूँ। गांधीजी की अहिंसा उस अर्थ में अहिंसा नही है जिस अर्थ में महावीर की अहिंसा है। गांधीजी की अहिंसा में भी दूसरे को दबाने, दूसरे को बदलने, दूसरे को भिन्न करने का आग्रह है। उसमें हिंसा है। अगर हम ठीक से कहें तो गांधीजी की अहिंसा अहिंसात्मक हिंसा है। मैं आपकी छाती पर छुरी लेकर खडा हो जाऊँ और कहूँ कि जो मैं कहता हूँ वह ठीक है, आप उसे मानें तो यह हिंसा है। और मैं अपनी छाती पर छुरी लेकर खडा हो जाऊं और कहूँ कि जो ठीक है वह मानें नही तो मैं छुरी मार लूंगा, यह अहिंसा कैसे हो जाएगी?

अनशन कैसे अहिंसा हो सकता है? सत्याग्रह कैसे अहिंसा हो सकता है? उसमें दूसरे पर दबाव डालने का भाव पूरी तरह उपस्थित है। सिर्फ दबाव डालने का ढंग बदल गया है। एक आदमी कहता है कि मैं भूखा मर जाऊंगा

अगर तुम नही बदले। अम्बेडकर के विरोध में गाधी जी ने अनशन किया। अम्बेडकर झुक गया। लेकिन बाद में अम्बेडकर ने कहा कि गांधी जी इस भूल में न पड़ें कि मेरा हृदय बदल गया है। मैं सिर्फ यह सोचकर कि मेरे कारण गांधीजी जैसा आदमी न मर जाए, पीछे हट गया हूँ। और गांधीजी अपने पूरे जीवन में एक आदमी का भी हृदय परिवर्तन नही कर पाए। असल में, हिंसा से हृदय परिवर्तन हो ही नही सकता। हिंसा दमन है, दबाव है, जबरदस्ती है। हाँ, जबरदस्ती दो ढग की हो सकती है। मैं आपको मारने की धमकी दूँ, तब भी जबरदस्ती है और मैं अपने को मारने की धमकी दूँ, तब भी जबरदस्ती है। और मेरी दृष्टि में दूसरी जबरदस्ती ज्यादा खतरनाक है। पहली जबरदस्ती में आपके पास उपाय भी है सीधा सिर खडा करके लड़ने का। दूसरी जबरदस्ती में मैं आपको नि शस्त्र कर रहा हूँ, आपका नैतिक बल भी छीन रहा हूँ, आपको दबा भी रहा हूँ। अहिंसा अगर हिंसा के भीतर रहते साधी जाएगी तो ऊपर अहिंसा हो जाएगी, भीतर हिंसा मौजूद रहेगी। क्योंकि अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें नही हैं। गांधी जी के ख्याल में अहिंसा और हिंसा विरोधी चीजें हैं। अहिंसा को साधो तो हिंसा खत्म हो जाएगी। लेकिन कौन साधेगा अहिंसा को ? हिंसक आदमी साधेगा तो अहिंसा भी साधन बनेगी उसकी हिंसा का। वह फिर अहिंसा से वही उपयोग लेना शुरू कर देगा जो उसने तलवार से लिया होगा।

पूछा जा सकता है कि महावीर ने जिन्दगी भर सत्याग्रह क्यो नही किया ? पूछा जा सकता है कि महावीर ने किसी को बदलने का आग्रह क्यों नही किया ? सच तो यह है कि सत्याग्रह शब्द ही बेहूदा है। सत्य का कोई आग्रह नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ आग्रह है, वहाँ सत्य कैसे टिकेगा ? आग्रह असत्य का ही होता है। सब सत्याग्रह असत्य आग्रह है। कैसे सत्य का आग्रह हो सकता है ? महावीर कहते हैं कि सत्य का आग्रह भी किया तो हिंसा शुरू हो गई क्योंकि अगर मैंने यह कहा कि जो मैं कहता हूँ वही सत्य है तो मैंने हिंसा करनी शुरू कर दी। मैंने दूसरे व्यक्ति को चोट पहुँचानी शुरू कर दी। इसलिए महावीर सत्य का आग्रह भी नही करते। इसी से उनके स्यात् की कल्पना है, इसी से उनके अनेकान्त की धारणा का जन्म हुआ है।

एक छोटी सी कहानी समझाना चाहूँगा। एक गाँव में एक क्रोधी आदमी है जिसके क्रोध ने चरम स्थिति ले ली है। उसने अपने बच्चे को कुएँ में धक्का

देकर मार डाला। उसने अपनी पत्नी को मकान के भीतर करके आग लगा दी। फिर पछताया है, दुखी हुआ है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं। वह उनके पास गया और उनसे कहा कि मैं अपने क्रोध को किस प्रकार मिटाऊँ। मुझे कुछ रास्ता बताएँ कि मैं इस क्रोध से मुक्त हो जाऊँ। मुनि ने कहा कि सब त्याग कर दो, संन्यासी हो जाओ, सब छोड़ दो तभी क्रोध जाएगा। मुनि नग्न थे। उस व्यक्ति ने भी कपड़े फेंक दिए। वह वहीं नग्न खड़ा हो गया। मुनि ने कहा : अब तक मैंने बहुत लोग देखे सन्यास माँगने वाले लेकिन तुम जैसा तेजस्वी कोई भी नहीं दिखा। इतनी तीव्रता से तुमने वस्त्र फेंक दिए। लेकिन मुनि भी न समझ पाए कि जितनी तीव्रता से कुएँ में धक्का दे सकता है, वह उतनी ही तीव्रता से वस्त्र भी फेंक सकता है। वह क्रोध का ही रूप है। असल में क्रोध बहुत रूपों में प्रकट होता है। क्रोध संन्यास भी लेता है। इसलिए संन्यासियों में निन्यानवें प्रतिशत क्रोधी इकट्ठे मिल जाते हैं। उनके कारण हैं।

उसने वस्त्र फेंक दिए हैं, वह नग्न हो गया है, वह संन्यासी हो गया है। दूसरे साधक पीछे पड़ गए हैं। उससे साधना में कोई आगे नहीं निकल सकता। क्रोध किसी को भी आगे नहीं निकलने देता। क्रोध ही इसी बात का है कि कोई मुझ से आगे न हो जाए। वह साधना में भी उतना ही क्रोधी है। लेकिन साधना की खबर फैलने लगी। जब दूसरे छाया में बैठे रहते हैं वह धूप में खड़ा रहता है। जब दूसरे भोजन करते हैं वह उपवास करता है। जब दूसरे शीत से बचते हैं वह शीत झेलता है। उसके महातपस्वी होने की खबर गाँव-गाँव में फैल गई है। उसके क्रोध ने बहुत अद्भुत रूप ले लिया है। कोई नहीं पहचानता, वह खुद भी नहीं पहचानता कि यह क्रोध ही है जो नये-नये रूप ले रहा है।

फिर वह देश की राजधानी में आया। दूर-दूर से लोग उसे देखने आते हैं। देश की राजधानी में उसका एक मित्र है बचपन का। वह बड़ा हैरान है कि वह क्रोधी व्यक्ति संन्यासी कैसे हो गया हालांकि नियम यही है। वह देखने गया उसे। संन्यासी मंच पर बैठा है। वह मित्र सामने बैठ गया। संन्यासी की आँखों से मित्र को लगा है कि वह पहचान तो गया। लेकिन मंच पर कोई भी बैठ जाए फिर वह नीचे मंच वालों को कैसे पहचाने ? पहचानना बहुत मुश्किल है। फिर वह मंच कोई भी हो। चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे गुरु की हो। मित्र ने पूछा, आपका नाम ? संन्यासी ने कहा शान्तिनाथ। फिर परमात्मा

की बात करते रहे। मित्र ने सन्यासी से फिर वही प्रश्न किया। सन्यासी का हाथ डंडे पर गया। उसने कहा : बहरे तो नही हो, बुद्धिहीन तो नही हो? कितनी बार कहूँ कि मेरा नाम है शांतिनाथ। मित्र थोडी देर चुप रहा। कुछ और बात चलती रही आत्मा-परमात्मा की। फिर उसने पूछा कि क्षमा करिए। आपका नाम क्या है? फिर आप सोच सकते हैं क्या हुआ? वह डंडा उस मित्र के सिर पर पड़ा। उसने कहा कि तुझे समझ नही पडता कि मेरा नाम क्या है? मित्र ने कहा कि अब मैं पूरी तरह समझ गया। यह पता लगाने के लिए तीन बार नाम पूछा है कि आदमी भीतर बदला है या नही बदला है।

अहिंसा काँटो पर लेट सकती है, भूख सह सकती है, शीर्षासन कर सकती हैं, आत्म-पीड़ा बन सकती है अगर भीतर हिंसा मौजूद हो। दूसरों को भी दुःख और पीडा का उपदेश दे सकती है। हिंसा भीतर होगी तो वह इस तरह के रूप लेगी, खुद को सताएगी, दूसरों को सताएगी और इस तरह के ढंग खोजेगी कि ढंग अहिंसक मालूम होंगे लेकिन भीतर सताने की प्रवृत्ति परिपूर्ण होगी। असल में अगर एक व्यक्ति अपने अनुयायी इकट्ठा करता फिरता हो तो उसके अनुयायी इकट्ठा करने में और हिटलर के लाखों लोगों को गोली मार देनें में कोई बुनियादी फर्क नही है। असल में गुरु भी माँग करता है अनुयायी से कि तुम पूरी तरह मिट जाओ, तुम बिल्कुल न रहो, तुम्हारा कोई व्यक्तित्व न बचे। समर्पित हो जाओ पूरे। अनुयायी की माँग करने वाला गुरु भी व्यक्तित्व को मिटाता है सूक्ष्म ढंगो से, पोंछ देता है व्यक्तियों को। फिर सैनिक रह जाते हैं जिनके भीतर आत्मा समाप्त कर दी गई है। हिटलर जैसा आदमी सीधा गोली मार कर शरीर को मार देता है।

पूछना जरूरी है कि शरीर को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होंगे या फिर आत्मा को, व्यक्तित्व को मिटा देने वाले ज्यादा हिंसक होते हैं? कहना मुश्किल है। लेकिन दिखाई तो यही पडता है कि किसी के शरीर को मारा जा सकता है और हो सकता है कि व्यक्ति बच जाए। तब आपने कुछ भी नहीं मारा। और यह भी हो सकता है कि शरीर बच जाए और व्यक्ति भीतर मार डाला जाए तो आपने सब मार डाला। अगर भीतर हिंसा हो, ऊपर अहिंसा हो तो दूसरो को मारने की, दबाने की नई-नई तरकीबें खोजी जाएँगी और तरकीबें खोजी जाती हैं। यह भी हो सकता है कि एक आदमी सिर्फ इसीलिए एक तरह का चरित्र बनाने में लग जाए कि उस चरित्र के माध्यम से वह किसी को दबा सकता है, गला घोंट सकता है और मैं पवित्र हूँ, मैं सन्त हूँ, मैं साधु हूँ—इसकी

भावना से दूसरे की छाती पर बैठ सकती है, इस अहंकार को दूसरे की फाँसी बना सकता है, इसकी पूरी सम्भावना है।

इसलिए महावीर अहिंसा की विधायक साधना का कोई प्रश्न ही नहीं उठाते। बात बिल्कुल दूसरी है उनके हिसाब से। उनके हिसाब से बात यह है कि मैं हिंसक हूँ, दूसरे को दुःख देने में मुझे सुख मालूम होता है; दूसरे के सुख से भी दु:ख मालूम होता है। यह हमारी स्थिति है, यहाँ हम खड़े हैं। अब क्या किया जा सकता है? ऐसे आचरण को क्षीण किया जाए जो दूसरे का अहित करता हो, और ऐसे आचरण को प्रस्तावित किया जाए जो दूसरे का मंगल करता हो। एक रास्ता यह है। इस रास्ते को मैं नैतिक कहता हूँ और नैतिक व्यक्ति कभी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हो सकता।

गांधी जी को मैं नैतिक महापुरुष कहता हूँ, धार्मिक महापुरुष नहीं। शायद उन जैसा नैतिक व्यक्ति हुआ भी नहीं। लेकिन वह नैतिक ही हैं। उनकी अहिंसा नैतिक तल पर है। महावीर नैतिक व्यक्ति नहीं हैं। महावीर धार्मिक व्यक्ति हैं। और धार्मिक व्यक्ति से मेरा क्या प्रयोजन है? धार्मिक व्यक्ति से मेरा प्रयोजन है ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी हिंसा को जाना-पहचाना और जिसने अपनी हिंसा के साथ कुछ भी नहीं किया, जो अपनी हिंसा के प्रति पूरी तरह ध्यानस्थ हुआ, जागृत हुआ, जिसने अपनी हिंसा की कुरूपता को पूरा-पूरा देखा और कुछ भी नहीं किया।

तो मेरी दृष्टि ऐसी है कि अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर की हिंसा को पूरी तरह देखने में समर्थ हो जाए और उसे पूरा पहचान ले, उसके अणु-परमाणुओं को पकड़ ले, उठने-बैठने चलने में, मुद्रा में जो हिंसा है उस सबको पहचान ले, जान ले, साक्षी हो जाए, विवेक से भर जाए तो वह व्यक्ति अचानक पाएगा कि जहाँ-जहाँ विवेक का प्रकाश पड़ता है हिंसा पर, वहाँ-वहाँ हिंसा विदा हो जाती है, उसे विदा नहीं करना होता। वह वहाँ से क्षीण हो जाती है, समाप्त हो जाती है। न उसे दबाना पड़ता है, न उसे बदलना पड़ता है। सिर्फ चेतना के समक्ष आते वह वैसे ही विदा हो जाती है जैसे सुबह सूरज निकले और ओस विदा होने लगे। वह ओसकण विदा होते हैं सूरज के निकलते ही, उन्हें विदा करना नहीं होता। उतने ताप को वह झेलने में असमर्थ हैं। चेतना का एक ताप है। महावीर जिसे तप कहते हैं वह चेतना का ताप है। अगर चेतना पूरी की पूरी व्यक्ति के प्रति जागरूक हो जाए तो व्यक्तित्व में जो भी कुरूप है वह रूपान्तरित होना शुरू हो जाएगा। उसे रूपान्तरित करना नहीं होगा।

कुछ दिन पहले एक घटना घटी। मेरे एक मुसलमान मित्र हैं। हाई कोर्ट के वकील हैं। जिस गाँव का मैं हूँ वह उसी गाँव के हैं। मेरे पास आए कोई साल भर हुआ। उन्होंने कहा कि बहुत वर्षों से सोचता हूँ कि आपसे जाकर बात करूँ। लेकिन नही आया क्योंकि जब भी मैं आप जैसे लोगों के पास जाता हूँ तो वे कहते हैं कि यह छोड़ो, वह छोड़ो। न मुझसे जुआ छूटता, न शराब छूटती, न मांस छूटता। बात वही अटक जाती है। कुछ भी नही छूटता। फिर मैं वही का वही रह जाता हूँ। फिर मैंने उनसे पूछा, 'आज आप कैसे आ गए?' उन्होंने कहा कि किसी के घर भोजन पर गया था और उन्होंने कहा कि आप तो कुछ छोड़ने को कहते नही। तो मैं सीधा यही चला आया हूँ। मैंने उनसे कहा कि मैं छोड़ने को क्यों कहूँगा? छोड़ने से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आप छोड़ो मत, जागो। आप कुछ देखने की कोशिश करो भीतर, कुछ निरीक्षण करो, कुछ होश मे भरो, कुछ मुर्छा को तोड़ो। उन्होंने कहा: क्या किया जा सकता है? क्या मुझे जुआ नहीं छोड़ना पड़ेगा? शराब नहीं छोड़नी पड़ेगी?

मैंने उनसे कहा कि आप जिस चेतना की स्थिति में हैं उसमें शराब अनिवार्य है। अगर एक शराब छोड़ेंगे दूसरी शराब पकड़ेंगे, दूसरी शराब छोड़ेंगे तीसरी शराब पकड़ेंगे। और इतनी किस्म-किस्म की शराबें हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। अधार्मिक शराबें हैं, धार्मिक शराबें भी हैं। एक आदमी भजन कीर्तन कर रहा है दो घंटे से और मूछित हो गया है। वह उतना ही रस ले रहा है भजन-कीर्तन में, वही रस मूर्छा का जो एक शराबी ले रहा है। मन्दिर में भी शराबी इकट्ठे होते हैं। वहा भी मूछित होने की तरकीबें खोजते हैं। एक आदमी नाच रहा है, ढोल-मजीरा पीट रहा है। उस नाच में, ढोल मजीरा पीटने में मूछित हो गया। अब वह शराब का ही मजा ले रहा है। बहुत किस्म की शराबें हैं।

मैंने उनसे कहा लेकिन चेतना अगर शराब पीने वाली है तो आप शराब बदल सकते हैं, शराब नहीं छूट सकती। चेतना बदले तो कुछ हो सकता है। मैंने उन्हें महावीर का एक छोटा सा सूत्र कहा। महावीर कहते हैं: उठो तो विवेक से, चलो तो विवेक से, बैठो तो विवेक से, सोओ तो विवेक से। विवेक का मतलब है कि चलते समय पूरी चेतना हो कि मैं चल रहा हूँ, बैठते समय पूरी चेतना हो कि मैं बैठ रहा हूँ, उठते समय पूरी चेतना हो कि मैं उठ रहा हूँ। बेहोशी मे कोई कृत्य न हो पाए, सोए-सोए कोई कृत्य न हो पाए। होशपूर्वक

जीना हो तो धीरे-धीरे भीतर के समस्त चित्त के प्रति जागना है और जागते ही रूपान्तरण शुरू हो जाता है। जागकर रूपान्तरण करना नही पड़ता है। बुद्ध जिसे सम्यक् स्मृति कहते हैं महावीर उसे विवेक कहते हैं, जीसस ने उसे अवेयरनेस कहा है, गुरजियफ ने उसे सैल्फ रिमैम्बिरंग कहा है। कुछ भी नाम दिया जा सकता है। लेकिन एक ही बात है हम सोए-सोए जागते हैं।

मैंने सुना है कि बुद्ध एक गाव से गुजर रहे है। एक मित्र से बात कर रहे हैं। एक मक्खी कंधे पर आकर बैठ गई है। बुद्ध ने बात करते हुए मक्खी उड़ा दी है। बात जारी रखी है और मक्खी उडा दी है। फिर रुक गए। मक्खी तो उड गई है, फिर रुक गए हैं। फिर दुबारा हाथ ले गए वहां जहा मक्खी थी, अब वह वहां नही है। साथी मित्र ने पूछा : आप क्या कर रहे है ? बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे बातचीत करने में लीन था और मैंने मक्खी को बिल्कुल मूर्छित भाव से उड़ा दिया जैसे कोई बेहोश उडाता हो। अब मैं होशपूर्वक उडा रहा हूं जैसा कि मुझे उडाना चाहिए था।

तो मैंने अपने मित्र को कहा कि जीवन की क्रियाओं में होशपूर्वक जीने का प्रयोग करो। छ' महीने बाद वह मेरे पास आए और मुझे कहा कि आपने मुझे धोखा दिया है। शराब पीनी मुश्किल होती चली जाती है क्योंकि दो बातें एक साथ चलनी असम्भव हैं। अगर मुझे होशपूर्वक जीना है तो मैं शराब नही पी सकता। और अगर होशपूर्वक नही जीना है तो मैं शराब पी सकता हूं। लेकिन अब होशपूर्वक जीने में जो आनन्द की अनुभूति शुरू हुई है वह शराब पीने से कभी नही मिली।

एक और बात उन्होंने मुझे कही कि एक अद्भुत अनुभव मुझे हुआ है कि जब मैं दुःखी था तो शराब दुख को भुला देती थी। इधर अभी महीनों निरतर जागने की कोशिश से सुख की एक धार भीतर बहनी शुरू हुई है, एक झरना भीतर फूटना शुरू हुआ है। शराब पीता हूं तो मैं भूल जाता हूं। शराब सिर्फ भुलाती है सुखी आदमी को सुख भुला देती है, दुःखी आदमी को दुःख भुला देती है और दुखी आदमी शराब खोजे, समझ में आता है। सुखी आदमी शराब कैसे खोज सकता है ? तो उन्होंने कहा कि मुश्किल हो गया है। मैंने कहा : मुश्किल हो जाए बात अलग, लेकिन मुझसे उसकी बात मत करना। आप जागने का, ध्यान का प्रयोग जारी रखें ?

मेरी दृष्टि में महावीर ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया। महावीर ने तो ध्यान का एक उपदेश दिया। उस ध्यान से जो भी गुजरा, वह अहिंसक हो गया। उस ध्यान से गुजरने वाले को अहिंसक हो जाना पड़ा। उस ध्यान से जो गुजरेगा वह अहिंसक हो ही जाएगा। अहिंसा की अलग से शिक्षा देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अब महावीर के पीछे चलने वाले लोग हैं। वे 'अहिंसा परमो धर्म.' की तख्तियां लगाए हुए बैठे हैं। वे बैठे रहेंगे तख्तियां लगाए हुए और अहिंसा चलती रहेगी। और वे अपने बच्चों को अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। वे सारी दुनिया में शोरगुल मचा रहे हैं कि अहिंसक हो जाना चाहिए सब को। और उन्हें शायद मूल सूत्र का पता ही नही है कि अहिंसक कोई होगा कैसे ? भीतर चित्त जागे तो जागे चित्त से हिंसा विसर्जित होती है। जागे हुए चित्त में हिंसा नहीं रह जाती। जागा हुआ चित्त हिंसा से मुक्त हो जाता है, हिंसा से मुक्त होना नही पड़ता। और तब जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है।

अहिंसा शब्द नकारात्मक है। हिंसा चली जाती है, जो शेष रह जाती है, वह अहिंसा है। ब्रह्मचर्य, सत्य विधायक शब्द हैं। अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य नकारात्मक शब्द हैं। यह सोचने जैसा है। असल में परिग्रह की वृत्ति विदा हो जाती है, तो जो शेष रह जाता है वह अपरिग्रह है। अपरिग्रह को सीधा नहीं साधा जा सकता। और कोई अगर अपरिग्रह को सीधा साधेगा तो वह परिग्रही हो जाएगा, अपरिग्रही नही। अगर कोई धन छोड़ेगा तो जितनी पकड़ उसकी धन के साथ थी, उतनी अब धन छोड़ा इस बात के साथ शुरू हो जाएगी।

मैं एक संन्यासी के पास ठहरा था। वह दिन में दो-तीन बार मुझसे कहे कि मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी है। चलते वक्त सांझ को मैंने कहा : लात आपने कब मारी ? उन्होंने कहा कोई तीस साल हुए। तो मैंने कहा कि जाते वक्त एक बात कह जाऊं। वह लात ठीक से लग नही पाई। नहीं तो तीस साल तक याद रखने की क्या जरूरत है ? लात लग ही नहीं पाई, बिल्कुल चूक गई। लाखो रुपए मेरे पास थे, यह भी अहंकार था। लाखो रुपए मैंने छोड़े, यह भी अहंकार है। और पुराने अहंकार से यह ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा जटिल और ज्यादा खतरनाक है। अगर कोई परिग्रह छोड़ेगा तो त्याग को पकड़ेगा।

मैं महावीर को त्यागी नही कहता हूं। महावीर ने कोई परिग्रह नहीं छोड़ा, इसलिए त्यागी का कोई सवाल नही है। महावीर का परिग्रह बिदा हो गया है।

जो शेष रह गया है वह अपरिग्रह है। कोई चोरी छोड़ेगा तो सिर्फ छोड़ा हुआ चोर होगा। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। भीतर चोरी जारी रहेगी। हाथ-पाँव बाँध लेगा, रोक लेगा अपने को छाती पर पत्थर रखकर कि चोरी नहीं करनी लेकिन भीतर चोर होगा। कोई चोरी करने से थोड़ी ही चोर होता है। लेकिन अगर कोई जागेगा और चोरी विदा हो जाएगी तो अचौर्य शेष रह जाएगा। अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह नकारात्मक है। क्योंकि कुछ विदा होगा तो कुछ शेष रह जाएगा।

और यह बड़े मजे की बात है कि अगर हिंसा विदा हो जाए, परिग्रह विदा हो जाए, चोरी विदा हो जाए—अगर यह तीनों विदा हो जाएँ तो अहिंसा, अचौर्य और अपरिग्रह की जो चित्तदशा होगी उसमें सत्य का उदय होगा। इन तीन के विदा होने पर सत्य का अनुभव होगा। ये द्वार बन जाएँगे और सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य को कोई खोज नहीं सकता। हमें पता ही नहीं कि वह कहाँ है। हम उस स्थिति में आ जाएँ जहाँ द्वार खुल जाए तो सत्य दिखाई पड़ेगा। सत्य होगा इन तीन के द्वार से उपलब्ध अनुभव और ब्रह्मचर्य होगा उसकी अभिव्यक्ति। वह जो सत्य मिल गया उस जीवन के सब हिस्सों में प्रकट होने लगेगा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। ये तीन बनेंगे द्वार और तीन में अहिंसा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह चोरी कैसे करेगा? क्योंकि चोरी करने में हिंसा है और जिस आदमी की हिंसा विदा हो गई है, वह कैसे संग्रह करेगा, क्योंकि सब संग्रह के भीतर चोरी है। इसलिए अगर हम बाकी दो को विदा भी कर दें तो तीन बातें रह जाती हैं : अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य। अहिंसा के दो हिस्से हैं—अचौर्य, अपरिग्रह।

अहिंसक चित्त में सत्य का अनुभव होगा और ब्रह्मचर्य उसका आचरण होगा। लेकिन यह अहिंसा समाधि से, ध्यान से उपलब्ध होती है। आप कह सकते हैं कि बहुत से ध्यानी लोग हुए हैं जो अहिंसक नहीं हैं। जैसे, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी मांसाहारी है। रामकृष्ण मछली खाते हैं और विवेकानन्द भी। तो विचार होता है कि रामकृष्ण जैसा व्यक्ति भी अगर ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होकर मछलियों से मुक्त नहीं होता है तो मामला क्या है? मेरी दृष्टि में महावीर का जो ध्यान है, उस ध्यान से गुजरने पर ही अहिंसा की उपलब्धि हो सकती है। वह जागने का ध्यान है। और रामकृष्ण का जो ध्यान है, वह जागने का नहीं, सो जाने का, मूर्छित हो जाने का ध्यान है। रामकृष्ण का ध्यान

ठीक से समझा जाए तो वह सिर्फ मूर्छा है। इसलिए रामकृष्ण तीन-तीन, चार-चार दिन बेहोश पडे रहते हैं। मुख से फेन गिर रहा है, आँखें बन्द हैं, हाथ पैर अकड गए हैं। मेरी दृष्टि में उनकी चेतना भी खो गई है। वह उसी हालत में हैं जिस हालत में कोई हिस्टीरिया में हो। और इसलिए उनके व्यक्तित्व में कोई अन्तर नही होगा। हिंसा जारी रहेगी। महावीर और बुद्ध की इस जगत् को जो सबसे बडी देन है वह इस भाँति के ध्यान का प्रयोग है। जिस प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा होती है और जिस ध्यान के प्रयोग का अनिवार्य परिणाम अहिंसा न होती हो, उस ध्यान के प्रयोग का अन्तिम परिणाम ब्रह्मचर्य भी नही हो सकता है क्योंकि काम वासना भी बहुत गहरे मे हिंसा का ही एक रूप है।

जिसके भीतर गाली उठती है वह गाली देता है, क्रोध आता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है, सहज है, जैसा है वैसा है। उसके बाहर और भीतर में कोई फर्क नही है। परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नही होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी जैसा बाहर होता है वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखण्डो व्यक्ति है जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। पाखण्डी व्यक्ति बाहर ज्ञानी जैसा होता है, भीतर अज्ञानी जैसा होता है। पाखण्डी का मतलब है भीतर अज्ञानी जैसा। उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है। और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, 'अहिंसा परमो धर्म.' की तख्ती लगाकर बैठता है, सच्चरित्रवान् दिखाई पडता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासन-बद्ध होता है। बाहर उसका कोई व्यक्तित्व नही।

कोई अहिंसा का अनुयायी नही हो सकता। कोई उपाय नही है। अहिंसा को आचरण से साधने कोई जाएगा तो अभिनय, पाखण्ड में पड़ जाएगा। सामने के द्वार से अहिंसक होगा, पीछे के द्वार से हिंसा जारी रहेगी। मिथ्या अहिंसा और भी खतरनाक है क्योंकि वह अहिंसा मालूम पडती है और अहिंसा नही है। फिर उपाय क्या है? फिर उपाय सिर्फ एक है क्योंकि अहिंसा है एक नकारात्मक स्थिति—हिंसा जहाँ नही है ऐसी स्थिति। और हिंसा में हम खडे हैं। हम क्या करें? दो ही उपाय हैं। या तो हम हिंसा से लडें या अहिंसक होने की कोशिश करें। कोशिश से साधी गई अहिंसा कभी भी अहिंसा नहीं हो सकती। क्योंकि कोशिश करने वाला हिंसक है। और हिंसक ने जो कोशिश की है उसमें हिंसा

मौजूद है। और हिंसक ने जो भी कोशिश की है, उसमें हिंसा प्रविष्ट हो जाएगी। फिर क्या करें ?

एक ही उपाय है : अपनी हिंसा के साक्षी बन जाने का। कुछ भी न करें, करने की बात ही छोड दें। मैं जैसा हूँ—हिंसक, क्रोधी, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी—जैसा भी मैं हूँ, मैं उसके प्रति जागा हुआ रह जाऊँ और इस स्थिति में रहने की कोशिश करूँ कि मैं जानूं जो भी हूँ, बदलने की फिक्र ही न करूँ, सिर्फ जानूं। बदलने की फिक्र में जान भी नही पाते हैं और अगर कोई जान ले तो बदल पाता है। ज्ञान ही रूपान्तरण है, ज्ञान ही क्रान्ति है। अपनी हिंसा को जान लेना अहिंसा को उपलब्ध हो जाना है।

इससे यह मतलब मत समझ लेना कि आपको अहिंसा का जो अनुभव होगा, वह नकारात्मक होगा। एक अर्थ में अहिंसा की स्थिति नकारात्मक है। हिंसा चली जाएगी, जो शेप रह जाएगा वह अहिंसा है। इस अर्थ में वह नकारात्मक है। लेकिन जब अहिंसा प्रकट होगी और सारे जीवन से उसकी किरणें फूट पडेंगी, उससे ज्यादा कोई विधायक अनुभूति नही है। इसलिए महावीर ने परमात्मा की बात ही बन्द कर दी है। क्योंकि अहिंसा का अनुभव हो जाए तो परमात्मा का अनुभव हो गया। कोई जरूरत न समझी उस बात की। अहिंसा का पूर्ण अनुभव परमात्मा का अनुभव है।

हिंसा विदा हो सकती है, विदा की नही जा सकती। दिया जल जाए तो अँधेरा विदा हो जाता है। ध्यान जग जाए तो हिंसा विदा हो जाती है।

ये थोडी सी बातें मैंने कही। मैं कोई पण्डित नहीं हूँ, न होना चाहता हूँ। भगवान् की कृपा से उस झझट में, भूल में पडने का कोई मौका नही आया। सौभाग्य है कि आप सब विद्वज्जनो ने शान्ति और प्रेम से भरी बातें सुनी। उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूँ और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

प्रश्न : आपने जो अहिंसा के सम्बन्ध में महात्मा गांधी और महावीर की दृष्टि को प्रस्तुत किया है, आप स्वयं हिंसक हैं या अहिंसक—अपनी सम्मति कहें।

उत्तर : मेरे कहने का क्या फर्क पडेगा। मैं तो यही कहूँगा कि मैं हिंसक हूँ। क्योंकि यह कहना भी कि मैं अहिंसक हूँ हिंसा हो जाएगी। तो यही समझें कि मैं हिंसक हूँ। और मेरे कहने से क्या पता चलेगा कि मैं क्या हूँ, क्या नही

हूं। इसे वातचीत के बाहर छोड़ा जा सकता है सहज ही और-जितना वातचीत के बाहर छोड दें उतना आसान होगा। मुझे नही समझना है आपको; अहिंसा को समझना है। और अहिंसा को समझना हो तो 'मैं' को बिल्कुल ही बाहर छोड देना चाहिए। न तो 'मैं' समझा जा सकता है, न समझाया जा सकेगा। क्योंकि 'मैं' तो बडी हिंसा हो जाएगी।

अभी-अभी दोपहर में मैं कह रहा था . एक व्यक्ति ने जाकर पूछा एक जेन फकीर से कि क्या आपको ईश्वर की उपलब्धि हो गई है। तो उस फकीर ने कहा कि अगर मैं कहूं कि उपलब्धि हो गई है तो जो जानते हैं वे मुझ पर हंसेंगे क्योंकि जिसे कभी खोया ही नही था उसकी उपलब्धि कैसी। अगर मैं कहूं कि मुझे उपलब्धि नही हुई तो तुम बिना कुछ जाने-समझे लौट जाओगे। और तब भी नुकसान होगा।

इससे क्या फर्क पडता है कि मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं हुई है। यह निपट मेरा मामला है। इससे क्या लेना-देना है। लेकिन अहिंसा के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कह रहा हूं उस सम्बन्ध में कुछ पूछेंगे तो अच्छा होगा अगर मेरे सम्बन्ध में कुछ पूछना हो तो मैं दुबारा आऊं तब फिर मैं अपने सम्बन्ध में बोलूं तो ठीक होगा।

प्रश्न : क्या महावीर से पहले इतने ऋषि-महर्षि हुए उन्होंने अहिंसा को नहीं समझा ?

उत्तर : मुझे पता नही ऋषि-महर्षि कही मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। समझा होगा, बहुत लोगों ने समझा होगा क्योंकि महावीर कोई शुरूआत नही है जगत् की और न महावीर कोई अन्त हैं। बहुत लोग उस दिशा में गए होंगे। असल में जो भी कभी गया होगा वह अहिंसा से गया होगा। लेकिन शायद हमारे पास ऐतिहासिक रूप से जो निकटतम आदमी है, वह महावीर है जिनके बाबत ज्यादा से ज्यादा हमें पता है।

महावीर के पहले भी अहिंसा को अनुभव करने वाले लोग रहे होंगे। लेकिन महावीर सबसे बडे स्पष्ट व्याख्याता हैं। फिर यह भी होता है कई बार कि कोई आदमी जान ले तो जरूरी नही है कि बता सके। मैं जाऊं और चांदनी रात देखूं, तारे देखूं, और लौट कर आऊं और आप मुझसे कहें कि एक चित्र बनाकर बता दें जो सौन्दर्य आपने देखा है। हो सकता है कि मैं न बना सकू क्योंकि रात की चादनी देखना एक बात है और चित्र बनाने की कला अलग

दूसरी बात आपने बहुत बढ़िया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का और साथ में यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा। बिल्कुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यहीं पड़ा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे? क्या उपाय है? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नही होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरूं तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतरना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नही तब तक तैर भी नही सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी में उतरना होगा। लेकिन पहली बार पानी में उतरना तड़फड़ाना ही होगा, तैरना नही हो सकता। असल में तैरना क्या है? तड़फड़ाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तड़फड़ाएंगे, फिर तड़फड़ाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तड़फड़ाना चला गया। तैरना तड़फड़ाने का ही व्यवस्थित रूप है। आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है,

तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नही है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा। लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नही होती, बात आपके समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीर्थंकर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नहीं करता फिर वह शास्त्र बन जाती है, नही तो किताब ही रह जाती है।

किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाती है वह शास्त्र है। जो किताब दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नहीं हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिएं, बड़ी अद्भुत हैं, बड़ी जरूरी हैं। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बड़े खतरनाक हैं। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो

बात है। बहुत लोगों ने अहिंसा देखी हो लेकिन महावीर ने जिस ढंग से बताई है, शायद किसी शिक्षक ने नहीं बताई है।

प्रश्न : आपने बताया कि जब भी अहिंसा को शब्द देते हैं वह वाद या सिद्धान्त का रूप धारण कर लेती है : वह अहिंसा हिंसा के रूप में परिणत हो जाती है। और आपने कहा कि विवेक द्वारा ही हम अपनी अनुभूति को जगा सकते हैं और कार्य का सम्पादन कर सकते हैं। तो मेरा प्रश्न यह है कि विशद विवेक का स्फुरण कैसे हो और जब आप बताएंगे कि विवेक के स्फुरण करने में यह पद्धति होगी, तो वह पद्धति शास्त्र का रूप धारण कर लेगी।

उत्तर : ठीक कहते हैं, बिल्कुल ठीक कहते हैं। आपने दो-तीन बातें पूछी जो कि महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि मैंने कहा कि अहिंसा को संगठित नही किया जा सकता। असल में सिर्फ घृणा के लिए संगठित होने की जरूरत है। शत्रुता के लिए संगठित होने की जरूरत है। प्रेम के लिए संगठित होने की जरूरत ही नही है। प्रेम अकेले ही काफी है। घृणा अकेले काफी नही है, इसलिए घृणा सगत बनाती है। दुनिया के सब संगठन घृणा के ही संगठन हैं, हिंसा के ही संगठन हैं। और इसलिए जब घृणा का मौका आ जाता है तो लोग संगठित हो जाते हैं। जैसे भारत पर चीन का हमला हुआ तो लोग ज्यादा सगठित हो जाएगे। हमला चला जाएगा संगठन कम हो जाएगा, क्योंकि हमला घृणा को पैदा करेगा, हिंसा को पैदा करेगा। असल में जो व्यक्ति प्रेम को उपलब्ध है वह अकेला ही काफी है। वह दूसरे को इकट्ठा करने नहीं जाता। दूसरे को इकट्ठा करने की कोई जरूरत ही नही। दूसरे को हम इकट्ठा तब करते हैं जब कुछ ऐसा करना हो जिसे अकेला करना कठिन हो जाए। प्रेम अकेले ही किया जा सकता है, अकेले ही बाटा जा सकता है। लेकिन संगठन की जरूरत है क्योंकि हमें बडी हिंसाए करनी हैं, बडी हत्याएं करनी हैं राष्ट्रों के नाम पर, सम्प्रदायों के नाम पर, धर्मों के नाम पर। तो जब भी संगठन होगा, उसके केन्द्र में हिंसा होगी, घृणा होगी चाहे वह संगठन किसी का भी हो। हो सकता है कि अहिंसकों का हो हिंसकों के खिलाफ। तो भी वह हिंसा ही होगी। संगठन मात्र हिंसात्मक होंगे। अहिंसात्मक संगठन का कोई अर्थ नहीं होता। अहिंसात्मक व्यक्ति अकेला ही काफी है। दस अहिंसात्मक व्यक्ति भी मिलकर बैठ सकते हैं लेकिन वे एक-एक ही होंगे। संगठन का कोई अर्थ नहीं है, यह मैंने कहा।

दूसरी बात आपने बहुत बढ़िया पूछी, वह यह कि स्फुरण कैसे हो विवेक का और साथ में यह भी पूछा कि मैं बताऊंगा तो फिर वह शास्त्र हो जाएगा। बिल्कुल ठीक है। अगर मेरे बताने के कारण आप उस पर चलेंगे तो आप शास्त्र पर चले। लेकिन अपने विवेक के कारण अगर आप उस पर चले तो शास्त्र यही पड़ा रह गया। जैसे मुझसे कोई पूछे कि तैरना कैसे ? क्या उपाय है ? तो मैं कहूंगा कि तैरने का कोई उपाय नही होता सिवाय तैरने के। लेकिन एक आदमी अगर कहे कि मैं नदी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख जाऊंगा क्योंकि बिना तैरना सीखे कैसे उतरू तो वह तर्कयुक्त बात कह रहा है। बिना तैरना सीखे उसे नदी में उतरना खतरे से भरा है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि जब तक उतरोगे नही तब तक तैर भी नही सकोगे। तैरना भी सीखना हो तो पानी में उतरना होगा। लेकिन पहली बार पानी में उतरना तड़फड़ाना ही होगा, तैरना नही हो सकता। असल में तैरना क्या है ? तड़फड़ाने का व्यवस्थित रूप है। पहले तड़फड़ाएंगे, फिर तड़फड़ाने में तकलीफ होगी तो व्यवस्थित हो जाएगे। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि तैरना आ गया, तड़फड़ाना चला गया। तैरना तड़फड़ाने का ही व्यवस्थित रूप है। आदमी पहले दिन पानी में पटकने से ही तैरता है। फिर बाद में जो विकास होता है, वह उसके अपने तैरने के अनुभव से होता है,

तो मैं आपको क्या कहूं कि विवेक कैसे जगे ? विवेक को जगाना हो तो विवेक करना होगा; तैरना सीखना है तो तैरना शुरू करना होगा। और कोई उपाय नहीं है। रास्ते पर चलते, खाना खाते, बात करते, सुनते, उठते, बैठते विवेकपूर्ण होना होगा। लेकिन ठीक आप पूछते हैं कि जो मैं कह रहा हूं और मेरी बात जब मैंने समझाई तो शास्त्र हो गई। मगर यह ध्यान में रखना जरूरी है कि बात समझाने से शास्त्र नही होती, बात आपके समझने से शास्त्र होती है। अगर मैंने कहा कि बात किसी तीर्थंकर ने कही है, किसी सर्वज्ञ ने कही है, और आपने कहा कि ऐसे व्यक्ति ने कही है जो जानता है और भूल नही करता फिर वह शास्त्र बन जाती है, नही तो किताब ही रह जाती है।

किताब और शास्त्र में फर्क है। जो किताब पागल हो जाती है वह शास्त्र है। जो किताब दावा करने लगती है वह शास्त्र बन जाती है। मैं किताबों का दुश्मन नही हूं, शास्त्र का दुश्मन हूं। किताबें तो रहनी चाहिएं, बडी अद्भुत हैं, बड़ी जरूरी हैं। किताबों के बिना नुकसान हो जाएगा। लेकिन शास्त्र बडे खतरनाक हैं। जब कोई किताब दावा करती है कि मैं परम सत्य हूं और जो

मेरे रास्ते से चलेगा वही पहुँचेगा, और जो मैंने कहा है, ऐसा ही करेगा तो पहुँचेगा अन्यथा नरक है, अन्यथा नरक की अग्नि में सड़ना पड़ेगा तब किताब शास्त्र हो गई। और जब कोई इसे इस तरह मान लेता है तो वह बाधक हो जाती है।

मैं जो कह रहा हूँ वह कोई शास्त्र नही है। मैं कोई प्रमाण नहीं हूँ। कोई आप्त वचन नही है मेरा। मैं कोई तीर्थंकर नही हूँ। मैं कोई सर्वज्ञ नही हूँ मैं एक अति सामान्य व्यक्ति हूँ। जो मुझे दिखता है वह आपसे निवेदन कर रहा हूँ। यह सिर्फ सवाद है। आपने सुन लिया, बड़ी कृपा है। मानने का कोई आग्रह ही नही है। लेकिन सुनते वक्त अगर आपने विवेक से सुना, अगर जागे हुए सुना और कोई चीज उस जागरण में आपको दिखाई पड गई तो वह चीज आपकी है, वह मेरी नही है। कल मैं उस पर दावा नही कर सकता कि वह मेरी है। अगर आपने होशपूर्वक सुना, विचारपूर्वक सुना, समझा, सोचा, खोजा और कोई बात आपको मिल गई तो वह आपकी है।

इसलिए सत्य कभी किसी को दिया नही जा सकता। मैं आपको कोई सत्य नही दे सकता। लेकिन मैं जो कह रहा हूँ, मैं जो बात कर रहा हूँ, उस बात करने के वक्त आप इतने जागे हुए हो सकते हैं, विवेक से भरे हुए हो सकते हैं कि कोई सत्य आपको दिखाई पड जाए। कई बार ऐसा भी होता है कि अज्ञानियो से भी सत्य मिल जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि ज्ञानी भी सत्य नही दे पाते।

मैंने सुना है कि बंगाल में एक फकीर हुआ, राजा बाबू उनका नाम था। वह हाइकोर्ट के मजिस्ट्रेट थे, जस्टिस थे, रिटायर्ड हुए थे, साठ साल के थे। सुबह के वक्त घूमने निकले हैं एक लकड़ी लेकर, रोज की आदत के अनुसार। एक मकान के सामने से निकले हैं। दरवाजा बन्द है। घर के भीतर कोई मां, कोई भाभी, किसी बेटे को, किसी देवर को उठा रही है। उसे पता भी नही कि कोई बाहर राजा बाबू नाम का बूढा आदमी जा रहा है। उसने भीतर अपने बेटे को कहा : राजा बाबू, उठो, अब बहुत देर हो गई, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे? और बाहर राजा बाबू चले जा रहे हैं, उन्हें एकदम सुनाई पडा : राजा बाबू उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया है, कब तक सोए रहोगे? वह छडी उन्होंने वहीं फेंक दी, दरवाजे पर नमस्कार किया उस स्त्री के लिए जिसको कि पता भी नही होगा क्योंकि वह तो घर के

भीतर थी। घर वापिस लौट आए। आकर कहा कि अब मैं जा रहा हूँ। तो घर के लोगो ने कहा कि कहा जाते हो। तो उन्होंने कहा राजा बाबू,उठो, सुबह हो गई, सूरज निकल आया, कब तक सोए रहोगे ? उन लोगों ने कहा : पागल हो गए हैं। क्या बातें कर रहे हैं ? तो उन्होंने कहा कि आज कुछ सुनाई पड़ गया, कुछ मिल गया। अब मैं जाता हूँ।

मैंने यह भी सुना है कि एक फकीर अपने गुरु के निवास पर बीस वर्षों तक रहा। उसे कुछ भी न मिला। सब समझाना व्यर्थ हो गया। फिर गुरु ने कहा कि अब तू समझना भी छोड क्योकि समझने से बीस साल में नही मिला तो अब तू समझना छोड दे। अब तेरा मन हो तो तू बैठ जा, न मन हो तो उठ जा। समझना हो तो समझ, न समझना हो तो न समझ, सोना हो तो सो जा। जो तुझे करना हो कर। अब तू समझना छोड़ दे। क्योकि समझना भी एक दिक्कत दे रहा है, क्योंकि समझना भी तो एक तनाव ले आता है। किसी का नाम भूल गया हो, खोजते हैं, खो जाता है फिर छोड देते हैं फिर चाय पीने लगते हैं, गड्ढा खोदने लगते हैं बगीचे में और अचानक ही वह नाम याद आ जाता है। समझना भी तनाव पैदा कर देता है।

उसने कहा : ठीक है, अब मैं समझना भी छोड़ता हूँ। उसी दिन वह दरवाजे के बाहर निकला, बाहर पीपल का वृक्ष है। सूखे पत्ते गिर रहे हैं। पतझड है। वह खडा हो गया, पत्ते गिर रहे हैं सूखे वह वापिस लौट कर पहुँचा। गुरु के पैर पकड लिए और कहा कि मैं समझ गया। गुरु ने कहा कि मैं तो थक गया समझा-समझा कर। तू अब तक नही समझा। उसने कहा : आज मैं समझने का ख्याल छोडकर बाहर द्वार पर जाकर खडा हुआ। पीपल के पत्ते गिर रहे हैं। पत्ते सूख गए हैं और गिर रहे हैं। मुझे वह सब दिख गया जो आपने बहुत बार समझाया। मुझे मृत्यु दिख गई और मैं मर गया उन पत्तों के साथ। अब मैं वह आदमी नही हूँ जो रोज आया करता था। अब मैं एक सूखा पत्ता हूँ। गुरु ने कहा कि अब तुझे मेरे पास आने की जरूरत भी नही है। अब बात खत्म हो गई है। पीपल ही तेरा गुरु है, उसी को नमस्कार कर और विदा हो जा। अब पीपल को पता भी नही होगा।

कैसे पता होगा ? मैं समझाऊं तो उससे आप नही समझ जाएंगे। आप खुद समझेंगे तो ही समझेंगे। और वह समझ सदा आपकी अपनी होगी, वह मेरी नहीं हो सकती। हाँ, मैं एक मौका, एक अवसर पैदा कर सकता हूँ समझाने

की कोशिश का। हो सकता है कोई उस वक्त जागा हुआ हो, उसे सुनाई पड़ जाए कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहेंगे। लेकिन यह शास्त्र नहीं बनता। महावीर की वाणी शास्त्र नहीं बनती अगर हम महावीर को सर्वज्ञ और तीर्थंकर न बनाते। बुद्ध की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम बुद्ध को भगवान् न बनाते। कृष्ण की वाणी शास्त्र न बनती अगर हम उन्हें भगवान् ने न बनाते। लेकिन हम बिना भगवान् बनाए रुक नहीं सकते क्योंकि बिना भगवान् बनाए हमें समझना पड़ेगा, भगवान् बनाने से झंझट उनकी तरफ हो जाती है। हमें समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती है।

हम शास्त्र को पकड़ लेते हैं, और पक्का कर लेना चाहते हैं कि महावीर आप्त हैं, उपलब्ध हैं, उनको ज्ञान मिल गया है, वह सर्वज्ञ हैं। अगर संदिग्ध हो तो हम फिर किसी और का खोजें। जीसस भगवान् के बेटे हैं, मुहम्मद पैगम्बर हैं, इस तरह हम पक्का विश्वास जुटा लेना चाहते हैं ताकि झंझट मिट जाए। फिर हम पकड़ लें। वह हमारा विवेक न जगाना पड़े।

विवेक से बचने के लिए हम शास्त्र को पकडते हैं। विवेक को जगाना हो तो पीपल के पत्ते भी जगा सकते हैं, जगत् की कोई घटना भी जगा सकती है, किताब भी जगा सकती है, किसी आदमी का बोलना भी जगा सकता है, किसी आदमी का चुप होना भी जगा सकता है। समझना हो तो चुप भी समझ में आती है, न समझना हो तो बोला हुआ सत्य भी समझ में नहीं आता।

मैं कोई पद्धति की बात नहीं कर रहा हूँ। विवेक कोई पद्धति नहीं हो सकती। विवेक का स्मरण आ सकता है। फिर आपको कूदना पड़ेगा तैरना पड़ेगा, तड़फड़ाना पड़ेगा। धीरे-धीरे आ जाएगा विवेक। जिस दिन आ जाएगा उस दिन आपको लगेगा कि किसी का दिया हुआ नहीं आया। किसी गुरु का दिया हुआ नहीं, किसी शास्त्र का दिया हुआ नहीं उस दिन आपको लगेगा कि मेरे ही भीतर सोया था जग गया है, मेरे भीतर सोया था जग गया हो था आ गया है, जो उपलब्ध था वही पा लिया है, जिसे कभी नहीं खोया था वही मिल गया है।

प्रश्न : पहला प्रश्न यह है कि समाज का अहिंसा से क्या सम्बन्ध है। दूसरा प्रश्न यह है कि महावीर ने अहिंसा या सत्य की दो ढाई हजार वर्ष पहले बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है। तीसरा प्रश्न यह है कि जो आप कहते हैं कि नैतिक अहिंसा अलग है और धार्मिक अहिंसा अलग

है, अगर आप दोनों मे से अहिंसा को हटा दें तो इसका मतलब यह है कि जब आप धर्म की बात पर आ जाते हैं तो यह नष्ट हो जाती है।

उत्तर : जो प्रश्न आपने पूछे हैं उनका समाधान मैं करूंगा तो नही होगा। समाधान आप खोजेंगे तो मिल जाएगा। मैं कोशिश कर सकता हूँ। पहली बात आप पूछते हैं कि आज के समाज के साथ अहिंसा का क्या सम्बन्ध है। समाज का अहिंसा से कभी सम्बन्ध नहीं था। समाज तो हिंसक है और हिंसा पर ही खडा है। अहिंसा का सम्बन्ध व्यक्तियों से है। अभी वह दिन दूर है जबकि सभी व्यक्ति अहिंसक हो जाएँगे और जो समाज होगा वह अहिंसक होगा। समाज का सम्बन्ध अभी अहिंसा से नही है, न अब तक कभी था। आगे सम्भावना है। कभी होगा, यह पक्का नही कहा जा सकता। व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन अगर व्यक्ति अहिंसा को उपलब्ध होते चले जाए तो समाज उनसे निर्मित होगा, वह धीरे-धीरे अहिंसक होता चला जाएगा। अभी तक अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं, अहिंसक समाज पैदा नहीं हुआ है। महावीर अहिंसक होंगे, जैन थोडे ही अहिंसक हैं ? बुद्ध अहिंसक होंगे, बौद्ध थोडे ही अहिंसक हैं ? अहिंसक व्यक्ति पैदा हुए हैं अब तक, अहिंसक समाज नहीं पैदा हुआ। व्यक्ति बढते चले जाएँगे और किसी दिन अहिंसक व्यक्तियो का पलडा भारी हो जायगा। अहिंसक व्यक्तियों से एक अहिंसक समाज की सम्भावना भी प्रकट होगी। अभी कोई आशा नही है जल्दी।

दूसरी बात आप पूछते हैं कि ढाई हजार साल पहले महावीर ने अहिंसा की जो बात कही उसका आज क्या मतलब हो सकता है ? कहा बैलगाडी का जमाना और कहा जेट का जमाना ? कहा महावीर को बिहार के बाहर जाना मुश्किल और कहा आदमी का चांद पर चला जाना ? बिल्कुल ठीक पूछते हैं आप। लेकिन इस बात का ख्याल नही है कि कुछ चीजें हैं जो न बैलगाडी पर यात्रा करती हैं और न जेट पर। कुछ चीजें हैं जिनका जेट से और बैलगाडी से कोई सम्बन्ध नही है। अन्तर्यात्रा के लिए न तो बैलगाडी की जरूरत है और न जेट की। अगर अन्तर्यात्रा में बैलगाडी की जरूरत होती तो महावीर की बात गलत हो जाती। अन्तर्यात्रा तो आज भी वैसी ही होगी जैसी ढाई हजार साल पहले होती थी और करोड वर्ष बाद भी जब कोई भीतर जाएगा तो वही विधि है बाहर को छोडने की और भीतर जाने की।

भीतर जाने में कभी कोई फर्क नही पडने वाला । और जो भीतर है उसमें भी समय से कोई फर्क नही पडता । वह समय के बाहर है । वह कालातीत है । इसलिए इससे कोई फर्क नही पडता । धर्म इसी अर्थ में सनातन है । धर्म का अनुभव सनातन है, सामयिक नही है । उसका काल से कोई सम्बन्ध नही है । जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होगा वह उसी सत्य को उपलब्ध होगा जिस सत्य को कभी कोई उपलब्ध हुआ या कोई कभी उपलब्ध होगा । दो सत्य नही हैं । सत्य न नया है, न पुराना है । सत्य चिरंतन है, वही है । उसे पाने के लिए हमारा मन बडे अधैर्य में है । हम चाहते है कोई सस्ती तरकीब, कोई ऐसी तरकीब कि एक गोली खा लें और आत्मज्ञान उपलब्ध हो जाए । कोई ऐसी तरकीब कि एक बटन दबाए और आत्मा उपलब्ध हो जाए । हम इस फिराक में हैं । क्योंकि असल में शायद हमें आत्मा को उपलब्ध करने की कोई अभीप्सा ही नही है । सारी दुनिया में आदमी चाहता है कि सब कुछ अभी बन जाए, एकदम अभी हो जाए । लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं जो अभी अगर करना चाहेंगे तो कभी न होगी क्योकि अभी करने वाला चित्त इतना तनावग्रस्त होता है कि अभी नहीं कर सकता ।

एक छोटी सी कहानी से समझाऊ । कोरिया में भिक्षुओं की एक कहानी है । एक वृद्ध भिक्षु ने अपने जवान भिक्षु के साथ एक नदी को पार किया है । नाव से उतरे हैं, दोनो के ऊपर ग्रन्थो का बोझ है जैसा भिक्षुओ के ऊपर होता है । बोझ को लेकर उतरे हैं, जल्दी से केवट से पूछा है कि गांव कितनी दूर है क्योंकि हमने सुना है कि सूरज ढलने पर गाव के दरवाजे बन्द हो जाते हैं । सूरज ढलने के करीब है । हम पहुँच पाएंगे या नही । रात तो न हो जाएगी । जंगल है, अंधेरा है, खतरा है । केवट से नाव को बाधते हुए धीरज से कहा कि अगर धीरे-धीरे गए तो पहुँच भी सकते हो । लेकिन अगर जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है । उन दोनो ने जब यह बात सुनी तो कहा कि यह तो पागल आदमी है, इसकी बातों में पडना तो झझट का काम है, भागो, क्योंकि यह कह रहा है कि धीरे-धीरे गए तो पहुँच भी सकते हो, जल्दी गए तो कोई पक्का नहीं है । इस आदमी से क्या पूछना ? दोनो भागे ।

सूरज ढलने लगा है और वे भाग रहे हैं । अंधेरा होने लगा है, अंधेरा रास्ता है, पहाडी रास्ता है, अनजान हैं । बूढा आदमी जो है, वह गिर पडा है, घुटने टूट गए हैं । वह केवट नाव बाध कर पीछे आया है और कह रहा है कि मैंने कहा था, मेरा बहुत बार का अनुभव है, जो धीरे गए हैं वे पहुँच गए हैं, वे

जल्दी के कारण नहीं पहुंच पाए हैं। एक चित्त की अवस्था है : जल्दी ! अभी ! यह विक्षिप्त चित्त की अवस्था है। पश्चिमी देशों में चित्त जल्दी में है, इतनी जल्दी में कि वह भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। भीतर प्रवेश के लिए चाहिए अत्यंत शात धैर्य वह अभी भी हो सकता हैं, ऐसा भी नही है कि जन्मो के बाद ही होगा अगर जन्मो के बाद की प्रतीक्षा हो तो अभी हो सकता है। और अभी करना हो तो जन्मों तक प्रतीक्षा भी करनी पड सकती है।

आखिरी बात आपने यह पूछी है कि नैतिक अहिंसा मिथ्या अहिंसा है, सच्ची अहिंसा नहीं है। नैतिक अहिंसा के पीछे हिंसा मौजूद रहेगी। और एक धार्मिक अहिंसा है जो अहिंसा है इस अर्थ में कि वहा से हिंसा विदा हो गई है। तो आपने कहा कि इसका मतलब तो यह हुआ कि धर्म अनैतिक है। हा, एक अर्थ में यही मतलब हुआ। अनैतिक के दो रूप हैं . एक तो नीति से नीचे और एक नीति से ऊपर। दोनों अनैतिक हैं। जो नीति से ऊपर उठते हैं वही धर्म को उपलब्ध होते हैं। नीचे भी उतरते हैं लोग। उनको हम अनैतिक कहते हैं। अनैतिक शब्द ठीक नही मालूम पडता। इसलिए कहना चाहिए अतिर्नैतिक।

धर्म अतिनैतिक है, वह नैतिक नही है। पापी भी अनैतिक है, वह नीति से नीचे उतर आया, उसने खुलकर हिंसा करनी शुरू कर दी। वह पापी है। नैतिक वह है जिसने हिंसा भीतर दबा ली और अहिंसा का बाना पहन लिया। यह सज्जन है, यह नैतिक है। धार्मिक वह है जिसकी हिंसा बिदा हो गई है और अहिंसा ही शेष रह गई है। यह अतिनैतिक है, यह भी अनैतिक है। यह भी नीति के पार चला गया। इसको भी नैतिक नही कहा जा सकता।

महावीर की, बुद्ध की या कृष्ण की वाणी नैतिक नही है, अतिनैतिक है और इसलिए जब पश्चिम में पहली बार भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद शुरू हुआ तो पश्चिम के विचारकों को तकलीफ मालूम पडी कि इनमें नीति का तो कोई उपदेश ही नही है। उपनिषदो के पूरे अनुवाद हो गए लेकिन उन्हें मालूम हुआ कि कही कोई नीति का उपदेश ही नही है। ऐसा होना ही चाहिए। धर्म तो नीति से बहुत ऊपर की बात है। सन्त सज्जन से बहुत भिन्न बात है। सज्जन थोपा हुआ दुर्जन है। भीतर मौजूद है दुर्जनता। ऊपर सज्जनता है। सन्त वह है जिसके सज्जन, दुर्जन दोनों विदा हो गए हैं। वहाँ कोई भी नही है। न नीति है, न अनीति है। वहां सब शाति है।

प्रश्न : आपने कहा कि बाह्य आचरण से सब हिंसक हैं। इसके साथ-साथ आपने कहा कि चूंकि रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द मांस खाते थे,

इसलिए वे अहिंसक नहीं थे। साथ ही साथ आपने कहा कि बुद्ध और महावीर अहिंसक थे। बुद्ध तो मांस खाते थे, वह अहिंसक कैसे थे ?

उत्तर : यह बात आपने अच्छी पूछी। मेरा मानना है कि आचरण से अहिंसा उपलब्ध नहीं होती। मैंने यह नही कहा कि अहिंसा से आचरण उपलब्ध नही होता। इसके फर्क को समझ लीजिए आप। हो सकता है कि मैं मछली न खाऊ। लेकिन इससे मैं महावीर नही हो जाऊंगा। लेकिन यह असम्भव है कि मैं महावीर हो जाऊ और मछली खाऊं। इस फर्क को आप समझ लें। आचरण को साधकर कोई अहिंसक नही हो सकता लेकिन अहिंसक हो जाए तो आचरण में अनिवार्य रूपान्तरण होगा।

दूसरी बात यह कि मैंने बुद्ध और महावीर को अहिंसक कहा लेकिन बुद्ध मांस खाते थे। बुद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाते थे। उसमें कोई भी हिंसा नहीं है। लेकिन महावीर ने उसे वर्जित किया किसी सम्भावना के कारण। जैसा कि आज जापान में है। सब होटलो के, दूकानो के ऊपर तख्ती लगी हुई है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है। अब इतने मरे हुए जानवर कहा से मिल जाते हैं, यह सोचने जैसा है। बुद्ध चूक गए, बुद्ध से भूल हो गई। हालांकि मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं है क्योकि हिंसा का मतलब है कि मार कर खाना। मारा नही है तो हिंसा नही है। लेकिन यह कैसे तय होगा कि लोग फिर मरे हुए जानवर के नाम पर मारकर नही खाने लगेंगे। इसलिए बुद्ध से चूक हो गई है और उसका फल पूरा एशिया भोग रहा है।

बुद्ध की बात तो बिल्कुल ठीक है लेकिन बात के ठीक होने से कुछ नहीं होता किन लोगो से कह रहे है, यह भी सोचना जरूरी है। महावीर की समझ में भी आ सकती है यह बात कि मरे हुए जानवर का मास खाने में क्या कठिनाई है। जब मर ही गया तो हिंसा का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जिन लोगों के बीच हम यह बात कह रहे हैं, वह कल पीछे के दरवाजे से मारकर खाने लगेंगे। वह सब सज्जन लोग हैं, वह सब नैतिक लोग हैं, बड़े खतरनाक लोग हैं। वह रास्ता कोई न कोई निकाल ही लेंगे वह पीछे का कोई दरवाजा खोल ही लेंगे। मैं बुद्ध और महावीर दोनों को पूर्ण अहिंसक मानता हूं। बुद्ध की अहिंसा में रत्ती भर कमी नही है लेकिन बुद्ध ने जो निर्देश दिया है, उसमें चूक हो गई है। वह चूक समाज के साथ हो गई है। अगर समझदारो की दुनिया हो तो चूक होने का कोई कारण नही है।

एक मित्र यह पूछते हैं कि विवेक के लिए विवेक के प्रति जागना क्या अपनी अविवेक बुद्धि के साथ प्रतिहिंसा न होगी। फिर आप मेरे विवेक का मतलब नही समझे। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि विवेक से अविवेक को काटें। अगर काटें तो हिंसा होगी। मैं तो यह कह रहा हूँ कि आप सिर्फ विवेक में जागें। कुछ है जो कट जाएगा, कट जाएगा इस अर्थ में कि वह था ही नही, आप सोए हुए थे इसीलिए था, अन्यथा वह गया। कटेगा भी कुछ नही, अंधेरा कटेगा थोडे ही दिए के जलाने से। इसलिए अंधेरे के साथ कभी भी हिंसा नही हुई है। वह नही रहेगा बस।

विवेक जगेगा और अविवेक चला जाएगा। इसमें मैं हिंसा नही देख पाता हूँ जरा भी। आप यह कहते हैं कि यह तो ठीक दिखाई पडता है कि दिए को जलाया और अंधेरा चला गया। इसको हम सच मान सकते हैं •क्योंकि यह हमारा अनुभव है। दूसरे को कैसे सच मानें? मैं कहता ही नही कि मानें। अनुभव हो जाएगा तो मान लेंगे। इसको मैं कहता भी नही कि मानें मैं कहता हूँ कि आप प्रयोग करके देखें। यदि संशय सच में ही जगा है तो प्रयोग करवा कर ही रहेगा। तभी संशय सच्चा है। तो प्रयोग करके देख लें। विवेक जग जाए और अगर अहिंसा रह जाए तो समझना कि मैं जो कहता था, सत्य नही कहता था। लेकिन अब तक ऐसा नही हुआ है और न हो सकता है।

परिशिष्ट (२)

ध्यान

गहरे ध्यान की पहली जरूरत तो यह है कि उसका स्मरण जितने ज्यादा समय तक रह सके उतना ही गहरा हो सकता है। एक सरल सी प्रक्रिया पर रोजदिन भर ख्याल रखें। चलते उठते बैठते सोते जब तक ख्याल रहे स्वास पर ख्याल रहे, पूरे वक्त स्मृति स्वास पर रहे कि स्वांस भीतर जा रहा है तो हमारी स्मृति भी उसके साथ भीतर जाए, बोध भी कि स्वास भीतर गया। स्वास बाहर जा रहा है तो बोध भी स्वांस के साथ बाहर जाए। आप स्वास पर ही तैरने लगें, स्वांस पर ही चेतना की नाव को लगा दें—बाहर जाए तो बाहर, भीतर जाए तो भीतर। स्वास के साथ ही आपका भी कम्पन होने लगे और इसे बिल्कुल न भूलें कभी। जब भी भूल जाएं और जब से याद आए, फौरन फिर शुरू कर दें। घूमने गए हैं, बगीचे में गए हैं, कहीं भी गए हैं, कार में बैठे हैं तो इसको नहीं छोड़ देना है। इसको सतत ही स्मरण रखें। तो एक तीन-चार दिन में स्मरण टिकने लगेगा और जैसे-जैसे स्मरण टिकने लगेगा वैसे-वैसे ही आपका चित्त शांत होने लगेगा। ऐसी शांति जो आपने कभी नहीं जानी होगी क्योंकि जब चित्त पूर्ण स्वांस के साथ चलने लगता है तो विचार अपने आप बन्द होने लगते हैं। विचार का उपाय नहीं रहता क्योंकि ये दो बातें एक साथ नहीं हो सकती। स्वास पर चित्त होगा तो विचार बन्द होंगे और विचार पर चित्त जाएगा तो स्वास पर नहीं रहेगा। दोनों बातें एक-साथ नहीं हो सकतीं। यह असम्भव है। इसलिए मैं स्वास पर ध्यान रखने के लिए कह रहा हूं ताकि विचार वहां खो जाएं।

विचार सीधे हटाने तो बहुत कठिन हैं क्योंकि वह तो दबाना हो जाता है। यहां हम हटा नहीं रहे विचारों को। विचारों से कोई सम्बन्ध ही नहीं। हम तो अपनी पूरी चेतना को दूसरी जगह लिए जा रहे हैं और चूंकि चेतना वहां होती जहां विचार हैं इसलिए उनको हट जाना पड़ता है। यानी हम किसी आदमी को यह नहीं कह रहे कि तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है। तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है। तुम भागो यहां से।

और उस आदमी को कमरा अच्छा लग रहा है। सिर्फ हम उसको यह कहते हैं कि बाहर बगिया है, बड़े अच्छे फूल लगे हैं ? आते हो क्या ? हम उससे कमरा छोड़ने की बात ही नही कर रहे। कह रहे हैं बाहर फूल हैं, बगिया है, सूरज निकला है, आते हो क्या ? हम बाहर आने का निमंत्रण दे रहे हैं। कमरा छोड़ने का आग्रह नही कर रहे। बाहर आ जाएगा तो कमरा छूट जायगा। इसलिए कमरे की हमें चिन्ता नही करनी है। तो विचार छोड़ने का ख्याल ही नहीं करना है। स्वास पर ध्यान चला जाए तो विचार छूट जाते हैं क्योंकि स्वास बिल्कुल दूसरा तल है, जहा विचार नहीं हैं। और विचार एक दूसरा तल है जहा स्वास का स्मरण नही हो सकता। तो यह बिल्कुल ही विरोधी प्रक्रियाए हैं। और अगर एक तल पर ले जाते हैं तो दूसरे से अपने-आप मुक्ति हो जाती है।

तो पूरे समय, ऐसा नहीं कि कभी थोड़ी बहुत देर, क्योंकि तब फिर गहरा नही हो पाएगा तो पूरे समय स्वांस पर ध्यान रखें। सुबह उठें तो पहला स्मरण स्वांस का; रात सोएं तो अन्तिम स्मरण स्वांस का। तो अपने-आप आपका बोलना कम हो जायगा। क्योंकि जैसे आप बोलेंगे, आपका ध्यान स्वास से हट जाएगा फौरन। इसलिए मैं मौन रहने के लिए भी नही कहता। क्योंकि ये दोनो बातें एकसाथ नही चल सकती। आप बोले कि स्वास से ध्यान गया। स्वांस का ध्यान रखना है तो बोलना बंद करना होता है, अपने-आप हो जाता है। तो कम बोलना पड़ेगा। बहुत कम बोलिए। लेकिन अक्सर होता क्या है ? इतनी शांत जगह में भी आकर जब हम बातें करते हैं तो शांत जगह विलीन हो जाती है और शांति का जो प्रभाव है वह हममें प्रवेश नहीं कर पाता। बातो की हम दीवार खड़ी रखते हैं। जैसे कि आप बैठ गए आकर कमरे में, बात करने लगे तो आप भूल जाएगे कि आप श्रीनगर में हैं, कि वह डल लेक है, पहाड़ी है, सब गायब। वह जो बातों का तल है, वह आपको सब भुला देगा। तो जैसे आप बम्बई में होते हैं, दिल्ली में होते हैं वही हो जायगा। उसमें कोई फर्क नही पड़ता।

तो बातचीत से बचें और ध्यान स्वास पर ले जाएं। बातचीत अपने आप क्षीण हो जाएगी। यदि हम चाहते हैं कि पन्द्रह दिन में धीरे-धीरे ऐसा हो जाए तो अकारण, व्यर्थ, फिजूल बातचीत न करें तभी ध्यान गहरा होगा। मैं यह नहीं कर रहा हूं कि बोलो मत लेकिन बोलो वही जो जरूरत का है, काम का है, बाकी चुप। और चुप इसलिए कि ध्यान स्वांस पर रहे। थोड़ा एकान्त में भी जाएं जब मौका मिल जाए। साथ मत ले जाएँ किसी को क्योंकि जब दूसरा

साथ होता है तो ध्यान दूसरे पर होता है। बडी सूक्ष्म बात है। अगर ख्याल करे कि दूसरा मौजूद है तो आप उसको भूल नही सकते। इस कमरे में आप अकेले बैठे हैं और इस कमरे में एक आदमी को और लाकर बिठा दिया और आपसे कहा कि आपको कोई मतलब नही, आपको जो करना हो करिए। आप चाहे किताब पढो और चाहे आप कुछ भी करो। वह आदमी यहा मौजूद है। आप भूल नहीं सकते और आपकी चेतना सतत उसके होश से भरी रहेगी। और उसको अगर आप भूल गए हो तो पत्नी बहुत बुरा मानेगी। पति को अगर पत्नी भूल गई हो तो पति बुरा मानता है। असल में हम बुरा ही तब मानते हैं जब कोई हमारा हमें भूलता है। उसी सैकेंड हम बुरा मानते हैं। क्योकि हमारी पूरी आकाक्षा दूसरे का ध्यान हम पर हो, यह बनी रहती है और जिसको हम प्रेम वगैरह कहते हैं, वह कुछ नही है, वह एक दूसरे पर ध्यान देने का सुख है और कुछ नहीं सिवाय कि दूसरा मुझे याद रखे। इसके कारण हैं बहुत गहरे। कारण यह है कि हमको अपना तो कोई स्मरण नहीं। तो हम अपने अस्तित्व को दूसरे को स्मरण कराकर ही अनुभव कर पाते हैं। और कोई उपाय ही नही। अगर दूसरा भूल गया तो हम गए।

समझ लीजिए कि आप यहा हैं और आपके सब मित्र भूल गए तो आपका दुनिया में क्या रह गया ? आप गए। आपका अस्तित्व ही खत्म हो गया। आप हो ही नही फिर। दीपचंद पन्द्रह दिन से यहा हैं। और दीपचद जी को सारे लोग भूल गए। दीपचद कही जाता है, कोई नमस्कार नही करता। कोई नही कहता : कहो, कैसे हो ! कोई नही पूछता, कोई फिक्र नही करता, कोई देखता, ही नही उसकी तरफ, कोई ध्यान ही नही देता तो दीपचंद एकदम मिट गए। क्योकि दीपचद अपने भीतर तो कुछ हैं ही नही। एक ध्यान का ही जोर है जो कुछ है। इसलिए जो ध्यान देता है वह प्यारा मालूम पडता है, जो नही देता वह दुश्मन मालूम पडता है, जो मुंह फेर लेता है वह दुश्मन है, जो पास आ जाता है वह मित्र है और हमारा सारा सम्बन्ध उसी पर खडा है।

पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेयसी, मित्र-मित्र, बाप-बेटे, सब उसी पर खडे हैं कि ध्यान दो। अगर बाप को लगता है कि बेटा ध्यान नहीं दे रहा है उसकी तरफ तो वह नाखुश होता है। बेटे को लगता है कि बाप ध्यान नहीं दे रहा है तो वह नाखुश होता है। लोग बीमार पड़ते हैं इसलिए कि दूसरा ध्यान दे। क्योकि अगर वैसे ध्यान नही मिलता तो पत्नी बीमार पड गई। अब तो पति को ध्यान देना पडेगा। अब तो बैठे रहो छुट्टी लेकर, दफ्तर छोड कर। स्त्रियों को तीस

प्रतिशत से ज्यादा बीमारियां सिर्फ ध्यान की बीमारियां हैं। जैसे इनको लगा कि ध्यान नहीं दिया जा रहा है, ये बीमार पड़ गईं। बस और कोई उपाय नही है उनके पास। ये कैसे आपका ध्यान आकृष्ट करें? जिन बच्चों को मां का प्रेम नही मिलता वे निरन्तर बीमार पड़ते हैं, बीमार पड़ने का और कोई कारण नही है। मां की कमी नही, ध्यान की कमी है। मां की कोई बात नही, मां से ज्यादा ध्यान कोई नही दे पाता। इसलिए कि सब कमी हो गई। नर्स रख दो तो वह उनको दूध पिला देती है, ध्यान नही देती है। उसका ध्यान रहता है कि उसको पांच बजे जाना है। बच्चे को कपड़ा नहीं चाहिए, कपड़े से ज्यादा ध्यान चाहिए।

ध्यान बोझिल है बहुत गहरा, वह न मिले तो चूक हो जाती है। इसलिए दूसरे को साथ न ले जाएं क्योंकि वह मांग करता है पूरे वक्त कि आप ध्यान दो और आप भी मांग करते हो कि वह ध्यान दे। और यह सौदा साथ में चलता है, इसलिए ध्यान दोनो को देना पड़ता है। तो अकेले हो जाएं थोड़ी देर को और जहां भी जाएं ऐसा ख्याल करें कि अकेले हैं हम, जैसा कोई दूसरा है ही नहीं साथ। इसको थोड़ा ख्याल करेंगे तो ही आप स्वास पर ध्यान दे पाएंगे। नहीं तो दूसरा मिल गया तो गया मामला।

स्वास पर पूरा वक्त ध्यान रखें और घंटा, आधा घंटा कभी भी एकान्त में बैठ कर ध्यान रखें। आंखें बंद कर लें और स्वास पर ही ध्यान रखें। क्योंकि बाहर चलते हैं, काम करते हैं, बार-बार चूक हो जाती है। पैर में कांटा गड़ गया है तो ध्यान कहां स्वांस पर रहा? ध्यान तो कांटे पर चला गया। प्यास लगी तो ध्यान पानी पर चला जाएगा। एक घंटे के लिए कही एकान्त मिल जाए तो वहां बैठ जाएं। रात बहुत बढ़िया होगी। कपड़े वगैरह पहनकर कहीं भी दीवार से टिक जाएं और बैठ जाएं और पूरा घंटा स्वांस में ही बिता दें। तो इन पन्द्रह दिनों में उतना बड़ा काम हो जाएगा जो आप अकेले पन्द्रह वर्षों में नही कर पाएंगे। हो सकता है कि इसमें दो चार घटनाएं घटें, उनकी चिन्ता नही करनी है।

जैसे स्वांस पर जितना ध्यान देंगे नीद कम हो जाएगी। उसकी जरा भी चिन्ता न करें। जितनी देर नीद खुली रहे बिस्तर पर ही स्वांस पर ध्यान रहे। चार-पांच दिन स्वांस पर ध्यान रखने से नीद उड़ भी जा सकती है। उस पर जरा भी चिन्ता न करें। क्योंकि स्वांस पर ध्यान रखने से जो काम होता है, वह पूरा हो जाता है, विश्राम मिल जाता है। नींद दो तरह से खत्म होती है।

तनाव से भी और विश्राम से भी। चिन्ता से भी नींद खत्म होती है क्योंकि चिन्ता इतना तनाव से भर देती है कि मस्तिष्क शिथिल ही नहीं हो पाता तो नींद खत्म हो जाती है। और अगर कोई ध्यान का प्रयोग करे तो चित्त इतना शांत हो जाता है कि नींद से जो शांति की जरूरत थी वह पूरी हो जाती है। इसलिए नींद का कोई कारण नही रह जाता। वह विदा हो जाती है। तो उसका ध्यान नही करेंगे, जरा भी फिक्र नही करेंगे।

और कुछ अजीब-अजीब अनुभव हों सकते हैं तो उन पर भी चिन्ता नहीं करेंगे। वे अलग-अलग सबको हो सकते हैं। एक से होते भी नह। इसलिए एक घटे का दोपहर को वक्त दिया है कि वैसा कोई अनुभव हो तो मुझसे अलग बात कर लें और उसकी बात किसी दूसरे से आप मत करें। क्योंकि दूसरा सिर्फ हसेगा और आपको पागल समझेगा क्योकि वैसा अनुभव उसको नही हो रहा है। इसलिए उसको दूसरे से कहना ही मत कभी। क्योंकि वह सबको अलग-अलग होता है। हो सकता है स्वांस पर ध्यान देते समय किसी को एकदम ऐसा लगे कि उसका शरीर बहुत बडा हो गया है और एकदम फैल गया है, विस्तार हो गया है उसके शरीर का और वह एक दम घबडा जाए कि यह क्या हो गया, अब उठ सकेंगे कि नही उठ सकेंगे। इतना भारी हो जाए कि एकदम पत्थर हो जाए, इना हल्का हो जाए कि ऐसा लगे कि जमीन से ऊार उठ गया है, जमीन और हमारे बीच फासला हो गया है, मैं ऊपर उठा जा रहा हूं, मैं लौट पाऊगा या नही लौट पाऊंगा। कुछ भी लग सकता है।

एकदम स्वास पर ध्यान देते-देते अचानक लग सकता है कि स्वांस डूबी जा रही है और कही मैं मर तो नही जाऊंगा। गहन अंधकार का अनुभव हो सकता है, तेज चमकती बिजलियो का अनुभव हो सकता है। सुगन्ध अनुभव हो सकती है, कुछ भी हो सकता है, बहुत तरह की बातें हो सकती हैं तो उनको चुपचाप खुद ही अपने भीतर रखें, किसी से कहें ही नहीं। जब मैं आपको अलग मिलूगा दरवाजा बद करके तो आप मुझको कहें। और मुझसे कहकर फिर आप दुबारा उसकी किसी से बात मत करें। उसके कई कारण हैं। एक तो दूसरा कभी उस पर विश्वास नही कर सकता, कभी नही करेगा क्योंकि वैसा उसको हो नही रहा है। और वह हँसेगा और उसकी हंसी आपको नुकसान पहुँचाएगी, बहुत गहरा नुकसान पहुँचाएगी।

दूसरी बात है कि हमें जो अनुभव होने हैं, अगर हम उनकी बात करें तो वह फिर दुबारा नही होते क्योकि वे होते है अनायास और जब हम उनकी बात

कर देते हैं तो फिर नहीं होते। और भी एक बड़े मजे की बात है कि ये जो गहरी अनुभूतियां हैं उनको बिल्कुल रहस्य की तरह छिपाना चाहिए। नहीं तो ये बिखर जाती हैं। उनमें भी बड़ी ताकत है। जैसे कि हम तिजोरी में धन छिपा देते हैं और जैसे कि हम कपड़े पहनते हैं और सूरज की गर्मी को भीतर रोक लेते हैं, सर्दी पड़ रही है तो हम कपड़े पहने हुए हैं इसलिए कि सर्दी हमारी गर्मी को खींच लेगी बाहर और शरीर मुश्किल में पड़ जाएगा। तो पूरे वक्त हमारा शरीर बाहर के सम्पर्क में अपनी गर्मी को खो रहा है, अपनी शक्ति खो रहा है। जब बहुत गहरी अनुभूतियां अन्दर होती हैं तो एक खास तरह की शक्ति पैदा होती है उन अनुभवों के साथ। अगर आपने बात की तो वह तत्काल बिखर जाती है, खो जाती है। तो उसकी बात ही नहीं करना। निकटतम सम्बन्धियों से भी बात मत करना, पत्नी से भी नहीं कहना। उसको बिल्कुल अपने अन्दर छिपा लेना ताकि वह बढ़े, गहरी हो और गहरे अनुभवों में ले जाए। इसलिए उसकी बात मत करना। और फिर एक-एक अलग-अलग के साथ बात करूँगा कि उसे कैसा लग रहा है। यह जो साधारण था वह मैंने कह दिया है।

लेकिन श्वास पर ध्यान केन्द्रित करना बहुत गहरा प्रयोग है। 'मैं कौन हूँ' भी बहुत गहरा प्रयोग है। लेकिन वह विचार की दिशा से निर्विचार में जाने की कोशिश है। यह विचार ही है कि 'मैं कौन हूँ' और यह विचार की ही इतनी तीव्रता में जाना है कि जाकर वह उतार दे आपको निर्विचार में। तो 'मैं कौन हूँ' में कुछ लोगों को तनाव भी हो सकता है; परेशानी भी हो सकती है। लेकिन अभी जो मैंने प्रयोग बताया है इसमें किसी को कोई तनाव नहीं, कोई परेशानी नहीं।

और मैं हर एक तरह की विधियों की बात करता हूँ, सिर्फ इस कारण कि बहुत तरह के लोग हैं, न जाने किसको कौन-सी विधि कब पकड़ में आ जाए। तो जिसको जो पकड़ में आ जाए, वह उस पर चला जाए। एक सौ बारह विधियां हैं ध्यान की। बहुत अच्छा होगा कि मैं एक बार उन एक सौ बारह विधियों पर सात-आठ दिन बैठकर बात करूं ताकि एक पूर्ण संकलन पूरी विधियों का अलग हो जाए।

रहस्यदर्शी ऋषि रजनीश : एक झलक

भगवान् श्री रजनीश वर्तमान युग के एक अन्तर्द्रष्टा क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी ऋषि और जीवन-सर्जक सद्गुरु हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है, लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।

जीवन की चरम ऊंचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन व्यक्तित्व मे संभव है।

भगवान् श्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध मे संकेत मात्र हो सकते हैं। जो व्यक्ति परम आनंद, परम शांति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है उसके स्वास-स्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणो के कण-कण से एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगंध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस संगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई आनंद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन ये सब एक ही सत्य को दिये गये अलग-अलग नाम हैं।

ऐसे ही हैं—भगवान् श्री रजनीश जो मिट गये हैं, शून्य हो गये हैं, जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं, जिनका स्वास-स्वास अंतरिक्ष की स्वास हो गयी है, जिनके हृदय की धड़कनें चांद-तारों की धड़कनों के साथ एक हो गयी हैं, जिनकी आंखों में सूरज-चांद-तारों की रोशनी देखी जा सकती है, जिनकी मुस्कराहटों में समस्त पृथ्वी के फूलों की सुगंध पायी जा सकती है, जिनकी वाणी में पक्षियों के प्रात गीतों की निर्दोषता व ताजगी है और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, सगीतमय, सुगंधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरो के साथ जब लोगो की जिज्ञासा व मुमुक्षा का सयोग होता है तब प्रवचनो के रूप में उनसे ज्ञान-गगा बह उठती है।

उनके प्रवचनो में जीवन के, जगत् के, साधना के, उपासना के विविध रूपो व रंगों का स्पर्श है। उनमें पाताल की गहराइयां हैं और विराट् अंतरिक्ष की ऊचाइयां हैं। देश व काल की सीमाओं के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और नि शब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दो में, इशारो में, मुद्राओं में व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनो में रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदयस्पर्शी है, मीठे हैं, तीखे है और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। उनके प्रवचनो और ध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति की निद्रा, प्रमाद व मूर्छा टूटती है और वह अन्तः व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्रांति में संलग्न हो जाता है।

ए-१, वुडलेण्ड्स,
पेडर रोड, बम्बई-२६
फोन : ३८११५९

—स्वामी योग चिन्मय

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

१ महावीर मेरी दृष्टि में ४०.००
२ महावीर वाणी ३०.००
३ जिन खोजा तिन पाइयाँ २०.००
४ ईशावास्योपनिषद् १२.००
५ प्रेम है द्वार प्रभु का ८.००
६ समुन्द समाना बुन्द में ७.००
७ घाट भुलाना बाट बिनु ७.००
८ सूली ऊपर सेज पिया की ७.००
९ सत्य की पहली किरण ६.००
१० संभावनाओं की आहट ६.००
११ अन्तर्वीणा ६.००
१२ ढाई आखर प्रेम का ६.००
१३ मैं कहता आँखन देखी ६.००
१४ साधना-पथ ५.००
१५ मिट्टी के दिये ५.००
१६ संभोग से समाधि की ओर ५.००
१७ अन्तर्यात्रा ५.००
१८ अस्वीकृति में उठा हाथ ५.००
(भारत, गांधी और मेरी चिन्ता)
१९ प्रेम के फूल ५.००
२० गीता-दर्शन (पुष्प-१) ६.००
२१ गहरे पानी पैठ ५.००
२२ क्रांति-बीज ४.००
२३ पथ के प्रदीप ४.००
२४ सत्य की खोज ४.००
*२५ प्रभु की पगडण्डियाँ ४.००
२६ समाजवाद से सावधान ५.००
*२७ ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया ५.००
*२८ गीता-दर्शन (पुष्प-२) ४.००
२९ मैं कौन हूँ ? ३.००
३० शून्य की नाव ३.००
*३१ अज्ञात की ओर २.००
*३२ नये संकेत २.००
३३ सिंहनाद २.००
३४ प्रेम और विवाह १.५०
३५ प्रगतिशील कौन ? १.५०
३६ विद्रोह क्या है ? १.५०
३७ ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान १.५०
३८ ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म १.५०
*३९ जन-संख्या विस्फोट : समस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण) १.५०
*४० सत्य के अज्ञात सागर का आमन्त्रण १.५०
*४१ सारे फासले मिट गये १.२५
*४२ कुछ ज्योतिर्मय क्षण १.००
*४३ सूर्य की ओर उड़ान १.००
*४४ मन के पार १.००
४५ युवक और यौन १.००
*४६ नये मनुष्य के जन्म की दिशा ०.७५
*४७ प्रेम के पंख ०.७५
*४८ अमृत-कण १.००
*४९ अहिंसा-दर्शन १.००
*५० पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान ०.५०
५१ क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार ०.३५
५२ बिखरे फूल १.००
५३ क्रांति की नयी दिशा : नयी बात ०.३०
*५४ युवक कौन ? ०.३०
५५ संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?) ०.३०
५६ अवविगत सन्यास ०.३०
५७ व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज ०.२५
५८ क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया १.५०
५९ धर्म और राजनीति १.००
६० ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि १.००

—प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें—

६१ मैं मृत्यु सिखाता हूँ	२० ००
६२ निर्वाण उपनिषद्	१५ ००
६३ ताओ उपनिषद्	४०.००
(दो खण्डों में, प्रथम १९ सूत्र)	
६४ कृष्ण मेरी दृष्टि में	
६५ गीता-दर्शन, अध्याय ६	३० ००
(४ खण्डो में प्रथम दस अध्याय)	
६६ नव-संन्यास क्या ?	७.००
६७ मुल्ला नसरुद्दीन	५.००
६८ शून्य के पार	४ ००
६९ बूँद-बूँद से घट भरे	
(२०० अंग्रेजी पत्रो का अनुवाद)	

—छोटी पुस्तिकाएँ प्रेस मे—

७० ध्यान . नये आयाम (सक्रिय ध्यान और कीर्तन ध्यान)

सूचना—*चिन्ह अकित पुस्तकें पुनर्मुद्रण के लिए प्रेस में लम्बित हैं ।

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा	५ ००
२ सम्भोगथी समाधि तरफ	४.००
३ साधना-पथ	३ ००
४ पन्थना प्रदीप	३ ००
५ माटीना दिवा	३ ५०
६ हुँ कोण छूँ ?	३ ००
७ क्रान्ति-बीज	२ ५०
८ अज्ञात प्रति	२ ००
९ नवां सकेत	१ ७५
१० सत्यना अज्ञात सागरनुं आमत्रण	१.५०
११ मननी पार	१ ५०
१२ सूर्य तरफनुं उड्डयन	१.००
१३ जीवन अने मृत्यु	१.००
१४ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०.७५
१५ नवा मनुष्यना जन्मनी दिशा	० ७५
१६ प्रेमनी पांखे	० ७५
१७ अमृत-कण	०.५०
१८ अहिंसा-दर्शन	०.५०
१९ तरुण विद्रोह	०.५०
२० भ्रान्त समाजवाद	०.३०
२१ अतीतनी आलोचना, भावीनु चिन्तन	०.३५
२२ गांधीमां डोकियु अने समाजवाद	० ३५
२३ अभिनव सन्यास	०.५०
२४ ध्यान	०.७५
२५ प्रेम	०.७५
२६ परिवार	० ७५
२७ सकल्प	०.७५
२८ परिवार नियोजन	०.७५
२९ प्रेमनी प्राप्ति	०.४०
३० तीर्थ	२ ००
३१ सहज योग	१ ००
३२ अकाम	१ ००
३३ सन्यास अने संसार	१.००
३४ प्रेमना फूलो	५.००
३५ व्यस्त जीवनमा ईश्वरनी शोध	० ६०
३६ धर्म-विचार नहि उपचार	० ६०
३७ क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया	० ६०
३८ ऊठ जाग जुवान	०.५०
३९ प्रेम परमात्मा अने परिवार	० ७५
४० परमात्मा क्या छे ?	०.७५
४१ गांधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिए	० ५०
४२ गांधीजीनी अहिंसा	० ५०
४३ धर्म अने राजकारण	०.४०

४४ समाजवादथी सावधान	०.७५	५४ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जीनी ज्ञानवाणी	१ ५०
४५ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्	० ६०	५५ जीवनना मन्दिरमा द्वार छे मृत्युनु	१ ००
४६ सन्त, ईश्वर अने अनुभूति	०.७५	५६ दिव्य लोकनी चावी (महावीर-वाणी-१)	१.००
४७ बन्धन अने मुक्ति	० ७५	५७ भाव जगतना रहस्य (महावीर-वाणी-२)	१ ००
४८ ताओ	०.७५	५८ शरण स्वाकारूँ छूँ हुँ तमारू (महावीर-वाणी-३)	१ ००
४९ पूर्णावतार कृष्ण	० ६०	५९ ज्योतिष . अद्वैतनु विज्ञान	२ ००
५० गांधीवादी क्या छे ?	० ६०	६० स्वानुभवनी कसोटीओ	१.००
५१ मृत्यु पर विजय	१.५०	६१ सत्यनी शोघ	४ २५
५२ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन चरित)	० ७५		
५३ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन प्रसगो)	० ८०		

मराठी में अनुवादित साहित्य

१ पथ-प्रदीप	८ ००
२ सभोगातून समाधिकडे	५.००
३ प्रेम-पुष्प	३ ५०
४ साधना-पथ	३ ००
५ क्रान्ति-बीज	२ ५०
६ सिंहनाद	२.००
७ अभिनव सक्रिय ध्यान	१.००
८ प्रेमाचे पख	० ७५
९ अहिंसा-दर्शन	५ ५०
१० अमृत-कण	० ५०
११ समाजवाद पासून सावध रहा	० ५०
१२ पाण्यात बुडी घे खोल	२ ००
१३ गीता दर्शन (अध्याय-२, भाग-१)	१ ००

पजाबी (गुरमुखी) साहित्य

१ साधना-पथ	३ ००
२ अहिंसा-दर्शन	० ४०
*३ जीवन जो राज (सिंधी भाषा में)	० ५०

ग्रीक भाषा में साहित्य

१ एरन एपो टु एपेरपेरन (बियोन्ड एण्ड ब्रियोन्ड)

२ योग सान एना अफ्थोमितो सिमवान (योग · एज स्पॉन्टे-नियस हेपनिंग)

पत्रिकाओ के वार्षिक शुल्क

१ ज्योति-शिखा (हिन्दी त्रैमासिक)	८ ००
२ युक्रान्द (हिन्दी मासिक)	१२ ००
३ योग-दीप (मराठी पाक्षिक)	१० ००
४ सन्यास (अंग्रेजी द्वैमासिक)	१८.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान ·

जीवन जागृति केन्द्र

● ३१, इजरायल मोहल्ला
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई-९
फोन ३२७६१८
३२१०८५

● ए-१, वुडलेण्ड्स,
पेडर रोड, (केम्प्स कार्नर के पास)
बम्बई-२६
फोन . ३८११५९

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF

BHAGWAN SHREE RAJNEESH

1. Translated from Original Hindi version :

(Postage extra)

		Price in India
1.	Path to Self Realization	5.00
2	Seeds of Revolution	8 00
3	Philosophy of Non-Violence	0 80
4.	Who Am I ?	3 00
5.	Earthen Lamps	4 50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	3 50
7.	Towards the Unknown	1 50
8	Form Sex to Superconsciousness	6 00
9	The Mysteries of Life and Death	4 00
10.	Lead Kindly Light	1 50
*11.	What is Rebellion !	

II. Original English Books :

12	Meditation A New Dimension	2 00
13.	Beyond and Beyond	2 00
14	Flight of the Alone to the Alone	2 50
15.	LSD : A Shortcut to False Samadhi	2 00
16	Yoga A Spontaneous Happening	2 00
17	The Vital Balance	1 50
18	The Gateless Gate	2 00
19	The Silent Music	2 00
20.	Turning In	2 00
*21	The Eternal Message	2 00
22.	What is Meditation ?	3 00
*23.	The Dimensionless Dimension	2 00

24.	Wisdom of Folly	← (New 6 00 Mulla Jokes
*25	Two Hundred Two	
*26.	Meet Mulla Nasrudin	
*27	Thus Spoke Mulla Nasrudin	
*28.	Let Go	
*29	Beyond Laughter	
*30	The Inward Revolution	15 00
*31	I Am the Gate	10 00
32	Seriousness	2 00
33.	Secrets of Discipleship	3 00
*34	Dynamics of Meditation	20 00
*35	The Ultimate Alchemy (2 vols)	

III Critical Studies on Bhagwan Shree Rajneesh :

36	Acharya Rajneesh a Glimpse	1.25
37	Acharya Rajneesh The Mystic of Feeling	20.00
38	Lifting the Veil	10.00

Note ; Star (*) marked books are in Press.